BHARATIYA SHIKSHA

1965

G.K.U.

113770

COMPILED

638117
19/12/65
~~7625~~
COMPILED
15

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की
मासिक मुख-पत्रिका

प्रथम वर्ष ● जनवरी, १९६५ ● प्रथम अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–अध्यक्ष–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत सदस्य
३–असम–तीर्थनाथ शर्मा
४–आंध्र–डा० भीमसेन निर्मल
५–उड़ीसा–राधाकान्त मिश्र
६–कश्मीर–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–केरल–ए० चन्द्रहासन
८–गुजरात–जेठालाल जोशी
९–पंजाब–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–बंगाल–मोहितकुमार बनर्जी
११–बिहार–श्यामजी सिंह
१२–मद्रास–डा० शं० ना० गनेशन
१३–मध्यप्रदेश–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–महाराष्ट्र–प्र० रा० भूपटकर
१५–मैसूर–ना० नागप्पा
१६–राजस्थान–शंकरसहाय सक्सेना
१७–सम्पादक : सचिव–कालिदास कपूर

पुस्तक सं०……………
आगत सं०……………
दिनांक……………
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी

भारतीय शिक्षक संघ
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

पृष्ठ

१—शीर्षस्थ नेताओं और शिक्षाविदों के आशीर्वचन ... ३
२—शिक्षक-केन्द्रित शिक्षा-नीति की बात—श्री देवकान्त बरुआ ... ११
३—माध्यमिक शिक्षा के विकास की बात—डा० परमेश्वरी दयाल शुक्ल २२
४—दश आदेश—श्री वंशगोपाल झिंगरण ३१
५—विद्यालयों और महाविद्यालयों के पुस्तकालय—श्री प्रमिलचन्द्र बसु ३५
६—मुल्क की हिफ़ाज़त और मुर्दरिस भाई-बहिनों के फ़र्ज़
—मेजर-जनरल इनायत हबीबुल्ला ... ३८
७—जापान के खेल-कूद—श्री सत्यभूषण वर्मा ४१
८—उत्तर प्रदेश के ग्रामीण माध्यमिक अध्यापकों की सामाजिक व आर्थिक स्थित का सर्वेक्षण—श्रीमती कुमुद शर्मा ४७
९—कदाचार की समस्या—डा० सीताराम जायसवाल ... ५४
१०—बच्चों में नेतृत्व के चिन्ह—श्री शम्सुद्दीन ६०
११—संग्रहालय के माध्यम से बाल-शिक्षण—श्री रमेशचन्द्र शर्मा ... ६४
१२—परिचायिकी ६९
१३—सम्पादकीय ७६

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०...............
आगत सं०...............
दिनांक०...............
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

113770

शीर्षस्थ नेताओं तथा शिक्षाविदों के आशीर्वचन

विश्ववंद्य राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

(आप भारतीय शिक्षण सम्मेलन के कई अधिवेशनों का सभापतित्व अथवा उद्घाटन कर चुके हैं)

●

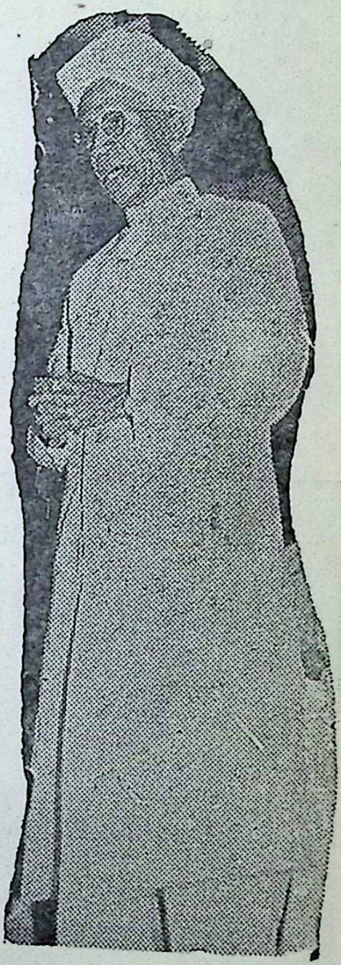

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारतीय शिक्षक संघ की मासिक पत्रिका **'भारतीय शिक्षा'** २६ जनवरी, १९६५ को प्रकाशित होगी। इसकी सफलता के लिये मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

●

गांधीजी की शैक्षिक विचार-धारा के सफल प्रयोगी

उप-राष्ट्रपति डा० ज़ाकिर हुसैन

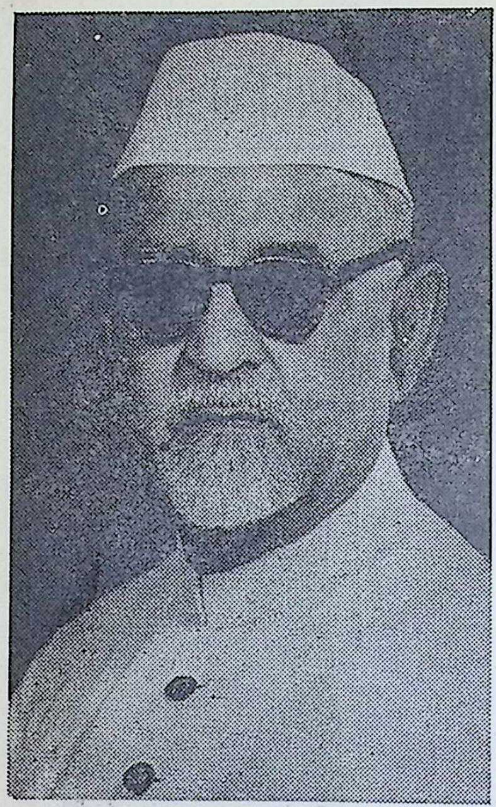

[आप एक अधिवेशन (१९३४) का स्वागत कर चुके हैं और दूसरे (१९५०) का सभापतित्व]

आपका पत्र दिनांक २३ दिसम्बर, १९६४ का प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

मुझे यह जान कर खुशी हुई कि आप भारतीय शिक्षक संघ की मासिक मुख-पत्रिका आगामी दि० २६ जनवरी, १९६५ को प्रकाशित करने जा रहे हैं।

मैं आपकी पत्रिका की सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

★ ★ ★

राष्ट्र के प्रधान मंत्री और राष्ट्र-भाषा के अनन्य भक्त श्री लाल बहादुर शास्त्री

शिक्षक-वर्ग समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है और मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि भारतीय शिक्षक संघ ने हिन्दी में **'भारतीय शिक्षा'** नामक मुख-पत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है। मैं इसकी सफलता चाहता हूँ।

राष्ट्र के तपस्वी हिन्दी-सेवी तथा राजस्थान के शिक्षा-मंत्री गुरुभाई हरिभाऊ उपाध्याय

●

'भारतीय शिक्षा' के प्रकाशन के सम्बन्ध में आपका पत्र दिनांक २३ दिसम्बर, १९६४ का मिला, जिसके लिए धन्यवाद।

अभी जो शिक्षा भारत में दी जा रही है उसे पूर्णतः भारतीय शिक्षा नहीं कह सकते। वह भारतीय आदर्श, संस्कृति और परम्परा पर आधारित नहीं है। इस कमी को दूर करने का पूरा प्रयत्न होना चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री जी ने जो डा० कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग बनाया है, उसके सामने इस दृष्टि से उपयोगी सुझाव प्रभावशाली ढंग से जाने चाहिए।

विविधता में एकता और विविधता में सामंजस्य की भावना भारतीय आदर्श है। दैवी सम्पत्ति भारतीय साधना है। ज्ञान-विज्ञान का समन्वय भारतीय जीवन की देन और विशेषता है। ज्ञान का अर्थ है जीवन-दर्शन; विज्ञान का उपयोग है जीवनयापन। एक ज्ञान है तो दूसरा योग है। एक आदर्श है; दूसरा आचार या व्यवहार है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को न केवल जीवन-आदर्श का परिज्ञान हो, बल्कि जीवन को सार्थक और उपयोगी बनाने वाले शास्त्रों-विद्याओं का भी ज्ञान हो जिन्हें आज विज्ञान और टेक्नालाजी के नाम से पुकारते हैं। शिक्षा प्राप्त करने के बाद यदि छात्र में अपनी जीविकोपार्जन की योग्यता और क्षमता—सो भी आत्म-सम्मान के साथ—नहीं आई तो उसकी शिक्षा बहुत-कुछ बेकार हो जाती है। केवल मानवोचित मूल्यों से काम नहीं चलता। उन गुणों का जीवन में उपयोग करने की योग्यता और क्षमता भी आनी चाहिए। तभी शिक्षा, विशेष करके हमारी भारतीय शिक्षा, सार्थक कही जायगी।

★ ★ ★

मद्रास और महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल श्रद्धेय श्रीप्रकाशजी

●

बधाई देता हूँ कि आप इतने साहस से श्रमदान में लगे हुए हैं। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि आप अपने सुन्दर और उपयोगी उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णरूप से सफल-प्रयत्न हों।

नारी-जगत में राष्ट्र की शीर्षस्थ सेवी और उत्तर प्रदेश की मुख्य मंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी

●

आगामी २६ जनवरी, १९६५ से भारतीय शिक्षक संघ **"भारतीय शिक्षा"** नामक पत्रिका प्रकाशित कर नेजा रहा है, यह एक सुन्दर प्रयास है। आज हम राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं। हमारी सारी शक्ति और हमारे सारे साधन पंचवर्षीय योजनाओं को अर्पित हैं। सरकार शिक्षण-सेवा का स्तर उन्नत करने की दिशा में प्रयत्नशील है। शिक्षक से यह आशा की जाती है कि वह शिक्षण-सेवा का नेतृत्व करेगा, साथ ही त्याग और संयम की ओर जनता को अपने उदाहरण और उपदेश से प्रवृत्त करेगा।

आज के युग में पत्रिका प्रकाशित करना तो कठिन नहीं है, परन्तु उसके प्रकाशन को जारी रखना और उसके स्तर को ऊँचा रखना कठिन होता है।

मैं आशा करती हूँ कि पत्रिका उन्नति करेगी और शिक्षा-जगत में विशेष स्थान बनाने में सफल होगी।

मेरी शुभकामनाएँ इसके साथ हैं।

★ ★ ★

राष्ट्रभाषा के प्रमुख साहित्यिक और मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र

●

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप आगामी २६ जनवरी से **"भारतीय शिक्षा"** का प्रकाशन आरम्भ कर रहे हैं। किसी भी प्रजातन्त्र में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि इस पत्रिका के माध्यम से भारतीय शिक्षा की उच्च परम्पराओं और उसकी नवीन विचारधाराओं को आप शिक्षा-क्षेत्र के प्रत्येक कार्य-कर्ता एवं अन्य शिक्षित व्यक्ति तक पहुँचा सके तो हमारी शिक्षा के समुचित सुधार और प्रसार में बड़ी सहायता मिल सकती है। आशा है शिक्षा-जगत में इसका स्वागत होगा। इस प्रयास की सफलता के लिये मैं अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ।

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री बंधुवर चन्द्रभानु गुप्त

[आप कानपुर (१९६०) तथा लखनऊ (१९६२) के अधिवेशनों का उद्घाटन कर चुके हैं]

●

आपका २४ तारीख का पत्र मिला। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि भारतीय शिक्षक संघ की मासिक मुख पत्रिका "**भारतीय शिक्षा**" का प्रथम अंक आप २६ जनवरी, १९६५ को प्रकाशित करने जा रहे हैं। आज भारत की अन्य समस्याओं में शिक्षा की एक प्रमुख समस्या हमारे सामने है। आशा है "**भारतीय शिक्षा**" उन सभी समस्याओं को सुलझाने में सहायक सिद्ध होगी। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

* * *

सर्वाधिक होनहारों की शिक्षा का दायित्व-भार सँभाले उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री बंधुवर कैलाश प्रकाश

●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारतीय शिक्षक संघ अपनी एक मासिक पत्रिका "**भारतीय शिक्षा**" नाम से प्रकाशित कर रही है। प्रथम अंक की अग्रिम प्रति देखने को मिली। इस प्रगतिशील संसार में शिक्षा-क्षेत्र में भी नए-नए विचार उगते रहते हैं और जैसे-जैसे अध्ययन बढ़ता जाता है, तैसे-तैसे शिक्षा में भी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होती रहती है। "**भारतीय शिक्षा**" इस दिशा में बहुत सहायक और उपयोगी हो सकती है। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका अपने देश की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति समक्ष रखते हुए देश में शिक्षा के स्तर और प्रसार की ओर विशेष रूप से ध्यान देगी। शुभ कामनाएँ।

उदीयमान मध्य प्रदेश के उदीयमान शिक्षा-मंत्री बंधुवर नरसिंह राव दीक्षित

●

इस वर्ष गणतन्त्र दिवस के शुभ दिन से आप **"भारतीय शिक्षा"** का प्रकाशन करने हेतु कृत-निश्चय हुए हैं, यह प्रसन्नता की बात है।

विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में भारतीय शिक्षा का जो सनातन-गौरव स्थान है, वह सर्व-विदित है। अतः इस नाम के साथ जो एक महान उत्तरदायित्व आपके कन्धों पर आ जाता है, तदर्थ आप सक्षम हों, यही शुभ कामना है।

★ ★ ★

राष्ट्र के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री और मैसूर विश्व विद्यालय के शिक्षाविद उपकुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली

●

आपका पत्र मिला। यह प्रसन्नता की बात है कि भारतीय शिक्षक संघ की मुखपत्रिका हिन्दी में प्रकाशित होने को है। आपको पत्रकारिता तथा शिक्षा का विशाल अनुभव प्राप्त है। अतएव निस्सन्देह पत्रिका अपनी सेवा में सफल होगी। हिंदी में शैक्षिक पत्रिकाओं का अभाव है जिसकी पूर्ति इस पत्रिका के प्रकाशन से संभव होगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारतीय शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डा० दौलत सिंह कोठारी

●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारतीय शिक्षक संघ **"भारतीय शिक्षा"** के नाम से एक मासिक पत्रिका प्रकाशित कर रहा है। मुझे आशा है कि यह पत्रिका अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफल होगी।

* * *

मध्य प्रदेश तथा राष्ट्र-मंडल के भूतपूर्व शिक्षा निदेशक और भारतीय शिक्षा आयोग के सदस्य

बंधुवर डा० वेणीशंकर झा

●

"भारतीय शिक्षा" के जनवरी १९६५ से प्रकाशन के लिये मेरी मंगल-कामनाएँ स्वीकृत हों। आपका प्रयास महत्वपूर्ण है और मुझे पूर्ण आशा है कि आपकी योजना शिक्षा-क्षेत्र की समस्त नीतियों को बल देगी। शिक्षा के बिना जीवन वृथा है और जिस राष्ट्र में समाज अशिक्षित है, वह राष्ट्र किसी भी क्षेत्र में पनप नहीं सकता। इस सत्य को सब अपनाते हैं; किन्तु जब शिक्षा-प्रचार के साधनों का प्रश्न उपस्थित होता है, तो उनकी विशालता और विषमता देख कर अन्य तर्क उपस्थित किये जाते हैं। मेरी सरल धारणा है कि सामाजिक विकास और उत्थान बिना शिक्षा के असंभव है और शिक्षा के प्रति उदासीनता समाज-विरोधी तत्व है। इस क्षेत्र में जो भी जागृति आप कर पायें, उसके लिये हम अभारी होंगे। हमारी बात इतनी सीधी और सादी है कि सब बिना कष्ट के मान लेते हैं। हम तो उसकी यथार्थता को तब मानेंगे जब हमारे देश का नेतृत्व इस भावना को एक बहुत बढ़िया ढंग तथा उत्साह से कार्य-रूप में उतार दे। आपकी पत्रिका का माध्यम एक प्रबल प्रेरणा बनेगी, इसका हमें विश्वास है।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा निदेशक चिरपरिचित बंधु बलवन्त सिंह स्याल

●

भारतीय शिक्षक संघ **"भारतीय शिक्षा"** के नाम से अपनी मासिक मुख-पत्रिका प्रकाशित करने जा रहा है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस समय देश की अधिकांश शिक्षण पत्रिकाओं का माध्यम अंग्रेजी है और हिन्दी अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अभी ऐसी प्रामाणिक पत्रिकाएँ नहीं हैं। अतः अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी में इस पत्रिका के प्रकाशन का अपना एक विशेष महत्व है।

शिक्षा के तीव्र प्रसार के साथ-साथ उसको आधुनिकतम रूप देने तथा उसके स्तर को उन्नत बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि हम अपने शिक्षकों तथा शिक्षा-संस्थाओं को निरंतर नवीनतम शिक्षण सामग्री देते रहें और उनको देश-विदेश की शिक्षा-पद्धति की नवीनतम गति-विधियों तथा शिक्षा-जगत में होने वाले आधुनिकतम अनुसंधानों से अवगत कराते रहें।

आज जीवन के हर क्षेत्र में नवीनता की मांग हो रही है। क्या कला और क्या शिल्प, सभी नवीन रूप में हमारे सामने आ रहे हैं। विज्ञान के नित्य नये आविष्कारों से धरती का रूप बदल रहा है और आकाश का नया इतिहास लिखा जा रहा है। तो भला यह कैसे हो सकता है कि हम अपने शिक्षकों और अपनी शिक्षा-संस्थाओं से शिक्षण कार्य में नवीन दृष्टिकोण की आशा न करें। किन्तु इसके लिए आवश्यक है उन्हें नवीनतम सामग्री प्रदान करना।

भारतीय शिक्षक संघ की यह मुख-पत्रिका उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सर्वथा सहायक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पत्रिका के साधारण एवं विशेषांकों के स्तम्भों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वह शिक्षा-जगत में एक नई चेतना, एक नई जागृति एवं एक विस्तृत और व्यापक दृष्टिकोण, पैदा करने में पूर्णतः सफल होगी। मैं इस सत्प्रयास की हृदय से सराहना करता हूँ और इसकी सफलता की मंगल-कामना करता हूँ।

शिक्षक-केन्द्रित शिक्षा-नीति का पक्ष

(असम के शिक्षा-मंत्री श्री देवकान्त बरुआ का इन्दौर के अ० भा० शिक्षण सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण)

शिक्षा सामाजिक जीवन का एक पक्ष है। अतएव इस जीवन के अनुकूल ही शिक्षा का रूप बनता है। तो भी सामाजिक जीवन की अधोगामिनी प्रवृत्ति के अनुकूल समाज के नेताओं का कर्तव्य होता है कि वे स्थिति की आवश्यकताओं के भीतर सामाजिक जीवन का स्तर समुचित शिक्षा द्वारा उन्नत करें। परतंत्र भारत में जीवन कृषि पर आधारित था और ऊँच-नीच भेद की व्यापकता थी। अतएव शिक्षा की व्यवस्था एक सीमित वर्ग के लिए थी और उसकी ही आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। कृषि-प्रधान जीवन में शिक्षा की विशेष आवश्यकता न थी, उससे सरकारी नौकरियां ही मिलती थीं। यदि शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में कुछ भारतीयों ने अपने चमत्कार दिखाये, तो विदेशी शासन की शैक्षिक नीति के बावजूद ही वे देश की उल्लेखनीय सेवा कर सके। भारत के स्वतन्त्र होकर लोकतंत्रीय शासन पद्धति को मान्यता देने पर इस स्थिति में नितांत परिवर्तन हो गया है। भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार तो देता ही है उसे शिक्षित होने का भी अवसर देता है। देश के शीघ्रातिशीघ्र आर्थिक विकास के लिए नेताओं ने विकास की योजनाएँ बनाईं तो शिक्षा अत्यन्त आवश्यक हो गई

है, क्योंकि शिक्षा के बिना विकास सम्भव नहीं। उन्नतिशील कौमों ने अपने प्राविधिक विकास की योजनाएँ बनाईं तो उनका श्रीगणेश उन्होंने निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा से किया, क्योंकि कोई देश अपनी भौमिक निधि का विकास प्राविधिक कौशल से युक्त श्रमिकों के बिना नहीं कर सकता और इसके लिए प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। खेतों से उपज के विकास के लिए भी जरूरी है कि कृषक शिक्षित होकर कृषि-विज्ञान की साधारण जानकारी प्राप्त कर सकें। इस संदर्भ में सभी स्तरों पर शिक्षा का प्रसार आवश्यक हो जाता है और यह तथ्य मान्य हो जाता है कि शिक्षा पर जितनी भारी रकम हम लगायेंगे उतना ही हम विभिन्न क्षेत्रों में लाभान्वित होंगे। संक्षेप में, यदि स्वतन्त्र और गणतंत्र भारत में शिक्षा से वास्तविक लाभ होना है तो स्वर्गीय नेहरू जी ने विकास के जो अभियान चालू किये, उनके आगे नहीं तो समकक्ष ही अवश्य शिक्षा का विकास होना चाहिए। इस मापदंड से हमें अपने स्वातंत्र्य काल में शिक्षा के विकास की समीक्षा करनी है।

विकास के आँकड़े—

सन् १९४९ में २ करोड़ ३९ लाख विद्यार्थी विभिन्न विद्यालयों में भर्ती थे और इस वर्ष भर्ती का अनुमान ६ करोड़ ५० लाख तक पहुँचता है। निःसन्देह यह उन्नति हमें चमत्कारिक जान पड़ती है। तो भी संविधान में व्यापक शिक्षा तक पहुँचने के आदेश-पालन में हम इतने पीछे रह जाते हैं कि ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के वच्चों की शत प्रतिशत भर्ती के बजाय हमें ६१ प्रतिशत भर्ती से अधिक की आशा नहीं। इसलिए राष्ट्रीय हित का आदेश है कि व्यापक शिक्षा के स्तर तक पहुंचने के लिए हमारे प्रयत्नों में कोई ढील न हो।

कठिनाइयाँ—

हमें ज्ञात है कि इस शैक्षिक विकास के वर्तमान स्तर तक पहुँचने में भी हमें बहुत सी कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा है, जैसे शिक्षकों तथा भवनों का अभाव और इन सबके ऊपर हमारी वित्तीय कठिनाइयां। जितने ही हम अपने आदर्श के निकट पहुँचते हैं उतनी ही अधिक कठिनाइयों के आने की सम्भावनायें बढ़ती हैं। इन समस्याओं के हल के लिए हमने सच्चे प्रयत्न किये हैं, पर इनके बावजूद शैक्षिक विकास यथेष्ट नहीं हो पाया है। साधनों की अपेक्षा अधिक कठिन समस्या शिक्षा स्तर के गिरने की है। यदि हम विभिन्न स्तरों के परीक्षा-फलों की जाँच करते हैं तो हमें स्तर की गिरावट और विकराल बरबादी की स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

शिक्षण स्तर-क्यों गिरा है ?

एक मत यह है कि शिक्षा के प्रसार की गति बढ़ने पर उसके गुण का स्तर गिरना अनिवार्य है। अतएव इस मत के समर्थक हमें प्रसार-नीति धीमी करने का परामर्श देते हैं। परन्तु आधुनिक भारत को यह मत स्वीकार ही नहीं। अन्य देशों के अनुभव भी इस मत के समर्थक नहीं। सभी उन्नत देशों में पिछले थोड़े से दशकों के भीतर शिक्षा का विशाल विकास हुआ है। परन्तु अभी तक किसी भी देश के सम्बन्ध में यह निश्चित मत नहीं दिया गया है कि वहां प्रसार के कारण शिक्षा का स्तर गिर गया है। शिक्षाविदों और विशेषज्ञों ने शिक्षण-स्तर उठाने की समस्या पर विचार किया है। इस पर मुझे विशेष व्याख्या नहीं करनी क्योंकि मैं शिक्षाविद नहीं। परन्तु एक सामान्य नागरिक की हैसियत से मेरी समझ में आता है कि शिक्षण क्षेत्र के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक नैपुण्य की रक्षा में विफलता का कारण यह है कि आवश्यक योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को हम शिक्षण-सेवा के लिए आकृष्ट नहीं कर पाये हैं। शैक्षिक प्रसार करते समय शैक्षिक नैपुण्य की रक्षा का ध्यान नहीं रखा गया है। शैक्षिक नैपुण्य के आधार योग्य शिक्षक ही हैं। जिस समाज में धन ही का बोल बाला है, उसमें यथेष्ट योग्यता प्राप्त लोगों से शिक्षण-सेवा में उमंगपूर्ण भर्ती की आशा करना व्यर्थ है। इस समय भाव तेजी से बढ़ रहे हैं तो शिक्षण में लगे पुराने शिक्षकों को अपने भरण-पोषण की समस्या ही इतना सताती रहती है कि वे शिक्षण स्तर की उन्नति पर ध्यान नहीं दे पाते।

अतएव मेरा यह दृढ़ और अनुभव जन्य मत है कि शिक्षण-स्तर की उन्नति शिक्षण में शिक्षक को केन्द्रित करके ही सम्भव होगी। भवनों, सामानों और पुस्तकालयों के अभावों की पूर्ति हो सकती है, यदि योग्य शिक्षक हमें प्राप्त हों। क्योंकि अन्ततः शिक्षा वही है जो कि शिक्षक प्रदान करता है; अतएव मेरा गम्भीर सुझाव है कि शिक्षकों के वेतनों की यथेष्ट वृद्धि की जाय जिससे शिक्षण क्षेत्र की ओर हमारे विश्वविद्यालयों के योग्य स्नातक आकृष्ट हो सकें।

हमारे असम राज्य के साधन सीमित हैं, तो भी हम अपने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षालयों के शिक्षकों की वेतन-वृद्धि का प्रयत्न कर रहे हैं। यों असम में शिक्षकों के नये वेतन क्रम-इस प्रकार हैं :—

१-	प्रशिक्षणहीन मैट्रीकुलेशन के स्तर के शिक्षक	रु० ८५ से १३५ तक
२-	प्रशिक्षणहीन मैट्रीकुलेट और प्रशिक्षित मैट्रीकुलेशन के नीचे स्तर के शिक्षक	रु० ११० से १६५ तक

३- प्रशिक्षित मैट्रीकुलेट शिक्षक	रु० १२५ से २०० तक
४- २० वर्ष लगातार सेवा के बाद १० प्रतिशत शिक्षकों के लिए	रु० १६५ से २०० तक
५- इंटरमीजिएट पास शिक्षक	रु० १४० से २७५ तक
६- हाई स्कूलों के ग्रेजुएट शिक्षक	रु० २५० से ७०० तक
७- हाईस्कूलों के असिस्टेंट हेडमास्टर	रु० २५० से ७०० तक
८- हाईस्कूलों के हेडमास्टर	रु० ३५० से ९२५ तक
९- हायर सेकंडरी स्कूलों के एम० ए० पास असिस्टेंट मास्टर	रु० ३०० से ८०० तक
१०- हायर सेकंडरी स्कूलों के हेडमास्टर	रु० ४५० से १००० तक

जिन वैतनिकों का मासिक वेतन २५० रुपये या उससे कम है, उन्हें १० रुपये प्रति मास महँगाई मिलती है। इतना और निवेदन कर दूं कि असम की सरकार ने यह वेतन-क्रम अपने ही साधनों के भीतर निश्चित किये हैं, क्योंकि राज्य के भीतर शिक्षा के योजनान्वित विकास के लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय से आवश्यक मात्रा में अनुदान मिलने के कारण हम वेतनवृद्धि के लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय से ५० प्रतिशत अनुदान नहीं प्राप्त कर सके। यदि यह अनुदान लेते तो शैक्षिक प्रसार के क्रम में बाधा पड़ती और इसके लिए हम तैयार न थे। हमने वेतनक्रमों के सम्बन्ध में सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों का भेद भी अमान्य कर दिया है। हमें आशा है कि योग्यता और सेवा के नियमों में भी दोनों मेल के विद्यालयों के बीच कोई भेद न रह जायगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हम शिक्षकों की आर्थिक समस्या हल कर पायें तो वे शिक्षण स्तर की समस्या हल कर लेंगे।

आधुनिक संसार में शिक्षक को पूंजी का विनियोग मान लिया गया है। इसे साधारण व्यय की वस्तु नहीं माना जाता। शिक्षा के क्षेत्र में हमें अपनी पूंजी से यथेष्ट लाभ नहीं मिला है तो इस कारण कि हमारी लागत न यथेष्ट रही ओर न सर्वांगीण ही।

शिक्षक संघों का कर्तव्य—

इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि विभिन्न शिक्षक संघ भी शिक्षण स्तर की गिरावट की समस्या पर विचार करें और स्तर की उन्नति के लिए आवश्यक कार्यवाही करें। शिक्षक बन्धुओं की आर्थिक दशा सुधारने का दायित्व अवश्य उन पर है, परन्तु अपने विद्यार्थियों को बेहतर शिक्षा देने का दायित्व भी उन पर विशेष रूप से है। यदि वे इस ओर ध्यान दें तो शिक्षण स्तर की उन्नति निश्चित है।

प्रशिक्षण का महत्व—

निःसन्देह आवश्यक वेतन-वृद्धि से शिक्षक चिंतामुक्त होकर अपने कर्तव्य पालन में संलग्न होंगे और समाज में उनका मान भी बढ़ेगा। तो भी उनके कर्तव्य-पालन में बहुत बाधा पड़ेगी यदि उनका समुचित प्रशिक्षण नहीं होता और अपने विषय का आवश्यक ज्ञान वे नहीं प्राप्त कर पाते। मेरा विचार है कि प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्तरों पर शिक्षकों के प्रशिक्षण की अवधि इतनी कम है कि उनका यथेष्ट प्रशिक्षण नहीं हो पाता। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की प्रशिक्षण अवधि १ वर्ष है और प्रारम्भिक शिक्षकों के लिए २ वर्ष। इतने समय के भीतर न शिक्षा विधि के लिए प्रशिक्षण सम्भव है और न विषयों की आवश्यक जानकारी के लिए ही। ब्रिटेन में शिक्षण-सेवा के प्रार्थियों को जनरल सर्टीफिकेट आफ एजुकेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ट्रेनिंग कालिजों में दो वर्षों तक प्रशिक्षित किया जा रहा। सो अब यह अवधि बढ़ाकर ३ वर्ष कर दी गई है, जिससे शिक्षक पढ़ाने का ढंग ही न सीखें, विषय का यथेष्ट ज्ञान भी उन्हें मिल जाय। अतएव मेरी समझ में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों का प्रशिक्षण कम-से-कम २ वर्ष होना चाहिए और प्रारम्भिक विद्यालयों के शिक्षकों का ३ वर्ष। इसके बिना कोई शिक्षक अपने दायित्व-निर्वाह के लिए यथेष्ट तैयार नहीं हो सकता। मुझे पता है कि इस सुधार से हम पर वित्तीय भार बहुत बढ़ जायगा; परन्तु यदि हम यह चाहते हैं कि हमें यथेष्ट योग्य शिक्षक मिलें तो हम उन्हें अच्छे वेतन देने की व्यवस्था तो करें ही, उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण की सुविधाएँ भी दें।

शिक्षा का समान अवसर सभी होनहारों को मिले—

जिस लोकतांत्रिक देश में समाजवाद ने अपना आदर्श मान लिया है वहां विद्यार्थियों को विकास का समान अवसर देना भी शासनिक नीति का सिद्धांत होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुकूल अपनी मानसिक शक्तियों के विकास का अवसर मिलना चाहिये। हमारे जैसे समाजवादी देश में गरीब-से-गरीब लड़के को अपने घर ही के पास सर्वोच्च शिक्षा की सुविधा मिलनी चाहिए। शिक्षण के क्षेत्र में संलग्न शिक्षकों तथा प्रशासकों को ज्ञात है कि बहुत-से विद्यार्थी अपनी योग्यता के नाते शिक्षा के अधिकारी होकर भी गरीबी के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। चढ़ते हुए भावों के साथ-साथ शिक्षा के व्यय-साध्य होने के कारण सर्वोच्च शिक्षा—विशेष रूप से इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा जैसे प्राविधिक प्रशिक्षण—अब कम आय के लोगों की पहुँच के बाहर हो गयी है। इसके परिणाम-स्वरूप

युवकों की योग्यताओं की बर्बादी होती है जो कि भारत जैसे विकासशील देश के लिये बहुत हानिकारक है। **इस बर्बादी को रोक-थाम का हल यही दिखता है कि योग्यता और आर्थिक स्थिति के आधार पर छात्र-वृत्तियों की संख्या और प्रत्येक की रकम बढ़ाई जाय जिससे योग्य परन्तु गरीब विद्यार्थी चिंता-मुक्त होकर अध्ययन में संलग्न हो सकें।** निकट भविष्य में शिक्षालयों से सम्बद्ध छात्रावास आज की अपेक्षा और भी अधिक व्यय-साध्य हो जायेंगे। अतएव ऐसे छात्रावासों के खोलने की आवश्यकता है जहाँ गरीब घरों से आये विद्यार्थी अपने काम स्वयं कर सकें और आवास तथा भोजन में किफायत कर सकें। योग्यता की रक्षा हेतु योजनाओं के चालू होने पर गरीब घरों के अच्छे लड़कों-लड़कियों को अधिकाधिक संख्या में सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। **इससे हमारे विद्यालयों में शिक्षा का स्तर उन्नत होगा और सम्पत्ति के धनियों की जगह बुद्धि के धनी ले सकेंगे।** छात्रवृत्तियों के अतिरिक्त निर्धन तथा योग्य विद्यार्थियों को पुस्तकों की खरीद और भर्ती तथा परीक्षा के शुल्क चुकाने के लिए अनुदान दिये जा सकते हैं। इस दायित्व भार के सम्हालने में दानशील संस्थाएँ सरकार का साथ दें। पुस्तक-भंडार खोले जा सकते हैं जो विद्यार्थियों को पुस्तकें उधार दें और पढ़ाई पूरी होने पर वापस ले लें।

आशीर्वचन

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आल इंडिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एशोसिएशंस ने हिंदी में अपनी मुखपत्रिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है। संपादकीय परामर्शदात्री समिति पर देश के सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व है और संपादकीय नीति तथा स्तंभ-योजना में राष्ट्र की भावनात्मक एकता के विकास पर जोर दिया गया है। यह बहुत शुभ उद्देश्य है। असम के सामने अपने ही क्षेत्र के भीतर भावनात्मक एकता की पुष्टि की समस्या है। अतएव मुझे पूरी आशा है कि असम के हिंदी ज्ञाता शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के अभिभावकों को इस पत्रिका से इस ओर आवश्यक प्रेरणा मिलेगी। मेरी शुभकामनाएं संपादक तथा प्रकाशक के साथ हैं।

—देवकान्त बरुआ

पिछड़े भू-भागों के उद्धार की समस्या—

शिक्षा का सामाजिक न्याय से भी गहरा सम्बन्ध है। कई ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कारणों वश देश के कुछ भाग अन्य भागों की अपेक्षा शिक्षा में पिछड़े हुए हैं। अतएव शिक्षा, और इसलिये सामाजिक तथा आर्थिक जीवन, की दृष्टि से ऐसे निर्बल भागों के उद्धार के लिए एक विशेष योजना की अत्यन्त आवश्यकता है। यह सही है कि हमारे संविधान में ऐसे भागों के साथ विशेष व्यवहार की व्यवस्था है। परन्तु हमारी सीमा पर चीनी अतिक्रमण के कारण उत्पन्न स्थिति से हमें इन भागों के द्रुतगामी शैक्षिक विकास के लिये आदेश मिलता है। कुछ दिनों से इन भू-भागों से सर्वोच्च शिक्षा की सुविधाओं के लिये, विशेष रूप से सर्वोच्च विद्यालयों की स्थापना के लिये, मांग आने लगी है। यह मांग उचित है और इसकी पूर्ति होने पर इन भागों में शासन के प्रति विश्वास की मात्रा बढ़ जायगी। असम के पहाड़ी भागों से असंतोष के स्वर निकलने लगे हैं। नेफा नाम से प्रसिद्ध उत्तरी प्रदेश की सेवा के लिये एक विशेष योजना चालू है। मिज़ो पहाड़ियों के विशेष विकास के लिए असम की सरकार ने योजना चालू कर दी है और अन्य पहाड़ी क्षेत्रों की विकास योजनाएं विचाराधीन हैं। यहाँ भी हमारे सामने वित्तीय और वैयक्तिक समस्यायें आती हैं। मुझ पर ऐसे विशाल भू-भागों के शैक्षिक विकास का दायित्व भार आया है। सो ईमानदारी की बात यह है कि यदि वित्तीय विचार इन भागों के विकास में बाधक होते हैं तो हम खतरे में आ जाते हैं।

नारी शिक्षा का महत्व—

शिक्षा-क्षेत्र का दूसरा निर्बल भाग है नारी शिक्षा। नारी शिक्षा घर में शैक्षिक वातावरण की सृष्टि से विशेष रूप में सम्बद्ध है, क्योंकि इस वातावरण के होने पर ही बच्चे अपने अध्ययन में निपुण होते हैं। माता के शिक्षित होने से यह निश्चित हो जाता है कि उसकी संतति का पालन-पोषण ऐसे वातावरण में होगा जहां शिक्षा का मान है। केरल सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा नमूने के तौर पर २६ माध्यमिक शिक्षालयों में सर्वेक्षण होने पर यह पता चला है कि माता-पिता के शैक्षिक स्तर का उत्तीर्णता पर कितना प्रभाव पड़ा है। यह तथ्य निकला है कि माता-पिता जितने ही शिक्षित होते हैं, उतना ही उत्तीर्णता का अनुपात बढ़ता है। प्रकाशित रिपोर्ट के नीचे दिये गये आँकड़े यह तथ्य सिद्ध करते हैं।

माता-पिता का शैक्षिक स्तर	उनके बच्चों का कक्षा में प्रतिशत अनुपात	उनकी उत्तीर्णता प्रतिशत
निरक्षर	१२	२८
प्रारम्भिक स्तर तक शिक्षित	२६	३२
माध्यमिक स्तर तक शिक्षित	४६	५६
ग्रेजुएट स्तर तक शिक्षित	१६	८८

नारियों तक शिक्षा की सुविधा पहुंचने पर उनके बच्चों की शैक्षिक सम्भावनायें निश्चित रूप से अच्छी होंगी। यदि हम नारियों के मध्य शिक्षा की उमंग पैदा करना चाहते हैं तो हमें विशेष सुविधाओं और आकर्षणों की व्यवस्था करनी होगी। ऐसे भागों के माध्यमिक विद्यालयों में जहाँ लड़कों तथा लड़कियों पर एक-साथ पढ़ने के विरुद्ध सामाजिक प्रतिबन्ध है, वहां लड़कियों के लिये माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना आवश्यक है और ऐसे विद्यालयों में शिक्षकों की व्यवस्था करने के लिये शिक्षिकाओं को आवास की सुविधा देना भी आवश्यक हो जाता है। देहात या कस्बों में लड़कियों के लिये विशेष ढंग की शिक्षा की मांग होती है। परन्तु मेरा विचार है कि एक विकासशील देश में नर-नारियों को प्रायः एक ही मेल का काम करना पड़ता है और इसलिये सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में नर-नारी शिक्षा के बीच भेद करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

प्रारम्भिक शिक्षा के लिए शिक्षिकाएँ—

इस सम्बन्ध में सुझाव है कि प्रारम्भिक विद्यालयों के लिये विशेष रूप से नारियों को शिक्षण क्षेत्र की ओर आकृष्ट करना आवश्यक है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि छोटे बच्चों की शिक्षा के लिये नारियां विशेष रूप से उपयुक्त हैं; क्योंकि बच्चे मातृ-स्नेह के भूखे होते हैं जो शिक्षिकाओं ही से उन्हें मिलता है। प्रारम्भिक विद्यालय में बच्चा ही शिक्षा का केन्द्र है जब कि माध्यमिक विद्यालय की ऊंची कक्षाओं में विषय का महत्व अधिक हो जाता है। इस कारण प्रारम्भिक विद्यालयों के लिये नारियों के प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था होनी चाहिये।

अनुशासनहीनता की समस्या—

कुछ दिनों से विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता हमारा सरदर्द बन गई है। पिछले ही महीने उड़ीसा के विद्यार्थियों द्वारा हमें दंगे-फसाद के दुखद

दृश्य देखने को मिले। नौजवानों की अनुशासनहीनता आमतौर पर, और विद्यार्थियों की विशेष रूप से, संसार के अन्य देशों में भी देखने को आती है। यह एक सामाजिक समस्या है जिसकी जड़ें उस विफलता तक पहुंचती हैं जो कठिन वातावरण से उत्पन्न होकर आधुनिक नवयुवकों के सामने आती है। विद्यार्थियों की भीषण कठिनाइयों पर जोर देना यहां जरूरी नहीं। उनके लिये उन आंशिक सुविधाओं का अभाव है जो उनके अध्ययन के लिये आवश्यक हैं—यह तथ्य हम सब जानते हैं। उनके इस अधिकार से कोई इनकार नहीं कर सकता और सरकार एवं विश्वविद्यालय दोनों का कर्तव्य है कि उनकी इन मांगों की पूर्ति की जाय। यह सत्य है कि भारत के अधिकांश विद्यार्थी साधारणतया शिष्ट रहे हैं; परन्तु विद्यार्थियों व गैरविद्यार्थियों के मध्य बहुत-से लोग हैं जिन्होंने अकारण आन्दोलन को अपना व्यवसाय बना लिया है, जो स्वभाव या वातावरणवश विद्रोही हो गये हैं। ऐसे ही लोग विद्यार्थियों की किसी सही शिकायत के निराकरण की मांग में फांद पड़ते हैं और उसे आंदोलन का रूप दे देते हैं। **अतः आवश्यक है कि ऐसे पेशेवर फसादियों को विद्यार्थी समाज से अलग रखा जाय। यदि विद्यार्थियों के लिए पाठ्येतर कार्यक्रमों की यथेष्ट व्यवस्था की जाय, तो विद्यार्थियों के काम अधिक रचनात्मक तथा उद्देश्यपूर्ण हो सकेंगे।** इन रचनात्मक कार्यक्रमों में खेलों को प्रथम पद मिलना चाहिये। खेल और अध्ययन के पारस्परिक विरोध की दकियानूसी बात आधुनिक संसार में मान्य नहीं। जो विद्यालय शिक्षा विभाग या सेकंडरी एजुकेशन बोर्ड से मान्यता का प्रार्थी होता है, उसे यह इत्मीनान दिला देना चाहिये कि उसने विद्यार्थियों के खेलों की समुचित व्यवस्था की है। इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को भी इतमीनान कर लेना चाहिये कि विश्वविद्यालय व कालेज अपने विद्यार्थियों को खेलों के लिए यथेष्ट मैदान की सुविधा प्रदान करते हैं।

नेशनल कैडेट कोर का महत्व—

दोनों स्तरों की नेशनल कैडेट कोर व्यवस्था से हमारे विद्यार्थियों में संगठन और अनुशासन का विकास हुआ है। संकटकाल में बहुत शीघ्र ऊंचे स्तर के नेशनल कडेट कोर का चमत्कारिक विकास हुआ है। इस विकास से प्रशिक्षकों तथा सामान के अभाव की समस्या हमारे सामने आई है जो अब हल की जा रही है। मेरे विचार से शिक्षकों तथा प्रधानाध्यापकों को नेशनल कैडेट कोर में विशेष तथा निजी दिलचस्पी लेनी चाहिये। नेशनल कैडेट कोर की अफसरी के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण का निर्णय बहुत सही है; क्योंकि इससे शिक्षकों का अपने विद्यार्थियों से कक्षा के भीतर और बाहर सम्पर्क बढ़ेगा।

तो भी मेरी धारणा है कि नेशनल कैडेट कोर को हाई स्कूल के स्तर पर अभी और बढ़ना चाहिये। विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता का सामना इसी प्रकार हो सकता है कि विद्यार्थियों के मध्य हम कक्षा के भीतर और बाहर मैदान में अपने काम के प्रति उमंग पैदा करें।

शिक्षा के माध्यम की बात—

मैं किसी विवाद में नहीं फंसना चाहता। तो भी मैं शिक्षाविदों के सम्मेलन के सामने यह विचार प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य मानता हूं कि विभिन्न राज्यों के शिक्षकों के विचार-विमर्श के लिये और असम जैसे एक ही राज्य में विभिन्न जातियों के मध्य विचार के आदान-प्रदान के लिए अंग्रेजी जरूरी है। मैं एक अहिंदी भाषी राज्य का नागरिक हूँ, परन्तु मैं एक हिन्दी-भाषी राज्य में शिक्षित हुआ जिस कारण हिन्दी की मुझे जानकारी है और भाषा तथा साहित्य के प्रति मुझे श्रद्धा है। हमने असम में हिन्दी को एक अनिवार्य विषय मान लिया है और हाई स्कूलों में हिन्दी शिक्षा का माध्यम भी है। तो भी तथ्य यह है कि ऊंचे स्तर पर विचार-विमर्श के लिये अंग्रेजी जरूरी है। केन्द्रीय शासन के सरकारी कामों में हिन्दी के प्रयोग के हम सब पक्ष में हैं। परन्तु देश के विद्वानों के मध्य विचार-विमर्श के लिये अंग्रेजी से मुक्त होने में अभी बहुत समय लगेगा। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी द्वारा इस समय पाश्चात्य संस्कृति तक हमारी पहुंच है। इसके द्वारा हमारा संसार के अन्य भागों से सम्पर्क बना रहता है, विशेष रूप में एशिया व अफ्रीका आदि पड़ोसी देशों से। अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं का ज्ञान भी आवश्यक होने लगा है, जब कि संसार के अन्य देशों से हमारे सम्पर्क बढ़ते जा रहे हैं। हमारे देश में फारसी तथा अरबी भाषाओं के अध्ययन की पुरानी परम्परा है और ये दोनों हमारे बहुत-से पड़ोसी देशों की राष्ट्रीय भाषाएं हैं। इन दोनों भाषाओं के आधुनिक रूप का अध्ययन हमें अफ्रीका और एशिया के संगठन में विशेष रूप से सहायक होगा। अतएव सुझाव है कि हमारे देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय में आधुनिक भाषाओं के अध्यापन के लिये एक संस्था होनी चाहिये, जैसी कि बहुत से योरपीय देशों में हैं।

भावनात्मक एकता के विकास की ओर—

शिक्षा का राष्ट्रीय रूप निश्चय करने की आवश्यकता पर कोई मतभेद नहीं हो सकता, क्योंकि इसी से हमारे शिक्षित एक सूत्र में संगठित हो सकेंगे। हमारे राष्ट्र की शक्ति हम सबकी संगठित एकता पर निर्भर है—यह सबकी समझ में आ गया है। भावनात्मक एकता की आवश्यकता भी सभी समझने लगे हैं, विशेष रूप से चीनी अतिक्रमण के कारण। तो भी यह निवेदन

~~76257~~

आवश्यक है कि भावनात्मक एकता का स्थायित्व तभी हो सकता है जब वह शिक्षितों की स्वेच्छापूर्ण मानसिक एकता पर आधारित हो। अतः हम सब लोगों का जो होनहारों के शिक्षण में लगे हुए हैं विशेष दायित्व है कि हम उनके मस्तिष्कों में भारतीय राष्ट्रीयता की ऐच्छिक मान्यता का विकास करें जिससे मनसा, वाचा और कर्मणा, आदि से अन्त तक वे भारतीय ही रहें।

पुस्तकालय
113770
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

* * *

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

* * *

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु ।
सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

* * *

ॐ असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर् माऽमृतं गमय ॥

माध्यमिक शिक्षा के विकास की बात

शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त परामर्शदाता (डा० परमेश्वरदीन शुक्ल का इन्दौर शिक्षण सम्मेलन की माध्यमिक शिक्षा गोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण)

भारतीय शिक्षा के विकास में अब हम उस स्थिति पर पहुंच गये हैं जब शिक्षा के गुण तथा स्तर पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो गया है। यह ध्यान शिक्षा के सभी स्तरों के लिए जरूरी है और विशेष रूप से माध्यमिक स्तर के लिए। माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा को प्रभावित करती है और सर्वोच्च शिक्षा को भी, क्योंकि एक को वह शिक्षक प्रदान करती है और दूसरी को विद्यार्थी। यों इसे शिक्षा में सबसे अधिक महत्व का पद मिलता है। माध्यमिक शिक्षा का महत्व इस बात में भी है कि इससे व्यवसाय, व्यापार, कृषि और देश की आर्थिक प्रगति के अन्य अंगों को मध्यम वर्ग के श्रमिक मिलते हैं और इसी क्षेत्र से अपने ही धन्धे में लगने वाले बहुत से लोग निकलते हैं जो चुनाव और शासनिक निर्णय यथेष्ट प्रभावित करते हैं।

स्वातंत्र्यकाल में शिक्षा का विकास:—देश के स्वातंत्र्यकाल में संख्या के अर्थ में शिक्षा की भारी उन्नति हुई है। सन् १९४७ में माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या ५ हजार ही थी। सो १९६४ तक यह संख्या २० हजार तक पहुंच गई है। यों संख्या में ३०० प्रतिशत की उन्नति हुई है। माध्यमिक स्तर १४ वर्ष से १७ वर्ष तक चलता है; सो इसमें भर्ती की संख्या १९४७ में ९ लाख थी और सन् १९६४ तक ४५ लाख हो गई है। यों ४०० प्रतिशत बढ़ी है। माध्यमिक शिक्षालयों में लगे शिक्षकों की संख्या भी ५० हजार से बढ़कर डेढ़ लाख पहुँच गई है, जिसका अर्थ होता है कि इनकी संख्या २०० प्रतिशत बढ़ी है। सन् १९४७ में ट्रेनिंग कालिजों की संख्या ५० ही थी; सो यह अब २५० तक पहुँच गई है। यों इनकी बाढ़ ४०० प्रतिशत हुई है। व्यय की दृष्टि से पूरे देश को सन् १९४६-४७ में शिक्षा पर ६० करोड़ रुपया खर्च करना पड़ा। सन् १९६४ में इस व्यय का अनुमान ४८० करोड़ तक पहुँचता है अर्थात् यह ७०० प्रतिशत बढ़ा है। यों हमें विकास के थोड़े-से लक्षण प्रत्यक्ष होते हैं।

शिक्षण स्तर :—अब सवाल होता है कि शिक्षा के स्तर तथा गुण किसी देशकाल में बहुत से कारणों के मेल पर निर्भर रहते हैं। इन कारणों में शिक्षक, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, अन्य पाठ्य सामग्री, वैज्ञानिक प्रयोग के सामान, शिक्षण सम्बन्धी साधन, शिक्षालयों के कार्यक्रम, निगरानी तथा निरीक्षण, योग्यता का मूल्यांकन, विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन, भवन, सामान और यहाँ तक कि विद्यार्थी भी आते हैं।

उसकी निर्बलताएँ :—हमारे देश में प्रायः ३४ प्रतिशत शिक्षक किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं प्राप्त किये हुए हैं। यह संख्या देश के विभिन्न भागों में एक-सी नहीं है और असम तथा पश्चिमी बंगाल में क्रमशः ३० प्रतिशत तथा ५० प्रतिशत प्रशिक्षित नहीं हैं। महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में सर्वेक्षण के बाद पता चला है कि माध्यमिक ट्रेनिंग कालेजों में ७० से ७५ प्रतिशत विद्यार्थी तीसरा डिवीज़न पास है। तीसरी योजना के मध्यकाल अर्थात् १९६३ में खोज करने से पता लगा है कि शिक्षक-शिष्य अनुपात घटता जा रहा है और अब यह १ : ३० तक पहुंचता है। इसकी तुलना १ : २२ से करनी आवश्यक है जिसके ऊपर अनुभव अनुमति नहीं देता। जो अनुपात इस समय है, उसका अर्थ यह होता है कि प्रत्येक कक्षा में संख्या का औसत ४५ तक पहुंचता है।

विज्ञान और बहुत से अन्य विषयों में ज्ञान की मात्रा बहुत तेजी से बढ़ रही है। इस कारण पाठ्यक्रम के पुनर्निर्माण, शिक्षण विधि, पाठ्य तथा संदर्भ ग्रंथों की तैयारी और योग्यता के मूल्यांकन के सुधार पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो गया है। परन्तु इस आवश्यकता के अनुकूल हो क्या रहा है? सन् १९५४ में उच्चतर माध्यमिक शिक्षालयों की योजना चालू करने के लिए पाठ्यक्रमों का संशोधन किया गया। परन्तु इससे केवल अभी तक २५ प्रतिशत विद्यालय ही प्रभावित हो पाये हैं। बाकी माध्यमिक विद्यालय बिना विशेष परिवर्तन के पुराना पाठ्यक्रम ही अपनाये हुए हैं। इसी प्रकार शिक्षा तथा परीक्षा के माध्यम में अँग्रेजी से क्षेत्रीय भाषाओं की ओर शुभ परिवर्तन हुआ है। परन्तु आवश्यक स्तर और जरूरी विभिन्नता तथा संख्या में पुस्तकों की तैयारी पर अधिक गम्भीर ध्यान देने की आवश्यकता बनी हुई है। हमारे बहु-उद्देशीय विद्यालयों में कई प्रयोगात्मक और व्यावहारिक विषय सम्मिलित किये गये हैं। उनमें कुछ को तो भारतीय भाषाओं में प्रायः कोई भी पुस्तकें प्राप्त नहीं हैं। परिवर्तन की गति इस समय तो बहुत ही धीमी है।

हमारे विद्यालयों में पढ़ाई के दिनों की संख्या वर्ष के ३६५ दिनों में १७५ से १८० तक ही पहुँच पाती है। संसार के कई देश हैं जहाँ स्कूल का वार्षिक काम २४०-२५० दिन तक होता है। यही कैफियत दैनिक काम के घंटों की है। छोटे प्राविधिक विद्यालय प्रतिवर्ष १५ सौ घंटों से अधिक काम करते हैं, जबकि इसी स्तर के सामान्य माध्यमिक शिक्षालयों में घंटों की संख्या प्रायः १२०० ही रहती है। इसीलिए इस ओर महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जा रहा है। केन्द्रीय परामर्शदात्री बोर्ड के १९६३ वाले एक प्रस्ताव से यह सिफारिश की गई है कि वर्ष में काम के दिनों की संख्या कम-से-कम २२० होनी चाहिए और पढ़ाई के घंटों की संख्या भी ११०० होनी चाहिए।

एच्छिक विषय के रूप में विज्ञान की पढ़ाई लगभग ८००० माध्यमिक विद्यालयों में हो रही है। पर पता चला है कि इनमें ६० प्रतिशत विद्यालयों में प्रयोग के यथेष्ट सामान का अभाव है। इसी प्रकार विद्यालयों से संलग्न पुस्तकालयों की भी दुर्दशा है। बहुत-से विद्यालय अपने वार्षिक आय-व्यय के अनुमान में नई पुस्तकों की खरीद के लिए या पुरानी पुस्तकों की जगह नई पुस्तकों की भर्ती के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते। देश के बहुत कम स्कूलों में प्रशिक्षित और पूरा समय देकर काम करने वाले पुस्तकालयाध्यक्ष नियुक्त हैं। नक्शों, चित्रों, पोस्टरों और भूगोल तथा विज्ञान सम्बन्धी आवश्यक प्रदर्शन के सामान की भी इन विद्यालयों में बहुत कमी है। देखा गया है कि लगभग १० प्रतिशत माध्यमिक विद्यालयों में ही अपने फिलम प्रोजेक्टर हैं। फिलम-स्ट्रिप प्रोजेक्टर अपेक्षाकृत सस्ता है, तो भी इसका उतना ही अभाव है।

भवनों के सम्बन्ध में भी हालत पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं। बहुत से पुराने विद्यालयों के भवन बिना यथेष्ट मरम्मत के काम में आ रहे हैं। ऐसे ही अधिकांश विद्यालयों में भर्ती कई गुनी बढ़ गई है, परन्तु आवश्यकतानुसार न भवन बनाया गया है और न ही बैठने का सामान। बहुत-से नये विद्यालय यथेष्ट वास्तविक सुविधाओं की व्यवस्था बिना ही खुल गये हैं। भारत की राजधानी में ही बहुत से विद्यालय खेमों में लगते हैं।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के समय से हमने शैक्षिक सुविधाओं को देश के सभी कोनों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है और विशेष रूप से देश के ग्रामीण, उपेक्षित और पिछड़े हुए भागों तक। यों हमारे विद्यालयों में विभिन्न सामाजिक और आर्थिक भूमिकाओं के बच्चों की भर्ती हो गई है; तो भी शिक्षा की भारतीय प्रणाली बच्चों के इन विभिन्न दलों की रुचि और

योग्यता के अनुकूल पाठ्यक्रमों में समुचित वैचित्र्य की व्यवस्था नहीं कर पाई है। बच्चों को यथेष्ट मात्रा में विषयों के चुनाव, प्रशिक्षण की सुविधाओं और धंधे के साधनों के विषय में परामर्श भी नहीं मिलता। निःशुल्क शिक्षा और छात्र वृत्तियों की व्यवस्था भी आवश्यकताओं को देखते बहुत कम है।

कारुणिक बर्बादी :—इन सब कमियों और अभावों का क्या परिणाम हुआ है? परिणाम है शैक्षिक स्तर की प्रत्येक श्रेणी में गिरावट और प्रयत्न की बर्बादी। उदाहरणार्थ परीक्षाओं में विद्यार्थियों के परीक्षाफल देखिये, जिससे हमें स्थिति का प्रत्यक्ष मापदंड मिलता है। अखिल भारतीय आँकड़ों पर आधारित परीक्षाफलों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर पर परीक्षा देने वाले प्रत्याशियों में ५० प्रतिशत फेल हो जाते हैं। यह संख्या एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवर्तित होती रहती है। एक-दो राज्यों में तो स्कूल की अंतिम परीक्षा में ६५ से ७० प्रतिशत तक प्रत्याशी फेल हुए हैं। इससे अपने विद्यालयों में मानवशक्ति और व्यय की कारुणिक बर्बादी के लक्षण हमें मिलते हैं। हमें इस समस्या का विश्लेषण करना है; अपना दायित्व समझकर शिक्षा में इस भारी बर्बादी से बचने के उपाय निश्चित करने हैं।

स्तरोन्नति की प्राथमिकता :—भारत में शिक्षा के भावी विकास पर जो कुछ चिंतन हुआ है उसके परिणामस्वरूप इस बात पर जोर दिया गया है कि चौथी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के गुण और स्तर में उन्नति की ओर प्राथमिकता आवश्यक है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए क्या करना है, इस पर योजना तथा नीति के निर्माता गम्भीर विचार तथा अध्ययन कर रहे हैं। अतएव सम्मेलन में एकत्रित शिक्षकों और अन्य शिक्षाविदों के विचार अगली योजना के निश्चयों में बहुत सहायक हो सकते हैं।

सुधार की ओर :—शिक्षण में शिक्षक का क्षेत्र इतना जीवंत तथा महत्वपूर्ण है और उसकी योग्यता तथा चरित्र पर शिक्षा इतनी निर्भर है कि शासन का प्रमुख प्रयत्न विद्यालय को योग्यतम शिक्षक देने की व्यवस्था करते हुए शिक्षक को यथेष्ट वेतन द्वारा, तथा श्रम की समुचित सुविधायें प्रदान करके, उन्हें अपने काम पर लगाये रखना हो जाता है। वेतनक्रम की वृद्धि के सम्बन्ध में कोई मतभेद अब नहीं है यदि इसका उद्देश्य शिक्षण-सेवा के लिए योग्य व्यक्तियों को आकृष्ट करना हो। जो शिक्षक काम में संलग्न हैं उनके सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया है कि उनकी वेतन-वृद्धि उनकी योग्यता, प्रशिक्षण और अनुभव से की जाय। आगे की शिक्षा और अतिरिक्त

प्रशिक्षण के लिए बहुत से साधन प्रस्तुत हैं और संक्षिप्त पाठ्यक्रमों के रूप में लिखा-पढ़ी द्वारा ग्रीष्मावकाश में चालू संस्थाओं के माध्यम से और रिफ्रेशर प्रशिक्षण द्वारा अन्य सुविधाओं के प्रस्तुत करने का प्रस्ताव भी है। अफ्रीका के एक उन्नतिशील देश में जाने पर मैंने देखा कि वहाँ प्रत्येक शिक्षक के लिए ग्रीष्मावकाश की पढ़ाई में हाजिरी देना अनिवार्य कर दिया गया है। भारत में भी प्रत्येक माध्यमिक शिक्षक को आगे की पढ़ाई या प्रशिक्षण के लिए ४-५ साल बाद प्रत्येक कोर्स में अवश्य सम्मिलित होना चाहिए। **इस क्षेत्र में शिक्षक संघ महत्वपूर्ण सेवा कर सकते हैं। अपनी सेवा के विकास में उन्हें सरकार पर ही नहीं निर्भर रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य तथा ब्रिटेन के शिक्षक संघ हमारे जीवित आदर्श होने चाहिये।**

सरकार की ओर से निवेदन है कि शिक्षक-प्रशिक्षण—सेवा के पहले तथा सेवा-काल में भी—की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस बात पर जोर दिया जाता है कि आवश्यकतानुकूल प्रशिक्षित शिक्षकों की निकासी हो जिससे कोई भी अप्रशिक्षित व्यक्ति शिक्षण-सेवा के लिए भर्ती न हो। सेवा में लगे अप्रशिक्षित शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए लिखा-पढ़ी द्वारा प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षालयों के शिक्षकों की प्रशिक्षण-व्यवस्था प्रस्तावित है। हाल ही में एसोसिएशन आफ प्रिंसिपल्स आफ ट्रेनिंग कालेज और नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन रिसर्च और ट्रेनिंग के संयुक्त सम्मेलन के द्वारा शिक्षकों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में कई सिफारशें की गई हैं। इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों का सेवाक्षेत्र व्यापक हो, जिससे एक ही प्रांगण में प्रारम्भिक तथा माध्यमिक विद्यालयों के साथ विशेष विषयों के शिक्षकों का प्रणिक्षण भी हो। इन महाविद्यालयों में भर्ती की संख्या ३०० से ४०० तक हो। इससे प्रशिक्षण-स्तर की रक्षा करते हुए महाविद्यालय पर व्यय में किफायत हो सकेगी, विभिन्न स्तरों के शिक्षकों के मध्य भाई-चारे का वातावरण बनेगा और विषय-विशेष के शिक्षक भी प्रचुर मात्रा में मिल सकेंगे।

विज्ञान, गणित और अँग्रेजी के शिक्षकों के प्रशिक्षण की ओर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है। चुने हुए विश्वविद्यालयों के विज्ञान विभागों की सहायता से एकवर्षीय संक्षिप्त शिक्षण व्यवस्था ऐसे विज्ञान और गणित के शिक्षकों के लिए की जा रही है जिससे वे हाईस्कूल के ऊपर इण्टरमीजियट कक्षा तक के विद्यार्थियों को पढ़ा सकें। कई जगह ऐसी शिक्षण व्यवस्था हो चुकी है और आवश्यकतानुकूल संख्या बढ़ाई भी जायगी। हैदराबाद के सेंट्रल इंस्टीच्यूट आफ इंगलिश, बंगलोर के रिजनल और स्टेट इंस्टीच्यूट आफ

इंगलिश के अतिरिक्त अन्य अन्य स्थानों पर भी अंग्रेजी के शिक्षकों के अतिरिक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है।

हाल ही में खुले अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर और मैसूर के चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अब माध्यमिक शिक्षालयों में चालू किये गये व्यावसायिक विषयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो गई है। चौथी पंचवर्षीय योजना में इन महाविद्यालयों की सेवा का विकास भी होगा। इसके अतिरिक्त कृषि और विज्ञान के शिक्षकों के अधिक संख्या में प्रशिक्षण कीं व्यवस्था भी होनी है; क्योंकि अगली पंचवर्षीय योजना-काल के भीतर माध्यमिक शिक्षालयों में इन विषयों पर अधिक जोर दिया जाने वाला है। इसी प्रकार प्रशिक्षण विद्यालयों में वैतनिक शिक्षकों के अतिरिक्त प्रशिक्षण की सुविधायें भी बढ़ाई जाने को हैं।

केन्द्रीय शासन ने आदर्श पाठ्य पुस्तकों, संक्षिप्त संस्करणों और सहायक पुस्तकों की तैयारी का काम उन सब कक्षाओं के लिये हाथ में लिया है जो प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षालयों के अन्तर्गत हैं। ये पुस्तकें उन लेखकों के पारस्परिक सहयोग से तैयार हो रही हैं जो अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञ हैं। तैयार होने पर ये पुस्तकें राज्यों को दे दी जाएंगी, इसलिये कि वे इन्हें थोड़े-बहुत संशोधन के बाद अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में अनूदित करा के चालू कर दें। लेखकों को पुरस्कार दे कर या प्रकाशकों से निश्चित संख्या में प्रतियां खरीद कर बालकों तथा वयस्कों के लिये सहायक पुस्तकों का निर्माण भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। तो भी अनुवाद द्वारा, और मौलिक रूप में भी, विद्यार्थियों तया नवशिक्षित वयस्कों के लिये बढ़ती हुई संख्या में पुस्तकों का निर्माण आवश्यक हो गया है। इनमें वे पुस्तकें भी होनी चाहिये जो शिक्षकों के लिये संदर्भ-ग्रंथों के काम दे सकें।

सभी विषयों में पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार जरूरी हो गया है, क्योंकि ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। परन्तु इस ओर जमाने की रफ्तार देखते विज्ञान और गणित पर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक हो गया है। सामान्य विज्ञान तो स्कूल की सभी कक्षाओं में पढ़ाई का अनिवार्य विषय होना चाहिये जिससे पूरे राष्ट्र में विज्ञान की जानकारी हो जाय। इसके अतिरिक्त ऊँची कक्षाओं में उन विद्यार्थियों के लिये विज्ञान एक पर्याय विषय भी हो जिन्हें उस ओर विशेष रुचि हो।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में विषय-वैचित्र्य बढ़ाने की आवश्यकता भी उतनी ही महत्वपूर्ण और तत्कालिक है। स्वतन्त्र होने पर हमें विरासत में

वही प्रणाली मिली जिसके द्वारा हमारे विद्यार्थी महाविद्यालयों और विश्वविद्यालगों में भर्ती हो सकें। यह प्रणाली उस समय के अनुकूल थी जब शिक्षा वर्ग-विशेष तक सीमित थी और व्यावसायिक अथवा अन्य क्षेत्रों के विकास के लिये विभिन्न योग्यतायें प्राप्त मानव-शक्ति की जरूरत न थी। देश के स्वतन्त्र होने पर स्थिति बिल्कुल बदल गई है, जिस कारण नीचे से ऊपर तक और प्रत्येक कक्षा में भी विषय-वैचित्र्य की व्यवस्था आवश्यक हो गई है।

इस ओर बहुउद्देशीय विद्यालयों तथा छोटे स्तर के व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना कर के प्रथम पग उठाये गये हैं। इन विद्यालयों में माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की भर्ती का अभी तक १० प्रतिशत ही हो पाया हैं। ऐसे देश भी हैं जहाँ माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का ४० प्रतिशत व्यावसायिक शिक्षालयों में भर्ती है। अतएव यहां भी ऐसे शिक्षालयों का विकास होना चाहिये जिससे इनमें अधिक भर्ती हो सके। कृषि देश का प्रमुख व्यवसाय है। अतः इस ओर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इन सब व्यावसायिक प्रशिक्षणों का उद्देश्य यह हो कि उनके स्नातक पूर्णतया प्रशिक्षित हो कर धन्धे से लग जायं। साथ ही ऐसी व्यवस्था भी रहे कि जो होनहार आगे बढ़कर सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो उनकी अनुकूल विषयों में पढ़ाई भी हो जाय।

हमारे विद्यालयों के पुस्तकालयों की बुरी हालत है। विद्यालयों से संलग्न पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या और उनकी सेवा दोनों का विकास होना चाहिये। इनकी सहायता से ही सभी विषयों की उन्नति हो सकती है। विद्यार्थियों की रुचि के अनुकूल हन पुस्तकालयों में विभिन्न विषयों पर साहित्य तो होना ही चाहिये; इससे अधिक आवश्यक है कि प्रत्येक पुस्तकालय को एक प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष की सेवा प्राप्त हो जो अपना पूरा समय उसे दें सके। वही पुस्तकों का समुचित चयन कर सकता है, पुस्तकालय द्वारा सेवा की व्यवस्था कर सकता है और विद्यथियों तथा शिक्षकों को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है। इसलिये यह व्यवस्था की गई है कि विद्यालय का पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय विज्ञान का प्रशिक्षित ग्रेजुएट हो और उसे उसी स्तर का वेतनक्रम मिले, साथ ही अतिरिक्त भत्ता भी। यह प्रस्तावित है कि जहाँ विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो, वहाँ पुस्तकालयाध्यक्ष सेवा को अपना पूरा समय दे। छोटे विद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय के अलावा अन्य सेवा भी कर सके, परन्तु उसकी योग्यता में कमी न हो। इसलिये पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी गई है।

बालक की शिक्षा सर्वांगीण होकर ही पूर्ण होती है। ऐसा न होने पर उसका संतुलित विकास नहीं हो पाता। अतः हमारे विद्यालयों में हस्तकला, खेल और अन्य पाठ्येतर कार्य-क्रमों की व्यवस्था होनी चाहिये। इन सभी को विद्यालय के सेवा-क्रम के अन्तर्गत होना चाहिये।

शिक्षा के गुण तथा स्तर की उन्नति का उद्देश्य निरीक्षण और प्रशासन के पुष्ट होने पर ही सफल हो सकता है। अतएव शिक्षा के विकास के साथ ही निरीक्षक-वर्ग की पुष्टि की दो ओर आवश्यकता है। प्रत्येक जिले में सामान्य निरीक्षकों के अतिरिक्त विषय-विशेष के निरीक्षक भी होने चाहिये। इसके अतिरिक्त निरीक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था आवश्यक है जिससे समय-समय पर ये अपने ज्ञान और निरीक्षण का ढंग ताजा कर सकें।

आदर्श विद्यालय : सभी विद्यालयों के सेवाक्रम के सर्वोच्च स्तर तक पहुँचने की आवश्यकता है, परन्तु वित्त और मानव शक्ति के प्राप्य साधनों के भीतर इस स्तर तक पहुंचना सम्भव नहीं। अतः समझदारी का तकाजा है कि सभी विद्यालयों का स्तर एक सीमा तक उन्नत किया जाय और थोड़े-से चुने हुए विद्यालयों को आदर्श बनाने का प्रयत्न किया जाय। इन्हें राज्य के सर्वोत्कृष्ट प्राचार्य और आचार्य मिलें, इनमें शिक्षक-शिष्य अनुपात अपेक्षाकृत कम हो और सामान, वैज्ञानिक प्रयोगशाला और पुस्तकालय की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था हो। निरीक्षक इन विद्यालयों की ओर विशेष ध्यान दें। इनके सभी विद्यार्थी छात्रावासी हों; क्योंकि ये राज्य के विभिन्न भागों से आयेंगे। इनमें छात्रवृत्तियों और निःशुल्क शिक्षा की यथेष्ट व्यवस्था हो जिससे वित्तीय कठिनाइयों के कारण योग्य विद्यार्थियों की पढ़ाई में बाधा न पड़े। ये हमारे देश के सर्वोत्तम विद्यालय हों और इनमें शुल्क का स्तर साधारण हो, जिससे साधारण आय के लोग भी अपने बच्चों को उनमें भर्ती करा सकें। ऐसे विद्यालयों का देश भर में संतुलित वितरण हो।

प्राप्य साधनों के सदुपयोग की माँग : एक दूसरे के बाद तीन पंच-वर्षीय योजनाओं की तैयारी और कार्यान्वियन से प्राप्त अनुभवों पर भी हमें अन्ततः ज़ोर देना है। योजनायें शुरू करने पर हम अनुभवहीन थे, परन्तु हमें अब योजना सबन्धी बहुत से पाठ प्राप्त हो गये हैं। **इन सब में महत्वतम पाठ यह है कि शिक्षा के लिए रुपया ढूँढ़ना जितना कठिन है उतना ही कठिन है उसका सदुपयोग।** यदि हम आदर्श स्थितियों की ही मांग करते हैं तो हमें निराशा के लिये तैयार रहना चाहिये। **समझदारी की बात यह है कि प्राप्य धन, सामान, समय और अन्य सुविधाओं के सर्वोत्कृष्ट उपयोग का हम प्रयत्न करें।**

हमारे विद्यालयों को प्रतिदिन अधिक घण्टे काम करना चाहिये। हमारे काम के दिन बढ़ने चाहिये। हमारे भवनों, प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों का उपयोग बढ़ना चाहिये। हमारी शिक्षण संस्थाओं में जो हस्तकला के काम होते हैं उन्हें अधिक उत्पादक तथा बिकाऊ होना चाहिये। हमारे शिक्षक बन्धुओं को विज्ञान के साधारण यन्त्रों तया अन्य सहायक सामानों के निर्माण और मरम्मत की योग्यता होनीं चाहिये। **संक्षेप में, प्राप्त साधनों के भीतर शिक्षा पर हम जो कुछ भी व्यय करें उसका सबसे अधिक लाभ राष्ट्र को पहुंचाने का पुनीत कर्तव्य हमारे सामने है।**

* * *

स्वतन्त्रता के सर्वोच्च रूप के साथ बड़े से बड़ा अनुशासन और नम्रता जुड़ी रहती है। जो स्वतन्त्रता अनुशासन और नम्रता से आती है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। निरंकुश स्वच्छन्दता, अशिष्टता और असभ्यता की निशानी है, जो हमें भी नुकसान पहुँचाती है और हमारे पड़ोसियों को भी नुकसान पहुँचाती है। —गान्धीजी

दश आदेश

(धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ के प्राचार्य श्री बंशगोपाल झिंगरण के इन्दौर सम्मेलन की शिक्षण-प्रशिक्षण गोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण का सारांश)

हज़रत मूसा यहूदियों के पैगम्बर हैं। उनके १० आदेश जग-प्रसिद्ध हैं। तीन दशकों से अधिक शिक्षण-सेवा करने के बाद शिक्षक बन्धुओं को उतने ही आदेश देने का अधिकारी मैंने अपने को मान लिया है।

१—प्रकाश के प्रवेश के लिए अपने-हृदय कपाट खोलिए :

हमारे देश में तीन श्रेणी के प्रशिक्षण विद्यालय हैं। इनसे प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक अलग-अलग स्तर के विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। विद्यार्थियों की अवस्थाएँ और उनकी आवश्यकताएँ एक स्तर पर दूसरे स्तर से भिन्न हैं। पर तीनों श्रेणियों में पाठ्य-क्रम प्राय: एक से हैं। यह क्यों ? भेद होना चाहिये, तभी शिक्षकों के लिये वे उपयोगी होंगे और इन्हें वे हृदयंगम कर सकेंगे। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों में शैक्षिक नीति के निर्माताओं का ध्यान इस ओर जाना आवश्यक है। शिक्षकों के लिये तो प्रकाश के लिये अपने हृदय-कपाट खुले रखना अत्यंत ही आवश्यक है।

२—पढ़ाइये, भली-भांति पढ़ाइये और पढ़ाई का अभ्यास कीजिए :

पढ़ाई के ढंग ने एक मार्ग पकड़ लिया है। अधिकांश शिक्षक आगे-पीछे उसी मार्ग पर चलते हैं। तो यह मार्ग इतना गहरा हो गया है कि नवीन प्रकाश प्राप्त शिक्षक के लिये नये मार्ग पर चलना, प्रशासन की कुर्सी पर बैठे पुराने शिक्षक असम्भव कर देते हैं। अतएव आदेश यह है कि पढ़ाई के ढंग में नये प्रयोग होने दीजिये। ये प्रयोग भली-भांति किये जायँ और प्रयोगी को अभ्यास का प्रचुर अवसर दिया जाय। यों ही शिक्षण के सिद्धांतों का विकास सम्भव होगा। ये सिद्धांत प्रयोग पर आधारित होने के कारण अधिक व्यावहारिक भी होंगे।

३—पुस्तकें लिखिये और प्रकाशित कराइये :

आजकल विद्यार्थियों की अधिकांश पाठ्य पुस्तकें विषय विशेष के प्रभावशील प्राध्यापकों द्वारा लिखी हुई हैं जिन्हें नीची श्रेणियों के विद्यार्थियों

की योग्यताओं तथा आवश्यकताओं का अनुभव नहीं। प्रशिक्षक शिक्षकों को तैयार करते हैं तो उनका कर्तव्य है कि वे अपने अनुभव और सिद्धांत के अनुकूल पाठ्य पुस्तकें भी लिखें। विश्वास मानिये प्रकाशक ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन के लिये आपको उतावले दिखेंगे।

४—प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए छात्रावास में रहिए :

जिन युवकों-युवतियों को शिक्षण सेवा के लिये अपने को तैयार करना है, उनका एक-साथ छात्रावास में रहकर अपने प्रशिक्षकों के सम्पर्क में रहना आवश्यक है। अधिकांश युवक-युवती बिवश होकर ही शिक्षण-सेवा अपनाने के लिये प्रशिक्षण विद्यालय में भर्ती होते हैं। यह अनुभव-जन्य बात है कि एक-दो वर्ष तक इस प्रकार एक-साथ रहने पर वे शिक्षण में आनन्द की अनुभूति करने लगते हैं, जो शिक्षण-सेवा जैसी कम आय की जीवनचर्या के लिये बहुत आवश्यक है।

५—धर्म निरपेक्ष और राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त होने का प्रयत्न कीजिए :

धर्म निरपेक्षता का अर्थ यह नहीं है कि आप अपने माता-पिता से प्राप्त धार्मिक कृतियों से मुक्त हो जायँ। अर्थ इतना ही है कि अपनी धार्मिक कृति का निर्वाह करते हुए अपने पड़ोसियों और साथियों के प्रति आप सहनशील रहें, उनके धर्म-सम्बन्धी विचारों का आदर करें। इतना अभ्यास होने पर आपकी राष्ट्रीय भावनायें पुष्ट होंगी। जाति और धर्म के भेदों के परे आप भारतीयता की भावना से प्रेरित होते रहेंगे। आपके सामने विद्या प्राप्त करने के लिये सभी वर्गों, जातियों और सम्प्रदायों के विद्यार्थी होंगे। उन सबके साथ आप का समान व्यवहार रहे, यह एक सफल शिक्षक के लिये बहुत आवश्यक है और यदि प्रशिक्षणकाल में आप छात्रावास में रह चुके हैं तो मान लीजिये कि इन भावनाओं का बीजारोपण आपके हृदय में हो चुका है।

६—अपने अधिकार के अनुकूल दायित्व का निर्वाह कीजिए :

शिक्षक होने पर आप अपने विद्यार्थियों के श्रद्धापात्र होते हैं। आपको अपने विद्यार्थियों का नैतिक विकास करना है। मनोवैज्ञानिकों ने सर्व-सम्मति से यह मान लिया है कि चरित्र-निर्माण अनुकरण से होता है, चरित्र पर लिखी गई पुस्तकों के पढ़ने या चरित्र विषयक व्याख्यान सुनने से नहीं। तो इस दायित्व का निर्वाह करना आपके लिये आवश्यक है। तभी आपको अपने विद्यार्थियों की हार्दिक श्रद्धा प्राप्त होगी।

७—व्यावहारिक बनने का प्रयत्न कीजिए :

शिक्षकों के विषय में प्रक कहावत प्रसिद्ध है–जो कर सकता है, वह करता है; जो कर नहीं सकता, वह पढ़ाता है। आपको अपनी जीवनचर्या से इस कहावत का असत्य सिद्ध करना है। प्रसंगवश कहने की बात है कि शिक्षकों की प्रशिक्षण-व्यवस्था ही मूल रूप में बहुत-कुछ अव्यावहारिक है। शिक्षा का इतिहास एक विषय है। इसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है। फिर शिक्षण-दर्शन का विषय आता है। परन्तु मजे की बात है कि भारत में पढ़ाई होती है भारतीय विद्यार्थियों के लिये; और पाश्चात्य दर्शन ही पढ़ाया जाता है। तीसरा विषय है मनोविज्ञान, तो आवश्यकता इस बात की है कि आप कक्षागत मनोविज्ञान पढ़ें। इसके वाद विद्यालय के प्रवन्ध का विषय है। अधिकांश शिक्षक कक्षा के प्रबन्ध तक सीमित रहते हैं। तो कक्षा का प्रबन्ध तथा विद्यार्थियों के शारीरिक व मानसिक स्वच्छता के पाठ उनके लिये अधिक व्यावहारिक हैं। फिर देश के सामने शिक्षा की समस्यायें है। इन समस्याओं पर चिंतन भी भावी शिक्षक के लिये आवश्यक है। यों प्रशिक्षण का व्यावहारिक पाठ्य-क्रम बनता है।

शिक्षक बन्धुओं से निवेदन है कि उनका प्रशिक्षण सही हो या गलत, वे अपनी पढ़ाई को तथ्यों पर आधारित बनाये रखने का सतत प्रयत्न करते रहें। तभी उनके शिष्य व्यावहारिक होकर अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

८—शिक्षण से आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए तो आपका जीवन आनन्दमय होगा :

इस आदेश का संकेत ऊपर हो चुका है, तो भी दोहराना आवश्यक है। नैतिकता पर आधारित जीवन द्वारा ही आप शिक्षण से आनन्द प्राप्त करने में सफल होंगे। आपका सम्पर्क उस अवस्था के होनहारों से रहता है जो विकासशील हैं, जिनमें स्वाभाविक रूप से उमंग की प्रचुरता है। इस उमंग का आप मार्ग-दर्शन करेंगे तो आपको कक्षा के भीतर और बाहर होनहारों के खेलों में आनन्द की नित्य नयी अनुभूति होगी।

९—नैतिक जीवन द्वारा आनन्द और संतोष निश्चित है :

आपके संरक्षण में आये होनहारों में प्रत्येक की अपनी-अपनी रुचियां और कठिनाइयां हैं। प्रत्येक का नैतिक विकास आपका काम है। तो आवश्यक है कि आप सहानुभूतिपूर्वक अपने प्रत्येक शिष्य के व्यक्तित्व में दिलचस्पी लें। इस प्रकार विद्यार्थियों का नैतिक विकास होने पर जब वयस्क

होकर वे आधुनिक जीवन का सामना करेंगे तो परिस्थितियों से विवश न रह कर वे उन पर विजय प्राप्त करने में भी सफल होंगे ।

१०—अहंमन्यता से मुक्त होने का प्रयत्न कीजिए :

यह अन्तिम आदेश है । रामकृष्ण परमहंस से एक बार उनके किसी शिष्य ने पूछा–"मैं स्वतन्त्र कब होऊँगा ?" तो उसे तुरन्त उत्तर मिला–"जब तुम अपने अहं से स्वतन्त्र हो जाओगे ।" तो शिक्षक बन्धुओं से निवेदन है कि आप अपनी बाल-सेवा में संलग्न रह कर अहं को विस्मृत करने का प्रयत्न कीजिये । तब आपको कम आय में बढ़ती मंहगाई नहीं खलेगी और कोई समय आयेगा जब आप या आप के उत्तराधिकारियों के अहं भी संतोष का अनुभव करेंगे ।

◆

लोकतन्त्र और हिंसा कभी एक साथ चल ही नहीं सकते । जो राज्य आज केवल नाम के लिये ही लोकतांत्रिक हैं, उन्हें या तो प्रकट रूप से सर्वसत्ताधारी बन जाना चाहिये, अथवा यदि वे सच्चे अर्थ में लोकतान्त्रिक बनना चाहें, तो उनको हिम्मत के साथ अहिंसक बन जाना चाहिये । यह कहना बिलकुल गलत है कि केवल व्यक्ति ही अहिंसा का आचरण कर सकते हैं, राष्ट्र कभी नहीं,—जो व्यक्तियों के ही बने होते हैं । —गान्धी जी

विद्यालयों और महाविद्यालयों के पुस्तकालय

(कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री प्रमिलचंद्र वसु के इंदौर शिक्षण सम्मेलन की पुस्तकालय गोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण का सारांश)

शिक्षा के लिये पुस्तकालय का जीवन्त और अनोखा महत्व है। यदि पुस्तकालय और उसके द्वारा आवश्यक सेवा की समुचित व्यवस्था नहीं होती तो माध्यमिक शिक्षा प्रणाली ही अभिशप्त होती है। यदि पुस्तकालय को माध्ममिक शिक्षालय का प्रमुख अङ्ग बनना है तो उसकी सेवा सम्बन्धी बातों की विवेचना आवश्यक है।

विद्यालय के उद्देश्यों की पूर्ति पुस्तकालय द्वारा सेवा से होती है। जितना ही शिक्षक और विद्यार्थी पुस्तकालय से प्राप्त पुस्तकों के सदुपयोग का ढंग सीखते हैं, उतनी ही पुस्तकालय की सेवा प्रभावपूर्ण होती है। विशेषज्ञों का मत है कि पुस्तकालय के व्यवस्थित सदुपयोग से लड़कों-लड़कियों को पुस्तकों और पुस्तकालय से सम्बद्ध साधनों की वांछित सेवा पाठ्यक्रम के अध्ययन और परीक्षा में सफलता के लिये तो मिलती ही है, इसके सदुपयोग से होनहारों के व्यक्तित्व का विकास भी होता है। उनका पुस्तक-प्रेम बढ़ता है। वे पुस्तकों से ज्ञानार्जन करना सीखते हैं और उनकी आलोचक दृष्टि का विकास भी होता है। उनके मनोरंजन परिष्कृत होते हैं और वे नई-नई परिस्थितियों में अपने को ढालने में समर्थ होते हैं। विद्यालय से निकलने के बाद वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित और प्रशिक्षित हो चुकते हैं।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये पुस्तकालय का समुचित कक्ष में होना आवश्यक है। इस कमरे की स्थिति केन्द्रीय हो, जिससे सभी शिक्षक और विद्यार्थी उसमें सरलता से पहुँच सकें। उसमें प्रकाश और वायु की अच्छी गति हो। कमरा इतना बड़ा भी हो कि उसमें कई हजार तक पुस्तकें आ सकें और उन तक सरलतापूर्वक पाठक पहुंच सकें। अलमारी, बेंचें और मेजें जैसे सामान की व्यवस्था इस प्रकार हो कि पाठक कमरे में बैठ कर शान्तिपूर्वक अध्ययन कर सकें। पुस्तकालय में पुस्तकों के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओं और प्रोजेक्टर तथा साउंड रिकार्डर जैसे आधुनिक सामानों की

व्यवस्था भी उपादेय है। पुस्तकालय की सेवा का समय ऐसा हो कि पढ़ाई के पहले तथा पश्चात् और छुट्टियों में भी विद्यार्थी तथा शिक्षक उसका उपयोग कर सकें। चोरी से रक्षा के लिये पुस्तकें अलमारी में बन्द रखी जाती हैं। यह अनुचित है। विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को पुस्तकों का आदर करना सीखना है। यदि वे इस आदर-दान के आदी हो जाते हैं, तो यह भी आवश्यक हो जाता है कि पुस्तकों तक उनकी सरल पहुंच हो, वे ताले में बन्द न रहें।

जब पुस्तकालय को इतनी लम्बी, कठिन और कुशल सेवा करनी है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसे कुशल तथा प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष मिले और उसका वेतन-क्रम ऊँचे स्तर के शिक्षक से अधिक न हो तो समकक्ष अवश्य हो।

अच्छे पुस्तकालय और कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष की व्यवस्था ही से शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। विद्यालय के टाइम-टेबिल में भी वह व्यवस्था रहे जिससे पुस्तकालय तक विद्यार्थियों का पहुँचना अनिवार्य हो। इसी प्रकार शिक्षक भी अपनी शिक्षण पद्धति में वह व्यवस्था करे जिससे पाठ की तैयारी के लिये विद्यार्थी का पुस्तकालय से आवश्यक पुस्तक निकाल कर पढ़ना आवश्यक हो जाय। उन्नतिशील विदेशों में विषयों के अध्ययन के लिये पाठ्य-पुस्तक ही का सहारा नहीं लिया जाता, शिक्षक पाठ्य-पुस्तक के बाहर पुस्तकों और उनके विशिष्ट अध्यायों के संकेत विद्यार्थियों को देते हैं। यही यहाँ भी होना चाहिये।

शिक्षकों के प्रशिक्षण में भी यह आवश्यक है कि उन्हें विद्यालय से संलग्न पुस्तकालय के सदुपयोग के ढंग बताये जायं। पुस्तकालयों द्वारा समुचित सेवा के लिये यथेष्ट व्यय आवश्यक होगा। यदि व्यय में किफायत की जाती है तो माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य अधूरा रह जाता है।

महाविद्यालयों से संलग्न पुस्तकालयों का महत्व तो और भी अधिक है और सभी सरकारी आदेशों में इनके महत्व पर जोर दिया गया है; तो भी महाविद्यालयों से सम्बद्ध पुस्तकालयों की दशा में यथेष्ट सुधार नहीं हुआ है। अधिकांश महाविद्यालयों में यह अभी तक एक प्रकार का शृङ्गार मात्र है।

महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में संदर्भ ग्रंथ बहुत आवश्यक हैं। परन्तु इनकी समुचित व्यवस्था नहीं के बराबर हैं। यदि देश के सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त युवकों को आधुनिक युग के संघर्ष का सामना करने के लिये तैयार होना है तो उन्हें अपने शिक्षा काल में संदर्भ-ग्रंथों का उपयोग करना सीखना है। महाविद्यालय के पुस्तकालय की नितान्त उपेक्षित दशा पर तत्कालिक

ध्यान देना आवश्यक है। यहां भी ऐसे कुशल और प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्क्ष की आवश्यकता है जो प्रशासन की योग्यता रखता हो और जिसका व्यक्तित्व भी आकर्षक हो। प्रत्यक्ष है कि ऐसा पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकालय को मिलना तभी सम्भव है जब उसका वेतन क्रम प्राध्यापक के वेतन-क्रम से अधिक न हो तो समकक्ष हो ही। तभी उसे सहयोगियों से समुचित आदर भी प्राप्त होगा जो पुस्तकालय द्वारा सेवा के लिये बहुत आवश्यक है।

इसीलिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने बलपूर्वक प्रतिवेदन किया है कि महाविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष का वेतन-क्रम कालेज के प्रोफेसर के वेतन-क्रम के समकक्ष हो। खेद की बात है कि अधिकांश महाविद्यालयों में यह प्रतिवेदन कार्यान्वित नहीं हुआ है। इस खेदजनक स्थिति के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं उनके उत्तर मुझे यहाँ नहीं देने। इतना ही निवेदन करना है कि पुस्तकालयाध्यक्ष की मान-रक्षा अथवा उसकी हित-साधना के नाते नहीं, सर्वोच्च शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही पुस्तकालयाध्यक्ष के वेतन-क्रम के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रतिवेदन की वास्तविक मान्यता नितान्त आवश्यक है।

यदि स्वतन्त्र भारत की जनता के पुनरुद्धार के लिये उसका शिक्षण आवश्यक है, तो ग्राम से सर्वोच्च शिक्षालयों तक पुस्तकालयों और उनके द्वारा समुचित जन-सेवा के लिये कुशल और कर्तव्यशील पुस्तकालयाध्यक्षों की उतनी ही आवश्यकता है।

* * *

> विदेशी भाषा के माध्यम से स्वाध्याय की सच्ची सिंचाई नहीं हो सकती। विचार बड़ी देर से मस्तिष्क तक पहुँच पाते हैं; और ज्ञान का रस वहाँ तक पहुँचने के पहले ही भाषा के समझने और उसके व्याकरण की रटाई में ही सूख जाता है। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मुल्क की हिफ़ाज़त और मुदर्रिस भाई-बहिनों के फ़र्ज़

(खड़कवासला नेशनल डिफेंस एकेडेमी के भूतपूर्व कमांडेंट मेजर-जनरल इनायत हबीबुल्ला)

जनता के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने मुल्क की हिफ़ाज़त के मुतल्लिक़ अपने फ़र्ज़ों को समझे। इतिहास बताता है कि पहले कभी भी हमने एक देश के रूप में दुश्मनों का सामना नहीं किया; हालाँकि वक्त-वक्त पर हम छोटे-छोटे नेता या कुनबे की हिफ़ाज़त के लिए लड़ते रहे हैं।

इन दोनों बातों में यानी पूरे देश की रक्षा के लिए लड़ना या किसी खास कुनबे या राज्य के लिए लड़ने में एक खास फ़र्क़ है।

देश के लिए लड़ने के वक्त हम सबको एक होकर उठना पड़ता है, हर नागरिक को एक तरह सोचना पड़ता है और ऐसे मौके पर यह ज़रूरी हो जाता है कि हम सब अपने को ऐसे साँचे में ढालें जिससे हमारे चरित्र के सारे गुण एक साथ सामने आयें।

यह सही है कि आज के ज़माने में जब कि लड़ाई के हथियार एक-से-एक पेचीदे हो गये हैं, हम सब लड़ाई में हिस्सा नहीं ले सकते। आज की लड़ाई सिर्फ़ लड़ाई के मैदानों में ही नहीं लड़ी जाती। मसलन् अगर गाँवों की पूरी आबादी फ़ौज में भर्ती हो भी जाय तो बहुत सारे काम जैसे खेतीबारी के सिलसिले रुक जायँगे, जिन्हें किसी भी क़ीमत पर रुकना नहीं चाहिए। ऐसी हालत में गाँवों की आबादी के लिए बेहतर यही होगा कि वे अपने-अपने काम अपनी जगह पर हिम्मत और लगन से करें।

यहीं पर मुल्क के मुर्दारिस भाई-बहिनों और दूसरे पढ़े-लिखे लोगों की मदद ख़ास तौर पर काम आती है।

सबसे पहले उन्हें आम जनता के सामने यह साफ़ कर देना है कि दुश्मन चाहे जितनी ही आगे बढ़ आये, हिम्मत हारने और घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है। यही नहीं, उनकी कोशिश हमेशा यह होनी चाहिए कि दुश्मन का आगे बढ़ना मुश्किल हो जाय।

इस ख्याल से हमें शिक्षक भाई-बहनों के नेतृत्व में एक ऐसा जत्था बनाना पड़ेगा जो कि एक ओर तो दुश्मनों को ज़्यादा से ज़्यादा परेशान करने के लिए फ़ौज में लड़ने वाले जवानों का हाथ बँटाये ओर दूसरी ओर आम जनता से मिलकर उनको घबराने या पीछे हटने से रोकें।

कम पढ़े-लिखे लोगों को समझाते वक्त उन्हें यह आगाह करना ज़रूरी है कि वह अपने परिवार, कुनबे और गाँव का ख्याल रखते हुए अपने हिस्से के काम पूरी तौर से करें। परिवार, गाँव या कुनबे के लिए किए हुए इस काम का असर उस ख़ास परिवार, गाँव या कुनबे से बढ़कर सारे मुल्क पर पड़ेगा और लड़ी जाने वाली लड़ाई में इसका बड़ा हाथ होगा।

शिक्षक बंधुओं के हिस्से का दूसरा काम है अपने शागिर्दों और अपने आस-पास के लोगों को यह समझा देना कि जहाँ अमन चैन के ज़माने में मिलकर काम करने का मक़सद होता है ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाना, वहाँ लड़ाई के मौके पर यही मिल्लत फ़ायदे के अलावा मुल्क की हिफ़ाज़त के लिए बिलकुल ज़रूरी हो जाती है। इसलिए शिक्षकों और उनके शिष्यों के लिए यह ज़रूरी है कि वे मिलजुल कर रहने और काम करने का असल मतलब समझें और उस पर अमल करना अपना फ़र्ज़ मानें।

एक ज़बर्दस्त लड़ाई उनको उस अलगाव के भाव के खिलाफ़ लड़नी है जिसकी वजह से हम आपस में एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा समझते हैं।

हममें से ज़्यादातर लोग किसान हैं। जो थोड़े-बहुत शहरों में रहते हैं उनके भी सोचने का तरीक़ा वैसा नहीं हैं जैसा कि मशीनी तरक्क़ी वाले और देश के लोगों का होता है।

इन बातों का ख्याल रखते हुए हमें यह ग़ौर करना पड़ेगा कि मुल्क की हिफ़ाज़त में सबसे अच्छी तरह ये लोग कैसे हाथ बटा सकते हैं।

यह ज़ाहिर है कि कि सबसे पहले हमें ज़माने के साथ तरक्क़ी करनी पड़ेगी। इस वजह से वक्त पड़ने पर अपनी तरक्क़ी पर अड़चन डालने वाले दुश्मनों से हमें लड़ना भी पड़ सकता है। लिहाज़ा अपने देश की हिफ़ाज़त के मामले में हमें काफ़ी सोच समझ कर क़दम उठाना पड़ेगा।

इस सिलसिले में हमें अपनी आदम ताकत का इतना फ़ायदा उठाना है कि न तो किसी तरफ़ अपनी आगे बढ़ने की ताक़त बरबाद हो और न ही हम अपने पर इतना ज़ोर डालें कि हम टूट जायँ।

दीगर हल्क़ों में भी मुदर्रिस भाइयों की मदद ज़रूरी रहेगी। लड़ाई के ज़माने में हर चीज़ अपने सधे तौर-तरीक़ों से हट चुकी होगी, तो उनका फ़र्ज़ होगा कि आम जनता को यह फ़र्क़ समझायें। मिसाल के तौर पर जब खाने की मामूली चीज़ें नहीं मिलेंगी तो यह बता देना बड़े फ़ायदे का होगा कि ऐसी बहुत सी चीज़ें हैं जिन्हें हम खाते नहीं पर मौका पड़ने पर खा सकते हैं। इसी तरह तन्दुरुस्ती पर सफ़ाई का असर और आम दवा न हासिल होने पर देशी जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल भी बता देना ज़रूरी है।

आख़िरी बात यह है कि शिक्षकों के लिए लड़ाई के कुछ दाँव-पेंच और हथियारबाज़ी का इल्म रखना भी ज़रूरी है जिससे वे अपने शार्गिदों को भी इन मामलों में पक्का बना सकें। इन हालतों में उनके लिए, छोटे-मोटे हथियारों की फैक्टरी चलाना, बढ़ते हुए दुश्मनों के रास्ते में तोड़-फोड़ करना और उसकी चालों की खबर रखना मुमकिन होगा।

जो कुछ मैंने अब तक कहा है वह कोई ऐसी मुश्किल बात नहीं है कि कोई शिक्षक भाई अपने बूते के बाहर समझें। बेशक इस काम के लिए शुरू में थोड़ी तालीम की ज़रूरत पड़ेगी। लेकिन ख़ास बात तो यह है कि हर किसी भी मसले को समझने और उसको मौके पर हल करने की ओर अपनी ताक़त बढ़ाने की लगातार कोशिश करें।

हर शिक्षक को अपने आस-पास के लोगों में जोश भरने के लिए तैयार होना है।

जो लोग यह समझते हैं कि यह काम स्कूल मास्टरों के बस का नहीं है उनके सामने मैं एक नार्थ वियतनाम (North Vietnam) के कमांडर-इन-चीफ़ की एक उम्दा मिसाल रक्खूंगा। लड़ाई के पहले जनरल गियाप एक मामूली स्कूल मास्टर थे और फ़ौज या फ़ौजी मामलों से उनका कभी भी किसी क़िस्म का ताल्लुक़ नहीं था। लेकिन जब लड़ाई के वक्त उन्हें प्रतिरोध अभियान (Resistance Movement) का नेता चुना गया, उस समय उनके ही कौशल, हौसले और बहादुरी से डियान बियान पूह (Dien Bien Pooh) की लड़ाई में फ्रांस की बहुत बड़ी हार हुई।

नेहरू-नीति

संयुक्त राज्य के विकास-युग में उस राष्ट्र के नेता जिस नीति की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के लिए प्रयत्नशील रहे, वह नीति-विधाता मुनरो के नाम से प्रसिद्ध है। यह युग हिंद महासागरीय क्षेत्र के विकास का है। इस क्षेत्र की विकास-रक्षा के लिए विभिन्न संदर्भ में स्वतंत्र भारत प्रयत्नशील है। स्वर्गीय नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम और सर्वमान्य नेता थे। अतएव उनके शुभ नाम से भारतीय नीति की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता इस युग की माँग है।

जापान में खेल-कूद

[तोक्यो (जापान) विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक श्री सत्यभूषण वर्मा, एम० ए०]

तोक्यो ओलिम्पियाड—व्यवस्था और आयोजन—दोनों दृष्टियों से विश्व के ओलिम्पिक इतिहास में अभूतपूर्व रहा है। तोक्यो ओलिम्पियाड की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इस ओलिम्पियाड के लिए सही अर्थों में सारा जापान ओलिम्पिकमय हो गया था। प्रत्यक्ष दर्शी साक्षी है कि ओलिम्पियाड आरम्भ होने के महीनों पूर्व से ही देश के एक कोने से दूसरे कोने तक—क्या नगर क्या देहात—सब ओर "ओलिंपिक-मूड" आया हुआ था। इस ओलिम्पियाड के आयोजन में देश के हर आबाल-वृद्ध ने किसी-न-किसी रूप में अपना हाथ बंटाया है। ओलिंपियाड के समाप्त हो जाने के पश्चात् उसकी सफलता का सन्तोष और गर्व भी देश के सुदूर द्वीपों तक के हर जापानी के चेहरे पर अंकित देखा जा सकता था। खेलों को देश भर की शत-प्रति-शत जनता की रुचि और उत्साह का केन्द्र बना देने के इस सफल प्रयास की दृष्टि से यह ओलिम्पिक समारोह संसार का सम्भवतः सबसे सफल समारोह माना जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि इस सफलता का रहस्य क्या है ?

जापान में लगभग शत-प्रति-शत लोग शिक्षित हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्ण आर्थिक पराभव के पश्चात् भी पिछले बीस वर्षों में इस देश ने जिस संकल्प और कर्मशक्ति का परिचय दिया है, उसके कारण जापान आज समृद्धि और वैभव के शिखर पर विराजमान है। ओलिम्पिक समारोह की तैयारियों में जापान ने पानी की तरह पैसा बहाया है। ओलिम्पियाड के विभिन्न खेलों के लिए बनाया गया स्टेडियम भवन-निर्माण का आधुनिकतम तथा उत्तम नमूना कहा जा सकता है। विदेशी अतिथियों को भाषा की असुविधा न हो, इसके लिए देश भर में विदेशी भाषाएँ सीखने का जो उत्साह उमड़ा इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो इस देश में मानव-जीवन की चरम सिद्धि है—किसी विदेशी भाषा का ज्ञान। लोक-सम्पर्क का सर्वश्रेष्ठ साधन रेडियो और टेलीविज़न जापान के घर-घर में है। ओलिम्पियाड के नाम पर जन-कवियों ने ओलिम्पियाड के लोक-गीत रचे थे जो देश के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर थे।

तोक्यो ओलिम्पियाड में जन-रुचि के अपूर्व प्रदर्शन के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण बात थी ओलिम्पिक खेलों में जापानी खिलाड़ियों के खेल का स्तर। तोक्यो ओलिम्पियाड एशिया की धरती पर पहला ओलिम्पिक समारोह था। पूरे खेलों में जापान ने कुल मिलाकर २९ पदक जीते जिनमें १६ स्वर्ण पदक थे। जापान के अतिरिक्त एक ही अन्य एशियाई देश स्वर्ण पदक जीत सका। वह था भारत जिसने हाकी में अपनी खोई प्रतिष्ठा पुनः पाई है।

जापानी और विदेशी खेल :—

तोक्यो ओलिम्पियाड में जापानी खिलाड़ियों के खेल के इस उन्नत स्तर का मूलाधार है उनकी राष्ट्रीय और सामाजिक शिक्षा की पृष्ठभूमि। यही पृष्ठभूमि खेलों के प्रति देश की जन-रुचि का भी मूलाधार है। ३५ राष्ट्रीय खेल संगठन जापान अमेच्योर स्पोर्टस् संघ के सदस्य हैं। राष्ट्रीय खेलों में, पश्चिम से आये आधुनिक खेलों (हाकी, फुटबाल, वालीबाल, बास्केटबाल, टेनिस, टेबल टेनिस, बैडमिंटन, गोल्फ, स्की और स्केटिंग) के अतिरिक्त परम्परागत जापानी खेल (जूदो, सुममो—जापानी ढंग की कुश्ती,—केन्दो—तलवारबाज़ी—और क्यूदो—तीरन्दाज़ी) भी सम्मिलित हैं। युवा वर्ग में स्की और स्केटिंग बेहद लोकप्रिय है। पर्वतारोहण भी जापान के युवक-वर्ग का प्रिय शौक है। प्रतिवर्ष गर्मियों की छुट्टियों में देश के हर कोने से विश्वविद्यालयों की पर्वतारोही टोलियां देश की विभिन्न चोटियों की ओर चल देती हैं। सर्दियों के दिनों में, स्की और स्केटिंग के लिए जाने वाली युवक-युवतियों की भीड़-भाड़ को देखकर तो ऐसे लगता है मानो हर पर्वत जापान के युवा-वर्ग का तीर्थ-स्थान बन गया है।

अमेच्योर खेलों के साथ पेशेवर खेल भी जापान में काफी लोकप्रिय हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय है वेसबाल। हर अप्रैल और अक्टूबर में वेसबाल प्रतियोगिताएं होती हैं। रेडियो और टेलीविज़न पर इनका प्रसारण होता है। टेलीविज़न के व्यापक प्रसार के कारण देश भर के खेल प्रेमी अपने-अपने घरों में बैठे इन खेलों को अपनी आँखों से देखते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश भर में बेसबाल के प्रेमियों की संख्या ३ करोड़ से कम नहीं होगी। पेशेवर खेलों की यह लोकप्रियता अमेच्योर खेलों की लोकप्रियता पर कोई प्रभाव नहीं डालती।

वेसबाल के अतिरिक्त जापानियों का दूसरा लोकप्रिय खेल है सुमो। सुमो जापानी ढंग की कुश्ती कही जा सकती है और यह जापान का बहुत पुराना खेल है। भीमकाय मल्ल दंगल में प्रवेश कर एक-दूसरे को पछाड़ने का

प्रयत्न करते हैं। वर्ष में छः बार १५-१५ दिन के लिए प्रतियोगितायें होती हैं। ये प्रतियोगिताएं भी रेडियो तथा टेलीविज़न पर प्रसारित होती हैं और देश भर में देखी जाती हैं।

समाचारपत्रों और टेलीविज़न का योगदान :—

जापान में खेलों की लोकप्रियता का मापदंड यहाँ के समाचारपत्र हैं। हर समाचारपत्र में खेल-कूद के स्तम्भ और विशेष पृष्ठ तो होते ही हैं, उनके अतिरिक्त देश भर में केवल खेल-कूद सम्बन्धी १५ दैनिक समाचारपत्र हैं। खेल-कूद सम्बन्धी एक प्रमुख दैनिक समाचारपत्र की प्रतिदिन सात लाख प्रतियां वितरित होती हैं। खेलों और समाचारपत्रों का एक अन्य सम्बन्ध है अनेक प्रमुख समाचारपत्रों द्वारा राष्ट्रीय खेल-प्रतियोगिताओं का आयोजन। पत्र की बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से आरम्भ की गई इस परम्परा का इतिहास ६० वर्ष से भी अधिक पुराना है। खेलों को लोकप्रिय बनाने में जापान के समाचारपत्रों का योगदान अन्यतम कहा जा सकता है।

राज्य द्वारा नियन्त्रित जापान प्रसारण निगम (NHK) के अतिरिक्त जापान में अनेक व्यावसायिक प्रसारण कम्पनियां हैं जिनके टेलीविज़न कार्यक्रमों का देश भर में जाल बिछा हुआ है। इन व्यावसायिक टेलीविज़न कम्पनियों का व्यवसायी खेल-प्रतियोगिताओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और दोनों खेलों में परस्पर आर्थिक सहयोग और आर्थिक निर्भरता का आधार भी विद्यमान रहता है। टेलीविज़न सेटों की संख्या में जापान अमरीका के पश्चात् दूसरे स्थान पर है। परन्तु टेलीविज़न पर खेल-कूद को दिये जाने के समय के परिमाण में जापान संसार में सबसे आगे है। खेल-कूद सम्बन्धी कार्यक्रमों के अन्तर्गत खेलों का प्रत्यक्ष टेलीविज़न प्रसारण होता है और खेल-कूद सम्बन्धी समाचार दिखाये जाते हैं। टेलीविज़न पर खेलों की शिक्षा भी दी जाती है। प्रतिवर्ष गर्मियों की छुट्टियों में स्कूलों की माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये एक देश-व्यापी खेल-कूद प्रतियोगिता का आयोजन होता है। एक निश्चित दिन निश्चित समय पर एक ही कार्यक्रम के अनुसार सारे देश के प्रमुख नगरों में प्रतियोगिता आरम्भ होती है और टेलीविजन द्वारा देश के एक स्थान से दूसरे स्थान तक इन प्रतियोगिताओं का विवरण प्रसारित किया जाता है। शाम को समस्त प्रतियोगिताओं के परिणाम तोक्यो के केन्द्रीय प्रसारण कार्यालय में एकत्र कर देश-व्यापी आधार पर खिलाड़ियों का श्रेष्ठताक्रम निर्धारित किया जाता है।

शिक्षा विभाग की नीति :—

स्कूलों और कालिजों में शारीरिक शिक्षा विश्वविद्यालय स्तर तक अनिवार्य है। पाठ्य-क्रम दो भागों में बँटा है—सिद्धान्त और अभ्यास। सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वास्थ्य और शरीर-रक्षा के नियम, खेल-कूद तथा व्यायाम का महत्व और उनकी उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में पढ़ाया जाता है। शारीरिक शिक्षा के द्वारा स्वस्थ शरीर-रचना से स्वस्थ मस्तिष्क और प्रकारान्तर से, स्वस्थ समाज के सम्बन्ध की व्याख्या पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों में प्रमुख है सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास।

अभ्यास का पाठ्य-क्रम शारीरिक व्यायाम और खेल-कूद में विभाजित है। हर विद्यार्थी के लिए कम-से-कम एक खेल का इतना ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि उस खेल के नियमों को समझते हुए उसमें कुशलता के साथ भाग ले सके। दुर्बल और किसी प्रकार की शारीरिक अयोग्यता वाले विद्यार्थियों के लिए अन्य विशिष्ट प्रकार के पाठ्य-क्रम हैं जिनमें वे भाग ले सकते हैं। ऐसे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और उनके शारीरिक विकास की ओर से विशेष ध्यान दिया जाता है।

विश्वविद्यालय के विषयों में सम्मिलित खेलों में वेसबाल, फुटबाल, बास्केट बाल, वालीबाल, टेनिस, टेबल टेनिस आदि के साथ नृत्य, तैराकी, नाव खेना, स्की, स्केटिंग और पर्वतारोहण आदि भी आते हैं। तोक्यो का एक विश्वविद्यालय जापानी खेलों—जूदो, सुमो, क्यूदो, केन्दो आदि—के लिए विशेष प्रसिद्ध है। कुछ विश्वविद्यालयों में यह भी नियम है कि विद्यार्थी को शिक्षा-सत्र के प्रथम अर्द्धांश में कोई दूसरा खेल चुनना पड़ता है। चार वर्षीय पाठ्य-क्रम के प्रथम दो वर्षों में आवश्यक अंक प्राप्त कर लेने पर विद्यार्थी को इस विषय से मुक्ति मिल जाती है। परन्तु प्राप्त अंक कम होने पर उसे अपनी शारीरिक शिक्षा जारी रखनी पड़ती है।

अनिवार्य पाठ्य-क्रम के अतिरिक्त हर स्कूल और कालिज में खेल क्लब होते हैं जिनमें भाग लेना विद्यार्थी के लिए ऐच्छिक होता है। परन्तु प्रायः अधिकांश विद्यार्थी किसी-न-किसी क्लब के सदस्य होते हैं। देश के भावी खिलाड़ी प्रायः इन्हीं क्लबों से निकलते हैं। १९६२ के एक सर्वेक्षण के अनुसार इन क्लबों की सदस्य संख्या इस प्रकार थी ;—

विद्यालय	प्रति विद्यालय क्लबों के सदस्यों की संख्या	देश की कुल सदस्य संख्या	प्रतिशत
माध्यमिक विद्यालय	२०५	२२,००,०००	३५.६
उच्च विद्यालय	२५४	९,००,०००	२९.४
कालिज अथवा विश्वविद्यालय	५४७	२,००,०००	३०.५

कहना न होगा कि लड़के और लड़कियां दोनों खेलों में बराबर भाग लेते हैं। अन्त:-कालिज और अन्त:-विश्वविद्यालय प्रतियोगितायें काफी लोकप्रिय हैं। देश के अधिकांश प्रथम श्रेणी के खिलाड़ी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी वर्ग में से हैं। विद्यार्थियों की अपनी राष्ट्रीय खेल संस्थाएं हैं, जैसे जापान फेडरेशन आफ स्टूडेंट एथलेटिक्स, जापान स्टुडेंट वेसबाल एसोसिएशन, जापान स्टुडेंट जूदो फेडरेशन, जापान स्टुडेंट केन्दो फेडरेशन और जापान स्टुडेंट एविएशन लीग आदि। हरेक की अपनी वार्षिक प्रतियोगितायें होती हैं। विद्यार्थी-वर्ग का सबसे लोकप्रिय राष्ट्रीय खेल है बेसबाल जिसकी वार्षिक राष्ट्रीय प्रतियोगिता का आयोजन जापान युनिर्वासिटी बेसबाल असोसिएशन करती है।

अनुसंधान की व्यवस्था—

विश्वविद्यालयों की अनुसंधान-संस्थाओं में खेल और शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान और अध्ययन होते रहते हैं। जापान शारीरिक शिक्षा सोसाइटी के २००० सदस्य हैं जिनमें अधिकांश विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर और अनुसन्धानकर्त्ता हैं। प्रति वर्ष एक "विश्वविद्यालय स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा अध्ययन कानफ्रेंस" जिसमें शारीरिक शिक्षा के सुधार और विकास के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विनिमय होता है। शिक्षा विभाग सम्बन्धी अनुसंधान केन्द्रों के अतिरिक्त जापान अमेच्योर स्पोर्ट्स संघ का भी अपना अनुसन्धान केन्द्र है।

जापानी जन-जननी के लिए भी—

जन-सामान्य के लिए भी खेल-कूद सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव नहीं है। अक्टूबर का प्रथम शनिवार प्रतिवर्ष सारे जापान में 'स्पोर्ट डे' के रूप में मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त जापान अमेच्योर स्पोर्ट्स संघ और केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त तत्वावधान में प्रति वर्ष एक 'राष्ट्रीय खेल उत्सव' मनाया जाता है जिसमें देश भर से लगभग एक लाख लोग भाग लेते हैं। उत्सव तीन भागों में विभाजित है। जनवरी-मार्च में शीतकालीन खेल—स्की और स्केटिंग—होते हैं। सितम्बर में ग्रीष्मकालीन खेल—तैराकी, नौका दौड़

और याचिंग—होते हैं। मुख्य उत्सव शरदकाल में अक्टूबर के महीने में होता है जिसमें ग्रीष्म और शीतकालीन पाँच खेलों को छोड़कर अन्य सभी खेल होते हैं। यह उत्सव अपने आप में ओलिम्पियाड का ही एक स्थानीय रूप में माना जा सकता है।

अन्य महत्वपूर्ण खेल उत्सव है 'राष्ट्रीय युवक खेल समारोह' जो केवल नौकरी पेशा अथवा कामगर युवकों के लिए होता है। इसका एक नियम यह है कि जो युवक एकबार इस समरोह के खेलों में भाग ले चुका है, वह दूसरी बार इसमें भाग नहीं ले सकता। इसी प्रकार केवल स्त्रियों या गृहणियों के लिए आयोजित खेल-समारोह भी होते हैं। १९६२ में देश भर में स्त्रियों की खेल-संस्थाओं की संख्या २,५३८ थी जिनकी कुल सदस्य-संख्या थी १,२७,०६५।

* * *

अनुशासन-बद्ध और जाग्रत लोकतंत्र संसार की सुन्दर से सुन्दर वस्तु है। पूर्वग्रहों से जकड़ा हुआ, अज्ञान में फँसा हुआ और अन्धविश्वासों का शिकार बना हुआ लोकतंत्र अराजकता और अन्धाधुन्धी के दलदल में फँस जाएगा और खुद ही अपना नाश कर लेगा।

—गान्धीजी

76257

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण माध्यमिक अध्यापकों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का सर्वेक्षण

(डा० श्रीमती कुमुद शर्मा, दिल्ली)

उत्तर प्रदेश जैसे कृषि प्रधान राज्य में ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्वतन्त्रता के वाद के युग की देन है। ऐसे विद्यालयों की संख्या १९४५ में ३६ से बढ़ कर १९५८-५९ में ६४६ हो गई थी और उसके बाद प्रति वर्ष लगभग ४० की गति से बढ़ रही है। उनकी औसत छात्र-संख्या पूरे उत्तर प्रदेश के लिये ४०९ तक पहुंच गई है और अध्यापकों की औसत संख्या १६ तक। वयस्क मताधिकार, स्थानीय प्रयत्न और परिश्रम, नियोजित जनविकास और १९४७ के बाद बहुत बड़ी संख्या में खोले गये प्राइमरी और जूनियर हाई स्कूलों का नीचे से दबाव, इन सब कारणों से इनकी संख्याओं वेग से वृद्धि हुई है। तीसरी योजना के अन्तर्गत सर्वाधिक बल प्राइमरी शिक्षा पर देने के कारण अवश्य ही यह प्रगति और भी तीव्र होने की आशा है।

यह सर्वेक्षण उत्तर प्रदेश के पांचों मुख्य प्राकृतिक भागों के अन्तर्गत १८ जिलों में स्थित ५३ ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के ६२५ अध्यापकों के व्यक्तिगत और सामूहिक साक्षात्कारों पर आधारित है (पहाड़ी क्षेत्र ५३, बुन्देलखण्ड ७९, पश्चिमी उ० प्र० १५०, केन्द्रीय उ० प्र० १७२ और पूर्वी उ० प्र० १६६ अध्यापक)। इसमें ग्रामीण भारत के इन राष्ट्र निर्माताओं की व्यावसायिक, व्यक्तिगत, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के अध्ययन का प्रयत्न किया गया है। ये ६२५ अध्यापक उत्तर प्रदेश की समस्त माध्यमिक अध्यापक संख्या के १/१६ भाग हैं। पांचों क्षेत्र एक-दूसरे से ग्रामीण समृद्धि, यातायात की सुविधा और औद्योगीकरण में बहुत भिन्न हैं। इन भिन्न परिस्थितियों का ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों की संख्या और उनके आकार पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है और वहाँ के अध्यापकों की जीवन और कार्य शैलियों पर भी इनकी स्पष्ट छाप है।

इस अभूतपूर्व किंतु अनियन्त्रित वृद्धि से ग्रामीण माध्यमिक विद्यालयों की एक बड़ी मात्रा कुप्रबन्धित, अपर्याप्त भवन और अल्प संख्या वाली है। ग्रामीण क्षेत्रों के ९७% माध्यमिक विद्यालय निजी हाथों में है। इन अब भी दूर-दूर फैले विद्यालयों की सेवा-स्थिति नगरवासी अध्यापकों की अपेक्षा कहीं

अधिक असन्तोषजनक है। स्थायीकरण, वार्षिक वेतन-वृद्धि और प्राविडेंट फण्ड की सुविधायें या तो उनको विलम्ब से मिलती हैं या किसी-न-किसी बहाने टाल ही दी जाती हैं। ये बहाने और भीतरी तरकीबें बहुत व्यापक और भली भांति ज्ञात हैं और इनका उपयोग प्रायः सेवा के प्रारम्भिक काल में किया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाले इन ६२५ अध्यापकों की औसत आयु ३१·०१ वर्ष है और अध्यापन कार्य की कुल औसत ६·७ वर्ष। नवयुवक अध्यापकों की इस प्रधानता के कारण हैं—ग्रामीण विद्यालयों का हाल में ही खुलना और वहां के रहने और काम करने की असन्तोषजनक परिस्थितियाँ।

इनमें से ८२·७% अध्यापकों को ४८ घण्टों में से ३६ और ४२ के बीच में घण्टे पढ़ाने पड़ते हैं। इस कार्य-भार में समुचित मात्रा में किया जाने वाला पाठ्यक्रमोत्तर कार्य-क्रम जुड़ जाने से उनको अपने शैक्षिक मानकों को स्थिर रखने और अपनी अभिरुचियों को व्यापक बनाने तथा स्वाध्याय का अभ्यास बनाये रखने में बड़ी ही कठिनाई होती है। व्यक्तिगत ट्यूशनों की बहुत कम सुविधा है। केवल ९·२% अध्यापकों को ही यह अवसर मिलता है और प्रायः नगण्य मनोरंजक तथा सांस्कृतिक अवसरों के कारण, उनका मुख्य गृह कार्य केवल उच्च परीक्षाओं के लिये अध्ययन करना रह जाता है। ४०·६% अध्यापकों ने तो इसी को इस व्यवसाय में आने का एक मुख्य कारण बताया है। इस समय तक ६९·६% अध्यापक व्यवसाय में आने के बाद अपनी योग्यता बढ़ा चुके हैं (प्रायः एक से अधिक परीक्षा पास कर के) और ४२·४% अब भी इस कार्य में लगे हुए हैं। बहुत से अध्यापक आवश्यक परीक्षायें पास करने के बाद ही इस व्यवसाय को छोड़ देते हैं और अपनी योग्यता, रुचि और स्वभाव के अनुकूल अधिक अर्थलाभ वाले पदों और व्यवसायों में चले जाते हैं। फिर भी, यद्यपि उनका स्तर उतना अच्छा नहीं है, उनमें से ३२·६% स्नातकोत्तर परीक्षाएँ पास हैं और अन्य ३५·८% केवल स्नातक हैं। कुछ प्राद्यौगिक और वैज्ञानिक विषयों को छोड़ कर अन्य विषयों में उनकी संख्या पर्याप्त है—कुछ विषयों में तो आवश्यकता से अधिक। इसका एक फल यह भी होता है कि ऐसे अध्यापकों को विभाग से स्वीकृत या विद्यालय के रजिस्टरों में ही दिखाये गये वेतन-क्रम से वास्तव में कम मिलता है। ११ अध्यापकों ने तो यह स्पष्ट कहा है कि वह जितने पर हस्ताक्षर करते हैं, उनको उससे कम वेतन दिया जाता है और शायद ऐसे अध्यापकों की वास्तविक संख्या इस से अधिक हो। विशेषकर, २०४ में से ७३ अदीक्षित स्नातकोत्तर अध्यापकों की विभाग-स्वीकृति से कम वेतन-क्रम में नियुक्ति की

गई है; यहां तक कि दो इंटर ग्रेड डिप्लोमा पास कलाध्यापकों को जे० टी० सी० ग्रेड से भी कम वेतन मिलता है।

व्यवसाय के अतिरिक्त उनके पास एक ही लाभप्रद कार्य है—कृषि। धीरे धीरे ७०·१% अध्यापक अपने घर के जिलों में पहुंच गये हैं और १८·६% पड़ोस के जिले में; जिससे वे संयुक्त परिवार और घर की कृषि-उपज से यथा-संभव लाभ उठा सकें। ३०·४% अध्यापकों ने खेती से भी अपनी आय दिखाई है। जिनके लम्वी खेती होती है, उनका जीवन-स्तर भी औरों से अधिक अच्छा है और उनका अपने पड़ोस में अच्छा प्रभाव है। ये लोग अध्यापन के लिए शिक्षित होने पर भी अपना घर नहीं छोड़ना चाहते।

सार्वजनिक परीक्षाओं से ४३·४% अध्यापकों को निरीक्षण में नाम-मात्र की आय हुई और केवल १६·६% को परीक्षक और अन्तरीक्षक के रूप में कुछ अच्छी धनराशि प्राप्त हो सकी।

अध्यापक का अपना औसत परिवार ३·९८ व्यक्तियों का है। परन्तु इसके अतिरिक्त कई अन्य संयुक्त परिवार के व्यक्ति (८५·६% अध्यापक ऐसे परिवारों के सदस्य हैं) उसके पास शिक्षा तथा अन्य सुविधाओं के लिये रहते हैं, जिससे उसका जीवन स्तर बहुत कम हो जाता है। ऐसे अन्य पूर्ण-निर्भर व्यक्तियों की औसत संख्या कुल अध्यापकों के लिये ४·०४ है और ऐसे कुल व्यक्तियों की संख्या जिनको वह पूर्ण या आंशिक सहायता देता है, ६·१४ है। यह संख्या बहुत अधिक मानी जानी चाहिये, विशेषकर इस बात को देखते हुए कि व्यवसाय से उसकी औसत मासिक आय १३४·७ रुपया है।

इन अविकसित क्षेत्रों में रहने की अन्य अनुवर्ती असुविधाएँ हैं—खराब आवास, अपर्याप्त चिकित्सा के साधन और मनोरंजक तथा सांस्कृतिक अवसरों की कमी। २८·६% अध्यापक ऐसे घरों में रहते हैं जहां की वायु दूषित है, ७१·७% के पास अलग जल-प्राप्ति के साधन नहीं हैं और ४०·६% घरों में शौचालय और समुचित नालियां नहीं हैं। केवल ८% अध्यापक ऐसे हैं जिनके पास बिजली है और केवल ३·४% ऐसे हैं जिनको उपरोक्त चारों आधारभूत सुविधायें उपलब्ध हैं। ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय धीरे-धीरे अन्दर दूरस्थ क्षेत्रों में खुलते जा रहे हैं और इसलिये अभी बहुत वर्षों तक उनमें कार्य करने वाले अध्यापक इन आवश्यक सुविधाओं से वंचित रहेंगे।

व्यवसाय स्वयं इन अध्यापकों को कोई विवेक-संगत भविष्य की ओर नहीं उन्मुख करता और केवल वही थोड़े से भाग्यवान अध्यापक सुखी हैं जिनको अच्छी मात्रा में चल या अचल (विशेषकर कृषि) सम्पत्ति पूर्वजों से

मिली है, यद्यपि ऐसे ८% ही अध्यापक हैं जिनको कृषि से वार्षिक ६०० रु० या इस से अधिक आय होती है। चाहे अपनी इच्छा से या वातावरण से विवश होकर इन अध्यापकों को अन्य ग्रामीणों की अपेक्षा अच्छा जीवन-स्तर भी रखना पड़ता है।

५३·९% अध्यापकों की कुल मासिक आय (सभी स्रोतों से) १०० रु० और २०० रु० के बीच में है और २०% की २००-३०० रु० के बीच। १७·६% अध्यापक १०० रु० और उससे कम के निम्नतम समूह में आते हैं और केवल ५·१% अध्यापकों की मासिक आय ३०० रु० के ऊपर है। कुल ६२५ अध्यापकों की औसत मासिक आय (सभी स्रोतों से) १६७·०४ रु० है।

इस आय का अधिकांश जीवन की मौलिक आवश्यकताओं पर व्यय होता है। ५०·०८% अध्यापकों को अपने कुल मासिक व्यय का ४०% से अधिक केवल भोजन पर व्यय करना पड़ता है। निम्नतम व्यय समूह (१०० रु० तक) का व्यय स्वभावत: भोजन पर अधिक व्यय वाले समूहों (२५० रु० और २५० रु० से ऊपर वाले) की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। वस्त्र पर प्राय: नवयुवक लेक्चरर ही अधिक व्यय करते हैं, क्योंकि उनका वेतन अधिक और पारिवारिक भार कम होता है और उन्हें अपना ध्यान अधिक रहता है। जिन दो उच्चतम व्यय-समूहों की कृषि से अच्छी आय है वे अपेक्षाकृत वस्त्रों पर कम व्यय करते हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में वस्त्र उतने अधिक पद या गौरव के द्योतक नहीं हैं जितने नागरिक क्षेत्रों में।

अध्यापकों का अधिकांश (५१·४%) शिक्षा पर अपने कुल व्यय का १०% तक लगाते हैं। इससे अधिक प्रतिशत व्यय वहीं होता है जब अध्यापक स्वयं अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये तैयारी करते हैं या परिवार के बच्चे, प्राय: बालक, विश्वविद्यालय या व्यावसायिक स्तर की शिक्षा प्राप्त कर रहे होते हैं। दो निम्नतम व्यय समूहों के (१०० रु० तक और १०० रु० १५० रु० तक के) अध्यापक शिक्षा पर बहुत कम व्यय करते हैं, क्योंकि उनकी शैक्षिक अभिलाषायें उनके वर्तमान साधनों और भविष्य में उन्नति की सम्भावनाओं से सीमित होती हैं।

ऊँचे वेतन क्रम वाले अध्यापक पत्र-पत्रिकाओं पर उचित व्यय करते और इस प्रयत्न में लगे रहते हैं कि उनका सामान्य ज्ञान अच्छा बना रहे और उनके पठन-पाठन का क्रम चालू रहे। हाँ, सब से ऊँचा व्यय-समूह (२५० रु० से अधिक का) स्थानीय राजनीति और बड़े पैमाने पर कृषि-कार्यों में अधिक रुचि रखता है। इन सब बातों के फलस्वरूप ४६·३% अध्यापक अपने व्यय

का ५% से कम इस मद पर व्यय करते हैं और ३६·३% तो कुछ भी व्यय नहीं करते।

ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापकों को अपने व्यवसाय से बचत का मुख्य अवसर प्राविडेंट फण्ड की सुविधा है और ४९% अध्यापक इसमें सम्मिलित हैं। २८·८% अध्यापकों ने १००० रु० से अधिक का जीवन-बीमा कराया है और केवल ३·५०% ने ५००० रु० से अधिक का। केवल ५·४% अध्यापकों का डाकखाने में १००० रु० से अधिक जमा है और केवल ·८% का ३००० रु० से अधिक। १६·३% अध्यापकों के पास ५००० रु० से अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति है, सभी पैतृक। सब मिला कर, यह परिस्थिति उत्साह ठंडा कर देने वाली है।

अधिकतर मासिक घाटे या कभी-कभी थोड़ी सी बचत और लगातार चढ़ते हुए मूल्यों के कारण, बहुत–से अध्यापक अनावर्तक आवश्यक व्यय—चिकित्सा, शिक्षा और सामाजिक उत्सव—अपने वेतन से बिल्कुल नहीं कर पाते। ३१·३% अध्यापकों के ऊपर अवश्यम्भावी व्ययों के कारण—जैसे चिकित्सा, दहेज, पारिवारिक उत्सव और शिक्षा–ऋण हो गया है। इस दीर्घ-कालीन आंर्थिक सङ्कट का प्रभाव इन अध्यापकों की, विशेषकर जो प्रायः अपने व्यवसाय की आय पर ही निर्भर हैं, जीवन और कार्य-शैली पर अवश्य और गहरा प्रभाव पड़ता है।

बदलते हुए सामाजिक ढांचे की प्रतिक्रिया भी अध्यापकों के परिवर्तित सामाजिक दृष्टिकोणों, मूल्यों और आदर्शों में प्रतिबिम्बित होती है। यद्यपि उनमें से अधिकांश विवाह, पारिवारिक सम्बन्ध और अन्य दृढ़ता से पकड़े हुए सामाजिक और धार्मिक विश्वासों में सनातन प्रथाओं के समर्थक हैं, फिर भी एक अच्छा खासा अल्पमत जीवन की समस्याओं की ओर परम्परागत दृष्टिकोण से भिन्न विचार रखता है। परन्तु प्रायः सामाजिक विश्वासों और कार्यों में सामंजस्य नहीं होता। ३७·४% अध्यापक उत्तराधिकार में स्त्रियों की समता स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं और ६४·६% अब भी विवाह के धार्मिक रूप में विश्वास रखते हैं। ८१·१% अध्यापकों की परिवार नियोजन कार्यों में आस्था है, यद्यपि यह प्रत्यक्ष है कि उनमें बहुत-से इसका पालन नहीं करते। देश के लिये ७९% अध्यापक प्रजातन्त्र को हितकर समझते हैं और ८३% धर्मनिरपेक्ष राज्य में विश्वास रखते हैं। केवल ६७% अध्यापक जाति-वर्ग-विहीन समाज को अच्छा समझते हैं। ठीक ४८% अध्यापक प्रायः नियमित रूप से धार्मिक कृत्य करते हैं और ३४% अध्यापक

इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उनको अपने पद और मर्यादा की उन्नति के लिए राजनीति में सक्रिय भाग लेना चाहिये ।

विद्यालय समाज से अलग नहीं; उसका ही एक अङ्ग है और ग्रामीण शिक्षक, इतनी कठिनाइयों, अधिक व्यावसायिक कार्य-भार और सामाजिक सहयोग के अभाव से उत्पन्न निरुत्साह के होते हुए भी, यह भली-भांति समझते हैं कि अपनी रुचि, आर्थिक स्वतन्त्रता और स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए उनका कितना बड़ा उत्तरदायित्व है कि वे समाज को एक विवेकशील और उद्‍बोधक नेतृत्व प्रदान करें ।

ग्रामीण समाज का पूरा ढांचा जिन तीन स्तम्भों पर आधारित है, वे हैं— विद्यालय, पञ्चायत और सहकारिता । १०·४% अध्यापक किसी-न-किसी रूप में पंचायत से सम्बन्धित हैं जैसे;—(प्रधान ३ अध्यापक), अदालती सरपंच (७ अध्यापक), अदालती पंच (८ अध्यापक) और कार्य-वाहक समितियों के सदस्य (४७ अध्यापक)। १६·३% अध्यापक सहकारी समितियों में सक्रिय भाग ले रहे हैं—३ अध्यापक संचालक, १ अध्यापक कोषाध्यक्ष, ८ अध्यापक सचिव और संयुक्त सचिव, ६ अध्यापक सरपंच और ८४ अध्यापक सदस्य के रूप में ।

जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, ८८·७% अध्यापक या तो अपने ही या बिल्कुल पड़ोस के ज़िलों में कार्य कर रहे हैं जहां की समस्याओं और अभिलाषाओं से उनका घनिष्ठ परिचय है । कालक्षेप करने के लिये, अन्य मनोरंजन और सांस्कृतिक सुविधाओं के अभाव में, बहुत से अध्यापक सभी प्रकार के विकास कार्यों के संगठन में, विशेषकर अपनी छुट्टियों और ग्रीष्मावकाश में, सहयोग देते हैं । इनके मुख्य क्षेत्र हैं श्रमदान (२४·५% अध्यापक), ग्राम की सड़कों का निर्माण और जन-स्वास्थ्य, स्वच्छता और पानी की निकास व्यवस्था में सुधार (१७·१% अध्यापक), सामाजिक कार्य (६·४% अध्यापक) और सामाजिक शिक्षा (५·६% अध्यापक) । ४·३% अध्यापक इन कार्यों में नियमित रूप से भाग लेते हैं और नित्य प्रति एक घण्टा या इससे अधिक समय देते हैं । ३२% अध्यापक भी नियमित कार्य करते हैं, परन्तु समय १ घण्टा या उससे कम दे पाते हैं । १७% अध्यापक कभी-कभी निश्चित योजनाओं में ही भाग लेते हैं ।

११,००० ग्रामीण माध्यमिक शिक्षकों का यह विशाल, निरन्तर बढ़ता हुआ और प्रभावशाली समूह छोटे-छोटे सुसंगठित दलों में लगभग ७०० बड़े और अपने-अपने क्षेत्र के केन्द्र में स्थित ग्रामों में स्थायी रूप से फैला हुआ

है। यदि इनको उचित मार्ग दर्शन, आवश्यक प्रोत्साहन और योजना–बद्ध प्रशिक्षण या पुनर्व्यवस्था दी जा सके, तो विकास कार्यों की गति को तीव्र करने, जन-जन में योजना-कार्यो के प्रति चेतना उत्पन्न करने और स्थानीय संस्थाओं तथा कार्य-कर्ताओं को समुचित सहायता दे कर निश्चित कार्य-क्रमों को वास्तव में प्रभावोत्पादक पूर्णता देने में ये बुद्धिजीवी अध्यापक आदर्शवादी अवस्था के विद्यार्थियों और अन्य नवयुवकों के अग्रणी के रूप में बहुत ही मूल्यवान सिद्ध हो सकते हैं।

सरस्वती—वन्दना

या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणा-वरदण्ड-मण्डित-करा या श्वेत-पद्मासना॥
या ब्रह्मा ऽ च्युत-शङ्कर-प्रभृतिभिर् देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा॥

कदाचार का समस्या

(डा० सीताराम जायसवाल, प्राध्यापक, लखनऊ विश्वविद्यालय)

आज विश्व के प्रायः सभी देशों में कदाचार की समस्या के कारण लोग चिन्तित हैं। वैसे तो प्रत्येक प्रगतिशील समाज में कदाचार की समस्या का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, लेकिन जब यह समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है तब इसके ऐतिहासिक तथा सामाजिक कारणों की ओर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। जिन लोगों का सम्बन्ध शिक्षा से है उनके लिए तो यह और भी आवश्यक है कि वे कदाचार की समस्या को भली-भाँति समझें और शिक्षा प्रणाली में ऐसे परिवर्तन लायें जिससे कि किशोरों तथा नवयुवकों में वांछनीय विचारों को उत्पन्न किया जा सके।

विदेशों में—

अगस्त सन् १९६१ की 'इंकाउंटर' नामक पत्रिका में टी० आर० फीवेल ने कदाचार की समस्या पर एक लेख लिखकर यह स्पष्ट किया कि 'टेडी ब्वायज़' प्रायः सभी देशों में पाये जाते हैं। जिन देशों में तकनीकी और औद्योगिक विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ है वहाँ कदाचार की समस्या काफी गम्भीर है। लेकिन इसी के साथ कम विकसित देशों में भी यह समस्या दिखाई पड़ती है। इंग्लैंड में आजकल 'राक्स' तथा 'माड्स' नामक नवयुवकों के दो ऐसे संगठित समूह हैं जिनमें प्रायः मारपीट हुआ करती है। इनके कारण समुद्री तट पर स्थित वे नगर जहाँ कि लोग छुट्टियाँ विताने जाते हैं, कलह के केन्द्र हो रहे हैं क्योंकि राक्स और माड्स वहाँ पहुँच कर आपस में लड़ते हैं। इसी प्रकार संयुक्त राज्य में भी कदाचार की समस्या गम्भीर है। एक खोज के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि संयुक्त राज्य में प्रति वर्ष लगभग पाँच प्रतिशत किशोर पुलिस द्वारा पकड़े जाते हैं और उन पर अदालती कार्यवाही की जाती है। यदि हम इंग्लैंड और अमेरिका के समाचार-पत्रों को देखें तो प्रायः प्रतिदिन ऐसे समाचार छपते हैं जिनमें कि किशोरों के कदाचार का विस्तृत विवरण होता है। उदाहरण के लिए एक समाचार का नमूना देखिये जिसे कि फीवेल ने उद्धृत किया था :

"डेटोना बीच, फ्लोरिडा, में लगभग चार हजार किशोरों और पुलिस में पाँच घंटे तक संघर्ष होता रहा; क्योंकि ये किशोर अपनी मोटर

गाड़ियों को बड़ी तेजी के साथ नगर की सड़कों पर दौड़ा रहे थे। दंगे में किशोरों ने सड़क पर खड़ी मोटरों के टायर को काट दिया, दुकानों की खिड़कियाँ तोड़ डालीं और विज्ञापन के जो बोर्ड लगे थे उन्हें भी नष्ट कर दिया।''

इसी प्रकार के समाचार अमेरिका के प्राय: सभी बड़े नगरों से मिलते हैं। योरप में भी कदाचार की समस्या गम्भीर होती जा रही है। जर्मनी में भी कुछ दिन हुए ३३ युवकों को इसलिए पकड़ा गया कि उन्होंने सड़क पर लगी बत्तियों को तोड़ा और पुलिस से डटकर लड़ाई भी हुई। इसी प्रकार वियना, पेरिस, स्टाकहोम आदि नगरों से भी समाचार प्राप्त होते रहते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि सोवियत रूस में भी किशोरों का कदाचार बढ़ रहा है और इसी प्रकार के समाचार अन्य कम्युनिस्ट देशों से भी प्राप्त हुए हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि इस विश्वव्यापी कदाचार की समस्या के क्या कारण हैं। सर्वप्रथम हमारा ध्यान द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जो परिवर्तन हुए, उनकी ओर जाता है। बहुधा यह होता है कि युद्ध के कारण सामाजिक विघटन होने लगता है। अनेक परिवारों में मृत्यु के कारण अथवा अभिभावकों के अभाव में बालकों और किशोरों की उचित रूप से शिक्षा नहीं हो पाती। संयुक्त राज्य में भी यही हुआ। द्वितीय महायुद्ध में जिन देशों ने पूर्ण रूप से भाग लिया उनका पारिवारिक जीवन प्रभावित हुआ। अत: जब कभी विश्वव्यापी युद्ध होता है, तब उसके फलस्वरूप संपूर्ण समाज में ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसे छिन्न-भिन्न करने लगती हैं। अनैतिकता, कालाबाजार और इसी प्रकार के अन्य सामाजिक दोष लोगों के जीवन को विषाक्त करते हैं। बालक तथा किशोर अति शीघ्रता से प्रभावित होते हैं, अत: उन्हें इस प्रकार के अवांछनीय सामाजिक परिवर्तन का फल भोगना पड़ता है।

यह उल्लेखनीय है कि जिन बच्चों का जन्म द्वितीय महायुद्ध की अवधि में हुआ था, वे अब इस समय लगभग १८ या २० वर्ष की आयु के हो चले हैं। इन नवयुवकों ने युद्ध के परिणाम को स्पष्ट अनुभव किया है। फलत: इनके जीवन में उन परम्पराओं का अभाव हुआ जो समाज को स्थायित्व प्रदान करती हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, युद्ध के कारण सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। सामाजिक जीवन में शान्ति और सुरक्षा वांछनीय परम्पराओं और सामाजिक मूल्यों का

पालन करने से होती है। आज का किशोर कदाचार की ओर इसलिए प्रेरित होता है कि उसे अपने पर्यावरण में समुचित सुरक्षा, सम्मान तथा स्नेह नहीं मिलता। अतः वह सुरक्षा पाने के लिए कदाचार को अपनाता है। असुरक्षित नवयुवक अपना एक दल बनाते हैं और फिर सम्मिलित रूप से ऐसे कार्य करते हैं जो समाज की दृष्टि में अवांछनीय हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामाजिक परम्पराओं तथा मूल्यों की जब अवहेलना होती है, तब आने वाली पीढ़ी के लोगों में सुरक्षा भावना कम हो जाती है और इस कारण उन्हें ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जो उन्हें आत्म-सम्मान तथा सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं।

भारत में—

हमारे देश भारत में भी किशोरों तथा नवयुवकों में असामाजिक प्रवृत्तियाँ प्रकट हो रही हैं। इसके अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम पारिवारिक कारण को लें। वर्तमान काल में परिवार बच्चों की देख-भाल उचित मात्रा में नहीं कर पाता। एक ओर तो संयुक्त परिवार समाप्त हो रहा है और दूसरी ओर परम्परागत मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है। सम्मिलित परिवार में बड़ों-बूढ़ों की उपस्थिति के कारण छोटे बच्चों की देख-भाल समुचित रूप से होती थी और उन्हें ऐसी शिक्षा मिलती थी जो उनके नैतिक विकास के लिए हितकर थी। अब परिवार में नैतिक और सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कदाचार की समस्या का प्रथम कारण परिवार में उचित नैतिक शिक्षा का अभाव है। इसके साथ ही माता-पिता अपने बच्चों की पर्याप्त देख-भाल करने में असमर्थ हैं। इसके अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम तो आर्थिक कारण को लें। इस समय प्रायः निम्न तथा मध्य वर्ग के लोग आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं। थोड़े से उच्च परिवारों में आर्थिक सम्पन्नता है। अन्यथा, साधारण तौर पर हमारे देश में प्रायः सभी लोग आर्थिक अभाव का अनुभव कर रहे हैं। अतः उन्हें ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनके कारण उनका सम्बन्ध अपने परिवार से कम होने लगा है। दूसरी ओर देश के बटवारे के बाद कुछ ऐसे सामाजिक तत्व प्रकट हुए हैं जो आर्थिक लाभ के लिए किसी भी अनैतिक कार्य करने में नहीं हिचकते। उदाहरण के लिए आज हमें कोई भी वस्तु अपने शुद्ध रूप में मिलना दुर्लभ है। दूध, घी तथा अन्य खाद्य पदार्थों में मिलावट बढ़ती जा रही है; यहाँ तक कि नकली दवाओं का निर्माण भी होने लगा है। इस प्रकार जब सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता बढ़ रही है, तब

हम अपने किशोरों के सम्मुख कोई ऐसा आदर्श उपस्थित करने में असमर्थ हैं जो उन्हें सदाचार की ओर ले जाय। अनैतिक वातावरण में सांस लेने वाला नवयुवक अपने को पथ-भ्रष्ट पाता है। अतः वह समाज के प्रति विद्रोह करता है और यह विद्रोह कदाचार के रूप में प्रकट होता है। वैसे तो प्रत्येक विद्रोह का कोई कारण होना चाहिए। लेकिन किशोरों का कदाचार तो एक ऐसा विद्रोह है जिसका कोई रचनात्मक लक्ष्य नहीं है। यह इसी बात का परिचायक है कि आज का किशोर पथहीन हो चला है और उसका मार्ग-दर्शन करने में वर्तमान समाज तथा शिक्षा प्रणाली असमर्थ हैं।

हल के सुझाव—

ऐसी दशा में हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि हम क्या करें। कैसे कदाचार की समस्या हल हो? वैसे तो अनेक समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षा-शास्त्रियों ने समय-समय पर कदाचार की समस्या के हल के लिए सुझाव दिये हैं और वे सुझाव उपयोगी भी हैं। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने समाज में कदाचार की समस्या को रोकने के लिए ठोस कार्य करें। अतः सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि पारिवारिक जीवन में ऐसा परिवर्तन लाना चाहिए जो बच्चे के स्वस्थ विकास में सहायक हो। इसके लिए आवश्यक है कि माता-पिता तथा अविभावकों को स्वस्थ पारिवारिक जीवन सम्बन्धी शिक्षा दी जाय। यह शिक्षा अनौपचारिक रूप से नाटकों, फिल्मों तथा रेडियो के कार्य-क्रम द्वारा दी जा सकती है। हमें माता-पिताओं को यह भली भाँति समझाना होगा कि संतान के प्रति उनका क्या दायित्व है और वे किस प्रकार अपने किशोर बालकों तथा बालिकाओं का उचित निर्देशन कर सकते हैं। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि परिवार में नैतिक शिक्षा की कमी हो चली है। अतः यह वांछनीय है कि माता-पिता अपने बच्चों को ऐसा साहित्य पढ़ने को दें जो उनमें वांछनीय सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का विकास करे। हमें ज्ञात है कि रामायण तथा महाभारत की कहानियां सुनकर बालक उन बातों को सीखते हैं जो सामाजिक दृष्टि से उचित हैं। आजकल बच्चों के लिए जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसमें सम्भवतः मनोरंजन का पक्ष सबल है और उसका नैतिक पक्ष दुर्बल। अतः यह आयश्यक है कि बच्चों तथा किशोरों के लिए ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की जायँ जो उनका मनोरंजन करते हुए उन्हें नैतिक शिक्षा भी प्रदान करें।

शिक्षक बंधुओं के लिए चुनौती—

कदाचार की समस्या के सन्दर्भ में शिक्षकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। आजकल शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध संतोषजनक नहीं है। इन दोनों के बीच में दूरी आ गयी है। फलतः शिक्षकों से जो प्रेरणा विद्यार्थियों को पहले मिलती थी वह अब नहीं मिलती। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थी और शिक्षकों के बीच अच्छे सम्बन्ध उत्पन्न किये जायँ। यदि हम उन कारणों पर विचार करें जो शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच दूरी उत्पन्न करते हैं, तो हमें ज्ञात होगा कि आज का शिक्षक अपने दायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह करने में असमर्थ है। उसका परिवारिक जीवन आर्थिक अभाव के कारण शान्तिपूर्ण नहीं है। इसके अतिरिक्त समाज में शिक्षक की प्रतिष्ठा भी घट चली है, क्योंकि आज के जो सामाजिक मूल्य हैं उनके सन्दर्भ में उन व्यक्तियों को प्रतिष्ठा मिलती है जिनके पास अधिक धन या सत्ता है। आज के समाज में ज्ञान और विद्या का उतना आदर नहीं, जितना कि धन और सत्ता का। अतः जो लोग ज्ञानार्जन और ज्ञान-वितरण के कार्य में लगे हुए हैं उनके प्रति आज के समाज में उपेक्षा की भावना है। इस कारण आज का शिक्षक समाज में प्रायः उपेक्षित रहता है। इसका प्रभाव किशोरों तथा नवयुवकों पर भी पड़ रहा है। अतः हमें चाहिये कि हम सामाजिक मूल्यों में ऐसा परिवर्तन लायें जिसके फलस्वरूप पुनः ज्ञान और विद्या का उचित सम्मान हो। लोग यह स्वीकार करें कि धन अथवा सत्ता साधन मात्र हैं। साध्य तो वह ज्ञान है जिसके प्रकाश से व्यक्ति और समष्टि का भेद मिट जाता है। दूसरे शब्दों में, हमें अपने सामाजिक जीवन को अध्यात्ममूलक बनाना होगा; तभी समाज में सदाचार का विकास होगा और कदाचार में कमी होगी।

संक्षेप में कदाचार की समस्या आज के शिक्षकों के लिए एक चुनौती है। शिक्षक वर्ग का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह इस चुनौती को स्वीकार करे और इसका सामना एक नैतिक आदर्श उपस्थित करके करे। दूसरे शब्दों में, शिक्षक को स्वयं उन कार्यों को करना होगा जो बालकों के स्वस्थ नैतिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं। उन्हें अपने शिष्यों के प्रति पहले से अधिक सहानुभूति व्यक्त करनी होगी। शिक्षालय और समुदाय में जो दुराव की भावना है उसे दूर करना होगा। माता-पिता और शिक्षकों को ऐसा सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा जो बालक के स्वस्थ विकास के लिए अपेक्षित है। वास्तव में आज की शिक्षा-प्रक्रिया में बालक, माता-पिता और शिक्षक तीनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। तीनों के सहयोग से ही

शिक्षा का उचित लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आज बालक, अभिभावक तथा शिक्षक के मध्य ऐसे सम्बन्ध नहीं हैं जो स्वस्थ शैक्षिक तथा सामाजिक विकास में सहायक हों। अतः कदाचार की समस्या का समाधान करने के लिए यह परमावश्यक है कि बालक के प्रति परिवार और शिक्षक-वर्ग अपने दायित्व को समझें और उसका पूर्ण रूप से निर्वाह करें।

युवा स्यात् साधु युवाध्यायकः आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः ।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ॥

* * *

यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति ।

* * *

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियं ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ॥

बच्चों में नेतृत्व के चिह्न

(प्राध्यापक शम्सुद्दीन, स्नातकोत्तर बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय, बिलासपुर)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'बहलर' के अनुसार नेतृत्व के चिह्न प्रारम्भिक अवस्था—जैसे एक साल की उम्र—में भी देखे जाते हैं। शाला से पूर्व की अवस्था में नेतृत्व कई रूपों में प्रकट हो सकता है। अपनी शासन करने की प्रबल मनोवृत्ति के कारण बच्चा नेता बन जाता है। इस प्रकार यहाँ बालक अपनी इच्छा का दबाव दूसरों पर डालता है।

कभी-कभी कोई बच्चा अपनी सर्वप्रियता, सामाजिक गुण और बुद्धि के कारण नेतृत्व प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार वह दूसरों पर बिना अपनी इच्छा के दबाव के भी नेतृत्व ग्रहण कर सकता है। अपने आदर्श और अनुकरण करने लायक मनोहर बर्ताव के कारण वह नेता बन जाता है। यह स्थायी होता है जबकि प्रथम प्रकार का नेता क्षणिक होता है।

कई बच्चों का, जो नेतृत्व के गुण प्रकट करते हैं, अध्ययन किया गया और यह देखा गया कि बच्चों में जो नेता होते हैं वे औसत बच्चे से योग्यता में श्रेष्ठ होते हैं, विशेषकर उन क्षेत्रों में जिनमें वे नेता स्वीकार कर लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ खेल के मैदान का नेता अच्छा खिलाड़ी होगा। इस प्रकार नेता का एक प्रधान गुण 'श्रेष्ठता' है।

एक अच्छा नेता बनने के लिये बच्चे को एक अच्छा आज्ञा माननेवाला भी होना आवश्यक है इस रूप में कि वह अपने साथियों की आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर दे सके। अपने सहपाठियों की आवश्यकताओं को समझने व उनके प्रति सहानुभूति दिखाने तथा उनकी जरूरतों को महसूस करने की योग्यता एक अच्छे नेता बनने का दूसरा मुख्य गुण है।

नेता और उसके माननेवालों का सम्बन्ध ही नेतृत्व है। नेतृत्व केवल नेता के गुणों पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रहता, अनुकरण करनेवालों की विशेषताओं तथा समय-विशेष की परिस्थितियों पर भी आधारित रहता हैं। इस प्रकार कोई बच्चा जो एक समूह का नेता है, आवश्यक नहीं कि वह दूसरे समूह का भी नेता हो। इसी प्रकार एक समूह किसी बच्चे को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में नेता स्वीकार करले, किंतु दूसरी परिस्थितियों में उसे

अस्वीकार भी कर सकता है। इस प्रकार नेतृत्व का भाव पूर्ण व स्थायी न हो कर परस्पर सम्बन्धित है।

नेतृत्व को प्रभावित करने वाली प्रधान विशेषतायें :

नेतृत्व नेता के कुछ गुणों पर निर्भर होता है। खेल के मैदान पर एक बच्चा खेलों में निपुणता के कारण नेता हो सकता है, चाहे वह विद्या के क्षेत्र में कितना भी पिछड़ा हुआ क्यों न हो। शिक्षा की निम्न श्रेणियों में खेलों में निपुणता नेतृत्व का निर्धारण करती है।

दूसरी विशेषता है 'अनुभव'। स्कूल का पुराना छात्र कुछ समय के लिये नेतृत्व प्राप्त कर सकता है— उदाहरणार्थ द्वितीय वर्ग के विद्यार्थी को नये प्रवेश लेने वाले प्रथम वर्ग के विद्यार्थी की अपेक्षा अधिक फायदे हैं; किन्तु सम्भव है कुछ समय बाद वह इस नेतृत्व को खो बैठे।

शाला की नयी आवश्यकतायें जैसे गणित में निपुणता, सहशैक्षणिक कार्यों में संगठन, आदि भी चतुर और बुद्धिमान बच्चों को नेतृत्व का अवसर दे सकते हैं। मान लीजिये शाला में नये प्रोजेक्ट प्रारम्भ किये गये। एक बुद्धिमान बालक उन्हें जल्दी समझ लेता है और नेता वन जाता है, किन्तु बाद में यह नेतृत्व दूसरों के पास भी जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह नेतृत्व परिवर्तनशील है। यह परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। ये सभी परिवर्तन सभी स्थितियों में दिखाई देते हैं।

देखा जाता है कि एक बच्चा जो आज्ञाकारी व समर्पण-वृत्त होता है तथा जिसमें स्वाधिकार प्रदर्शन की कमी होती है वह अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद भी सम्भव है नेता न हो सके। इस प्रकार नेतृत्व परिस्थितियों से सम्बन्धित है। जैसे-जैसे परिस्थितियां बदलती हैं, नेतृत्व भी बदल सकता है। उदाहरणार्थ खेल के मैदान का नेता, बहुत सम्भव है, कक्षा में विद्या के क्षेत्र में नेता न हो। बहुत अधिक सम्पर्क से उदासीनता या घृणा का भाव उदय हो सकता है; अतः यदि एक बच्चा नये स्थान में जाता है तो वह उस स्थान का नेता हो सकता है जबकि पुराने स्थान में अत्यधिक सम्पर्क के कारण उसके गुणों की कीमत नहीं हो सकी। बदलते हुए वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार बच्चे के कार्याभिनय में भी परिवर्तन होता है।

प्रयोगात्मक अध्ययन :

नेतृत्व पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली परिस्थितियों की खोज करने के लिये विभिन्न उम्र के बालकों का प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया। इसमें देखा गया कि नेतृत्व विभिन्न प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी

कई कलायें हैं। दो बच्चे नेता होते हैं, किन्तु वे विभिन्न तरीकों के प्रयोग से नेतृत्व प्राप्त करते हैं— जैसे दबाव, सहयोगिता की कला अथवा स्वयं-युक्ति व उपाय।

कोई भी व्यक्ति प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों में विश्वव्यापी नेता नहीं होता। नेतृत्व यथार्थ में नेता और उसके मानने वालों के बीच का सम्बन्ध होता है। कोई नेता बना या नहीं, बहुत हद तक इस बात पर निर्भर रहता है कि वह कहाँ तक अपने समूह के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार नेता का न केवल दूसरों की आवश्यकतायें जानने वरन् उन्हें पूरा करने के लिये अत्यधिक भावनाशील होना चाहिये। नेता ऐसा हो जो अपने अनुसरण करनेवालों के स्तर पर आ सके।

नेता और उसके माननेवालों में अधिक मानसिक अन्तर अच्छा नहीं होता। नेतृत्व के लिये आवश्यक गुण हैं—बुद्धिमता, सर्वप्रियता, आरम्भ करने की शक्ति, व्यक्तिगत आकर्षण, निपुणता इत्यादि।

वातावरण से सम्बन्धित कुछ आवश्यक शर्तें भी महत्वपूर्ण हैं। एक ऐसा प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया जिसमें नेताओं और गैर-नेताओं के कौटुम्बिक वातावरण का अध्ययन किया गया। इसमें देखा गया कि लड़कियों में नेता उन घरों से निकलीं जिनमें बच्चों के लालन-पालन में मातायें अपेक्षतः स्वतन्त्र थीं तथा जहाँ वे अनुदार और रूढ़िवादी न होकर अपने बच्चों को स्वतन्त्रता और अवसर देती थीं।

इस प्रकार घर की 'स्वतन्त्रता' और 'अवसर' नेतृत्व से सन्बन्ध रखते हैं। इसके विपरीत लड़के-नेताओं व गैर-नेताओं के घरेलू वातावरण में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई दिया। यह इस लिये सम्भव हो सकता है कि घरों में बालिकाओं की अपेक्षा बालकों को स्वाभाविक रूप से अधिक स्वतन्त्रता दा जाती है।

समाज का वातावरण बालक-नेताओं के निर्माण में अधिक प्रभाव डालता है। घरेलू अनुशासन के कार्यक्रमों तथा नेतृत्व के गुणों में एक प्रकार का अच्छा सम्बन्ध प्रतीत होता है। अत्यधिक कठोर अनुशासन बालिग व्यक्ति को अच्छा आज्ञाकारी बनाता है। इस प्रकार का लालन-पालन स्वेच्छा, दृढ़ता और आरम्भिक शक्ति की अवनति करता है। बच्चे को आरम्भिकता का अवसर देने के पश्चात् इस बात की संभावना अधिक है कि वह भविष्य में इन गुणों का अधिक प्रदर्शन कर सकेगा।

एक कहावत है कि "दृढ़ इच्छा शक्ति वाले माता-पिता के बच्चे दुर्बल इच्छा शक्ति वाले होते हैं।" ऐसे बच्चे अपनी इच्छा के प्रदर्शन का

अवसर नहीं पाते; अतः वे दुर्बल इच्छा वाले हो जाते हैं। जिस प्रकार अत्यधिक अनुशासन बुरा होता है, बहुत कम अनुशासन भी अच्छा नहीं होता; क्योंकि इसमें बालक के, बिना स्थिर आदतों के, पूरे समय खेलने-कूदने वाला हो जाने की सम्भावना है। ऐसा बच्चा बिगड़ा हुआ बच्चा निकल सकता है। अच्छे अनुशासन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—बच्चों के प्रति यथोचित दृढ़ता तथा आवश्यक स्नेह जिसमें वे स्वयं चुनाव तथा कार्य कर सकें। इस प्रकार 'अनुभव और अवसर' नेतृत्व की दो महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं।

अमेरिका में बहुत से विद्यार्थियों में यह देखा गया है कि उनके अधिकांश नेता छोटे हाई स्कूलों व कालेजों से निकलते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसलिये कि छोटे समाज अपने कार्यों को चलाने के प्रयत्न में अवसरों का बटवारा अधिक-से-अधिक व्यक्तियों में करते हैं। अतः सीखने की सुविधायें छोटे क्षेत्रों में अधिक पायी जाती हैं।

शैक्षणिक महत्व

नेतृत्व की परिवर्तनशीलता शिक्षा में व्यावहारिक महत्व रखती है। शालाओं में नेतृत्व के लिये यथाशक्ति विभिन्न प्रकार के अवसर प्रदान करना चाहिये क्योंकि यह कोई स्वतन्त्र व सम्पूर्ण कार्य नहीं है। जितने ही विभिन्न प्रकार के सह-शैक्षणिक कार्य होंगे उतने ही अवसर बच्चों को नेतृत्व-प्राप्ति के मिल सकेंगे। साल के साल छात्रों को एक ही शिक्षक के अधीन रखने की नीति अच्छी नहीं होती। अत्यधिक घनिष्ठता शिक्षक को बालक के नेतृत्व के गुणों को पहचानने में समर्थ नहीं रखेगी। छात्रों को विभिन्न शिक्षकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलना चाहिये। विषयों का पाठ्यक्रम ऐसा व्यापक हो कि वह विद्यार्थियों की विभिन्न आवश्यकताओं के अनुकूल सिद्ध हो सके। इस दिशा में कुछ कार्य बहुउद्देशीय माध्यमिक शालाओं में किया गया है। प्रत्येक छात्र नेता नहीं बन सकता; किन्तु प्रत्येक में दूसरे से आगे बढ़ने की तथा यथाशक्ति उत्तम कार्य करने की प्रवृत्ति होती है। अतः अच्छे व योग्य शिक्षक का एक गुण यह हो कि वह बच्चे में नेतृत्व के गुणों को पहचाने व उन्हें प्रोत्साहित करे।

शिक्षक को प्रत्येक छात्र का पहले गहन अध्ययन करना चाहिये, उसकी विशिष्ट योग्यताओं व भावों को समझने का प्रयत्न करना चाहिये और तब बाद में उन्हें अपनी योग्यता के प्रदर्शन के अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिये। वह इस योग्य हो कि प्रत्येक बालक में जो सर्वोत्तम हो उसे निकलवा सके, क्योंकि प्रत्येक में कुछ-न-कुछ योग्यता तो अवश्य रहती है।

संग्रहालय के माध्यम से बाल-शिक्षण

**(रमेश चन्द्र शर्मा, सहायक संग्रहाध्यक्ष,
राज्य संग्रहालय, लखनऊ)**

संग्रहालय के स्थापन की परिकल्पना सर्वप्रथम विलियन जोन्स ने १७८४ ई० में की। किन्तु संग्रहालय की वास्तविक रूपरेखा हमारे सम्मुख १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में ही आती है। प्रारम्भ में उनका उद्देश्य ऐतिहासिक तथा कलात्मक वस्तुओं का संरक्षण था। किन्तु संग्रहालय का शैक्षणिक महत्व भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आधुनिक युग में संग्रहालयों का बहुमुखी प्रयोजन हो गया है और इनके द्वारा मुख्यतः तीन उद्देश्यों के पूर्ति मानी जाती है :—पहला संग्रह तथा रक्षण, दूसरा शिक्षण और तीसरा मनोरंजन। यों भी कहा जा सकता है कि अपने संग्रह के माध्यम से मनोरंजनात्मक शैली से ज्ञानार्जन कराना संग्रहालय का मुख्य ध्येय है। विशेषतः बच्चों की शिक्षा में संग्रहालय का स्थान अनिवार्य माना जाने लगा है।

प्रायः देखा गया है कि बच्चे प्रारम्भ से ही पुस्तकों से दूर भागते हैं और अध्ययन उन्हें भार प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें इस ढंग से सिखाया पढ़ाया जाये कि समुचित ज्ञान भी हो जाय तथा उनका मन भी लगा रहे। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये श्रव्य दृश्य (Audo visual) ज्ञान की परिपाटी का प्रचलन हुआ। बच्चों की अभिरुचि ध्यान में रखते हुए शिक्षण की पद्धति भारत में प्राचीन काल से चली आती है। पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की कहानियां बच्चों को मनोनुकूल ढंग से नीति की व्याख्या करने के लिये ही लिखी गई। इसीलिये तो ग्रन्थकार ने उनका उद्देश्य लिखा है कि कहानियां बहाना मात्र है, नीति का उपदेश ही वास्तविक लक्ष्य है। 'कथाच्चलेन बालानां नीतिस्तदिह कस्यते'। दूसरे शब्दों में इसे शिक्षा के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि कहा जा सकता है।

पाश्चात्य देशों में संग्रहालयों का बहुत प्रचलन है जिन्हें बच्चे बड़े चाव से अपने अविभावकों के साथ देखने जाते हैं और संग्रहालयों (जिन्हें कुछ लोग कौतुहलपूर्ण वस्तुओं के बारे में सहज में ही ज्ञानार्जन कर लेते हैं। वहां स्वतन्त्र रूप से बने बाल संग्रहालय भी पर्याप्त है। साथ ही बड़े-बड़े संग्रहालयों में भी एक बाल-विभाग देखने को मिलता है। इनमें अनेक प्रकार

की ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी अनुकृतियां प्रदर्शन दीर्घायों (Exhibit Galleries) में प्रदर्शित रहती हैं। भारत सरकार ने बाल-संग्रहालयों के संगठन की ओर ध्यान दिया है और दिल्ली में एक विशाल बाल-संग्रहालय बन रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी बाल-शिक्षा में संग्रहालयों के योगदान के महत्व को स्वीकार करते हुए चार नगरों में शैक्षिणक संग्रहालयों की स्थापना की है। ये स्थान हैं मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, इटावा और देवरिया। राजधानी (लखनऊ) में मोतीलाल नेहरू बाल-संग्रहालय है।

इन संग्रहालयों में अनेक प्रकार के खेल-खिलौनों के अतिरिक्त पशु जगत्, वनस्पति जगत्, भौतिक विज्ञान, सामाजिक ज्ञान तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक अनुकृतियां तथा चित्र हैं जिनसे बच्चे खेलते-खेलते मुख्य तथ्यों के बारे में जानकारी कर लेते हैं। लखनऊ के बाल-संग्रहालय में बच्चे की आयु के अनुसार उसके स्वास्थ्य, भोजन आदि के बारे में जिस सरल रीति से प्रकाश डाला गया है, वह वस्तुतः सराहनीय है।

उपयोग के ढंग—

बच्चों को शैक्षणिक तथा बाल-संग्रहालय तक ही सीमित रखना अभीष्ट नहीं है, अपितु उनकी अभिरुचि उच्च-स्तर के संग्रहालयों की ओर भी बढ़ानी चाहिए। यदि इसमें बाल-सुलभ मनोरंजनों का अभाव हो तो कुछ अन्य उपायों से इनकी पूर्ति वांछनीय है, ताकि बच्चे संग्रहालय की ओर स्वतः आकृष्ट हो सकें। हमारे प्रदेश में राज्य संग्रहालय लखनऊ के अतिरिक्त मथुरा, प्रयाग, सारनाथ और काशी विश्वविद्यालय में उच्चस्तर के संग्रहालय हैं। इनसे भी बाल-शिक्षण में उच्चकोटि का लाभार्जन किया जा सकता है।

इन सभी संग्रहालयों में प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुएँ संग्रहीत हैं। राष्ट्र प्रेम की जागृति के लिए भारत के प्राचीन इतिहास के ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। बच्चे की ग्राह्य शक्ति भी बहुत तीव्र होती है। अच्छे बुरे संस्कारों का उसके मानसपटल पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि पुरातत्व संग्रहालयों के माध्यम से हम उसे अपने गौरवमय अतीत से परिचित करायें। इससे उसका उत्साह तथा मातृभूमि के प्रति आदर-भाव बढ़ेगा। चित्र प्रदर्शिनी के कक्षों से हम उसे कला के प्रति जिज्ञासु बनायें तथा शस्त्र दीर्घाओं में शस्त्रों के प्रयोग व युद्ध स्थल आदि के बारे में बतायें। इससे उसे रोचक ढंग से इतिहास का ज्ञान तो होगा ही साथ ही उसमें देश प्रेम निर्भयता, बलिदान आदि सद्गुणों का विकास भी होगा।

पुरातत्व अवशेषों पर उत्कीर्ण घटनाक्रमों व कथानकों का बच्चों की शिक्षा के लिए सदुपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए राज्य संग्रहालय लखनऊ के पुरातत्व संग्रहालय में एक गुप्तकालीन शीर्ष पट्टी है जिस पर महाभारत में उल्लिखित भीम और जरासन्ध के युद्ध उत्कीर्ण हैं। लड़ाई देखने में बच्चों की स्वाभाविक रुचि होती है। इस पट को देखने से गुप्त काल के, महाभारत के तथा तत्कालीन वीरों के बारे में यथेष्ट बताया जा सकता है। हां, हमारा आधार लड़ाई का ही रहे जिससे कि बच्चे का मन ऊबने न लगे। इसी प्रकार कुछ अन्य मूर्तियां हैं जिन पर भगवान बुद्ध की जीवन-घटनाओं का अंकन है तथा कुछ ऐसे भी प्रस्तर पट हैं जिन पर जातक व अन्य पौराणिक कथाएँ उत्कीर्ण हैं। इन प्रस्तर खण्डों की मूक भाषा बच्चे को सहज में ही अपनी कहानीं सुनाती चली जाएगी और बच्चे भगवान बुद्ध के उपदेश तथा अपने अन्य पूर्वजों के बारे में विनोदपूर्ण ढंग से परिचित हो जाएँगे।

पैसे भी बच्चों को कम प्रिय नहीं। आज के सिक्के और प्राचीन काल के सिक्कों के अन्तर व प्रचलन को भी रुचिक ढंग से बताया जा सकता है। राज्य संग्रहालय की मुद्रा-वीथिका (Coins Gallery) में ई० पू० ८०० से लेकर १९वीं शती उत्तरार्द्ध तक के सिक्के प्रदर्शित हैं और कुछ अन्य मुद्राओं के प्रदर्शन की भी योजना है। प्रायः देखा गया है कि प्रदर्शन वीथिकाओं में लगी मिट्टी आदि की आकृतियों में बच्चे अपनी विशेष अभिरुचि रखते हैं। इनके माध्यम से इन्हें विभिन्न स्थानों में प्रचलित भारतीय वेश-भूषा तथा रीति- परम्पराओं के बारे में बहुत-कुछ बताया जा सकता है। वस्त्रों के परिधान के प्रकार, उनमें समय के अनुसार हुई प्रगति तथा परिवर्तन का ज्ञान भी सामने प्रदर्शित कलापूर्ण व सुन्दर रंग-विरंगे वस्त्रों से कराया जा सकता है। लेखन कला का परिचय संग्रहालय की हस्तलिपियों के प्रदर्शन-कक्षों में देखने को मिलेगा। भागवत पुराण की ७५ फीट लम्बी एक हस्तलिखित रोल है जिस पर बड़े सूक्ष्म व सुन्दर अक्षरों में सम्पूर्ण पुस्तक लिखी हुई है। विशेषता यह है कि १८ हजार श्लोकों के ग्रन्थ के लेखन में कहीं भी काट-पीट नहीं मिलती। कुछ अन्य हस्तलिपियां है जिनमें सुन्दर लेख के साथ घटनाओं के चित्र भी प्रदर्शित हैं। इन सब उदाहरणों से बच्चे को सुलेख के प्रति सतर्क तो किया ही जा सकता है, साथ ही प्राचीन ग्रन्थों का परिचय भी होना स्वाभाविक है।

इसी प्रकार वाद्य यन्त्रों की वीथिका नली में तत (तारवाले बाजे), अनबद्ध (पीट कर बजाये जाने वाले बाजे) और सुषिर (मुंह से बजाये जाने

वाले बजे) वाद्य यन्त्रों को बड़े सुन्दर ढंग से सज्जित किया गया है। भारतीय संगीत शास्त्र के विद्यार्थी के लिए तो यह वीथिका उपादेय सिद्ध होगी ही, साथ ही छोटे बच्चों के लिये भी इसका ज्ञानवर्द्धक महत्व कम नहीं है। शस्त्रास्त्र वीथिका में प्राचीनतम काल से २० वीं शती के पूर्वार्द्ध तक के भारतीय युद्ध यन्त्र प्रदर्शित हैं, जो बच्चों की इतिहास के प्रति रुचि जाग्रत करने के साथ उनकी अनेक प्रकार की जिज्ञासा भी शान्त करते हैं। कुछ ऐसे भी उपकरण हैं जिन पर लेख उत्कीर्ण हैं और इनसे पता लगता है कि उनका प्रयोग कब, किसके द्वारा और कहाँ हुआ।

संग्रहालयों का जीव इतिहास अथवा प्राणि-शास्त्र विभाग (Natural History Section) बच्चों को विशेष प्रिय होता है। उत्तर प्रदेश के संग्रहालयों में केवल राज्य संग्रहालय में ही यह विभाग है। बच्चों का यह प्रधान आकर्षण केन्द्र है। उनके इस आकर्षण से लाभ उठा कर उन्हें रोचक ढंग से पशु-पक्षी तथा अन्य प्राणि-जगत् का ज्ञान कराया जा सकता है। कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें एक स्थान से पकड़ कर यदि हजारों मील दूर दूसरे स्थान पर छोड़ दिया जाय तो अपनी जन्म भूमि में पुनः वापिस जाने की चेष्टा करती है। इन्हें यात्री मछली (Traveller fish) कहा जाता है। इसी प्रकार एक मछली ऐसी भी है जिसके छूने से बिजली की तरह झटका लगता है। इसे बिजली की किरण (Electric Ray) बोलते हैं। एक प्रदर्शन-कक्ष में बड़े रोचक ढंग से दिखाया गया है कि असहाय तथा छोटे जन्तुओं को प्रकृति अपने अनुरूप वर्ण प्रदान कर किस प्रकार रक्षा करती है।

सर्प जितने अधिक भयंकर होते हैं उनको देखने के लिये मन में उतना ही अधिक कौतूहल भी होता है और बच्चों में तो और भी अधिक। संग्रहालय के दो प्रदर्शन-कक्षों में यह दिखाया गया है कि विषैले तथा बिना ज़हर के सांप कौन से हैं। इससे न केवल बच्चे की जिज्ञासा शान्त होती है, और मनोरंजन होता है, अपितु यह आत्म-विश्वास बढ़ता है कि सभी सांपों के काटने से मृत्यु सम्भव नहीं। सांप के काटने से जो मृत्यु होती है उसमें मनोवैज्ञानिक भय का भी प्रमुख स्थान है। इन प्रदर्शन-कक्षों के माध्यम से इस भय को कम करने की चेष्टा की गई है। अजगर का शिकार करने का ढंग भी बड़े रोचक ढंग से दिखाया गया है। पक्षियों की वीथिका में जहाँ एक ओर पक्षि-समुदाय अपने प्रकृत वातावरण में बहुल संख्या में बैठा दीख पड़ता है वहाँ दूसरी ओर यह भी दिखाया गया है कि ऋतु-परिवर्तन तथा अन्य किसी कारण से क्षुब्ध होकर चिड़ियां हजारों मील के प्रवास की यात्रा पर कटिबद्ध हो जाती हैं। कौन सी चिड़िया किस ऋतु में किस स्थान से

किस देश के लिये प्रवास करती है, इसका संसार के मान चित्र पर रोचक ढंग से प्रदर्शन किया गया है। अपने न खाने के स्वभाव के अनुसार पक्षियों को चोंच के विकास का प्रदर्शन भी एक पट पर दर्शनीय है।

पक्षियों के उपरान्त स्तनपायी (Mammals) जीवों की वीथिका में प्राय: सभी प्राणी अपने प्राकृतिक वातावरण में बड़े सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किये गये हैं। इनके प्रदर्शन से बच्चे को उनकी आकृति तथा रहने के स्थान व अन्य स्वभावगत विशेषताओं का पता चल जाता है। इसी प्रकार कुछ अन्य भी ऐसे कलात्मक पदार्थ हैं जिनके माध्यम से ज्ञान व मनोरंजन दोनों की उपलब्धि हो सकती है।

स्वागतम—

यहाँ तक संकेत कर देना भी आवश्यक होगा कि संग्रहालयों में प्राय: समस्त प्रदर्शित वस्तुओं पर सूचनात्मक छोटे-बड़े पट लगे हैं जिन्हें यदि बच्चे न समझ पाएं तो शिक्षित अभिभावक उन्हें पढ़ कर बच्चे को अधिक ज्ञान करा सकते हैं। कुछ संग्रहालयों में प्रदर्शन व्याख्याता (Guide lecturer) भी नियुक्त हैं जो प्रदर्शित वस्तुओं के बारे में जानकारी कराते हैं तथा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हैं। संग्रहालयों से पूर्णरूप में शैशिक्षण लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि जब बच्चे किसी विद्यालय आदि से सामूहिक रूप में जायें तो संग्रहालय के अधिकारियों को इसकी पूर्व सूचना दे दी जाए ताकि बच्चों को संग्रहालय देखने की विशेष सुविधायें प्रदान की जा सकें। आइये, संग्रहालय की वीथिकायें छात्र, शिक्षक तथा अभिभावकों का स्वागत करती हैं।

* * *

परिचायिकी

श्री काशिनाथ त्रिवेदी कृत पुस्तकें—

रचनात्मक सेवा में संलग्न त्रिवेदी जी विचारक और लेखक भी हैं। शिक्षण-सेवा में इनका संपर्क भारत में बाल-शिक्षा के प्रथम प्रयोगी भावनगर निवासी श्री गिजुभाई बधेका से रहा। तत्पश्चात् इन्हें साबरमती आश्रम में दो वर्ष तक गांधी जी से संपर्क का सौभाग्य प्राप्त रहा। यों इनकी लेखनी से निकली पांच पुस्तकें हमारे सामने हैं :

(क) टवलाई के ग्रामभारती आश्रम से प्रकाशित

१—पुराने बोल : नये मोल : (१३० पृ०, १ रु० ५० पैसा) में धार्मिक साहित्य तथा दर्शन से २५ उद्धरणों की नये ढंग पर व्याख्या की गई है। संख्या में ऐसे उद्धरणों की प्रधानता है जो मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का आदेश देते हैं। अठारहवें उद्धरण में गुरु-प्रशस्ति है और उपनिषद से उद्धृत उन्नीसवें उद्धरण में गुरु-शिष्य के पारस्परिक संबंध का आदर्श बताया गया है। चौबीसवें में सरस्वती वंदना है। पच्चीसवें और अंतिम उद्धरण—

"शान्ताकारं भुजग शयनं पद्म नाभं सुरेशम्········"द्वारा लोकतंत्र के आदर्श की मौलिक व्याख्या की गई है।

२—लोकतंत्र का विष्णु कौन ? : (२० पृ०, २० पैसे) उपर्युक्त पुस्तक के अंतिम उद्धरण का पुस्तकाकार संस्करण है। हमारी नयी नागरिकता को राष्ट्रीय संस्कृति के आधार मिलने चाहिये। सो इस छोटी-सी पुस्तक द्वारा पाठक को मिलते हैं।

३—प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा : (९२ पृ०, १ रु०) स्व० गिजुभाई बधेका की गुजराती पुस्तक का हिंदी संस्करण है। यह पुस्तक पुरानी होकर भी अपने विषय में प्रामाणिक है और प्रारम्भिक शालाओं के हिन्दी शिक्षकों का व्यावहारिक मार्ग दर्शन कराती है।

४—दिवास्वप्न : (११२ पृ०, १ रु० २५ पैसा) भी बधेका जी की गुजराती पुस्तक का हिंदी संस्करण है। इसे बधेकाजी की आत्मकथा ही मानिये, क्योंकि इसमें लेखक महोदय एक नवयुवक शिक्षक द्वारा शिक्षण में अपनी ही कठिनाइयों और सफलताओं की कहानी कहते हैं। पुस्तक रोचक है और ज्ञानवर्द्धक भी। इसे भी प्रत्येक पुस्तकालय में होना चाहिये।

(ख) नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १४ से प्रकाशित

५—बापू की विराट वत्सलता : (८५ पृ०, १ रु०) में त्रिवेदी जी ने गांधी जी की वत्सलता की अनुभव-जन्य कहानी कही है। सार्वजनिक सेवाओं में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी वह अपने संपर्क में आये व्यक्तियों की निजी कठिनाइयों का कितना खयाल रखते थे, उन्हें अपने प्यार से कितनी सांत्वना, कितना प्रोत्साहन, देते थे—इसमें हमें उनके आकर्षक व्यक्तित्व, उनका मानव मात्र के हृदय सम्राट बन जाने, का बीजमन्त्र मिलता है। जो गांधीजी विश्व के रंगमंच,पर कर गये, वही विद्यामन्दिर के भीतर प्रत्येक शिक्षक के लिये संभव है। अतएव शिक्षक भाई-बहिनों के लिये यह पुस्तिका पठनीय है।

श्री जुगतराम दवेकृत 'आत्मरचना अथवा आश्रमी शिक्षा' तीन भागों में : (पहला भाग, आश्रमवासी के बाह्य आचार, १२१ पृ०; दूसरा भाग; आश्रमवासी की अन्तरश्रद्धा, १३४ पृ०; तीसरा भाग, आश्रमवासी के सामाजिक सिद्धान्त, १५४ पृ०। प्रत्येक भाग का मूल्य १ रु० ५० पैसा; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद–१४)

मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गयी थी। हिन्दी संस्करण के लिये अनुवाद श्री रामनारायण चौधरी ने किया है।

देश में शिक्षा का विस्तार बढ़ रहा है। परन्तु शिकायत बढ़ती जा रही है कि स्तर गिरता जा रहा है। इस गिरावट में सबसे अधिक चिंताजनक है होनहारों के नैतिक विकास के संबंध में माता-पिता तथा शिक्षकों की उदासीनता। देश के स्वर्णिम अतीत में शिक्षा के लिये वन्य आश्रम ही थे जहाँ गुरु-शिष्य की सहचर्या के वातावरण में शिष्य का मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास होता था। इस प्रणाली का एक आधुनिक संस्करण गुरुकुल के नाम से श्रद्धानन्द जी ने स्थापित किया, दूसरा प्रयोग रवीद्र जी ने शांति निकेतन में किया, तीसरा गांधीजी ने साबरमती तथा सेवाग्राम में किया और चौथे का नेतृत्व जुगतराम जी दवे गुजरात के सूरत जनपद में वेड़छी ग्राम आश्रम द्वारा कर रहे हैं। तीनों भागों में आश्रमचर्या द्वारा दवे जी ने आश्रमवासी होनहारों के नैतिक तथा मानसिक विकास के जो सुझाव पुस्तक के तीनों भागों में दिये हैं, वे सब उनके अनुभव पर आधारित हैं।

इस पुस्तक का अध्ययन शिक्षक बन्धुओं के लिये तो जरूरी है ही, शिक्षा-नीति के निर्माताओं के लिये भी उपादेय है। वेड़छी आश्रम के अनुरूप देश में इने-गिने ही आश्रम होंगे और प्रत्येक ग्राम में एक का होना आवश्यक है। तो आवश्यकता इस बात की है कि वेड़छी से प्राप्त पाठों के आधार पर हम प्रत्येक ग्राम में स्व० प्रेमचंद के कल्पित प्रेमाश्रम की स्थापना कर सकें।

परमानन्द जी पटेल कृत 'उत्तर ध्रुव से गंगा' (पृ० १९०, राजकमल प्रकाशन, ८ रुपया) स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने सबसे पहले वैदिक साहित्य के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उत्तरी ध्रुव प्रदेश ही आर्यों की आदि भूमि थी। मध्य एशिया को आर्यों की आदि भूमि मानने का पक्ष कुछ समय तक अधिक मान्य रहा। फिर डा० सम्पूर्णानन्द समेत कई भारतीय विद्वानों ने भारत के पंचनद प्रदेश को ही आर्यों की आदि भूमि मानने के पक्ष में बहुत से तर्क दिये हैं। ये तर्क यहाँ तो मान्य हैं, परन्तु भारत के बाहर नहीं। इधर भूगर्भ शास्त्रियों, भूगोलज्ञों और सागरीय विशेषज्ञों ने जो खोज की है, उससे पता चला है कि किसी समय ध्रुव प्रदेश हिम से ढका न था, उसमें विशाल वन भी थे, जो इस प्रदेश में खनिज कोयला मिलने पर सिद्ध हुआ है। कई सौ वर्षों से सागरीय लहरों और ज्वार-भाटों के प्रभाव से इस प्रदेश का शीत निरन्तर घट रहा है। यों इन विशेषज्ञों की खोज भी वैदिक साहित्य से प्राप्त अनुमानों का समर्थन करती दिखती है। भाषा वैज्ञानिक तो जर्मनी से यूनान, ईरान और भारत तक एक भाषा का प्रभाव मानते ही हैं। अतएव पटेल जी की यह नयी पुस्तक भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के विद्यार्थियों के लिये बड़े काम की है।

वैद्यनाथ जी अग्निहोत्री कृत 'ब्रह्मतत्व' : लेखक ही (शिवनिवास, चौक, लखनऊ) प्रकाशक हैं और श्रद्धा एवं मनन ही इसका मूल्य रखा गया है अर्थात् जिज्ञासुओं को यह पुस्तक मुफ्त मिल सकती है।

देश के स्वर्णिम अतीत में सैकड़ों वन्य आश्रमों और गुरुकुलों में पारलौकिक विषय पर विचार-विमर्श होते-होते वे ग्रंथ निर्मित हुए जो उपनिषद् कहलाते हैं। ये सब भारतीय दर्शन के रूप में विश्व-साहित्य की शाश्वत निधि है। इनके आधार पर अग्निहोत्री ने दीर्घ अध्ययन तथा चिंतन के पश्चात् २४८ पृष्ठों की यह पुस्तक अपने ही व्यय से प्रकाशित की है। जिज्ञासुओं को इसके अध्ययन से शांति तो मिलती ही है, यह पुस्तक भारतीय दर्शन के विद्यार्थियों के लिये भी बड़े काम की है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर कृत शारदीया : (प्राक्कथन और परिशिष्ट समेत १२० पृष्ठों का सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित ऐतिहासिक नाटक, १ रु० ५० पैसा)

स्वर्गीय शिक्षक-शिरोमणि लक्ष्मीनारायण माथुर के सुपुत्र जगदीशचन्द्र जी माथुर की गणना भारत के उन थोड़े-से उच्च अधिकारियों में है जो मिस्लों के बाहर भी लिखते-पढ़ते रहते हैं। इनका **कोणार्क** पढ़ने के बाद **शारदीया** के पढ़ने का सौभाग्य हमें हाल ही प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार एक

कलाकार ही शिल्पी के रूप में दु:खान्त **कोणार्क** का नायक है, उसी प्रकार **शारदीया** का नायक एक बुनकर के रूप में कलाकार ही है। ललित साहित्य के कलाकार की जो प्रतिमा **कोणार्क** में प्रस्फुटित हुई दिखती है, वह **शारदीया** में परिपक्व हो गई है। दोनों नाटक ऐतिहासिक हैं। **शारदीया** में ऐतिहासिक अंश की प्रधानता है, परन्तु नायक काल्पनिक ही है।

सत्य सुंदर होने पर ही जन-मानस पर प्रभाव डालकर शिव (कल्याण-कारक) होता है। कलाकार कल्पना का ही सहारा लेकर सत्य को सौंदर्य प्रदान कर पाता है। सो **शारदीया** के काल्पनिक पात्र नरसिंह राव द्वारा ही उस शाश्वत सत्य को सौंदर्य प्रदान किया गया है जिसका निर्वाह करके हम और हमारे होनहार देश की नवजात स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए आज के भय-त्रस्त संसार का उद्धार कर सकते हैं। यह सत्य इस प्रकार है।

मानव दो परस्पर विरोधी वृत्तियों का पुंज है—पाशविक और दैवी। बुद्धि का संबल पाकर पाशविक वृत्तियां दानवी हो जाती हैं। इनकी विजय से परिवार नष्ट होते हैं, देश परतंत्र होते हैं, संसार में महाप्रलय होता है। **शारदीया** में शर्जेराव घाटगे और दौलतराव सिंधिया इन वृत्तियों के प्रतीक बन कर रंगमंच पर हमारे सामने आते हैं। महत्वाकांक्षा मानव का स्वभाव है। जब यह महत्वाकांक्षा अहं को भूल कर किसी सर्वमान्य आदर्श की खोज में सृजनशील होती है, तो ऐसी महत्वाकांक्षा से प्रेरित मानव किसी-न-किसी कौशलयुक्त श्रम में संलग्न हो जाता है जिसे रचनात्मक या उत्पादक कह सकते हैं। ऐसा श्रमिक अपने श्रम में आनंद की अनुभूति करता है और जाति, धर्म, काल और देश के परे सभी रचनात्मक सेवा में लगे मानव उसके भाई-बहिन हो जाते हैं। **शारदीया** में नरसिंह राव इस वृत्ति का प्रतीक है। वह हिंदू-मुसलमान में कोई भेद नहीं मानता। शारदीया की चाह उसे कुशल श्रमिक बनने की ओर प्रवृत्त करती है। परंतु अंत में वह अपनी कला ही का पुजारी हो जाता है। यह रंगमंच ही की बात नहीं; मानव इतिहास में हमें इसके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। चिर-परिचित तुलसीदासजी के शुभनाम का उल्लेख यथेष्ट है।

कोणार्क और **शारदीया**, दोनों अभिनेय होकर हिंदी में नाट्य-साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करते हैं। लेखक इन्हें अभिनेय बनाने में तो सफल हुए ही हैं, पुस्तकों के आगे-पीछे प्रांक्कथन तथा परिशिष्ट द्वारा शिक्षक-पुत्र होने के नाते इन्होंने होनहार कलाकारों का मार्ग-दर्शन भी किया है।

जगदीश चंद्र जी इतने वर्षों तक मिस्लों से लड़ने के पश्चात् भी अपनी कलाकारिता का विकास करते रह सके—यह हम हिंदी सेवियों के लिए सौभाग्य की बात है और लेखक के लिए हार्दिक बधाई की।

शारदीया प्रसिद्ध मराठी साहित्यिक मामा वरेरकर को समर्पित है "जवानी जिनका पीछा ही नहीं छोड़ती"। वरेरकर जी अब स्वर्गवासी हैं, तो भगवान से प्रार्थना है कि लेखक महोदय भी इन महान् साहित्यिक के समान दीर्घजीवी होकर अपने पूज्य से बढ़ कर साहित्य-सेवा कर सकें।

सौ० कुमुद झिंगरण कृत अभिसार : लेखिका (मीरा सदन, मिर्जामंडी, चौक, लखनऊ) द्वारा ही प्रकाशित। १०९ पृ०, २ रु० २५ पैसा।

सौ० कुमुद झिंगरण उदीयमान कवियित्री हैं। उषा-अनिरुद्ध की पौराणिक गाथा पर आधारित यह खंडकाव्य उनकी पहली रचना है। इस कारण इसमें अपरिपक्वता का आभास मिलता है। परंतु रचना में भावुकता, सहृदयता और कल्पना के गुण बीज-रूप में दिखते हैं। इसलिए आशा है कि सरस्वती-सेवा में संलग्न रहेंगी तो सफल कवियित्रियों में इनकी गणना भी होने लगेगी।

अंग्रेजी की एक पुस्तक और एक पत्रिका :

प्रोग्रेसिव एजुकेशन के लेखक हैं कश्मीर से संपादकीय परामर्शदात्री के सदस्य श्री पृथ्वीनाथ राज़दान। यही बंधु चिनक्राल मोहल्ला, श्रीनगर से प्रकाशक भी हैं (१५० पृ०, ४ रु० ९० पैसा)। लेखक बहुत वर्षों तक शिक्षण करने के पश्चात् शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर लिखने लगे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के अधिकांश अध्याय लेखों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। सामूहिक रूप में इनसे पाठक को शिक्षा-समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश प्राप्त होता है। शिक्षकों के लिए इसका अध्ययन उपादेय होना चाहिए।

एजुकेशनल हेराल्ड : मासिक पत्रिका; प्रकाशक, श्री महेश टीचर्स कालेज, जोधपुर। इसके अवैतनिक संपादक हैं राजस्थान के अवकाश प्राप्त संयुक्त शिक्षा निदेशक शिष्यवर श्री रामप्रसाद श्रीवास्तव। वार्षिक शुल्क है १५ रु०।

पत्रिका का पहला अंक हमारे सामने है। लेखों का स्तर यथेष्ट ऊंचा है। संपादक महोदय अंग्रेजी के कुशल और सजीव लेखक हैं, जिस कारण पत्रिका पर उनकी योग्यता की छाप है। आशा है यह पत्रिका शिक्षा के सामयिक साहित्य में स्थायित्व प्राप्त करेगी।

दो पत्रिकाएं :

ज्ञान जिज्ञासा : शैक्षणिक मासिक पत्रिका; संपादक, विपिन बिहारी कालेज के अवकाश-प्राप्त प्रिंसिपल श्री प्रफुल्ल कुमार चटर्जी; प्रकाशक, श्री सुमित्रा नंदन गुप्त, मानस मुद्रण, झांसी; वार्षिक शुल्क १० रु० ।

आजकल विभिन्न विषयों पर विद्यार्थियों का सामान्य अथवा पूरक ज्ञान बहुत आवश्यक है । यह पत्रिका इस अभाव की पूर्ति करती है । अतएव विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की है । यदि विद्यार्थियों के मध्य इस पत्रिका की मान्यता बढ़ जाय, तो सुझाव है कि इसका वार्षिक शुल्क घटा दिया जाय । अभी तो विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के लिए ९ रु० है । परंतु घटने की गुंजाइश है, यदि इसे ग्राहक और विज्ञापक मिल जांय । प्रबंधकों का इस ओर ध्यान देना आवश्यक है ।

भाषा का द्विवेदी स्मृति अंक : केंद्रीय हिंदी निदेशालय नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ।

आचार्य द्विवेदी जी के भक्तों के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है कि केंद्रीय हिंदी निदेशालय से प्रकाशित त्रैलासिक **भाषा** के संचालकों ने उनकी जन्मशती के उपलक्ष में प्रस्तुत स्मृति अंक प्रकाशित किया है । एक अभिनंदन ग्रंथ द्विवेदी जी के जीवनकाल ही में प्रकाशित हुआ था, जब हिंदी को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त न थी । स्मृति अंक अब प्रकाशित हुआ है जब हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है । लेखों का चयन, संपादन और चित्रण कौशल तथा लगन से किया गया है । परंतु एक बात खलती है जिस पर न द्विवेदी जी की स्वर्गीय आत्मा प्रसन्न हो सकती है, न वे भक्त ही जिनके लेख इस अंक में प्रकाशित हैं और न वे हजारों-लाखों हिंदी प्रेमी ही जो द्विवेदी जी को आधुनिक हिंदी का निर्माता मानते हैं ।

१ से ९ तथा शून्य तक अंक और गणना की दशमलव प्रणाली भारतीय गणितज्ञों ही की समस्त संसार को देन है । ये अंक जिस रूप में योरप पहुँचे, उसे अरेबिक न्यूमरल्स कहते हैं क्योंकि अरबों से योरपियों ने इन्हें पाया; और अरबों ने भारतीयों से, तो वे इन्हें हिंदुसे कहते हैं । योरपीय भाषाओं का सारे संसार में प्रचार हुआ तो अधिकांश देशों ने हमारे अंकों के योरपीय रूप ही अपनाये । अरबी, फारसी में लिखावट दाहिनी से बांयीं ओर होती है और जापानी तथा चीनी लेख दाहिने से बांयें तथा ऊपर से नीचे लिखे जाते हैं । हमारे अंक गणना के लिए बांयें से दाहिने लिखे जाते है । जो कैफियत रोमन लिपि की है, वही नागरी लिपि की भी है । सो अरबी, फारसी तथा चीनी,

जापानी भाषाओं ने अरेबिक न्यूमरल्स दशमलव प्रणाली की रक्षा के लिए अपनाये; क्योंकि उनकी लिपियां इस प्रणाली के अनुकूल न थी। हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता मिली है, तो इतना समझ में अवश्य आता है कि अंग्रेजी, फारसी और अरबी के चालू शब्दों को देवनागरी लिपि में व्यक्त किया जाय। परंतु यह समझ में नहीं आता कि हम अपने ही अंक विदेशी रूप में क्यों व्यक्त करें।

हिंदी भाषी राज्यों और विदेशी दूतावासों के हिंदी प्रकाशनों के अंक विदेशी रूप में नहीं छपते। हिंदी की अधिकांश प्रकाशन संस्थाएं इस संबंध में एकमत हैं। तो केंद्रीय शासन के हिंदी विभागों को नीति-परिवर्तन का संकेत मिलता है।

— का० दा०

◆

यतः प्रवृत्तिर्भूताना येन सर्व मिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च सिद्धिं विदंति मानवः ।।
श्रेयान् स्वधर्मो त्रिगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ।।

★ ★ ★

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृत ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

★ ★ ★

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

सम्पादकीय

नीति-निरूपण—

सन् १९२५ की बात है। उत्तर प्रदेश के गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसियेशन के नाम से संगठित हो चुके थे। उत्तर प्रदेश के सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक भी नान-गजटेड एजुकेशनल आफिसर्स एसोसियेशन के नाम से संगठित थे। तब तक ब्रिटिश भारत के प्रांतों को शिक्षा के क्षेत्र में स्वराज्य मिल चुका था; परन्तु अधिकांश प्रांतों के शिक्षक संगठित नहीं हो पाये थे। दक्षिण में मद्रास प्रांत के शिक्षक संगठन में अग्रणी थे, क्योंकि उनकी साउथ इंडिया टीचर्स यूनियन का अस्तित्व सन् १९०८ से है। बाकी प्रांतों में केवल बंगाल के शिक्षक सन् १९२१ में और बिहार तथा बम्बई प्रांत के शिक्षक सन् १९२४ में अपने-अपने संघ बना चुके थे। स्व० देवीप्रसाद खत्री यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसियेशन के जन्मदाता थे, दक्षिण के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री स्व० आचार्य पुण्डी शेषाद्रि उन दिनों काशी विश्व विद्यालय में अँगरेजी के आचार्य थे और सन् १९२५ में अ० भा० कांग्रेस का अधिवेशन भी कानपुर में होने को था। इस प्रकार देवीप्रसाद जी खत्री तथा आचार्य पुण्डी शेषाद्रि के सहयोग से उस वर्ष के अन्तिम सप्ताह में भारतीय शिक्षकों का पहला सम्मेलन कानपुर में हुआ और उस संस्था का जन्म हुआ जो आल इंडिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होने पर २६ जनवरी, १९५० से भारतीय संविधान क्रियाशील हुआ जिसके अनुसार हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा मान ली गई और पन्द्रह वर्ष के भीतर सरकारी कामों में इस भाषा के प्रयोग की सिद्धि का आदेश दे दिया गया।

हमारी अखिल भारतीय संस्था का हिन्दी नामकरण **भारतीय शिक्षक संघ** हो सकता है। पिछले कुछ वर्ष के भीतर संघ का एक भवन कानपुर में बन गया है और एशिया फाउंडेशन नामक एक अमरीकी संस्था का अनुदान पा कर संघ ने **इंडियन एजुकेशन** नामक मासिक मुखपत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया है।

अंगरेजी मुखपत्रिका के चालू होने पर हिन्दी मुखपत्रिका का प्रकाशन यों आवश्यक समझा गया कि अधिकांश भारतीय शिक्षक या तो अँगरेजी जानते नहीं या कम जानते हैं। हिन्दी जानने वाले शिक्षकों की संख्या अहिन्दी भाषी राज्यों में भी बढ़ रही है और इन सबकी बहुमुखी सेवा भी भारतीय शिक्षक संघ का कर्त्तव्य है। अतएव केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय से अनुदान पाकर हम संघ की हिन्दी मुखपत्रिका भी प्रकाशित कर रहे हैं।

इस बहुमुखी सेवा का प्रथम पक्ष है, यह अटल सत्य प्रचारित करना कि शिक्षण राष्ट्र की प्रमुख रचनात्मक सेवा है। शिक्षण को हम प्रारम्भिक, माध्यमिक, उच्च और प्राविधिक तथा व्यावसायिक अङ्गों में बाँटे हुए हैं। परन्तु राष्ट्र के प्राण सभी अङ्गों में हैं। चेतना-प्राप्त शरीर में जिस प्रकार सब अङ्ग एक-दूसरे की सेवा करते हैं, उसी प्रकार शिक्षा-क्षेत्र में भी सभी शिक्षक एक-दूसरे के सहयोगी हैं। उनके वेतनों में भेद भले ही रहे, परन्तु बिरादरी के भीतर सब एक-दूसरे के बराबर हैं। सर्वोच्च आसन पर बैठे शिक्षक के हृदय में प्रारम्भिक विद्यालय के शिक्षक के प्रति वही संवेदना व्याप्त रहनी चाहिए जो मस्तिष्क की पैरों के प्रति रहती है।

इस संवेदना की व्यावहारिक सिद्धि का साधन संगठन ही है। हम भारतीय शिक्षक तथा अपने शिष्यों के अभिभावक आंशिक रूप में आल इंडिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस के नाम से संगठित अवश्य हैं। परन्तु तथ्य यह है कि किसी भी वर्ग के शिक्षक पूर्णतया संगठित नहीं हैं और अपने देश की साउथ इंडिया टीचर्स यूनियन के अतिरिक्त हमें किसी भी भारतीय राज्य के शिक्षक एक सूत्र में संगठित नहीं दिखते। जिन शिक्षार्थियों की सेवा के लिए हमारा अस्तित्व है, वे अपने माता-पिता के साथ हमें बाँधे हैं। परन्तु सत्य यह है कि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों और अभिभावकों के संगठित सहयोग का प्रायः अभाव ही है। अपने होनहारों की बढ़ती अनुशासनहीनता का रोना तो हम रोते रहते हैं, परन्तु उन साधनों की सिद्धि के लिए सक्रिय नहीं हो पाते जिनके द्वारा हमें अपनी सेवा सफल होती दिखायी दे, हमारे होनहारों का भविष्य उज्ज्वल बन सके और उनके माता-पिता सच्चे सुख का अनुभव कर सकें।

अतएव **भारतीय शिक्षा** के माध्यम से हमें देशवासियों को दो बातों की प्रेरणा देनी है—

१. प्रत्येक छोटे-बड़े विद्यालय के शिक्षक सेवा और मान-रक्षा के लिए संगठित हों। सेवा की सिद्धि के लिए शिष्यों के अभिभावकों का संगठित सहयोग आवश्यक है। अतएव प्रत्येक विद्यालय के शिक्षक, अभिभावक संघ के अस्तित्व का स्वागत तो करें ही, उसे सक्रिय सहयोग की प्रेरणा भी दें।

२. राष्ट्र-सेवा के इस अंकुर का बढ़कर विशाल बटवृक्ष हो जाना भी आवश्यक है। अभी तो हमारा भारतीय शिक्षक संघ वह अनोखा वृक्ष है जिसकी पत्तियों की संख्या तो प्रकाशित होती रहती है, परन्तु डालों और जड़ों के अस्तित्व से हम अभी तक बेखबर रहे हैं। वृक्ष को अपना प्राण-रस जड़ों से ही तो मिलता है जो प्रकाश में नहीं आतीं। इसी प्रकार भारतीय शिक्षक संघ को राष्ट्रसेवा की चेतना मूल रूप में उन प्रारम्भिक शिक्षालयों के

शिक्षकों से मिलनी चाहिए जो देश के पाँच लाख गाँवों की सेवा मूक भाव से कर रहे हैं। अतएव प्रत्येक विद्यालय के शिक्षक तथा अभिभावक संघों का नगर अथवा जिला संघ के स्तर पर संगठित होना आवश्यक है। इसके ऊपर अभिभावक तो प्रादेशिक स्तर पर राज्य के विधान मण्डल से एक-रस हो जाते हैं; परन्तु जिला-स्तर के शिक्षक संघों का राज्य के स्तर पर संगठित होना आवश्यक है। तभी उस भारतीय शिक्षक संघ को प्राणदान मिलेगा जिसका वैधानिक अस्तित्व हम सन् १९२५ से माने हुए हैं।

उपर्युक्त सेवा की प्रेरणा जन-जननी तक पहुंचाने के लिए उस भाषा ही का माध्यम उपयुक्त है जो हमें अपनी माता की गोद से मिली है। विदेशों से ज्ञान-प्राप्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सेवा के लिए अँगरेजी का माध्यम आवश्यक है, परन्तु जनसेवा के लिए हमें हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम ही उपलब्ध हैं। इस समय देश की अधिकांश शिक्षण पत्रिकाओं का माध्यम अँगरेजी ही है, जिसका कटु अर्थ यह होता है कि हम शिक्षक, जिन्हें देश के स्वतन्त्र होने पर अपनी मानसिक स्वतन्त्रता की सिद्धि में पहल करनी चाहिए थी, अभी तक स्वतन्त्रता के पाश में बद्ध है। अतएव हम चाहते हैं कि वे शिक्षण पत्रिकाएँ जो क्षेत्र-विशेष की सेवा कर रही हैं और माध्यम के लिए अँगरेजी अपनाये हैं, तुरन्त या क्रमशः क्षेत्रीय भाषा अथवा हिन्दी का माध्यम अपनायें, तभी उनकी सेवा शिक्षण में लगे बहुसंख्यक भाई-बहिनों तक पहुँच सकेगी।

हमें अँगरेजी से द्वेष नहीं। अँगरेजी का हम पर, हमारी भाषाओं के साहित्य पर, भारी ऋण है। इससे उऋण होने का यही मार्ग है कि विदेशों से उपलब्ध ज्ञान और साहित्य की निधि हम हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से अँगरेजी की जानकारी से वंचित बहुसंख्यक भारतीय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करें। अतएव योजना है कि हम पत्रिका के विशेषांकों द्वारा विदेशों में चालू शिक्षा प्रणालियों, शिक्षक संघों, बालचर दलों, वयस्क शिक्षण व्यवस्थाओं और दीक्षा प्रणालियों जैसे विषयों की जानकारी अपने पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते रहें। परन्तु इतना स्मरण रहे कि हम पर पहला हक राष्ट्रभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा ही का है।

हम चाहते हैं कि क्षेत्रीय भाषाएँ और उनके साहित्य उन्नति तो करें ही, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के मध्य आदान-प्रदान की मात्रा भी बढ़ती रहे। उर्दू को हम अलग भाषा नहीं मानते। विदेशी लिपि के परिधान में वह हिन्दी ही है। अतएव **भारतीय शिक्षा** उर्दू लेखों का स्वागत करेगी, उन पर प्रतिबन्ध देवनागरी लिपि ही का रहेगा। **भारतीय शिक्षा** की सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति पर देश की प्रत्येक प्रमुख क्षेत्रीय भाषा का प्रतिनिधित्व

है। सहयोगियों से अपेक्षा रहेगी कि अपने क्षेत्र की शैक्षिक तथा साहित्यिक गतिविधियों की सूचनाएँ **भारतीय शिक्षा** में प्रकाशनार्थ पहुँचाते रहें। छोटे-छोटे अथवा सुदूर विद्यालयों की सेवा में रत नर-नारियों में गुदड़ी के लाल भी हैं। इन लालों को प्रकाश में लाना, इनके सेवा-विवरण से पाठकों को प्रेरणा देना, इस पत्रिका की सेवा का एक अङ्ग होगा।

हम बड़े भाग्यशाली हैं जो सैकड़ों वर्ष की परतन्त्रता के पाश में बँधे रहने के पश्चात् हमारा देश स्वतन्त्र हो पाया है। नैतिक तथा भौतिक शक्तियों से जर्जर होने पर ही हम विदेशी पाश से मुक्त हो पाये हैं। परन्तु इस जर्जरता से निराश होने का कोई कारण नहीं है। भौतिक विकास के लिए जो स्थिति, विस्तार, जलवायु, भूमि और भूगर्भीय निधि हमें उपलब्ध है उसके सदुपयोग से हम अपनी भौतिक शक्ति बढ़ा सकते हैं। फिर कृष्ण, बुद्ध, रवीन्द्र और गाँधी जैसे विश्ववन्द्य पूर्वजों से प्राप्त पद-चिह्नों पर प्रगति के संदर्भ में चल कर हम वे नैतिक शक्तियाँ भी वढ़ा सकते हैं, जिनके सहारे अपनी भौतिक निधि का सदुपयोग कर सकें और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए अपनी सेवाओं से पड़ोसी राष्ट्रों का भी शक्ति और संयम के पक्ष में मार्ग-दर्शन कर सकें।

इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अग्रसर होने पर हमारे सामने प्रथम समस्या राष्ट्रीय एकता के विकास की आती है। अतएव **भारतीय शिक्षा** को अपनी नीति से इस विकास में योग देना है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से सदिया तक सब शिक्षक हमारे भाई-बहिन हैं, सब विद्यार्थी हमारे धर्म पुत्र-पुत्रियाँ हैं—इस भावना की सिद्धि हेतु सभी लिपि-वद्ध साधनों का सहारा **भारतीय शिक्षा** को लेना है।

हमारे नेताओं ने राष्ट्रीय प्रशासन के लिए लोकतन्त्रीय प्रणाली अपनायी है, तो स्वतन्त्रता की नयी उमंग में इस समय सक्रिय कूटिनीति की धूम है। यह धूम राष्ट्र की रचनात्मक सेवाओं की बहुत बाधक है। इन सेवाओं में शिक्षण की प्रमुखता है और यह एक सेवा ही सेवक के लिए इतनी विस्तृत और भारी है कि इसका निर्वाह करते हुए वैतनिक शिक्षक को कूटिनीतिक चक्र के लिए अवकाश न मिलना चाहिए। इस चक्र की शरण का मान्य विकल्प है शिक्षक-वर्ग का दृढ़ संगठन। इस संगठन के माध्यम से हम अपने भौतिक हितों की रक्षा तो कर ही सकेंगे, अपनी शिक्षण-सेवा का स्तर उन्नत करके राष्ट्र की सच्ची सेवा करने में भी सफल होंगे। अतएव **भारतीय शिक्षा** की नीति वर्ग-संगठन के पक्ष में और सक्रिय कूटनीति के विरुद्ध रहेगी। साथ ही इसके प्रचार-द्वारा विपरीत मत के समर्थकों के लिए भी खुले रहेंगे।

इस अंक में—

श्रद्धेय नेताओं तथा शिक्षाविदों के आशीर्वचन हमारा प्रोत्साहन तथा मार्ग दर्शन करते हैं। एतदर्थ हम इनके कृतज्ञ हैं। आशा है ऐसे ही आशीर्वचन हमें आगे भी मिलते रहेंगे। देवकान्तजी बरुआ के अध्यक्षीय भाषण का महत्व इस बात में है कि जो इन्होंने कहा है वही किया भी है। शिक्षक-पुत्र हैं, शिक्षक रह चुके हैं, उसकी मानसिक पीड़ा के भुक्तभोगी हैं। परमेश्वरदीनजी शुक्ल के भाषण का व्यावहारिक अंश अन्त में है जहां वह श्रोताओं से उनके कर्त्तव्य की बात कहते हैं। उनके 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' पर ग्रन्थ नहीं तो कई अनुभव-जन्य लेख प्रकाशित होने ही चाहिए। एतदर्थ विचारशील पाठक निमन्त्रित हैं। दश आदेश शिक्षक बन्धुओं के लिए बड़े काम के हैं और पुस्तकालयों का महत्व आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा में व्यावहारिक योग देना हमारा कर्तव्य है और मेजर-जनरल इनायत हबीबुल्ला इस ओर हमारे मार्ग-दर्शन के अधिकारी हैं। सौ० कुमुद शर्मा का सर्वेक्षण शैक्षिक नीति-निर्माताओं के लिए बड़े काम का है। कदाचार की व्यापक समस्या पर शिक्षा-शास्त्री सीतारामजी जायसवाल माता-पिता तथा शिक्षक-वर्ग का मार्गदर्शन करते हैं। प्राध्यापक शम्सुद्दीन और श्री रमेशचन्द्र शर्मा अपने-अपने विषय के पंडित तो हैं ही, कुशल लेखक भी हैं। महासमर में हार होने पर भी जापान ने पिछले पन्द्रह वर्षों के भीतर अनुकरणीय उन्नति की है। प्राध्यापक सत्यभूषणजी इस विदेश में हमारे प्रथम प्रतिनिधि हैं। इनका स्फूर्तिदायक तथा मार्गदर्शक लेख पाठकों के सामने है। हमें इनसे आगे के लिए भी आशा है।

आगे की बात—

देश के १७ वर्ष तक स्वतन्त्र रहने पर भी हमारे मध्य हिन्दी में स्थायी अथवा सामयिक शिक्षण-साहित्य का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति के लिए हम कृत-संकल्प हैं। स्तंभों तथा विशेषांकों की योजना अन्यत्र प्रकाशित है। सबसे पहले अहिन्दी भाषी राज्यों के होनहारों में हिन्दी के अध्ययन की अनुकरणीय उमंग की जानकारी हमें होनी चाहिए जिससे हम उनकी सेवा के लिए स्फूर्त हो सकें। अतएव संपादकीय परामर्शदात्री समिति पर सदस्य-बन्धुओं के सहयोग से अगले दो-तीन अंकों के भीतर हम उपर्यक्त पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करना चाहते हैं। जापान में हमें एक प्रतिनिधि बन्धु मिल गये हैं। अन्य विदेशों में भी हम ऐसे ही प्रतिनिधियों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। यों ही **भारतीय शिक्षा** के माध्यम से पाठकों की सामयिक साहित्य-सेवा सर्वांगीण हो सकेगी।

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

१—विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
२—क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
३—भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
४—प्रधान का पत्र
५—अभिभावकों का समस्या-समाधान
६—शिक्षक प्रशस्ति
७—कक्षागत समस्या
८—पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
९—शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा।

* * *

विशेषांक योजना

१—स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
२—विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)
३—विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
४—विदेशों में शिक्षक संघ
५—विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
६—प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था (मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
७—विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
८—विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
९—नारी-शिक्षा
१०—हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
११—शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल लाइन्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, भारतीय शिक्षक संघ, झा–शेषाद्रि–खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर के द्वारा प्रकाशित।

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लिखे या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने पर लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। लेख भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ–३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र–पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुँचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

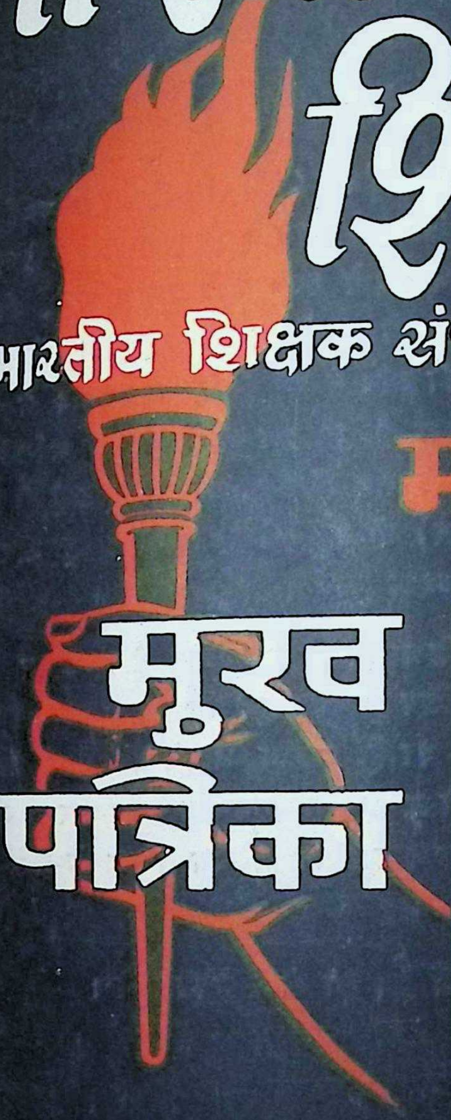

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

फरवरी, १९६५

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकाल

के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation (Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा कर आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो च वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थाप कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आप सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हम से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूस (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का दूसरा अंक है। पहला पिछ गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हो चुका है। जिस भावना और उद्दे से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्व और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदा दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

634/-2
17-2-65

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक मुख-पत्रिका

प्रथम वर्ष ● फरवरी, १९६५ ● द्वितीय अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–**अध्यक्ष**–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत सदस्य
३–**असम**–तीर्थनाथ शर्मा
४–**आंध्र**–डा० भीमसेन निर्मल
५–**उड़ीसा**–राधाकान्त मिश्र
६–**कश्मीर**–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–**केरल**–ए० चन्द्रहासन
८–**गुजरात**–जेठालाल जोशी
९–**पंजाब**–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–**बंगाल**–मोहितकुमार बनर्जी
११–**बिहार**–श्यामजी सिंह
१२–**मद्रास**–डा० शं० ना० गनेशन
१३–**मध्यप्रदेश**–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–**महाराष्ट्र**–प्र० रा० भूपटकर
१५–**मैसूर**–ना० नागप्पा
१६–**राजस्थान**–शंकरसहाय सक्सेना
१७–**सम्पादक : सचिव**–कालिदास कपूर

भारतीय शिक्षक संघ
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

पृष्ठ

१—आशीर्वचन … … … … ३

२—भारतीय परीक्षा प्रणाली की परीक्षा—श्री देव गौड़ … ६

३—स्वातंत्र्य समर के स्वर्गीय सेनानायक—श्री कालिदास कपूर … ११

४—शिक्षण क्षेत्र में गाँधी-दर्शन चरितार्थ करने का व्यावहारिक सुझाव—श्री कालिदास कपूर … … … १६

५—नारी शिक्षा का लक्ष्य—डा० कु० कंचनलता सबरवाल … १९

६—अध्यापक और राजनीति—श्री गौरीशंकर टंडन … … २७

७—दो योजनाएँ—श्री कालिदास कपूर … … ३०

८—युग की माँग और भारतीय शिक्षा आयोग का दायित्व —डा० दौलतसिंह कोठारी … ३७

९—छात्रों में अनुशासनहीनता और शिक्षक—श्री शम्सुद्दीन … ४४

१०—उच्च शिक्षा में संग्रहालयों का योगदान—श्री रमेशचन्द्र शर्मा … ५१

११—शैक्षिक समाचार-समुच्चय—(जनवरी)—श्री संजय … ५७

१२—अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन के विगत अधिवेशन से स्वीकृत प्रस्तावों की सूची … … … ६३

१३—परिचायिकी … … … … ७४

१४—सम्पादकीय … … … … ७६

शीर्षस्थ नेताओं तथा शिक्षाविदों के आशीर्वचन

केन्द्रीय शासन के शिक्षा उपमंत्री बंधुवर भक्तदर्शन

(जिनके अनुग्रह से भारतीय शिक्षक संघ ने हिन्दी-सेवा के क्षेत्र में पदार्पणं किया है)

आप लोगों ने **'भारतीय शिक्षा'** के प्रकाशन की जो व्यवस्था की है, उसके लिये बधाइयाँ स्वीकार कीजिये। चूँकि स्वयं शिक्षकों तथा शिक्षाविदों द्वारा इस पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन किया जा रहा है, अतः इसकी सफलता में मुझे कोई सन्देह नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि आप लोगों की यह पत्रिका खूब लोकप्रिय होगी तथा इसके द्वारा हमारे देश की शिक्षा समस्याओं के हल करने में हमें बड़ी सुविधा होगी। मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनायें।

★ ★ ★

जागरूक पंजाब के मुख्य मंत्री बंधुवर रामकिशन

●

मुझे यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि आपने भारतीय गणतंत्र के पावन दिवस से शिक्षकों के अखिल भारतीय संघ की ओर से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर दिया है।

शिक्षा लोकतंत्र का आधार है। इसके प्रचार और प्रसार के बिना लोकतंत्र न सुदृढ़ बन सकता है और न ही सुरक्षित रह सकता है।

आपने शिक्षा के महत्व को समक्ष रखते हुए जो मासिक पत्रिका प्रकाशित की है, मैं उसका हृदय से स्वागत करता हूँ।

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री आचार्य जुगुल किशोर

मुझे भारतीय शिक्षक संघ की मासिक पत्रिका **'भारतीय शिक्षा** देखने का अवसर मिला। मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई कि इ तरह की पत्रिका शिक्षक संघ ने निकालने का निश्चय किया है मैं आशा करता हूँ कि इस पत्रिका द्वारा शिक्षकों के लिये प्रेरणात्म और लाभदायक लेख समय-समय पर निकलते रहेंगे जिससे कि उ समस्याओं के हल करने में जो शिक्षकों के सामने समय-समय प आती रहती हैं, ये लेख सहायक सिद्ध होंगे। मैं यह भी आशा करत हूँ कि शिक्षकगण इस पत्रिका को अपना कर इससे पूरा ला उठा सकेंगे।

श्री कालिदास कपूर जैसे अनुभवी शिक्षा–शास्त्री द्वारा इ पत्रिका का सम्पादन कार्य अत्यन्त सराहनीय है।

* * *

भारतीय शिक्षक संघ से घनिष्ठरूप में संबद्ध भारतीय शिक्ष आयोग-सदस्य बंधुवर ख्वाजा गुलामुस्सय्यदैन

मुझे खुशी है कि हमारे भारतीय शिक्षक संघ ने एक मासि पत्रिका **'भारतीय शिक्षा'** के नाम से निकालने का प्रबन्ध किया है और एक बहुत तजुर्बेकार शिक्षा-शास्त्री, मेरे दोस्त कालिदास कपू साहब ने इसकी एडीटरी स्वीकार की है। अब देखना है कि कहां तक यह कोशिश कामयाब होती है और इसकी मदद से शिक्षा में हम एक नई जान डाल सकते हैं या नहीं। हमारे देश के सामने शिक्षा के मैदान में बहुत बड़े-बड़े और कठिन काम हैं जिनके ऊप इसकी सारी उन्नति निर्भर है। जब तक शिक्षा के द्वारा बेहत इंसान पैदा नहीं होते जिनके दिमाग में रोशनी, दिल में गर्मी औ हाथों में शक्ति हो, जो आपस के भेद-भाव को तोड़ सकें और दिलों को जोड़ सकें, जो भविष्य की तरफ देखें और हर वक्त अप

नज़रें गुज़रे ज़माने की तरफ न रक्खें, जो हिन्दी संस्कृति में सब नस्लों और मज़हबों और जमातों की मिली-जुली कोशिशों की क़द्र करें और साथ ही दुनियाँ में जो नई संस्कृति जन्म ले रही है और नई रचनात्मक शक्तियाँ इन्सान की ज़िन्दगी में दाख़िल हो रही हैं, उनके साथ भी निबाह कर सकें; जब तक ऐसे इन्सान पैदा न हों, तो ज़िन्दगी कीचड़ में से सर उठा कर सितारों को न देख सकेगी। मेरी प्रार्थना है कि हम इस छोटे से रिसाले के ज़रिये इस बड़े और ऊँचे आदर्श की सेवा कर सकें, चाहे इसका साइज़ छोटा हो, लेकिन नज़र ऊँची हो। किसी काम को न करना एक ऐब है, इसको अच्छी तरह न करना हज़ार ऐब है।

* * *

अपराधी कौन ?

हिन्दी के उत्थान में हिन्दी भाषियों की अपेक्षा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों ने कहीं अधिक काम किया है। दक्षिण के कुछ भागों में यद्यपि खुले प्लेटफार्म पर हिन्दी का विरोध किया जाता है और यह कोशिश की जाती है कि हिन्दी के उपयोग की अवधि कुछ और आगे बढ़ा दी जाय तथापि वास्तविक स्थिति यह है कि वहाँ जो हिन्दी का विरोध और अंग्रेजी का समर्थन करते हैं वे ही अपने बच्चों को घर में हिन्दी बोलना और पढ़ना सिखाते हैं। इतना ही नहीं वे स्वयं भी गंभीरता के साथ हिन्दी का अध्ययन करते हैं। इसके विपरीत हिन्दी-भाषी क्षेत्रों की स्थिति यह है कि घरों और कार्यालयों में हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी का मनमाना प्रयोग किया जाता है। मंच से और समाचार पत्रों के जरिये लोग हिन्दी का नारा बुलन्द करते हैं, फिर भी हिन्दी को पूरी तरह राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सका, क्योंकि हिन्दी के नेता स्वयं अपना काम हिन्दी में नहीं करते। वास्तव में हिन्दी की जितनी क्षति ऐसे लोगों के द्वारा की जा रही है, उतनी अन्य लोगों के द्वारा नहीं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं। दिल्ली में, जो देश की राजधानी है और जहाँ चौबीस घण्टे हिन्दी का व्यवहार होता है, व्यवसाइयों के साइन-बोर्ड अंग्रेज़ी में है। —**श्री भक्त दर्शन**

भारतीय परीक्षा प्रणाली की परीक्षा

(माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षण प्रसार व्यवस्था के निर्देशक श्री देव गौड़ के इन्दौर सम्मेलन की परीक्षा गोष्ठी में अध्यक्षीय अभिभाषण का आवश्यक अंश)

भारत में अंग्रेजी शासन के पहले अविश्वास पर आधारित सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली का अस्तित्व न था। देश के परतंत्रता से मुक्त होने पर इस परीक्षा प्रणाली पर स्वतन्त्र मानस से पुर्नविचार आवश्यक हो गया। इस सिलसिले में आल इण्डिया कौंसिल फार सेकेन्डरी एजुकेशन का सन् १९५५ में स्थापित होना विशेष महत्व का है। सन् १९५६ में इस कौंसिल ने परीक्षाओं पर विचार करने के लिए भोपाल में एक विचार-गोष्ठी की व्यवस्था की। इस गोष्ठी ने उत्तर-पुस्तकों के जाँचने की विधियों के सुधार के लिए महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किये और प्रत्येक राज्य तथा केन्द्र में वे अध्ययन केन्द्र भी स्थापित किये जिनके द्वारा परीक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार होता रहे। इस कौंसिल द्वारा सन् १९५८ में सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट नामक संस्था स्थापित हुई। संयुक्त राज्य के शिकागो विश्वविद्यालय में नियुक्त डा० बी० एस० ब्लूम परीक्षा प्रणाली के विशेषज्ञ माने जाते हैं। इन्होंने इस यूनिट के सेवा-क्रम की रूपरेखा तैयार की। इस कौंसिल ने डा० ब्लूम से प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये यहाँ से दस अधिकारी संयुक्त राज्य भेजे और इन्हीं अधिकारियों को अन्ततः परीक्षा प्रणाली के रूप और उद्देश्य के सुधार का दायित्व सुपुर्द हुआ। हाल ही भारतीय सरकार ने प्रत्येक राज्य में उन संस्थाओं की स्थापना की स्वीकृत दी है जो उत्तर पुस्तकों की जाँच के विषय में सुधार के प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। इन संस्थाओं से आशा की जाती है कि सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट से सम्बद्ध होकर सेवा कार्य करेंगी और परीक्षा के सुधार को अपने अपने राज्यों में चालू करने का दायित्व इन पर होगा।

आन्तरिक और बाह्य परीक्षाएँ :

परीक्षायें दो प्रकार से श्रेणीबद्ध की जा सकती हैं—आन्तरिक और बाहरी। इन दोनों प्रकार की परीक्षाओं के उद्देश्य एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलते हैं; क्योंकि दोनों शिष्यों की तैयारी की जाँच करते हैं। परन्तु

अधिकांश रूप में दोनों बच्चों की योग्यता लम्बी अवधि तक जाँचने के लिए इनका प्रयोग करते हैं। बाहरी परीक्षाओं से हमें अन्तर-संस्थाओं और अन्तर-समूहों की तुलनात्मक जाँच का मौका मिलता है। विद्यार्थियों के विकास के बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें आन्तरिक परीक्षाओं से ही जाँच हो सकती है, बाहरी परीक्षाओं से नहीं। इस कारण आन्तरिक परीक्षाओं के स्तर पर सुधार का क्षेत्र और उसकी संख्या बाहरी स्तर की अपेक्षा अधिक है। परीक्षा प्रणाली के सुधार का उद्देश्य यह होना चाहिए कि चालू लिखित परीक्षा की विधि का सुधार हो और ऐसे विषयों पर भी परीक्षा होने लगे जो अभी तक परीक्षा के विषय नहीं रहे हैं। बाहरी परीक्षाएँ विद्यार्थी के मानसिक विकास पर ही केन्द्रित हैं। लिखित परीक्षाओं द्वारा ही इनकी जाँच हो सकती है।

प्रयोगात्मक, मौखिक और लिखित परीक्षाएँ :

कुछ विषयों में प्रयोगात्मक परीक्षाएँ भी बाहर के परीक्षकों द्वारा ली जाती हैं। मुश्किल से कोई बोर्ड होगा जो किसी विषय में बाहर के परीक्षकों द्वारा मौखिक परीक्षा की व्यवस्था करता हो। मौखिक परीक्षा चालू करने की व्यावहारिकता पर भी गम्भीर चिन्तन आवश्यक है। प्रयोगात्मक परीक्षाओं का उद्देश्य होता है विद्यार्थियों के व्यावहारिक कौशल का मूल्यांकन और कागज-कलम की परीक्षाओं के अतिरिक्त विद्यार्थियों की किसी समस्या को हल करने की योग्यता की जाँच करना। ये परीक्षाएँ स्थानीय होती हैं और इनकी विश्वसनीयता तथा निष्पक्षता के विषय में उन सब कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो ऐसी परीक्षाओं के सम्बन्ध में स्वाभाविक है। निश्चित है कि ये परीक्षाएँ लिखित परीक्षा से कम विश्वसनीय हैं। अतएव जिस क्षेत्र में विद्यार्थियों की लिखित परीक्षा द्वारा मूल्यांकन हो सकता हो, उसमें प्रयोगात्मक परीक्षाओं की आवश्यकता नहीं है, तो भी प्रयोगात्मक परीक्षाओं के कुछ अपने ही महत्व है। उनका शैक्षिक महत्व बहुत है। इसलिए सुधार के वे उपाय सोचने हैं जिनसे ये अधिक विश्वसनीय हो सकें। इस विषय पर राजस्थान में प्रयोग हो रहा है।

वैयक्तिक मूल्यांकन के विचार से मौखिक परीक्षाएँ प्रयोगात्मक परीक्षाओं से बहुत मिलती हैं। परन्तु लिखित परीक्षाओं की पूरक हो सकती हैं यदि इनके द्वारा उसी योग्यता की परीक्षा ली जाय जो लिखित परीक्षा द्वारा ली जाती है। यह भी बात सोचने की है कि जिन क्षेत्रों में विद्यार्थी की योग्यता का मूल्यांकन लिखित परीक्षा द्वारा नहीं हो सकता उनमें मौखिक

परीक्षाओं की व्यवस्था करना आवश्यक होगा। भाषा की परीक्षा में मौखिक परीक्षाओं द्वारा वाक्पटुता, उच्चारण, धारा प्रवाह प्रवचन और विचारों की उचित प्रस्तुति की जांच की जा सकती है। यहाँ भी वे ढंग निकालने होंगे जिनसे मूल्यांकन अधिक विश्वसनीय हो सके।

लिखित परीक्षाओं के सुधार का अर्थ होता है कि नीचे लिखे क्षेत्रों में आवश्यक सुधार हो :—

१—प्रश्न और प्रश्न-पत्र;
२—मूल्यांकन प्रक्रिया;
३—रियायत और क्षमा के नियम;
४—परिणाम प्रकाशन की विधियाँ;
५—परीक्षा का प्रशासन और ढंग।

सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट इस समस्या पर बहुमुखी अध्ययन का प्रयत्न कर रही है। विभिन्न विषयों की शिक्षा के उद्देश्य का विकास और शोध हो रहा है। विभिन्न विषयों पर अच्छे प्रश्नों और नमूने के प्रश्नपत्रों का विकास किया जारहा है। परीक्षाओं के सम्बन्ध में शोध कार्य हो रहा है और शोध निबन्ध प्रकाशित किये जा रहे हैं। शिक्षकों के मार्ग-दर्शन के लिए मूल्यांकन पर यूनिट ने कुछ प्रकाशन निकाले हैं। बहुत सी प्रयोगशालायें चालू की गई हैं, जिनमें प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापकों और शिक्षकों को मूल्यांकन के सिद्धान्त और ढंग की जानकारी दी गई है।

सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट परीक्षा के सुधार-क्रम में प्रारम्भ ही से माध्यमिक शिक्षा के राजकीय बोर्डों को सम्मलित करने का प्रयत्न करता रहा है। इन्हीं के द्वारा देश में माध्यमिक शिक्षा की प्रणाली सशक्त रूप में प्रभावित होती है। अभी तक पिछले ७ वर्षों के भीतर इन बोर्डों के प्रधानों और सचिवों के छः सम्मेलन हो चुके हैं। इनमें परीक्षा से सम्बन्धित बहुत-सी महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार हुआ है और इन सम्मेलनों द्वारा सुधार के प्रतिवेदन भी प्रस्तुत किये गये हैं। इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप कुछ बोर्डों ने सुधार की आवश्यकता समझी और इस ओर इन्होंने कुछ किया भी है। महाराष्ट्र, राजस्थान, मैसूर, गुजरात और मध्य प्रदेश के बोर्डों तथा पंजाब विश्वविद्यालय ने प्रशिक्षण केन्द्र खोले हैं जिनमें अँग्रेजी, गणित, समाज अध्ययन, क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी इत्यादि के लिए प्रश्न-पत्र बनाना पढ़ाया गया है और इनके सुधार के ढंग बताये गये हैं। इनमें प्रशिक्षित होने पर प्रश्न-पत्र बनाने वालों की समझ में आ गया है कि अच्छा प्रश्न-पत्र बनाना कितना

76257

कठिन है। प्रश्न-पत्र के सुधार का इतना ही अर्थ नहीं है कि ऐसे प्रश्नों के बदले जिनके उत्तर निबन्धों ही द्वारा दिये जा सकते हों, वे प्रश्न पूछे जायँ जिनके उत्तर छोटे हों और उनमें संदिग्धता की गुंजायश न हो। कुछ लोगों की परीक्षा प्रणाली के सुधार के विषय में गलत धारणा है। ये धारणा सत्य से बहुत दूर है। महत्व की बात, प्रश्न के रूप में नहीं, उसके विषय में है। अच्छे प्रश्न-पत्र से विषय के विभिन्न क्षेत्रों की यथेष्ट तथा सही परीक्षा होती है और समय तथा नम्बरों के वितरण में उसे संतुलित होना चाहिए। प्रश्नों की भाषा स्पष्ट, सही और असंदिग्ध होने के साथ-साथ प्रत्याशियों के समझ के भीतर भी हो। प्रश्नों में निबन्ध, छोटे उत्तर और असंदिग्ध होने के साथ-साथ प्रत्याशियों के समझ के भीतर भी हो। प्रश्नों में निबन्ध, छोटे उत्तर और असंदिग्ध उत्तर वाले प्रश्न सम्मिलित हो सकते हैं। सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट की सहायता से प्रश्न-पत्र बनाने वालों ने जो नमूने के प्रश्न-पत्र बनाये हैं, उनमें सभी मेल के प्रश्न सम्मिलित हैं और किसी विशेष पक्ष को दूसरे पर वरीयता नहीं दी गई है।

राजस्थान के सेकण्डरी एजुकेशन बोर्ड का साहसिक प्रयोग इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। बोर्ड ने निश्चय किया है कि सामान्य विज्ञान, समाज अध्ययन और प्रारम्भिक गणित के लिए १९६५ की परीक्षाओं में सुधरे मेल के प्रश्न-पत्र दिये जायँ। सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट की सहायता से इन विषयों के प्रश्न-निर्माताओं का प्रशिक्षण हो चुका है। बोर्ड ने सत्र के प्रारम्भ में विद्यालयों को नमूने के प्रश्न भेज दिये हैं और एक दिवसीय सम्मेलनों में शिक्षकों को सुधार का अर्थ और उद्देश्य बता दिया गया है। इन विषयों के पढ़ाने के नये ढंग बताने के लिए शिक्षक प्रशिक्षित भी किये गये हैं। बोर्ड को आशा है कि इस वर्ष के अन्त तक सामान्य विज्ञान के सभी शिक्षक प्रशिक्षित हो जायँगे। यूनिट द्वारा परीक्षा-पत्र तैयार होकर विद्यालयों को भेजे जा रहे हैं। बोर्ड विभिन्न विषयों में प्रश्नों का अपना ही जखीरा बढ़ा रहा है। उसने अपने सुधार-क्रम में ऐच्छिक विषय भी सम्मिलित कर लिये हैं।

परीक्षा-सुधार के वर्तमान अभियान में खुशी की बात यह है कि विभिन्न राज्यों के एजुकेशन इन्सटीच्यूट और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी क्रमश: प्रारम्भिक और सर्वोच्च स्तरों में इस ओर उन्मुख हुए हैं। इस सम्बन्ध में यह बताना जरूरी है कि वैतनिक सेवा में लगे शिक्षकों के प्रशिक्षण क्रम में मूल्यांकन के सिद्धान्त और ढंग सम्मिलित करने से ही परीक्षा-सुधार

की समस्या का स्थायी हल सम्भव न होगा। ये हल तभी सम्भव होगा जब प्रशिक्षण पाने वाले शिक्षकों को सभी स्तरों पर मूल्यांकन के सिद्धान्त और ढंग भली भाँति पढ़ा दिये जायँ। ट्रेनिंग कालेज, विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभाग और राज्यों के एजुकेशन इंसटीच्यूट भी अपनी-अपनी प्रशिक्षण व्यवस्थाओं में माध्यमिक और प्रारम्भिक स्तरों पर इस विषय को समुचित स्थान प्रदान करें।

अन्ततः विश्वविद्यालय आयोग के इस मत से पूरी सहमति प्रकट करनी आवश्यक है कि परीक्षाओं के क्षेत्र का शिक्षा के सुधार में प्रमुख महत्व है। यदि इस जटिल समस्या के हल का सुव्यवस्थित और बहुमुखी प्रयत्न किया जाता है तो देश में शिक्षा स्तर की यथेष्ट उन्नति निश्चित है। विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षा बोर्डों, ट्रेनिंग कालेजों, राजकीय शिक्षा विभागों, राजकीय मूल्यांकन केन्द्रों, राजकीय एजुकेशन इन्सटीच्यूटों, शैक्षिक शोध केन्द्रों और सेंट्रल एक्जामिनेशन यूनिट—इन सबको एक-दूसरे से मिलकर परीक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन के लिए दृढ़-निश्चय होना है। परीक्षाऐं दानवीय मानी जाती हैं; परन्तु इनका अस्तित्व भी आवश्यक माना जाता है। तो हमें दानव का इस प्रकार सुधार करना है कि उसके द्वारा हमारी पूरी शिक्षा प्रणाली का वास्तविक सुधार सम्भव हो जाय।

* * *

- **कमालपाशा के हाथ में जब तुर्की की बागडोर आई तब उन्होंने अपने सलाहकारों से पूछा कि राष्ट्रभाषा तुर्की करने में कितना समय लगेगा? उपस्थित सलाहकारों ने दस वर्ष का समय कहा। इस पर कमालपाशा ने उदारता-पूर्वक कहा कि समझ लीजिये कल सुबह १० बजे १० वर्ष व्यतीत हो गये और तुर्की राष्ट्र भाषा हो गई।**

स्वातंत्र्य समर के स्वर्गीय सेनानायक

सन्' ५७ के सिपाही विद्रोह को अब प्रथम स्वातंत्र्य समर की संज्ञा दी जाने लगी है; परंतु ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जन-जनार्दन से सक्रिय समर्थन प्राप्त सभी स्वातंत्र्य संघर्ष अभी तक विजय प्राप्त करके ही समाप्त हुए हैं। इस तथ्य के अनुकूल हमारा स्वातंत्र्य-संघर्ष देश के सार्वजनिक जीवन में गांधी जी के पदार्पण से ही प्रारंभ हुआ। जन-समर्थन से वह एक अनोखे स्वातंत्र्य समर के सेनापति हुए और विजय प्राप्त करके ही स्वर्गीय हुए इसीलिए अब वह राष्ट्रपिता माने जाते हैं। उन्हें बहुत से सेनानियों का सक्रिय सहयोग मिला। परन्तु चार ही का यहाँ उल्लेख करना है जो अपने सेनापति से स्वर्ग में जा मिले हैं। स्वर्ग प्राप्ति के क्रम से शुभनाम हैं: सरदार बल्लभ भाई पटेल, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद और राष्ट्र निर्माता जवाहरलाल नेहरू।

यों सेनापति समेत स्वातंत्र्य समर के सेनानियों की स्वर्गीय पंचायत बनती है जिसके सरपंच गाँधी जी हैं।

आइए, भारतीय सांस्कृतिक और आर्थिक निधि को इन पंचों की देन हम सहेजें और उसके विकास में संलग्न हों। भारत को सुदूर अतीत में एक स्वर्णिम युग प्राप्त रहा। फिर हमारे पूर्वजों के पाप से देश को लंबी परतंत्रता का कटु अनुभव मिला। इस लंबी परतंत्रता के वातावरण में राष्ट्रीय चरित्र कई अंशों में दूषित हुआ। जब धर्म की ग्लानि अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई, तो उसके अभ्युत्थान के लिए गांधी अवतरित हुए। जागरूक पाश्चात्य संस्कृति के प्रकाश में उन्होंने देश के स्वर्णिम अतीत से प्राप्त सांस्कृतिक निधि का सर्वथा नवीन परंतु व्यावहारिक संस्करण देश की सेवा में प्रस्तुत किया। देश की अधिकांश जनता ने उसका स्वागत किया। अपने बनाये नैतिक मापदंड के अनुकूल तो गांधी जी को थोड़े ही से भारतीय मिल पाये जिनमें प्रमुख थे देश के वे चारों सुपुत्र जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, परन्तु इन सबकी तपस्या से अंतर्राष्ट्रीय प्रगति ने अनुकूलता की और हमें राजनीतिक स्वतंत्रता नसीब हुई, यद्यपि स्वतंत्रता के साथ विभाजन से मजे में जो किरकिरी आयी उससे आज तक देश के दोनों अंगों को मुक्ति नहीं मिल पायी है।

इस किरकिरी को स्वर्गीय पंचायत के दो महानुभावों ने सबसे अधिक माना—राष्ट्रपिता गांधी और राजर्षि टंडन ।

देश को स्वतंत्रता के साथ एकता किस प्रकार नसीब हो, इसके लिए पांचों ने जिन नीतियों का अनुसरण किया, वे प्रत्यक्ष रूप में अलग दिखकर वास्तव में एक-दूसरे के पूरक हैं ।

सरदार पटेल :—

गांधीजी मानव मात्र के हृदय सम्राट थे । परंतु अधिकांश भारतीय मुसलमान अपने अतीत की याद में गांधीजी के अनुयायी नहीं हो सके। अतएव गांधीजी उनका हृदय जीतने में आमरण लगे रहे और इसी उद्योग में उनका प्राणदान भी हुआ । सरदार पटेल ने स्वतंत्र भारत के भारतीय भाग की एकता सिद्ध करने की सफल चेष्टा की । उन्होंने भारतीय भाग को जो एकता दी उसकी जोड़ भारतीय अतीत में कहीं नहीं मिलती । उत्तरीय खुंजराब से दक्षिणी कन्याकुमारी तक और पश्चिमी नारनदी के मुहाने से लोहित सीमान्त के पूर्वतम छोर तक दिल्ली से संचालित एक संविधान और एक शासन । अंग्रेजों ने भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता को राजनैतिक एकता की निधि अवश्य दी थी; परंन्तु वे लोकमत पर आधारित और देशी राज्यों के खंडहरों से मुक्त शासन भारत को नहीं दे सके थे । यों भारत के अधिकांश को वह सच्ची राजनैतिक एकता की निधि दे गये ।

देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद :—

राजेन्द्रप्रसाद जी के नेतृत्व में भारतीय भाग का संविधान बना और वह देश के प्रथम राष्ट्रपति भी हुए, तो उन्होंने अपनी करनी से सरलता और निस्पृहता का वह आदर्श मूर्त किया, जो भारतीय शासकों की करनी के सर्वथा प्रतिकूल रहा था । रहे वह अवश्य उस भवन में जिसमें भारत पर ब्रिटिश शासन का प्रतीक रहता था । परन्तु जन-हृदय पर उसके ऐश्वर्य का रोब काम करता था, जो राजेन्द्रप्रसाद जी बाह्य ऐश्वर्य से मुक्त रह करके ही भारतीय हृदय के सम्राट रहे । एक दशक तक राष्ट्रपति पद के लिए भारतीय संस्कृति के अनुकूल मान्यताएँ स्थापित करके वह स्वर्गीय हुए ।

राजर्षि टंडन जी पटेल जी के पश्चात् तथा राजेन्द्रप्रसाद जी नेहरूजी के पहले स्वर्गीय हुए । परंतु पहले नेहरूजी ही की देन का उल्लेख करना है ।

राष्ट्र निर्माता नेहरू :—

गांधीजी राष्ट्रपिता थे तो नेहरू जी सत्रह वर्ष तक लगातार स्वतन्त्र भारत के निर्माण में लगे रहे। अतएव वह राष्ट्र निर्माता उपाधि के अधिकारी हैं।

पंचायत के चार सदस्यों की कथनी और करनी पर भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव है तो नेहरू जी की जीवनचर्या और प्रशासनिक नोति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव विशेष मात्रा में परिलक्षित होता है। नेहरूजी को अपनी लोक-निष्ठा और मानवता के स्रोत पाश्चात्य संस्कृति में मिले। गांधीजी को उन्होंने अपना राजनीतिक गुरू माना और स्वतन्त्र भारत के कर्णधार के पद से उन्होंने व्यापक शांति की अनन्य गुरु-सेवा की। परंतु उनकी लोक निष्ठा पर ब्रिटिश डेमोक्रैसी की छाप रही और भारतीय जन के आर्थिक विकास ही में उन्हें उसका नैतिक विकास दिखा। आर्थिक और बौद्धिक शक्ति संचय के लिए भारत को अपनी स्वतन्त्रता के प्रथम वर्षों में ऐसे ही जागरूक तथा बौद्धिक नेता की जरूरत थी, तो नेहरूजी के प्रति जनता वह निष्ठा भी दिखाती रही जो आगे उनके किसी उत्तराधिकारी को मिलनी कठिन है।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन :—

टंडन जी ने अपनी कथनी और करनी, अपने निजी और सार्वजनिक जीवन, में कोई भेद नहीं माना। उन्होंने न्याय को नीति पर वरीयता दी, जिस कारण परतंत्र उत्तर प्रदेश की विधान सभा का जिस ऊँचे स्तर पर टंडन जी ने नेतृत्व किया उस तक स्वतंत्र भारत में किसी से नहीं पहुँचते बना है। उनका निजी जीवन सर्वथा शुद्ध रहा। उनकी अहिंसा इतनी बढ़ी हुई थी कि गोदुग्ध से परहेज करते रहे और चमड़े के जूते से; क्योंकि एक से गाय के बछड़े का हक मारा जाता था और दूसरे में गाय़-बैल के चर्म के प्रयोग की संभावना थी। उनके पुण्य उनकी संततियों के जीवन में खूब फूले-फले हैं, जिस कारण कुनबापरस्ती के नैतिक दोष से उन्होंने वह मुक्ति प्राप्त की जो भारतीय नेताओं के सार्वजनिक जीवन में अलभ्य है। कई संततियों के पालन-पोषण का दायित्व भार संभालते रहकर भी यौवन से शरीरांत तक वह त्याग का तप करते रहे। आजकल देश के नैतिक पुनरुद्धार की धूम है, तो टंडनजी के पद-चिह्नों पर चलने की प्रेरणा सरकारी कर्मचारियों, राष्ट्रीय नेताओं और व्यावसायिकों को मिलनी चाहिये। लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक सेवक मंडल के सदस्य बनकर आजीवन उसका नेतृत्व करते रहे। इसकी

जोड़ की सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी है जिसका नेतृत्व पं० हृदयनाथ कुंजरू कर रहे है। यदि देश का नैतिक पुनरुद्धार होना है, तो भारत के शीर्षस्थ सार्वजनिक नेताओं, व्यावसायिकों और अधिकारियों को अपनी जीवनयात्रा की तीसरी मंजिल तक पहुंचने पर ऐसी ही संस्थाओं के माध्यम से अर्थ-मुक्त जन-सेवा को अपने जीवन का शेष भाग अर्पित कर देना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता की पुष्टि के लिए टंडनजी ने देश में भाषा की एकता चरितार्थ करने का मार्ग अपनाया। भारत में भाषाओं का बाहुल्य है। परंतु हिंदी बोलने और समझने वालों की संख्या अन्य भाषा-भाषियों की सम्मिलित संख्या से अधिक है। अतएव अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम द्वारा वे हिंदी प्रचार की राष्ट्रीय सेवा में लग गये। देश के स्वतन्त्र होने पर उनके नेतृत्व में सर्वसम्मति से संविधान ने हिंदी को राष्ट्रीय पद दिया। इस विजय के पश्चात् अपनी रुग्णतावश, केन्द्रीय प्रशासन के प्रतिकूल वातावरण में और सम्मेलन के मुकदमों में फँस जाने के कारण, वह साहित्य के सर्वांगीण और भाषा के व्यापक प्रचार की उस सेवा से वंचित रहे जिसकी हार्दिक लगन उन्हें आमरण रही। अपने जीवन काल में वह सम्मेलन का पुनरुद्धार तो देख सके, परंतु पुनरुद्धार प्राप्त सम्मेलन का मार्गदर्शन उन्हें नसीब नहीं हुआ। सौभाग्यवश उसका नेतृत्व अब सेठ गोविंददासजी को प्राप्त है जो हिंदी सेवा में टंडनजी के प्रथम शिष्य और अनुयायी रहे हैं। टंडनजी आजीवन हिंदी के लिए संघर्ष ही करते रहे। अब उसकी पुष्टि की रचनात्मक सेवा का कहीं अधिक भारी दायित्व हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा अन्य राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हिंदी सेवी संस्थाओं पर है। हिंदी की कुशल सेवा द्वारा राष्ट्रीय एकता की पुष्टि होगी और टंडनजी की स्वर्गीय आत्मा की तुष्टि भी।

देश के स्वतंत्र होने पर प्रशासनिक नीति में सरदार पटेल से कई आंतरिक समस्याओं में नेहरूजी का मतभेद होने लगा। परंतु पटेलजी की बात भी चलती रही। उनका आशीर्वाद लेकर टंडनजी कांग्रेस के प्रधान हुए। परंतु शीघ्र ही सरदार पटेल का निधन होने पर नेहरूजी का टंडनजी से मतभेद प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रहित के नाते टंडनजी कांग्रेस की प्रधानता से अलग हुए और धीरे-धीरे संघर्ष के अन्य क्षेत्रों से भी, यद्यपि वह सदैव नेहरूजी के आदर और श्रद्धा के भागी रहे। नेहरूजी का निधन होने पर मतैव्य से लालबहादुरजी शास्त्री रिक्त पद पर आसीन हुए हैं। यह देश के लिए बड़े सौभाग्य की बात है। शास्त्रीजी लोक सेवक मंडल के सदस्य रहे हैं। टंडनजी

के अनन्य भक्त रहे और नेहरूजी के विश्वसनीय अनुयायी। यों उनके प्रधान मंत्री होने पर राष्ट्र की धर्मनिरपेक्ष नीति तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पंचशील के मेरे जैसे हिंदी भक्त और समर्थक हृदय से प्रसन्न हैं। **सार्वजनिक-सेवा में दोनों महान् प्रतिद्वंद्वियों की स्वर्गीय आत्माओं का आशीर्वाद शास्त्री जी को** प्राप्त है।

देश के सामने बहुत सी कठिन समस्यायें हैं। परंतु हमें पूर्ण आशा है कि हमारे राष्ट्रीय नेताओं की स्वर्गीय पंचायत के आशीर्वाद से शास्त्रीजी इन सबके सुलझाने में सफल होंगे।

—कालिदास कपूर

* * *

पढ़ो लिखो कोऊ लाख बिधि,
भाषा बहुत प्रकार;
पै जबही कछु सोचिबो
बिज भाषा अनुसार।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द

* * *

हिन्दी भाषा का सौन्दर्य विलक्षण है। मैं अंग्रेजी बोलता हूँ तो लगता है कि जैसे मुँह में बालू भरकर बोल रहा हूँ।

—सुमित्रानन्दन पन्त

* * *

राजा अब अंग्रेज नहीं अंग्रेजी रानी,
करती उससे अधिक यही अपनी मनमानी।

—राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त

शिक्षण क्षेत्र में गाँधी-दर्शन चरितार्थ करने का व्यावहारिक सुझाव

६ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालक बालिकाओं की अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा का निदेश राष्ट्रींय सरकार को संविधान से प्राप्त है। देश की आर्थिक निर्बलता के कारण निदेश के पालन में अनिवार्य और नि:शुल्क की अवधि आठ वर्ष से घटाकर पाँच वर्ष कर दी गई है। बाल-शिक्षा शैशव से ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए। अतएव नगरों के सम्पन्न घरानों में पूर्वप्राथमिक शिक्षा की माँग बढ़ने पर बहुत से शिक्षालय खुल गये है जिनमें २, ३, से ६, ७ वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा की व्यवस्था है। इन संस्थाओं को सरकार का आशीर्वाद अवश्य मिलता है। परन्तु न तो सरकार से इन्हें कोई आर्थिक सहायता मिलती है और न ही इन शिक्षालयों के शिक्षकों को तैयार करने में, इनमें प्रयोग होने वाले शैक्षिक उपक्रमों के निर्माण और इनके लिए उपयुक्त पुस्तकों के प्रकाशन का सरकार ने नेतृत्व ही किया है।

हम गाँधीजी का चित्र अपने सार्वजनिक स्थानों में सम्मानपूर्वक प्रदर्शित करते हैं, तो उनके शुभनाम की रक्षा के लिए हमने अपने प्राथमिक शालाओं का नामकरण बेसिक स्कूल किया है, शैक्षिक उपक्रम में उनकी तकली का आदर किया है और पाठ्यक्रम में कताई का। इसके आगे शिक्षा के क्षेत्र में गाँधी-दर्शन का उपहास ही हो रहा है।

परिणामस्वरूप हमारे शिक्षालयों के स्नातक खेती तथा कारीगरी जैसे पैतृक धंधों से घृणा करते और देहात छोड़कर नौकरी की तलाश में नगर बसाने के उद्योग में लगे दिखते हैं। स्वावलम्बन की मात्रा घटती जा रही है, तो नौकरी में कामचोरी की मान्यता बढ़ती जा रही है। कुछ दृढ़ निश्चयी गाँधी-भक्त भारत के विभिन्न स्थानों पर शिक्षा-क्षेत्र में गाँधी-दर्शन चरितार्थ करने में लगे हैं। परन्तु यह युग विज्ञान का है, जिसमें विकास सहकारिता ही के आधार पर सम्भव है। यदि शिक्षा के क्षेत्र में गाँधी दर्शन को साकार होना है कि तो आवश्यक है कि २-३ वर्ष से ११-१२ वर्ष तक के बालक-बालिकाओं की प्रयोगात्मक शिक्षा के लिए प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक केन्द्र स्थापित हो। शिक्षा के लिए उच्च साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त माताएँ नियुक्त हों जिन्हें प्रसव और शिशुपालन का अनुभव हो चुका हो। प्रत्येक शिक्षिका के

जिनमे २० बच्चे से अधिक न हों, उसे प्रत्येक बच्चे के आचरण और मानसिक तथा शारीरिक विकास और अपने प्रयोगों के परिणाम लेखबद्ध करने का उपयुक्त अवसर मिले। मनोवैज्ञानिक इन लेखों का अध्ययन करें, फिर सभी शिक्षिकाएँ छः महीने पश्चात् किसी केन्द्रीय स्थान पर एकत्र होकर अपने लेखों तथा प्रयोगों के विषय में विचार-विमर्श करें। सम्मेलन की कार्यवाही की जानकारी पत्रों द्वारा जनता को मिलती रहे। ऊँचे स्तर के मनोवैज्ञानिकों का मार्गदर्शन इन शिक्षिकाओं को प्राप्त होता चले।

इन प्रयोगात्मक शिक्षालयों को अपने प्रयोगों के लिए कम-से-कम पाँच वर्ष की अवधि मिले। इसके पश्चात् उन शैक्षिक उपक्रमों की सूची बन सकेगी जो सस्ते हों और देहात में भी बन सकें। ऐसी पाठ्य-पुस्तकें संभव होंगी, उनके साथ ऐसे व्यावहारिक निदेश-ग्रंथ भी प्रकाशित हो सकेंगे जिनके सहारे कम पढ़ी-लिखी और साधारण वेतन प्राप्त शिक्षिकाएँ भी दो-तीन वर्ष से ११-१२ वर्ष तक के बच्चों को सर्वांगीण शिक्षा दे सकेंगी। यों शिक्षा के क्षेत्र में गांधी-दर्शन चरितार्थ हो सकेगा।

संपन्न गृहस्थों के पैसों से पूर्वप्राथमिक शालायें यत्र-तत्र चालू हैं। इनके पैसों से ऊँचे स्तर की शिक्षा उनके बच्चों के लिए ऊँची कक्षाओं तक भी संभव होगी। परन्तु हम समाजवाद की दुहाई देते हैं जिसके अर्थ होते हैं कि गरीब-से-गरीब नागरिक को अपने बच्चे के मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक विकास का वही अवसर मिले जो संपन्न नागरिक को पैसे के बल पर प्राप्त है। तो शिक्षा के वे उपक्रम बनने हैं, वे पाठ्यपुस्तकें बननी हैं, और शिक्षक-शिक्षिकाओं को इन पाठ्य-पुस्तकों तथा उपक्रमों द्वारा शिक्षण विधि के वे ब्योरेवार निदेश मिलने हैं जिनके सहारे साधारण शिक्षा प्राप्त करके भी वे ऊँचे स्तर की पूर्वप्राथमिक और प्राथमिक शिक्षा अपने बच्चों को दे सकें। योजना का प्रस्तावक लम्बे वैतनिक शिक्षण के पश्चात् अब अपनी जीवन संध्या के निकट हैं। उसने देश का स्वतन्त्र जीवन यथेष्ट मात्रा में देख लिया है। तो उसे इस योजना का बीजारोपण देखने ही की तमन्ना है, उसके फूल-फल देखने की नहीं। पूर्वप्राथमिक शालाओं के संचालन की क्षमता संपन्न गृहस्थों को प्राप्त है। प्राथमिक शालाओं का जैसा-तैसा संचालन नगरपालिकाएँ तथा जिला परिषद किया करते हैं। परन्तु जिन प्रयोगात्मक शालाओं की रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की गई है, उन पर उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षिकाएँ नियुक्त होंगी, उन्हें उपयुक्त अवकाश मिलेगा, उन्हें ऊँचे वेतन भी मिलने हैं, उनके सम्मेलनों की व्यवस्था होनी है, उनके प्रयोगों का प्रकाशन

होना है। इन सब सेवाओं पर जितना व्यय होगा वह स्थानीय संस्थाओं तथा धनी व्यक्तियों की शक्ति के बाहर होगा। यह सेवा तो राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय शासन के दृढ़ निश्चय तथा सक्रिय सहयोग से ही चालू हो सकेगी।

प्राथमिक शालाओं के संचालन के लिए स्थानीय संस्थाओं को राज्य सरकारों से आर्थिक सहायता मिलती है और केन्द्रीय सरकार अब राज्यों को इस सेवा में अपना आर्थिक सहयोग देने पर विचार कर रही है। पूर्वप्राथमिक शालाओं को सहायता देने का संवैधानिक दायित्व शासनिक संस्थाओं पर नहीं है। परन्तु इसके लिए जनता की माँग प्रारम्भ हो गई है। उपर्युक्त प्रस्ताव की बात शिक्षाविदों के तो ध्यान में आ सकती है। परन्तु जनसाधारण में इसके लिए विशेष माँग का न होना स्वाभाविक है। यों इस पर दबाव से मुक्त और, इसीलिए, गम्भीर विचार का अवसर राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय शासन को मिलता है।

उपर्युक्त प्रस्ताव की रूप रेखा ही की प्रस्तुति संभव है। ब्योरेवार विचार का निश्चय होने पर प्रस्तावक का अनुभव और चिंतन शासनाधिकारियों की सेवा में प्रस्तुत होगा।

—कालिदास कपूर

◆

यह भारतीय पुरुषत्व एवं विशेषतः नारीत्व का अपमान है कि हमारे बालक और बालिकाएँ यह सोचने को उत्प्रेरित हों कि अंग्रेजी ज्ञान के बिना श्रेष्ठ समाज में प्रवेश पाना असम्भव है। यह इतना अपमानजनक तथा ओछा विचार है कि बर्दाश्त के बाहर है। अंग्रेजी से छुटकारा पाना स्वराज्य के लिये एक बहुत जरूरी शर्त है।

—राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

★ ★ ★

हिन्दी हमारी माँ है और अपनी ही माँ को जो अपने घर में लाने के लिये सालों, वर्षों की सीमा बाँधते हैं वे या तो पागल हो गये हैं या किसी स्वार्थ ने उन्हें अन्धा बना दिया है।

—राजर्षि टण्डन

नारी शिक्षा का लक्ष्य

(महिला महाविद्यालय, लखनऊ की प्राचार्या
डा० कुमारी कंचनलता सबरवाल)

स्त्री शिक्षा का लक्ष्य खोजने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक जान पड़ता है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है। वस्तुतः शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास करने की दिशा में सहायता करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के लिये अपने आंतरिक मूलभूत गुणों एवं प्रवृत्तियों का यथासम्भवपूर्ण विकास कर पाना सहज हो जाता है। प्रत्येक बालक अथवा बालक कुछेक नैसर्गिक संस्कार, बीजरूप क्षमता एवं योग्यता लेकर धरती पर जन्म लेता है। इस बीज रूपी क्षमता एवं योग्यता को विकसित करने, पल्लवित एवं पुष्पित करने, के लिये समुचित वातावरण एवं चतुर पथप्रदर्शक की आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा व्यक्ति के भीतरी गुणों को जानने एवं विकसित करने के लिये आवश्यक जान पड़ती है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति अपने पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करने में समर्थ होकर समाज के लिये एक उपयोगी सदस्य और स्वयं अपने लिये एक सुखी एवं समुचित मानव बन पाता है। अर्थात् शिक्षा व्यक्ति को पूर्णतया सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करने के कार्य में सहायता देती है। सन्तुलित व्यक्तित्व का अर्थ है एक ऐसा व्यक्तित्व जो एक ओर तो समाज एवं वातावरण के साथ सहज ही समीकृत हो सके और साथ-ही-साथ अपनी सभी प्रकार की मांगों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं आदि की पूर्ति करने का मार्ग भी सरलता से खोज सके। स्वयं भी जीवन आनन्द से व्यतीत कर सकने की क्षमता अपने ही भीतर पा सके और अपने आसपास के वातावरण को भी समृद्ध करता रहे।

समीकरण की व्याख्या

समीकरण एक प्रकिया भी है और स्थिति भी। सन्तुलित व्यक्तित्व तभी हो सकता है जब व्यक्ति समीकरण कर पाने की क्षमता रखता हो। जो व्यक्ति अपने आपको कभी भी वातावरण एवं परिस्थितियों से समीकृत नहीं कर पाता वह कभी सुखी नहीं रह सकता और ऐसा व्यक्ति समाज के लिये तथा स्वयं अपने लिये भी एक कठिन समस्या हो जाता है। अतः शिक्षा का

लक्ष्य व्यक्ति को समीकरण कर पाने की क्षमता देकर सन्तुलित व्यक्तित्ववान बना देना तो होना ही चाहिये। प्रक्रिया के नाते समीकरण उस तकनीक की ओर संकेत करता है जो कि व्यक्ति को स्वयं अपनी खोज करना तथा उनकी पूर्ति के उपाय खोज लाना सिखाती है। व्यक्ति के भीतर उलझन उत्पन्न होती है और उलझन की उस स्थिति से व्यक्ति निकलना चाहता है। यही उसकी मांग, उसकी आवश्यकता होती है। जिस क्रिया अथवा जिन क्रियाओं द्वारा व्यक्ति उस उलझन की स्थिति से मुक्ति प्राप्त करता है अथवा कर सकता है, वही सीख लेना उसका लक्ष्य होता है। स्थिति की दृष्टि से समीकरण का अर्थ है व्यक्ति और उसके साधारण वातावरण एवं परिस्थितियों के बीच एक स्वस्थ एवं शान्त तथा सुखद सम्बन्ध की स्थापना। वास्तव में मानसिक दृष्टि से सन्तुलित व्यक्ति वही होता है जो अपने वातावरण से साधारणतया समझौता कर लेता है और इस प्रकार का समझौता उसके लिये स्वभाव बन कर सुखद हो जाता है, अनावश्यक भार जान नहीं पड़ता।

संतुलित और सुखी जीवन

हम आज के बालक अथवा बालिका को भविष्य का सुखी एवं सम्पन्न नागरिक बनाना चाहते हैं। अतः शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये व्यक्ति को इस योग्य बना देना कि वह सुखी एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सके और ऐसा कर पाने के लिये हमें व्यक्ति को सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण कर पाने की सुविधायें देनी चाहिये ताकि निहित गुणों एवं संस्कारों की खोज कर उनके आधार पर उसके भीतर उन क्षमताओं को उत्पन्न किया जा सके जिनसे वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं को समझ कर तथा उपलब्ध साधनों को दृष्टि में रखते हुए उनकी पूर्ति के उपाय खोज कर काम में लाकर स्वयं एक सुखी जीवन का निर्माता बन सके। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति करने के योग्य बना देना है और मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति का अर्थ है उसका अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकना, अपनी सभी उलझनों को सुलझा सकना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यवहार के उस स्वरूप अथवा उस क्रिया-प्रणाली को खोज पाना शिक्षा का लक्ष्य है जो कि उन सभी मानवीय मांगों को पूरी कर सकती है जिससे कि व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत कर सकेगा। यदि यही मान लिया जाय कि अच्छी शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के लिये शैक्षिक प्रक्रिया द्वारा उन सभी व्यवहार के सर्वजन-स्वीकृत स्वरूप और ढंगों को सरल एवं सहज कर देना है जो व्यक्ति को सुखी

बनाते हैं तो यह मानना ही पड़ेगा कि शिक्षा भविष्य जीवन की पूर्ण एवं समुचित तैयारी है । इस तैयारी के ही द्वारा व्यक्ति इतना सक्षम हो जाता है कि वह भविष्य में जहां एक ओर अपने वातावरण के साथ बुद्धिमत्तापूर्वक समीकरण कर सके, वहीं दूसरी ओर अपने वातावरण को भी यथा-सम्भव समुचित ढंग से प्रभावित कर सके तथा आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन, संशोधन आदि भी कर सके । व्यक्ति का जीवन एक ऐसा क्षेत्र होता है जहाँ एक ओर तो व्यक्ति की अपनी भीतरी मांगें, इच्छायें, महत्वाकांक्षायें रहती हैं और दूसरी ओर वे सभी बाह्य मांगें उसके ऊपर अपना दावा जताती रहती हैं जो समाज एवं जाति की ओर से उसके लिये कर्तव्य के रूप में निर्धारित की हुई होती हैं और जिन्हें पूरा करने की अपेक्षा उससे की जाती है । ये दोनों ही प्रबल होती हैं और व्यक्ति इन दोनों प्रकार की मांगों के बीच अपना मार्ग बनाने के लिये विवश होता है । ऐसा करते हुए यह भी आवश्यक होता है कि वह अपनी सभी आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों का पूर्णतया ठीक ढंग से प्रयोग कर के अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को प्रभावशाली एवं सभी प्रकार से उपयोगी तथा सम्पन्न बना सके ।

नर-नारी शिक्षा के लक्ष्य में समानता का क्षेत्र

स्त्री और पुरुष दोनों को ही व्यक्ति होने के नाते सुखी एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत करना चाहिये । अतः दोनो की ही शिक्षा का समान लक्ष्य यह तो है ही कि उन्हें शिक्षा की प्रकिया द्वारा अपने व्यक्तित्व के पूर्ण एवं सर्वांगीण विकास कर पाने की सुविधा दे अथवा उनके व्यक्तित्व का इस प्रकार से निर्माण हो कि उनके सभी आन्तरिक गुणों एवं सभी प्रकार की योग्यता तथा क्षमता का जो कि बीजरूप में हैं पूर्णतया विकास हो सके तथा उनमें वह क्षमता आ जाय जिससे वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति वातावरण एवं परिस्थितियों से सहज समझौता करते हुये ही कर सकें ।

परिस्थितियाँ और वातावरण परिवर्तनशील है । विभिन्न प्रकार के अनुसंधान, वैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार के भी सभी प्रकार के मानव-समाजों को प्रभावित करते रहते हैं । अतः परिस्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं । अतः परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों के अनुकूल व्यक्ति को भी अपनी समझौते की भावना बनानी पड़ती है और उसकी शिक्षा-दीक्षा को परीक्षा की कसौटी वही क्षमता होती है क्योंकि वही व्यक्ति को सन्तुष्ट, सुखी और तृप्त अथवा असन्तुष्ट, परेशान और अतृप्त बनाती है । अतः इतना तो निश्चित ही जान पड़ता है कि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति को सशक्त, समर्थ और

वातावरण पर विजय प्राप्त कर के अपने जीवन को पूर्ण एवं सुखद बनाने की क्षमता प्राप्त करने योग्य बना देना है। यही लक्ष्य बालक की शिक्षा का होता है और ठीक यही उद्देश्य बालिका को शिक्षित करने का होता है। तब फिर प्रश्न यह उठता है कि क्या बालक और बालिका दोनों की शिक्षा का स्वरूप एकबारगी एक समान ही होना चाहिये। प्रश्न पर विचार करते समय यह देख लेना आवश्यक जान पड़ता है कि जीवन के क्षेत्र में दोनों के सम्मुख कौन-कौन से कार्य, कर्तव्य के रूप में रहते हैं अथवा कौन सी मांगें हैं जो कि उन पर अपना दावा समाज की ओर से उपस्थित करती हैं। क्या वे नर और नारी दोनों के लिये एक समान ही हैं? नर और नारी, स्त्री और पुरुष विश्वनियन्ता की सृष्टि के दो प्रमुख तत्व हैं। इन्हीं दोनों को लेकर समाज, जाति, राष्ट्र एवं विश्व बना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों की ही शिक्षा-दीक्षा होनी आवश्यक है, क्योंकि आज सभ्यता के विकास के जिस सोपान पर हम पहुँच गये हैं वहां मौलिक सिद्धान्तों की दृष्टि से पुरुष और स्त्री एक समान ही महत्व रखते हैं। आज स्त्री न तो पुरुष का गर्व करने योग्य अधिकृत समान ही है और न उसकी दासी ही। आज के युग में यह सोच पाना भी तनिक कठिन-सा जान पड़ता है कि किसी एक युग में पुरुष जहाँ विजित जाति की अन्य सब सुख-सामग्रियों पर अधिकार करता था वहीं उसे स्वाभाविक रूप से विजित जाति की स्त्रियाँ भी लूट के माल की भाँति ही प्राप्त हो जाती थीं। आज का सुसभ्य एवं उन्नत समाज स्त्री और पुरुष दोनों को ही समाजरूपी रथ के दो महत्वपूर्ण आधारभूत पहिये मानता है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि दोनों की ही शिक्षा-दीक्षा पर समान रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये।

भेद की बात

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या दोनों की शिक्षा का लक्ष्य और उसकी तकनीक एक ही सी होनी चाहिये। वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य और उसकी दिशा निर्धारित करने से पूर्व जिस व्यक्ति को शिक्षित किया जाय उसकी मानसिक गठन अथवा उसके मनोविज्ञान के विषय में जान लेना आवश्यक है। प्रकृति ने पुरुष को शारीरिक दृष्टि से कुछ अधिक लम्बा, सशक्त और कठिन परिश्रम के उपयुक्त बनाया है और उसकी पूरक नारी को मानसिक दृष्टि से कुछ अधिक सहनशील, लचीली और ममतामयी बनाया है। यही कारण है जहाँ जनक होते हुए भी पिता को बालक का जन्म देते समय कष्टकर प्रसव क्रिया का भार नहीं उठाना पड़ता वहीं माता को उस कठिन समय को सहन करना पड़ता है। दोनों ही मानव हैं, किन्तु फिर भी

दोनों के कम-से-कम सृष्टि रचना के दायित्वों में अन्तर है। यद्यपि हम नारी के आज दिन के मानसिक गठन और स्वभाव को किसी एक सीमा तक उस वातावरण की देन अथवा संस्कारों का परिणाम भी कह सकते हैं जिनमें कि वह जन्म लेती और पाली जाती है; किन्तु यह भी सत्य है कि कुछ अन्तर तो प्राकृतिक, नैसर्गिक अथवा मौलिक भी है ही। इन्हीं के आधार पर नारी का समूचा मानसिक गठन अथवा मानसिक जीवन पुरुष से कुछ भिन्न होता है। यद्यपि दोनों मिल कर ही परिवार और समाज की रचना करते हैं, किन्तु दोनों समानान्तर रेखायें न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं; अन्यथा घर की सृष्टि हो ही नहीं सकती थी। जब नैसर्गिक भेद है ही तो प्रश्न यह उठता है कि उनकी शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये यद्यपि मानव होने के नाते दोनों की मौलिक आवश्यकताएँ एक ही सी हैं अर्थात् शरीर रक्षा, पारिवारिक सुख और मानसिक शान्ति; तथापि पुरुष को बाह्य जगत से संघर्ष करके स्त्री और सन्तान के लिये सुख और सुव्यवस्था जुटानी पड़ती है जब कि नारी को भीतर रहते हुए भी पुरुष के बाह्य संघर्ष से क्लान्त मन एवं शरीर को सुख-सुविधा देने की व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः किसी सीमा तक तो स्त्री और पुरुष दोनों की ही शिक्षा का एक लक्ष्य होता है और होना चाहिये। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास अथवा शक्ति के सभी मूलभूत, बीजरूपी गुणों का— शारीरिक, मानसिक अथवा चारित्रिक— विकास। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति के भीतर प्रकृतिदत्त जो कुछ भी विकास योग्य है उसका पूर्णरूपेण विकास किया जाना चाहिये और शिक्षा उसे ऐसा कर पाने की दिशा में सहायता देती है। स्वस्थ व्यक्ति समाज के लिये अपेक्षित है। वह व्यक्ति जो बाल्याकाल से ही शरीर, मन और भावनात्मक जीवन सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित रखना सीख लेता है, वह स्वयं तो सुखी रहता ही है, उस समाज के लिये भी वरदान सिद्ध होता है जहाँ उसका जन्म होता है। अतः स्त्री पुरुष दोनों की ही शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तित्व का पूर्ण एवं समुचित विकास होना चाहिये। किन्तु नारी तो माता भी होती है और इसी नाते उसका प्रभाव उसकी सन्तान पर अत्यधिक होता है। यह सत्य हैं कि पिता का भी सन्तान के विषय में उतना ही दायित्व है जितना कि माता का, किन्तु पिता की अपेक्षा माता से सन्तान का लगाव कुछ अधिक इसलिये भी होता है कि जीवन के प्रारम्भिक दिनों में शिशु माता पर ही आश्रित रहता है। अतः यह भी स्वाभाविक ही है कि उसी का सन्तान पर अधिक प्रभाव हो। सन्तान के अतिरिक्त पुरुष की शक्तिदायिनी भी प्रायः नारी ही होती है। विश्व विजेता पुरुष भी अपने सारे

गर्व के बावजूद नारी के निकट प्रायः नम्र, कोमल और विजित-प्राय हो जाता है। अतः घर परिवार की धुरी नारी ही जाने या अनजाने बन जाती है। अतः उसकी शिक्षा का लक्ष्य उसके भावनात्मक गठन को और भी अधिक संन्तुलित, संयमित और वातावरण को लेकर समीकरण की दिशा में सहायक हो सकने योग्य होना चाहिये।

नागरिकता के दायित्व

इसके अतिरिक्त उसकी शिक्षा ऐसी तो होनी ही चाहिये जो उसे एक अच्छी माता, पत्नी, बहिन होने के अतिरिक्त एक अच्छी नागरिक भी बनाये। आज प्रजातन्त्र के युग में प्रत्येक व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक होना चाहिये क्योंकि वह स्वयं भी उस यन्त्र का एक पुर्जा तो होता ही है जो कि देश के शासन को चलाता है, अतः उसे अपने सभी उत्तरदायित्वों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये और साथ ही साथ उन्हें भली प्रकार निभा सकने की शक्ति भी उसमें होनी ही चाहिये।

बुरे समय का आधार

इसके अतिरिक्त नारी के लिये तो शिक्षा अच्छे समय का श्रृङ्गार है और बुरे ससय का आधार है। अतः उसकी शिक्षा ऐसी भी होनी चाहिये जिससे कि वह दुर्दिन में परवश न रह कर अपनी और अपनी सन्तान का जीवन निर्वाह समुचित ढंग से कर सके। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नारी शिक्षा का उद्देश्य नारी को एक पूर्ण सशक्त व्यक्तित्ववान मानव और एक कोमल हृदया ममतामयी परिवार की धुरी दोनों ही बनना होना चाहिये। उसके व्यक्तित्व में एक ऐसी क्षमता का प्रादुर्भाव हो जाना चाहिये जिससे वह अवसर को पहचान कर उसके अनुरूप कार्य करने की विवेक बुद्धि अपने भीतर पा सके, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह वज्रदपि कठोर हो सके और अवसर के अनुरूप मृद्वनि कुसुमादपि भी हो सके। शिक्षा के विषय कुछ भी हों, माध्यम कुछ भी हो, किन्तु उसकी सभी नैसर्गिक प्रकृतिदत्त प्रवृत्तियों का समुचित विकास किये जाने के साथ ही साथ उसे सक्षम और मानसिक दृष्टि से हर प्रकार के अवसर के लिये तत्पर बनाना अत्यावश्यक है और इसी में शिक्षा की सफलता निहित है।

कुछ अधिक विस्तृत लक्ष्य

इसका तो यह अर्थ हुआ कि यद्यपि शिक्षा का स्वरूप किसी एक सीमा तक तो बालक और बालिका दोनों का ही एक-सा होगा किन्तु नारी की शिक्षा का लक्ष्य कुछ अधिक विस्तृत होने के कारण इसकी शिक्षा-दीक्षा

तकनीक में कुछ विशेष तत्व भी सम्मिलित किये जाने चाहिये जिससे उस लक्ष्य की पूर्ति हो सके जिसकी चर्चा हमने ऊपर की है। अर्थात् शिक्षित स्त्री में वातावरण का अध्ययन कर के उसके सभी अङ्ग को समझ कर उसके साथ स्वयं को समीकृत कर पाने की क्षमता एमं योग्यता कुछ अधिक ही होनी चाहिये। परिस्थितियाँ व्यक्ति का निर्माण करने में बहुत-कुछ सहायक सिद्ध होती है किन्तु व्यक्ति भी तो परिस्थितियों को परिवर्तित, परिवर्द्धित एवं संशोधित करने का कार्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निरन्तर करता ही रहता है। घर परिवार के सीमित क्षेत्र में पुरुष की अपेक्षा नारी का उत्तर-दायित्व इस दिशा में कुछ और भी अधिक हो जाता है। अतः नारी को अपेक्षाकृत कुछ अधिक सहनशील, विचारशील और सन्तुलित होना चाहिये और उसके व्यक्तित्व में इन गुणों का विकास अथवा समावेश नारी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये। साथ ही साथ आज की नारी को दी जाने वाली शिक्षा ऐसी भी होनी चाहिये जो कि न केवल उसका यावज्जीवन का श्रृङ्गार ही हो, वरन् यदि ऐसा समय आ ही जाये तो वह उसका आधार भी बन सके अथवा उसकी जीविकोपार्जन का साधन भी हो सके। यूं भी आज शिक्षित नारी परमुखापेक्षी रहना नहीं चाहती। यदि ये भावना न भी हो, तो भी वह जीवनयापन के स्तर को आर्थिक दृष्टि से उठाने के लिये पुरुष के कन्धे से कन्धा मिला कर चलना चाहती हैं और सम्भवतः आज यह आवश्यक भी हो गया है। अतः उसकी शिक्षा में वे तत्व भी होने चाहिये जो कि उसे आर्थिक दृष्टि से भी स्वावलम्बी और उपयोगी नागरिक बना सकें।

नारी शिक्षा के लिए विषय-विशेष

यदि नारी शिक्षा के इस लक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाये तो बालक और बालिकाओं की शिक्षा किसी एक सीमा तक एक सी होने के बावजूद भी हमें बालिकाओं की शिक्षा को कुछ अधिक विस्तृत और सम्पन्न बनाना ही होगा। यह सत्य है कि कुछ बालिकायें जीवन क्षेत्र में अपने नैसर्गिक गुणों, रुचि और सम्मान तथा कुशाग्र बुद्धि के कारण कठिन और जटिल वैज्ञानिक तथा अन्य अनुसन्धानों में भी लग सकती हैं। हो सकता है कि कुछ राजनीतिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा अन्य क्षेत्रों में भी कुशलतापूर्वक कार्य-संलग्न हो जायें; किन्तु अधिकांश बालिकायें तो नारी हो कर घर गृहस्थी का ही भार उठायेंगी जो कि कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। अतः यह आवश्यक ही जान पड़ता है कि उन्हें गृहविज्ञान, मातृत्व, स्वास्थ्य रक्षा आदि के सम्बन्ध में समुचित ज्ञान करा दिया जाये। वस्तुतः घर परिवार ही समाज का निर्माण करते हैं। यदि पूर्णतया शिक्षित एवं सुगठित सन्तुलित

व्यक्तित्व के लिये नारी घर गृहस्थी की धुरी बन जाती है तो घर अथवा परिवार समाज की एक सुव्यवस्थित इकाई बन जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि परिवार को बनाने का सम्पूर्ण भार केवल नारी पर ही होता है अथवा होना चाहिये। किन्तु यह तो नितान्त सत्य है कि गृह साम्राज्य की साम्राज्ञी बहुत कुछ उस साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिये उत्तरदायी होती है। अतः उसकी शिक्षा-दीक्षा में वे तत्व तो होने ही चाहिये जो उसे इस भार को सफलतापूर्वक सहज ढंग से उठा सकने में समर्थ बना दें। इस दृष्टि से नारी शिक्षा का उत्तरदायित्व लेने वाली संस्थाओं का, व्यक्तियों का भी, कार्य भार कुछ कठिन अवश्य हो जाता है, किन्तु वह है अत्यन्त महत्वपूर्ण। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि नारी शिक्षा का लक्ष्य है एक ओर तो बालिका को अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर पाने में सहायता देना और दूसरी ओर उसी आधार भित्ति को लेकर उसे भावी जीवन के लिये पूरी तरह तैयार होने की सुविधायें जुटा देना। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये, कौन सा प्रकार अपनाना है और उस पर किस प्रकार चल कर लक्ष्य प्राप्ति की जा सकती है, शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से ये प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि केवल लक्ष्य को स्पष्ट रूप से देख लेना मात्र ही लक्ष्य सिद्धि के लिये पर्याप्त नहीं होता। आवश्यकता है उस लक्ष्य-सिद्धि के उपायों की खोज भी और उसको काम में लाना भी। आज शिक्षा क्षेत्र में काम करने वाले सभी व्यक्तियों के लिये यह परमावश्यक हो गया है कि वे इन सब प्रश्नों पर विचार करें और उन सभी समस्याओं के हल खोजने में जुट जायें जो नारी शिक्षा के इस लक्ष्य की पूर्ति में बाधक सिद्ध होती हैं और लक्ष्य प्राप्ति के लिये जिन्हें मार्ग से हटा देना आवश्यक है।

- **यह कटु सत्य है कि हिन्दी न केवल राष्ट्रीय एकता का सबल साधन है, अपितु सांस्कृतिक एकता का भी सर्वोच्च साधन है।**

★ ★ ★

- **हिन्दी अपनी सरलता और सुगमता के कारण सर्वजन ग्राह्य है।**

अध्यापक और राजनीति

(राजनीति-प्राध्यापक श्री गौरीशंकर टंडन)

प्रायः कहा जाता है कि बालकों को राजनीति से अलग रक्खा जाय अतः अध्यापकों को राजनीति में पदार्पण नहीं करने देना चाहिए। दलील चोखी है, परन्तु अनोखी है। अध्यापक राजनीति की दलदल में फंस कर अपनी स्वतन्त्र विचारधारा खो देता है। कुंठित शरीर के साथ उसकी विवेक-शक्ति पर आवरण पड़ जाता है और जिह्वा का बल बढ़ जाता है।

आज का बालक कल कई पूतों का पिता होगा, विधायकों का विधाता होगा, राष्ट्र की प्रगति के सभी क्षेत्रों से उसका नाता होगा। जलचर के बच्चे को जल से अलग रखकर, चिड़िया के बच्चे को सदा पिंजड़े में रखकर, क्या उसका कल्याण और विकास सम्भव हो सकता है ? जो लोग बाल-समाज को राजनीनि की हवा नहीं लगने देना चाहते हैं वे राजनीति के गुणों को संकुचित दृष्टि से देखते हैं। नागरिकता जो राजनीत्ति की जननी है, उनकी दृष्टि में कलह की समकक्षिणी अथवा विवेक की भक्षिणी है।

विचारपूर्वक देखा जाय तो राजनीति, शासन-नीति और समाज-नीति में वही सम्बन्ध है जो मानव शरीर में शिराओं, धमनियों और स्नायुओं में है। तीनों एक-दूसरे के सम्पूरक हैं। मानवों से ही समाज का निर्माण होता है, राजनीति के अध्ययन से समाज-कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। सत्य, संयम, सद्भावना, सहअस्तित्व और सहयोग की भावना से परिपूरित नागरिकों द्वारा ही राज्य और समाज का विकास सम्भव है।

धार्मिक विश्वास, आर्थिक स्थिति और पारिवारिक वातावरण का बालक के चरित्र के विकास में विशेष हाथ रहता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के साथ उपर्युक्त परिस्थितियों पर भी ध्यान रखना ही पड़ता है। पाठशालाओं में अध्यापक का प्रमुख कार्य बालकों को इस योग्य बनाना है कि वे प्रत्येक राजनैतिक समस्या को विवेक की कसौटी पर कसकर तथ्य तक पहुंच सकें। प्रत्येक राजनैतिक विषय का वैज्ञानिक एवं स्पष्ट विश्लेषण किशोरावस्था में — बालक के पाठशाला-संसार में-ही सम्भव होता है। यहाँ अध्यापक का कार्य नियन्त्रक का होता है तो अध्यापक की कुछ मान्यताएँ और सीमाएँ भी होती हैं।

सर्वप्रथम किसी भी राजनैतिक विषय में अध्यापक पहले से अपनी धारणा न बना ले और उसी धारणा को बालकों पर लादने का प्रयत्न न करे। प्रत्येक विषय पर पक्ष और विपक्ष के दृष्टिकोणों का विश्लेषण न्यायाधीश की तरह बालकों के सामने किया जाय।

परन्तु अध्यापक स्वयं राजनीति के बवंडर अथवा दलबंदी में इतना हलका न पड़ जाय कि अनुचित हवा में उड़ने लगे। जिस प्रकार व्यापार-शास्त्र का अध्यापक लाखों का देना और पावना पढ़ाता है; परन्तु उसके पल्ले फूटी कौड़ी नहीं आती, उसी प्रकार राजनीति अन्य सामाजिक विषयों के अध्यापक को भी निस्पृह होना चाहिए। अध्यापक स्वयं राजनीति का खिलौना न बन जाय, निस्पृह खिलाड़ी ही बना रहे। आणविक शक्ति का आविष्कर्ता यदि विस्फोट का परीक्षण अपने ऊपर ही कर लेता है, तब भला अणु की महान महिमा का ज्ञान समाज को कैसे होता? अध्यापकों को भी बालकों को नियंत्रित रखते हुए उनमें विवेक का विकास करना चाहिये।

राष्ट्रीय विकास और ह्रास का असर उस देश के तत्कालीन समाज पर भी पड़ता है। जागरूक बाल-समाज देश की शांत प्रगति और विकास का थर्मामीटर है। राजनीति से विरक्त विद्यार्थी वर्ग कैसे आगे चलकर देश का नेतृत्व कर सकता है? यह भी निर्विवाद सत्य है कि बाल-समाज का निर्देशन अध्यापक-वर्ग ही कर सकता है। सिकन्दर का निर्माता अरस्तू ही था। चन्द्रगुप्त का आचार्य चाणक्य ही था और शिवाजी जीवन पर्यन्त समर्थ गुरू रामदास के आभारी रहे।

आज का युग प्रचार और नारों का है। रेडियो, समाचार पत्रों और नेताओं के भावात्मक नारों में बाल-समाज को बह जाने से रोकने के लिए अध्यापक जलधारा के मध्य वह लोहे की चादर है जो धारा प्रवाह को जनोपयोग की दिशा में मोड़ती है। अध्यापक बाल-समाज को कल्पना और भावावेश में विचरण करने से रोकता है और उसमें वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति जगाता है। बालकों में दूसरे के दृष्टिकोण के समझने और सुनने की आदत डाली जाय। अध्यापक स्वयं समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को बालकों के समक्ष रक्खें और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करें। समाचार पत्रों और अन्य प्रचार वाहनों के विषैले वातावरण से तथ्य की बात निकालने और सत्य की गहराई तक सोचने की शक्ति बालकों में उसी अवस्था में आ सकती है जब अध्यापक स्वयं मीटिंगों में जायँ, नेताओं के व्याख्यानों को सुनें, देशी और विदेशी साहित्य का

मनन करके अपना दृष्टिकोण निर्धारित करें। समाज को ऐसे अवसरों पर अध्यापकों की उपेक्षा नहीं, स्वागत करना चाहिए।

शिक्षालयों में राजनीति के प्रवेश की दुर्गन्ध उन नेताओं को भले ही आये जिनकी विचारधारा संकुचित है या जिनके हृदय में शासन शक्ति के हस्तांतरण की दुराकांक्षा हो। चतुर माली ही छोटे से बीज से महान फलदायक वृक्ष उगा सकता है। इसी प्रकार चतुर अध्यापक बातों-बातों में बालक के मष्तिष्क में महान तथ्यों का बीजारोपण करके उनमें समाज-निर्माण की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं।

राजनीति को यदि विषाक्त मान भी लें तब भी जैसे बदबूदार हाईड्रोजन सल्फाइड गैस से सैकड़ों लोगों को आधारभूत तथ्यों का ज्ञान होता है, उसी प्रकार बालकों में विवेक शक्ति पाठशाला में ही उत्पन्न की जा सकती है। मस्तिष्क को प्रगतिशील बनाने के लिए राजनीति का मनन और अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितनी आवश्यकता भूमि को उर्वरा बनाने के लिए खाद की होती है, यद्यपि खाद बदबूदार और गन्दी वस्तु है। खेत में खाद की मात्रा और समय भी चतुर किसान निर्धारित कर सकता है। बाल-मानस में समय और अवस्था के अनुकूल राजनीति का समावेश चतुर अध्यापक ही कर सकता है।

यह सही है कि राजनीति के बवंडर में फँसा हुआ बालक न तो पुस्तकीय ज्ञान ही प्राप्त हो पाता है और न ही भावी जीवन को सफल बना पाता है। राष्ट्र के शीर्षस्थ निर्माताओं की जीवनियाँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। पुरुषोत्तमदास टंडन, सुभाषचन्द्र बोस, राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल नेहरू अपने-अपने विद्यार्थीकाल में राजनैतिक प्रगति के जागरूक अध्येता अवश्य रहे, परन्तु राजनीति के बवंडर में नहीं पड़े, तभी तो वयस्क होकर राजनीति के क्षेत्र का सफल नेतृत्व कर सके।

राजनीति, शासन नीति और धर्म नीति आज के युग में एक दूसरे के पूरक हैं, राष्ट्रोन्नति के आधार हैं। अतएव शिक्षालयों से राजनीति की उपेक्षा देश के लिये लाभकर सिद्ध नहीं हो सकती। शर्त यही है कि अध्ययन और चिन्तन ही हो, इसके बवंडर में प्रवेश शिक्षकों के लिये वर्जित रहे और शिष्यों के लिए भी।

दो याजनायें

१ — शिक्षक-संरक्षक संपर्क की एक समस्या

शिक्षा के नैतिक, मानसिक और शारीरिक स्तर को ऊंचा करने के लिए शिक्षा प्रणाली, परीक्षा प्रणाली, व्यवहारिक शिक्षा, पाली प्रणाली आदि भिन्न उपायों पर विचार किया जा रहा है जो समय और धन साध्य है। यदि हम शिक्षक बिना आर्थिक सहायता के तत्काल स्तरोन्नयन की दिशा में प्रयत्न करने के अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना चाहते हैं तो हमें शिक्षक-संरक्षक संपर्क बढ़ाना चाहिये।

सामूहिक संपर्क के बहुत से सुझाव हो चुके हैं। शिक्षक-संरक्षक संघ हों, उनकी बैठकें हुआ करें और विद्यालय के वार्षिक उत्सव में संरक्षक बुलाये जायँ। परन्तु व्यावहारिक रूप में ऐसे कोई भी सुझाव कार्यान्वित नहीं हो सके हैं। विद्यालय में पुरुष उपस्थित हों या महिलायें। पुरुष रोजी कमाने में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं और महिलायें अभी विद्यालय जाकर अपने बच्चों की पढ़ाई के विषय में शिक्षकों से बात करने की आदी नहीं हुई हैं। यों सामूहिक संपर्क के विरुद्ध कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं और संरक्षकों को विद्यालय पहुंचने के लिये प्रेरित करना भी कठिन मालूम पड़ता है।

संरक्षक-संरक्षिका का विद्यालय पहुंचना दुस्तर है, परन्तु शिक्षक का बच्चों के घर पहुंचना बहुत कठिन नहीं है। लखनऊ के एक विद्यालय में बारहवीं कक्षा तक १८०० विद्यार्थी हैं और उनके शिक्षकों की संख्या ६० तक पहुंचती है। यों प्रत्येक शिक्षक के भाग में ३० विद्यार्थी आते हैं। परन्तु इन विद्यार्थियों के घर १५-२० से अधिक नहीं हो सकते, क्योंकि एक-एक घर से २, ३, ४, विद्यार्थी तक विद्यालय में पढ़ने आते हैं। वर्ष में दो बार शिक्षक का १५-२० घरों में असंभव नहीं। ट्यूशन करते हुए भी वह इतने घरों में तो जा ही सकता है।

परन्तु जाना ही यथेष्ट नहीं है। इसके लिये विद्यालय में आवश्यक तैयारी होनी चाहिये। शिक्षक के पास उन विद्यर्थियों के सम्वन्ध में यथेष्ट सूचना पहुंचनी चाहिये जिनके घर उसे पहुंचना है। कक्षा के हिसाब से तो बच्चे वंटे रहते हैं। शिक्षण सत्र के प्रारम्भ में कम-से-कम एक बार विद्यार्थी मोहल्लों के हिसाब से बांटे जायं, एक या अधिक पड़ोसी मोहल्लों के विद्यार्थी निर्दिष्ट शिक्षक के संरक्षण में इकट्ठे हों। संरक्षक की हैसियत से शिक्षक स्वयं उनका निरीक्षण करे, उनके शिक्षकों से अपने प्रत्येक बच्चे के विषय में

आवश्यक जानकारी प्राप्त करे। इस प्रकार तैयार होकर पहुंचने पर ही वह बच्चों के माता-पिता को उनके सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव दे सकेगा।

विद्यालयों में बच्चों की परीक्षा के नम्बर तो तैयार रहते ही हैं, उनकी तौल और ऊँचाई का लेखा रखने का आदेश भी विद्यालयों को है। जो शिक्षक विद्यालयों की ओर से बच्चों का संरक्षक नियुक्त होता है, उसके पास अपने बच्चों की परीक्षाओं का लेखा रहना चाहिए और उनकी तौल और ऊंचाई का लेखा भी उसके पास रहे। कक्षा के शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि अपने किसी विद्यार्थी की आदत के विषय में उन्हें कोई दोष दिखाई दें, विद्यार्थी को बोर्ड से पढ़ने में कठिनाई प्रतीत हो, ऊँचा सुनता हो, मुंह खुला रखता हो, दांत और नाखून गंदे रहते हों, तो संरक्षक-शिक्षक के पास आवश्यक सूचना पहुंचाना उसका कर्त्तव्य हो। इस प्रकार तैयार होने पर संरक्षक–शिक्षक को किसी घर पहुंचने के पहले उसको सूचना देनी आवश्यक होगी और ऐसे मौके पर उसका पहुंचना उचित होगा जब बच्चों के माता-पिता उपस्थित हों और वे आवश्यक समय अपने मेहमान को दे सकें। शिक्षक का सुझाव माता-पिता की आर्थिक स्थिति और घर की हालत पर आधारित होनी चाहिये। यदि माता-पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, घर छोटा है, तो बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा, घर पर उनके पढ़ने की व्यवस्था, के सुझाव ऐसे ही हों जो माता-पिता के बस के हों।

विद्यालयों में बच्चों की आदतें बहुत-कुछ घर और पड़ोस के वातावरण पर अवलंबित रहती हैं। यदि घर में प्रातः संध्या कलह होती है, मोहल्ले में गाली और गंदगी की धूम रहती है, तो विद्यालय में भी वहां के बच्चे वैसा ही वातावरण बनाते हैं। घर की कलह या मोहल्ले की गन्दगी का निराकरण एक शिक्षक के बस की बात नहीं। उपयुक्त प्रयोग के एक-दो वर्ष तक चालू रहने पर उन सब शिक्षकों का सम्पर्क सम्भव हो सकेगा जो विभिन्न विद्यालयों से उन मोहल्लों में आते हैं। उसके तथा मोहल्ले के शिक्षित और जागरूक नागरिकों के सहयोग से मोहल्ला संघ की स्थापना होने पर घर और मोहल्ले के नैतिक वातावरण का सुधरना भी सम्भव होगा। सम्पर्क की योजना उसी प्रकार होनी है जिसका संकेत ऊपर है।

संरक्षक-शिक्षक का एक दौरा अगस्त में हो और दूसरा दौरा जनवरी-फरवरी में हो, जब बच्चों की छ:माही परीक्षाओं के फल शिक्षकों के सामने आ जायँ। तब छः महीने के भीतर बच्चों ने पढ़ाई, स्वास्थ्य और चरित्र के भीतर में जो कुछ उन्नति या अवनति की हो, उसका ब्योरा शिक्षक के सामने होगा और बच्चों के घर पहुंच कर माता-पिता को समुचित परामर्श दे सकेगा।

यह प्रयोग आगामी सत्र १९६५-६६ के लिये उत्तर प्रदेश के बड़े-बड़े नगरों में पहले चालू हो। इस सेवा के लिए शिक्षकों का कुछ प्रशिक्षण आवश्यक होगा। यह प्रशिक्षण मेरे जैसे अवकाश प्राप्त शिक्षक कर सकेंगे। पहले वर्ष तो इस प्रशिक्षण को अनुभव का विशेष आधार नहीं मिल पायेगा। परन्तु आगामी वर्षों के सेमिनार पहले से अधिक उपयोगी होंगे क्योंकि उन्हें शिक्षक-संरक्षक सम्पर्क का वास्तविक अनुभव प्राप्त हो सकेगा।

इस लेख के एक शिक्षक बंधु की नजर में आने पर कहा गया कि संरक्षक के घर शिक्षक के जाने से उसकी मान-हानि होगी। यह धारणा गलत जान पड़ती है। यदि माता–पिता समझे कि संरक्षक-शिक्षक उनके बच्चे का सच्चा हितैषी है, तो वे उसका स्वागत करेंगे, उसकी बात सुनेंगे और यथाशक्ति उसके सुझावों का अनुसरण भी करेंगे। इस लेख में दिये गये सुझाव पर पाठकों से आलोचना की अपेक्षा है।

२—सहकारी गुरुकुल योजना

देश के स्वर्णिम अतीत में शिक्षा ऐसे वन्य आश्रमों में होती थी जहां शिक्षक और शिष्य एक परिवार के रूप में रहते थे; शिक्षक का शिष्य की जीवनचर्या पर पूर्ण नियन्त्रण रहता था और ज्ञान के आदान-प्रदान द्वारा शिष्य की शिक्षा पूर्ण होती थी, शिक्षक से उसे दीक्षा मिलती थी और जीवन में प्रवेश मिलने पर शिक्षक को दक्षिणा दिये विना वह गुरु-ऋण से मुक्त नहीं माना जाता था।

उस स्वर्णिम अतीत की भाँति अब स्वतन्त्र है, परन्तु युग दूसरा है। इस युग की आवश्यकताऐं और सुविधाएँ देखते हुए तो हमें ऐसे गुरुकुल स्थापित करने हैं जिनके संचालन के लिए अर्थ की व्यवस्था शासन और अभिभावकों के सहयोग से संपन्न हो और जिनकी प्रबन्ध-व्यवस्था शासन, शिक्षक और अभिभावक के पारस्परिक सहयोग से हो; गुरुकुलों की स्थापना ऐसे खुले स्थानों पर हो जो नगर से अलग हों; परन्तु जिन तक शिक्षकों तथा शिष्यों की पहुंच सरलता से हो सके। वातावरण से शिक्षकों-शिष्यों को शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शान्ति की निधि मिले, नगर की निकटता से उन्हें आधुनिक युग की सुविधाएँ मिलें और शिक्षक अपने शिष्यों को आधु-

निक शक्ति संचालित व्यवसाय, व्यापार और प्रविधि का व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान कर सकें।

योजना की व्यवहारिक रूप रेखा इस प्रकार है—

१—अभी उच्चतर माध्यमिक शिक्षालयों में नवीं से बारहवीं कक्षा की शिक्षा की दशा में बहुत कुछ सुधार होना है।

२—अतएव अभी कुछ गुरुकुल ऐसे ही स्थापित हों जिनमें नवीं से बारहवीं कक्षा तक हिंदी, अंग्रेजी, गणित, भूगर्भ, कला, भौतिक विज्ञान, रसायन, वानस्पत्य विज्ञान और प्राणिशास्त्र की शिक्षा का प्रबन्ध हो।

३—कक्षा में तीस विद्यार्थियों से अधिक न हों और किसी कक्षा के दो सेक्शनों से अधिक न हों। यों विद्यार्थियों की कुल संख्या २५० से अधिक न होगी।

४—इन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए विद्यालय में कमरों की व्यवस्था इस प्रकार हो :

१	प्रयोगशाला	भौतिक विज्ञान
१	,, ...	रसायन
१	,, ...	वानस्पत्य विज्ञान और प्राणिशास्त्र
१	कमरा	भौतिक विज्ञान
१	कमरा	रसायन
१	कमरा	वानस्पत्य विज्ञान और प्राणिशास्त्र
१	कमरा	कला
१	कमरा	भूगर्भ
१	कमरा	गणित
२	कमरे	अंग्रेजी
२	कमरे	शिक्षकों के लिये
१	कमरा	कुलपति के लिये
१	कमरा	दफ्तर के लिये
१	कमरा	पुस्तकालय के लिये

४ छोटे कक्ष प्रयोगशाला के साथ शिक्षकों के लिये
१ शौचालय शिक्षकों के लिये
२ शौचालय विद्यार्थियों के लिये

५--शिक्षकों की संख्या इस प्रकार हो :

२ अंग्रेजी, २ हिन्दी, २ रसायन, २ भौतिक विज्ञान, २ वानस्पत्य और प्राणिशास्त्र, २ गणित, १ कला, १ भूगर्भ--१४

इसके अतिरिक्त १ कुलपति, १ पुस्तकाध्यक्ष। इन शिक्षकों में कम से कम पांच विद्यार्थियों को सैनिक और शारीरिक शिक्षा देने योग्य हों।

६—प्रत्येक शिक्षक को सकुटुम्ब रहने के लिए एक भवन मिले। विद्यालय के १८ विद्यार्थी इस कुटुंब के सदस्य हों।

७—शिक्षक भवन का नक्शा इस प्रकार हो :

१ शिक्षक का अध्ययन कक्ष, १ शिक्षक की बैठक, १ शयन कक्ष शिक्षक के लिये, १ शयन कक्ष विद्यार्थियों के लिये, १ अध्ययन कक्ष विद्यार्थियों के लिये, १ स्नानागार और शौचालय शिक्षक के लिये।

भवन से अलग परन्तु निकट २ स्नानागार और ४ शौचालय विद्यार्थियों के लिये, एक किचन और एक स्टोररूम पाक-गृह के लिये।

सहभोजन विद्यार्थियों के शयन-कक्ष में हो।

कुलपति और पुस्तकाध्यक्ष के भवन एक-दूसरे से लगे होंगे। प्रत्येक में तीन कमरे, पाक-गृह, शौचालय और स्नानागार हों।

८—प्रत्येक गुरुकुल के साथ एक अस्पताल भी हो :

१ भवन जिसमें डाक्टर के लिये १ चिकित्सा कक्ष, १ औषधालय, १ शल्य चिकित्सा गृह, १ शौचालय, १ स्नानागार, १ पाक-गृह और २ निवास कक्ष।

भवन से अलग १ कमरा ऐसे मरीजों के लिये जिन्हें छूत का रोग न हो : चार कमरे संक्रामक रोग ग्रस्तों के लिये। प्रत्येक के साथ शौचालय।

अस्पताल में गुरुकुल के पड़ोसियों की भी चिकित्सा हो। परन्तु कमरों में भरती के लिये गुरुकुल के सदस्यों को प्राथमिकता दी जाय।

९—शिक्षकों और विद्यार्थियों के श्रमदान के लिये यथेष्ट बड़ी वाटिका हो और व्यायाम के लिये यथेष्ठ खुली भूमि भी जिसमें चार बास्कटवाल कोर्ट और इतने ही बालीबाल कोर्ट हों। इसी भूमि पर एक व्यायामशाला हो। यथेष्ट बहते जल की सुविधा हो, तो पैराई कुंड की व्यवस्था भी की जाय।

१०—पेंशन प्राप्त या सेवामुक्त शिक्षकों को जिनकी अवस्था ५० से ऊपर हो, परन्तु जो शरीर और मस्तिष्क से स्वस्थ हों उन्हें सपरिवार मुफ्त

भोजन और निवास सहित १०० रुपया महीना मिले। सपत्नीक रहते हुए शिक्षक दो आश्रितों को सम्मिलित कर सकें जिन्हें मुफ्त भोजन के साथ मुफ्त पढ़ाई की सुविधा भी मिले यदि ये आश्रित गुरुकुल के विद्यार्थी भी हों। स्वस्थ रहते हुए ये शिक्षक ७५ वर्ष की अवस्था तक शिक्षण कर सकें। १० वर्ष की सेवा के पश्चात् सेवामुक्त भी हो सकें और उन्हें गुजारे के लिये आजीवन ५० रुपया महीना मिलता रहे।

कुलपति और पुस्तकाध्यक्ष सपत्नीक सहयोग में सम्मिलित होने के अधिकारी हों। कुलपति को और उन शिक्षकों को जो विषय शिक्षा के अतिरिक्त शारीरिक और सैनिक शिक्षा का नेतृत्व करें, ३० रुपया प्रतिमास अतिरिक्त मिले। कुलपति, पुस्तकाध्यक्ष और शिक्षक कक्षा के बाहर नियत समय पर विद्यार्थियों के स्वाध्याय में सहायक हों। शिक्षक लेखों, पुस्तकों और परीक्षा शुल्क से अतिरिक्त आय अर्जित कर सकें: परन्तु प्राइवेट ट्यूशन के अधिकारी न हों। शरद् के अवकाश काल में शिक्षकों को अपने ज्ञान के विकास का मौका दिया जाय। विश्वविद्यालय उन्हें रिफ्रेशर प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करे।

११—गुरुकुल की जीवनचर्या आश्रमीय अनुशासन के अनुकूल हो। प्रातःकाल ४ बजे सोकर उठना, ५ बजे तक नित्य कर्म से निवृत्ति, ५ बजे से ८ बजे तक स्वाध्याय, ८ बजे से ९ बजे तक स्नान, ९ से १० बजे तक जलपान, १० बजे प्रार्थना सामूहिक, १० १/४ से १ बजे तक पढ़ाई, १ से २ तक भोजन और विश्राम, २ से ४ १/४ बजे तक शिक्षा, ५ बजे तक जलपान, ५ से ६—७ बजे तक खेल, व्यायाम, बाटिका में श्रमदान, ७॥ से ८ बजे भोजन, ९-१० तक मनोरंजन या शयन।

प्रतिदिन दो विद्यार्थी भोजन की व्यवस्था में सेवा करें और इतने ही सफाई का काम करें। प्रत्येक गुरु परिवार में १८ विद्यार्थी होंगे तो प्रत्येक विद्यार्थी को प्रतिमास सेवा के ७ दिन मिलेंगे।

१२—प्रति रविवार छुट्टी: दशहरा १० दिन की छुट्टी: शरद में एक महीने की छुट्टी घर के लिये: १५ दिन का ए० सी० सी० या एन० सी० सी० कैम्प और १५ दिन पर्यटन। सभी विद्यार्थी ए० सी० सी० अथवा एन० सी० सी० के सदस्य होंगे।

प्रति रविवार पढ़ाई के समय स्वाध्याय या सैर या श्रमदान।

१३—विद्यार्थी के माता-पिता को पढ़ाई और भोजन के लिये ६० रुपया प्रतिमास देने होंगे, दो महीने की छुट्टी में उन्हें १५ रुपया प्रतिमास

फीस के देने होंगे । परन्तु कैम्प और पर्यटन का व्यय भार उन्हें उठाना होगा। सब मिला कर प्रतिवर्ष १,२०० से अधिक व्यय नहीं सहन करना होगा। विद्यार्थियों की भरती मानसिक और शारीरिक परीक्षा के बाद होगी और १६ वर्ष से ऊपर तथा १२ वर्ष से नीची अवस्था के विद्यार्थी भरती नहीं हो सकेंगे ।

१४—-योग्य तथा निर्धन विद्यार्थियों के लिए छात्र-वृत्ति की व्यवस्था भी होगी।

उपर्युक्त योजना पर पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रार्थना है ।

—-कालिदास कपूर

◆

सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
सत्यामाहुः परंब्रह्म तस्मात् सत्यं सदा वदेत् ॥

* * *

ॐ असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर् माऽमृतं गमय ।

* * *

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थेवापि मानवाः ।
अनृतं येन भाषन्ते ते नरा स्वर्गगामिनः ॥

* * *

उद्विजन्ते यथासर्पात् नराः अनृतवादिनः ।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥

* * *

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

युग की माँग और भारतीय शिक्षा आयोग का दायित्व

(उद्घाटन-समारोह में आयोग के अध्यक्ष डा० दौलतसिंह कोठारी के अभिभाषण का प्रमुख अंश)

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर इस सेवा का मौलिक उद्देश्य यह होता है कि देश के होनहारों में किसी लक्ष्य विशेष तक पहुंचने की जिज्ञासा जाग्रत हो, वे समर्पण-वृत्ति लेकर अपने लक्ष्य की सिद्धि में लगें, उनका आत्म-विश्वास दृढ़ हो और देश के भावी के सम्बन्ध में वे दृढ़ आशावादी बनें। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें अपने नवयुवकों को यथेष्ट और स्फूर्तिदायक अवसरों की सुविधायें प्रदान करनी हैं। यह कैसे हो? इसका कोई सरल या दिखाऊ हल नहीं बताया जा सकता और इस मामले में प्राविधिकि उन्नति प्राप्त देशों से भी स्पष्ट मार्ग-दर्शन की सम्भावना नहीं दिखती। वस्तुत: समाज जितना ही उन्नत होता है उतना ही उसके सदस्य को अपनी शिक्षा और प्रशिक्षा के लिए अधिक समय देना पड़ता है क्योंकि तभी वह धन्धे से लग सकता है। दूसरे शब्दों में **शिक्षा को जीवन से और उत्पादन को शिक्षा से सम्बद्ध करने की समस्या ऐसी है जिसे प्रत्येक देश को स्वयं ही हल करना है।** इतना ही है कि उसे दूसरे देशों के अनुभव और विकास से आवश्यक पाठ मिल सकते हैं। भारतीय शिक्षा आयोग के सामने जो उद्देश्य हैं उनमें इसका विशेष महत्व है। शिक्षा और जीवन एक दूसरे से घनिष्ट रूप में आबद्ध हैं। जीवन गतिशील है। इसलिए शिक्षा भी उतनी ही गतिशील होनी चाहिए और उसकी चर्चा निरन्तर चलती रहनी चाहिए। परन्तु इससे यह मतलब नहीं कि स्थायी शिक्षा आयोग की हिमायत की जा रही है। इस संदर्भ में जे० डब्ल्यू० गार्डनर महोदय का कथन उद्धरणीय है जो हमारे जमाने के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री रहे हैं। वह कहते हैं—"सिकन्दर ने पच्चीस वर्ष की अवस्था के पूर्व अपने जमाने की दुनिया का आधा भाग अवश्य जीत लिया और इङ्गलैण्ड के नवयुवक बीस वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के पहले ही १९वीं शती में अपने अपने जहाज़ों के कप्तान हो गये थे। परन्तु आज के युग में हमारे लिए लम्बे प्रशिक्षण और अनुभव पर विशेष जोर देना नितान्त आवश्यक हो गया है। हमने अपने समाज का निर्माण इस प्रकार किया है कि आज के किशोरों को जो शिक्षा की सुविधायें मिल पाती हैं वे किताबी होती हैं या सारहीन। आमतौर पर

जब हम अपने किशोर की नैतिकता जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं तो इतना ही कर पाते हैं कि उसे सूखते हुए हौज पर पहरा देने के लिए आमंत्रित कर दें। इन नौजवानों के चंचल मनों और उत्साही हृदयों के लिए कितनी भद्दी बात हो जाती है जब नैतिकता का संसार उन्हें ऐसा लगता है मानों माता, पिता शिक्षक या उपदेशक ने जवानों को थकाने के लिए ही इस संसार का आविष्कार किया हो। **इन नौजवानों में ऐसा विचार आने देने के बजाय कि उन्हें पुराने ही नैतिक मूल्यों पर पहरा देते रहना है, हमें यह कठोर परन्तु स्फूर्तिदायक सत्य उन्हें बताना है कि उनका काम उन नैतिक मूल्यों का अपने ही दैनिक व्यवहार में पुनर्निर्माण करते रहना है, अपने ही युग की दुविधाओं और दुर्घटनाओं का सामना करते हुए।** यह विचार उनके मन में आने देने के बजाय कि हमारे आदर्श वही हैं जो पुरानी लड़ाइयों और पूर्वजों की करनियों में भली प्रकार दफ़न हैं, हमें उनसे यह कहना चाहिए कि प्रत्येक पीढ़ी को बार-बार और नये किस्म की निर्णायक लड़ाइयाँ लड़नी हैं। तभी आदर्शों को पुनर्जीवन मिलता रहेगा या वे विनाश प्राप्त होंगे।''

विज्ञान का युग—

यह याद दिलाना जरूरी नहीं कि विज्ञान आधुनिक संसार की नवीन देन है, क्योंकि गम्भीर और व्यापक रूप में इसका अध्ययन और प्रचार हमारे जीवन के प्रायः प्रत्येक पक्ष में प्रवेश किये हुए हैं। आधुनिक जगत साइंस पर आधारित है, वैज्ञानिक से नहीं; परन्तु विज्ञान से पूर्णरूपेण प्रभावित है। और पीछे हटने की कोई सम्भावना नहीं दिखती। इतना ही हो सकता है कि आणविक विज्ञान ने मानव के हाथों में जो प्रायः अपार शक्तियाँ सुपुर्द कर दी हैं उनका यदि वह अपनी मूर्खता या अयोग्यतावश मानव मात्र के सच्चे हित में प्रयोग न कर सके तो सभ्य संसार स्वयं ही विनष्ट हो जाय।

परिवर्तन की द्रुतिगति—

विज्ञान पर आधारित संसार की विशेषता यह है कि इसमें मन्द और क्रमशः परिवर्तन नहीं होता। इसके विपरीत परिवर्तन और नवीनता की गति भयावह रूप में द्रुत है। यह परिवर्तन हमारे भौतिक वातावरण को तो प्रभावित करते ही हैं; वे हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक और अन्ततः आध्यात्मिक मूल्यों को भी प्रभावित करते हैं। प्रायः एक दशक में विज्ञान

से प्रभावित मूल्य दूने हो जाते हैं। तो भी हमें याद रखना है कि विज्ञान और व्यवसाय कठोर, निरन्तर और समर्पित श्रम पर आधारित हैं। विज्ञान ने श्रम को एक नवीन पद और महत्व दिया है। सो इस बात में विज्ञान का युग प्राचीन अतीत की सभ्यताओं से नितान्त भिन्न है। वस्तुतः विज्ञान का दूसरा नाम है कठोर श्रम। **अतएव शैक्षिक सुधार के लिए यदि एक ही महत्वपूर्ण बात कही जाय तो वह यह है कि हम कठोर, ठोस, प्रशान्त तथा अटूट श्रम का वातावरण जाग्रत कर सकें।**

शिक्षा का केन्द्रीय महत्व—

अतएव द्रुतगति से बदलते इस संसार में, जो हमारे जीवन काल ही में इतना बदल जाता है कि पहचाना नहीं जा सकता, शिक्षा की व्यवस्था का महत्व केन्द्रीय हो जाता है। आंशिक रूप में शिक्षा वह हो जो हमारे मस्तिष्क के कपाट खोल दे और उसे विकास का मौका दे, जिससे हमारी सहनशीलता का विकास हो, हम संसार भर से सहयोग कर सके और परिवर्तनों के अनुकूल अपना जीवन क्रम बना सके। इन सबके ऊपर शिक्षा के द्वारा हममें साहस और सहनशक्ति के गुण पुष्ट हों और सत्य तथा स्वतन्त्र जिज्ञासा के लिए हम सशक्त और दृढ़ निश्चय भावना से प्रोत्साहित हो। सम्भव है कि मानव शीघ्र ही सही अर्थों में, इस संसार ही का नहीं, ब्रह्मांड का भी नागरिक हो जाय, क्योंकि हमें पृथ्वी से बहुत दूर ऐसे संसारों का भी पता लग सकता है जहाँ हमारे जैसे बुद्धि-युक्त प्राणी रहते हों।

चिंतन में उफान—

विज्ञान और प्रविधि की गति इतनी द्रुत है कि कोई शोध-निबन्ध, यदि वह अच्छा भी है तो, आमतौर पर प्रकाशन की तिथि तक पुराना पड़ जाता है; कोई ग्रेजुएट अपना प्रमाणपत्र पाने की तिथि तक दकियानूसी हो जाता है। इस सच्चे रूप से कर्मशील क्षेत्र में शोध के लिए व्यय साध्य यंत्र प्रयोगशाला पहुँचने के समय तक पुराना पड़ जाता है। उन्नत देशों में आजकल शिक्षा में एक प्रकार का उफान सा आया हुआ है। कुछ देशों में तो गणित और विज्ञान के पाठ्क्रम में एक प्रकार की क्रान्ति सी हो गई है। सर्वोच्च शोध में लगे हुए प्राध्यापक पारस्परिक सहयोग से नई पाठ्यपुस्तकें तैयार कर रहे हैं। कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी अपने राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हैं। सो उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षकों के गुण, प्रशिक्षण गुण तथा शिक्षक वर्ग के श्रम तथा सेवा के नियमों में सुधार चिन्तन

बढ़ता जा रहा है। सामान्य शिक्षा के मौलिक अंशों पर विशेष जोर देने की बात चल रही है। कम अवस्था में ही विशेषज्ञ बनने की बात अब अच्छी नहीं समझी जाती, क्योंकि विज्ञान की द्रुतगति के कारण विशेषज्ञ शीघ्र ही दकियानूसी हो जाते हैं और इन सबके मध्य विद्यार्थी पर ध्यान की केन्द्रीयता तो रहती ही है।

यह सिद्ध हो गया है कि उन समाजों को जिनमें जीवन का कठिनाई से निर्वाह हो पाता है, सम्पन्न और उन्नतिशील समाजों में बदल देना विज्ञान के सशक्त साधन का काम है। सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि यह परिवर्तन एक ही पीढ़ी की अवधि के भीतर सम्भव है। थोड़े ही दशकों पीछे की बात है; कोई भी इस कायाकल्प की कल्पना नहीं कर सकता था। यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि इस प्रकार का परिवर्तन अपने देश में लाने के लिए हमारे सामने एक पीढ़ी अर्थात एक बीसी (२० वर्ष) से अधिक समय नहीं है। यदि हम चूक जाते हैं तो उन देशों और हमारे बीच जो चौड़ी खाई बनी हुई है, और भी चौड़ी हो जायगी और पुनर्निर्माण का काम जितना आज कठिन है उससे तब कहीं अधिक कठिन हो जायगा। इस परिवर्तन की कुंजी शिक्षा की व्यवस्था में है। **पूँजी का कोई विनियोग इतने महत्व या लाभ का नहीं जितना शिक्षा में। दार्शनिक ह्वाइट हेड ने सत्य ही कहा है—"आधुनिक संसार का अटल नियम है कि जो जाति प्रशिक्षित बुद्धि की कदर नहीं करती उसका विनाश निश्चित है।"**

निम्न वर्ग की भी पहुंच सर्वोच्च शिक्षा तक—

हम शिक्षा क्षेत्र में एक इस प्रकार की क्रान्ति देख रहे हैं कि सर्वोच्च शिक्षा किसी समय थोड़े से ही लोगों की पहुंच के भीतर थी; सो अब हम उस युग में पहुंच गये हैं जिसमें देश के यथेष्ट जन सर्वोच्च शिक्षा के लिये उन्मुख होते हैं। परन्तु हमें अभी और लम्बा मार्ग तय करना है। उदाहरणार्थ ब्रिटेन में भी ऊँचे धन्धों में लगे परिवारों के होनहारों में ४५ प्रतिशत सर्वोच्च शिक्षा के लिये भरती होते हैं और उनके मुकाबले कुशल कारीगरों के परिवारों से ४ प्रतिशत होनहार ही महाविद्यालय में पहुंचते हैं। व्यवसाय और समाज सेवा की मांग बढ़ती जा रही है। सुरक्षा और प्रतिरक्षा की ज़रूरतें भी बढ़ रही हैं, जिस कारण शिक्षा का प्रसार आवश्यक है। आधुनिक संसार में वे देश सम्पन्न हैं जो विज्ञान में सम्पन्न हैं और वही गरीब हैं जहां विज्ञान

की पढ़ाई कमजोर है। सम्पन्नों और विपन्नों में मानवता का विभाजन एक नई सी बात है और यह किसी अर्थ में वैज्ञानिक क्रान्ति ही का परिणाम है।

योजना की आवश्यकता और कठिनता—

राष्ट्रीय विकास और सम्पन्नता का शिक्षा से सीधा सम्बन्ध होने के कारण हमारे देश में शिक्षा योजना और विकास का महत्व प्रत्यक्ष हो जाता है। गुण और मात्रा में शिक्षा का राष्ट्रीय आवश्यकताओं से सम्बद्ध होना आवश्यक है। परन्तु यह कार्य सरल नहीं। ब्रिटेन में लार्ड राबिन्स की अध्यक्षता में एक समिति इसी उद्देश्य से बनाई गई थी। परन्तु वह प्रशिक्षित जन शक्ति की दीर्घकालिक आवश्यकताओं का अनुमान लगाने में विफल रही। अनुमान का दीर्घकालिक होना ही आवश्यक है क्योंकि शिक्षा के सम्बन्ध में अल्पकालिक अनुमान निरर्थक ही है। शिक्षा द्वारा प्रशिक्षित जन शक्ति का पता बहुत समय के बाद लगता है। परन्तु जनशक्ति के विषय में दीर्घकालिक अनुमान लगाने इतने कठिन हैं कि कुछ स्थितियों में तो वे प्राय: असम्भव ही समझे गये हैं। उदाहरणार्थ कौन समुचित विश्वास के साथ कह सकता है कि इंजीनियरिग व्यवसायों पर स्वचलित यंत्रों के विकास का किस रूप में प्रभाव पड़ेगा ? गौर करने की बात है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कृषि को समुचित महत्व नहीं प्रदान किया गया है।

एक प्रक्रिया होती है जिसमें तैयार की हुई वस्तु आगे की तैयारी में काम आती है। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रक्रिया का विशेष महत्व है। यदि हम ऐसी व्यवस्था कर सकें कि प्रति वर्ष हमारे सर्वोत्कृष्ट युवक समुचित संख्या में हमारे स्कूलों और कालेजों में शिक्षकों की हैसियत से वापस आ जाँय तो शिक्षा की उन्नति में निरंतर वृद्धि होती चलेगी। इसके विपरीत यदि हम अपने स्कूलों और कालेजों में ऐसे युवक पढ़ाई के लिए भरती करते हैं जिनकी योग्यता औसत से कम होती है, तो हमारा शिक्षण स्तर वर्ष प्रति वर्ष शीघ्रता से गिरता चला जायगा। **स्तरोन्नति का गुरुमंत्र है प्रति वर्ष विश्वविद्यालयों से निकले हुए सर्वोत्कृष्ट युवकों का शिक्षण के लिए उन्हीं में भरती हो जाना।**

सर्वोच्च शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से स्नातकोत्तर और शोध के स्तर पर, हमें सर्वोच्च अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचने का प्रयत्न करना है। इससे नीचा स्तर बेकार ही होगा। **कोई स्तर स्थानीय या क्षेत्रीय नहीं हो सकते ; क्योंकि शिक्षण के स्तर स्वभावतः अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं।** विद्वत्ता और शोध के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचना सरल नहीं है। परन्तु अनुन्नत देशों में भी कभी-कभी ऐसे भवन और सामान देखने को मिलते हैं जो कि

सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के मुकाबले के हैं। इससे यह सीधी सी बात प्रत्यक्ष होती है कि विद्वत्ता और शोध में सर्वोच्च स्तर के लिए चिन्तन की आवश्यकता है। परन्तु भवन और सामान तो रुपया खर्च करने की ही बात है, सो चिन्तन के मुकाबले रुपया खर्च करना सरल है ओर विशेष रूप से तब जब दूसरे की रकम लग रही हो।

प्रत्येक स्तर पर शिक्षा की पुष्टि को राष्ट्रीय उद्देश्य और दायित्व की मान्यता मिलनी चाहिये और यह बात तो स्नातकोत्तर शिक्षा और शोध के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के गुण में उन्नति और उसका प्रसार दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है। गुण की उन्नति की ओर पहला पग यह हो कि लगभग पाँच वर्ष के भीतर जिस स्तर तक हमारे विद्यार्थी एम० ए० या एम० एससी० करके पहुंचते हैं उस स्तर तक बी० ए० या बी० एससी० आनर्स तक पहुंच जाँय।

इन सब बातों पर गौर करते हुए हमें प्रसिद्ध सीबोर्ग रिपोर्ट के शब्द याद आते हैं। संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति को विज्ञान के विषय में परामर्श देने के लिए एक समिति है। सीबोर्ग रिपोर्ट उस समिति के अध्यक्ष के नाम से है। इस रिपोर्ट में एक जगह कहा गया है "मौलिक शोध और स्नातकीय शिक्षा, दोनों का समर्थन इसी आधार पर होना चाहिए कि उनसे समाज का कहाँ तक हित होता है। इस व्यापक अर्थ में संघीय शासन का दायित्व निश्चित रूप से केन्द्रीय हो जाता है। यह सत्य जितना सरल है उतना ही महत्वपूर्ण भी है। मौलिक शोध और स्नातकीय शिक्षा मात्रा और गुण में यथेष्ट होती है या नहीं, यह सब आंशिक रूप में संयुक्त राज्य के केन्द्रीय शासन की नीति पर निर्भर है। देश का संघीय शासन इस दायित्व से बच नहीं सकता। यदि उसे आवश्यक नीति और साधन उपलब्ध नहीं हैं जिनसे विश्वविद्यालय सुचारु से चल सकें और अपनी कर्तव्य-पूर्ति कर सकें तो किसी और के मान की यह बात नहीं हो सकती।" विचार समझदारी के हैं और सशक्त भी। तो इन्हें हमारे देश के लिये भी इसी प्रकार लागू होना चाहिए।

कर्म खर्च बालानशीन—

विज्ञान के विषय में एक यह विशेषता समझ लेने की है कि गुण की वस्तुओं का व्यय-साध्य होना जरूरी नहीं है। यदि इस विषय पर हम यथेष्ट ध्यान दें, तो हमारे लिए संभव है कि अपने साधनों के भीतर ही हम ऊँचे स्तर की शिक्षा की व्यवस्था कर सकें। अब तो जनसाधारण की पहुंच के भीतर विज्ञान ने वे सुविधाएँ प्रस्तुत कर दी हैं जो पहले रईसों को भी नसीब न थीं। यही बात शिक्षा के लिये भी लागू होती है। अस्तु इसके लिए शिक्षण

की प्रक्रिया के संबंध में कठोर श्रम, गम्भीर चिन्तन और शोध की आवश्यकता है। शिक्षा के कुछ नए ढंग और साधन हैं—जैसे लिखा पढ़ी के कोर्स, प्रोग्राम लर्निंग, आडियो विजुएल एड—जो हमारे लिए बहुत बड़े काम के हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त हमें स्वयं ही नये ढंगों की खोज करनी है और उनका विकास करना है। वस्तुतः इस ओर हम उन्नत देशों के मुकाबले बहुत कुछ कर सकते हैं। कैम्ब्रिज में गुरुवर लार्ड रदरफोर्ड आणविक भौतिक विज्ञान (न्यूक्लियर फ़िज़िक्स) के अग्रणी थे। उनसे कहा गया कि अमरीका न्यूक्लियर फिजिक्स में आगे बढ़ा जा रहा है, क्योंकि वह देश बहुत सम्पन्न है; तो ब्रिटेन को क्या करना चाहिये। इस पर उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कह दिया—**"अमरीकियों के पास रुपया है और हमारे पास है नहीं, तो हमें चिन्तन करना है।"** कठोर और गम्भीर चिन्तन का कोई विकल्प नहीं। अतएव यदि हम धैर्यपूर्वक गम्भीर प्रयत्न करें तो सीमित साधनों और पूंजी के भीतर भी हम बहुत कुछ आगे बढ़ सकते हैं। कदाचित् इस लिए मंत्रीजी ने आयोग नियुक्त किया है। **इसका उद्देश्य तभी सिद्ध होगा यदि हम इस विषय पर कठोर और वास्तविक चिन्तन करें कि हमारी भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं के अनुकूल जिस शिक्षा की हमें आवश्यकता है; वह किस प्रकार हमारी आर्थिक पहुंच के भीतर भी हो सकती है।**

- **हिन्दी भारतवर्ष की पचास प्रतिशत जनता की भाषा है एवं दुनिया में बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व में हिन्दी का स्थान तीसरा है।**

★ ★ ★

- **हिन्दी को अपने विकास के लिये भारतभूमि में चौदह सम्पन्न भाषाओं का नैसर्गिक भण्डार प्राप्त है एवं संस्कृत सरीखी पूर्ण विकसित भाषा की छत्र-छाया वरदान स्वरूप उपलब्ध है।**

★ ★ ★

- **लोकतांत्रिक परम्पराओं का पालन करने के लिए शिक्षित प्रशासक वर्ग और जन साधारण के बीच का भेदभाव व अन्तर हिन्दी से ही मिट सकता है।**

छात्रों में अनुशासनहीनता और शिक्षक

(प्राध्यापक शम्सुद्दीन)

आज देश के कोने-कोने से छात्रों की अनुशासनहीनता की आवाज सुनाई दे रही है। हर कोई छात्रों से यही कहता हुआ सुनाई दे रहा है कि वे अपने में सुधार करें क्योंकि वे ही राष्ट्र के कर्णधार हैं। सवाल यह उठता है कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है? समस्या की जड़ कहाँ है? और उसका हल क्या है? इन सवालों के उत्तर के लिए पहिले हमें अनुशासनहीनता के कारणों का पता लगाना होगा, आधुनिक शिक्षा पद्धति की व्याख्या करनी होगी, उसके दोषों को दूर करने के उपायों पर विचार करना होगा तथा छात्रों को उनकी महत्ता का अनुभव कराना होगा।

एक पुरानी कहावत है कि आदर या सम्मान अपने आप मिलता है, माँगा नहीं जाता। किन्तु आज हम देखते हैं कि स्वयं शिक्षकों में अच्छे नेतृत्व का अभाव पाया जाता है। आधुनिक समय में उन्हें यह आदर या प्रेम छात्रों से प्राप्त नहीं होता जो उन्हें पूर्व समय में प्राप्त होता था। कारण निम्नलिखित हो सकते हैं।

पिछले कई वर्षों से देश की गुलामी के कारण, छात्र राजनैतिक संघर्ष में लगे रहे जबकि शिक्षक कई कारणों से इसमें भाग न ले सके। परिणाम यह हुआ कि छात्रों को दबाते रहने से वे अपने को शिक्षकों से बहुत दूर, बल्कि विरोधी समझने लगे। करीब आधी शताब्दी से लगातार शिक्षा पद्धति की आलोचना होते रहने से भी छात्रों का उससे विश्वास उठ गया, और वे न केवल शिक्षा पद्धति, वरन् शिक्षकों को अनादर की दृष्टि से देखने लगे। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से तो शिक्षक नीचे गिर ही गये। अतः उन्हें अपना सम्मान बनाये रखना कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय नवीन प्रारम्भ की गई कई अच्छी लाभदायक नौकरियों के लिए शिक्षकों के मन में लालच बढ़ा। साथ ही युद्ध के बाद की मंहगाई और आर्थिक कठिनाइयों ने भी उन्हें इस ओर प्रेरित किया कि वे अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में भी असमर्थ सिद्ध होने लगे। फलस्वरूप पुराने शिक्षकों ने यह व्यवसाय त्यागना प्रारम्भ कर दिया और उनकी जगह नये शिक्षकों ने लेना शुरू कर दिया। शिक्षक वर्ग उदासीन और निरुत्साहित हो गया तथा शिक्षक और छात्रों के

बीच सम्बन्ध टूट जाने से उनके बीच एक गहरी खाई बन गई। साथ ही परीक्षाओं को जरूरत से ज्यादा महत्व दिये जाने के कारण शिक्षक, छात्रों को परीक्षाओं के लिये तैयार करने वाले साधन मात्र रह गये। शिक्षकों का छात्रों पर कोई नियंत्रण नहीं रहा और वे शैक्षणिक विषयों से भी उदासीन हो गये। निजी ट्यूशन की ओर उनका ध्यान अधिक आर्कषित होने लगा, जिस कारण वे इतनी थकावट का अनुभव करने लगे कि उनका मन शाला से उचटने लगा। आज छात्रों या पालकों के द्वारा दी गई रकम की कीमत पर ही उनके और शिक्षकों के सम्बन्ध निर्भर हैं। उपर्युक्त सभी बातों ने ऐसी परिस्थिति कर दी है कि योग्य और अनुभवी व्यक्ति इस व्यवसाय से दूर रहने लगे हैं।

आर्थिक कठिनाइयों की वृद्धि

कई विभिन्न कारण से सामान्य आर्थिक स्थिति आज अत्यन्त जटिल हो गई है। इसके अनेक कारण हैं। पूर्व समय में छात्रगण केवल धनिक वर्ग से आते थे जिन्हें किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। उनकी संख्या भी बहुत कम थी। किन्तु आज छात्रों की संख्या बढ़ गई है। अधिकांश छात्रों को विद्यार्थी जीवन से ही आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ को तो आंशिक रूप से अपनी शिक्षा का भार शाला से लेकर विश्वविद्यालय तक स्वयं वहन करना पड़ता है।

साथ ही आज शिक्षण उद्देश्यहीन या व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। छात्र शिक्षालयों में प्रवेश होने से पूर्व भविष्य के लिए कोई निश्चित ध्येय सामने नहीं रखते। सामान्य शिक्षा उन्हें जीवन के लिए उपयुक्त व लाभप्रद सिद्ध नहीं होती। शिक्षा समाप्त करने के बाद वही छात्र जब भावी जीवन की आर्थिक सुरक्षा व सुविधा का अनुभव नहीं करते तो उनमें एक प्रकार की कटुता और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है। उनके जीवन का स्तर अत्यन्त नीचा होने के कारण समाज में साधारणतः वे अपने को बड़ी विषम स्थिति में पाते हैं और उनका जीवन बड़ा नीरस और दुःखी हो जाता है।

शिक्षा पद्धति के दोष

विदेशी अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत शिक्षा का ध्येय केवल क्लर्क तैयार करना था। अतः लोग भी बाबूगीरी पाने के ही ध्येय से ही शिक्षा ग्रहण

करने लगे। थोड़े समय के बाद ही ऐसी शिक्षा लोगों के लिये अनुपयोगी सिद्ध होने लगी। यह न तो छात्रों का शारीरिक व मानसिक विकास करती है और न उनका चरित्र निर्माण। केवल शैक्षणिक दृष्टिकोण से भी यह शिक्षा अपूर्ण व असंतोषप्रद है। परीक्षाओं पर अनावश्यक महत्व दिया जाता है तथा छात्रों की योग्यता का निर्णय उनके परीक्षाफल से किया जाता है। यथार्थ में ये परीक्षायें केवल छात्रों की याद करने की शक्ति का ही निर्णय करती हैं; उनकी समझने या निर्णय करने की शक्ति का नहीं। साथ ही ये परीक्षायें छात्रों को अनुचित साधनों के द्वारा किसी तरह परीक्षा पास करने के लिए प्रेरित करती हैं। चूँकि नौकरी प्राप्त करने के लिये डिग्री या प्रमाण पत्र आवश्यक है, छात्र किसी भी कीमत पर इन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। विद्यार्थियों को शैक्षणिक तथा सहशैक्षणिक कार्यों में स्वतन्त्रता के बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं।

सामान्य आदर्शवाद का अभाव

आज छात्रों की अनुशासनहीनता राष्ट्रीय संघर्ष के समय किये गये कार्यों का प्रमुख रूप में भावी परिणाम है। इसके अतिरिक्त दो महायुद्धों ने सारे विश्व में एक प्रकार का नैतिक पतन वरपा कर दिया है। अधिकांश लोगों के लिए घृणा का भाव ही उनका धर्म बन गया है। युद्धों ने ही अधिकांश छात्रों में शिक्षा के उद्देश्य की गंभीरता का विनाश किया है। भौतिकवादी आदर्शों के प्रचार से भी छात्रों की नैतिकता का ह्रास हुआ है। आज कौटुम्बिक स्नेह के सूत्र भी ढीले पड़ गये हैं। राष्ट्रीय संघर्ष के पश्चात् जो परिवर्तन आया वह भी अस्वास्थ्यकर रहा। शिक्षकों का निम्नतर सामाजिक स्तर भी छात्रों में आदर्शवाद के अभाव का कारण सिद्ध हुआ है। छात्रों को दृढ़ विश्वास है कि उन्हें किताबों द्वारा जो भी पढ़ाया जाता है, वह जीवन के लिए उन्हें उपयुक्त नहीं बनाता।

अनुशासनहीनता को दूर करने के उपाय

अनुशासनहीनता का रोग वर्षों पुराना हो गया है, तो उसे दूर करने में भी काफी समय लग जायगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक सम्माननीय और योग्य शिक्षक निश्चय ही छात्रों में फैली अनैतिकता को दूर कर सकता है। एक बार यदि उसकी नैतिकता वापस आ गई तो निश्चय ही समाज के प्रत्येक स्तर का उत्थान होगा।

शिक्षकों के नेतृत्व के सम्बन्ध में सुझाव

नये शिक्षक वर्ग को अपने कार्यों के प्रति अधिक सच्चा और तत्पर होना चाहिए किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें अहम् की भावना आ जाय और वे स्वयं को ही सब कुछ समझने लगे। इसी प्रकार पुराने शिक्षकों को भी धार्मिक गुरु न मान लेना चाहिए। शिक्षकों और छात्रों में घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए। साथ ही वास्तविक उन्नति के लिये आवश्यक है कि अच्छे और योग्य व्यक्तियों को इस व्यवसाय में आकर्षित किया जाय।

कुछ लोगों का मत है कि शिक्षा की उन्नति के लिये आवश्यक है कि शिक्षकों के वेतन में वृद्धि की जाय। वे कहते हैं कि शिक्षकों की व्यावसायिक योग्यता की उन्नति उपयुक्त समस्या का हल प्रदान करेगी। अन्य लोग केवल शिक्षकों के आदर्शवाद पर जोर देते हैं, जो उलझन से बच निकलने का सबसे आसान तरीका है।

विश्वविद्यालय में हम देखते हैं कि उचित वातावरण के अभाव में वास्तविक भावना का ह्रास हो रहा है। विद्यालय के प्राचार्यों को भी बहुत कम वेतन दिया जाता है, जो अन्य व्यवसायों की तुलना में बहुत हीन है। मेरा नम्र सुझाव है कि सामान्य वेतन में वृद्धि होनी चाहिए, विशेषकर प्रारम्भिक अवस्था में तो यह अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही विशेष योग्यता प्राप्त पुरुष व स्त्रियों के लिए नवीन पद निर्माण किये जाने चाहिये। विशेष राष्ट्रीय चुनाव समिति की सिफारिशों के आधार पर विशेष नियुक्तियाँ की जायँ। ऐसे व्यक्तियों की ओर विशेष ध्यान दिया जाय, जिन्हें शिक्षण के प्रति खास रुचि हो।

विद्यालयों के प्राचार्यों को विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए विशेष अवसर दिए जाने चाहिए। इससे न केवल नवीन योग्य पुरुष और स्त्रियों को आकर्षण मिलेगा, वरन् हमारे विश्वविद्यालयों का स्तर भी ऊँचा होगा। अन्य देशों के प्राचार्यों को देश में आमंत्रित किया जाय तथा शिक्षकों के प्रतिनिधियों को विदेश भेजकर "शिक्षक आदान-प्रदान" का कार्यक्रम प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही शिक्षकों के सामाजिक स्तर में उन्नति, उनके शैक्षणिक वातावरण में प्रगति तथा प्रत्येक अवस्था में उनके वेतन में वृद्धि अब नितान्त आवश्यक हो गई है। यहाँ तुर्की का उदाहरण देना असंगत न होगा। वहाँ विद्यालय के प्राचार्यों को जनता में अपना स्तर ऊँचा करने के लिये मदद दी जाती है। यह कार्य शैक्षणिक व

राजनैतिक दृष्टि से लाभकारी व योग्य है। भारत सरकार ने अभी-अभी इस ओर कदम उठाया है जिसके द्वारा नई दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में प्रायमरी शाला के शिक्षकों को राष्ट्रीय सम्मान दिया गया है।

जहाँ तक प्रधान अध्यापकों की स्थिति का प्रश्न है उनका भी स्तर ऊँचा होना चाहिए। उन्हें नियुक्ति व तरक्की सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए। उदाहरण के लिए जापान में प्राइमरी तथा माध्यमिक शालाओं के प्रधान अध्यापकों को करीब-करीब समान वेतन दिया जाता है जो कि हमारे यहाँ के किसी प्रशासनिक आफिसर के वेतन से कम नहीं रहता। तुर्की में एक प्रारम्भिक शिक्षक को वेतन करीब २५० रुपये माहवार से प्रारम्भ होता है तथा ५०० रुपये माहवार तक जाता है। सेक्रेटरी का वेतन ११०० से १५०० तक रहता है। यह बतला देना आवश्यक है कि वहाँ एक प्राइमरी शिक्षक और बड़े-से-बड़े प्रशासनीय आफिसर के वेतन में एक और तीन का अनुपात है जबकि भारत में आज यह एक और अस्सी का है।

निजी ट्यूशन बन्द करो

आज भारत में प्रायमरी व माध्यमिक स्तर के शिक्षण का बहुत बड़ा शत्रु उदासीनता व नीरसता है। इसे दूर करने के लिए आवश्यक है कि पुनरावृत्ति (रिफ्रेशर कोर्स) कोर्स तथा सेवा अवधि में ही योग्यता वृद्धि के अवसर दिये जाँय। इस कार्यक्रम की सफलता के लिये यह भी आवश्यक है कि सभी स्तर के शिक्षकों के लिये सेमिनारों तथा शिक्षा कैम्पों की व्यवस्था की जाय। छुट्टियों में कैम्पों की व्यवस्था करके शिक्षकों को शारीरिक व नैतिक स्वास्थ्य लाभ के अवसर दिये जायँ। अन्त में हमें निजी ट्यूशन की बुरी प्रथा का भी अन्त करना होगा।

छात्रों की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के सुझाव

योग्य किन्तु आर्थिक दृष्टि से असमर्थ छात्रों को सब प्रकार की सुविधायें दी जानी चाहिये। आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में ८० प्रतिशत से ऊपर छात्रों को जनता से सहायता प्राप्त होती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी इस क्षेत्र में ज्वलंत उदाहरण रखता है। वहाँ कई विद्यार्थी शालाओं और विद्यालयों में स्वयं निर्भर रहते हैं, तथा बेलब्वाय, वेटर, न्यूजपेपर मैन, लायब्रेरी असिस्टेंट इत्यादि की हैसियत से कार्य करते हुए विद्याध्ययन करते हैं।

इसी प्रकार रेसीडेंशियल संस्था पद्धति का भी प्रारम्भ होना चाहिए जिसमें एक शिक्षक के जिम्मे कुछ छात्रों को रख दिया जाता है। साथ ही स्वयं सहायता (सेल्फ हेल्प) के कार्यक्रम भी प्रारम्भ किये जायँ जिनके द्वारा खेल के मैदान, बगीचे, स्टेडियम इत्यादि के सुधार सम्बन्धी रचनात्मक कार्य हो सकें। छात्रों को बहुत थोड़ी कीमत पर या मुफ्त में नाश्ते का प्रबन्ध होना चाहिए। यदि पर्याप्त धन की व्यवस्था हो तो कोई सादी शाला की पोशाक भी दी जानी चाहिए।

आधुनिक शिक्षा पद्धति के दोषों का निराकरण

युनिवर्सिटी कमीशन तथा सेकण्डरी एजूकेशन कमीशन दोनों ने ही बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनकी विभिन्न रुचियों व योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के नव-निर्माण के सुझाव दिये हैं। छात्रों के शारीरिक व नैतिक शिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ए० सी० सी० तथा एन० सी० सी० का शिक्षण भी अब नितान्त आवश्यक हो गया है। चरित्र निर्माण तथा कार्य कुशलता के लिए स्काउटिंग व गाइडिंग की सुविधायें दी जानी चाहिए। वर्तमान परीक्षा पद्धति में सुधार होना चाहिए तथा विषयों की व्यापकता और अन्य सह-शैक्षणिक कार्यक्रमों पर जोर दिया जाना चाहिए।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि छात्रों की अनुशासनहीनता बिलकुल दूर हो जायगी यदि उन्हें पूरे वर्ष भर किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रखा जाय। कक्षागत शिक्षण पद्धति में भी सुधार होना चाहिए। ट्युटोरियल, सेमिनार तथा चर्चा पद्धतियाँ भी छात्रों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं।

नौकरी व्यवस्था भी, जिसमें डिग्री या प्रमाणपत्र अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है, सुधरनी चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन का उदाहरण बताता है कि वहां कई योग्य व्यक्ति डिग्रियों के बिना भी सेवा कार्य में नियुक्त किये जाते हैं। शालाओं में स्वयं-शासन का कार्यक्रम भी कभी-कभी रखा जाय तथा मानीटरों की समिति को 'बाल–अपराध निर्णय' का सम्माननीय अधिकार दिया जाना चाहिये।

छात्रों में महत्ता की भावना

भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय करीब ३०० रुपया है। जबकि हर एक विद्यार्थी के पीछे शिक्षण खर्च ५०० से ६०० रुपये वार्षिक आता है।

विश्वविद्यालय का खर्च इससे भी अधिक अर्थात करीब १००० रुपया प्रति विद्यार्थी आता है।

समाज के विकास के लिए विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के प्रोजेक्ट्स से परिचित कराना चाहिए। शिक्षा का ध्येय भावी नागरिक को तैयार करना है। साथ ही यह भावी समाज की रूपरेखा भी तैयार करती है। ऐसी शिक्षा की महत्ता शिक्षकों के चारित्र्य व योग्यता पर निर्भर है। समाज का भविष्य उसके शिक्षकों पर निर्भर है तथा वही उसके निर्माता हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अयोग्य और असंतुष्ट शिक्षक समाज की नींव बिगाड़ देते हैं। वे समाज में ऐसा घुन लगा देते हैं जिससे एक दिन वह स्वयं ढह जाता है। इसके विरुद्ध सच्चे और अच्छे शिक्षक ऐसे समाज का निर्माण करते हैं जो मानवता का विकास करता है।

* * *

- **क्या अँग्रेजी विश्व भाषा है? इस अभागे हिन्दुस्तान को छोड़कर और कौन राष्ट्र है जो अँग्रेजी को विश्व भाषा स्वीकारता है— रूस, चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, बर्मा आदि अनेक प्रमुख राष्ट्र क्या इसे विश्व भाषा होने की मान्यता देते हैं?**

★ ★ ★

- **विश्व के मुस्लिम राष्ट्रों में हिन्दी की ही एक शैली एवं बोलचाल की सुलभ भाषा उर्दू को अँग्रेजी से अपेक्षाकृत अधिक मान्यता प्राप्त है।**

उच्च शिक्षा में संग्रहालयों का योगदान

(श्री रमेशचन्द्र शर्मा, सहायक संग्रहाध्यक्ष, राज्य संग्रहालय, लखनऊ)

संग्रहालय की सामान्य दर्शक तथा बाल शिक्षण के लिए उपयोगिता पर "भारतीय शिक्षा" के गतांक के पृष्ठों में विचार किया जा चुका है। आशा है छात्र बन्धुओं को तो संग्रहालय देखने की प्रेरणा मिली ही होगी, साथ ही शिक्षक वृन्द भी शिक्षण पद्धति में संग्रहालयों द्वारा शिक्षा प्रसार के महत्व को अंगीकृत करते हुए संग्रहालयों का अधिक-से-अधिक उपयोग करेंगे। प्रस्तुत लेख में संग्रहालय के माध्यम से उच्च शिक्षा की सम्पन्नता पर प्रकाश डाला जायगा। इसके एक ओर जहां उच्च स्तरीय विद्यार्थी लाभ उठायेंगे, वहां दूसरी ओर स्वाध्याय तथा शोधरत शिक्षकों का भी हित सम्पन्न हो सकेगा।

संकलन :

आज तो संग्रहालयों के लक्ष्य बहुमुखी हो गये हैं, किन्तु यदि इसके समारम्भ की पृष्ठभूमि देखें तो ज्ञात होगा कि इनकी स्थापना विभिन्न वस्तुओं के संकलन के लिए की गई थी और यही उद्देश्य संग्रह + आलय शब्दार्थ से ध्वनित होता है।

श्री डी० ए० एलन के मतानुसार "संग्रहालय की स्थापना उत्साही संग्रहकर्त्ताओं द्वारा संकलित वस्तुओं को रखने के लिए हुई थी।" इस प्रकार उच्च शिक्षा अथवा शोध में संग्रहालयों का सर्व प्रथम योगदान है शोधकर्त्ताओं के सम्मुख विभिन्न विषय सम्बन्धी सामग्री प्रस्तुत करना। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि शोध अथवा उच्चस्तरीय शिक्षा में सामग्री संकलन का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। इसे शोधकर्ता स्वयं समझ सकते हैं।

विभिन्न संग्रहालय :

सामग्री संकलन के साथ ही एक उच्चस्तरीय संग्रहालय का कर्तव्य होता है शोधकर्त्ताओं को यथासम्भव सुविधायें प्रदान करना ताकि शैक्षिक लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। सम्पूर्ण भारत में तो कई बड़े संग्रहालय हैं, किन्तु उत्तर प्रदेश के जिन मुख्य संग्रहालयों से शोध सम्बन्धी सुविधा प्राप्त की जा सकती हैं वे हैं :

संग्रहालय का नाम	शोध के विषय
१—राज्य संग्रहालय, लखनऊ	प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, कला व स्थापत्य, ताम्र तथा शिलालेख, मुद्राएं : सिक्के चित्र (मुख्यतः लघु आकार के प्राचीन चित्र,) शस्त्रास्त्र, वस्त्र, नृशास्त्र (Anthropology) तथा प्राणिशास्त्र ।
२—भारत कला भवन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	प्राचीन इतिहास, संस्कृति, कला, स्थापत्य तथा चित्र ; भारतीय चित्रों के अध्यापन के लिए यह संग्रहालय सर्वश्रेष्ठ संग्रहालयों में से एक माना जाता है ।
३—पुरातत्व संग्रहालय मथुरा	प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, कला, स्थापत्य, मुद्रायें तथा शिला लेख ।
४—प्रयाग संग्रहालय प्रयाग	प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, कला व स्थापत्य तथा चित्र ।
५—पुरातत्व संग्रहालय सारनाथ, वाराणसी	प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, कला व स्थापत्य तथा चित्र ।

इसके अतिरिक्त गुरुकुल काँगड़ी संग्रहालय हरिद्वार तथा छत्रसाल संग्रहालय बांदा में भी कला तथा पुरातत्व सम्बन्धी अनुसंधान की सामग्री संकलित हैं। शोध के लिए सबसे विशद् क्षेत्र राज्य संग्रहालय, लखनऊ प्रदान करता है। भारत कला भवन में संकलन तथा अन्य सामान्य सुविधाओं के अतिरिक्त विभिन्न विषयों में उच्चस्तरीय शिक्षा भी दी जाती है। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा तो सदा से पुरातत्व जगत् का प्रमुख आकर्षण स्थल रहा है और देश तथा विदेश के भी अनेक शोधकर्त्ता प्रायः यहां आते रहते हैं।

सुविधाएं तथा उपयोग :

अब प्रश्न उठता कि संग्रहालय उच्च शिक्षा अथवा शोध में कौन कौन सी सुविधायें प्रदान करता है तथा ये सुविधाएँ कैसे प्राप्त की जा सकती हैं? प्रत्येक संग्रहालय में वस्तुओं के आगम सम्बन्धी विवरण होते हैं जिनकी प्रविष्टि सामान्य आगम पंजी (General Accession Register) में होती है। इसमें वस्तु का पूर्ण विवरण, प्राप्ति का स्रोत, उद्गम स्थान, शैली नाप तथा मुख्य सूचनायें अंकित रहती हैं। इनके माध्यम से शोधकर्त्ता अपने विषय सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर लेता है। विषय के अनुरूप संग्रहालय में विभिन्न अनुभाग होते हैं और वस्तुओं का वर्गीकरण विभिन्न अनुभागों में कर

दिया जाता है। राज्य संग्रहालय की समस्त वस्तुओं को २६ अनुभागों में विभक्त कर दिया गया है। इससे शोधकर्त्ता को बड़ी सुगमता हो गई है क्योंकि अब वह अपनी रुचि के अनुरूप वस्तुओं का सीधा अवलोकन कर सकता है।

कुछ संग्रहालयों में सामान्य आगम पंजिकाओं (General Accession Register) के अतिरिक्त विभागीय पंजिकाएं (Sectional Register) भी हैं जो संग्रहालय के विभिन्न अनुभागों में रखे रहते हैं। इनसे भी शोध सम्बन्धी पर्याप्त सहायता मिल सकती है। एक और विशेष सुविधा, जो कुछ-कुछ संग्रहालयों में हो रही है, वह है प्रत्येक वस्तु का पृथक पत्र (Card)। इस कार्ड पर वस्तु का वही विवरण संक्षिप्त रूप से लिखा रहता है जो सामान्य पंजियों में दिया रहता है। सभी वस्तुओं के कार्ड बनवाने पर उन्हें अनुभाग के अनुसार वर्गीकृत अलग–अलग केबिनेट्स में रख दिया जाता है। अब शोधकर्त्ता अपने विषय के अनुरूप अनुभाग में जाकर उसके सभी कार्ड एक साथ पा जाता है और वाँछित वस्तु का कार्ड से विवरण लिख लेता है! आवश्यकता पड़ने पर उस कार्ड पर दी संख्या के अनुसार वह उस वस्तु को निकलवा कर देख भी सकता है। वह व्यवस्था राज्य संग्रहालय, लखनऊ में पूर्ण हो चुकी है।

इससे भी अधिक शैक्षिक सुविधा देने का चालू प्रयास है वस्तुओं का शैलीगत विभाजन। विभिन्न युगों में प्रचलित कलात्मक शैली के अनुरूप ही-वस्तुओं को शैलीगत विभाजित करने की योजना भी चल रही है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में चित्रों का यह विभाजन पूर्ण हो चुका है। सम्पूर्ण चित्र लगभग ६५ शैलियों में वर्गीकृत होकर पृथक-पृथक फाइलिंग कैबिनेट्स में रख दिये गये हैं। इसी प्रकार शैली के अनुसार प्रत्येक चित्र का पृथक कार्ड बना है। इस समूची व्यवस्था से शैलीगत विशेषताओं को समझने में तथा भारतीय चित्रों पर शोध करने वाले छात्रों को तथ्य संकलन तथा विवरण प्राप्ति में बड़ी सरलता हो गई है।

सुरक्षित संकलन (Reserve Collection)

संग्रहालय सज्जा का दृष्टिकोण शनैः शनैः परिवर्तन होता जा रहा है। पहले सभी वस्तुओं का वीथिकाओं में प्रदर्शन कर दिया जाता था किन्तु संकलन की समयानुसार वृद्धि से, वीथिकाओं में स्थानाभाववश दर्शकों के पास समयाभाव के कारण तथा सज्जा की समुन्नत वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के विकास के कारण बहुत कम वस्तुएं प्रदर्शित की जाती हैं। केवल वे वस्तुयें जो किसी शैली अथवा युग विशेष का प्रतिनिधित्व करती हों, वीथिकाओं में

स्थान ग्रहण कर पाती हैं और शेष सुरक्षित संकलन में रख दी जाती हैं। किन्हीं–किन्हीं बड़े संग्रहालयों में तो ८० प्रतिशत से भी अधिक संख्या में वस्तुयें सुरक्षित संकलन में मिलेंगी। यही सुरक्षित संकलन उच्च स्तरीय शिक्षा अथवा शोध का साधन होता है। इसीलिये इसे अध्ययन संकलन (Study Collection) अथवा शोध संकलन (Reserve Collection) भी कहते हैं। सामान्य जनता के लिए सज्जित वीथिकाओं का जितना महत्व होता है, शोधकर्त्ता के लिए उससे अधिक महत्व है सुरक्षित संकलन का। संग्रहालय का मुख्य कर्तव्य है सुरक्षित संग्रह का समुचित वर्गीकरण, अप्रकाशित वस्तुओं का प्रकाशन तथा शोधकर्त्ताओं से संग्रह से यथोचित लाभार्जन की सुविधायें प्रदान करना। इसकी व्यवस्था का संकेत ऊपर किया जा चुका है। हां, इतना अवश्य है कि शोधार्थी को इष्ट सुविधाओं की प्राप्ति के लिए संग्रहालय के अधिकारियों को पूर्व सूचना दे देनी चाहिए, क्योंकि संकलन सुरक्षा की दृष्टि से सामान्यता बन्द रहते हैं।

पुस्तकालय :

पुस्तकालय किसी भी संग्रहालय का अभिन्न अंग होता है, क्योंकि पुस्तकालय के अभाव में शोधकार्य सम्भव नहीं है। अमेरिका के एक मध्यम कोटि के संग्रहालय के पुस्तकालय में अनुमानतः २५ सहस्र ग्रन्थ होते हैं और उच्चस्तरीय संग्रहालय में तो यह संख्या १ लाख से भी अधिक होती है। हमारे देश में उच्चस्तरीय संग्रहालय तो हैं, किन्तु अनुरूप पुस्तकालय कुछ ही संग्रहालय में हैं। हाँ, इस ओर ध्यान दिया जा रहा है ताकि उत्तम पुस्तकालय के गठन से संग्रहालय शिक्षण में उचित योगदान कर सके। संग्रहालय के पुस्तकालय के मुख्य उद्देश्य होते हैं :

१—संकलित वस्तुओं का पुस्तकों के माध्यम से काम करना;

२—शोधकर्त्ताओं को सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त करना; तथा

३—जनोपयोगी साहित्य से सामान्य जनता में संस्कृतिक चेतना का प्रसार।

इस प्रकार पुस्तकालय संग्रहालय के शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने की आधार शिला है। इसका संगठन आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से होना चाहिए ताकि शोधकर्त्ता को सन्दर्भ ढूँढ़ने में विलम्ब न हो। पुस्तकाध्यक्ष ऐसा हो जिसे संग्रहालय सम्बन्धी सभी विषयों की समुचित जानकारी हो और वह न केवल अध्येता को सन्दर्भ ढूँढ़ने में सहायता दे, अपितु आवश्यकता पड़ने पर विषय सम्बन्धी मार्ग निदर्शन करने में भी समर्थ हो। यहाँ यह स्मरणीय है

कि संग्रहालय के पुस्तकालय का केवल सन्दर्भ पुस्तकालय के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि वहाँ से अधिक समय के लिए ग्रन्थों की अनुपस्थिति से अन्य शोधकर्त्ताओं को हानि की सम्भावना रहती है। उत्तर प्रदेश के दोनों राजकीय संग्रहालयों (लखनऊ तथा मथुरा) में अच्छी कोटि के पुस्तकालय हैं और इनका पुनर्गठन भी किया जा रहा है ताकि उच्च शिक्षार्थियों को संग्रहालय से अधिक-से-अधिक शोध सम्बन्धी सुविधा व प्रेरणा दी जा सके।

अन्य सुविधाएं :

संग्रहालयों द्वारा उच्च शिक्षा में और भी अनेक सुविधाएं दी जाती हैं। उनमें सबसे प्रमुख है विषय सम्बन्धी छाया चित्रों का निर्माण। प्रायः सभी अच्छे संग्रहालयों में एक छाया चित्रशाला (Photographic Laboratory) होती है। इससे शोधकर्त्ताओं को बहुत ही कम मूल्य में संग्रह के वांछित चित्र मिल जाते हैं। इसी प्रकार ऐतिहासिक तथा कलात्मक वस्तुओं की अनुरूप प्रतिकृतियाँ बनाई जाती हैं। इन प्रतिकृतियों के माध्यम से प्राचीन कला व संस्कृति का सहज में ही अध्ययन किया जा सकता है। बहुत से विश्वविद्यालयों में उच्च कक्षाओं के छात्रों के अध्यापन में प्राध्यापक संग्रहालय में बनी इन आकृतियों की सहायता लेते हैं। मुख्य-मुख्य वस्तुओं की रंगीन स्लाइड्स बनवाकर भी पटचित्र माध्यम से विषय का अनुशीलन हो सकता है। बाहर से आये शोधकर्त्ताओं के लिए भविष्य में अल्पकालीन आवास की सुविधा पर भी विचार हो रहा है ताकि वे निश्चिन्त हो कर ध्यानस्थ भाव से अपना अध्ययन कर सकें।

सामान्य वातावरण :

एक उच्चस्तरीय संग्रहालय का वातावरण ही ऐसा होता है जिससे उच्चशिक्षा तथा शोध में बड़ी प्रेरणा मिलती है। संग्रहालय के सभी तकनीकी कर्मचारी स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त होते हैं और स्वयं किसी न किसी विषय पर शोध करते हैं अथवा महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित करते हैं। शोध के मुख्य स्थान अर्थात् सुरक्षित संकलन तथा पुस्तकालय में बड़ा शान्त तथा सुविधामय वातावरण होता है। मन ऊबने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वीथिकाओं के माध्यम से शिक्षण तथा मनोरंजन दोनों की सम्पन्नता संग्रहालय का मुख्य उद्देश्य है ही। समपिस्थ वातावरण भी प्रायः मनोरम होता है। कुछ संग्रहालयों में एक श्रोतृशाला (Auditorium) भी होती है जिसमें यदा-कदा विद्वानों के भाषण, चित्र प्रदर्शन (Film Show) तथा अन्य सांस्कृतिक

कार्यक्रम होते रहते हैं । इन सब क्रिया-कलापों से संग्रहालय में गम्भीर विषयों का अध्ययन भी क्लान्ति रहित तथा आनन्द पूर्वक हो जाता है।

आशा है उच्चस्तरीय छात्रबन्धु तथा शोध व स्वाध्याय में रुचिशील शिक्षक संग्रहालय की इन सुविधाओं से समुचित लाभ उठायेंगे तथा संग्रहालयों को उच्च शिक्षा में अपना समुचित योगदान करने का अवसर देंगे। और इस प्रकार बना रहेगा संग्रहालय शिक्षार्थियों का अविच्छिन्न सम्बन्ध। संग्रहालय से आपका हित-सम्पादन और आपके संग्रहालय की लक्ष्य-पूर्ति:— "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" ।

परंपरानुकूल नाट्यकला के प्रचार से ही सही जनशिक्षण

यदि हम भारतीय नाट्य-परम्परा के सूत्रों की खोज और उसके पुनर्मूल्यांकन का यह कार्य सांस्कृतिक जागरूकता के साथ करें तो हमको वर्तमान स्थिति के अन्तर्विरोधों का समाधान सहज ही मिल सकेगा, और यह गतिरोध टूट कर उस श्रेष्ठ नाटक साहित्य का जन्म होगा जो चाहे पश्चिमी नाटक के समान सुबद्ध न हो और जीवन के व्यापारों का अनुकरण न प्रस्तुत करें, किन्तु जिसमें काव्य संगीत, नृत्य और विविध दृश्य-कलाओं के वे सभी तत्व विद्यमान होंगे जो नाटक को वास्तव में एक सामाजिक कला की संज्ञा देते हैं। भारत ने नाटक के इसी विशाल और व्यापक रूप की कल्पना करते हुए नाट्य-कला के ग्यारह अंग बताये थे--रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंग। अपनी परम्परा से संबद्ध होकर भविष्य का भारतीय नाटक इन्हीं अनेक कला-तत्वों और गुणों से विभूषित होगा, और वह राष्ट्र की संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधित्व और उसकी सच्ची अभिव्यंजना कर सकेगा।

—डा० सुरेश अवस्थी

शैक्षिक समाचार-समुच्चय : जनवरी

शिक्षा में अपव्यय

जनवरी ५ :—

अ० भा० विद्यार्थी कांग्रेस में भाषण देते हुए भूतपूर्व सुरक्षा मंत्री श्री मेनन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय को रोकना अत्यन्त आवश्यक है। भारत में यह अपव्यय अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

इस अपव्यय का प्रमुख कारण आर्थिक समस्यायें हैं। विद्यालयों में शिक्षकों की कमी की पूर्ति इस प्रकार की जा सकती है कि अधिकारी वर्ग ट्रेंड अध्यापकों की शर्त न रक्खें, बल्कि उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाले योग्य विद्यार्थियों की नियुक्ति विद्यालयों में अल्पकालीन अध्यापकों के रूप में की जाय। इस प्रकार युवकों को अनुभव प्राप्त होगा। उन्हें अध्यापक का कार्य करने का प्रोत्साहन मिलेगा और शिक्षालयों को कम व्यय पर अपने कार्य में रुचि लेने वाले अध्यापक मिलेंगे।

श्री मेनन ने सलाह दी कि विद्यार्थियों को साहस, तल्लीनता और आत्मनिर्भरता के अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने चाहिए।

अ० भा० स्तर पर शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता

जनवरी १५ :—

डा० राधाकमल मुकर्जी ने समाज विज्ञान विषय की एक गोष्ठी में कहा कि प्रौढ़ शिक्षा का अभाव और विशेषकर कलाकौशल की शिक्षा के प्रति समाज की उदासीनता का प्रतिफल मानसिक पतन और विकसित जीवन बिताने की भावना का अभाव है। वास्तव में यही दोनों मानसिक विकास के मापदण्ड हैं।

माध्यमिक अध्यापक संघ के सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता की उन्नति के लिए अ० भा० स्तर पर एक सी शिक्षा प्रणाली और परीक्षाएँ अनिवार्य हैं। आज के विद्यार्थी की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें भारत के नागरिक और

सेवक बनाना होना चाहिये। अन्यथा भारत की दशा भी योरुप के वाल्कन प्रदेश की सी कालान्तर में हो जायगी। शिक्षण संस्थाओं में सहकारी समितियों और क्षेत्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उद्योगशालाएँ होनी चाहिये। शिक्षा, सहकारिता और क्षेत्रीय औद्योगिक सेवा ही चतुर्थ विकास योजना का आधार होना चाहिये।

शिक्षण योजनाओं का नवीन दृष्टिकोण

जनवरी १८ :—

चौथी पंचवर्षीय योजना में शैक्षिक योग्यता की वृद्धि पर विशेष ब दिया जायगा। उक्त भाव योजना आयोग के सदस्य डा० वी० के० आर० वी० राव ने हैदराबाद में द्वितीय अ० भा० शिक्षक-संरक्षक कन्वेशन के उद्घाट अभिभाषण में व्यक्त किये।

आपने कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और विद्यार्थियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। ६ विश्वविद्यालयों और लगभग ४॥ लाख स्कूलों में ६ करोड़ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह संख्या संसार के बहुत से देशों की समस्त जन संख्या से अधिक है। चौथी योजना के भीतर ५६० करोड़ रु० खर्च करने का विचार है। संख्या की वृद्धि में सरकार का अधिक हाथ हो सकता है परन्तु योग्यता की वृद्धि में शिक्षकों और संरक्षकों का ही दायित्व अधिक है। इस सफलता के लिए अध्यापकों के लिए समाज में सम्मान पूर्ण स्थान और उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का महत्व है। संरक्षकों को अपना यह दृष्टिकोण बदलना होगा कि अध्यापक उनके वैतनिक कर्मचारी हैं। शिक्षा के क्षेत्र में दान-शीलता की ओर संकेत करते हुए आपने कहा कि अल्पकाल में मद्रास प्रदेश के संरक्षकों ने लगभग ४-५ करोड़ रुपये की व्यवस्था करके बालकों को मध्यकालीन भोजन का समाधान किया। अन्य प्रदेशों के संरक्षकों के लिए यह अनुकरणीय है।

म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जबलपुर

जनवरी २०-२१ :—

तृतीय अधिवेशन का उद्घाटन डा० धीरेन्द्र वर्मा ने किया और मुख्य मन्त्री पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र ने अध्यक्षता की।

इस द्विदिवसीय समारोह में हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डितों तथा साहित्यकारों का अच्छा जमघट था। डा० रघुवीर सिंह, पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, डा० बाबूराम सक्सेना, डा०शिवमंगल सिंह सुमन, श्री रामानुज़लाल श्रीवास्तव, श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, श्री मधुकर पाण्डेय, श्रीमती ऊषा देवी मित्र, श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जैसे साहित्यकार उपस्थित थे।

अध्यक्ष महोदय ने मध्य भारत में हिन्दी प्रचार का इतिहास बताते हुए कहा कि जो जाति समय की माँग पूरी कर सकती है उसका भविष्य उज्वल होता है और आगे आने वाली पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त होता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करना समय की माँग है और इसके विरोधी निहित स्वार्थ के वशीभूत हैं, किसी भी समस्या को वे सही रूप में देखना नहीं चाहते। अनुचित लाभ और झूठे भय के आतंक से उनका विवेक कुंठित है। हिन्दी राष्ट्रीय एकता की एक मजबूत कड़ी है और राष्ट्रपिता की भावना का प्रतीक है। "भारतीयों का चरम बौद्धिक विकास अँग्रेजी के बिना भी संभव होना चाहिये।" भाषा प्रचार के दृष्टिकोण से शब्दावली में एकरूपता लाने, पाठ्यपुस्तकों के एकीकरण और प्राध्यापकों के पारस्परिक विनिमय का प्रयत्न होना चाहिये।

उद्घाटन कर्ता डा० धीरेन्द्र वर्मा और स्वागताध्यक्ष श्री नर्मदाप्रसाद खरे ने सुझाव दिया कि हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें शासन, शिक्षा और न्याय आदि के विभागों में हिन्दी को पूर्णरूपेण अपनायें। इस प्रकार हम ४० प्रतिशत जनता के समक्ष सही कदम उठाकर शेष भारत का पथ-प्रदर्शन कर सकेंगे।

इसी अवसर पर एक साहित्य एवं कला प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन डा० रघुवीर सिंह जी ने किया। आपने कहा कि मध्यप्रदेश, वत्स, भट्टी आदि महाकवियों की जन्मभूमि है और वीरवर यशोधर्मन का विजयाँगण दशपुर आज भी पुरातत्व-संशोधकों के फावड़े-कुदाली की प्रतीक्षा में है। कालिदास कालीन उल्लेखनीय ऐतिहासिक स्थलों को खोजकर खोद निकालने के लिए भी कोई उत्सुकता नहीं दिखाई पड़ती।

इस शुभ अवसर पर वयोवृद्ध साहित्यकार श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा कई अन्य साहित्यिकों को अभिनन्दन–पत्र भेंट किये गये।

शिक्षा का नवीनीकरण आर्थिक दृष्टिकोण से हो

योजना आयोग सदस्य डा० राव

जनवरी २१ :—

शिक्षा का नवीनीकरण आर्थिक दृष्टिकोण से होना चाहिये । प्राइमरी शिक्षा का ध्येय लेखन और पठन के साथ साथ खेती बारी की शिक्षा में विकास होना चाहिए । सेकंडरी शिक्षा का दोहरा दायित्व बालकों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश के योग्य बनाने के अतिरिक्त उद्योग धन्धों एवं अन्य प्रकार से देश की आर्थिक सेवा के योग्य बनाना है । विश्वविद्यालयों में उन्हीं बालकों को प्रवेश मिलना चाहिये जो इस योग्य हों । सर्वोच्च शिक्षा को लोग माध्यमिक शिक्षा का पूरक माने हुए हैं जो ठीक नहीं है । माध्यमिक शिक्षा हाई स्कूल तक समाप्त होनी चाहिये और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा केवल उन होनहारों को दी जाय जो विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के योग्य हों। यों उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में दो प्रकार के वर्ग बनते हैं—एक में विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में भरती होने के लिए पढ़ाये जायँ और दूसरे वर्ग के विद्यार्थी पढ़ाई पूरी करके धंधों से लगें । विश्वविद्यालय की शिक्षा आर्थिक दृष्टि से स्वतः सम्पन्न नहीं हो सकती । अतः प्रवेश को सीमित करना ही होगा यदि विश्वविद्यालय के स्नातकों में उच्च ज्ञान की अभिवृद्धि करना है । हमारी योजनाओं का दोष यही रहा है कि ये जनता के दायित्व को जाग्रत नहीं कर सकी हैं । शिक्षा के विकास को निर्माणकारी उद्योगों के समक्ष हेय समझना भूल है । शिक्षा कार्य सिंचाई, लौह मिलों और सरकारी कर्मचारियों के वेतन की वृद्धि के समक्ष रुकना नहीं चाहिये ।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक की केन्द्रीयता

जनवरी २५ :—

उत्तर प्रदेश के नौ अध्यापकों को पुरस्कृत करते हुए राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास ने अध्यापकों से कहा—"आपको ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें नवयुवक और नवयुतियाँ अपनी योग्यता को ठीक प्रकार से विकसित कर सकें । सन्तोष है कि अध्यापक की मान्यता की भावना समाज में बढ़ रही है। श्री रवीन्द्र बाबू ने कहा था कि वह गुरु को तपोवन का केन्द्र बिन्दु मानते हैं । इससे स्पष्ट है कि गुरु देव रवीन्द्र शिक्षा मनोविज्ञान में अध्यापक को ही आधार मानते हैं । उनकी दृष्टि से गुरु का महत्व शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी से अधिक था । जलाशय में मछलियाँ तो उत्पन्न हो ही जाती हैं,

मछलियाँ पहले आवें और जल बाद में ऐसा तो कोई जलाशय में नहीं देखा गया। आधुनिक व्यवस्था में शिक्षण संस्थाओं के संचालकों का दृष्टिकोण विपरीत दशा में है। विद्यार्थी वर्ग का विचार पहले और अध्यापक का बाद में होता है। आज के युग में वही अध्यापक उत्तम है जो बालकों में अधिक से अधिक ज्ञान की वृद्धि करता है। गुरुदेव रवीन्द्र के विचार से अध्यापक का क़र्त्तव्य कोरी ज्ञान वृद्धि करना नहीं; समाज को उस आनन्दमय परिस्थिति का निर्माण करना है जिसमें अध्यापक आनन्द विभोर होकर ज्ञान दे और आनन्द विभोर बालक ज्ञानार्जन करें। इस परिस्थिति के निर्माण में समाज का महान दायित्व है। समाज को देखना है कि निस्पृह अध्यापकों को आकर्षित करने के लिए उसके द्वारा कैसे वातावरण का निर्माण किया गया है। अध्यापकों को पूर्ण रूप से आभास हो कि समाज को उसकी आवश्यकता है। तभी उसे अपने काम में आनन्द आयेगा।

कोई भी योग्य अध्यापक धन के लिए ज्ञान क़ो नहीं बेचता, परन्तु यदि अध्यापक से समाज को कुछ लेना है तब यह अवश्य देखना होगा कि समाज उसका आदर करे और जीवनोपयोगी आवश्यकताओं का अभाव अध्यापक को किंकर्त्तव्य विमूढ़ न बना दे। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री छागला ने बार बार कहा है कि कुछ प्राइमरी अध्यापकों का वेतन मेहतरों से भी कम है। यह राष्ट्र के लिए महान अपमान है। योग्य, उद्यमी और निस्पृह व्यक्तियों को अध्यापन कार्य की ओर प्रेरित करने के लिए समाज को अध्यापक की मानवृद्धि करनी ही होगी जो भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है।"

समाज की आवश्यकता के योग्य उच्च शिक्षा

जनवरी २६ :—

रेलमंत्री डा० राम सुभग सिंह ने कहा कि विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की भर्ती समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए होनी चाहिये। नहीं तो जिस प्रकार अर्थव्यवस्था में संतुलन के उत्पादन और आवश्यकता में असफल होने पर होता है, इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी योग्य को निराशा और अयोग्य को अपार भण्डार प्राप्त होने लगेगा।

शिक्षा शास्त्री तथा उदारवादी दोनों इस विषय में एक मत हैं कि माध्यमिक शिक्षा स्वत: आवश्यक और पूर्ण समझी जानी चाहिये और विश्व विद्यालयों में उन्हीं को भर्ती होने देना चाहिये जो स्कूल की कक्षाओं में इतनी योग्यता प्रदर्शित करें कि उन्हें उच्च स्तर की शिक्षा से वास्तविक लाभ होगा।

श्री सुभग सिंह जी ने विद्यार्थियों को आदेश दिया कि विद्यार्थी धरती तथा खाद से निकटतम् सामंजस्य प्राप्त करें। हमारी शिक्षण विधि में नगर निवास की प्रबलता के फलस्वरूप बालकों में ग्राम परित्याग एवं नगर निवास की रुचि बढ़ती जा रही है। अर्द्ध शिक्षित युवक अपनी खेती, अपना घर और ग्रामीण रहन सहन त्याग कर नगर में बाबूगीरी के लिए दौड़ते हैं। एक ओर वे अपनी खेती से विमुख होते हैं और दूसरी ओर वे नागरिक जीवन के अयोग्य हो जाते हैं। अध्यापक भी ग्रामीण संस्कृति में रुचि नहीं लेते और न उनके पास वे साधन हैं जिनसे वे ग्राम विकास और कृषि विकास में सहयोग दे सकें।

शिक्षा द्वारा संतुलित और मानवीय दृष्टिकोण का विकास

जनवरी २९ :—

शिक्षा का लक्ष्य केवल नवयुवकों को परिक्षाएँ पास कराना ही नहीं है, सुनियोजित और सुनियन्त्रित ढंग से बालकों की सहकारिता और संतुलित विकसित करना भी है। शिक्षा की तत्वपूर्ण संपन्नता इस प्रकार होनी चाहिए जिससे राष्ट्रीय जीवन में शिक्षित अपने कर्त्तव्य पूरे कर सकें। रंज की बात है कि आजकल कालेजों और विश्वविद्यालयों में रटाई वाली योग्यता पर इतना बल दिया जाता है कि युवक साँस भी नहीं ले पाते हैं। ये विचार शिक्षा आयोग सदस्य ख्वाजा गुलामुस्सय्यदैन ने अपने एक भाषण में व्यक्त किये।

—'संजय'

अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन के विगत अधिवेशन से स्वीकृत प्रस्तावों की सूची

सामान्य प्रस्ताव

१. इन्दौर का यह सम्मेलन जवाहर लाल जी नेहरू के निधन पर अपना गम्भीर शोक प्रकट करता है। उनके निधन से देश की भारी हानि हुई है। उसे शिक्षकों और इस संघ के प्रति उनके प्रेम और सहानुभूति की मधुर याद आती है। उनके व्यक्तित्व और सेवाओं ने शिक्षा सहित राष्ट्रीय निर्माण के सभी पहलुओं पर अमिट छाप डाली है।

२. यह सम्मेलन रेलवे मन्त्री श्री दसप्पा के निधन पर गम्भीर शोक प्रकट करता है।

३. यह सम्मेलन इंदौर के नागरिक जीवन के प्रमुख सेवी सरदार किबे के निधन पर गम्भीर शोक प्रकट करता है।

४. यह सम्मेलन डा० यतीन्द्र विमल चौधरी के निधन पर गम्भीर शोक प्रकट करता है। प्राच्य साहित्य के ये विद्वान सन् १९६२ वाले लखनवी अधिवेशन की संस्कृत गोष्ठी के अध्यक्ष थे।

५. यह सम्मेलन उन परिवारों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करता है जिनके धन-जन की देश और सिंहल में आये पिछले अप्रत्याशित तूफान में भारी हानि हुई।

६. इस समय शैक्षिक विषयों पर राज्य ही कानून बना सकते हैं। सम्मेलन का प्रस्ताव है केन्द्रीय शासन को भी शिक्षा पर कानून बनाने का अधिकार मिले।

७. यह सम्मेलन भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति का स्वागत करता है। क्योंकि शिक्षा के सभी पक्षों और स्तरों के सम्बन्ध में इसके द्वारा अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रतिवेदन प्रस्तुत होने हैं; अतएव यह सम्मेलन भारतीय शासन से अनुरोध करता है कि इस आयोग पर भारतीय शिक्षक संघ का यथेष्ट प्रतिनिधित्व हो।

८. यह सम्मेलन भारतीय शिक्षा सेवा के स्तर पर अधिकारीवर्ग की नियुक्ति के प्रस्ताव का स्वागत करता है।

९. अध्यक्ष महोदय को अधिकार दिया जाता है कि शिक्षा आयोग के सामने नीति और सेवा क्रम के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षक संघ का दृष्टिकोण शिक्षा आयोग के सामने प्रस्तुत करने के लिये एक अथवा अधिक समितियाँ नियुक्त करें।

१०. यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि चौथी पञ्चवर्षीय योजना के लिये केन्द्रीय सरकार अनुमानित व्यय का कम-से-कम १० प्रतिशत शिक्षा के लिये सुरक्षित कर दे और इसी प्रकार राज्य अपने विकास-व्यय का कम-से-कम २० प्रतिशत शिक्षा के लिये सुरक्षित कर दें।

११. यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि—

(६) सभी स्तरों के शिक्षकों के वेतनक्रम यथेष्ट मात्रा में बढ़ाये जायँ ताकि समुचित योग्यता प्राप्त व्यक्ति शैक्षिक सेवा के लिसे आकृष्ट हों और शीघ्र ही एक 'वेजेस बोर्ड' नियुक्त किया जाय जो वेतनक्रम और मंहगाई के भत्ते के लिये समय-समय पर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करता रहे।

(२) जिन राज्यों ने अभी तक प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षकों के लिये पेंशन, प्राविडेंट फण्ड और ग्रेचुयिटी की सम्मिलित योजना अभी तक चालू नहीं की है वे इसे शिक्षकों के विगत सेवा काल के आधार पर चालू करें।

(३) सरकारी और गैरसरकारी शिक्षकों के बीच वेतनक्रम और सेवा के नियमों में जो भेद अभी तक रहे हैं वे तुरन्त समाप्त कर दिये जाँय।

(४) प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को कालेज के स्तर तक अपने बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा की सुविधा प्रदान की जाय।

(५) जिस प्रकार सरकारी वैतनिकों की निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है वही सुविधा सभी शिक्षकों को मिले।

(६) सभी शिक्षकों को, वे देहात के हों या नगर के, रहने के लिये घर मिलें अथवा किराया देने के लिये यथेष्ट मात्रा में भत्ता मिले।

१२. हाल ही में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री ने यह सूचना दी है कि जो गैरसरकारी संस्थाएं शिक्षण सेवा कर रही हैं, उन पर नियन्त्रण करने के लिये एक कानून बनाया जायेगा और जो संस्थायें शिक्षण सेवा करना चाहेंगी उन्हें लाइसेन्स लेना पड़ेगा। इस सूचना से सम्मेलन बहुत क्षुब्ध हैं और केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री से यह अनुरोध करता है कि ऐसे कानून बनाने का विचार वह समाप्त कर दे।

गोष्ठियों से स्वीकृत प्रस्ताव

बाल्यकालीन और गृह-शिक्षा गोष्ठी :

१. केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिये एक परामर्शदात्री समिति नियुक्त हो, इस समिति का काम हो पूर्व प्राथमिक शिक्षा के स्तर निश्चित करना और पूर्व प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में राज्यों और शिक्षा मंत्रालय को परामर्श देते रहना।

२. उपर्युक्त समिति सरकारी, अर्द्धसरकारी और ऐच्छिक संस्थाओं की पूर्व प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कार्यक्रम का तालमेल बनाये रहे।

३. दो वर्ष से ६ वर्ष तक के बच्चों के लिये अच्छे साहित्य के निर्माण के लिये सरकार आर्थिक सहायता दे।

४. पूर्व प्राथमिक शिक्षालयों के लिये सामान और खेलों के यन्त्र के निर्माण में सरकार निर्माताओं को समुचित अनुदान दे।

५. पूर्व प्राथमिक शालाओं के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था सरकार करे। क्षेत्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों, नार्मल स्कूलों और माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये बने महाविद्यालयों के साथ ऐसे विभाग लगा दिये जाँय जिनमें पूर्व प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण हो।

६. योग्य अधिकारियों को अनुदान दिये जायँ जिनसे वे बाल्यकालीन विकास और पूर्व प्राथमिक शिक्षा की प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में खोज कर सकें।

७. पूर्व प्राथमिक शिक्षकों के लिये पाठ्यपुस्तकों और निदेशिकाओं का काम योग्य अधिकारियों तथा विश्वविद्यालयों के उन विभागों के सुपुर्द किया जाय जिनमें बाल्यकालीन विकास पर अध्ययन होता है।

८. प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग में तथा केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में भी बाल्यकालीन शिक्षा के एक विशेषज्ञ की नियुक्ति हो जो शिक्षा के इस क्षेत्र के सम्बन्ध में नीतियाँ और योजनायें बनाया करे।

९. चतुर्थ पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार कम-से-कम ६ बाल्यकालीन प्रशिक्षण के केन्द्र स्थापित करे।

१०. प्रतिवेदन किया जाता है कि प्रत्येक राज्य में पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिये शिक्षकों के संगठन बनें जो शालाओं के प्रबन्धकों, शिक्षकों अथवा कार्यकर्ताओं के लिये अध्ययन गोष्ठियां और अल्पकालीन प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था करें।

प्रारम्भिक और ग्रामीण शिक्षा गोष्ठी :

इस सम्मेलन की मांग है कि सरकारी और गैरसरकारी विद्यालयों शिक्षकों के वेतनक्रम तथा अन्य सेवा के नियमों में भेद समाप्त कर दिया जा और यह समाप्ति देश भर में कार्यान्वित हो। इस सम्बन्ध में केरल राज्य गैरसरकारी प्रारम्भिक शालाओं के शिक्षकों की मांग का यह सम्मेल सहानुभूतिपूर्वक समर्थन करता है।

माध्यमिक शिक्षा गोष्ठी :

१. विभिन्न राज्यों की माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में समानता भारी अभाव है; अतएव यह सम्मेलन केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से अनुरो करता है कि वे पूरे देश के लिये समान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली कार्यान्वि करने के ढँग निकाले, जिससे अन्ततः राष्ट्रीय एकता की सिद्धि होगी।

२. माध्यमिक शिक्षक का स्तर समुचित रूप में बनाये रखने लिये निश्चित होता है कि माध्यमिक क्षेत्र तीन भागों में बँटे; पहला भा आठवीं कक्षा तक रहे, दूसरा भाग दसवीं कक्षा तक और तीसरा बारहवीं कक्षा तक और तीनों के समकक्ष व्यावसायिक शिक्षा की संस्थायें हो जिनमें बच्चे प्रवेश पा सकें जो सामान्य ढँग की ऊँची शिक्षा के लिये योग्य न हों।

शिक्षक प्रशिक्षण गोष्ठी :

१. देश में शिक्षक प्रशिक्षण के समुचित विकास के लिये आवश्यक है कि प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिये अलग-अलग प्रशिक्षण संस्थाओं के बजाय ऐसे प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित हों जिनमें कम-से-कम ३०० विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करें और सभी स्तरों के विद्यालयों अथवा शिक्षालयों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। अतएव प्रतिवेदन किया जाता हैं कि राज्य, केन्द्रीय शासन या विश्वविद्यालय की ओर से प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक प्रशिक्षण महाविद्यालय उपर्युक्त उद्देश्य से स्थापित किया जाय। इस प्रस्ताव पर संघ की कौंसिल को ब्यौरेवार विचार करने का आदेश दिया गया।

२. शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम और अवधि के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों के मध्य समानता का भारी अभाव है; अतएव यह सम्मेलन केन्द्रीय और राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि वे देश भर के लिये समान नीति की व्यवस्था करें।

३. यह सम्मेलन सरकार से प्रार्थना करता है कि वह सभी प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रति पांच वर्ष पश्चात् पुनर्प्रशिक्षण अनिवार्य कर

जिससे शिक्षा के सम्बन्ध में उनका सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान ताजा बना रहे।

४. इस सम्मेलन का ख्याल है कि माध्यमिक शिक्षालयों के शिक्षकों के लिये एक वर्ष की अवधि और प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों के लिये दो वर्ष की अवधि यथेष्ट नहीं है। अतएव कालांतर में यह अवधि बढ़ा कर क्रमशः दो और तीन वर्ष कर दी जाय और पाठ्यक्रमों में विषयों का समावेश हो और उनके बढ़ाने का भी। इस प्रस्ताव पर फ़ेडरेशन कौंसिल पुर्नविचार करेगी।

५. प्रशिक्षण विद्यालयों में ऐसे विद्यार्थियों की भरती चालू हो गई है जो छात्रावास में नहीं रहते। पक्के प्रशिक्षण के लिये सभी विद्यार्थियों का छात्रावास में रहना आवश्यक है। अतएव सम्मेलन का प्रतिवेदन है प्रत्येक विद्यालय के साथ ऐसा छात्रावास हो जिसमें सभी विद्यार्थी रह सकें और जहाँ सहचर्या की व्यवस्था हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि वह प्रशिक्षण विद्यालयों और महाविद्यालयों को यथेष्ट आर्थिक सहायता दे।

६. अप्रशिक्षित शिक्षकों की भारी संख्या विद्यालयों में है। यह कमी दूर करने के लिये सम्मेलन ऐसे लिखापढ़ी वाले कोर्स चालू करने का प्रतिवेदन करता है जिनके द्वारा उन वैतनिक शिक्षकों का प्रशिक्षण हो सके जो कम-से-कम पाँच वर्ष पढ़ा चुके हों।

सर्वोच्च शिक्षा गोष्ठी :

वैज्ञानिक और प्राथमिक शिक्षा की देश में भारी जरूरत है। परन्तु इस कारण देश के युवक-युवतियों के सर्वांगीण विकास में कोई कमी न रहनी चाहिये जो मानवोचित विषयों के अध्ययन से ही सम्भव है। अतएव इस सम्मेलन का मत है कि शिक्षा के संतुलन के लिये वैज्ञानिक और प्राविधिक पाठ्यक्रमों के साथ मानवोचित विषयों के मौलिक ज्ञान की व्यवस्था की जाय।

नारी शिक्षा गोष्ठी :

१. इस सम्मेलन का मत है कि बालिका विद्यालयों में किसी हस्तकला की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाय, विशेष रूप से गृह विज्ञान के पाठ्यक्रम के साथ, ताकि लड़कियाँ अपने अवकाश के क्षणों में उत्पादक श्रम भी कर सकें।

३. इस सम्मेलन का मत है कि गृह विज्ञान के पाठ्य और प्रशिक्षण

क्रम में इस प्रकार सुधार हो कि निर्धन परिवारों में गृहिणी की उत्पादक श्र सम्बन्धी योग्यता बढ़ जाय ।

३. गृह निर्माण के लिये ही नारी शिक्षा न हो, अन्य व्यावसायिक विषयों के अध्ययन की भी व्यवस्था बालिका विद्यालयों में की जाय और चिकित्सा, कानून, इंजीनियरिंग और परिचर्या जैसे विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध भी नारियों के लिये किया जाव । इनमें जो योग्य हो उन्हें यथेष्ट संख्या में छात्रवृत्तियाँ भी दी जायँ ।

४. देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था देखते हुए यह आवश्यक है कि नारियों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों को खर्चीले गृहविज्ञान महाविद्यालयों पर वरीयता दी जाय जो उच्चस्तरीय मध्यवर्ग के लिये ही काम के हैं। अतएव अधिकारियों से प्रार्थना की जाती है कि चतुर्थ पञ्चवर्षीय योजना में प्रत्येक राज्य की आवश्यकताओं के अनुकूल यथेष्ट संख्या में नारियों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायँ ।

५. यह सम्मेलन अधिकारियों से प्रार्थना करता है कि वे गृहविज्ञान को एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम का महत्व प्रदान करें जिसमें सामूहिक संगीत, नृत्य और समाज सेवा के लिए समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था हो ।

६. इस सम्मेलन का मत है कि गृह विज्ञान के नए विभाग किसी विद्यालय में न खोले जाँय; गृह विज्ञान, कला या विज्ञान के अन्तर्गत ही एक विभाग हो ।

व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा गोष्ठी :

१. इस सम्मेलन का दृढ़ मत है कि देश में प्राविधिक शिक्षा के स्वस्थ और नियंत्रित विकास के लिए पढ़ाई के प्रारम्भिक काल ही में बालकों का इस ओर रूझान बढ़ाया जाय। अतएव निश्चय किया जाता है कि व्यावसायिक विद्यालयों की योजनान्वित संख्या बढ़े। यह भी प्रस्तावित है कि इंजीनियरिंग कालेजों और पोलीटेकनिकों में भरती की वरीयता उन प्रत्याशियों को दी जाय जो इन व्यावसायिक शालाओं के स्नातक हों।

२. इस सम्मेलन का मत है कि व्यापार और व्यवसाय से सम्बद्ध विभिन्न विषयों का मौलिक ज्ञान उन लोगों को प्रदान किया जाय जो व्यवसायों में लगे हैं। अतएव शासन से, और पूँजीपतियों से भी आशा की जाती है कि व्यवसाय के भीतर ही वे इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है कि व्यावसायिक केन्द्रों में संध्याकालीन व्यावसायिक संस्थाओं की संख्या बढ़ाई जाय।

३. इस सम्मेलन का दृढ़ मत है कि विश्वविद्यालयों और प्राविधिक महाविद्यालयों के मध्य निरर्थक असमानता दूर करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली का एकीकरण आवश्यक है। अतएव यह सम्मेलन निश्चय करता है कि प्राविधिक शिक्षा को राज्य सरकारों से परामर्श करके एक केन्द्रीय विषय मान लिया जाय।

४. कृषि से उत्पादन बढ़ाने के लिए सम्मेलन प्रस्तावित करता है कि नगर से अलग ग्रामीण इन्जीनियरिंग कालेजों की स्थापना हो जिनमें कृषि और व्यवसाय की संतुलित व्यवस्था हो।

वयस्क शिक्षा गोष्ठी :

१. वयस्क शिक्षा गोष्ठी का नाम बदल कर **जनशिक्षा गोष्ठी** कर दिया जाय। इस जन शिक्षा गोष्ठी के अन्तर्गत नीचे लिखी सेवायें हों :

(अ) वयस्क शिक्षा।

(ब) जन साधारण की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण (पंचायती राज, समाज विकास योजना और सरकारी तथा गैरसरकारी कर्मचारियों के लिए सहकारिता की शिक्षा)।

(स) जनशिक्षा के साधन (चलचित्र, रेडियो, टेलीविजन, पत्रकारिता और प्रचार के श्रोत तथा दृश्य साधन)। इस प्रस्ताव पर फेडरेशन कौंसिल को पुर्नविचार करना है।

शिक्षक सेवा गोष्ठी :

१. यह सम्मेलन शिक्षकों की वेतन वृद्धि सम्बन्धी माँगों पर राज्य सरकारों की उदासीनता से बहुत चिंतित है। अपनी आर्थिक स्थिति के सुधार के लिये उनके मत से सम्मेलन पूर्णतया सहमत है। अतएव यह सम्मेलन राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि वे शिक्षकों की उचित माँगों को सहानुभूति पूर्ण विचार करें जिससे उनकी निराशा के बुरे परिणाम न होने पावें। केन्द्रीय शासन से भी सम्मेलन का अनुरोध है कि अत्यधिक देरी न होने देने के लिए वह बीचबराव कर दे।

२. यह सम्मेलन राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि शिक्षकों के प्राविडेन्ट फंड में उनका और प्रबन्धकों का देय ६$\frac{१}{४}$ से बढ़ाकर १५ प्रतिशत कर दिया जाय और इतना ही शिक्षकों के वेतन से कटे।

३. यह सम्मेलन राज्य सरकारों से शिक्षकों के लिए पारिश्रमिक समितियों की नियुक्ति का अनुरोध करता है।

४. यह सम्मेलन केन्द्रीय शासन तथा राज्य सरकारों से अनुरो करता है कि वे शिक्षकों और उनके आश्रितों को शैक्षिक और चिकित्सा त आवास सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था करें।

आदिवासी शिक्षा गोष्ठी :

१. इस सम्मेलन का प्रतिवेदन है कि आदिवासी शिक्षा योजना के कार्यान्वियन में नीचे लिखे तथ्यों का ध्यान रहे :

(अ) शिक्षा के परिणामस्वरूप स्नातकों की सामान्य जानकारी अतिरिक्त कृषि से रुचि बढ़े और राष्ट्रीय संस्कृति अपनाते हुए वे देश के स नागरिक भी बन सकें।

(ब) छात्रावास और छात्रवृत्तियां जैसे साधनों के जुटाने में सरका अधिकारियों तथा गैरसरकारी संस्थाओं का पारस्परिक सहयोग सक्रिय रहे।

२. विगत वर्ष के प्रस्तावों को दुहराना भी प्रस्तावित हुआ।

कला शिक्षा गोष्ठी :

नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत हुए :—

१. प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तरों पर चित्रकला की शि अनिवार्य रहे। तत्पश्चात् उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वह ऐच्छिक हो।

२. चित्रकला से सम्बन्धित ब्योरेवार योजनायें ध्यानपूर्वक तैयार जाकर योजना आयोग की सेवा में संघ के माध्यम से प्रस्तुत की जाँय जिस पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित की जा सकें।

३. भारतीय शिक्षक संघ के तत्वाविधान में उन शिक्षकों, कलाका और संस्थाओं का एक संघ बने जो नृत्य, नाट्य, संगीत, चित्रण और मूर्तिक से सम्वद्ध विकास में संलग्न हों।

४. कला से संवद्ध खोज और प्रशिक्षण के लिए केन्द्रीय औ क्षेत्रीय संस्थाएँ स्थापित हों और अस्तित्व प्राप्त संस्थाओं को विश्वविद्याल स्तर की मिले।

पुस्तकालय गोष्ठी :

१. प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय में शिक्षकों और विद्यार्थि को पुस्तकालय की पूरी सेवा उपलब्ध हो; इस सेवा के लिए एक प्रशिक्षि पुस्तकालयाध्यक्ष नियुक्त रहे जिसका पद और वेतनक्रम समकक्ष प्रशिक्षि शिक्षकों और प्राध्यापकों के बराबर रहे।

२. विद्यार्थियों की रचनात्मक जिज्ञासा जाग्रत करने के लिए विद्यार्थियों से लिखवाये नोट न रटाये जाँय, वे पुस्तकालय के प्रयोग के लिए प्रेरित किये जायँ। पाठ्य पुस्तकें शिक्षण कार्य के ही काम दें जिनकी पूर्ति के लिए विद्यार्थी पुस्तकालय का उपयोग करने के लिए प्रेरित किये जाँय।

३. शिक्षकों को पुस्तकालय के उपयोग का महत्व भली प्रकार समझाया जाय और उनके प्रशिक्षण में पुस्तकालय के उपयोग का भी विषय रहे।

४. विद्यालय के पुस्तकालय के लिए पुस्तकों के चयन में शिक्षकों और पुस्तकालयाध्यक्ष का पारस्परिक परामर्श होता रहे।

५. विद्यालय के टाइम टेबुल में पुस्तकालय के लिए भी पीरियड रहे जिसमें बच्चे पुस्तकालय पहुँचकर उसका स्वतन्त्र उपयोग करना सीखें।

६. ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए पुस्तकालय के उपयोग के सम्बन्ध में समय-समय पर विचारों का आदान-प्रदान हो, जिससे वे परीक्षा की तैयारी के लिए उसका उपयोग कर सकें और तत्पश्चात् भी उसकी सहायता से ज्ञान का विकास करते चलें।

७. नीची कक्षाओं के बालकों को कहानियाँ सुनाई जाँय इस प्रकार कि वे उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित हों।

८. महाविद्यालय से संबद्ध पुस्तकालयों की वेहतर व्यवस्था हो और उनमें संदर्भ ग्रंथों की संख्या बढ़ाई जाय।

९. यह सम्मेलन पुस्तकालयाध्यक्षों के वेतनक्रम के संम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रतिवेदनों का स्वागत करता है और अधिकारियों से अनुरोध करता है कि वे इन्हें तुरन्त कार्यान्वित करें।

१०. यह सम्मेलन सभी स्तर के अधिकारियों से अनुरोध करता है कि वे स्कूलों और कालेजों से संबद्ध पुस्तकालयों को सेवा का समुचित अवसर देने के लिए उन्हें यथेष्ट निधि प्रदान करने की व्यवस्था करें।

११. प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय में पुस्तक भंडार योजना चालू की जाय, केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें और वि० अ० आ० इस ओर ध्यान दें और अध्यक्ष को ब्योरेवार योजना प्रस्तुत करने का दायित्व सुपुर्द किया जाय।

अन्तर्राष्ट्रीय और शाँति अभियान गोष्ठी :

यह सम्मेलन प्रस्तावित करता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ १९६५ को

नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग वर्ष की संज्ञा प्रदान करे जिससे राष्ट्रों के मध्य सहअस्तित्व की भावना बढ़े।

आगे यह भी प्रस्तावित किया जाता है कि इस भावना के प्रचार के लिए संघ सदस्य राष्ट्रों से प्रार्थना करे कि अपने-अपने स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में एक **जन-अधिकार दिवस** मनाने की व्यवस्था करें जिससे मानवमात्र की हित-रक्षा हो।

भारतीय पब्लिक स्कूल गोष्ठी :

१. सिंधिया स्कूल के प्राचार्य श्री शुक्ल को पदम्श्री की उपाधि मिलने पर यह सम्मेलन गौरवान्वित तो होता ही है, परोक्ष रूप में पब्लिक स्कूल प्रणाली को मान्यता मिलने की भी उसे खुशी है। शुक्ल जी द्वारा ब्रिटिश प्रणाली का भारतीय संस्कृति से सिंधिया स्कूल में सुन्दर समन्वय होने पर ही उन्हें यह मान्यता प्रदान की गई है। अतएव वह इन बंधु को बधाई देता है और वह आशा करता है कि इसी प्रकार वे आगे भी पब्लिक स्कूलों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

२. केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा सैनिक स्कूलों के खोले जाने पर यह सम्मेलन प्रसन्नता प्रकट करता है कि होनहारों को सैनिक सेवा के लिए तैयार करने हेतु ऐसे ही स्कूल और भी खुलेंगे और उनमें छात्रवृत्तियों की यथेष्ट व्यवस्था होगी जिससे योग्य विद्यार्थी गरीबी के कारण इनसे वंचित न रह जाँय।

युवक हितसेवा गोष्ठी :

१. युवकों के मध्य अशांति और अनुशासनहीनता रोकने के लिए प्रत्येक विद्यालय में तुरंत ही शिक्षकों, विद्यार्थियों और अभिभावकों की एक समिति बने जो पढ़ाई के समकक्ष युवकों की हित सेवा करती रहे।

२. पढ़ते हुए कमाई करने की प्रवृत्ति को नवयुवकों में प्रोत्साहित करना इस समिति का प्रमुख कर्त्तव्य हो।

३. स्थानीय संस्थायें नगर के प्रत्येक मोहल्ले में युवकों को स्वस्थ मनोरंजन की सुविधा प्रदान करने के लिए खुली भूमि की व्यवस्था करें।

४. रेलवे मंत्रालय से विद्यार्थियों को रियायती दर से सैर करने की सुविधा प्रदान की जाय और प्राचार्यों के दस्तखत से विद्यार्थियों को यह सुविधा मिल सके।

76257

५. केन्द्रीय शिक्षा मंत्री से प्रार्थना की जाय कि इस हेतु वह विद्यार्थियों को अनुदान देना भी प्रारम्भ कर दें।

६. नवयुवकों के लिए छात्रावासों की संख्या बढ़ाई जाय और इनका वेहतर प्रबन्ध हो जिससे इनके द्वारा युवकों की समुचित सेवा हो सके।

७. मनोरंजन और सांस्कृतिक केन्द्रों के अतिरिक्त विज्ञान गोष्ठियों और पुस्तकालयों जैसी संस्थाएँ विद्यालयों से संलग्न या नगर के विभिन्न मोहल्लों में चालू की जाँय।

नैतिक और धार्मिक शिक्षा गोष्ठी :

१. इस सम्मेलन का मत है कि नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा उस समाजवादी ढाँचे के अनुकूल है जो राष्ट्र ने भावी के लिए मान लिया है।

२. इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए सम्मेलन शिक्षक के व्यक्तित्व को प्रमुख महत्व देता है। उसके दैनिक चरित्र से विद्यार्थी नैतिक जीवन के पाठ सीखें और उसकी ईश्वर निष्ठा से विभिन्न मतों के विद्यार्थी एक दूसरे के प्रति सहनशील रहते हुए धर्मनिष्ठ हो।

३. गोष्ठी ने यह भी निश्चय किया कि उसकी स्थायी समिति इस सम्बन्ध में तैयार की गई १९५४ की रिपोर्ट तथा बाद के प्रतिवेदनों पर पुनः विचार करके अगली गोष्ठी में निश्चत प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।

हे राम ! तुम्हें यह देश न भूले।
निज भाषा, निज वेश न भूले॥

—राष्ट्रकवि स्व० मैथलीशरण गुप्त

परिचायिकी

व्योहार राजेन्द्रसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ :

सजिल्द; पृ० १८४; मिलन प्रकाशन, जबलपुर से प्रकाशित; मूल्य ५) रु०।

व्योहार राजेन्द्रसिंह की गणना उन थोड़े से सम्पन्न साहित्यसेवियों में हैं जिन्होंने स्वांतः सुखाय ही सरस्वती-सेवा की है और स्वाधीनता संग्राम में उतर कर राष्ट्रसेवा भी। अब वह पैंसठ वर्ष के हो रहे हैं। इनकी दोहरी सेवा के प्रसाद स्वरूप भारत स्वतन्त्र हो गया है और उनकी सेवित हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है। व्योहारजी के भक्त हार्दिक बधाई के पात्र हैं जो उन्होंने मिलकर यह अभिनन्दन ग्रंथ उन्हें भेंट करके प्रकाशित किया है।

हिंदी साहित्य को व्योहार जी की देन बहुमुखी रही है। आपने ललित साहित्य की सर्जना की है और सामाजिक आलोचना पर भी आपका एक बहुमूल्य प्रकाशन है। व्योहारजी के कुछ ग्रन्थ तो पुस्तकाकार प्रकाशित हैं। बाकी पत्रों पत्रिकाओं में बिखरे हुए हैं। क्या ही अच्छा हो यदि इनके भी विषयानुकूल संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित हो जायँ। मध्यप्रदेश का कोई साहित्यिक अभियान नहीं होता जिसमें व्योहारजी का योगदान न हो। वस्तुतः हाल ही में सफलतापूर्वक सम्पन्न मध्य प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के के कर्ता-धर्ता आप ही रहे, तो सम्मेलन को मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र का नेतृत्व भी मिल सका।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ से उदीयमान साहित्यकारों को सेवा की सशक्त प्रेरणा मिलनी चाहिए।

* * *

पुरातत्व के विद्वान्

सागर विश्वविद्यालय में पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी कृत

भारतीय व्यापार का इतिहास :

सजिल्द; पृष्ठ संख्या ४१७+१०+४४१; राष्ट्रभाषा प्रकाशन, मथुरा से प्रकाशित; मूल्य सात रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित हुए यथेष्ट समय हो गया है। परन्तु विषय के विचार से इसके महत्व में कोई कमी नहीं आई है। हमारे स्वर्णिम

और स्वतन्त्र अतीत काल में भारतीय कुटीरों से तैयार माल की संसार भर में खपत थी और हम ज्ञात संसार के सूती वस्त्रदाता थे ही। निर्यात इस माल का होता था और स्वर्ण की मुद्राओं के रूप में आयात होता था। इस व्यापार में हमारे तटवर्ती प्रदेश अग्रणी थे। तभी तो दक्षिण में सुवर्ण का बाहुल्य प्रसिद्ध था। देश पर मुस्लिम शासकों का अधिकार होने पर, योरप-भारत जलमार्ग के खुलने पर भी, भारतीय माल का निर्यात बढ़ा ही, घटा नहीं। देश के दुर्दिन तभी आये जब योरप में व्यवसायिक क्रांति हुई और 'कुटीर' के मुकाबिले पर 'पुतलीघर' आ गया। देश के स्वतन्त्र होने पर भी हमारे कुटीर उद्योग पनप नहीं पाये हैं और राष्ट्रीय नीति देश को आधुनिक शक्ति संचालित व्यवसाय में आगे बढ़ाने की है, तो अब सुवर्ण के बदले भारी मशीनों का आयात बढ़ गया है। आयात की बराबरी हमारा निर्यात कर नहीं पाता, तो अब देश पर कर्ज का भार बढ़ता जा रहा है। इस विषम स्थिति से हम कब और किस प्रकार मुक्त हो सकेंगे, यह **परिचायिकी** के विषय के बाहर है। पुस्तक में आदिकाल से अब तक भारतीय व्यवसाय और व्यापार का प्रामाणिक और गवेषणापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत है, जो इतिहास और व्यापार के विद्यार्थियों के लिये, देश की व्यापारिक नीति-निर्माताओं के लिए भी बड़े काम का है। इस विषय पर और इससे अधिक गवेषणापूर्ण तथा प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में कोई अन्य पुस्तक नहीं।

का० दा०

* * *

जय कामना जयी

(राजर्षि टंडन के प्रति)

जन हित निज सर्वस्व दान कर तुम तो हुए अशेष;
क्या देकर प्रतिदान चुकाए ऋषे तुम्हारा देश ?
राज दंड, के चूर छत्र, चामर किरीट सम्मान;
तोड़ न पाये यतीं। ध्येय से बंधा तुम्हारा ध्यान !
ऐश्चर्यों के मोह कुँज में भीं न धीरता डोलीं;
तुमने तो की ग्रहण देवता। केवल अक्षत रोलीं !
जय कामना जयीं व्रतचारी मधुकर चमक बन के;
जय जय अभिनव भरत भव्य भारत के राज भवन के !

—"दिनकर"

सम्पादकीय—

अंग्रेजी के लिए अग्निकांड :

अंग्रेजी शासन से मुक्ति के लिये सारे देश ने संघर्ष किया और इस मुक्ति के अभियान के सिलसिले में राष्ट्रपिता गांधी ने देश को अंग्रेजी से भी मुक्त करने का अभियान चालू किया। स्वयं गुजराती थे, उनके गुरुदेव विश्वकवि रवींद्र बंगाली थे और उनके सम्बन्धी चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य दक्षिणी थे और हैं। दोनों ने गांधी जी का इस अभियान में सक्रिय साथ दिया। उत्तरी भारत के जो भाग आजकल हिन्दी भाषी हैं उनमें राम, कृष्ण, बुद्ध तथा महाबीर ने जन्म लिया। चारों महापुरुष देश भर के पूज्य हुए और इनके दैहिक जीवन के स्थल सारे देश के तीर्थस्थान हुए। कालान्तर में देश पर मुस्लिम शासन हुआ। तब दिल्ली, जो अब हिन्दी भाषी प्रदेश के केन्द्र में है, सारे देश का शासनिक केन्द्रविन्दु बना। यों देश के अंग्रेजों से मुक्त होने पर,साहित्यिक निधि के नाते नहीं, भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों-वश ही, संविधान मण्डल ने सर्व सम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया और अंग्रेजी से हिन्दी में लाने के लिए जन तथा शासन को पन्द्रह वर्ष की अवधि प्रदान की।

इस अवधि के भीतर यदि हम हिन्दी की वैधानिक मान्यता वास्तविक नहीं कर सके, तो प्रथम अभियुक्त हैं भारत के हिन्दी भाषी जन और उनके साहित्यिक तथा प्रशासनिक नेता। अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी का यथेष्ट प्रचार हुआ है और हो रहा है, परन्तु हिंदी भाषी राज्यों के अन्तर्गत विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में, प्रशासनिक दफ्तरों में भी, हिंदी की मान्यता बढ़ाने में शिक्षक बंधु बहुत पीछे रहे हैं और सरकारी अधिकारी भी।

होना चाहिए था कि परिभाषिक शब्द निर्माण के भंवर-जाल में न पड़ कर शिक्षक अपनी पढ़ाई में उस अंग्रेजी मिश्रित हिंदी का प्रयोग करना प्ररम्भ कर देते जिसके वे आदीं रहे थे और हैं; उसी प्रकार दफ्तरों के साहब और वाबू भी वैसी ही हिंदी अपनी मिस्लों पर चढ़ाने लगते, तो आजकल शिक्षण और प्रशासन में हिंदी का प्रयोग वहुत आगे वढ़ जाता।

जापान का उदाहरण हमारे सामने है। जापानी हमसे कम राष्ट्र भक्त नहीं। वे भी पिछले सौ वर्ष के भीतर पाश्चात्य विज्ञान तथा प्रविधि का सहारा लेकर एशिया में किसी समय शक्ति के शिखर पर पहुँच गये और अब समृद्धि के शिखर पर विराजमान हैं। जापान में कभी भी अंग्रेजी को शिक्षा और प्रशासन के माध्यम की मान्यता नहीं दी गई। उत्थान के प्रारम्भिक काल में भी जब देश के सर्वोन्न

विद्यालयों के अधिकांश प्राध्यापक विदेशी ही थे, जापानी युवक अपने विदेशी शिक्षकों के पाठ अपनी ही भाषा में पचाते रहे। तब पारिभाषिक शब्दों में विदेशी अंग्रेजी का बाहुल्य था। ये शब्द रोमन लिपि में लिखे जाते थे। अब इनकी बहुत ही कमी हो गई है; परन्तु अब भी इनका थोड़ा-बहुत प्रयोग जारी है। यही यहाँ भी होना चाहिए था।

देश में चालू शिक्षा प्रणाली विदेशी अंग्रेजी ही की देन है। वे संख्या में कम थे, क्योंकि यहाँ का उष्ण प्रधान जलवायु उन्हें पसन्द न था और हम संख्या में उनसे बहुत अधिक भी थे। अतएव उन्हें ऐसे भारतीय कर्मचारियों का सहारा लेना पड़ा जो उनकी भाषा बोल सकते और धर्म तथा रूप-रंग में उनसे भिन्न होकर भी उनके भक्त बन सकते। भारतीय शिक्षा प्रणाली की इस व्युत्पति में सत्रह वर्ष के काल में भी अभी तक कोई आंशिक भेद नहीं हो पाया है। तब अधिकारी अंग्रेज थे। अब भारतीय हैं। परन्तु जन साधारण के प्रति अविश्वास पर आधारित प्रशासनिक ढाँचा प्राय: वही है जो अंग्रेजों से विरासत के रूप में हमारे गले लगा है। सर्वोच्च नौकरियों के लिए होनहारों की सर्वोच्च शिक्षा पर माता–पिता की जिस प्रकार रकम तब लगती थी, वही कैफियत प्राय: अब भी है। तब सर्वोच्च नौकरियों के लिए अंग्रेजी के माध्यम से प्रत्याशियों को परीक्षा देनी होती थी, सो उत्तारों का माध्यम अब भी अंग्रेजी है, यद्यपि इस भारतीय अंग्रेजी का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। **शिक्षण क्षेत्र में अंग्रेजी के प्रति मोह का आँशिक कारण यही है।**

हमें स्वतन्त्र होने का गर्व है और हम सत्रह वर्ष से स्वतन्त्र हैं। अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह स्वाभाविक है; क्योंकि मानसिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति राजनैतिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा सदैव ही कठिन रही है। परन्तु अब तो राष्ट्रों की विरादरी में बहुत से राष्ट्र हैं और हम अपने राष्ट्र को उन्नतिशील राष्ट्रों की श्रेणी में मानते हैं; तो देश के सारे नेतृत्व को, विशेष रूप से अहिन्दी भाषी राज्यों के नेतृत्व को, भारत के बाहर ऐसे राष्ट्रों की खोज करनी है जो अपने ही अन्तर्गत किसी भाषा को राष्ट्रीय मान्यता न देकर सात समुद्र पार की भाषा को राष्ट्रीय मान्यता दिये हुए हों। कनाडा, स्विटजरलैंड और रूस के उदाहरण हमारे सामने हैं। कनाडा में पहले फ्रान्सीसी बसे थे और देश पर उनका राज था। फिर अंग्रेजों का अधिकार हुआ और वे बसने लगे। यों वहां दो भाषाओं का चलन है जो एक-दूसरी की सगी बहिनें ही हैं। छोटे-से पहाड़ी, समृद्ध और सुरक्षित स्विटज़रलैंड में फ्रान्सीसी, जर्मन और इटालियन भाषी जन बसे हैं, तो वहाँ स्विस भाषा के अतिरिक्त इनका भी प्रयोग होता है, किसी सुदूर देश की भाषा का नहीं। रूस के अन्तर्गत कई

राज्य हैं जिनकी अपनी भाषाएँ हैं। परन्तु सभी भाषाओं की एक लिपि और सभी रूसी पढ़, लिख और बोल लेते हैं। राष्ट्रीय महत्व के काम रूसी भाषा ही के माध्यम से होते हैं।

जागरूक चीन की चिन्ता से हमें अपनी मुक्ति असम्भव दीख पड़ने लगी है, क्योंकि उसके भारत-विरोधी शक्ति-संचय से हमारा सदैव का प्रहरी भी अरक्षित हो गया है। उस विशाल देश में एक भाषा नहीं तो उसकी दुरूह लिपि ही पूरे राष्ट्र पर छाई हुई है। उत्तर के चीनी दक्षिण के चीनियों की बोली नहीं समझते। परन्तु अपनी भाषा में लिपि को सभी समझ लेते हैं। चीनी पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का वहां राष्ट्रव्यापी प्रचार है।

किसी ओर से और कभी भी किसी क्षेत्रीय भाषा और उसके साहित्य के विरुद्ध कोई बात नहीं कही गई। तामिलनाडु में जो अग्निकांड प्रज्वलित हुआ, उसमें तामिल की जय के नारे लगाये गये, परन्तु देश के बहुत से प्यारे होनहार अंग्रेजी ही के लिए स्वाहा किये गये और इस राष्ट्र-विरोधी अग्नि के प्रज्वलित करने वाले थोड़े-से राष्ट्र-विरोधी नेता ही थे। गान्धी जी स्वर्गीय हैं, उनके भौतिक उत्तराधिकारी नेहरू जी भी स्वर्गीय हैं। परन्तु देश के सौभाग्य से राष्ट्रपिता के मानस-पुत्र विनोवा जी अभी तक जीवित हैं। उनके अनशन से देश का उन्माद समाप्त हुआ है, तो हमें ठंडे दिमाग से राष्ट्रसेवा के अग्रिम क्रम निश्चित करने हैं।

देश में बहुत सी भाषाऐं चालू हैं। इनका अस्तित्व ही नहीं बना रहना है इनके साहित्य का विकास भी होते रहना है, तो हिन्दी भाषियों को अंतर्मखी होकर वे सेवा-मार्ग अपनाने हैं जिनसे अहिन्दी भाषी देशबन्धु हिन्दी को अपनी भाषा मानने लगें। हिन्दी भाषी विद्वानों को अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं की निधि से तो हिन्दी साहित्य भंडार भरते रहना है ही, उन्हें अधिकाधिक संख्या में क्षेत्रीय भाषाओं और उनके साहित्य से भी आत्मसात् होते रहना है। तभी हिन्दी के व्याकरण और शैली में वे परिवर्तन होने लगेंगे जिनके कारण अहिन्दी भाषी भारतीयों को हिन्दी सीखना-बोलना सरल जान पड़ने लगेगा।

साथ ही हमें वस्तुस्थिति भी याद रखनी है और वह यह है कि जब तक सर्वोच्च नौकरियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी को माध्यम की मान्यता नहीं मिलती, तब तक सर्वोच्च शिक्षा के मन्दिरों में हिंदी का प्रवेश न हो सकेगा; और इन मंदिरों में हिंदीं का प्रवेश पाना कठिन होगा यदि हिंदी में ऊँचे स्तर और कम दाम की पाठ्य पुस्तकें सर्वोच्च कक्षाओं के लिए

तैयार नहीं की जातीं। भारतीय विश्वविद्यालयों की संख्या इस समय साठ से ऊपर है। इनमें ३० से कुछ कम हिंदी भाषी राज्यों के अन्तर्गत हैं। यदि इन विश्वविद्यालयों के विद्वान एक-दूसरे से मिल कर पाठ्य-क्रमों का यथा-सम्भव समानीकरण करते हुए पारिभाषिक शब्दों के पचड़े में न पड़ कर विभिन्न विषयों पर सर्वोच्च कक्षाओं के लिए हिंदी में पाठ्य पुस्तकों की तैयारी पर जुट जांय और इनके लाभमुक्त प्रकाशन की व्याख्या हो, तो पाँच वर्ष के भीतर पाश्चात्य व्युत्पत्ति के अधिकांश विषयों पर ऊँचे स्तर और कम दाम की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें तैयार हो जायँगी। यों विदेशी प्रकाशनों पर हमारे देश से जो रकम प्रतिवर्ष जाती रहती है, उसमें राष्ट्र की बचत होगी और अहिन्दी भाषी राज्यों में भी अभिभावकों पर अपने होनहारों की पढ़ाई का भार किंचित हल्का हो सकेगा। इस सेवा-क्षेत्र का नेतृत्व करने के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन पहले ही से है। परन्तु उक्त संस्था शिक्षकों की नहीं और भारतीय शिक्षक संघ देश के सभी शिक्षकों की संस्था है। तो राष्ट्रीय नीति के अनुकूल और राष्ट्रीय शासनों के सक्रिय सहयोग से इस राष्ट्रीय सेवा के लिए इसे आगे आना चाहिए।

बढ़ती महंगाई और शिक्षकीय प्रदर्शन :

बढ़ती महंगाई के भीषण राष्ट्रीय रोग का निदान हमें उस शैक्षिक नीति में मिलता है जो स्थिति परिवर्तन होने पर भी जहां की तहां है। यहां निदान की व्याख्या का अवसर नहीं जब शिक्षक वर्ग भोजन के अभाव से त्रस्त होने लगा है। परन्तु राष्ट्र के लिए यह खेद की बात है, और शिक्षक वर्ग के लिए असीम लज्जा की, कि नीति-निर्माता प्रदर्शन ही देख पाते हैं और अधिकांश शिक्षक वंधु प्रदर्शन के विरोधी होते हुए भी प्रदर्शन समारोहों में सम्मिलित होने के लिए विवश हो गये हैं। कुचक्र चालू है। महंगाई घटती नहीं दिखती, प्रदर्शन बिना नीति-निर्माता संकट की स्थिति देख नहीं पाते और शिक्षण-सेवा की देश में जो परंपरा रही है उसकी जन साधारण में थोड़ी-बहुत मान्यता के अभी तक बने रहने के कारण शिक्षकों द्वारा सामूहिक प्रदर्शनों से उनका मान घटता है। इस कुचक्र से मुक्ति का विकल्प यही है कि जनता के प्रतिनिधि एक-साथ बैठ कर वे आर्थिक मार्ग ढूँढ़ें जिनसे शिक्षक आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी पुनीत सेवा में संलग्न रह सकें। हल के एक पक्ष पर ध्यान दिया जाता है कि करदाता पर भार बढ़ाया जाय और शिक्षकों का वेतन बढ़े। परन्तु इस पक्ष पर ध्यान नहीं दिया जाता कि जितनी फीस देकर आज से पचास वर्ष पहले विद्यार्थी पढ़ते थे; वह गणना में अभी तक ड्योढ़ी ही हो पायी है, यद्यपि गुण में वह अब तब

की अष्टांश भी नहीं है। निःशुल्क शिक्षा का विस्तार बढ़ाया जा रहा है प्रारंभिक कक्षाओं के ऊपर निःशुल्क शिक्षा का क्रम आगे बढ़ रहा है लड़कियों कीं पढ़ाई हाई स्कूल तक निःशुल्क कर दी गई है। यह बहुत अ बात होती यदि साथ ही पढ़ाई का स्तर न घटता। परन्तु एक ओर प निःशुल्क होती है और दूसरी ओर माता-पिता देखते हैं कि उनके होनहारों बहुमूल्य समय की बरबादी होती है, तो अधिकांश माता-पिता निःशुल्क शि को राष्ट्रीय शासन का वरदान मानने के लिए तैयार नहीं होते। समस्या इस पक्ष पर भी गम्भीर चिंतन तथा निर्णय वांछनीय है।

इस अंक में :

इस अंक का भी श्रीगणेश आर्शीर्वचनों से हुआ है। इसके अधिकांश पाठ्य सामग्री पाठकों के लिए प्रेरणादायक है या विचारोत्तेजक श्री देव गौड़ केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में परीक्षा प्रणाली के विशेषज्ञ हैं। इ हमें ज्ञात होता है कि परीक्षेय चिंतन स्तर पर देश में इस समय क्या हो र है। दूसरे लेख से इस कठिन समय हमें अपने पाँच पूवर्जों के पद-चिह्नों चलने की प्रेरणा मिलती है। तीसरे लेख का विषय शिक्षा मन्त्रालय के पर विचारणीय है। फिर हमें लखनऊ की विदुषी लेखिका से नारी शि समस्या की भूमिका मिलती है। आशा है आगे पाठकों को उनसे समस्या व्यवहारिक पक्षों पर भी लेख मिलेंगे। शिष्यवर गौरीशंकर जी अपनी शै द्वारा एक सामयिक महत्व के विषय पर अपने विचार प्रकट करते हैं। इ आगे दो योजनाएं हैं जिन पर पाठकों की प्रतिक्रिया अपेक्षित है, क्योंकि दो का सामयिक महत्व है। भारतीय शिक्षा आयोग के अस्तित्व को इस सम केन्द्रीय महत्व प्राप्त है। उससे हमें बहुत सी आशायें हैं। आयोग के अ विज्ञान के प्रकांड पंडित हैं, तो उद्घाटन के अवसर इनके द्वारा व्यक्त कि किये गये विचार पहली बार हिंदी के माध्यम से पाठकों के सामने आ हैं। अन्तिम परिच्छेद विशेष महत्व का है और आयोग के लिए चुनौती समान है। प्राध्यापक शम्सुद्दीन से पाठक परिचित हैं ही। इस अंक में सामयिक महत्व के विषय पर इनका एक लेख है। इसके आगे पहले परिचित श्री रमेश चन्द्र शर्मा का दूसरा लेख है जो पहले अंक में प्रका लेख का पूरक है। अंक के अन्त में कतिपय स्तम्भ हैं। शैक्षिक समा समुच्चय नया स्तंभ है जिसे प्रत्येक मास प्रकाशित होना चाहिए। तत्पश्चा इन्दौर सम्मेलन के प्रस्तावों का हिंदी अनुवाद प्रकाशित है। सभी शिक्ष और नीति निर्माताओं के लिए ये प्रस्ताव विचारणीय हैं।

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

१—विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
२—क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
३—भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
४—प्रधान का पत्र
५—अभिभावकों का समस्या-समाधान
६—शिक्षक प्रशस्ति
७—कक्षागत समस्या
८—पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
९—शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा

* * *

विशेषांक योजना

१—स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
२—विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)
३—विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
४—विदेशों में शिक्षक संघ
५—विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
६—प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था (मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
७—विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
८—विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
९—नारी-शिक्षा
१०—हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
११—शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० वी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल लाइन्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, भारतीय शिक्षक संघ, झा–शेषाद्रि–खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर के द्वारा प्रकाशित।

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लि या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने प लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। ले भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ–३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र–पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

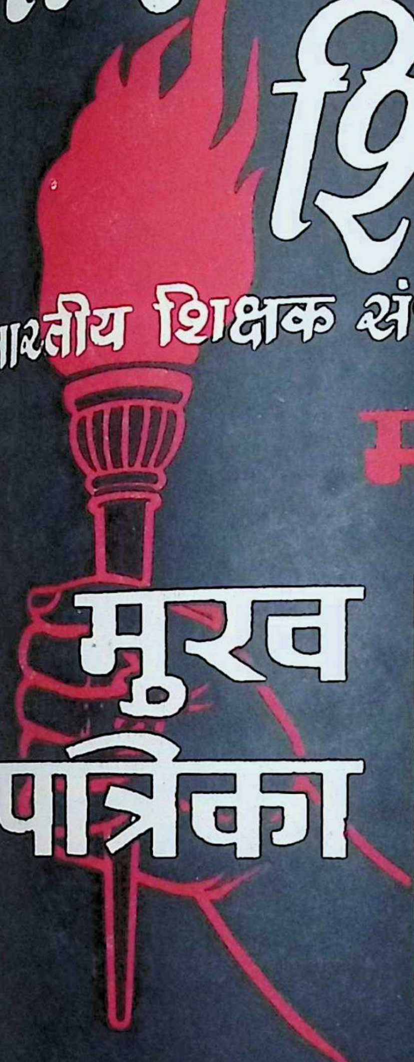

मार्च, १९६५

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation of Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा करता आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो चार वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आपकी सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक ही सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हममें से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूसरा (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का दूसरा अंक है। पहला पिछले गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हो चुका है। जिस भावना और उद्देश्य से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्वयं और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदान दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार के अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

631-3
15-12-65

भारतीय शिक्षा

76257

भारतीय शिक्षक संघ की
मासिक मुख-पत्रिका

प्रथम वर्ष ● मार्च, १९६५ ● तृतीय अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–**अध्यक्ष**–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत सदस्य
३–**असम**–तीर्थनाथ शर्मा
४–**आंध्र**–डा० भीमसेन निर्मल
५–**उड़ीसा**–राधाकान्त मिश्र
६–**कश्मीर**–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–**केरल**–ए० चन्द्रहासन
८–**गुजरात**–जेठालाल जोशी
९–**पंजाब**–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–**बंगाल**–मोहितकुमार बनर्जी
११–**बिहार**–श्यामजी सिंह
१२–**मद्रास**–डा० शं० ना० गनेशन
१३–**मध्यप्रदेश**–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–**महाराष्ट्र**–प्र० रा० भूपटकर
१५–**मैसूर**–ना० नागप्पा
१६–**राजस्थान**–शंकरसहाय सक्सेना
१७–**सम्पादक : सचिव**–कालिदास कपूर

भारतीय शिक्षक संघ
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

●

पृष्ठ

१—दो आशीर्वचन … … … … ३

२—विनोबा के वचन … … … … ४

३—विद्यालय और समाज—डा० सरयूप्रसाद चौबे … … ७

४—संयुक्त राज्य में शिक्षा—श्री शम्सुद्दीन … … १६

५—आज और कल की एक झलक—पाँडेय सीताराम प्रसाद … २४

६—क्रियात्मक शोध—डा० सीताराम जायसवाल … … २७

७—लाल चीन में शिक्षा की प्रगति—चायना रिपोर्ट से साभार … ३२

८—शिक्षक और उनका प्रशिक्षण—श्री प्रभाकर रायज़ादा … ३७

९—मुदर्रिस की बात—'अकिंचन नाग़रिक' … … ४२

१०—सार्वजनिक परीक्षाएँ और उनका विकास—श्री कालिदास कपूर … ४६

११—ग्राम्य-शिक्षा की समस्यायें—श्री विमल कुमार … … ५७

१२—कश्मीर में मैट्रिकुलेशन और हायर सेकंडरी शिक्षा का समन्वय —श्री पृथ्वीनाथ राज़दान … ६०

१३—पिछले अंक में प्रकाशन सहकारी गुरुकुल योजना पर आलोचना —श्री भ० रा० श्रीमाली … ६३

१४—शैक्षिक समाचार समुच्चय: फरवरी—'संजय' … … ६४

१५—संस्कृत से अरुचि क्यों ?—पं० गोपीलाल अमर … … ६९

१६—संपादकीय … … … … … ७६

दो आशीर्वचन

(भारतीय शिक्षक संघ के निर्माता स्व० अमरनाथ झा के अनुज और भारतीय सूचना मंत्रालय के सचिव डा० आदित्यनाथ झा)

भारतीय शिक्षा के दोनों अङ्कों को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। खेद की बात है कि अभी आपको यथेष्ट संख्या में हिन्दी के लेख नहीं मिल रहे हैं।

* * *

(शिक्षण सेवा को समर्पित दिनचर्या अपनाये सहपाठी स्व० लक्ष्मीनारायण माथुर के सुपुत्र और खाद्य तथा कृषि मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री जगदीशचन्द्र माथुर)

'भारतीय शिक्षा' के प्रथम अङ्क की प्रति मिली। मेरी बधाई स्वीकार कीजिये। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका सच्चे अर्थ में आपके फेडरेशन का सामान्य शिक्षकों से सम्पर्क स्थापित करने में सफल होगी। अब तक फेडरेशन की पहुंच अंग्रेजी जानने वाले और विशेष स्तर के अध्यापकों तक ही थी। किन्तु हम लोग शिक्षा के विकासोन्नति आदर्शों को जब तक साधारण विद्यालयों में काम करने वाले अध्यापकों तक नहीं पहुंचायेंगे तब तक हमारी शिक्षा का स्तर ऊँचा नहीं होगा। इसलिये हिन्दी में प्रकाशित होने वाली आपकी पत्रिका नूतन तथा विकासशील विचारधारा को सभी वर्ग के शिक्षकों तक पहुंचाकर हमारी शिक्षा प्रणाली को नये क्षितिज दे सकेगी।

विनोबा के वचन

[राष्ट्रपिता के श्राद्ध-दिवस पर उनके मानसपुत्र संत विनोबा द्वारा अनिश्चित काल के लिये अनशन घोषणा का पवनार (वर्धा) आश्रम में प्रारम्भिक भाषण ।]

मेरे प्यारे भाइयो ! आज का दिन स्वाभाविक ही मानसिक चिंतन का दिन है । तो आज मौन तोड़ने की प्रेरणा नहीं थी । लेकिन दो-तीन घंटे पहले यह प्रेरणा मुझे हुई और लगा कि मेरे हृदय की वेदना आप लोगों के सामने प्रकट करूँ ।

सत्रह साल पहले गांधी जी का बलिदान हुआ । तब हिन्दुस्तान में जिधर देखो उधर दंगे हुए थे और हिंसा का जोर चल रहा था । गांधी जी के बलिदान ने उसको कुछ शांत किया । ऐसे महापुरुष के बलिदान का असर चंद मिनिटों, चंद घंटों में या चंद वर्षों में नहीं गिना जाता । उसका असर सैकड़ों साल तक चलता है और सैकड़ों साल के बाद गिना जाता है । आज सत्रह साल के बाद हिंदुस्तान में उसी प्रकार की अशांति और हिंसक मनोवृत्ति जगह-जगह दीखती है । खास कर के तामिलनाड में जो चला है— वह केवल नासमझी है, लेकिन जो हिंसक आंदोलन चला है उससे मेरे हृदय को अत्यन्त वेदना हुई । उस आंदोलन के लिये गलतफहमी के सिवा और कारण नहीं था ।

हिंदी लादी नहीं जा रही थी, इंगलिश को हटाया नहीं जा रहा था । प्रांतिक भाषाओं के लिये कोई खतरा नहीं था । नौकरी में भी किसी प्रकार का दखल उससे होने वाला नहीं था । पंडित नेहरू ने वैसा वचन दिया था और आज हमारे प्रधान मन्त्री वगैरह उस वचन पर खड़े हैं । इसको कानून में दाखिल किया है और इंगलिश असोसिएटेड लैंग्वेज Associated Language के तौर पर मानी जायगी । यानी बराबरी के तौर पर रखा गया है, जब तक उसकी ज़रूरत है । उसकी जरूरत कब तक है । उसका निर्णय हिंदी भाषा वाले नहीं करेंगे, अहिंदी भाषावाले करेंगे । इसमें किसी प्रकार की जबर्दस्ती नहीं । लेकिन उसको लेकर एक हिंसक आंदोलन चला ।

विद्यार्थी जोशीले होते हैं । उनके सामने भविष्य के चित्र होते हैं । अगर उनको अच्छा रास्ता मिला, अच्छी धारणा हुई तो वे उसको पकड़ लेते

हैं और गलत धारणा हुई, गलत रास्ता मिला तो उसको पकड़ लेते हैं। उनको तो मैं दोष नहीं देता। लेकिन कुल वातावरण में हिंसा भरी है, वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट होती है। उससे मुझे वेदना हुई। उस पर मेरा चिंतन चलता रहा और अन्दर से प्रेरणा हुई।

मैंने मौन रखा; तब से मैंने अपने को ईश्वर के हाथों में सौंपा है। जो कुछ प्रेरणा होती है वह ईश्वर से ही होती है। मैंने तय किया है कि आज के मंगल दिन की स्मृति में मैं अनशन शुरू करूँ। यह मेरा अनशत वेमुद्दत रहेगा। जब तक चित्त को शांति नहीं मिलती तब तक रहेगा। मैंने अपने को उस पर सौंप दिया है। मैं कुछ नहीं जानता।

हिंदुस्तान के लोग जानते हैं कि सब भाषा पर मेरा प्रेम है। जहाँ कोई भाषा सीखने का मुझे मौका मिला, प्रेम से सीखने की कोशिश की है। तामिल भाषा भी सीखी है और मैं जानता हूं कि कितना महान, आध्यात्मिक साहित्य उसमें पड़ा है। ऐसी दूसरी भाषायें भी हैं। मुझे तामिल के लिये और दक्षिण की भाषाओं के लिये उतना ही प्रेम है जितना मराठी या हिंदी के लिये है। मराठी मेरी मातृभाषा है, लेकिन में उसको मानता हूं ज्ञानदेव, तुकाराम की भाषा और इसलिये मुझे मराठी के लिये प्रेम है। वैसे ही हिंदी को मैं मानता हूं— तुलसीदास, कबीर की भाषा और इसलिये मुझे हिंदी के लिये प्रेम है। हिंदी तुलसीदास, कबीर की भाषा है। इसलिये उसका प्रचार प्रेम से करना चाहिये और उसी प्रकार से हो रहा है, ऐसा मैं मानता हूं।

अभी शिक्षा मन्त्री श्री छागला जी मुझे मिलने के लिये आये थे। मेरा मौन था, अतः मेरी उनसे मुलाकत लिखित ही हुई। तो मैंने लिख दिया कि अल्टिमेटली— आखिर में हिंदी होगी— जोड़ भाषा (लिंक लैंग्वेज) लेकिन धीरे-धीरे होगी। तब तक इंगलिश की मदद लेनी पड़ेगी और यह मदद 'Ungrudgingly' बिना हिचकिचाहट लेनी पड़ेगी। इंगलिश के लिये भी मेरा प्रेम है और इतना ही नहीं; मैं मानता हूं इंगलिश के साथ-साथ योरोप की और भाषा भी सीखनी चाहिये, इंगलिश बहुत परिचय करवाती है दुनिया का, लेकिन वह एक खिड़की है। वह दुनिया को पूरा दिखाती नहीं। इसलिये दूसरी भाषायें जर्मन, फ्रेंच सीखना चाहिये। फ्रेंच तो मैं कालेज में सीखा था। जर्मन भाषा यात्रा में सीखा। बाद में युगोस्लेव्हिया के एक भाई आये थे, उन्होंने कहा कि ये अलग-अलग भाषा सीखने के बदले एक एस्परेंटो सीख लेना चाहिये, तो उन्होंने एक भाई को भेजा। वह १८ दिन

यात्रा में रहा और मुझे कुछ एसपरेंटो सिखायी । कल जापान के कुछ लोग मुझे मिलने के लिये आये थे । उनको मैंने कहा कि इमहिसोंग जापान के साधु पुरुष हैं । वे मेरी यात्रा में आये थे । उन्होंने मुझे जापानी सिखायी थी । लेकिन अब मैं भूल गया । तो अगर कोई मुझे सिखाये तो मैं सीखना चाहता हूं । चीनी भाषा भी सीखना चाहता हूं । सब भाषाओं पर मेरा प्रेम है । मैंने परशियन और अरबी का भी अध्ययन किया है । हिंदुस्तान के सब लोग जानते हैं कि मुझे सब भाषा के लिये प्रेम है । हिंदी-भाषी लोगों को मैं कहूंगा-हिंदी, तुलसीदास, कबीर की भाषा है । उसका प्रचार प्रेम से होगा । और आपको थोड़ा आलस छोड़ कर—हिंदी भाषा वाले होते हैं थोड़े आलसी—दक्षिण की एकाधी भाषा ज़रूर सीखना चाहिये । इसी तरह से प्रेम से प्रचार होगा ।

त्रिसूत्री निर्णय

उपर्युक्त अनशन पाँच दिन पश्चात् १७ फरवरी को विनोबा जी ने समाप्त किया जब उन्हें केन्द्रीय शासन तथा सभीं राज्यों के मुख्य मंत्रियों से नीचे लिखे त्रिसूत्री निर्णय को मान्यता प्रदान करने का वचन दिया गया :—

(१) भाषा-विवाद के सिलसिले में हिंसात्मक कार्य न किये जायँ ।

(२) अहिंदी भाषियों पर हिंदी न लादी जाय ।

(३) हिंदी भाषियों पर अंग्रेजी न लादी जाय ।

मैं आज दुःख से बोल रहा हूं । मुझे लगा जो मन में संकल्प हुआ है, उसको आज के दिन पर आपके सामने प्रगट करूँ । उसके लिये महात्मा गांधी साक्षी हैं और भगवान साक्षी है । मैंने अत्यन्त प्रेम भाव से इसको स्वीकार किया है । यह मैंने अपनी ओर से नहीं किया । मुझे आज्ञारूप से प्रेरणा मिली । मेरे पास के लोग जानते है कि में उपवास के खिलाफ हूं और इन सत्रह सालों में मैंने किसी भी उपवास का समर्थन नहीं किया । इन दिनों मेरा मौन चल रहा है । तो अपनी हविस से और अहंकार से मैं उपवास करूँ, यह शक्य नहीं हो सकता । यह मुझे भगवान की ओर से आज्ञा मिली ।

विद्यालय और समाज

(डा० सरयूप्रसाद चौबे, प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय)

समाज किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर एक नहीं हो सकता, क्योंकि, विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त होने के अनुसार इसकी परिभाषा भी विभिन्न प्रकार से की जा सकती है। यहाँ समाज से हमारा तात्पर्य उस जनसमुदाय से है जो एक ही भौगोलिक सीमा के भीतर बसता है और कुछ सामान्य अनुभव तथा सामान्य संस्कृति से सम्बद्ध होता है। अतः सर्वसाधारण के हित के लिए कुछ संस्थाओं को जन्म देकर उन्हें चलाने वाला, अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने को संगठित कर एक इकाई के रूप में कार्य करने वाला जन-समुदाय ही समाज कहलाता है ।

समाज का निर्माण

समाज का निर्माण-कर्ता स्वयं मनुष्य ही है। मनुष्य ने अपनी आवश्यंकताओं की पूर्ति, हितों की रक्षा तथा अधिक सुरक्षित रहते हुए अपना कार्य सुचारु रूप से चलाते रहने के लिए समाज का निर्माण किया है। समाज का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे की भावना को समझे, उसमें रुचि रक्खे तथा एक ही सूत्र में अपने को बंधा हुआ पाये, तभी समाज भली प्रकार चल सकता है।

समाज का क्षेत्र

समाज का क्षेत्र असीमित है। दो व्यक्तियों से लेकर सारे विश्व तक का समावेश समाज में हो सकता है। गाँव से जिला, जिले से राज्य, राज्यों से राष्ट्र तथा राष्ट्रों का संगठन एक विश्व समाज का सृजन कर सकता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी व्यवसाय का हो, अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए समाज के आदर्शों के अनुसार चलता हुआ अपना कार्य कर सकता है।

बालक की शिक्षा में समाज का स्थान

हम यह कह चुके हैं कि मनुष्य ने अपने हितों की रक्षा और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समाज का निर्माण किया। अतः व्यक्ति

पर समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। मनुष्य को सामाजिक आदर्शों तथा परम्पराओं का पालन करते हुए उसके प्रभाव से अपने को उसी के अनुसार बनाना पड़ता है। व्यक्ति न तो सामाजिक नियमों की अवहेलना ही कर सकता है और न समाज से पृथक रह कर अपना जीवन ही व्यतीत कर सकता है। यही कारण है कि समाज व्यक्ति की शिक्षा के लिए विद्यालय, कुटुम्ब तथा राज्य आदि सामाजिक संस्थाएं संगठित करता है।

बालक की तुलना हम एक पौधे से कर सकते हैं जो अपने वातावरण के अनुसार ही पनपता है। बालक का विकास वातावरण में होता है। अतः उसके विकास के अनुकूल अच्छा वातावरण उसे कुटुम्ब तथा विद्यालय में मिलना आवश्यक है। आज का बालक कल का नागरिक होगा। अतः एक गणतन्त्र राज्य में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा बालक के प्रति अपने कर्तव्य पालन करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार समाज एवं राज्य दोनों ही पर बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व है।

कुटुम्ब व विद्यालय का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह बालक को उस वातावरण में विकास करने का अवसर दे जिसमें उसका जीवन सफलता की ओर अग्रसर हो सके। बालकों को सामाजिक भावना देने के लिए यह आवश्यक है कि उसका वातावरण ही ऐसा बनाया जाय कि उसमें आवश्यक सामाजिक गुण आ जायँ।

समाज और व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध

अधिकार व कर्तव्य की भाँति समाज और व्यक्ति में घनिष्ट सम्बन्ध है। समाज क्या है और व्यक्ति क्या है? क्या कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध नष्ट हो जाय? यह असम्भव है, क्योंकि व्यक्ति या नागरिक ही समाज के सदस्य बनते हैं। फिर यह भी स्पष्ट है कि जिस प्रकार के नागरिक होंगे, उसी तरह का समाज होगा। “आज का बालक भविष्य का नागरिक है” और इसीलिए समाज का यह परम कर्तव्य है कि वह उस वातावरण और उन सुविधाओं को सुलभ बनाये जिनमें बालक का चरित्र निर्माण सम्भव हो सके। पुष्प की भाँति विकसित होने के लिए आवश्यक है कि बालक स्वतन्त्र वातावरण में अपना विकास करे।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज किस प्रकार के वातावरण को विकसित करने में सहायता दे और किस वातावरण से अपने को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करे। वास्तव में यह प्रश्न बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि कोई

भी नागरिक समाज से अलग रह कर अपना चरित्र निर्माण नहीं कर सकता । इसलिए आवश्यक है कि समाज में स्वतन्त्रता व समानता के बीज हों, नागरिकों में चारित्रिक बल हो; और वह वातावरण हो जिसमें उदारता, सहयोगिता एवं भ्रातृ-भावना के गुण प्रत्येक नागरिक को सुलभ हो सकें जिससे समाज पतन के पथ से दूर रह कर उत्थान के उज्जवल मार्ग पर गर्व से बढ़ सके ।

विद्यालय और समाज का सहयोग

बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि समाज के विभिन्न अंगों में सहयोग हो; अन्यथा बालक के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना कभी सम्भव न हो सकेगा । विद्यालय और समाज में और विद्यालय और कुटुम्ब में सम्बन्ध होना चाहिए । परन्तु खेद है कि हमारी वर्तमान शिक्षा इस उद्देश्य को भूल गई है । स्कूल के वातावरण व सामाजिक वातावरण में भारी अन्तर है । इस प्रकार, आज का विद्यार्थी अपने को उपयुक्त वातावरण में नहीं पाता । यदि विद्यालय को समाज का प्रतिनिधित्व करना है तो यह आवश्यक है कि विद्यार्थी को विद्यालय में वही वातावरण मिले जो उसे समाज में मिल रहा है । यदि यह नहीं सम्भव हो सका तो शिक्षा का उद्देश्य पूरा न हो पायेगा । परन्तु खेद है कि अपने देश में विद्यालय आज भी समाज का अंग नहीं बन सका है ।

अब हमें विचार करना है कि विद्यालय और समाज की वर्तमान विषमता किस प्रकार दूर की जा सकती है ? विद्यालय समाज के एक अंग के रूप में उसके उत्थान की एक संस्था है । विद्यार्थी तथा उनके अभिभावक समाज के सदस्य होते हैं और इन सदस्यों की कौटुम्बिक एवं सामाजिक समस्याओं का प्रभाव विद्यालय के वातावरण पर पढ़ना अवश्यम्भावी है, परन्तु विद्यालय के वातावरण की कृत्रिमता इस प्रभाव पर आवरण डाल कर विद्यालय को समाज का एक आन्तरिक अंग अथवा प्रतिनिधि बनाने में बाधक होती है । इसका मुख्य कारण विद्यालयों में बालकों को ऐसे विषयों की शिक्षा का न दिया जाना है जो कि उनके वास्तविक जीवन एवं उनकी आवश्यकताओं से सम्बन्धित हैं । इस प्रकार विद्यार्थियों में स्वावलम्बन की क्षमता नहीं होती और उन्हें शिक्षोपरान्त बेकारी का सामना करना पड़ता है ।

अतएव विद्यालय को समाज का सान्निध्य प्राप्त करना अत्यावश्यक है । समाज के सम्पर्क में रह कर ही समाज को स्वावलम्बी एवं आत्मविश्वासी

बनाने में सफलता प्राप्त हो सकती है। विद्यालय के कार्यक्रमों का बाह्य समाज की समस्याओं और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का सहायक होना आवश्यक है। इसी प्रकार अभिभावकों को भी विद्यालय तथा उसके कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आना चाहिए। यह सम्पर्क स्थापित करने के लिए कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे विशेष अवसरों पर अभिभावकों को आमन्त्रित करके विद्यालय की गतिविधि, कार्य प्रणाली एवं वातावरण से उन्हें परिचित करा कर उनकी रुचि संस्था की ओर आकर्षित करें जिससे वे विद्यालय को अपने बौद्धिक, सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण केन्द्र मानने के लिए उत्सुक हो जावें।

विद्यालय और समाज में घनिष्ठता दो रीतियों से स्थापित की जा सकती है :—

१—विद्यालय को सामाजिक जीवन का केन्द्र बना कर।

२—विद्यालय को समाज में लाया जाय अर्थात् विद्यालय के अधिकारी शिक्षक और छात्र समाज में आकर अपनी शिक्षा से समाज को लाभान्वित करें।

पहली विधि के अनुसार विद्यालयों को सामाजिक त्यौहारों, उत्सवों, समारोहों एवं सांस्कृतिक कार्यों का आयोजन करना चाहिए जिससे जनसाधारण की सद्भावना और श्रद्धा पाकर वे उनका नेतृत्व कर सकें जैसा कि प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा केन्द्रों को यह गौरव प्राप्त था। आज के विद्यालयों की स्थिति ठीक विपरीत है। विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली के दोषपूर्ण होने के कारण समाज इससे पूर्णतया उदासीन है। अतः इन दोषों के निवारणार्थ विद्यालयों को सामाजिक जीवन का केन्द्र बनाना आवश्यक है।

दूसरी विधि के अनुसार अध्यापकों और विद्यार्थियों को समाज के समक्ष विद्यालयों की उपयोगिता प्रकट करके उनका सम्पर्क एवं सहानुभूति प्राप्त करनी है। इस प्रकार वे समाज की गतिविधि से परिचित होकर समाज के हितार्थ समाज सेवा की भावना से प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

हमारे देश की अधिकांश जनता अशिक्षित होने के कारण भारतीय गणतन्त्र एवं उसके समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों से अनभिज्ञ है। अतः देश की उन्नति के लिए सम्पूर्ण जन को शिक्षित अर्थात् उनको अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व से भली भांति परिचित कराना अत्यन्त आवश्यक है। यह महत्वपूर्ण कार्य विद्यालयों द्वारा ही सम्पादित किया जा सकता है, क्योंकि स्कूलों में प्रत्येक नागरिक अपनी बाल-सुलभ, सरल, कोमल भावना लेकर

जाता है। उसे उस समय सुगमता से समाज तथा देश के अनुसार मोड़ कर कर्तव्य एवं अधिकार की भावना जागृत की जा सकती है। सर्व प्रथम बालकों में यह भावना उत्पन्न करनी है कि विद्यालय समाज का अविभाज्य अंग और समाज की उन्नति का महत्वपूर्ण केन्द्र है। ऐसी भावना तभी बालकों में उत्पन्न की जा सकती है जब विद्यालय का पाठ्यक्रम सम्बन्धित समाज तथा उनके जन-जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार विस्तृत हो और उनके वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हो। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली जब जन-साधारण के जीवन की आवश्यकताओं तथा समस्याओं के सुलझाने में सहायक हो सकेगी, जनतन्त्र सफल होगा और देश उन्नति कर सकेगा।

समाज का शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्व

जिस प्रकार विद्यालय और समाज का इस प्रकार समन्वय होना आवश्यक है कि विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि सामाजिक गतिविधियों के समानान्तर हो, उसी प्रकार समाज का भी यह कर्तव्य है कि शिक्षा की सर्वांगीण उन्नति के लिए वह एक संस्था के रूप में सदैव रत रहे। समाज का पहला कर्तव्य बालकों के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जो उनके मानसिक विकास के साथ-साथ उन्हें आत्म-निर्भर बनाने के लिए, कलाकौशल की शिक्षा देकर उनकी व्यावसायिक बुद्धि का भी विकास करे। इस प्रकार बच्चों की आत्म-निर्भरता उनके परमार्थ की भावना को प्रेरणा प्रदान करेगी।

शिक्षा प्रणाली के दोषयुक्त होने के परिणामस्वरूप आज के पढ़े-लिखे व्यक्ति शारीरिक परिश्रम को हेय समझ कर अपने दैनिक जीवन के छोटे-छोटे कार्यों को करने में झिझकते हैं। यही कारण है कि भारत कृषि-प्रधान देश होते हुए भी अपनी आवश्यकतानुसार भी अन्न नहीं उत्पन्न कर पाता। अतः शिक्षित वर्ग के लिए आवश्यक है कि समाज तथा देश की आर्थिक स्थिति के सुधारने के लिए कृषि की योजनाओं को सफल बनावें।

भारत के बालकों को आज समुचित भोजन तथा शारीरिक विकास सम्बन्धी अन्य साधन सुलभ नहीं हैं। फलतः उसकी उन्नति अवरोधित हो रही है। अतः समाज का कर्त्तव्य है कि बच्चों के लिए व्यायामशालाओं, क्रीड़ास्थलों तथा उनकी देख-भाल के लिए चिकित्सालयों और पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध करे।

समाज का दूसरा कर्त्तव्य व्यक्ति के मानसिक विचारों का प्रस्फुरण करके उसको उन्नत बनाना है। इसके लिए समाज को चाहिए कि व्यक्ति के

बचपन का वातावरण कुछ इस प्रकार का बनाये कि बालक स्वतः मनन तथा विचार करने का अभ्यासी बन सके और केवल दूसरों के वि को ही कंठाग्र करके अपनी बुद्धि कुंठित न कर सके। इसके लिए समाज पुस्तकालय, पत्रिकायें, रेडियो तथा नाट्यशालाओं आदि का प्रबन्ध क चाहिये जिससे बच्चे उनसे लाभान्वित होकर अपने विचारों को प्रकट क का प्रयास करें।

ऊपर हम कह चुके हैं कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को इतना ज्ञान हो चाहिए कि वह देश के प्रति अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को भली-भां समझ सके। परन्तु आज भारत में अनुपातत: अशिक्षितों की संख्या अधि है। शिक्षित का अर्थ केवल साक्षर बनाना ही नहीं है वरन् प्रत्येक व्यक्ति वह क्षमता पैदा करना है जिससे अपनी नागरिकता भली-भांति समझ उसके पालन करने के योग्य बन सके और अपने प्रतिदिन के कार्य-कला रहन-सहन तथा स्वच्छता आदि पर उचित ध्यान रखते हुए अपनी उन्न कर सके। उसमें इतना ज्ञान हो सके कि वह अपनी, अपने समाज, देश त अन्य देशों की स्थिति और वातावरण से परिचित हो सके।

व्यक्ति से ही समाज बनता है। प्रत्येक व्यक्ति के आचरण, व्यवह और चरित्र का प्रभाव समाज पर उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जै दर्पण में आकृति। यदि समाज के व्यक्ति शिष्ट, सच्चरित्र, विनयी ईमानदार, उदार एवं सहिष्णु होंगे तो उनका आदर्श ऊँचा होगा और समाज भी उनसे प्रभावित होगा। यदि समाज में परिश्रमी, गुणवान्, स्वावलम्बी आत्मसम्माननीय व्यक्तियों का आदर होगा तो समाज अवश्य ही उन्नति करता रहेगा। इसके विपरीत सामाजिक स्तम्भों तथा व्यक्तियों की बुराइयाँ, उनक नैतिक पतन, आत्मसंकीर्णता, अनुदारता एवं स्वार्थपरता समाज को अधोगति के गर्त में ढकेल देगी। अतः समाज का कर्त्तव्य है कि आदर्श नागरिक बनाने के लिए बच्चों के समक्ष बचपन में ही ऐसा वातावरण उपस्थित क कि वे आदर्श नागरिक बन सकें। उन्हें आदर्श आत्माओं की कथाओं त जीवनियों से अवगत कराना चाहिए। चरित्रवान्, प्रतिष्ठित, उदार, दानशी तथा सत्यव्रती पुरुषों के उदाहरण उपस्थित करके उनमें उक्त गुणों को ग्रह करने की क्षमता उत्पन्न कराना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति प्राय: जन्म से ही प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं के निरीक्ष तथा उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होना सीखता है। प्रत्येक बालक के लिए य आवश्यक भी है कि उसमें सौंदर्यानुभूति विद्यमान हो। सौन्दर्यानुभूति से ह

आचरण का पाठ सीखता है और अपना आचरण लोक कल्याण की ओर रित करता है, क्योंकि आचरण एवं लोक-मर्यादा का गहन सम्बन्ध है। के द्वारा व्यक्ति में समाज को सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से सजाने की भावना जागृत होगी और वह जन-मन के जीवन को सुरम्य बनाने में सफल हो केगा। सर्वत्र प्रकृति के गुणों का रसास्वादन होगा। समाज में शांति और सम्पन्नता का राज्य होगा। अतः समाज का कर्तव्य है कि सुन्दर पार्कों, स्थलों तथा सरोवरों का निर्माण करके बालकों के लिए सौंन्दर्यानुभूति का वसर प्रदान करें।

मनुष्य धार्मिक प्राणी है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी धर्म का नुयायी होता है। सभी धर्म का कार्य क्षेत्र किसी न किसी रूप में समाज सम्बन्धित होता है, क्योंकि व्यक्ति अपने धर्म के अनुसार ही कार्य करने के लिए बाध्य होता है और उसके कार्य का प्रभाव समाज पर पड़ता है। अतः समाज को चाहिए कि वह धर्म की गतिविधियों पर भी यथेष्ट ध्यान है। प्रत्येक धर्म लोक-कल्याण की भावना से समाज-सेवा, सहयोग, परमार्थ तथा वसुधैव कुटुम्कम् के आदर्शों पर आधारित रहता है। अतः समाज को इन आदर्शों को अपनाने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार, भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी होने की स्वतन्त्रता देनी चाहिए जिससे समाज की सर्वांगीण प्रगति होती रहे।

बालक का समाज में पदार्पण

बालक जन्म से ही अपने समक्ष उपस्थित वातावरण के अनुसार र्तमान समाज के कार्यकर्त्ताओं का अनुसरण करके, उसके अनुरूप बनने का यत्न करता है। वह सामाजिक परम्पराओं का पालन करता है। पालन सम्बन्धी भूलों के दुष्परिणामों से अवगत होकर अपने में सुधार करता है। अन्ततः वह सामाजिक नियमों से पूर्णतया परिचित होकर सामाजिक प्राणी बन जाता है। सामाजिक क्रियाओं से उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। र तथा अन्य सामाजिक संस्थाएं पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करके बालक के समाजीकरण में सहायता पहुँचाती हैं। अतः इन संस्थाओं को चाहिए कि वे सामाजिक आदर्शों को सदैव जीवित रक्खें।

विद्यालय तथा समाज में सहयोग

समाज के कार्यों में समन्वय न होने के कारण बालक के समक्ष दो कार का समाज उपस्थित होगा, एक विद्यालय का दूसरा घर का।

दोनों का प्रभाव बालक के जीवन पर पड़ने के कारण उसका व्यक्तित्व भली भांति नहीं प्रस्फुटित हो पायेगा। साथ ही, अपनी रुचि के अनुसार बालक को ढालने के लिए यदि अभिभावक हठ करेंगे तो बालक के लिए उनका व्यवहार घातक भी सिद्ध हो सकता है। अतः समाज एवं विद्यालय के कार्यों और आदर्शों में समन्वय का होना अनिवार्य है।

इसके लिए समाज को विद्यालय के कार्यों में रुचि लेनी चाहिए तथा विद्यालयों को समाज के निकट आने के लिये, समाज से सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। स्कूल के उत्सव आदि के अवसरों पर अभिभावकों को आमंत्रित करके उनका सहयोग प्राप्त करना चाहिए। कृषि एवं गृहशास्त्र आदि विषयों के माध्यम से विद्यालय और समाज के वातावरण में समन्वय स्थापित करने में अपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार जैसे-जैसे दोनों निकटतर होते जाँयगे, एक दूसरे की भावना से परिचित होते जावेंगे। ऐसा होना सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए अनिवार्य है। समाज का सहयोग पाकर विद्यालय बालकों तथा समाज के विकास के लिये अनेक योजनाओं में सफलता प्राप्त कर सकता है। कृषि की अच्छी शिक्षा दे सकता है, यहाँ तक कि भूमि रक्षा से लेकर क्रय–विक्रय की समितियां तक स्थापित कर सकता है। इस प्रकार विद्यालय तथा समाज का सहयोग देश की उन्नति के लिए बहुत आवश्यक है। समाज का सहयोग प्राप्त करने के लिये विद्यालय को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

१—अपने स्थानीय समाज की प्रगति सम्बन्धी त्रुटियों के निवारण तथा आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान देना चाहिये।

२—समाज तथा सामाजिक संस्थाओं के सम्पर्क में आकर उनके द्वारा प्राप्त सहायता से लाभान्वित होना चाहिए।

३—विद्यालय की शिक्षा प्रणाली एंवं पाठ्य क्रम सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए जिससे समाज को गृह–निर्माण, पशु पालन तथा कृषि आदि प्रतिदिन की आवश्यकताओं की वस्तुओं के प्रयोग सम्बन्धी शिक्षा मिल सके।

४—पाठ्य-क्रम ऐसा हो कि स्थान, परिस्थिति तथा स्थानीय समाज के अनुसार परिवर्तित की ज़ा सके।

५—यदि विद्यालय के पाठ्य-क्रम में समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी समस्त बात न आ सकें तो पुस्तकालयों के प्रबन्ध तथा मौखिक

व्याख्यानों द्वारा उन्हें पूरी बातों से परिचित कराने की व्यवस्था करनी चाहिए।

६—बालकों को स्वयं विचार करने का अवसर देना चाहिये कि वे अनुभव द्वारा ज्ञानार्जन कर सकें। उन्हें कार्य-क्रम बनाने की स्वतन्त्रता देकर उनके कार्य-क्रम को सफल बनाने की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए। इस प्रकार उनके ज्ञान की परीक्षा हो सकेगी और वे अपनी सफलता से प्रसन्न होकर आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे। हाँ, प्रारम्भिक आवश्यक बातों का ज्ञान देना विद्यालय का कर्त्तव्य है।

७—इस सहयोग की व्यावहारिक सिद्धि के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय के शिक्षक तथा विद्यार्थियों के अभिभावक विद्यालय के शिक्षक-अभिभावक संघ के रूप में संगठित हों। साथ ही शैक्षिक नीति-निर्माताओं का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे संघों का संगठन प्रोत्साहित करें और उनके निर्णयों को समुचित मान्यता दें।

★ ★ ★

व लौ अन्न मा फ़ि अर्ज़े मिन
शजरतिन अक़्लामुंव वल बहरो
यमुद्दुहु मिन बादेही सब
अतुब हुरिम मा नफ़ेदत कलेमातुल्लाह

—कुरान ३१–२७

संयुक्त राज्य में शिक्षा

(प्राध्यापक शम्सुद्दीन, बिलासपुर)

अमेरिका की शिक्षा एक विशाल साहसिक कार्य है। सम्पूर्ण देश में हजारों शिक्षक तथा लाखों विद्यार्थी पाये जाते हैं। अमेरिका में कोई शिक्षा प्रणाली परम्परागत नहीं है तथा यह पश्चिम की अन्य शिक्षा प्रणालियों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी है। अमेरिकन शिक्षा का इतिहास ३०० वर्ष तक मिलता है किन्तु वहां वास्तविक शिक्षा का प्रारम्भ सन् १८५० से हुआ। यह उस समय हुआ जब धार्मिक अत्याचार से पीड़ित यूरोप निवासी देश छोड़ रहे थे। उनकी सोचने व कार्य करने की स्वतन्त्रता पर चर्च द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जा रहे थे। वे अमेरिका चले आये। वहां उन्होंने कई युद्ध लड़े और ४ जुलाई १७७६ को उन्होंने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। इसके बाद उन्होंने प्रजातन्त्र की स्थापना की और शिक्षा तथा समाज का संगठन किया।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने प्रजातन्त्र को व्यापक रूप में स्वीकार किया। इसलिये वहां शिक्षा का भी तीव्रता से विस्तार हुआ। उनके प्रजातन्त्रीय दृष्टिकोण ने बिना किसी जाति, धर्म लिंग या आर्थिक स्थिति के भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान किये। बच्चों को अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिये समान सुविधायें दी जाती हैं। सब को प्रजातन्त्रीय नागरिकता के लिये तैयार किया जाता है। वे शिक्षा को राज्य का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य समझते हैं। लोगों को शिक्षा देने के लिये राज्य लोगों पर 'कर' लगाता है। "सब पर कर लगाओ और सब को शिक्षित करो" यही उनका आदर्श है।

उनकी शिक्षा की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने माध्यमिक श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क कर दी है। उन्होंने धर्म को शिक्षा से अलग रख कर उसे 'धर्म–निरपेक्ष' रूप दिया है। अमेरिका की शिक्षा का वर्गीकरण बिलकुल स्पष्ट है। उसमें इंग्लैंड की शिक्षा के समान अस्पष्टता नहीं है। सब के लिये वहाँ समान स्कूल हैं। शिक्षा में उनकी विशेष श्रद्धा व विश्वास है। उनकी धारणा है कि शिक्षा ही समाज में रूपान्तर करती है। माध्यमिक श्रेणी (हाई स्कूल) तक शिक्षा अनिवार्य है। सरकार को यह अधिकार है कि वह लोगों को उनके बच्चों को शाला भेजने के लिये बाध्य कर सकती है। माता-पिता अपने बच्चों के लिये शाला का चुनाव कर सकते हैं।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाणी में हम देखते है कि वहाँ चुनाव का सिद्धांत है और केवल चुने हुए विद्यार्थी ही उच्च शिक्षा प्राप्ति के योग्य समझे जाते हैं। किंतु अमेरिका में सभी बच्चे अपनी योग्यता और रुचि के अनुकूल शिक्षा प्राप्त कर के अपना पूर्ण विकास करते हैं। यूरोपीय देशवासी इस सिद्धांत में कि "जो योग्य और शक्तिवान है वही जी सकता है" विश्वास रखते हैं, किन्तु अमेरिका-वासियों का ध्येय सब को योग्य बनाना है ताकि वे जी सकें। वे प्रत्येक को शिक्षित करने के पक्ष में हैं। उनकी शिक्षा की कोई निश्चित सीमा नहीं है। उनका जीवन की ओर व्यावहारिक दृष्टिकोण है तथा उनका दर्शन पांडित्य के दर्प से पूर्ण है। उनका बहुत बड़ा दर्शन-शास्त्री 'जान ड्यूवी' है। उसका विश्वास है कि ज्ञान का वास्तविक उद्गम उसकी कार्य प्रणाली में है। 'क्रियायें' और 'ज्ञान' एक दूसरे को आपस में प्रभावित करते हैं।

ड्यूवी का कथन है, "हमें बच्चों को भावी ममाज के लिये तैयार नहीं करना है, किन्तु हमें उनके व्यक्तित्व के विकास के लिये शिक्षात्मक अनुभव देना है।" शाला समाज का ही छोटा रूप है तथा समाज व्यवस्था पर उसका प्रभाव पड़ता है। शाला की क्रियाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये शिक्षा, व्यवसाय तथा क्रियात्मक कार्य-क्रमों द्वारा दी जानी चाहियें। शिक्षा में सब को समान अवसर मिलना चाहिये। शाला में प्रजातन्त्रीय व्यवहार होना चाहिये तथा सम्पूर्ण शिक्षा का ध्येय व्यक्ति की सामाजिक योग्यता बढ़ाना होना चाहिये।

इतिहास

अमेरिका ने यूरोपवासियों से बहुत सी बातें ग्रहण की। यूरोपियों के समान पहले चर्च के द्वारा पादरियों के मार्गदर्शन में शालाओं का संगठन हुआ। धनी लोग अपने बच्चों को शिक्षा के लिये इंग्लैंड भेजते थे। १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सर्व साधारण जनता के लिये कोई सामान्य शिक्षा प्रणाली नहीं थी; किंतु इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस की नींव डाली गई। राज्य में शालाओं पर शासन व नियन्त्रण करने के लिये सन् १८३७ में मेसेचसेट्स राज्य ने एक "बोर्ड आफ एज्युकेशन" का संगठन किया। सन् १८३९ में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये प्रथम नार्मल स्कूल की स्थापना हुई। अब शिक्षक युनिवर्सिटी द्वारा तैयार किये जाते हैं तथा उन्हीं को अध्ययन कार्य करने दिया जाता है जिनके पास शिक्षण का प्रमाण पत्र हो। सन् १८७१ तक शिक्षा का काफी विस्तार हो चुका था। १८७५ से १८८० के बीच सभी राज्यों ने फीस के साथ माध्यमिक शिक्षा के लिये शालायें खोलने का प्रयत्न

किया। सन् १८८० के पश्चात शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हुआ। इसी समय उद्योंगों का भी तीव्रता से विकास हुआ।

नारियाँ भी दिन पर दिन नौकरियों में आने लगीं और 'घर' शिक्षा का स्थान नहीं रहा। इस प्रकार बच्चों की शिक्षा की दृष्टि से शालाओं को महत्वपूर्ण स्थान मिला। अमेरिका में शालायें बच्चों की शिक्षा के लिये सब प्रकार की सुविधायें देती हैं। उन्हें पुस्तकें मुफ्त दी जाती हैं, कोई फीस नहीं ली जाती तथा शिक्षा के लिये अच्छे भवन रहते हैं।

शिक्षा का रूप

शिक्षा के शासन प्रबन्ध की प्रणाली संघीय या संयुक्त है; किन्तु वास्तविक कार्य राज्यों द्वारा होता है। संघीय सरकार अप्रत्यक्ष रूप से मदद करती है। संघीय सरकार का एक शिक्षा विभाग है। इस विभाग का काम राज्य सरकार की सहायता करना है, उन पर नियन्त्रण करना नहीं। शिक्षा विभाग का अपना दफ्तर रहता है तथा उसका अधिकारी 'शिक्षा कमिश्नर' कहलाता है। अन्वेषण कार्य के लिये उसके पास कई कर्मचारी रहते हैं। कमिश्नर के कार्य निम्नलिखित रहते हैं :—

(१) सब दफ्तरों में सूचनायें पहुंचाना तथा उनका मार्गदर्शन करना।
(२) विभिन्न राज्यों से आंकड़े एकत्र करना, पुस्तकालय चलाना तथा अन्वेषण कार्य की व्यवस्था करना।
(३) विभिन्न शिक्षण संस्थाओं को जमीन के रूप में अनुदान देना।
(४) देश में व्यावसायिक शिक्षा की आर्थिक व्यवस्था करना। वह सैनिक शिक्षा की भी व्यवस्था करता है।
(५) सहायता के कार्य करना तथा काम करने वालों की शिक्षा का प्रबन्ध करना।

बाकी शिक्षा राज्यों के आधीन रहती है और प्रत्येक राज्य की स्वयं अपनी शिक्षा प्रणाली होती है। अप्रत्यक्ष रूप से संघीय सरकार राज्य सरकार की शिक्षा को प्रभावित करती है। शिक्षा राज्य की भलाई की प्रधान आवश्यक शर्त समझी जाती है। जितने राज्य हैं, उतने ही प्रकार की शिक्षा प्रणालियां है, किन्तु उनमें कई बातों में पर्याप्त समानता है। सम्पूर्ण राज्यों की सामान्य राष्ट्रीय एकता है।

ड्यूवी, थार्न डाइक, किलपेट्रिक तथा अन्य शिक्षा विशारदों का विभिन्न शिक्षा प्रणालियों पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। शिक्षण साहित्य

भी अमेरिका द्वारा तैयार किया गया है। हमेशा अन्तर्राजकीय शिक्षा सम्मेलन होते रहते हैं। शिक्षण अधिकारी एक राज्य से दूसरे राज्य में आते जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न शिक्षा प्रणालियों की संस्थाओं के संगठन हैं जो हाई स्कूल, कालेज व अन्य संस्थाओं को मान्यता प्रदान करते हैं। वे कोई बाह्य परीक्षा नहीं रखते। उनकी परीक्षायें आंतरिक ही होती है। निजी संस्थायें अपनी अन्तिम परीक्षायें स्वयं रखती हैं तथा उपाधियां प्रदान करती हैं। संघीय सरकार सभी राज्यों के विधान को स्वीकृति प्रदान करती है। अतः वे एकता के लिये बाध्य होते हैं।

शिक्षा का निरीक्षण व प्रबन्ध

हर एक राज्य की विधान सभा होती है जो क्षिक्षा की नीति को नियन्त्रित करती है। प्रत्येक राज्य में 'बोर्ड आफ एज्युकेशन' होता है। अब इस बोर्ड का विधान प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न होता है। राज्य का प्रमुख शिक्षा-अधिकारी 'सुपरिंटेंडेंट आफ एज्यूकेशन' कहलाता है। यह हमारे 'डायरेक्टर आफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन' के समान रहता है। उसके कार्य निम्नलिखित रहते हैं :—

(१) वह यह देखता है कि राज्य की ग्रांट स्थानीय इकाइयों में ठीक तरह से बँटी है या नहीं।

(२) वह शालाओं का निरीक्षण व वर्गीकरण करता है।

(३) वह शिक्षा की विमिन्न श्रेणियों के लिये शिक्षकों को प्रमाणित करता है।

(४) वह संघीय सरकार को भेजने के लिये शैक्षणिक लेखा रखता है।

(५) स्थानीय अधिकारियों के लिये वह प्रभावशाली अधिकारी का कार्य करता है।

(६) राज्य के गवर्नर के लिये वह आवश्यक शिक्षा सम्बन्धी विधान प्रस्तुत करता है।

(७) वह स्थानीय संस्थाओं के अधिकारियों का मार्गदर्शन करता है।

कुछ राज्यों में विभिन्न प्रकार की शिक्षा के लिये एक से अधिक बोर्ड रहते हैं। दूसरी नियन्त्रण करने वाली शक्ति 'लोकल बोर्ड' होती है जो जिले या एक साथ काम करने वाले कई जिलों के समूह या शहर के लिये होती है। इसका अपना 'सुपरिंटेंडेंट आफ स्कूल्स' होता है। वह नियुक्त होता है या चुना जाता है। कभी-कभी वह पूरे समय के लिये नियुक्त किया गया कर्मचारी भी होता है। पहले वहाँ शिक्षा की इकाइयां छोटी होती थी। किंतु बाद में

उन्होंने देखा कि ये लाभकारी नहीं हैं इनमें स्कूल निम्न दर्जे के होते थे तथा शिक्षकों की कमी रहती थी। छोटी-छोटी इकाइयां होने के कारण शाला का कार्य भी निम्न श्रेणी का होता था। अब ये इकाइयां बड़ी होती हैं। कुछ राज्यों में ये राजकीय संस्थाओं से बिलकुल अलग रहती हैं। शिक्षा की अर्थ व्यवस्था निम्न प्रकार रहती है :—

लोकल बोर्ड्स—६५ प्रतिशत, राज्य सरकार—३३ प्रतिशत, संघीय सरकार—२ प्रतिशत।

शिक्षकों का वेतन

अन्य विभागों की तुलना में शिक्षकों का वेतन कम होता है, किन्तु शिक्षक शिक्षण कार्य अपनाने में बड़े गर्व का अनुभव करते हैं। शिक्षकों के लिये श्रेय की बात है कि वे शिक्षा के मूल्य को चुकाते हैं तथा उनके लिए स्वयं का त्याग करते हैं। प्राथमिक व माध्यमिक श्रेणी की शिक्षा सरकार द्वारा सम्हाली जाती है। ९० प्रतिशत बच्चे पब्लिक या सरकारी शालाओं में जाते हैं। अमेरिका में माता-पिता बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजना पसन्द नहीं करते क्योंकि वे करदाता हैं।

शिक्षा की श्रेणियाँ

पूर्व प्राइमरी श्रेणी ४ से ६ वर्ष तक के बच्चों के लिये है। इस श्रेणी में 'किंडर गार्टन' ज्यादा प्रचलित है। वे 'मांटेसेरी' पसंद नहीं करते जो निजी प्रयत्न से बड़े-बड़े शहरों में चलाई जाती है। करीब २५ प्रतिशत बच्चे इनमें जाते हैं।

प्राइमरी श्रेणी ६ से १४ वर्ष तक के बच्चों के लिये रहती है। प्राइमरी शिक्षा का ध्येय बच्चों को सामान्य अनुभवों का ज्ञान देना है जो प्रजातन्त्र के लिये अत्यन्त आवश्यक है। वे 'प्रोजेक्ट' (नक्शे आदि) तथा 'कार्य पद्धति' (आधुनिक शिक्षा पद्धतियों) का प्रयोग करते हैं। ८ वर्ष तक प्राइमरी श्रेणी में अध्ययन करना पड़ता है। उन्हें विषय चुनने के लिये काफी गुंजाइश दी जाती है तथा वे कई ऐच्छिक विषय ले सकते हैं।

हाई स्कूल की श्रेणी अपने आप में पूर्ण एक श्रेणी रहती है। हाई स्कूल स्वयं अपनी परीक्षायें करते हैं तथा प्रमाणपत्र देते हैं। उनमें कक्षा तरक्की न होकर विषयों के अनुसार तरक्की दी जाती है। इससे बच्चे विभिन्न विषयों में अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा में वास्तविक उन्नति करते हैं। यह सब पुरानी प्रथा है। आधुनिक समय में बहुत से राज्यों ने ६ वर्ष

तक प्राइमरी तथा उसके बाद ६ वर्ष तक हाई स्कूल की शिक्षा की व्यवस्था की है क्योंकि ६ से १६ वर्ष तक शिक्षा अनिवार्य है। इस प्रकार इन्होंने हाई स्कूल के समय में दो वर्ष की वृद्धि कर दी है। अभी-अभीं उन्होंने हाई स्कूल में ३ वर्ष की 'जूनियर हाई स्कूल श्रेणी' बना दी है। ये हाई स्कूल स्वयं एक श्रेणी बन गये हैं; 'जूनियर हाई स्कूल' का पाठ्य क्रम सामान्य व व्यापक होता है तथा उसमें विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास को ध्यान में रखा जाता है। ९० प्रतिशत विद्यार्थी १८ वर्ष की अवस्था तक हाई स्कूलों में रहते हैं। १८ वर्ष की उम्र के पहले किसी को नौकरी नहीं दी जाती। यह इसलिये है कि एक तो कानूनी बन्धन है और दूसरे वहाँ के उद्योग बहुत ही यन्त्रमय हैं जिनमें उनसे तब तक काम में नहीं लिया जा सकता जब तक वे पर्याप्त रूप से योग्य न हो जायँ।

कालेज में उनका दो वर्ष का साधारण कोर्स रहता है और दो वर्ष के विभिन्न कोर्स होते हैं। मास्टर्स डिग्री दो वर्ष की रहती है। व्यावसायिक व विशिष्ट शिक्षा का भी प्रबन्ध रहता है। स्थल, जल व बायु सेना के अफसरों की शिक्षा के लिये भी राष्ट्रीव संस्थायें रहती है। शारीरिक दोष वाले बच्चों के लिये भी स्कूल रहते हैं। विश्व विद्यालय माता-पिता तथा बच्चों के शिक्षा के लिए विशेष कोर्स का प्रबन्ध करते हैं। यह डाक, भाषण, रेडियो, टेलीविजन तथा घूमते-फिरते प्राध्यापकों द्वारा किया जाता है। जहाँ तक विश्व विद्यालय की शिक्षा का प्रश्न है– यह अभी भी पाठ्य क्रम, पद्धति तथा प्रवंध में अनुदार है, किन्तु फिर भी प्रगतिशील है। विश्वविद्यालय व विद्यालय अधिकांशतः निजी रूप से चलाये जाते हैं। निजी व सामान्य संस्थाओं का अनुपात २ और १ का है।

निजी विद्यालय

निजी विद्यालय अधिकांश में कला की शिक्षा देते हैं तथा सरकारी संस्थायें विशिष्ट औद्योगिक तथा व्यवसायिक विषयों की शिक्षा प्रदान करती है। निजी संस्थाओं में शुल्क की दर अधिक है। विद्यालय आवश्यक रूप से विश्व-विद्यालयों से जुड़े रहते हैं। विद्यालयों की उपाधियों व प्रमाण-पत्रों का बड़ा मान रहता है। वहाँ सब विश्व-विद्यालय कानून द्वारा स्थापित नहीं होते। कोलम्बिया व न्यूयार्क के विश्व-विद्यालयों को विश्व व्यापी ख्याति प्राप्त है। अन्य किसी भी देश की अपेक्षा वहाँ अधिक लोगों की उच्च शिक्षा उपलब्ध है। वहाँ निजी संस्थायें भी स्वतन्त्र रहती हैं तथा अपना कार्य क्रम

स्वयं निश्चित करती है । सरकार की ओर से अधिक हस्तक्षेप नहीं होता उच्च शिक्षा के अन्तर्गत कई विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है ।

अमेरिका में पाक-विद्या, कशीदा कार्य तथा शारीरिक शिक्षा में उच्च उपाधियां दी जाती हैं । स्त्रियों में उच्च शिक्षा बड़े परिमाण में प्रचलि है । विद्यालयों में ४० प्रतिशत महिला छात्रायें रहती है । अपनी इच्छा बनाये गये कई संगठन होते हैं जो विभिन्न संस्थाओं के कार्य की भली भां जांच कर लेने के पश्चात उन्हें अपना सदस्य बनाते है । ये साधन पिछ ५० वर्षों में ही बढ़े हैं ।

विश्व विद्यालयों की अर्थ-व्यवस्था

ये काफी ऊँची फीस लेते हैं जो उनकी आय का साधन है । नि संस्थाओं के पास बहुत रकम रहती है । युद्ध के पश्चात 'जूनियर काले आंदोलन' प्रारम्भ हुआ । इसका ध्येय हाई स्कूल की शिक्षा के बाद उन्हीं में साल की साधारण शिक्षा रखना था ।

शिक्षक

शिक्षा के धन्धे में वेतन की कुछ कमी है । किन्तु फिर भी लोग इ ओर आर्कषित होते हैं । कुछ के प्रति तो घरेलू नौकरों से भी बुरा बर्ता होता है । ८० प्रतिशत से अधिक शिक्षक महिलाये हैं । निम्न श्रेणियों में ९० प्रतिशत तथा उच्च श्रेणी में ६० प्रतिशत हैं । शिक्षक का व्यवसाय पूर्णतः सामाजिक हो गया है । मांग की अपेक्षा पूर्ति अधिक है । उनमें महिलायें अधिक संख्या में हैं । शिक्षकों को समाज में बड़ा आदर मिलता है । उन्हें अपने प्रयोग करने की स्वतन्त्रता रहती है तथा रिसर्च कार्य के लिये उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है । शिक्षक वर्ग में महिलायें अधिक होने से कु अमेरिकन इसे भयपूर्ण दृष्टि से देखते है । वे इसे विद्यार्थियों का दुर्भा समझते हैं । अधिकांश महिला शिक्षिकायें अविवाहित रहती है, क्योंकि उनकी नौकरी की शर्तें कड़ी होती हैं । महिलाओं को प्रसव-कालीन अवकाश मिलता है । ठहरावे के आधार पर रहती हैं किन्तु उन्हें मासिक वेतन मिलता है वे ५० वर्ष की उम्र तक काम कर सकती हैं । हाई स्कूल शिक्षक बदल रहते हैं । उनमें से ४० प्रतिशत प्रत्येक वर्ष अपनी नौकरी परिवर्तित करते हैं उनमें से ५० प्रतिशत विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त नहीं होते । उनकी सेवायें प्रबन्धकारी समिति द्वारा बिना कारण के भी समाप्त कर दी जाती

शिक्षकों का प्रशिक्षण

१९३९ में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये अलग नार्मल स्कूल थे। ये शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी भी करते थे। आजकल इनमें से अधिकांश 'शिक्षक विद्यालयों' में परिवर्तित हो गये हैं। ये हाई स्कूल के ग्रेजूएट्स को ४ वर्ष तक शिक्षा देते हैं। अधिकांश 'शिक्षक-विद्यालय' सरकार द्वारा चलाये जाते है। पहिले दो वर्षों में शिक्षकों को भी सामान्य शिक्षा दी जाती है तथा दूसरे दो वर्षों में उन्हें व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है। शिक्षक राज्य द्वारा प्रमाणित होते हैं। प्रमाण पत्र साधारणत: सरकार द्वारा दिये जाते हैं। निजी शालायें किसी को भी नियुक्त कर सकती हैं। शिक्षकों की व्यावसायिक स्वतन्त्रता होती है और वे अपने स्वयं के प्रयोग करते हैं।

अमेरिका में प्रौढ़ शिक्षा की कोई विशेष आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि वहां हर कोई १७ वर्ष की अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करता है। प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम 'शिक्षा चालू रखो' के सिद्धान्त पर स्थित रहता है। इसलिये यह प्रौढ़ शिक्षा विभिन्न साधनों से दी जाती है।

हर एक श्रेणी में औद्योगिक शिक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था रहती है। कई खण्ड-कालीन संस्थायें रहती हैं जो काम करने वालों की औद्योगिक शिक्षा प्राप्ति की सुविधायें प्रदान करती है। संक्षेप में सन् १९१७ से जब स्मिथ ह्यूजेस एक्ट पास हुआ और संघीय-शिक्षा-बोर्ड की स्थापना हुई तथा देश में औद्योगिक शिक्षा की उन्नति के लिये बड़ी-बड़ी रकमें निश्चित हुई, शिक्षा की यथेष्ट उन्नति हुई है।

* * *

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः समनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥

अथर्ववेद

आज और कल की एक झलक

(पांडेय सीताराम प्रसाद, लखनऊ)

चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, देखते-सुनते—तात्पर्य कि हर पहर, हर दशा में कुछ न कुछ हुआ करता है। जो हुआ करता है, वह देखा जाया करता है। देख-देख कर वर्तमान की रूप-रेखाएँ समझी जाती हैं जिससे समाज और व्यक्ति की गति-विधियों का बोध होता रहता है।

तो बात मानिए—कुछ दिन पूर्व की बात है।

शाम के ६ बजे एक दिन दो कम उम्र के बच्चे, होंगे १५-१५ साल के, खड़े थे सिनेमा के बाहर। सम्भवत: किसी की प्रतीक्षा में थे बड़े आतुर—

—"हाँ तो आया नहीं अभी तक"—एक ने अन्यमनस्क हो कहा। —वो देखो आ रहा है—अच्छा हुआ—नहीं तो पिक्चर ही छूट जाती"—

तीसरे ने कहा आते-आते—"माफ करना यार, देर हो गई—डैडी आ गए—आने में अड़चन आ गई—खैर··· ··· ··· "

—"क्यों—क्या अड़चन आ गई? जरा बताओ तो"—पहले वाला 'तपाक से' पूछ बैठा।

"आने नहीं दे रहे थे डैडी"—तीसरे ने कहा।

"वाह बेटा! तुमने डैडी को इतना लिफ्ट ही क्यों दे रखा है?" दूसरे ने मन की बात कही।—"अच्छा, आओ चलें अन्दर।"

फिर तीनों अन्दर चले गए।

बड़े चाव से सुन गया सब कुछ मैं—हालाँकि मुझे चुपचाप चला जाना चाहिए था एक चलते हुए राहगीर की तरह। पर हठात्—कौतूहल में ठिठक गया।

भावुक-विचारक जीव के मर्मस्थल पर ऐसी बातों का मीठा-गहरा आघात होता है। मेरे भी मन-मानस में बिजली सी कौंध गई—"बेटे बाप को लिफ्ट दे रहे हैं।" सन्तोष न हुआ—घोर असन्तोष में मानसिक शक्ति ही कहीं चरने चली गयी। वाह री—जमाने की हवा—

अब समस्या आती है—समाज की, वातावरण की। दोनों आश्रित हैं एक दूसरे पर। चारों ओर समाज में, वातावरण में, पग-पग पर सुधार और विकास का ढोल बज रहा है किन्तु—परिणाम बड़ा ही भयावह दिखाई पड़ता है।

सच कहा जाता है। परन्तु, सच तो यह है कि हमारे जीवन के संस्कार ही एक विचित्र शिक्षा-दीक्षा के आधार पर बनते हैं। हर तरफ मुँह फैलाए देख रहे हैं कि विलायत से कुछ मिले तो हम अपनी चाल ठीक करें। हमारा कोई भी कार्य चाहे आर्थिक हो या सामाजिक या धार्मिक या राजनीतिक या व्यापारिक या शैक्षिक—बिना पाश्चात्य पुट के हो ही नहीं पाता। इसका तो यही मतलब है कि हमारे पास अपनी कोई भी मौलिकता नहीं है। हमारे पास अपनी संस्कृति नहीं, कोई अपना विचार नहीं, कोई आचार नहीं।

हम चाहे जो कुछ भी हैं—हैं सबसे पहले भारतीय। भारतीय वातावरण के अनुकूल सबसे पहले अपने को समझना चाहिए। तत्पश्चात् जिधर की हवा में हम चलना चाहें, उधर की हवा में चलें। वरना, हर चरण में, हर क्षेत्र में हम हास्यास्पद बनते जायेंगे जैसा कि वर्तमान प्रगति अथवा उत्थान के आँकड़ों से पता चलता है।

भारतीय संस्कृति में सब कुछ बेजोड़ है। बस, हम पिछड़ रहे हैं भारतीय खजाने से हीरा-मोती निकालने में। सोचने पर पता लगता है कि जर्मनी जैसे देशों ने भारतीय संस्कृति एवं सत्यता के टुकड़े निकाल-निकाल कर आधुनिक युग में अद्भुत चमत्कार दिखला दिया और एक हम हैं कि हमें अपने अन्दर मिलता ही नहीं कुछ। बस, लन्दन, अमेरिका, रूस की नकल जोर पकड़ती जा रही है।

अतएव, जरा हम अपनी ओर देखें, अपने अतात की ओर देखें, तो हमें मिलता है जिन्दगी जीने का संस्कार—जीवन-व्यापार चलाने की कला, जीवन की मान-मर्यादा के लिए अद्भुत संघर्ष करने की क्षमता, धैर्य, साहस, फिर सूझ-बूझ, व्यापकता आदि। और वर्तमान सब कुछ दिखलाते हुए, सब-सुख सज्जा देते हुए भी हमें आठों पहर उलझन और बेचैनी में ही डाले रहता है। हम जितना ही साधन-सम्पन्न हो जाते हैं उतना ही हमें अपने आप से खतरा बढ़ता जाता है।

एक झलक कल की, देखिए तो जरा—

राजा भोज निकले प्रजा की दशा का ज्ञान प्राप्त करने—सही-सही। रास्ते में एक लकड़हारा लकड़ियों की बहँगी लिये हुए चल रहा था। बोझा

बहुत अधिक था। राजा ने बोझ वाहन में कष्ट का अनुभव कर आत्मीय ढंग से प्रश्न किया—"भूरिभार भराक्रान्त तव स्कन्धम् न बाधति बन्धुः !" "हे बन्धु ! तुम्हारे कन्धे क्या इतने बोझ से दुखते नहीं," लकड़हारे ने सादर सानन्द उत्तर दिया—"राजन् ! तथा न बाधते यथा तव 'बाधति' बाधते।" "हे राजन् ! उतना नहीं जितना आपको "बाधति" शब्द से दुख होता है।" तात्पर्य कि वातावरण कितना मर्मस्पर्शी, परन्तु कष्ट हुआ लकड़हारे को राजा के गलत प्रयोग से जो 'बाधते' की जगह 'बाधति' बोल गये थे। अनुमान करना है अब कि तब का वातावरण कितना गौरवमय तथा प्रेरणात्मक था।

फिर देखिए—आज से बहुत समय पहले—

एक राजा को अपने १६ वर्षीय पुत्र को तक्षशिला विद्याध्ययन करने भेजना पड़ा। राजकीय वैभव का जीव जब चला निर्दिष्ट स्थान को तो उसके पास राज वैभव कुछ न था—एक चप्पल, एक पत्तियों का छाता तथा कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ गुरु को अर्पित करने हेतु। पहुंचने पर आचार्य ने बात की—"कहाँ से आये हो ?"—लड़के ने निवेदन किया—"बनारस से।" "किसके पुत्र हो ?"—"बनारस के राजा का" विनीत हो उसने उत्तर दिया। "क्यों आए हो यहाँ ?"—"विद्योपार्जन करने—"

तत्पश्चात् आचार्य ने प्रश्न किया—"तो गुरु-दक्षिणा लाये हो या मुझसे विद्या सीखने के उपलक्ष में मेरी सेवा करोगे।"

लड़के ने चरण स्पर्श कर सहस्रों स्वर्ण मुद्रायें आचार्य के चरणों में अर्पित कर कहा—"तन-मन-धन-से।"

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि किस प्रकार की आस्था, निष्ठा, त्याग, लगन से कार्य-सम्पन्न होता था।

गम्भीर चिन्तन से पता लगता है कि जब तक भारत के मौलिक गुणों को पुनर्जीवन नहीं मिलता, तब तक हम भारत-भूमि पर बढ़ते तो दिखाई पड़ेंगे लेकिन वैसे ही जैसे ताड़ का पेड़—जिसके बढ़ाव में न तो आकाश ही छूने को मिलेगा, न पृथ्वी ही उसकी छाया में तृप्त हो सकेगी।

अतः हमें अब निश्चय करना है कि

हमें हमारा जीवन चाहिये—
हमें हमारा मौलिक संस्कार चाहिए—
हमें हमारा बौद्धिक विकास चाहिए—

78257

क्रियात्मक शोध

(डा० सीताराम जायसवाल, रीडर, शिक्षा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय)

शिक्षा अत्यन्त गतिशील विषय है। अतः इसके विभिन्न पक्षों और स्वरूपों को समझने के लिए निरन्तर शोध की आवश्यकता होती है। आधुनिक काल का शिक्षक विद्यार्थियों को न केवल विषय का ही ज्ञान प्रदान करता है वरन् उनमें ऐसी क्षमता उत्पन्न करना चाहता है जिससे कि वे जनतांत्रिक समाज के उपयोगी सदस्य बन सकें। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को शिक्षा देते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सभाधान शोध के द्वारा किया जाय।

शिक्षा की समस्याएँ

यदि हम शिक्षा की समस्याओं पर विचार करें तो उनके विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, जब समाज में परिवर्तन होता है तब शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। लेकिन बहुधा यह देखा गया है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ शैक्षणिक उद्देश्यों में भी परिवर्तन नहीं होते। इस प्रकार शिक्षा का सम्बन्ध समाज से टूट जाता है। अतः शोध द्वारा यह मालूम किया जा सकता है कि किन कारणों से शिक्षा और समाज के सम्बन्ध टूट गये हैं। उदाहरण के लिए वर्तमान भारतीय शिक्षा में यही समस्या उत्पन्न हो गई है। अतः यह आवश्यक है कि शोध के द्वारा इसका समाधान किया जाय। इसी प्रकार शिक्षण के क्षेत्र में भी समस्यायें उत्पन्न होती हैं। शिक्षण की विभिन्न विधियाँ निरन्तर प्रयोग द्वारा परिष्कृत होनी चाहिए। लेकिन अधिकतर अध्यापक प्रयोग और शोध की ओर ध्यान नहीं देते। इसीलिये गतिशील विधियाँ निर्जीव हो जाती हैं और उनका शिक्षण कार्य में शिक्षार्थी से अधिक महत्व हो जाता है। यह भी शिक्षा की प्रमुख समस्या है। इसीलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा की समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ रूप से विचार किया जाय और अध्यापकों को क्रियात्मक शोध का समुचित ज्ञान हो जिससे कि वे स्वतन्त्र रूप से शोध कार्य कर सकें।

क्रियात्मक शोध

इस स्थल पर यह आवश्यक है कि हम क्रियात्यक शोध (Action Research) से परिचित हो लें। क्रियात्मक शोध के स्वरूप को समुचित रूप से स्पष्ट करने का श्रेय प्रो० स्टिफेन एम० कोरी[1] को है। इन्होंने क्रियात्मक शोध उसी शोध को कहा है जो व्यावहारिक तथा क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल देता है। परम्परागत शोध और क्रियात्मक शोध की तुलना के द्वारा प्रो० कोरी ने यह स्पष्ट किया कि परम्परागत शैक्षणिक शोध समस्याओं के व्यावहारिक और क्रियात्मक पक्ष के प्रति प्रायः उदासीन रहता है, लेकिन क्रियात्मक शोध उपयोगिता और व्यवहारिकता के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक शोध वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षक अथवा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य व्यक्ति समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन, निर्देशन, सुधार और मूल्यांकन को ध्यान में रखकर करते हैं।[2] अतः यह स्पष्ट है कि शैक्षणिक कार्यों में लगे हुए शिक्षक अपनी कार्य-प्रणाली में सुधार के लिए क्रियात्मक शोध का उपयोग कर सकते हैं।

क्रियात्मक शोध का विकास

एतिहासिक दृष्टि से क्रियात्मक शोध का विकास पुराना नहीं है। सन् १९३३ के लगभग जान कोलियर[3] नामक अमेरिकी शिक्षा शास्त्री ने शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक नियोजन का महत्व बताते हुए क्रियात्मक शोध पर बल दिया था। कोलियर के अनुसार क्रियात्मक शोध के परिणाम शैक्षणिक प्रशासकों तथा सामान्य नागरिकों दोनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि इससे शिक्षा की समस्याएँ पूर्ण रूप से समझ में आती हैं। इस प्रकार क्रियात्मक शोध का विकास करने का श्रेय जान कोलियर को है।

क्रियात्मक शोध के स्वरूप को और स्पष्ट करने का श्रेय कुर्ट लेविन तथा उसके सहयोगियों को दिया जाता है। यह उल्लेखनीय है लेविन

---

1. Stephen M. Corey.
2. "The process by which practitioners attempt to study their problems scientifically in order to guide, correct, and evaluate their decisions and actions in what a number of people have called action research"—S. M. Corey, *Action Research to Improve School Practices, 1953, p. 6.*
3. John Collier.

मनोविज्ञान के गेस्टाल्ट सम्प्रदाय का समर्थक था और उसने स्वयं क्षेत्र सिद्धान्त[1] की व्याख्या की थी। माननीय तथा सामाजिक संबन्धों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जो विधि लेविन ने बतायी वह क्रियात्मक शोध के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। क्रियात्मक शोध की दृष्टि से सभी अध्ययन महत्वपूर्ण हैं जिन्हें कई शिक्षाशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों से मिलकर एक लम्बी अवधि तक किया है। उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में किये गये आठ वर्षीय अध्ययन[2] वास्तविक रूप से क्रियात्मक शोध ही हैं। इस प्रकार क्रियात्मक शोध में अनेक व्यक्ति मिलकर कार्य करते हैं। अब तो शिक्षा के क्षेत्र में क्रियात्मक शोध सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण अनुसंधान की विधि स्वीकार की जाती है और इस बात पर बल दिया जाता है कि शिक्षा समस्याओं के समाधान के लिये क्रियात्मक शोध को अधिक से अधिक अपनाया जाय।

क्रियात्मक शोध की विशेषता

यदि हम क्रियात्मक शोध की सामान्य विशेषताओं की ओर ध्यान दें तो सर्व प्रथम हमें यह ज्ञात होगा कि क्रियात्मक शोध समस्याओं का अध्ययन सामाजिक सन्दर्भ में होता है। दूसरे शब्दों में, क्रियात्मक शोध का यह लक्ष्य होता है कि उन तत्वों का विश्लेषण किया जाय जो मानवीय और सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार क्रियात्मक शोध का प्रमुख लक्ष्य सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक और सामाजिक है। जो जन-कल्याण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उसी के विषय में क्रियात्मक शोध अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। जहाँ तक सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रश्न है उसके लिए तो शोध की परम्परागत विधि ही अधिक उपयुक्त है। लेकिन क्रियात्मक शोध सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी बातों की जानकारी के लिए किया जाता है। क्रियात्मक शोध की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा अध्यापक या अन्य शिक्षा अधिकारी किसी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय करने में सफल होते हैं, क्योंकि क्रियात्मक शोध द्वारा उन्हें उस समस्या का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। यह उल्लेखनीय है कि शिक्षा के क्षेत्र में बहुधा ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जब कि उचित

---

[1] Field Theory.

[2] Eight year Study.

निर्णय की आवश्यकता होती है। अनुभव के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि क्रियात्मक शोध निर्णय करने में अत्यधिक सहायक होता है, क्योंकि इसके द्वारा किसी समस्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का समुचित ज्ञान होता है। लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो समस्यायें व्यावहारिक हैं उन्हीं के अध्ययन के लिये क्रियात्मक शोध अधिक उपयोगी है। जहाँ तक सैद्धान्तिक और दार्शनिक समस्याएँ हैं उनके अध्ययन के लिये अन्य विधियों को प्रयोग में लाया जा सकता है।

क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया

क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि समस्या के स्वरूप का निर्धारण किया जाय। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि वह कौन सी समस्या है जिसके सम्बन्ध में वह शोध करना चाहता है। बहुधा यह देखा गया है कि समस्या को स्पष्ट रूप से न समझने के कारण अनेक शोधकर्ता व्यर्थ ही अपने समय को नष्ट करते हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि क्रियात्मक शोध में सर्वप्रथम शोधकर्ता का ध्यान समस्या की ओर जाना चाहिए और उसके स्वरूप का वास्तविक रूप से निर्धारण करना चाहिए। ऐसा करने से समस्या की व्याख्या सरल हो जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि क्रियात्मक शोध्र की प्रक्रिया में सर्वप्रथम समस्या का स्वरूप निर्धारित करना चाहिए और फिर उपलब्ध तथ्यों तथा आँकड़ों के आधार पर समस्या की व्याख्या होनी चाहिए। इसके बाद समस्या का विश्लेषण किया जाता है। यह क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया का तीसरा चरण है। जब शोधकर्ता समस्या की समुचित व्यवस्था कर लेता है तब वह उसके विभिन्न अङ्गों का विश्लेषण करके ऐसे वस्तुनिष्ठ प्रमाण प्राप्त करता है जो समाधान में सहायक होते हैं। इसके बाद क्रियात्मक शोध में शोध के लिए कुछ उपकल्पनाएँ[1] निर्धारित की जाती हैं। इन्हीं उपकल्पनाओं के आधार पर क्रियात्मक शोध के लिए ऐसी व्यस्वथा की जाती है जिसमें कि प्रयोग सम्भव हो। दूसरे शब्दों में, क्रियात्मक शोध के लिए प्रयोग की डिजाइन[2] बनाते समय शोधकर्ता को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि उसके पास जो साधन अथवा सुविधायें हैं वे प्रयोग के लिए पर्याप्त हैं अथवा नहीं। यदि कहीं प्रयोग के लिए बनाये गये

---

1. **Hypotheses.**
2. **Experimental Designs.**

डिजाइन में समय तथा अन्य साधनों का ध्यान नहीं रखा जाता तो शोध कार्य अधूरा रह जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक शोध की प्रक्रिया में सर्वप्रथम समस्या की पहचान, उसके बाद उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण, फिर उपकल्पनाओं का निर्धारण और फिर प्रयोगात्मक डिजाइन की रचना आवश्यक है। प्रयोग से उपलब्ध तथ्य तथा अन्य जानकारी के आधार पर जो परिणाम निकाले जाते हैं वे समस्या के समाधान में सहायक होते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि शिक्षा के गिरते स्तर को रोकने के लिए तथा शिक्षा द्वारा योजनाबद्ध विकास के हेतु हमें क्रियात्मक शोध को अधिक से अधिक अपनाना होगा।

* * *

सरस्वती-वंदना

नील-गगन की किरण-कामिनी, धरती की उच्छ्वास अमर।
भोली साँस सरल संसृति की, मानव-मन की प्यास अमर।
मुखर किसी ने कहा तुम्हें तो कहा किसी ने चक्षु विहीन।
जनश्रुति तो अब तक कहती वाणी विश्व-विभव से हीन।
किंतु गोद में जिसकी खेले मीरा, तुलसी, सूर, प्रसाद।
कब उसकी समता कर सकता हृदय-हीन जड़ भौतिकवाद।
सप्त सिंधु के सप्त स्वरों में मुखर तुम्हारा ही संगीत।
कृषक-कुमारी के जलधर भी गाते शुभे! तुम्हारे गीत।
इस विशाल मानव मंदिर की छविमय दीपशिखा सी स्नात।
क्षितिज-फूल पर उतर उषा सी बरसो जग में ज्योति प्रभात॥

—(डा०) राजकुमार पाण्डेय 'कुमार'

लाल चीन में शिक्षा की प्रगति

चीनी शिक्षा के विषय में साफ साफ कहते हैं कि वे एक निश्चित राजनैतिक उद्देश्य से शिक्षा का प्रचार करते हैं। वे यह सर्वमान्य नहीं मानते कि शिक्षा से जानकारी उतनी नहीं बढ़ती जितना शिक्षित जानकारी का ढंग सीख जाता है। वहाँ शिक्षा अपने ही उद्देश्य से नहीं दी जाती और न ही व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए। उनके वर्तमान नेताओं ने श्रमिक वर्ग के शक्ति संचय और उसकी संस्कृति के विषय में जो निर्णय कर रखा है वही व्यावहारिक रूप में चीनी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य है। दूसरे शब्दों में शिक्षा के माध्यम से चीनी कम्युनिस्ट दल की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं।

लालचीन की शैक्षिक नीति :—

उनकी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के एक सदस्य हैं लिन फ्रांग। २ जून १९६० के एक सम्मेलन में इन्होंने निर्दय स्पष्टता से इस प्रकार राष्ट्र की शैक्षिक नीति व्यक्त की कि "हम अपने देश के साँस्कृतिक और शैक्षिक उद्योगों के माध्यम से जनता को साम्यवादी विचारधारा के अनुकूल करते हैं, जिससे हमारे श्रमिक वर्ग की अधिनायकी पुष्ट हो सके। अतएव शैक्षिक कार्यक्रम का केन्द्रीय विषय हो जाता है, शिष्यों को एक विचारधारा विशेष से अनुकूलता के लिए ढालना।" चीन के शिक्षा मंत्री यांग शू फेंग कहते हैं कि चीनी नेतृत्व मार्क्स तथा लेनिन की विचारधारा का प्रचार करना और शिक्षितों का सरकार के उद्योगों में सहयोग प्राप्त करना ही विद्यालयों में सारे श्रम का मौलिक तत्व मानता है।

विद्यार्थियों का साम्यवादी प्रशिक्षण :—

विद्यार्थियों के मस्तिष्कों में साम्यवादी विचारधारा जमाने के लिए पहली जरूरत यह है कि उन्हें माँ-बाप तथा परिवार के मानसिक तथा भावात्मक नियंत्रण से स्वतन्त्र कर दिया जाय। इसलिये बच्चे के पालने से निकलते ही उसे एक विचारधारा विशेष में ढालना शुरू कर दिया जाता है। गत वर्ष की एक चीनी पत्रिका में नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित हुआ—"हमारे शिशु माओ नाम लेना सीखने पर ही अन्य शब्द बोलना सीखते हैं। शिशु गृहों अथवा नर्सरी स्कूलों में वे लाल झंडे लिये परेड करते हैं, क्रान्ति के गीत गाते हैं, और दल की जय जय बोलते हैं।" ये बच्चे चार से छः वर्ष तक के हैं। सात से बारह वर्ष तक के बच्चे प्रारम्भिक विद्यालयों में पढ़ते

हैं। उन्हें भी प्रारम्भिक पाठों में राजनैतिक शिक्षा दी जाती है। उन्हें ऐसे वर्गों से घृणा करना सिखाया जाता है जो जमींदारों, पूँजीपतियों और अमरीकियों की श्रेणी में आते हैं। उन्हें पाँच बातों से प्रेम करना भी सिखाया जाता है: "देश-भक्ति, जन-भक्ति, विज्ञान से प्रेम और हाथ के श्रम तथा सार्वजनिक सफाई के लिये लगना।" प्रारम्भिक विद्यालय में पहुंचते ही बच्चे, पायोनियर्स नामक एक राजनैतिक दल में भर्ती हो जाते हैं जो राजनैतिक रंग का बालचर अभियान जैसा है। १३ वर्ष की अवस्था से उनकी माध्यमिक शिक्षा शुरू होती है तब उन्हें मार्क्सवाद के पहले पाठ पढ़ने को मिलते हैं और वे यूथ लीग नामक संस्था में भर्ती होते हैं। अन्ततः विश्वविद्यालय पहुंचने पर उन्हें राजनीति विशेष के लिये व्यापक प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्राथमिक उद्योग :—

अपनी पहली पंचवर्षीय योजना शुरू करने के पहले ही से चीनी अधिकारी देश के लिये शिक्षा का जाल बनाने में लग गये। वास्तव में यह क्रम पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि तक चलता रहा। देश में इंजीनियरों और टेक्नीशियनों की आधुनिक व्यवसाय के लिये बड़ी जरूरत थी। अतएव संख्या को गुण पर वरीयता दी गयी और सोवियत प्रणाली मान ली गयी। जो विश्वविद्यालय विदेशी संस्थाओं से संबद्ध रहे थे वे या तो बन्द कर दिये गये या रूसी परामर्शदाताओं के निदेश में पूर्णरूप से पुनर्निर्मित हुए। शैक्षिक विधियों में रूस की नकल की गई और बहुत सी पाठ्य पुस्तकें तो सोवियत पाठ्य पुस्तकों की अनुवाद थीं या चीनी संस्करण। बहुत से चीनी विद्यार्थी सोवियत रूस गये और सोवियत परामर्शदाताओं का एक दस्ता चीन पहुंचा। उन दिनों रूस से उधार लेने की पराकाष्ठा हो गयी।

तो प्रयोग :—

इस अवधि के भीतर विद्यार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ती रही। सन् १९५६ के अन्त तक आश्चर्यजनक बाढ़ हुई और चीनी नेता इस उन्नति से निःसन्देह प्रसन्न हुए, परन्तु "सौ फूलों" वाला जो प्रयोग उदारता की ओर हुआ तो सन् १९५७ में नेताओं को कड़ुवी निराशा का सामना करना पड़ा। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों और शिक्षकों ने अपनी सरकार की आलोचना की झड़ी लगा दी, तो अधिकारी वर्ग यह जानकर भयभीत हो गया कि ये लोग अपनी बुर्जुआ व्युत्पत्ति से तब तक स्वतन्त्र नहीं हो पाये थे। अतएव स्कूलों, कालेजों और सर्वोच्च शिक्षालयों में विचारात्मक शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चीनी सरकार ने प्रत्यक्ष रूप में मान

लिया। श्रमिक वर्ग अपना अस्तित्व मानने लगे—उसे यह सिखाने की आवश्यकता नेताओं ने कठोर रूप में समझ ली। "सौ फूलों" वाली भद्द के बाद "विशाल छलाँग मारने" वाले अभियान में शिक्षा सुधार को जीवन्त भाग नसीब हुआ। राजनैतिक शिक्षा के साथ उत्पादक तंत्र की व्यवस्था की गयी और लाल सरकार की यही नीति घोषित हुई।

अध्ययन और श्रम :—

'श्रम के साथ उतना ही अध्ययन' वाली नीति सक्रिय करने के लिये नियमित विद्यालयों के साथ इस मिश्रित उद्देश्य के विद्यालय चालू हुए। रेडल्फैग नामक पत्रिका के सितम्बर १९५८ के अंक में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रचार निदेशक लू तिंग यी ने इस प्रणाली का महत्व समझाया। उसका कहना था कि श्रम और अध्ययन के समान मात्रा में मिश्रित विद्यालयों द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन को तो सहायता मिलेगी ही, विद्यार्थी आधा दिन अध्ययन करेंगे और बाकी दिन खेत पर या पड़ोस के कारखाने में वितायेंगे, तो मानसिक और शारीरिक श्रम का पुराना भेद-भाव भी मिट जायगा जो साम्यवाद की प्राप्ति के लिये पहली जरूरी चीज है। विद्यार्थियों के मुफ्त श्रम से उत्पादन बढ़ गया। इससे वच्चों पर श्रम भार अवश्य लदा, परन्तु अपने आप पर खुश साम्यवादी चिन्तन को इसकी परवाह न थी। इस प्रणाली द्वारा श्रम के प्रति एक नवीन और स्वस्थ्य भावना पुष्ट हुई और कुनफजे के जमाने से चालू वह प्रतिक्रिया टूट गयी जिससे हाथ के श्रम पर लोग घृणा करते थे।

विकास की प्रगति :—

इस अवधि के भीतर चीनी शिक्षा की मात्रा में भारी विकास हुआ और शैक्षिक प्रबन्ध में भी परिवर्तन हुआ। दल की निगरानी और निदेशन में विद्यालयों को लाने के लिये दल के सदस्यों को विद्यालयों के मामलों में भाग लेने का अधिकार दिया गया और दल के बहुत से अधिकारी ऊँचे पदों पर नियुक्त हुए जिससे वे शिक्षा के विचारात्मक पक्ष की निगरानी कर सकें। पार्टी की पत्रिका में यह प्रकाशित हुआ कि १९५८ के भीतर पूरे समय तक लगने वाले कालेजों की संख्या २३० से १०६५ तक पहुंच गयी और इनके अतिरिक्त कालेज स्तर की ऐसी संस्थाओं का अस्तित्व विभिन्न क्षेत्रों में हो गया जिनमें शाम या सवेरे ही पढ़ाई होती थी। सन् १९५९-६० में यह संख्या और बढ़ी और उपर्युक्त पत्रिका के ३१ जनवरी १९६० वाले अंक में यह प्रकाशित हुआ कि सर्वोच्च विद्यालयों में पूरे समय तक पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या आठ लाख दस हजार तक वढ़ गई थी। माध्यमिक

विद्यालयों में संख्या १ करोड़ २९ लाख तक पहुंच गयी थी। ९ करोड़ विद्यार्थी प्रारम्भिक विद्यालयों में थे और विभिन्न स्तरों के सुबह-शाम वाले विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या १० करोड़ तक पहुंच गयी थी। राबर्ट गुलेन के मतानुसार प्रारम्भिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या ८ से ९ करोड़ तक है। माध्यमिक विद्यालयों में ७० लाख से अधिक और कम से कम ८ लाख विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में। इसके अर्थ होते हैं कि चार वर्ष के भीतर संख्या में कुछ कमी हुई है, यद्यपि चीनी उद्योग में कोई ढील नहीं हुई है।

गिरावट का कारण :—

संख्या में गिरावट का कारण यह हो सकता है कि सन १९६१ में अधिकारियों की समझ में आ गया कि देश की कृषि पर तुषारपात होने के कारण वे एक निश्चित सीमा के बाहर शिक्षा, संस्कृति और कला के विकास में पूंजी का विनियोग न कर सकेंगे। उनके एक दैनिक समाचारपत्र नेके ६ अगस्त १९६१ के अंक में साफ-साफ मान लिया कि "हमारी बुनियादें कमजोर हैं ओर कई वर्षों से लगातार प्राकृतिक प्रयोगों के कारण कृषि से उत्पादन में बहुत कमी हुई है। इसलिए इस समय शैक्षिक विकास के लिए अधिक व्यय करना असम्भव है।" रूसी विशेषज्ञों और परामर्शदाताओं के अपने देश वापस जाने पर चीनियों का संकट और भी बढ़ गया। यों १९६१-६२ में वहाँ अध्ययन के कुल समय में बहुत भारी कमी हुई। उन दिनों सामान्य विषयों की पढ़ाई पर अधिक जोर दिया गया और साम्यवादी प्रशिक्षण में कमी कर दी गई।

साम्यवादी प्रचार फिर :—

परन्तु आगे चल कर यह सिद्ध हो गया कि शासन की नीति में कोई अन्तर नहीं आया था। ज्यों ही संकट के वर्ष समाप्त हुए कि अधिकारियों ने फिर साम्यवादी प्रशिक्षण पर जोर देना शुरू कर दिया। उनके एक दैनिक समाचारपत्र ने अपने २७ मार्च ६३ के अंक में यह तर्क प्रस्तुत किया कि शैक्षिक नैपुण्य की उन्नति में वर्ग भावना और साम्यवादी ज्ञान का प्रमुख महत्व है। उसने विद्यार्थियों को देहात में जाकर उत्पादक श्रम में हाथ बटाने और किसानों के साथ क्रान्तिकारी समाज परिवर्तन में योग देने के लिए प्रेरित किया। उसने माओ-से-तुंग के नाम की दुहाई दी और उसके इस वक्तव्य का प्रचार किया गया कि बुद्धिवादियों में वही लोग क्रान्तिकारी माने जा सकते हैं जो ठोस रूप में श्रमिकों और किसानों का साथ दें। माओ के नाम की दुहाई

देकर एक अन्य दैनिक पत्र ने अपने १८ अगस्त' ६४ के अंक में बयान दिया कि "शिक्षित युवकों को क्रान्तिकारी बनाने का मौलिक मार्ग यही है कि वे श्रमिक बनकर श्रमिकों और किसानों से आत्मसात् हो जाँय और साम्यवादी भावना रखते हुए दस श्रमिक बनें। सभी प्रकार के शोषण और सभी दोषों या खराबियों की जड़ श्रम से बचने तथा दूसरे के श्रम से लाभ उठाने में मिलती है। अब हम चाहते हैं कि बुद्धिवादी श्रमिक हो जायँ और किसान तथा श्रमिक बुद्धिवादी हो जायँ। इस आदान-प्रदान द्वारा ही वे साम्यवादी निर्माण की वेहतर सेवा कर सकेंगे।"

नये प्रयोग :—

इन सब बातों से प्रत्यक्ष है कि चीनी अधिकारी अपने ही दृष्टिकोण से शैक्षिक सुधार के काम में पूर्ण रूप से संलग्न हैं। कुछ समय तक तो उन पर रूसी शिक्षा प्रणाली का जादू अवश्य रहा, परन्तु अब वे अपनी शिक्षा प्रणाली किंचित भिन्न साँचे में ढाल रहे हैं। शिक्षा शास्त्री राबर्ट गुलेन ने जब चीन की सैर की तो उसने देखा कि वहाँ के माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यक्रम प्राय: वैसा ही था जैसा कि पाश्चात्य देशों में परन्तु कुछ समय से वे परीक्षा प्रणाली के संशोधन में संलग्न हैं। यहाँ भी माओ ही उनका प्रमुख प्रेरक है। जॉन राबिन्सन का कथन है कि आजकल उसे परीक्षा प्रणाली की विशेष चिन्ता है। एक साप्ताहिक पत्र के ५ दिसम्बर '६४ के अंक में उसके दो प्रश्न प्रकाशित हैं—"शिक्षक किस लिए एक निश्चित अवधि के पश्चात् अपने शिष्यों पर अतिक्रमण करते रहते हैं? क्या उन्हें कोई वेहतर राह नहीं दिखती?" कदाचित् शंघाई के चिओतुंग विश्वविद्यालय ने इस ओर मार्ग-दर्शन किया है। दिनांक ९ अक्तूबर '६४ पेकिंग की आकाशवाणी ने यह सूचित किया कि इस विश्वविद्यालय ने नई परीक्षा प्रणाली प्रारम्भ की है जिसमें प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विद्यार्थियों को अपनी पाठ्य पुस्तकों से सहायता लेने की अनुमति दी जाती है। पता चला है कि इस प्रणाली से विद्यार्थियों की चिन्तन शक्ति बढ़ती है और जो कुछ वे सीखते हैं उसे वे पचा भी पाते हैं। पाश्चात्य देशों में भी कुछ विश्वविद्यालय यह प्रणाली काम में ला रहे हैं। चीनी अधिकारी अब यह विचार कर रहे हैं कि क्यों न यह प्रणाली उनके पूरे राष्ट्र में चालू कर दी जाय। आकाशवाणी और टेलीविज़न शिक्षा क्षेत्र में अपनी सरकार से सहयोग कर ही रहे हैं।

—चायना रिपोर्ट से साभार

शिक्षक और उनका प्रशिक्षण

(प्राध्यापक प्रभाकर रायज़ादा एम० कॉम०, एम० एड०, भोपाल)

प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र की अपनी स्वतन्त्र शिक्षा-व्यवस्था होती है जिसके आधार पर नवीन सन्तति को स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता में दीक्षित किया जाता है। स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना का विकास उस दर्शन के आधार पर होता है जो किसी शिक्षा-व्यवस्था के संचालन का मूल कारण होता है। आज भारतीय प्रजातन्त्र बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार की विश्रृंखलताओं से ग्रस्त है। जब हम देश की आंतरिक स्थिति की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि यहाँ भाषा, धर्म तथा जाति के नाम पर सदैव अनेकों झगड़े उठा करते हैं। हिंदी को राज्य-भाषा बनाने के प्रश्न पर ही मद्रास आदि प्रान्तों में दंगे और तोड़-फोड़ की क्रियायें भयंकर रूप में प्रारम्भ हो गई हैं। इसके साथ ही प्रांतीयता एवं उत्तर-दक्षिण वाद का झगड़ा भी जड़ पकड़ता जा रहा है। इन्हीं मतभेदों ने देश की एकता तथा राष्ट्रीय दृढ़ता को पंगु एवं निश्चेष्ट बना दिया है। बाह्य स्थिति की ओर देखने पर हमें ज्ञात होता है कि तिब्बत को आत्मसात् करने के पश्चात चीन ने अपनी विस्तारवादी नीति का परिचय दिया है, पाकिस्तान तथा बर्मा में सैनिक शासन स्थापित हो गया है और अब चीन तथा पाकिस्तान भारतीय सीमाओं पर दांत अड़ाये हुए है। भारतीय प्रजातन्त्र के भय का यह बाह्य उपादान भी है। भारतीय शिक्षा को वर्तमान में इन बाह्य एवं आन्तरिक समस्त चुनौतियों का एक साथ सामना करना पड़ रहा है।

समाज का पुनर्निर्माण एवं उसकी प्रगति शिक्षा के द्वारा होती है। यह सत्य निर्विवाद रूप से सभी स्वीकार करते हैं कि समाज एवं राष्ट्र की प्रगति, पुनर्निर्माण एवं उन्नति के लिये जिन सामाजिक सेवाओं का संचालन किया जाता है उनमें शिक्षक का महत्व सर्वोपरि है। शिक्षण कार्य एक राष्ट्रीय सेवा है। शिक्षकों को "मानव-आत्मा का कलाकार" कहा गया है। इसीलिये, समाजशास्त्री उत्तम से उत्तम शिक्षकों की खोज में अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। तब, **शिक्षकों का वास्तविक स्वरूप कल क्या था, आज क्या है और भविष्य में क्या होना चाहिये**— यह एक शाश्वत प्रश्न है, जिसका हल

समस्त राष्ट्रों के शिक्षा शास्त्री तथा समाज-शास्त्री अनवरत सोच रहे हैं। और, इस प्रश्न का व्यापक सम्बन्ध भी इस बात से है कि हमारी प्रशिक्षण संस्थायें किस प्रकार की थीं, वे कैसी हैं और उन्हें किस प्रकार का होना चाहिये।

शिक्षण एक कला है, साथ ही यह एक विज्ञान भी है। अच्छा शिक्षक मानव के चरित्र के निर्माण में वही कार्य करता है जो एक इमारत में एक इंजीनियर। उसके व्यवहार में एक वैज्ञानिक की तरह त्रुटिरहित शुद्धता तथा माता-पिता की तरह सहानुभूतिपूर्ण मेधा का बहुत ही सुन्दर संमिश्रण होता है। अतः शिक्षण कार्य को सुन्दर बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षकों को शिक्षण सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान हो ओर उनका चारित्रिक स्तर ऊँचा हो। शिक्षकों की भी शिक्षा होती है और उन्हें शिक्षा-शास्त्र का अध्ययन करना पड़ता है। इसके लिये प्रशिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था है। अतः यहाँ हम देखेंगे कि "शिक्षक-प्रशिक्षण" का अर्थ क्या है, उसकी परिभाषा क्या है एवं व्यावहारिक क्षेत्र में इसका महत्व क्या है?

शिक्षक प्रशिक्षण : व्याख्या

"शिक्षक-प्रशिक्षण" में दो शब्द हैं—(१) शिक्षक, (२) प्रशिक्षण। अतः इन दोनों का पृथक-पृथक अर्थ समझ लेना परम आवश्यक है। शिक्षा के शब्दकोष में शिक्षक शब्द का अर्थ इस प्रकार समझाया गया है—"वह व्यक्ति शिक्षक कहलाता है जिसे व्यक्तिगत या सार्वजनिक शैक्षणिक संस्था में विद्यार्थियों अथवा शिष्यों को सीखने के अनुभवों का संचालन एवं निर्देशन करने के लिये नियुक्त किया जाता है।"

"शिक्षक" शब्द का धातु रूप "शिक्ष + अक" है जिसका अर्थ "सीखने वाला" और "सिखाने वाला" दोनों ही है। "शिक्ष्" शब्द का ही तद्‌भव रूप "सीख" है, जिसका अर्थ उपदेश देना है। इस प्रकार "शिक्षक" शब्द का अर्थ "ज्ञान प्राप्त कराने वाला" और "ज्ञान देने वाला" दोनों ही हो जाता है। प्राचीन काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध ज्ञान अथवा उपदेश देने और ग्रहण करने तक ही सीमित था। भारतवर्ष में और पश्चिमी देशों में भी शिक्षक का कार्य इसी अर्थ में सीमित था। शिष्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से शिक्षक के पास जाता था और शिक्षक अपने ज्ञान की समस्त पूंजी शिष्य को सौंप देता था।

शिक्षक का अँग्रेजी पर्याय "Teacher" है जो "Teach" से बना है। "Teach" शब्द का अर्थ है— अध्यापन करना, शिक्षा देना, पढ़ाना,

उपदेश देना, सिखाना, परिचित कराना, समझाना आदि । अत: “Teacher” शब्द का अर्थ है— अध्यापक, शिक्षक और गुरु। टीचर को अंग्रेजी में “एज्यूकेटर” भी कहते हैं जो लेटिन के दो शब्दों “ई” और “डचूको” से बना है। “ई” का अर्थ है “भीतर से” और “डचूको” का अर्थ है वाहर निकालना। इसके अनुसार “एज्यूकेटर” का अर्थ बच्चे के आन्तरिक ज्ञान, गुणों और शक्तियों का इस प्रकार विकास करने वाला है कि बच्चे का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास सम्भव हो सके। लेटिन में एक दूसरा शब्द “Educare” है जिसका अर्थ “शिक्षा देना”, “पालन करना”, “उन्नत करना” है। “एज्यूकेटर” शब्द इसी “एजूकेयर” शब्द से निकला है जिसका अर्थ ऐसी प्रक्रिया है जो बच्चे को शिक्षित करती, उसका पालन करती और उसकी उन्नति करती है। इस अर्थ के ग्रहण करने पर शिक्षक केवल ज्ञान का साधन उपस्थित करने वाला ही नहीं रह जाता; वह बच्चे का शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक रूप से पालन करने वाला भी होता है और उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का आधार बन जाता है।

“प्रशिक्षण” शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है— (१) “प्र” (२) “शिक्षण”। “प्र” का अर्थ है “विशेष” तथा “शिक्षण” का अर्थ “शिक्षा” से लिया जाता है। अत: प्रशिक्षण शब्द का अर्थ है— किसी व्यवसाय अथवा कला-कौशल के सम्बन्ध में दी जाने वाली विशेष क्रियात्मक शिक्षा। दूसरे शब्दों में किसी व्यवसाय, कला, शिल्प आदि की व्यावहारिक रूप में निरन्तर कुछ समय तक दी जाने वाली विशेष शिक्षा प्रशिक्षण कहलाती है।

शिक्षक-प्रशिक्षण

शिक्षक-प्रशिक्षण को अन्य शब्दों में “शिक्षकों की शिक्षा” (Teacher Education) भी कहते हैं। अत: शिक्षण व्यवसाय के सम्बन्ध में दी जाने वाली क्रियात्मक विशेष शिक्षा “शिक्षक प्रशिक्षण” कहलाती है। शिक्षा के शब्दकोष में “शिक्षकों की शिक्षा” का अर्थ इस प्रकार समझाया गया है— (१) शिक्षक-प्रशिक्षण के अन्तर्गत सभी सविधिक एवं अविधिक क्रियायें एवं अनुभव सम्मिलित किये जाते हैं जो एक व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय के सदस्य बनने का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के योग्य बनाने में सहायक होते हैं अथवा उत्तरदायित्व को अधिक प्रभावशाली ढंग से निभाने में मदद करते हैं। (२) शिक्षक-प्रशिक्षण क्रियाओं तथा अनुभवों का वह कार्य क्रम है जो एक

शिक्षण संस्था द्वारा उन्नत किया जाता है और यह संस्था ऐसे व्यक्तियों का निर्माण एवं विकास करती है जो शिक्षण कार्य के लिये अपने को तैयार करते हैं या शिक्षण व्यवसाय में कार्य रत हैं।

शिक्षक–प्रशिक्षण का महत्व

"A teacher can never truly teach, unless, he is still learning in himself. A lamp can never light another lamp unless it continues to burn its own flame."

—Rabindra Nath Tagore

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कितनी सुन्दरता से उपर्युक्त शब्दों में शिक्षक--प्रशिक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। एक दीपक दूसरे दीपक को कभी नहीं प्रकाशमान कर सकता जब तक कि उसकी ज्योति स्वयं भी प्रज्वलित न रहे। उसी प्रकार एक अध्यापक कभी भी अध्यापन कार्य नहीं कर सकता यदि वह स्वयं भी अध्ययनरत न हो। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक के लिये प्रशिक्षण अनिवार्य है क्योंकि बिना प्रशिक्षित हुए वह समुचित ढंग से शिक्षण कार्य परिपूर्ण नहीं कर सकता। यह सत्य है कि किसी समय अध्यापन कार्य के लिये वह व्यक्ति भी उपयुक्त समझ लिया जाता था, जो इस कार्य में विज्ञ हो। उसने अध्यापन कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया है या नहीं इस पर ध्यान नहीं दिया जाता था। किंतु अब समय के अनुरूप आवश्यकताओं में भी परिवर्तन हुआ है। दिन प्रति दिन हम विकास पथ पर बढ़ते चले जा रहे हैं—"प्रगति के चरण कभी रुके नहीं। प्रगति ही तो जिन्दगी का लक्ष्य है।" पाश्चात्य विचारक रस्किन का कथन है, "कोई भी अध्यापक सफल अध्यापन नहीं कर पाता यदि वह अध्यापन कार्य करना चाहता है।" ["No one ever teaches well who wants to teach."]

रस्किन के इस कथन का अभिप्राय यह है कि शिक्षक को भी विद्यार्थी बनना पड़ता है और जो शिक्षक अपने आप में अध्ययन की प्रवृत्ति रखता है वही सफल शिक्षक भी हो पाता है। हम देखते हैं कि प्रशिक्षण विद्यालय में अध्ययन करने वाले शिक्षक इस अवधि में स्वयं भी विद्यार्थी ही रहते हैं। अतः शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शिक्षक में विद्वत्ता के साथ कुछ अन्य विशिष्ट गुण भी अपेक्षित हैं और प्रशिक्षण द्वारा ही उसके इन गुणों का विकास हो पाता है। प्रो० हमायूँ कबीर का कथन है—"आप किसी बर्तन से वही वस्तु निकाल सकते हैं जो आपने उसमें डाली है। यदि

कोई शिक्षक छिछला व शिक्षक के गुणों से रहित है, यदि उसके अन्दर बालक का निर्माण करने की शक्ति नहीं है तो वह छात्रों के मन को स्फूर्ति व उमङ्ग से कभी नहीं भर सकेगा और उनकी सुन्दर भावनाओं को क्रियाओं में बदलने में असफल रहेगा और यदि अध्यापक स्वयं उत्साह व उमङ्ग तथा शक्ति के प्रकाश से प्रकाशित नहीं है, यदि वह खुद शमा (मोमबत्ती) नहीं है तो भला वह बच्चों के अन्दर शक्ति व उमङ्ग का प्रकाश कैसे पहुँचा सकता है—वह बच्चों के अन्दर क्रियाशीलता की ज्योति कदापि नहीं सुलगा सकता।"

★ ★ ★

❀ बच्चों के प्रति ❀

स्वतन्त्र भारत के निर्माता जवाहरलाल जी नेहरू बच्चों से बहुत प्रेम करते थे और संसार के सभी गोरे, काले, पीले और सांवले बच्चों के वह 'चाचा' थे। वह इनके माता-पिता के भाई बन गये थे। आजकल भाई-भाई संकुचित स्वार्थ वश लड़ते दिखते हैं। जवाहरलाल जी राष्ट्रपिता गांधी के उत्तराधिकारी होने के नाते भेद-भावना से मुक्त होकर संयुक्त राष्ट्र-संघ के माध्यम से व्यापक सत्य, अहिंसा और शांति का प्रचार करते रहे थे। अपनी अवस्था के सभी बच्चों के साथ घुल-मिल कर खेलना तुम्हारे लिये स्वाभाविक है। इसीलिए तुम 'चाचा' के प्यारे रहे। यही स्वभाव विकास करता रहे, तो तुम्हारे वयस्क होने के समय तक संयुक्त राष्ट्र-संघ का पुनीत उद्देश्य सफल होगा, स्वर्गीय 'बापू' तथा चाचा की आशाएँ पूरी होंगी और तुम्हारे भारत को 'जगद्गुरु' का वह सम्मान प्राप्त होगा जिसका अधिकारी वह अपने सुनहरे तथा सुन्दर अतीत में था।

मुदर्रिस की बात

[सन् १९५८ में पं० जवाहरलाल नेहरू भारतीय राष्ट्र के कर्णधार थे। सो दिनांक २९ सितम्बर को इन कर्णधार की सेवा में एक अकिंचन नागरिक ने सार्वजनिक महत्व के सात पत्र भेजे। पत्र अंग्रेजी में थे, इस पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी में होता है और सातवाँ पत्र ही इसके सेवा-क्षेत्र में है। अतएव उस सातवें पत्र का अविकल हिंदी अनुवाद अब प्रकाशित किया जा रहा है। उस समय देश को पाकिस्तान की ओर से ही खतरा था। अब हमारा उत्तरी सीमान्त भी अरसिथत है। तब देश का विदेशी अन्न से पेट पलता था; वही अब भी है। परन्तु अब मँहगाई विकराल रूप में बढ़ रही है। तब भ्रष्टाचार की यदा-कदा ही चर्चा होती थी। अब वह व्यापक दीखने लगा है। तब तक शिक्षक एक सूत्र में संगठित नहीं हुए थे और वेतन-वृद्धि के लिए उनके संगठन ने उग्र रूप नहीं धारण किया था। अब शिक्षक बंधु वेतन-वृद्धि के लिए संगठित हो गये हैं और सार्वजनिक परीक्षा के क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय सरकार से मोर्चा भी लिया है। अतएव प्रार्थना है कि उपर्युक्त संदर्भ में पंडित जी को लिखा गया यह अन्तिम पत्र पढ़ा जाय। —सम्पादक]

मैं उस नगर का वासी हूँ जहाँ एक-दूसरे से मिलते हैं तो स्वार्थ की बात अन्त में ही की जाती है। अपने नगर की परम्परा के अनुसार मुझे अपने इस अन्तिम पत्र में ही मदरसे की बात करने की अनुमति मिले।

हमारे स्वर्णिम अतीत में शिक्षक को समाज में सर्वोपरि 'गुरु' पद प्राप्त था। अंग्रेजी भाषा में शिक्षक के लिये 'पेडागाग' शव्द है जिसका मौलिक अर्थ है—वह दास जो बच्चों को विद्यालय पहुंचाने जाता है। यह अर्थ ब्रिटिश समाज में शिक्षक के प्रति भावना का प्रतीक है। अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति व्यापक अविश्वास था, तो भारतीय शिक्षक भी उनके अविश्वास के पात्र थे। यह अविश्वास उन्होंने शिक्षा-क्षेत्र में परीक्षा प्रणाली द्वारा घटित किया। अतीत में शिक्षक ही अपने शिष्य के चरित्र और ज्ञान का प्रमाण पत्र देने का अधिकारी था। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में चरित्र और स्वास्थ्य की अवहेलना हुई। केवल सबकों को याद रखकर उन्हें लेखनीबद्ध करने की शक्ति की जांच की जाने लगी और जाँच का काम शिक्षक से विभिन्न परीक्षकों को सुपुर्द हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता के बारहवें वर्ष भी यह क्रम जारी है। शिक्षक के प्रति पहले जैसा अविश्वास है, यद्यपि हमारे शासक अपने सगे ही हैं।

स्वातंत्र्य संघर्ष के पच्चीस वर्ष तक कूटनीति हमारे विद्या मंदिरों में पैठी रही। प्रणय और समर में सभी कुछ जायज है। परन्तु समर के हमारे पक्ष में समाप्त होने पर कूटनीति को हमारे विद्यालयों से निकल जाना चाहिए था। अब उसके कुचक्रों का वहाँ कोई बहाना नहीं। परन्तु अब थोड़े-बहुत शिक्षक और विद्यार्थी कूटनीति के प्रति पहले से अधिक आकृष्ट हैं, क्योंकि भ्रमवश वे समझते हैं कि कूटनीतिक चक्र-संचालन में सफल होने पर ही वे पुरस्कृत होंगे।

विद्या मन्दिर में पैठते ही कूटनीति दानव का भीषण रूप धारण करती है। स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के दलबंद सदस्य अधिकृत शिक्षकों और विद्यार्थियों के समय का शोषण करते हैं। गैर सरकारी विद्यालयों की अधिकांश प्रबन्ध समितियों में साम्प्रदायिकता या वर्गवादिता का बोलबाला रहता है। शिक्षक इन संस्थाओं में चालू कुचक्रों के शिकार होते हैं और विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षार्थी साम्प्रदायिकता के विष से प्रभावित होते हैं। विश्वविद्यालयों की प्रायः उतनी ही दुर्दशा है, यद्यपि इनका संचालन सरकार की सहायता से ही होता है। एक बहुत बड़े विश्वविद्यालय की दुर्दशा की बात आपके सामने आ चुकी है। परन्तु अधिकांश विश्वविद्यालयों की दशा बहुत बेहतर नहीं और संविधान इस दुर्दशा के मौलिक कारण को मान्यता देते जान पड़ता है, क्योंकि वैतनिक शिक्षकों को चुनाव लड़ने और विद्यार्थियों के प्रति अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करने की छूट प्राप्त है।

मुर्दरिस की शिकायतों में उसकी मजदूरी की कमी को मैं अन्तिम स्थान देता हूं, यद्यपि वह स्वयं, और स्वभावतः इस शिकायत को पहली जगह देता है। वह अपनी मज़दूरी की तुलना चपरासी या मेहतर के वेतन से किया करता है।

व्यापक संघर्ष में शिक्षकवर्ग के पिस जाने से मैं उतना चिंतित नहीं हूं जितना इस बात से कि शिष्यों की शिक्षा की अवहेलना करके वह शासन के प्रति अपने कोप का बदला लेने लगा है।

शिक्षा का विस्तार अवश्य हुआ है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उसके नैतिक और मानसिक स्तर की पिछले वर्षों में भारी अवनति हुई है। यह कल्पना कितनी कष्टदायक है कि जीवन-संघर्ष की तैयारी में हमारे उत्तराधिकारी हमसे पीछे होंगे।

आपसे हमें कई स्फूर्तिदायक नारे मिले हैं। मुझे अपनी बिरादरी की ओर से तीन नारे लगाने दीजिये—

१—हम पर विश्वास करो।

२—हमें कूटनीति से बचाओ।

३—हमें खाना दो।

हमें खाना देने की समस्या बहुत भारी है। हमें भरपेट खिलाना आपके लिये कठिन होगा, क्योंकि यदि देश के सभी बच्चे हमें सुपुर्द होते हैं और उनकी शिक्षा का स्तर उन्नत होना है तो हमारी संख्या में अत्यधिक वृद्धि आवश्यक होगी। परन्तु निस्सन्देह करदाता पर कोई भार डाले बिना आप हम पर विश्वास कर सकते हैं; कूटनीति से हमारी रक्षा कर सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी इन देनों के ही आधार पर शिक्षा के स्तर में यथेष्ट उन्नति के मार्ग खुल जायँगे। रूढ़िग्रस्त छुट्टियों तथा पढ़ाई के घण्टों के साथ अनैतिक और निरर्थक परीक्षा प्रणाली के कारण होनहारों के निर्माण-युग के सर्वोत्तम भाग की बरबादी होती रहती है। यह बरबादी दरजा-ब-दरजा बढ़ती जाती है और विश्वविद्यालय में अपनी चरम सीमा पर पहुंचती है। इस शिक्षा क्षेत्र में विद्यार्थियों की उम्र का तकाजा है कि उनका पूरा समय स्वस्थ, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक कार्यकलापों में संलग्न रहे, जिससे शैतान को उनपर सवार होने का मौका न मिले। कैफियत यह है कि इस क्षेत्र में काम के दिन छुट्टियों से कम हैं और छुट्टियों का कोई सदुपयोग नहीं होता। यदि शिक्षकों के प्रति विश्वास की नीति अपनाई जाय और कूटनीति से वह सुरक्षित हो जायँ, तो स्वधर्म-परायण शिक्षकों को आगे आने का मौका मिले, विद्यार्थियों पर विश्वास की मात्रा बढ़े तो गुरु के प्रति उनकी भक्ति बढ़े, उनकी दायित्व-भावना का विकास हो और सच्ची नागरिकता के लिए उनकी बेहतर तैयारी होने लगे। वैज्ञानिक आधारों पर बनी विद्यार्थी लेखा प्रणाली के साथ लिखित परीक्षा के वैज्ञानिक संशोधन की योजना शासन के सामने है। यह स्वीकृत होकर यथेष्ट निगरानी के साथ प्रयुक्त हो तो शीघ्र ही चालू परीक्षा प्रणाली की जगह ले सकेगी। कूटनीति से शिक्षक वर्ग की रक्षा करना कुछ अधिक कठिन है। परन्तु इस आवश्यक सुधार का मार्ग प्रशस्त हो सकता है यदि शासन-सूत्र प्राप्त कांग्रेस ही शिक्षालयों को अपने क्षेत्र के बाहर कर दे।

स्वार्थ की बात संक्षिप्त होनी चाहिये। अतएव अपने पत्रों की बकवास सूत्र रूप में प्रस्तुत करके मैं आपसे विदा होता हूं।

आपने गाँधी जी के राजनैतिक उत्तराधिकारी होकर हमारी स्वतन्त्रता और आर्थिक उन्नति का भार वहन किया है, तो विनोबा जी उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं । उन्होंने हमारे नैतिक विकास का बीड़ा उठाया है । आप मातृभूमि के भौतिक प्रतीक हैं तो भारतीय आत्मा विनोबा जी के हृदय-मन्दिर में चेतन है । व्यापक शांति और समृद्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शिखर सम्मेलनों की चर्चा चालू है । प्रार्थना है कि भारतीय शांति और समृद्धि के लिए आप दोनों के शिखर सम्मेलन चालू हों । देश के लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी यदि मेरी बकवास के प्रमुख अंशों पर इन सम्मेलनों में चर्चा हो । आप दोनों देश के सर्वमान्य नेता हैं । जो भी निर्णय आप दोनों की सहमति से होंगे, उनका भारतीय जन सर्वसम्मति से स्वागत करेंगे और उनके कार्यान्वित होने में कोई भी कूटनीतिज्ञ या दल बाधा नहीं डाल सकेंगे । प्रार्थना है कि विनोबा जी से विचार-विनिमय के मौके आपको अकसर मिलते रहें । जय हिन्द !

—'अकिंचन नागरिक'

* * *

संयुक्त राज्य और भारत

आज के भयभीत संसार में मानव की स्वाधीनता और गरिमा में आस्था रखने वाले इन दो महान् गणराज्यों (संयुक्त राज्य और भारत) का सहयोग मानव-जाति के लिए बड़ा भारी आश्वासन है । हमारी हार्दिक कामना है कि परमाणुओं और राकेटों के इस युग में मानव-जाति को महासंहार से वचाने में ६५ करोड़ मानवों के प्रतिनिधि इन दोनों महादेशों और इनके महानतम लोकतंत्रों का सहयोग सफल कर सकें और मानव-जाति धन-धान्य से संपन्न होकर अपने उच्चतम आध्यात्मिक ध्येय की ओर अबाध गति से बढ़ती रहे ।

सार्वजनिक परीक्षाएँ और उनका विकास

दुष्परिणाम

देश के स्वतन्त्र होने पर शिक्षा का जो विस्तार बढ़ा है, उससे कुछ लोग समझते हैं कि जनता की जिज्ञासा इस शिक्षा-विस्तार के मूल में है। वे समझते हैं कि विद्यार्थियों की संख्या इसलिए बढ़ रही है कि माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को पढ़ाना चाहते हैं। स्वतंत्रता के परिणाम-स्वरूप शिक्षा के प्रति जनता में थोड़ी-बहुत जागृति के मूल ज्ञान की जिज्ञासा कम है, परीक्षा के प्रमाणपत्र और उसके पश्चात् सरकारी नौकरी के विस्तृत क्षेत्र में संतति के कहीं लग जाने की आशा अधिक। इस वर्ष उत्तर प्रदेश की हाईस्कूल और इंटरमीजिएट परीक्षाओं में लगभग पाँच लाख परीक्षार्थी बैठे हैं; इसलिए नहीं कि उन्हें अपने ज्ञान की जाँच करानी है, बल्कि इसलिए कि किसो प्रकार प्रमाण-पत्र पाकर अधिकांश होनहार सरकारी नौकरी प्राप्त करने के अधिकारी हों।

शिक्षा और परीक्षा-प्रणाली दो सौ वर्ष हुए, अँगरेज विजेताओं ने हमारे गले उतारी। उसे हम स्वतन्त्र होने के बाद भी गले लगाए हुए हैं। हमारे देश में शिक्षक ही शिक्षा और दीक्षा देते थे। वही परीक्षा लेते थे, वही प्रमाण-पत्र देते थे। शिक्षा में ब्रिटेन, संयुक्त राज्य, जर्मनी, जापान और रूस हमसे कहीं आगे बढ़े हुए हैं। चीन हमारे पीछे था। अब वह तेजी से आगे बढ़ रहा है। ब्रिटेन ने सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली हमारे देश पर लादी कुछ अंश में यह प्रणाली अँगरेजों ने अपनाई और उनके उपनिवेशों ने भी; परंतु जो महत्त्व उसे भारत में प्राप्त है, वह अपनी जन्मभूमि में भी प्राप्त नहीं। यहाँ सार्वजनिक परीक्षाओं की जो धूम रहती है, शिक्षक वंधु 'ट्यूशन' के लिए जितने उत्सुक रहते हैं, 'पास' होने के लिए जिन अनैतिक हथकंडों की शरण परीक्षार्थी लेते हैं और उनसे जिस प्रकार अधिकांश शिक्षक सहयोग करते हैं, उन सब खूबियों का वहाँ नामोनिशान नहीं।

संयुक्त राज्य, जर्मनी, जापान और रूस शिक्षा में हमसे कितने आगे बढ़े हुए हैं, इसकी चर्चा की आवश्यकता नहीं। परन्तु इन देशों के शासन शिक्षक पर विश्वास करते हैं—उसी प्रकार, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों का अपने शिक्षक-वर्ग पर विश्वास था। हमारे देश में सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली नहीं थी। उक्त देशों में भी नहीं है।

क्या पिछड़े देशों में शिक्षक पर विश्वास करने से शिक्षा की हानि होती है ? हम जो कुछ समझते हों, परन्तु चीनी हमारी भाँति शिक्षा में पिछड़े हुए हैं । पंद्रह वर्ष पहले वे हमसे कहीं अधिक चरित्रहीन थे । वहाँ तब सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली नहीं थी; अब भी नहीं है । शिक्षा में आज वे हमसे पीछे नहीं जा रहे हैं, इतना तो मानना ही पड़ेगा ।

इस सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली का सुधार विदेशी शासन में असंभव था, क्योंकि यह प्रणाली जनता के प्रति अविश्वास की नींव पर बनी शासन-प्रणाली की अंग थी । तब इस प्रणाली के कारण परतंत्रता के वातावरण में देश की नैतिकता पर विशेष प्रहार नहीं हो पाता था । परीक्षार्थियों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी । आठ आना प्रति उत्तर-पुस्तक की जाँच पर दिया जाता था, तो उस आठ आने का कुछ मूल्य था और जाँच करने में दायित्व का थोड़ा-बहुत निर्वाह होता था । अब परीक्षार्थियों की संख्या लाखों तक पहुंचती है, परीक्षकों की संख्या हजारों तक जाती है और जाँच का मूल्य एक आना तक पहुंच गया है । तब फोड़ा शरीर के भीतर था, उससे शरीर को विशेष हानि नहीं पहुंच रही थी । अब विकार इतना बढ़ गया है कि रोग छिपाए नहीं छिपता । स्वतन्त्र भारत में नैतिकता की नींव पर ही पुर्ननिर्माण होना है, तो नैतिकता की धारा अपने स्रोतों पर ही दूषित होती हुई दिखाई देने लगी है । विद्यार्थियों को अपने विषय में शिक्षक की राय की परवा नहीं है, उन्हें पाठ्य-पुस्तकों की जरूरत नहीं है । 'श्योर सक्सेस सीरीज' और 'गेस पेपर्स' के सहारे उनका काम बन जाता है । कोई कसर रह जाती है, तो परीक्षा-भवन में उन्हें कुछ शिक्षकों का सहयोग मिल जाता है । वहाँ से हारने पर परीक्षकों तक भी उनकी पहुंच हो जाती है । इस प्रकार प्रमाणपत्र पाकर उनके चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है और वे शिक्षा, शिक्षालय और शिक्षकों के प्रति कैसी भावनाएँ लेकर जीवन-संग्राम में उतरते हैं, इसकी व्याख्या न करना ही उचित है ।

मर्ज का इलाज सम्भव है । हमारे शासनासीन नेता उस दल के हैं, जिसने विदेशी शासन से लोहा लिया । उन्होंने देश को राजनैतिक स्वतन्त्रता दिलवाई । अब यह आवश्यक है कि उतने ही साहस से वे स्वयं मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त करें । परीक्षा प्रणाली के समाप्त करने के उद्योग में उन्हें उस वर्ग का सामना करना है, जिसके इस प्रणाली द्वारा पैसे सीधे होते हैं । परन्तु शासनासीनों को मालूम होना चाहिए कि यद्यपि इस वर्ग की आवाज बुलंद है, परन्तु इस वर्ग की संख्या हजारों के ऊपर पहुँचकर उस शिक्षक वर्ग की संख्या से बहुत कम रह जाती है, जो अविश्वास का पात्र है और जो इस प्रणाली से लाभान्वित नहीं होता ।

इलाज के लिए शिक्षक द्वारा अपने विद्यार्थियों की मानसिक, नैतिक और शारीरिक प्रगति का लेखा रखने की व्यवस्था शासन के सामने प्रस्तुत है। सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली के बंद होने पर कुछ समय तक अनैतिकता की चाहे थोड़ी-बहुत धूम रहे, परन्तु यदि निरीक्षक और शिक्षक-संघ निगरानी की समुचित व्यवस्था कर सकें, तो इस इलाज से विद्यार्थियों के नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। इस इलाज में परीक्षा का बहिष्कार नहीं है, केवल उसे अपनी जगह बदलनी है। पढ़ाई के पश्चात् शिक्षक ही परीक्षा लें, वे ही प्रमाणपत्र दें। आगे पढ़ने के लिए, वैतनिक सेवा के लिए, जिसे भरती होना हो, उसको भरती करनेवाले, उससे काम लेनेवाले, उसकी प्रतियोगी परीक्षा लें। अविश्वास की जगह विश्वास को लेनी है। दासत्व से जकड़े भारतीयों को दायित्व की दीक्षा लेनी है।

सुधार के लिए साहस की आवश्यकता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारे नीति-निर्माता इस गुण से पूर्ण हों।

परीक्षा के लिए, परीक्षा के दौरान में, परीक्षार्थियों के कम-से-कम १५ दिन तो नष्ट होते ही हैं। जहाँ परीक्षा होती है, वहाँ के अन्य विद्यार्थी छुट्टी पाते हैं। शिक्षक और शिष्य, निरर्थक ही नहीं, अनैतिक परिणामों से युक्त काम में लगते हैं। इस बरबादी का निराकरण जब भी हो, परीक्षा के पश्चात् तीन महीने तक उत्तर प्रदेश के पाँच लाख विद्यार्थी किस प्रकार अपने समय का उपयोग करें, इस पर मैंने कई बार अपने विचार प्रकट किए। खतरे की घंटी बजने पर फिर प्रश्न करना है। पाँच लाख युवकों के सामने ४०,००,००० घंटे दैनिक श्रम के होंगे। तीन महीनों में इन घंटों की संख्या ३६,००,००,००० तक पहुंचती है। इन ३६ करोड़ घंटों में कितने घंटे व्यर्थ होंगे? क्या शासन के लिए इस समय का अधिकांश बचाना संभव नहीं? १९६५ का ग्रीष्म तो वैसे ही नष्ट होना है, जैसे पिछले ६५ ग्रीष्म इस शताब्दी के नष्ट हुए। क्या १९६६ का ग्रीष्म हम थोड़ा-बहुत बचा सकेंगे?

लेखे का विकल्प

केन्द्रीय शासन की ओर से नियुक्त सेकंडरी एजुकेशन कमीशन ने सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली के विरुद्ध अपना मत दिया है। वह इन परीक्षाओं की समाप्ति की सिफारिश नहीं कर सका है; परन्तु उसने विद्यार्थियों के लेखे रखने की सिफारिश की है। यदि समुचित निरीक्षण और धैर्य के साथ लेखा-प्रणाली

का प्रचार किया जा सके, तो बहुत शीघ्र यह प्रणाली सार्वजनिक परीक्षा-प्रणाली की जगह ले सकेगी।

इस उद्देश्य से छठी से बारहवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों की लेखा-प्रणाली का मसविदा विचारणीय है। इधर दिल्ली के सेंट्रल इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन के स्वर्गीय आचार्य अनाथनाथ वसुकृत **स्कूल रिकार्ड** देखने में आया। श्री वसुकृत **स्कूल रिकार्ड** जूनियर हाईस्कूल अथवा मिडिल कक्षाओं (६ से ८) के लिए है और अँगरेजी में है। उनका मसविदा आलोचनार्थ भारतीय शिक्षा-मंत्रालय से प्रकाशित है।

टिप्पणियाँ :

(१) इस लेखे के प्रारंभ होने पर स्कालर रजिस्टर बनने बन्द हो जाने चाहिएँ।

(२) इस लेखे की एक नकल विद्यालय के दफ्तर में रहनी चाहिए।

(३) विद्यार्थी के हाथ लेखा अभिभावक के पास सूचनार्थ भेजा जाय। उसके हस्ताक्षर के पश्चात् दफ्तर में वापस हो। यदि विद्यार्थी से खो जाय, तो कक्षा के अनुसार नकल के लिए १) से ५) तक उससे लिये जायँ।

(४) जन्मतिथि के विषय में बहुत से अभिभावक आचार्य को धोखा देते हैं। प्रथम भरती होने पर जन्मतिथि भली प्रकार जाँच करके भरी जाय। शासन से ऐसा प्रवंध हो कि अभिभावक को जन्मतिथि के विषय में धोखा देने का मौका न मिले। पहला स्तंभ भरने के लिए नीचे लिखे सुझाव हैं—

पिता के जीवित रहते वास्तविक अभिभावक वही है। यदि वह जीवित न हो, तो अभिभावक का विद्यार्थी से कौटुम्बिक संबंध स्पष्ट होना चाहिए। यदि पिता जीवित है और विद्यार्थी उसके किसी संबंधी या मित्र के संरक्षण में रहता है, तो स्थानीय अभिभावक का नाम पता सहित दर्ज हो। अभिभावक का व्यवसाय, कुटुम्ब में विद्यार्थी का पद (भाई-बहिनों की संख्या और इनमें उसका पद; माता जीवित है या नहीं, यदि नहीं तो विमाता का आश्रित है या नहीं), अभिभावक के आश्रितों की संख्या और उसकी आर्थिक स्थिति—इन सबकी जानकारी के लिए शिक्षक का प्रतिवर्ष कम-से-कम एक बार अभिभावक के सम्पर्क में आना आवश्यक है। आर्थिक स्थिति तीन प्रकार श्रेणीबद्ध हो सकती हैं—सम्पन्न, साधारण और संकटग्रस्त।

जन्मतिथि का अनिवार्य रजिस्ट्रेशन आवश्यक है।

(५) मासिक परीक्षा उस काम पर हो, जो पिछले महीने में किया गया है। इस मासिक परीक्षा के अतिरिक्त दो और परीक्षाएँ ली जा सकती हैं—एक नवम्बर में और दूसरी अप्रैल में। परीक्षा में प्रश्न यथासम्भव 'एचीव-मेंट टेस्ट' की श्रेणी के होने चाहिएँ।

(६) प्रत्येक जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के प्रिंसिपलों का एक निरीक्षण-पैनल हो, जिससे तीन प्रिंसपल वर्ष में कम-से-कम एक बार जिले के प्रत्येक विद्यालय के लेखे की जाँच करें, प्रश्नपत्रों तथा उत्तर-पुस्तकों का निरीक्षण करें और स्तर की सुरक्षा के लिए समुचित परामर्श दें।

(७) स्वास्थ्य का लेखा ही न रक्खा जाय, स्वास्थ्यरक्षा और शिक्षा का उद्योग भी किया जाय। इस उद्योग की सफलता के लिए पढ़ाई का समय बदलना और कम करना आवश्यक है। यदि दैनिक पढ़ाई के समय में कमी की जाती है, तो वार्षिक पढ़ाई के दिनों की संख्या बढ़नी चाहिए। स्वास्थ्य-परीक्षा के लिए जो मदें लिखी गई हैं, उनका निर्वाह सब विद्यालयों में सम्भव है।

(८) अभी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में डाक्टरी परीक्षा की यथेष्ट व्यवस्था नहीं है। लेखे के मसविदे में डाक्टरी परीक्षा का चालू ढंग मान लिया गया है। गुह्यांगों का परीक्षण सम्भव हो, तो किशोर विद्यार्थियों की कुटेवों से थोड़ी-वहुत रक्षा हो सके। स्वास्थ्य-विभाग को विचार करना है कि गुह्यांगों की परीक्षा सम्मिलित की जाय या नहीं।

(९) समय और उपस्थिति की पाबंदी के लेखे से विद्यार्थी के चरित्र और स्वास्थ्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यदि विद्यार्थी समय की पाबंदी नहीं कर पाता, यदि उसकी अनुपस्थिति एक सीमा के बाहर जाती है, तो टिप्पणी के स्तंभ में अभिभावक का संकेतात्मक बयान आवश्यक हैं।

(१०) आचरण का लेखा रखना आचार्य का प्रधान दायित्व है। जूनियर रेडक्रास, खेल, व्यायाम, स्काउटिंग, समाज-सेवा— इनमें जिन कामों को विद्यार्थी स्वेच्छापूर्वक अपने हाथ में ले और उनका जिस प्रकार निर्वाह करे, उसका लेखा समय-समय पर इस भाग में दर्ज हो। खेल और व्यायाम की प्रतियोगिताओं में विद्यार्थी की 'रैंकिंग' भी यहां दर्ज हो। व्यायाम विशेषज्ञ द्वारा स्वास्थ्य-सुधार के व्यायामों का ब्योरा भी यहाँ दिया जाय। मानिटरी, कैप्टेंसी, यूनियन का पदाधिकार, सहकारी दूकान का प्रबंध जैसे दायित्व के जो काम विद्यार्थी को सुपुर्द हो, उनके सफल या विफल निर्वाह का यहाँ लेखा रहे। अनुशासन में विद्यार्थी जो सहायता करे, उसका उल्लेख हो; उल्लंघन के परिणाम-स्वरूप दंडित होने का उल्लेख भी हो। इसके अतिरिक्त

चरित्र के विषय में जब कोई उल्लेखनीय बात आचार्य के सामने आवे, तो इस भाग में वह तुरन्त दर्ज की जाय और उसकी सूचना अभिभावक के पास पहुंचे।

(११) प्रथम मसविदा यहीं समाप्त होता है। श्री वसुकृत मसविदे में पाँच स्तंभ और हैं। इनके स्वीकृत होने पर प्रस्तुत मसविदे के अष्टम स्तंभ की आवश्यकता नहीं रह जाती। इन स्तम्भों के बढ़ने पर विद्यार्थी के लेखे की वास्तविक पूर्ति होती है। इनके विषय में कठिनाई यही है कि इन्हें भरने के लिए हमारे शिक्षक-बन्धु विशेष रूप से प्रशिक्षित होने चाहिएँ। अतएव प्रस्ताव यह है कि अभी लेखा आठवें स्तम्भ पर ही समाप्त हो जाय। एक ओर लेखा-प्रणाली चालू हो और दूसरी ओर अतिरिक्त स्तम्भों के भरने का प्रशिक्षण प्रारम्भ हो। जब प्रशिक्षित शिक्षकों की यथेष्ट संख्या हो जाय, तो चुने हुए विद्यालयों में आठवां स्तम्भ निकालकर श्री वसुकृत **स्कूल रिकार्ड** में दिये हुए चार-पाँच स्तम्भों पर प्रयोग हो। यहाँ उपर्युक्त **स्कूल रिकार्ड** के पाँच स्तम्भ चार में परिणत होकर ९ से १२ तक क्रमशः भावानुवाद के रूप में ही दिये जा रहे हैं। इन पर टिप्पणियाँ भी वसुजी के आदेशानुसार हैं।

(१२) प्रत्येक अप्रैल मास में आचार्य के नेतृत्व में ९—विद्यार्थी की रुचि, १०—विद्यार्थी की योग्यता, ११—विद्यार्थी की विशेष निर्बलता अथवा योग्यता और १२—विद्यार्थी का व्यक्तित्व— इन चार स्तम्भों के सम्बन्ध में उसके शिक्षकों के मत का संकेतात्मक समन्वय समुचित कालमों में दर्ज हो। श्रेणीबद्ध करने के लिये आगे I, II, III तक लिख दिया जाय। संकेतों का ब्योरेवार अर्थ अभिभावकों को पहले से सूचित कर दिया जाय और कालमों के भरे जाने पर उनकी सूचना अभिभावक के पास अवश्य पहुंचे।

विद्यार्थी की रुचि

(१) स्वास्थ्य सम्बन्धी—विद्यार्थी की पसन्द का खेल या व्यायाम।

(२) मानसिक—जैसे पढ़ना, लिखना, पद्य रचना, पुस्तकालय का उपयोग, कितना और विशेष रूप से किस विषय पर।

(३) क्रियात्मक—जैसे हस्तकला, बागबानी, काष्ठ-कला, भोजन बनाना, सिलाई।

(४) कलात्मक—जैसे चित्रकारी, संगीत, अभिनय, नृत्य।

(५) सामाजिक—जैसे संस्था-संचालन, स्काउटिंग, सेवा-प्रवृत्ति।

(६) मनोरंजन—जैसे चलचित्र, स्टाम्प जमा करना, ताश के खेल, शतरंज।

विद्यार्थी की योग्यता

(१) वाक्‌चातुरी—बोलने की योग्यता; हाजिर जवाबी।

(२) बुद्धि—तर्क की योग्यता।

(३) काम की गति—सही और तेज काम करने की शक्ति।

(४) अनुभव शक्ति—आँख, कान, नाक, जैसी ज्ञानेन्द्रियों से सही और तुरन्त ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति।

(५) क्रियात्मक—हाथ से काम करने की योग्यता।

(६) कलात्मक—कला के प्रदर्शन की क्षमता।

योग्यता तीन श्रेणियों में दर्ज की जा सकती है—I, II और III

विशेष निर्बलताएँ अथवा योग्यताएँ

ऐसी ही निर्बलतायें दर्ज की जायँ, जो विद्यार्थी के मानसिक विकास में विशेष रूप से बाधक हों—जैसे भय, लज्जा, गुस्ताखी, गुमसुम रहना, हीनता की भावना। मन्द बुद्धि अथवा मूर्खता के लक्षण भी दर्ज करने योग्य हैं।

विशेष योग्यतायें भी यहीं दर्ज की जायँ। संगीत, व्याख्यान, अभिनय में असाधारण योग्यता यहां दर्ज होनी चाहिये।

निर्बलतायें अथवा योग्यतायें दो प्रकार श्रेणीबद्ध हों—I, II

व्यक्तित्व

(१) स्वभाव—प्रसन्नता और उमंग की मात्रा।

(२) आत्मविश्वास—प्रत्येक परिस्थिति में अपनी योग्यता पर विश्वास की मात्रा।

(३) लगन—कठिनाइयों के मुकाबले लगन की मात्रा।

(४) सहकारिता—मिलकर काम करने की क्षमता।

(५) मिलनसारी—मात्रा का अनुमान मित्रों की संख्या से।

(६) शील—शील और पर हित-भावना की मात्रा।

(७) भावुकता— भावनाओं, क्रोध, मोह, आसक्ति, मद, पर अधिकार की मात्रा।

(८) दायित्व भावना—विश्वसनीयता की मात्रा।

विद्यार्थी के लेखे का मसविदा (कक्षा ६ से १२ तक)

(१) सामान्य विवरण

विद्यार्थी का नाम ... ...
जन्म तिथि ... ...
जन्म स्थान ... ...
पिता का नाम ... ...
अभिभावक का नाम ... सम्बन्ध ...
पता ... ...
स्थानीय अभिभावक का नाम ... सम्बन्ध ...
पता ... ...

वर्ष	कक्षा	विवरण

* * *

(२) वर्ष ... ... कक्षा ... ... उपस्थिति

जुलाई से अप्रैल तक	गोष्ठियों की संख्या	उपस्थिति	अनुपस्थिति का विवरण	शिक्षक	अभिभावक

* * *

(३) वर्ष ... ... कक्षा ... ... मासिक परीक्षाओं का लेखा

जुलाई से मार्च तक	विषय	प्राप्ताङ्क	शिक्षक	कक्षा-शिक्षक की टिप्पणी और हस्ताक्षर	अभिभावक का टिप्पणी समेत हस्ताक्षर
	प्रत्येक विषय के लिये ऐसे ही अन्य कालम				

* * *

(४) वर्ष ··· ··· कक्षा ··· ··· **टर्मिनल परीक्षाओं का लेखा**

	विषय				आचार्य का टिप्पणी समेत हस्ताक्षर	अभिभावक का टिप्पणी समेत हस्ताक्षर
	I	II	III	प्राप्तांकों का जोड़		
I						
II						
III	ऐसे ही कालम समुचित संख्या में					

* * *

(५) वर्ष ··· ··· कक्षा ··· ··· **बाढ़ का लेखा**

	तौल	ऊँचाई	परीक्षक	अभिभावक
जुलाई				
जनवरी				

* * *

(६) वर्ष ··· ··· कक्षा ··· ··· **शारीरिक परीक्षा**

आँख	कान	गला	दाँत	फेफड़े	हृदय

जिगर	तिल्ली	गुर्दे	गुह्य भाग		विशेष विवरण
			१	२	

चिकित्सक शिक्षक अभिभावक

* * *

(७) वर्ष … … कक्षा … … **चिकित्सक का पृष्ठ**

तारीख	निदान	चिकित्सा का आदेश	चिकित्सक	अभिभावक -

(८) वर्ष … … कक्षा … **आचरण, खेल तथा व्यायाम का लेखा**

तारीख	विवरण	आचार्य का हस्ताक्षर	अभिभावक का हस्ताक्षर

★ ★ ★

यों तो सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली भारत भर में चालू है; परन्तु जन संख्या के हिसाब से उत्तर प्रदेश भारत का सब से बड़ा राज्य हैं और इस राज्य की हाई स्कूल तथा इंटरमीजिएट परीक्षाओं में जितने विद्यार्थी बैठते हैं, उतने भारत के भीतर किसी सार्वजनिक परीक्षा के लिये नहीं बैठते। सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में भारत संसार का अनोखा राष्ट्र है। अतएव उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल तथा इंटरमीजिएट परीक्षाओं की जोड़ की संसार के किसी राष्ट्र में, कहीं भी, कोई सार्वजनिक परीक्षा नहीं होती; यद्यपि यह भी सही है कि सभ्य राष्ट्रों की मण्डली में भारतीय जन साक्षरता में सब के पीछे हैं और भारत के भीतर उत्तर प्रदेश अन्य राज्यों के पीछे है।

उत्तर प्रदेश के गैर सरकारी शिक्षक पहली बार एक सूत्र में संगठित हो पाये हैं। इस संगठन की पृष्ठभूमि में उनका वह कूटनीतिक प्रशिक्षण है जो उन्हें भारतीय संविधान की सहायता से पन्द्रह वर्षों में प्राप्त हुआ है। इस प्रकार प्रशिक्षित होने पर अपनी कूटनीतिक सूझ से उन्होंने संघर्ष के लिये शिक्षा विभाग के उस क्षेत्र पर प्रहार का निश्चय किया जिसमें यह नैतिक दृष्टि से अत्यन्त निर्बल है। १९६५ की परीक्षाओं का सफलता से सम्पन्न होना असम्भव नहीं। शिक्षकों की आर्थिक माँगें पूरी की जा सकेंगी या नहीं— यह सब करदाता तथा उसके ट्रस्टियों को निर्णय करना है। परन्तु इस संघर्ष के परिणाम-स्वरूप दो निधियाँ तो राष्ट्रीय प्रशासन करदाता पर कोई भार लादे बिना शिक्षक समुदाय को दे ही सकता है।

(१) वह शिक्षक को अपना विश्वास प्रदान कर सकता है जो उसके भारतीय शिक्षक पूर्वजों को प्राप्त रहा, जो संसार के अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के शिक्षकों को प्राप्त है ।

(२) वह शिक्षक तथा विद्यार्थी को दलगत राजनीति के कुचक्र से मुक्त करने की व्यवस्था कर सकता है ।

शैक्षिक नीति निर्माताओं द्वारा गंभीरऔर शीघ्र चिंतन के लिये पहली ही बात यहाँ ब्योरे से प्रस्तुत की गई है। दूसरी बातें कई बार कही जा चुकी है। यदि सरकारी शिक्षक दलगत राजनीति के कुचक्र से मुक्त रखे जा सकते हैं और गैर सरकारी शिक्षक वही सार्वजनिक तथा रचनात्मक सेवा करते हैं जो सरकारी शिक्षकों के हिस्से में है, तो वे भी क्यों न चालू राजनीतिक कुचक्र से मुक्त रखे जायँ । समान वेतन हों, तो दायित्व भी समान होने चाहिये ।

चालू संघर्ष की शान्ति आवश्यक है क्योंकि इससे जीत किसी भी पक्ष की हो, राष्ट्र की हार ही होती है ।

पहली प्रार्थना है कि शैक्षिक नीति-निर्माताओं को चिंतन के लिये किंचित अवकाश मिले; दूसरी प्रार्थना है कि शिक्षक वन्धु वेतन-वृद्धि के लिये ही एक सूत्र में संगठित न हों, उनका संगठन एक सुनियोजित शैक्षिक आचार्य संहिता बनावे और सदस्यों पर इस संहिता का अनुशासन भी सक्रिय करे। विद्यार्थियों के माता-पिता शिक्षक वर्ग के सच्चे सहयोगी हैं, तो शिक्षक वन्धु उन्हें भी सहयोग के लिये संगठित करें ।

—कालिदास कपूर

* * *

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः ।
षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ।।

—अथर्ववेद

ग्राम्य-शिक्षा की समस्यायें

(श्री विमलकुमार, गाँधी नगर, मेरठ)

वैसे तो देश की समस्त शिक्षा-पद्धति इतनी पुरानी हो चुकी है कि उसमें नये विचारों और नई परिस्थितियों को पचाने का सर्वथा अभाव है। १८३२ में प्रचलित इस शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य प्रशासन की सहायता के लिए केवल क्लर्क बनाना ही था। पर इस बात से सन्तोष किया जा सकता था कि शहर-निवासी कुछ साक्षर तो होते ही थे; ग्रामीण क्षेत्रों में तो शिक्षा बिल्कुल उपेक्षित ही रही। वास्तव में ग्रामीण शिक्षा स्वतन्त्रता के बाद की ही देन समझनी चाहिए। इससे पहले गांवों में या तो शिक्षा थी ही नहीं, अगर थी भी तो केवल नाम मात्र के लिए। माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए क्षेत्र नहीं थे, पर कहीं कुछ प्रारम्भिक माध्यमिक विद्यालय अत्यन्त दीन-हीन अवस्था में काम कर रहे थे जो केवल कुछ शब्दों को रटा कर ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते थे। परिणाम-स्वरूप गांवों में निरक्षता का बोलबाला था। अंध-विश्वास और सामाजिक रूढ़िवादिता ग्रामीण समाज में छायी हुई थी; गांव तरह-तरह की भयङ्कर बीमारियों के घर बने हुए थे, जिस कारण गांववासी शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ थे।

सारे दिन परिश्रम कर के भी वे अपना पेट न पाल सकने के कारण तथा मानसिक भोजन की कमी के परिणाम-स्वरूप ग्रामीण-जन पूर्ण-रूपेण निराशावादी और भाग्यवादी हो गये हैं। उन्हें अपने भविष्य और वर्तमान के प्रति आस्था नहीं है। इसी के परिणामस्वरूप कृषि प्रधान देश होकर भी भारत की खाद्य–स्थिति जटिल होती जा रही है। जबकि अन्य देशों में कृषि के लिए ट्रैक्टरों और फर्टीलाइजरों का प्रयोग करना साधारण सी बात है, हमारे किसान आज भी हलों और बैलों का प्रयोग करते हैं। उनका विचार दारिद्रय यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि वे ट्यूब-वेल के पानी को तत्त्वहीन समझते हैं और कारखानों की खाद का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है।

अतः ग्रामीण शिक्षा के विकास के लिए प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के विकास के साथ-साथ वयस्कों की शिक्षा भी आवश्यक हो गई है। सो अपने गांवों की विशेषताओं और कमियों के संदर्भ ही में ग्रामीण-शिक्षा के विकास एवं समस्याओं पर यहाँ अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रारम्भिक एवं जूनियर शिक्षा :—

यह शिक्षा कक्षा एक से कक्षा आठ तक होती है जिसमें हिन्दी, गणित, सामाजिक विषय, विज्ञान आदि अनेक विषय पढ़ाये जाते हैं। छात्रों को आत्म-निर्भर बनाने के उद्देश्य से अध्यापन का माध्यम कृषि, कताई-बुनाई, शिल्प या कोई अन्य दस्तकारी रक्खा गया है। अब कक्षा ३ से अंग्रेजी भी पढ़ाई जाने लगी है। प्रशासकीय विचारकों का कहना है कि हर बच्चे को शिक्षा को सुलभ बनाने के लिये गाँवों में जगह जगह विद्यालय खोले जा रहे हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में लगभग ४० हजार ऐसे विद्यालय हैं जो प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा देते हैं। इन विद्यालयों में पढ़ने के लिए अधिक से अधिक एक मील तक के बालक आते हैं। आशा यह की जा रही है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक दस में से आठ बालकों और चार बालिकाओं की निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध हो जायगा।

परन्तु जिस तेज़ी से स्कूल खुलते जा रहे हैं; उतनी तेज़ी से न तो इन स्कूलों की इमारतें बढ़ पा रही हैं और न प्रशिक्षित अध्यापक ही मिल पा रहे हैं। गाँवों में शहरी सुविधाओं की कमी तो है ही अधिकांश गाँवों में अधिकांश आवश्यक सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हो पातीं; यहाँ तक कि उनको रहने के लिए मकान भी नहीं मिल पाते। अतः शहर का कोई प्रशिक्षित अध्यापक तो यहाँ आना ही पसन्द नहीं करता; जिन प्रशिक्षित अध्यापकों की सेवायें उनको प्राप्त भी होती हैं उनमें से अधिकांश तो उसी गाँव के होते हैं या निकटवर्ती गाँवों के। उनका अपना कुछ खेती आदि कार्य भी चलता रहता है। अतः अध्यापन कार्य उनके लिए सहायक कार्य (Side Work) होता है और वे पूरे ध्यान से अध्यापन नहीं करते। अतः जिस तेजी से स्कूल खुलते जा रहे हैं उसी तेजी से पढ़ाई का स्तर भी गिरता जा रहा है।

माध्यमिक-शिक्षा :—

ऐसे स्कूल लगभग १०-१५ मील की दूरी पर हैं। इनमें पढ़ने के लिए लगभग ५ मील दूर तक के विद्यार्थी आते हैं। इन स्कूलों में कृषि प्रधान शिक्षा ही अधिक दी जाती है। पर इस शिक्षा में छात्रों को न तो ट्रैक्टरों और फर्टीलाइज़रों का प्रयोग करना ही सिखलाया जाता है और न कारखानों की खाद का वैज्ञानिक उपयोग ही। अब कुछ विद्यालयों में ट्यूब-वेल भी लगवाये जाने लगे हैं; पर अधिकतर स्कूलों में ट्रैक्टरों, फर्टीलाइज़रों, खाद

और सिंचाई के साधनों के अभाव में ही कृषि की क्षिक्षा दी जाती है। जब खेती के आवश्यक यन्त्रों की सहायता के बिना ही खेती की शिक्षा दी जायेगी तो उसकी स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। अन्यथा इन विद्यालयों से ही इतनी उपज हो सकती है कि खाद्य-समस्या नाम की कोई समस्या रहे ही नहीं।

यदि इस प्रकार शिक्षा दी जाने लगे तो देश की खाद्य-समस्या के सुलझने के साथ साथ छात्र अपने विद्यार्थी जीवन में कुछ धनार्जन भी कर सकेंगे।

सामाजिक-शिक्षा :—

यह शिक्षा गाँवों के अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित वयस्क स्त्रियों और पुरुषों के लिए हैं। इन लोगों को पढ़ाना—लिखाना बहुत कठिन है। अतः इस शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वे सांसारिक प्रगति के प्रति जागरूक रहकर अपनी उन्नति स्वयं कर सकें तथा समाज के लाभ के लिये वे अपना व्यक्तिगत लाभ त्याग दें। इसी उद्देश्य से गाँवों की उन्नति और विकास-खंड तथा अन्य एजेन्सियां खुलती जा रही हैं। उनकी ओर से कुछ डाकुमेंट्री-फिल्में भी दिखाई जाती हैं। इन सबके प्रभाव से गाँवों में कुछ जागृति आई है।

पर अभी तक जो कुछ हो रहा है वह बहुत कुछ अपर्याप्त है। उसमें सुधार और विकास के लिए बहुत अधिक स्थान है। आजकल गाँवों में जैसे जैसे जागृति बढ़ती जा रही है, वैसे ही व्यक्तियों की पढ़ाई—लिखाई के प्रति रुचि भी बढ़ रही है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है जो स्कूलों को बनाने और बढ़ाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न करने के लिये तैयार रहते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं कि अमुक व्यक्ति ने विद्यालय बनवाने के लिए जमीन दान दी है या विद्यालय का भवन निर्माण कराने का बीड़ा उठाया है। पर एक तो अधिकारी वर्ग अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग नहीं हैं; दूसरे वित्तीय सहायता की कमी भी खटकने वाली है। अतः स्थित आज भी संतोषजनक नहीं है। इसके अतिरिक्त गांवों में कुटीर-उद्योगों का होना बहुत आवश्यक है; साथ ही उनको एक सजीव वातावरण भी मिल जाय तभी गांवों की उन्नति हो सकेगी।

कश्मीर में मैट्रिक्युलेशन और हायर सेकंडरी शिक्षा का समन्वय

(प्राध्यापक पृथ्वीनाथ राज़दान, श्रीनगर, कश्मीर)

उच्चतर माध्यमिक शैशिक पाठ्यक्रम जम्मू व काश्मीर में लगभग उसी समय से चालू है जब भारत के अन्य राज्यों में यह प्रारम्भ हुआ। कश्मीर में इसकी जरूरत इसलिए यों मानी गई कि यहाँ तालीमयाफ्ता वेरोज़गारी रोज़ बरोज बढ़ती जा रही थी। हिन्दुस्तान के बाकी हिस्सों की तरह यहाँ के पढ़े-लिखे लोग भी किसी ठोस उद्देश्य रखे विना किताबी शिक्षा प्राप्त करने के आदी बन गये थे। इसका नतीजा यह निकलने लगा था कि बहुत से शिक्षित कालेजों से निकलकर सरकारी नौकरी हासिल करने के लिए दफ्तरों की खाक छानते फिरते थे। उनके लिए एक अनार व सौ बीमार वाला मामला बन रहा था। बहुत ही थोड़े ऐसे खुश-नसीब जवान होते थे जिन्हें दफ्तरों में मुंशीगीरी हासिल हो सकती थी। नाकाम और निराश उम्मीदवार माँ-बाप और समाज की बढ़ती परेशानी के बायस बन जाते थे।

लगभग सौ वर्ष पहले देश के समझदारों ने यह समझा कि यदि शिक्षा प्रणाली में कोई सुधार न किया गया तो वेरोजगारी का मसला बुरी तरह मुल्क में मिल्लत के सामने पेश होगा।

सन् १८८२ में हंटर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा में यह सिफारिश की थी कि उस वक्त के चालू हाई स्कूलों के अलावा दूसरी किस्म के हाई स्कूल भी खोले जायँ जहाँ अन्तिम परीक्षा के लिए सामान्य विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों को भी जगह दी जाय। परन्तु इन सिफारिशों की परवाह नहीं की गई।

बावन साल बाद सप्रू कमेटी ने सन् १९३४ में उत्तर प्रदेश के लिये यह सिफारिश की कि लड़कों को उनकी रुझान के अनुकूल व्यावसायिक शिक्षा दी जाय। उन सिफारिशों के अनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम में साहित्यिक विषयों के साथ-साथ व्यावसायिक विषयों को भी सम्मिलित करना था। इंटरमीडिएट इम्तहान को कानूनन खतम करके इसका एक साल हाई स्कूल

में जोड़ने और एक साल तीन-साला डिग्री में शामिल करने के लिए कहा गया था।

सन् १९३६–३७ में वुड्स रिपोर्ट और सन् १९४४ में सार्जेंट रिपोर्ट के मुताबिक भी अदबी, जरई और दूसरी किस्म की पेशेवराना तालीम की तसदीक की गई। सेकंडरी एजुकेशन कमीशन रिपोर्ट से हायर सेकंडरी स्कूल का सिलसिला शुरू हुआ जिसे बाद के कमीशनों ने भी मान लिया। इस रिपोर्ट के अनुसार चार या पाँच साल बुनियादी, तीन साल का सीनियर बेसिक या मिडिल, चार साल की उच्चतर माध्यमिक और तीन साल की डिग्री कालेज की तालीम दी जानी करार पायी।

कश्मीर सरकार भी बाकी राज्यों के साथ-साथ नये तर्ज तालीम को तजुर्बे के तौर पर सन् १९५८ से चला रही थी। इस स्कीम को अमल में लाने के लिए यहाँ प्री-यूनीवर्सिटी हायर सेकंडरी परीक्षा पास करके विद्यार्थी कालेजों के तीन साला डिग्री कोर्स में शामिल होते थे। इस स्कीम के शुरू होने पर ही मैंने **एजुकेशन** और **एजुकेशन रिव्यू** में इस बात पर जोर दिया था कि जम्मू कश्मीर यूनिवर्सिटी को तीन-साला डिग्री कोर्स और ऊँची तालीम के अदबी काम को अच्छी तरह सम्हालने के लिए हायर सेकंडरी तालीम को एक बोर्ड के हवाले करना चाहिए। शुक्र की बात है कि गंगुली कमीशन रिपोर्ट के मुताबिक अब बोर्ड आफ सेकंडरी एजुकेशन बनाया जा रहा है। हायर सेकंडरी तालीम का यह तजुर्बा काफी देर से कामयाबी के साथ चलाया जा रहा है। इसलिए कश्मीर सरकार ने एक कमेटी मुकर्रर की जिसे नीचे लिखी बातों पर रिपोर्ट करने का काम सौंपा गया है :

१—कश्मीर में चालू मैट्रीकुलेशन और हायर सेकंडरी शिक्षा तथा परीक्षा में अन्य राज्यों से समानता तथा भेद स्पष्ट किया जाय।

२—हायर सेकंडरी शिक्षालय की अन्तिम कक्षा में हायर इंग्लिश को एक अनिवार्य विषय बनाया जाय।

३—चालू प्रणाली में सुधार के सुझाव दिये जाँय।

अतएव कमेटी ने जम्मू-कश्मीर यूनिवर्सिटी के स्कूल बोर्ड के लिये नीचे लिखी सिफारिशें की हैं।

१—मेट्रीकुलेशन शिक्षा तथा हायर सेकन्डरी शिक्षा के केन्द्रीय विषयों में समानता लाई जाय और दोनों को मिलाकर एक सेकंडरी कोर्स स्कूल बनाया जाय। इस कोर्स का इम्तहान दो साल के बाद लिया जाय।

सेकंडरी स्कूल कोर्स के बाद एक साल का हायर सेकंडरी कोर्स होना चाहिये। जिसका इम्तहान साल के आख़िर में लिया जाय।

२—सेकंडरी स्कूल कोर्स का इम्तहान पास करने पर कामयाब विद्यार्थी को एक प्रमाण–पत्र दिया जाय जिसका नाम सेकंडरी स्कूल सार्टीफिकेट रक्खा जाय।

३—सेकंडरी स्कूल का पद वही हो जो हाई स्कूल का होता है।

४—इन सेकंडरी स्कूलों में वही ऐच्छिक विषय पढ़ाये जाँय जिनके लिए काबिल उस्ताद, काफी सामान और मकानात मयस्सर हों।

५—सोशल स्टडीज़, उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, संस्कृत, अरबी और फारसी के अतिरिक्त सब विषयों की पढ़ायी का माध्यम अंग्रेजी बना रहे।

६—सेकंडरी स्कूल कोर्स में ऐक्छिक विषयों पर सिर्फ बुनियादी तालीम दी जाय।

७—विषय पहले जैसे हों मगर परीक्षा के नम्बरों में परिवर्तन हो।

यह खुशी की बात है कि ऐच्छिक विषयों में भी इम्तहान होगा। हायर सेकंडरी के एक साल के अरसे में अंग्रेजी के साथ साथ सेकंडरी स्कूल कोर्स के तीन ऐच्छिक विषय पढ़ाने होंगे और हर विषय पर दो दो पर्चे होगे। शिक्षा का माध्यम पहले की तरह अंग्रेजी होगा।

सिफारिशें मान ली गई हैं और आशा है कि शीघ्र ही कार्यान्वित भी होंगी।

* * *

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय कौ सूल॥
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुं न उन्नति होय।
लाख अनेक उपाय यों, भलें करो किन कोय॥

[पिछले अंक में प्रकाशित सहकारी गुरुकुल योजना पर आलोचना]

महिदपुर रोड (मध्य प्रदेश) के प्राचार्य भ० रा० श्रीमाली

आपके द्वारा प्रस्तावित ‘सहकारी गुरुकुल योजना’ स्वागत योग्य है। यह निर्विवाद है कि स्वस्थ, समुन्नत व सुखी समाज के निर्माण के लिये शिक्षा-व्यवस्था का सही होना अनिवार्य है। यदि इस सम्बन्ध में हमने समय रहते उचित क़दम नहीं उठाए तो परिणाम बहुत भयानक होंगे और हमारे सम्मुख पश्चाताप करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा।

‘योजना’ के अच्छा होने मात्र से काम चलने वाला नहीं है जब तक कुछ निष्ठावान व्यक्ति उसे क्रियान्वित करने का दृढ़ संकल्प लेकर आगे न आएँ। इस योजना को धरातल पर उतारने के लिए कठोर श्रम, त्याग एवं क्षमता की अपेक्षा है। यदि अनुभवी एवं वयोवृद्ध शिक्षक-समूह में से कुछ लोग इस कार्य में साहसपूर्वक जुट जाएँ तो कठिन कुछ भी नहीं है। इतना विशाल देश है जहाँ त्याग और निष्ठा की भी कोई कमी नहीं है। यदि एक गुरुकुल भी नमूने के रूप में बन सका तो एक उपलब्धि ही होगी। क्या समाज के वे लोग जो कर्त्ताधर्त्ता हैं और जिनके करने से सब-कुछ संभव है, इस ओर ध्यान देंगे ?

भारत प्राकृतिक सम्पदाओं से भरापूरा होते हुए भी एक निर्धन देश है। ‘योजना’ में यदि साधनहीन तथा सीमित साधनों वाले लोगों का भी समुचित ध्यान रखा जाये तो श्रेयस्कर होगा। अच्छी शिक्षा का लाभ अधिक से अधिक लोगों को मिल सके, इसके लिए भी प्रयत्न आवश्यक है। हम में से कितने पालक ऐसे हैं जो अपने एक बालक के शिक्षण के लिए १२००) रुपये वार्षिक-व्यय सहन कर सकते हैं ?

फिर भी योजना अच्छी है और इसे क्रियान्वित करने की दिशा में उठाया गया हर चरण सराहनीय होगा।

शैक्षिक समाचार समुच्चय : फरवरी

पहले दो सप्ताह : संकटग्रस्त भारतीय अखंडता

२६ जनवरी को संविधान के अनुसार हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया। तब शासन सत्ता के विरोधियों ने अहिन्दी क्षेत्रों में विरोध का झंडा खड़ा किया। विद्रोहियों ने स्टेशन जलाये, डाकखाने जलाये, बसें जलायीं, सरकारी इमारतों पर पथराव किये, भारत के राष्ट्रपति के निजी भवन में आग लगाई। दो व्यक्तियों ने आत्महत्या भी की। पुलिस और फौज की गोलियों से ८० नौजवान और लड़के मारे गये। यह सब फरवरी के पहले सप्ताह में विद्यार्थियों ने दलीय नेताओं के इशारों पर किया। यह दुष्प्रयास सरकार का तख्ता उलटने के लिए किया गया या सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिये ही।

दूसरे सप्ताह कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में इसी विषय पर काफी वैमनस्य बढ़ा, दो केन्द्रीय मंत्रियों ने त्यागपत्र भी दिये। प्रधान मंत्री ने सर्व दलीय एवं अहिन्दी क्षेत्रों के नेताओं का सम्मेलन बुलाया। सभी देशों ने अखंडता को प्राथमिकता देते हुए स्व० नेहरू जी के आश्वासनों को दुहराया कि जब तक अहिन्दी प्रान्तों में काफी हिन्दीं भाषी न हो जाँयगे अंग्रेजी सहभाषा के रूप में बनी रहेगी।

हिन्दी विरोधी आन्दोलन की आड़ में सरकारी नौकरियों का लालच है। अभी तक अंग्रेजी राज्यभाषा रहते हुए केन्द्रीय सेवाओं में अंग्रेजी भक्तों का बोल बाला है।

९—संकटग्रस्त राष्ट्रीय एकता

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और पश्चिमी बंगाल के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने कहा कि किसी क्षेत्रीय भाषा को सीमा से अधिक प्रोत्साहन देना राष्ट्रीय एकता को संकट में डालना है। यह बंधु हिन्दी की राष्ट्रीय मान्यता के प्रमुख समर्थक थे।

१४—कोरा उत्तर

उत्तर प्रदेश के कोने-कोने से आये हुए लगभग ३० हजार अध्यापकों का एक मूक जुलूस लखनऊ की सड़कों से होता हुआ मोती महल में शिक्षा

मंत्री श्री कैलाशप्रकाश से मिला और अपनी माँगें प्रस्तुत कीं। शिक्षा मन्त्री से अध्यापकों को असमर्थता के आधार पर संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। मुख्य अध्यापकों ने उसी समय निर्णय किया कि बोर्ड की आगामी हाई स्कूल और इन्टर परीक्षाओं का अध्यापक बहिष्कार करेंगे। माध्यमिक, प्राथमिक और विश्वविद्यालय से सम्बद्ध डिग्री कालेजों के एसोसियेशनों की एक संघर्ष समिति निर्मित हुई।

१६—अध्यापकों द्वारा संयुक्त अनशन प्रदर्शन

अ० भा० माध्यमिक शिक्षक संघ की घोषणा पर १४ फरवरी को अध्यापकों ने देश के विभिन्न स्थलों पर एक दिन का अनशन प्रदर्शन किया—

१२००० अध्यापकों ने बम्बई के शिवाजी पार्क में;
५००० अध्यापकों ने कलकत्ते में;
३००० अध्यापकों ने कटक में;
१००० अध्यापकों ने दिल्ली में।

१७—बंगाल का शिक्षक आन्दोलन

बंगाल के तीस हजार अध्यापक अपना वेतन और मंहगाई भत्ता बढ़ाने के लिए आन्दोलन करते चले आ रहे थे। राज्य भर में जनता का समर्थन पाने के लिये मीटिंगे होने लगीं। १७ फरवरी से अनिश्चित समय के लिए काम बन्द और परीक्षाओं के लिए बायकाट का निर्णय लिया गया। विधान सभा के समक्ष जुलूस भी निकाला गया। सरकार ने स्कूलों में छुट्टी की घोषणा कर दी। एस्पलनेड ईस्ट पर धरना भी आरम्भ हुआ। १९ फरवरी से राजभवन के पास धरने का आन्दोलन चला। इस आन्दोलन में जनता के सहयोग और विद्यार्थी वर्ग की रुचि देखकर मुख्य मन्त्री श्री सेन ने एक ओर तो अध्यापकों के साथ सहानुभूति दिखाई और दूसरी ओर विधान सभा में उनकी भर्त्सना की। साथ ही सरकार के पास धन का अभाव बतलाया। ५ रु० मासिक मंहगाई भत्ते के घोषणा के साथ-साथ मैनेजरों से वेतन वृद्धि की अपील की गई, जिसका अर्थ लगाया गया कि स्कूलों में फीस बढ़े। सरकार द्वारा मंहगाई भत्ते की वृद्धि की घोषणा होने पर संघर्ष शांत हुआ।

१८—अंग्रेजी सरकारी भाषा जारी रहे

मद्रास के मुख्य मन्त्री श्री भक्त वत्सलम् ने कहा कि सरकारी भाषा

विधेयक इस प्रकार संशोधित किया जाय कि जब तक संघ के अन्तर्गत सभी राज्यों में मतैक्य न हो जाय अंग्रेजी, हिन्दी के साथ केन्द्र की सरकारी भाषा रहे। उन्होंने कहा कि वे इस सुझाव से सहमत नहीं हैं कि अंग्रेजी को हटाने का प्रस्ताव अहिन्दी राज्यों में तीन चौथाई राज्यों के मतों पर निर्भर हो।

१९—भाषा के विषय में मतगणना की जाय

दिल्ली में कांग्रेस के संसदीय दल की बैठक में विभिन्न क्षेत्रों के सदस्यों ने निम्नलिखित भाव व्यक्त किये।

मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र, आन्ध्र और पश्चिमी बंगाल के सदस्यों ने कहा कि हिन्दी का राष्ट्रीयकरण कार्य धीमा होना चाहिए और स्वर्गीय नेहरू के आश्वासनों को वैधानिक रूप दिया जाय। गुजरात के महाराजा गायकवाड़ ने कहा कि हिन्दी के राष्ट्रीयकरण की नीति न बदली जाय और नीति में जो कठिनाइयाँ पड़ें उन पर विचार किया जाय।

महाराष्ट्र के श्री पंजाब राव देशमुख आदि ने प्रधान मंत्री से अनुरोध किया कि भाषा विधेयक में कोई संशोधन न जोड़ा जाय। दल के प्रायः सभी सदस्यों की भावना थी कि कोई ऐसा कदम न उठाया जाय जिससे उत्तर और दक्षिण के क्षेत्रों में विरोध बढ़े।

२०—बालिकाओं की निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा

स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय समिति ने सरकार से अनुरोध किया कि समस्त भारत में चौथी योजना के अन्त तक बालिकाओं की निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

२३—दो भाषायें

सरकारी भाषा-नीति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए गृहमन्त्री ने कहा कि मैं नहीं जानता, कितना समय अंग्रेजी के हटाने में लगेगा, परन्तु जितनी जल्दी यह परिवर्तन हो सके उतना ही अच्छा है। नन्दा जी ने कहा कि जनता पर कोई भाषा लादी नहीं जा सकती, परन्तु भारतीय संघ के राज्यों में विचार-विमर्श के लिए एक-न-एक भारतीय भाषा का होना भी अति आवश्यक है और संविधान ने यह पद हिन्दी को प्रदान किया है। अंग्रेजी किसी प्रकार भी अधिक काल तक राज्य भाषा नहीं रह सकती। जब तक भारत में एक राष्ट्र भाषा न होगी; राष्ट्र का एकीकरण पूर्ण नहीं हो सकता।

२४—भाषा विधि में संशोधन हो

कांग्रेस कार्य समिति ने अपने दिल्ली के त्रिदिवसीय सम्मेलन के उपरान्त सिफारिश की है कि अखिल भारतीय परीक्षाएँ यथाशीघ्र अंग्रेजी, हिन्दी और प्रादेशिक भाषा में हों और स्व० नेहरू जी के भाषा विषयक आश्वासनों को कार्यान्वित किया जाय। अहिन्दी भाषी राज्य केन्द्र से अंग्रेजी में पत्र व्यवहार कर सकते हैं। जब तक संघीय राज्य अपनी स्वाकृति प्रदान नहीं करते, अंग्रेजी केन्द्र की सहभाषा जारी रहेगी।

२४—उत्तर प्रदेश में हिन्दी

हिन्दी राज्य भाषा तो लगभग १० वर्ष हुए घोषित हो चुकी है, विधान सभा में अपनी यह व्यवस्था घोषित करते हुए अध्यक्ष श्री मदनमोहन वर्मा ने कहा कि शत-प्रतिशत हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए और सदन के सदस्यों को अधिक से अधिक हिन्दी का प्रयोग करना चाहिए।

२५—हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में हिन्दी भाषी राज्यों का दायित्व

राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा हिन्दी के विकास में अधिक सहायक हो सकती हैं। वे हिन्दी के विकास में तत्कालीन संस्थाओं का मार्ग दर्शन करते हुए उन्हें यथोचित सहायता देकर उनकी सेवा सुनियोजित और सम्पन्न कर सकतीं हैं। यदि आज के बालकों का हिन्दी अध्ययन सुनियोजित ढंग से राज्य सरकारें करावें तो भावी सन्तति अवश्य ही हिन्दी को विभिन्न राज्यों की आदान प्रदान भाषा मानने के लिये सन्नद्ध हो जायेगी।

—पायोनियर के सम्पादकीय लेख से

२८—अध्ययन में उपनिषद

उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष श्री मदन मोहन वर्मा ने कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में दीक्षान्त भाषण देते हुए कहा कि महात्मा गांधी कहा करते थे कि भारतीयों का मानसिक विकास राष्ट्रभाषा द्वारा ही सम्भव है। वह राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।

वर्मा जी ने शिक्षण पद्धति और पाठ्य सामग्री के अभिनवीकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा को लाभप्रद बनाने के लिए उपनिषदों के अध्ययन पर ज़ोर दिया। उन्होंने अध्यापन के साथ धनोपार्जन प्रणाली का विरोध करते हुए कहा कि इस प्रणाली से नवयुवकों की मानसिक एकाग्रता में बाधा पड़ती है।

२८—राष्ट्रीय अपमान

उत्तर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री कमलापति त्रिपाठी के अनुसार किसी विदेशी भाषा को अनन्त काल के राष्ट्रभाषा के समकक्ष रखना राष्ट्र को अपमान करना है। अँग्रेजी जानने वाले व्यक्ति अब भी २ प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। अहिन्दी भाषी किसी दूसरी क्षेत्रीय भाषा को अंग्रेजी का स्थान लेने के लिए चुन सकते हैं।

२७, २८ फरवरी तथा १ मार्च

आन्ध्र प्रदेश में तृतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन आन्ध्र राजस्व मन्त्री श्री ए० रामचन्द्र रेड्डी ने किया। प्राध्यापक दिवाकरल वेंकटवधानी की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री जी० एम० रेड्डी एवं श्री ए० आर० सुब्बाराव ने की।

—'संजय'

★ ★ ★

आपके मन की बात

● मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा; क्योंकि जहाँ ऐसी पुस्तकें हैं, वहाँ अपने आप स्वर्ग बन जाता है। —लोकमान्य तिलक

● अच्छी पुस्तकों ने मेरी बड़ी रक्षा की है। अतः पवित्र पुस्तकों को ही संग रखें।

—महात्मा गांधी

● जिस घर में पुस्तकें नहीं, वह घर बिना खिड़कियों के दमघोट घर जैसा है।

—एच० डब्ल्यू० बीचर

● वास्तव में सुरुचि-संपन्न पाठक ही अच्छी पुस्तकों के स्रष्टा हैं।

—इमरसन

● पुस्तकों का सच्चा महत्व समझने के लिए आपको सर्वप्रथम पुस्तकें खरीदने का मीठा आनंद भी अनुभव करना चाहिये। —जे० एम० बैल्डविन

संस्कृत से अरुचि क्यों ?

(पं० गोपीलाल अमर, जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सागर)

संस्कृत भाषा के वाङ्मय की-सी विविधता और विपुलता संसार की किसी भी भाषा में कदाचित् ही होगी। संस्कृत का महाग्रन्थ ऋग्वेद संसार की प्राचीनतम पुस्तकों में प्रथम है। आदि कवि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास का स्थान विश्वप्रसिद्ध कतिपय महाकवियों में सर्वोपरि है। संस्कृत के व्याकरण की कोई जोड़ नहीं। मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर संस्कृत ने प्रकाश डाला है। संस्कृत में जहाँ सहस्राब्दियों पूर्व की सभ्यता के दर्शन होते हैं वहाँ सहस्राब्दियों के पश्चात् आने वाली सभ्यता की भविष्यवाणी भी है। संस्कृत वह भाषा है जिसमें दर्शन, विज्ञान और जीवन का अद्वितीय समन्वय मिलता है। संस्कृत साहित्य ही से विश्व के लिए शान्तिमय सन्देश प्रसारित होता है।

परन्तु उसी संस्कृत को आज की स्थिति में देखकर हमें उस सरस्वती का स्मरण आता है जिसे ब्रह्मलोक त्यागकर मर्त्यलोक में आना पड़ा था। सरस्वती तो फिर भी अमृत कहलाती रही परन्तु संस्कृत को 'मृत' तक कह डाला गया। आज यह स्थिति है कि संस्कृत के परम्परागत पुजारी कहलाने वाले हमी लोग उससे अरुचि करने लगे हैं, उसके अध्ययन-मनन को अपनी गौरव-हानि समझने लगे हैं। यही नहीं, संस्कृत से हमारी अरुचि उत्तरोत्तर बढ़ रही है जिसके उदाहरण हैं वे शतशः विद्यालय और पाठशालायें जो छात्राभाव के कारण अन्तिम साँसें ले रही हैं, वे दिग्गज संस्कृत विद्वान् जो इसलिये हमारे सम्मान के पात्र नहीं रहे कि वे केवल संस्कृतज्ञ हैं और वे हम और हमारे विविध नेता जिन्हें, संस्कृत विद्या का प्रचार-प्रसार तो दूर रहे, उसे यथास्थिति कायम रखना भी दुष्कर है।

कारण—

हाँ, ब्रह्म लोक त्यागकर मर्त्यलोक में सरस्वती को तो दुर्वासा के शाप से आना पड़ा था, लेकिन संस्कृत को उस स्थिति में क्यों आना पड़ा ? उसका तो एक ही कारण था, लेकिन इसके अनेक कारण है। आइये, उन कारणों पर हम कुछ विचार करें—

भारत के भूतपूर्व शासकों द्वारा विरोध :—

प्राचीनकाल से ही भारत अनेक आकर्षकों का केन्द्र रहा है। इसीलिए कदाचित् विदेशी शासकों ने इस देश पर मनचाहा शासन किया। उनके शासन तक तो फिर भी कुशल थी पर उसे स्थायी बनाये रखने के लिए यहां की संस्कृत को भी उन्होंने क्षत-विक्षत करने की चेष्टायें की। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति प्राय: संस्कृत विद्या में ही केन्द्रित थी। अत: उन्होंने उसी पर अनेक घातक प्रहार किये, संस्कृत के विद्वानों और काव्यकारों को आश्रयहीन किया गया, मठ और गुरुकुल ध्वस्त किये गये, ग्रन्थों को अग्निसात् या जलमग्न किया गया और अन्ततोगत्वा उसे 'मृत भाषा' बनाकर ही छोड़ा गया।

संस्कृत की वर्तमान स्थिति के लिए ये विदेशी शासक बहुत कुछ उत्तरदायी हैं, कुछ विद्या-प्रेमी उदार-हृदय शासकों की चर्चा हम नहीं कर रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रति मोह :—

अँग्रेजी शासन-काल में भारतीयों का मोह पाश्चात्य सभ्यता के प्रति तीव्र वेग से बढ़ा। यह परम्परा आज भी बहुत अंशों में कायम है। सूट-बूट से सजे आज के अप-टू-डेट नौजवान को संस्कृत विद्या में 'पण्डिताऊपन' की झलक मिलती है, उसका अध्ययन-मनन कोरा 'पुराणपंथ' प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने दो संस्कृत का यथेष्ट अध्ययन किया है लेकिन पाश्चात्य सभ्यता से मोहित इन तथाकथित भारतीय विद्वानों और नेताओं को संस्कृत में साहित्यिक और आध्यात्मिक तत्व नजर नहीं आते। उसमें उन्हें मनोविज्ञान और मानव-जीवन के विश्लेषक तत्वों की कमी खटकती है। ये भ्रान्त धारणायें पश्चात्य सभ्यता के प्रति मोह से जन्मी हैं और संस्कृत के प्रति अरुचि को जन्म दे रही हैं।

अध्यापन-शैली के दोष :—

विश्वविद्यालयों, कालेजों और कुछ स्कूलों में सँस्कृत की शिक्षा मनोवैज्ञानिक तथा परिष्कृत शैली में दी जाने लगी है। परन्तु प्राचीन पद्धति की पाठशालाओं और चटशालों में जो अध्ययन शैली प्रचलित है वह अत्यन्त दोषपूर्ण हो गई है। इनके अध्यापक मनोविज्ञान से प्राय: अपरिचित होते हैं। इनमें और भी बहुत सी कमियाँ हुआ करती हैं। कालिदास और भवभूति के नाटकों का दसों बार अध्यापन कर चुकने वाले भी अध्यापक कदाचित् उन

नाटकों का तुलानात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने में हिचकेंगे। इन पाठशालाओं और चटशालाओं में ऐसे भी कई अध्यापक मिलेंगे जिन्होंने दशों बार मेघदूत का अध्यापन किया होगा, पर वे उसमें उल्लिखित स्थानों पर भौगोलिक टिप्पणियाँ न लिख सकेंगे। वे अध्यापक भी मिल सकते हैं जिनकी जिह्वा पर नाचती होगी वेद-चतुष्टय की ऋचायें लेकिन उनमें से अधिकाँश ने, इस युग के प्रथम वेद-संस्कारक मेक्समूलर और वेवर के नाम भी न सुने होंगे। मैं एक ऐसे अध्यापक को जानता हूं जिन्हें कई संस्कृत ग्रन्थ अक्षरशः मुखाग्र हैं, पर वे पद नहीं बता सकते कि उन ग्रन्थों में आये हुए उद्धरण किन ग्रन्थों से लिये गये हैं। आश्चर्य नहीं जो इन पाठशालाओं और चटशालाओं में ऐसे अध्यापक भी मिल जावें जिन्हें अपने वर्षों से मुखाग्र किए ग्रंथों के ग्रन्थकारों का भी नाम ज्ञात न हो, उनके व्यक्तिगत और साहित्यिक परिचय की तो बात ही क्या।

अध्यापन करते समय ये अध्यापक वर्षों के रटे-रटाये विषय को ही टेप-रिकार्डर की भाँति छात्रों के सामने रख देते हैं, आकर्षण और मनोविज्ञान के तत्व तो उस विषय में पहले से ही नहीं रहते। छात्रों के अहोभाग्य जो वे उसमें से कुछ सीख निकलते हैं।

इन अध्यापकों और पण्डितों द्वारा प्रत्यक्ष में भले ही संस्कृत के प्रति अरुचि उत्पन्न न की जाती हो, परन्तु परोक्ष में तो ये उसके मूल कारण ही हैं। इनसे अध्ययन करने वाला आज का विज्ञान प्रेमी छात्र निश्चय ही इनसे प्रभावित हो कर संस्कृत के प्रति गलत धारणा बना लेगा।

संस्कृत के विद्वानों और विद्यालयों की चिन्तनीय स्थिति :—

आज संस्कृत के विद्वान् और विद्यालय, दोनों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अधिकांश विद्यालयों का संचालन विभिन्न समाजों और व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। उनकी आयु के स्रोत भी उनके संचालकों तक ही सीमित रहते हैं। शासकीय अनुदान उन्हें प्रायः नहीं मिलता। ये विद्यालय संस्कृत विद्या के प्रचार के लोभ से चलाये तो जाते हैं पर धनाभाव के कारण उनमें न तो शिक्षा के पर्याप्त और उपर्युक्त साधन होते हैं और न वहां के अध्यापकों को पर्याप्त वेतन ही दिया जाता है। बहुत से विद्यालय समाज से चंदा उगाहने के लिए प्रचारक रखे रहते हैं। ये प्रचारक प्रायः अल्प शिक्षित और अप्रमाणिक होते हैं। इनके माध्यम से भी जन-साधारण की श्रद्धा और रुचि संस्कृत से हट जाती है। उधर, वेतन अपर्याप्त मिलने से

अध्यापक उदास रहते हैं और उसी उदासी में वे छात्रों को शिक्षा देते हैं जिससे छात्र परिपक्व नहीं होने पाते। बाहर वर्ष तक तन मन और धन से जुड़कर जो आचार्य बने, अन्त में उसे इस आसमान को छूने वाली मंहगाई के युग में भी सौ या उससे भी कम रुपये मिलें, उससे बढ़कर संस्कृत की अप्रतिष्ठा और क्या हो सकती है ?

संस्कृत व्याकरण के आधुनिक संस्करण का अभाव :—

संस्कृत का व्याकरण अपनी सुव्यवस्था और वैज्ञानिकता के लिए जगत्प्रसिद्ध है। पाणिनि और पंतजलि आदि के व्याकरणों के संस्करण भी प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हुए हैं। पर बात कुछ और है। युग की मांग उस व्याकरण की तो है लेकिन उसके वर्तमान संस्करण के रूप में नहीं। आवश्यकता ऐसे संस्करण की है जिसमें सम्पूर्ण व्याकरण को उसका एक भी शब्द परिवर्तित किये बिना ही एक नये सिरे से, नई शैली में लिखा गया हो। इस प्रकार का सराहनीय प्रयत्न हुआ है कोषग्रंथों के विषय में। संस्कृत के प्राचीन कोषग्रंथों से शब्दावली लेकर उसे आज की 'डिकशनरियों' में संजोया गया है जो न केवल अधिकतर वैज्ञानिक बन पड़ा है वल्कि सुविधाजनक भी अत्यधिक बन पड़ा है। व्याकरण के ऐसे संस्करण का अभाव भी संस्कृत के प्रति आवश्यक रुचि नहीं उत्पन्न होने देता।

संस्कृत ग्रन्थों के आधुनिक शैली में प्रकाशन का अभाव :—

प्रथम तो संस्कृत के सम्पूर्ण ग्रन्थ ही प्रकाश में नहीं आये हैं और जो आ भी गये हैं, उनमें बहुत ही कम ऐसे हैं जिन्हें आधुनिक शैली में सम्पादित और प्रकाशित किया गया है। विशेषतः संक्रुत ग्रन्थों के प्रकाशन में अर्थोपार्जन का चक्कर बहुत बड़ा अभिशाप बनकर सामने आया है। जिनके प्रकाशन देश-देशान्तरों में निकले हों उन प्रकाशकों से भी अपने ग्रंथों को अत्यन्त हीन दशा में प्रकाशित पाकर संस्कृत निश्चय ही अपने भाग्य कोसती होगी। सैकड़ों उदाहरणों में से हम एक हितोपदेश जैसे शिक्षाप्रद और विश्वप्रिय ग्रंथ को लें। एक जगत्प्रसिद्ध प्रकाशक ने इस ग्रंथ का एक छात्रोपयोगी संस्करण निकाला था जिसकी लाखों प्रतियां बिक चुकी होंगी और बिक रही होंगी। इस संस्करण का कागज, जिल्द, छपाई, गेट अप आदि तो अत्यन्त निम्न कोटि के हैं ही, प्रूफ की अगणित अशुद्धियाँ, सम्पादन की अवैज्ञानिकता, साथ में संजोई गई टीका की क्लिष्टता, हिन्दी अनुवाद का पुरानापन और शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार आवश्यक भूमिका, प्रश्नावली

परिशिष्ट आदि का अभाव इत्यादि भी शोचनीय है। कुछ ग्रंथ ऐसे भी प्रकाशित किये गये और किये जा रहें हैं जो किसी भी गहन वन से कम नहीं होते। उनमें विराम-चिन्हों, अनुच्छेदों, शीर्षकों ओर खण्ड-उपखण्डों आदि की योजना तो नहीं ही होती, यह भी ढूंढ़े नहीं मिलता कि अध्याय या परिच्छेद कहां बदल गये हैं।

यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे प्रकाशनों से संस्कृत के प्रसार में कितनी बाधा पहुंचती है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तम प्रकाशनों के अभाव में लाखों विद्या प्रेमियों को संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से वंचित रह जाना पड़ता होगा।

समालोचना और तुलनात्मक अध्ययन की कमी—

आज का युग समालोचना का है। वाङ्मय को प्रकाश में लाने का सर्वोत्तम माध्यम है समालोचना। संस्कृत के इने-गिने ग्रन्थों की ही अभी समालोचना प्रस्तुत की जा सकी है। संस्कृत ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन की भी बड़ी कमी है। इसी तरह विश्लेषण, व्याख्या, टीका, अनुवाद आदि बहुत मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

इन सब कमियों और अभावों की पूर्ति किये बिना संस्कृत के प्रति समुचित रुचि जाग्रत नहीं हो सकती।

नवीन साहित्य-सर्जना की कमी—

किसी भी उन्नत भाषा का यह प्रधान लक्षण है कि उसमें साहित्य सर्जना निरन्तर होती रहे। इस दृष्टि से वर्तमान युग में संस्कृत भाषा को उन्नत नहीं कहा जा सकता। स्व० पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, डा० के० एस० नागराजन और पण्डित क्षमाराव आदि ने कुछ साहित्य लिखा है और है भी वह उच्चकोटि का, परन्तु मात्रा की दृष्टि से वह सब नगण्य हैं।

विश्वविद्यालयों द्वारा अपर्याप्त सहयोग—

अधिकांश विश्वविद्यालयों में संस्कृत के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था है। संस्कृत के प्रचार-प्रसार में उनका यह सहयोग सराहनीय है, पर पर्याप्त नहीं। आज संस्कृत की अनेक शिक्षा संस्थायें और परीक्षालय चल रहे हैं। उनमें से कुछ अत्यन्त उच्चिकोटि के हैं और कुछ स्वयं शासन द्वारा संचालित होते हैं। पर इन्हें भी ये विश्वविद्यालय मान्यता नहीं देते। और तो और, एक शासन द्वारा संचालित विश्वविद्यालय भी है जिसकी आचार्य

परीक्षा को बी० ए० के बराबर मान्यता देने वाले दो-तीन ही विश्वविद्या हैं। फलस्वरूप बी० ए० और एम० ए० के माध्यम से पल्लवग्रा संस्कृतज्ञ तो बहुत तैयार हो रहे हैं, पर शास्त्री और आचार्य के माध्यम तैयार होने वाले ठोस और पारगामी संस्कृतज्ञ, दिनों-दिन कम होते रहे हैं।

हिन्दी के प्रति विरोध—

कुछ अँग्रेजी प्रेमी विद्वान् और नेता हिन्दी का विरोध करने पर तु हुए हैं। हिन्दी के प्रति अपने विरोध को पुष्टतर करने के लिए वे यदा-क संस्कृत पर भी टूट पड़ते हैं। वैसे भी हिन्दी के प्रति विरोध से संस्कृत के प्र विरोध स्वयमेव हो जाता है क्योंकि भाषा विज्ञान, शब्दावली, व्याकरण औ सामान्य लक्षणों की दृष्टि से संस्कृत, हिन्दी का प्राण है। हिन्दी के प्र विरोध में संस्कृत का और संस्कृति के प्रति विरोध में हिन्दी का जीवन स्थि नहीं रह सकता। हिन्दी की उन्नति के लिए संस्कृत की और संस्कृत की उन्नति के लिए हिन्दी की उन्नति अनिवार्य है।

क्षेत्रीय भाषाओं के योगदान का अभाव—

क्षेत्रीय भाषाओं से संस्कृत के प्रचार और प्रसार में योगदान प्रा नहीं होता। संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओं में नहीं के बराब हुआ है। इन भाषाओं में ऐसे भी ग्रन्थ नहीं लिखे गये हैं जिनमें संस्कृत ग्र की समालोचना, व्याख्या और विश्लेषण आदि हो। संस्कृत और क्षेत्री भाषाओं के शब्द कोष, जैसे संस्कृत-बंगाली, संस्कृत-गुजराती और संस्कृ मराठी आदि भी कदाचित ही बने होंगे। क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम संस्कृत के अध्यापन की व्यवस्था भी आवश्यक है।

पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग की कमी—

कुछ पत्र-पत्रिकायें संस्कृत भाषा में भी प्रकाशित होती हैं। इन संस्कृत के प्रति रुचि का वर्धन होना स्वाभाविक है। पर वह पर्याप्त नहीं संस्कृतेतर पत्र-पत्रिकाओं से, उनकी अपनी समस्याओं को दृष्टिगत रखते हु जो प्रोत्साहन संस्कृत को मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है। हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें तो संस्कृत को यदा-कदा छू भी लेती हैं, पर अँग्रेजी औ अन्य भाषाओं की प्रत्रिकायें यह भी नहीं करतीं। लेखकों, कवि समालोचकों, इतिहासज्ञों और पुरातत्वज्ञों आदि की कलमें तो संस्कृत

पुनीत स्पर्श नहीं कर पाती, सम्पादकीय लेख भी कालिदास जयन्ती आदि जैसे महत्वपूर्ण अवसरों पर भी नहीं देखे गये हैं ।

विदेशों में प्रचार का अभाव—

शासन, विभिन्न संस्थाओं और कुछ विद्या प्रेमी श्रीमानों द्वारा भारत में तो संस्कृत विद्या का प्रचार किसी मात्रा में हो भी रहा है; पर विदेशों में किसी भी मात्रा में नहीं । गीता, पन्तजलि और शकुन्तला आदि की भांति और भी सैकड़ों ग्रन्थ, विदेशी भाषाओं में अनूदित्त होने योग्य हैं । संस्कृत साहित्य का इतिहास जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं के अतिरिक्त किसी विदेशी भाषा में नहीं लिखा गया है । समालोचना और कोष-ग्रन्थ केवल अंग्रेजी में ही सुलभ हैं । संस्कृत के विद्वानों, ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं को विदेशों में प्रचारार्थ भेजने की व्यवस्था भी अभी नगण्य है ।

शासकीय सहयोग की अपर्याप्तता—

केन्द्रीय और राज्य शासनों का ध्यान संस्कृत की ओर गया है; परन्तु संस्कृत की पाठशालाओं और विद्यालयों को या तो मान्यता ही न देना या प्राथमिक शालाओं के समकक्ष ही मानना, उन्हें पर्याप्त और सविशेष अनुदान न देना, संस्कृत संस्थाओं का स्वतः अत्यल्प मात्रा में संचालन करना, संस्कृत और संस्कृतज्ञों के हितों का सर्वोपरि ध्यान न रखना आदि अनेक ऐसी कमियां हैं जिनके कारण शासन का सहयोग पर्याप्त नहीं कहा जा सकता ।

शिक्षा का अर्थ-प्रधान उद्देश्य—

संस्कृत का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' है, जबकि आज की शिक्षा का उद्देश्य प्रधानतः अर्थोपार्जन हो गया है । एक का उद्देश्य आध्यात्मिक है और दूसरी का भौतिक । यह भी एक कारण है जिससे जन-साधारण की रुचि संस्कृति विद्या के प्रति उत्पन्न नहीं होने पाती ।

संस्कृत विद्या के प्रति उत्तरोतर बढ़ती हुई यह अरुचि गंभीर चिन्ता का विषय है । केवल एक भाषा या विद्या का ही नहीं, प्रत्युत भारतीय संस्कृति के जीवन-मरण का प्रश्न है । अतएव देश, समाज, संस्कृति और साहित्य के कर्णधारों का ध्यान इस ओर अविलम्ब आना चाहिये ।

संपादकीय

शिक्षक वर्ग की संघीय प्रगति—

पिछले सत्र की समाप्ति के निकट भारत के कई राज्यों में शिक्षक संघों की ओर से वेतनवृद्धि के आंदोलन होने लगे। इन आंदोलनों का होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि मंहगाई बढ़ती जा रही थी। परंतु इनकी उग्रता और उत्तर प्रदेश में नीचे से ऊपर तक के शिक्षक संघों का आंदोलन के लिए संगठित होना एक नई बात थी। सौभाग्यवश समुचित आश्वासनों के मिलने पर इनकी उग्रता समाप्त हो गई है और निश्चित है कि वेतन या मंहगाई के भत्ते में वृद्धि होगी, चाहे वह मांग के अनुकूल न भी हो सके।

बढ़ती मंहगाई के साथ बढ़ते वेतनों की मांग का एक कुचक्र बन गया है, जो देश की भावी के लिए अच्छा नहीं। उत्पादक श्रम की मात्रा का घटना और अनुत्पादक व्यय का बढ़ना ही मंहगाई का प्रमुख कारण है। चीनी अतिक्रमण के पश्चात् देश की प्रतिरक्षा पर व्यय अत्यधिक बढ़ गया है। व्यय के अनुत्पादक होते भी राष्ट्रीय रक्षा के लिए इसे सर्वोपरि मान्यता मिली है और मिलनी चाहिए। प्रतिरक्षा की समस्याएं बदलती अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती हैं जो हमारे बस के बाहर हैं। परंतु आंतरिक शांति की रक्षा हमारे बस की बात है; क्योंकि वह विद्यालयों के भीतर होनहारों और उनके बाहर वयस्क नागरिकों के समुचित शिक्षण पर निर्भर रहती है। सो हम आंतरिक शांति की भी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। दंगे हुआ करते हैं। उनमें गुंडों के साथ विद्यार्थी सम्मिलित कर लिए जाते हैं और देहात में जानमाल की रक्षा कठिन होती जा रही है। ऐसी दशा में पुलिस पर व्यय बढ़ता जा रहा है। यह व्यय भी उत्पादक नहीं, उत्पादन का रक्षक ही कहा जा सकता है। रेलें हमारी राष्ट्रीय निधि हैं। यदि देश के होनहार और वयस्क नागरिक इन्हें अपनी निधि मानने लगें तो करोड़ों की बचत संभव है जो आजकल अनैतिक यात्रा और यातायात में नष्ट हो रही है। शिक्षा ही के क्षेत्र में देखा जाय कि यदि हमारे शिक्षक संघ नीचे से ऊपर तक एक सूत्र में संगठित हो सकें और सदस्यों के बढ़े वेतन की मांग के साथ उन पर अपनी ही बनाई हुई आचार संहिता भी सक्रिय करें, तो शिक्षा की मद में जितना व्यय इस समय अनुत्पादक निरीक्षण पर

ता रहता है, उसमें बहुत-कुछ बचत हो जाय और वह शिक्षक सदस्यों की तन-वृद्धि के काम आवे ।

शिक्षक वर्ग के एक-सूत्री संगठन के साथ विद्यार्थियों के पालकों का शिक्षा और शिष्यों के नाते संगठित होना आवश्यक है। यदि शिक्षक वर्ग के नेताओं ने अपने संगठन के साथ सहयोग के लिए विद्यार्थियों के पालकों को भी संगठिन कर लिया होता, तो वेतनवृद्धि की मांग में उन्हें पालक वर्ग का संयमित सहयोग मिलता, वे वेतनवृद्धि के व्यावहारिक सुझाव शासन के नाते, आंदोलन उग्र न होने पाता, परीक्षाओं पर व्यर्थ व्यय से उत्तर प्रदेशीय शासन की बचत होती और मांगों की व्यावहारिक पूर्ति तो हो ही जाती ।

शिक्षक वर्ग के मध्य एकता के जो प्रयोग अब तक हुए हैं, उन्हें यहीं न रुक जाना चाहिए । जरूरी है कि प्रत्येक विद्यालय के शिक्षक सगठित हों, उस विद्यालय के पालक भी सेवा और सहयोग के लिए संगठित हों । इन विद्यालयों के शिक्षकों और पालकों का जिला स्तर पर संगठन हो और दोनों होनहारों के सेवा-सूत्र से बंधे एक-दूसरे से सहयोग करें । शिक्षक वर्ग और पालकों के मध्य सहयोग तभी सक्रिय हो सकेगा जब शिक्षक संघ अपनी आर्थिक मांगों के साथ शिक्षकीय आचार संहिता भी सक्रिय करेंगे । देश के अतीत में शिक्षक अर्थ-चिंता से मुक्त होकर विद्यादान में संलग्न रहते थे, तो पालक अपने बच्चों के शिक्षकों को अर्थ-चिंता से मुक्त रखने के लिए शील रहते थे । इस परंपरा का निर्वाह काल के नये संदर्भ में भी शासन और पालक वर्ग के सहयोग से संभव है । इस संबंध में प्रारंभिक विद्यालयों की आर्थिक दशा बहुत ही हीन है । संविधान का आदेश ८ वर्ष (६ वर्ष से वर्ष तक) की अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के लिए है । यदि यह शिक्षा वर्ष तक ही सीमित रखी जाय और शिक्षक से पूरे समय की शिक्षण-सेवा जाय तो वर्तमान मंहगाई को देखते हुए उसे जो वेतन मिलना चाहिए, शिक्षार्थी होनहारों की संख्या और देश की निर्धनता देखते किसी भी राज्य के सीमित साधनों के मान के बाहर होगा ।

तो शिक्षक संघों और शैक्षिक नीति निर्माताओं को पारस्परिक चिंतन-मय से वे मार्ग निकालने हैं जिनसे चालू प्रारंभिक शिक्षा की वास्तविक हो और उसके शिक्षक कम वेतन पाकर भी आर्थिक चिंताओं से मुक्त सकें।

यह असंभव नहीं । देश स्वतंत्र है ओर हमें गणतंत्रीय शासन व्यवस्था सौभाग्य प्राप्त है जो संगठित वर्गों तथा प्रशासन के स्वस्थ सहयोग ही से

सफल हो सकेगा । अतएव निवेदन है कि यदि शिक्षण की सही सेवा के शिक्षक वर्ग के संगठन के साथ पालक वर्ग का संगठित होना भी आवश्यक तो इस आवश्यक अभियान के लिए उमंगशील शिक्षक बंधुओं और पालकों राष्ट्रीय शासन से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

उत्पादन अभियान की दृष्टि से क्रिकेट—

क्रिकेट ब्रिटेन के रईसों का राष्ट्रीय खेल है । राष्ट्र मंड़ल के बा इसे कहीं भी मान्यता प्राप्त नहीं । राष्ट्र मंडल के भीतर भी कनाडा इसकी कोई कदर नहीं, क्योंकि कनाडियन संस्कृति पर संयुक्त राज्य की संस्कृ का अपेक्षाकृत अधिक असर है । परतंत्र भारत में क्रिकेट की धूम थी, क्योंकि हम पर अंग्रेज़ रईसों का जादू था । सत्रह वर्ष से हम स्वतंत्र हैं, परंतु ज के प्रभाव से अभी तक मुक्त नहीं हो पाये हैं ।

राष्ट्र मंडल के आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और वेस्ट इंडीज जैसे रा में क्रिकेट की धूम रहती है, क्योंकि वहां का एक वर्ग-विशेष बहुत संपन्न और उसे प्रचुर अवकाश भी प्राप्त है । यहां यह बात नहीं । यहां विद्याल में पढ़ाई के लिए और कारखानों तथा दफ्तरों में उत्पादक श्रम पर दिया जाना आवश्यक है ।

इस दृष्टि से हम क्रिकेट पर गौर करते हैं तो हम देखते हैं कि खेल के लिए वही समय (११ बजे से ५ बजे तक) जरूरी है जो उत्पादक श्र को दिया जाना चाहिए । संध्या या प्रातः के एक घंटे का यह खेल नहीं हार-जीत के निर्णय के लिए संध्या का एक घंटा यथेष्ट नहीं । इसके लि लगातार पांच दिन तक उत्पादक श्रम के छः-छः घंटे निकालने आवश्यक ह हैं । यहां समय का कोई मूल्य नहीं और यही हमारी निर्धनता का कारण है पिछले शरद लगातार क्रिकेट के कई टेस्ट मैच हुए हैं जिनमें हम बराबर र हारे हैं या जीते हैं । जीते हैं तो जीत पर खिलाड़ियों को शाबाशी दे स्वाभाविक है और इस शाबाशी के दान में देश के सर्वोच्च नेता शरीक हुए हैं ।

परंतु अब वह ऋतु सामने है जब क्रिकेट का खेल स्थगित रहे तो निवेदन है कि देश का सर्वोच्च नेतृत्व भारतीय राष्ट्र में क्रिकेट मान्यता पर पुनर्विचार करे । इस खेल से विद्यालयों, दफ्तरों, धंधों औ कारखानों में उत्पादक श्रम की भारी हानि होती है; क्योंकि लाखों तमा होते हैं और उतने ही काम छोड़ कर रेडियो पर कमेंटरी सुनते हैं ।

क्रिकेट के अतिरिक्त अन्य खेल हैं—स्वदेशी और विदेशी—जो कम जगह पर, कम समय में और कम व्यय से खेले जा सकते हैं, जो अधिक स्वास्थ्य-वर्धक हैं, जिनसे सहकारिता का अपेक्षाकृत अधिक प्रशिक्षण खिलाड़ियों को मिलता है। क्रिकेट की मान्यता घटे या समाप्त हो, तभी इन्हें अधिक मान्यता मिले और खेलों की मान्य अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में हमारे खिलाड़ी राष्ट्रीय मान बढ़ा सकें।

नेतृत्व के सर्वोच्च स्तर पर विषयानुकूल चिंतन और निर्णय वांछनीय है।

इस अंक में—

यह अंक प्रेस की व्यस्तता के कारण अपेक्षाकृत देर से निकल पाया है। इसके प्राय: सभी उपयोगी लेखों के बीच तीन लेख विशेष रूप से विचारणीय हैं। तिब्बत पर अपना अधिकार जमाकर चीन हमारा पड़ोसी हो गया है और साम्यवादी लाली अपना कर प्रसारवादी भी। परतंत्र भारत में जापानी शिक्षालयों से निकले श्रमिकों और पूंजिपतियों के संगठित उत्पादनों के आयात से हम भयभीत होने लगे थे; तो आजकल हम लाल चीन की प्रसारवादी नीति से त्रस्त हैं। इस नीति को वर्तमान चीन की शैक्षिक प्रगति से बल मिलता है, तो इसकी जानकारी होनी चाहिऐ। वहां प्रेस की परतंत्रता के कारण जानकारी बहुत कठिन है। परंतु भारत में प्रकाशित चायना रिपोर्ट नामक पत्रिका निष्पक्ष सावनों द्वारा जितना कुछ जोड़-बटोर कर प्रस्तुत कर सकी, उसका अविकल अनुवाद इस अंक में प्रकाशित किया गया है। दूसरे और तीसरे लेखों में शिक्षण स्तर की उन्नति तथा शिक्षक-अध्याप्य वर्ग के चारित्रिक विकास के वे व्यावहारिक सुझाव हैं जिनके कार्यान्वित होने से करदाता पर भार नहीं बढ़ता; जिस कारण ये सुझाव भी सर्वोच्च स्तर पर विचारणीय हैं।

आगे की बात—

पिछले गणतंत्र दिवस से देश में भाषा-विवाद की कटुता बढ़ गई है। पहले ही से, और स्वतंत्रता के पश्चात् विशेष रूप से, अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी का अध्ययन बढ़ गया है और बढ़ रहा है। अब आवश्यक है कि इन राज्यों में हिंदी की प्रगति का लेखा-जोखा प्रकाशित हो, जिससे कटुता का वातावरण किंचित शांत हो और हिंदी भाषी राज्यों तथा उनके जनों को अहिंदी भाषी नागरिक बंधुओं की सेवा के सही मार्ग दिखें। विशेषांक प्रकाशन के लिए हम प्रयत्नशील हैं और आशा करते हैं कि अप्रैल-मई का विशेषांक इस सेवा में सफल होगा।

भारतीय शिक्षा

हिन्दी मासिक पत्र के सम्बन्ध में विवरण

फार्म चार नियम संख्या आठ

१—प्रकाशन का स्थान — झा - शेषाद्रि - खत्री - भवन,
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

२—प्रकाशन की आवृत्ति — मासिक

३—मुद्रक का नाम — वी० बी० खत्री
राष्ट्रगत सम्बन्ध — भारतीय
पता — निर्बल-के-बल-राम प्रेस,
१६/८ ए, सिविल लाइन्स, कानपुर।

४—प्रकाशक का नाम — ए० पी० खत्री
राष्ट्रगत सम्बन्ध — भारतीय
पता — अवैतनिक संयुक्त मंत्री, अखिल भारती
शिक्षक संघ, पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपु

५—सम्पादक का नाम — कालिदास कपूर
राष्ट्रगत सम्बन्ध — भारतीय
पता — कपूर कुटी, १, हरदोई मार्ग, लखनऊ

६—उन व्यक्तियों के नाम पते जो इस समाचार पत्र के मालिक हैं और जो इसकी पूंजी के भागीदार हैं। — अखिल भारतीय शिक्षक संघ
झा-शेषाद्रि-खत्री भवन,
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर
(सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार
रजिस्टर्ड शिक्षण संस्था)

मैं ए० पी० खत्री अवैतनिक संयुक्त मंत्री इसके द्वारा घोषित कर हूं कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार यथार्थ है

ए० पी० खत्री
प्रकाशक

दिनांक १-३-१९६५

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

—विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
—क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
—भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
—प्रधान का पत्र
—अभिभावकों का समस्या-समाधान
—शिक्षक प्रशस्ति
—कक्षागत समस्या
—पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
—शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा।

* * *

विशेषांक योजना

—स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
—विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)
—विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
—विदेशों में शिक्षक संघ
—विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
—प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था (मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
—विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
—विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
—नारी-शिक्षा
—हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
—शिक्षेतर कार्यक्रम

बी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल न्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, तीय शिक्षक संघ, झा-शेषाद्रि-खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर द्वारा प्रकाशित।

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ–३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र–पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औ पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुके एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइ कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा- भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कान

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधा
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

अप्रैल, मई, जून, १९६५

विशेषांक (अहिंदी राज्यों में हिंदी की प्रगति)

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation of Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा करता आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो चार वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आपकी सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक ही सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हममें से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूसरा (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का प्रथम विशेषांक है। पहला अंक पिछले गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हुआ था। जिस भावना और उद्देश्य से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्वयं और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदान दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार के अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

63/ 10-12-65
76357

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की
मासिक मुख-पत्रिका

प्रथम वर्ष ● अप्रैल, मई, जून, १९६५ ● चतुर्थ अंक

विशेषांक (अहिंदी राज्यों में हिंदी की प्रगति)

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–अध्यक्ष–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत–डा० गोपाल शर्मा
३–असम–परेशचन्द्र देव शर्मा
४–आंध्र–डा० भीमसेन निर्मल
५–उड़ीसा–राधाकान्त मिश्र
६–कश्मीर–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–केरल–ए० चन्द्रहासन
८–गुजरात–जेठालाल जोशी
९–पंजाब–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–बंगाल–मोहितकुमार बनर्जी
११–बिहार–श्यामजी सिंह
१२–मद्रास–डा० शं० ना० गणेशन
१३–मध्यप्रदेश–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–महाराष्ट्र–प्र० रा० भूपटकर
१५–मैसूर–ना० नागप्पा
१६–राजस्थान–शंकरसहाय सक्सेना
१७–सम्पादक : सचिव–कालिदास कपूर

भारतीय शिक्षक संघ
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक— १ रु० ५० पैसे

विषय-सूची

पृष्ठ

१—प्रेरणादायक वचन ३

२—दक्षिण में हिन्दी—आचार्य ना० नागप्पा ६

३—जम्मू-कश्मीर राज्य में हिन्दी की प्रगति—श्री पृथ्वीनाथ राज़दान ११

४—उड़ीसा में हिन्दी की प्रगति : एक विश्लेषण—श्री राधाकान्त मिश्र २१

५—केरल में हिन्दी की प्रगति—श्री सुधांशु चतुर्वेदी ... २७

६—गुजरात का हिन्दी प्रेम—श्री जेठालाल जोशी ३४

७—दक्षिण के हिन्दी विरोध का विश्लेषण—एक तमिल भाषी ४०

८—हिन्दी और बंगाल—श्री देवनाथ चतुर्वेदी ५६

९—आन्ध्र में हिन्दी—डॉ० भीमसेन निर्मल ६५

१०—महाराष्ट्र में हिन्दी प्रचार की प्रगति—डॉ० न० वि० जोगलेकर ७७

११—असम में हिन्दी की प्रगति—श्री देवेन्द्रनाथ 'प्रशान्त' ... ८५

१२—पंजाब और हिन्दी—श्री रघुनन्दन शास्त्री ९०

१३—हिन्दी की व्यथा—पांडेय सीताराम प्रसाद १०१

१४—लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम का विकल्प किन शर्तों पर स्वीकृत हो १०५

१५—परिचायिकी ११२

१६—संपादकीय १२४

प्रेरणादायक वचन

स्वर्गीय राष्ट्र-निर्माता जवाहरलाल नेहरू

भारत पर एक निगाह डालने से पता चलता है कि विशाल देश होते हुए भी इसमें चंद भाषाएँ ही बोली जाती हैं, वे भी एक दूसरी से मिली हुई हैं। भारत में एक ऐसी बहुत बोली जाने वाली भाषा भी है जिसे करोड़ों लोग समझते हैं··· ··· ···

प्रांतीय भाषाओं के प्रभाव को जरा भी कम किए बिना भारत भर के लिए आपसी विचार-विनिमय के लिए एक आम माध्यम आवश्यक है। कुछ लोगों का विचार है कि अँग्रेजी यह काम दे सकती है, किंतु जनता के दृष्टिकोण से यह नितांत असंभव है। हम करोड़ों लोगों को सिर्फ विदेशी बोली से ही शिक्षित नहीं कर सकते ··· ··· ···

बहुत सी भाषाओं की कठिनाई दूर करने के लिए रोमन लिपि की वकालत की गई है। जल्दी काम करने की दृष्टि से यह बेहतर है, लेकिन मेरा ख्याल है कि रोमन लिपि के लिए जरा सा भी मौका नहीं है। रोमन लिपि हमारे लिए विदेशी शासकों से संबंध रखती है। भावना की दीवार रोमन लिपि के प्रयोग में सब से बड़ी दीवार है। इसके अतिरिक्त इसे अस्वीकार करने के और भी ठोस कारण हैं। लिपियाँ हमारी संस्कृति का अनिवार्य अंग हैं, उनके बिना हम अपनी प्राचीन परम्परा से बिलकुल अलग हो जाएँगे ··· ··· ···

(१९३७ के एक लेख से)

* * *

माननीय गृह मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा

●

भारतीय शिक्षा को अपनी शुभ कामनायें भेजते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है। किसी समाज के सुसंस्कारी होने तथा उसके मूल्य सही होने का एक प्रमाण उसमें शिक्षक की हैसियत क्या है—यह माना जा सकता है। मुझे विश्वास है कि हमारे देश में शिक्षक का मान बढ़ता जायेगा। भिन्न-भिन्न विषयों में अपना ज्ञान तथा क्षमता बढ़ाने के परिश्रम और शीलसंवर्धन द्वारा शिक्षक-वर्ग का प्रत्येक सदस्य, समाज से निहित आदर पाने योग्य बनने का प्रयत्न करेगा, ऐसी मुझे आशा है। इस दिशा में यह मासिक पत्रिका शिक्षकों की सहायता करे, यही मेरी प्रार्थना है।

★ ★ ★

स्व० नेहरू जी की सुपुत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी

●

हिन्दी को राज्य भाषा बनाने का उद्देश्य देश की एकता को सुदृढ़ करना है। यह तभी हो सकता है जब हिन्दी देश के प्रत्येक भाग में रहने वाले लोगों के बीच लिंक भाषा बन सके। दक्षिण में हिन्दी विरोधी आन्दोलन के पश्चात् हिन्दी के प्रचारकों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। उन्हें हिन्दी भाषी क्षेत्र में न केवल हिन्दी का प्रचार बल्कि देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचार कार्य भी करना चाहिये। दक्षिण के लोगों का यह उलाहना है कि उत्तर भारतीयों को एक अतिरिक्त भाषा न सीखने की सुविधा है। यदि उत्तर के लोग दक्षिण की एक भाषा भी सीखें, तो इससे दक्षिण प्रदेशों को सन्तोष मिलेगा और हाल ही में उत्तर भारत के प्रति जो अविश्वास उनमें उत्पन्न हुआ है उसमें भी बहुत हद तक

कमी होगी । इससे अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार करने वालों को सुविधा मिलेगी ।

मैं आशा करती हूँ कि भारतीय शिक्षक संघ हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं को हिन्दी क्षेत्रों में बढ़ाने का कार्य भी करेगा और अपनी मासिक पत्रिका **भारतीय शिक्षा** को सचमुच भारतीय रूप देगा । इस कार्य में मेरी शुभ कामनाएँ संघ के साथ हैं ।

* * *

वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति
श्री सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी

भारतीय शिक्षा प्रकाशित करने का शुभ संकल्प अत्यन्त पवित्र एवं श्लाघ्य है । संस्कृत वाङ्मय में शिक्षक को गुरु तथा आचार्य की संज्ञा दी गई है । इन्हें समाज में उच्च-से-उच्च पद प्रदान किया गया है और त्रिदेव-स्वरूप माना गया है ।

निर्विवाद रूप से यह पत्रिका भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के अनुरूप शिक्षकों के वास्तविक महत्व का प्रतिपादन करती हुई समाज और शासन में उनके स्वरूपानुकूल समुचित सम्मान अर्जन करने में बहुत बड़ा सहयोग प्रदान करेगी । इसके सतत संवर्धन तथा अभ्युदय के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामना है ।

* * *

दक्षिण में हिन्दी

(आचार्य ना० नागप्पा, अध्यक्ष स्नताकोत्तर हिन्दी अध्ययन तथा अनुसंधान विभाग, मैसूर वि० वि०)

दक्षिण भारत ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के तीन युग देखे हैं।

पहला युग

पहला युग तब प्रस्तुत हुआ (१९१८–१९३७) जब राष्ट्रीयता की मद-होश नौजवान नव-युवतियाँ हिन्दी के गीत गाते-गाते प्रेम-पुलकित हो जातीं, राष्ट्रभाषा सीखना गौरव की बात मानतीं और राष्ट्रभाषा सीखते-सीखते राष्ट्रीयता की वृद्धि का अनुभव करती हुई पुलकित होतीं। उन दिनों 'एक (राष्ट्र) भाषा हिन्दी हो, एक हृदय हो भारत जननी' वाले मूल मन्त्र से सब लोगों का हृदय ओत-प्रोत था। राष्ट्रभाषा से न पैसा कमाने की आशा थी, न हिन्दी का वाणिज्य कर के घर चलाने-बसाने की धुन थी, न हिन्दी की कितावें वेच कर हवेलियाँ खड़ी करने का लोभ ही था। कितने ही धनीमानी देश-भक्ति से प्रेरित सरकारी नौकर अपने-अपने घरों में हिन्दी-वर्ग चलाने लगे थे जो आगे चल कर प्रायः महिला समाजों में परिवर्तित हो गये। फिर भी उन समाजों का केन्द्रीय कार्य था हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन ही। उन दिनों भी कुछ ऐसे लोग थे जिनको यह कहते हुए पाया जाता था—बेचारी गरीब मातायें अपने बच्चे को दूध न पिला कर बचे पैसे से हिन्दी की पुस्तकें खरीदती हैं और हिन्दी पढ़ती हैं। इस उत्साह का प्रभाव उन दिनों की राष्ट्रवादी काँग्रेस पर पड़ा और परिणाम अच्छा ही हुआ। राष्ट्रीयता ने गति पायी। कांग्रेस के विरोधियों ने भी हिन्दी का साथ दिया। मुसलमानों ने हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने में उत्साह दिखाया। महिलाओं ने तो हिन्दी को विशेष चाह से अपनाया। फल यह हुआ कि दक्षिण के शासन ने (उन दिनों के अँग्रेजी शासन ने) भी हिन्दी को स्कूल-कालिजों में वैकल्पिक स्थान दिया; इसलिये नहीं कि हिन्दी के द्वारा ज्ञान-विज्ञान की कोई बात सीखी जाती थी या सीखी जा सकती थी; इस लिये ही कि देश के बच्चे हिन्दी भी पढ़ना पसन्द करते हैं; दक्षिण के लोग यदि कभी उत्तर पहुंच जायँ तो हिन्दी उन्हें काम देगी। यों हिन्दी भारतीय समाज के एक स्नेह-बिन्दु के रूप में आद्रत होने लगी। उक्त युग में स्थापित हिन्दी

प्रचार सभायें सारे देश में अत्यन्त लोकप्रिय, जन-प्रिय संस्थायें बन गईं, क्योंकि इन संस्थाओं में न पद का लोभ था, न धन का लाभ ही।

दूसरा युग

दूसरा युग तब प्रस्तुत हुआ जब सन् १९३९ में क्षेत्रीय राज्यों पर कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने अधिकार ग्रहण किया। उन दिनों के कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों का लक्ष्य, ध्येय, तथा उद्देश्य केवल जन-सेवा रहा। वे पर्मिट-लाइसेन्स-कोटा वाले राज्य नहीं थे। उनका लक्ष्य अल्प समय में जनता की सर्वाधिक सेवा करने का था। मद्रास में राजाजी के मन्त्रि-मंडल ने इधर हिन्दी को स्कूलों में आवश्यक भाषा का स्थान दिया और उधर बम्बई इलाके में बालाजी खेर ने हिन्दी की ऐसी जड़ जमाई जिसने पुष्पित-पल्लवित हो कर अब सभी उच्च स्तरीय शैक्षिक संस्थाओं को घेर लिया है। मैसूर, कोच्चि, तिरुवांकुर, हैदराबाद जैसे प्रगतिशील (?) देशी राज्यों तक में हिन्दी को स्कूल, कालेजों में स्थान मिला। कतिपय विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी को स्थान प्राप्त हुआ। हिन्दी से एम० ए० तक की परीक्षा देने की सुविधा मद्रास के विश्वविद्यालयों में हो गई। पूज्य राजाजी उन दिनों मद्रास-राज्य के मुख्य-मन्त्री थे। वह कहते थे कि हिन्दी का कार्य मैं तेजी से आगे बढ़ाना चाहता हूँ। सुस्त दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को मेरा साथ नहीं देते बनता।

तीसरा युग

तीसरा युग १९४७ से प्रारम्भ हुआ जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा, समूचे देश की एक सार्वजनिक सम्पर्क भाषा, राष्ट्रीयता की प्रतीक और सारे राष्ट्र की संस्कृति की वाहिका के रूप में देखने की अभिलाषा जगी। संविधान ने जैसे ही हिन्दी पर अपनी मुहर लगा दी कि हिन्दी प्रचार, हिन्दी प्रचारक और हिन्दी को प्रोत्साहन देने वाली सरकारों के प्रति जनता की समालोचनात्मक दृष्टि होने लगी। तब तक हिन्दी के प्रति प्रेम ही प्रेम था। हिन्दी से काम लेने की बात का विवेक अवश्य था, परन्तु दूसरी ओर हिन्दी को भावी राज्य भाषा के रूप में अपनी क्षेत्रीय भाषा से किंचित उच्च पद प्राप्त कर लेने की सम्भावना के कारण कुछ-कुछ खट-मिट्ठा-सा भाव कतिपय लोगों के मन में उठने लगा। यह सब अपनी हीन-भावना का ही परिणाम था—ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। हौले-हौले दक्षिण में प्रत्येक विश्वविद्यालय के उच्चतम स्तर पर हिन्दी को स्थान मिलने लगा। इन स्तरों पर

आसीन प्रोफेसर प्रथम । और / या द्वितीय युग के हिन्दी प्रचारकों में से प्रायः चुने हुए होने के कारण अपनी विद्वत्ता कीं अपेक्षा सेवा, त्याग या श्रद्धा के लिये अधिक प्रसिद्ध थे और हैं । विद्वत्ता की बढ़ती हुई, एकदम उठी हुई, माँगों की पूर्ति करने में उन्हें कठिनाई पड़ रही है । उन दिनों एक ओर तो हिन्दी को राज्य भाषा के पद पर आसीन करने वालों की द्रुत-गामिनी धुन थी और दूसरी ओर वह जाने-अनजाने समूचे देश में आदान-प्रदान के कारण भारतीय साहित्य की वाहिका का रूप धारण कर चली थी। इतनी पुस्तकें, इतनी विविध पत्रिकायें, ज्ञान-विज्ञान पर लिखे हुए इतने ग्रन्थ १९४७ के बाद किसी अन्य भारतीय भाषा में शायद निकले हों। कई सरकारों का प्रयत्न, प्रकाशन-धरों का उत्साह, लेखकों की आशा-आकांक्षाएँ, विद्यार्थियों की उमंगें–सभी हिन्दी की इस वृद्धि में योग दे रही हैं । दक्षिण में हिन्दी पढ़ने वालों की मांग पूरी करना मुश्किल-सा हो रहा है। समस्त अहिन्दी भाषी राज्य-सरकारों ने अपने स्कूल-कालिजों में हिन्दी को स्थान दिया है। हिन्दी की यह प्रशंसनीय प्रगति वास्तव में आशातीत है ।

आज की बात

इस वर्ष का गणतन्त्र दिवस निकट आने लगा, तब कुछ अँग्रेजीदाँ— जो पुराने हुकुमराँ के 'जी हुजूर' रह चुके थे—और कुछ ऐसे प्रौढ़ या वृद्ध व्यक्ति जिनका अतीत सार्वजनिक क्षेत्र में ऊँचा नहीं रहा या जिनका भविष्य आशाजनक नहीं है, हो-हल्ला मचाने लगे । इस 'स्कूल आफ थाट' का दावा है कि आखिर हिन्दी भी तो एक क्षेत्रीय भाषा से बढ़ कर कुछ नहीं है। वह सम्पर्क-भाषा या सारे देश की राजभाषा होने का दावा करती भी है तो केवल इस भाषा के जाननेवालों की संख्या के बल पर ही । यह काम बखूबी पूर्ववत् अंग्रेजी से अधिक अच्छा चलेगा । अतः प्रगतिशील हिन्दी के मधुर सुस्वर संगीत में कुछ-कुछ अपस्वर उठने लगे हैं और ये अपस्वर कुछ जोरों से इधर दो तीन-महीने मद्रास-प्रांत में बुलन्द हुए । कालान्तर में सारे देश की इस 'सर्वभाषा सरस्वती' हिन्दी की वीणा की मोहक तान में यह हीन अपस्वर गर्क होकर ही रहेगा। हिन्दी-सरस्वती को अपनी वीणा का तार जरा तानना है । यदि तार कुछ अधिक तन गया हो तो उसमें जरा ढिलाई लानी है। इस अपस्वर के पीछे न हृदय है, न मस्तिष्क ही । हाँ, इस अमस्वर के पीछे जबरदस्त तर्क यह है कि हिन्दी कभी भी अहिन्दी भाषी प्रांतों में एक द्वितीय भाषा के तौर पर ही पढ़ायी जायगी । द्वितीय भाषा के तौर पर हिन्दी पढ़ने वाले नागरिक किसी भी दिन घर में अपनी ही मातृ

भाषा के तौर पर हिन्दी के जानने वालों से दबकर ही तो रहेंगे। अतः अहिन्दी भाषी हिन्दी भाषी लोगों के मुकाबले देश में द्वितीय श्रेणी के नागरिक बन कर रहेंगे। और तो और, उत्तर भारत के समस्त कार्य-क्षेत्र में (अँग्रेजी का बोल-बाला रहते हुए भी) दक्खिनियों के प्रति कुछ अच्छी दृष्टि या सद्भावना जब नहीं रही है, तब हिन्दी-साम्राज्य के स्थापित होने (याने हिंदी के राजभाषा के पद पर पूर्णतया आरूढ़ होने के उपरान्त) अहिन्दी भाषी हिन्दी वालों के सामने हर एक क्षेत्र में—हर एक स्तर पर—हर दिशामें—हर जगह उखड़ जायेंगे। भविष्य में उनके सितारे निश्चित ही डूबेंगे। अँग्रेजी का राज्य सदा के लिये इस देश में रहे, तभी क्षेम है।

आज देश में इस तर्क के विरोध में विवेक से काम लेने वाले, भारत की एकता के लिये एक **भारतीय भाषा** को अत्यन्त आवश्यक माननेवाले और स्वयं अंग्रेजी-दाँ विद्वान होते हुए भी जनता के भविष्य को देखनेवाले लोगों का एक और वर्ग भी है। इस वर्ग के लोग अपनी प्रांतीय भाषा के भी विद्वान होते हैं, हिन्दी भी कुछ-कुछ जानते हैं (जैसे पूज्य श्री दिवाकर जी)। पर संख्या में इस वर्ग के लोग प्रथम वर्ग की समता नहीं कर सकते। इस वर्ग का दावा है कि क्षेत्रीय भाषाओं को पूरी छूट दे दो। उनकी उन्नति में हिन्दीवाले अधिकाधिक सहायता प्रदान करें। त्रिभाषा सूत्र प्रत्येक स्तर पर सर्वत्र अपनाया जाय। तब भाषा की समस्या को लेकर आज जो तनाव चल रहा है, वह आप ही आप थम जाएगा। जैसे-जैसे क्षेत्रीय भाषाओं की धाक अपने-अपने क्षेत्रों में जमती जायेगी, क्षेत्रीय भाषाओं का चरम विकास होता जायगा, वैसे ही वैसे हिन्दी की माँग एक सार्वदेशिक सम्पर्क-भाषा के रूप में बढ़ती जाएगी। राज्य भाषा के पद पर हिन्दी को बरते जाने का तब कौन विरोध करेगा?

तीसरा वर्ग है हिन्दी अध्यापक- प्रचारकों का। यह वर्ग बेचारा बल-हीन अवश्य रहा है, परन्तु क्षीण नहीं है। इस वर्ग की आवाज बुलन्द हो भी तो कैसे? ये अध्यापक और प्रचारक 'उग्र' जी के चार बेचारों में से ही तो हैं! फिर भी इन्हीं बीस-पचीस हजार बेचारों की उत्साह दीपिका धीमी-धीमी, पर स्नेह-सिक्त रहती हुई, निरन्तर जलती रही है और रहेगी। प्रथम वर्ग के तर्कों की कड़क के सामने इस वर्ग की आवाज किसी के कानों तक नहीं पहुँच पायी; जिस कारण संविधान में संशोधन की बात भी सोची जाने लगी। परन्तु कड़क थोड़ी-बहुत थम गई है, तो इस वर्ग की आवाज धीमी-धीमी, मुद्रणालय से निकलती खट-खट जैसी सुनाई पड़ने लगी है, द्वितीय वर्ग के लोग इन बेचारों

को सहानुभूति से देखते हैं। प्रथम वर्ग के किसी व्यक्ति का कहना है—क्या आप हिंदीवाले हैं ? हाय-हाय ! कोई दूसरा काम करते नहीं बना।

द्वितीय वर्ग वालों का कहना है—आप हैं हिन्दी प्रचारक ! अच्छा ! आइये, अपना काम करते चलिये– आपका भविष्य उज्ज्वल होगा। भगवान आपका भला करे। देश आपका अधिकाधिक साथ दे !!

बेचारे इन हिन्दी सेवियों का अतीत स्वप्नों में बीता; वर्तमान वाद-ग्रस्त रहा। पर भविष्य उज्ज्वल अवश्य रहेगा। हिन्दी की भी यही दशा है। समस्त हिन्दी कार्य-कर्त्ताओं के हाथ में महात्मा गाँधी जी ने आशा-दीप थमा रखा है। यह दीप नंदादीप की तरह कभी न बुझने वाला दीप है, उत्तरोत्तर तेज होने वाला है, सारे राष्ट्र को उज्ज्वल, और आलोकित करनेवाला है। तथास्तु।

जय हिन्द, जय हिन्दी।

* * *

नई धारा
नये युग का नया प्रतीक, नया मूल्यांकन ; नई शैली, नया संकेत
(साहित्य एवं संस्कृति की श्रेष्ठ मासिक पत्रिका)
सम्पादक मंडल :
श्री रामवृक्ष बेनीपुरी : राजा राधिका रमण प्र० सिंह
सम्पादक : श्री उदयराज सिंह
सह-सम्पादक : श्री सुरेश कुमार
वार्षिक मूल्य : आठ रुपये; एक प्रति : पचहत्तर पैसे
प्राप्ति स्थान
अशोक प्रेस, पटना– ६

जम्मू-कश्मीर राज्य में हिन्दी का प्रगति

(प्राध्यापक पृथ्वीनाथ राज़दान, श्रीनगर)

भारत के उत्तर में स्थित काशी और कश्मीर के शैवाचार्यों का दक्षिण में स्थित मद्रास और केरल के विद्वानों के साथ संस्कृत भाषा द्वारा तालमेल और विचारों का लेन-देन उन प्रमाणों में से एक है जो भारत में विभिन्न जातियों के भाषाई और दूसरे भेदों के होते हुए भी उनका पारस्परिक स्थायी सम्बन्ध सिद्ध करता है।

कश्मीरी जन अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और समयानुकूल चलने की अनुपम शक्ति के कारण घोर अत्याचारों का, जिनकी जोड़ इतिहासों में नहीं मिल सकती, मुकाबला करने में सफल रहे और शान्त तथा आदरणीय जीवन व्यतीत कर सके। वे समय की समस्याओं को लोकमत और प्रगतिशील ढंग से सोचा करते थे। वे सहनशील थे और अपने विरोधियों को वादविवाद द्वारा राजी किया करते थे, यद्यपि समय पड़ने पर अपना मान और आदर बचाने के लिये शस्त्रों का भी प्रयोग करने से पीछे न हटते थे।

कश्मीरी लोग शान्तिप्रिय हैं और उनमें विद्या, सौंदर्य, शील और सत्य आदि गुणों की अत्यन्त चाह है। वे विद्या और कला से प्राप्त अपनी निधि दूसरे लोगों तक पहुंचाने के उत्सुक हैं और अपनी रियासत के बाहर लोगों से भी सीखकर लाभ उठाना चाहते हैं।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं जो कश्मीरी भारत के कोने-कोने और भारत से बाहर भी अपने विचारों का प्रचार करते, सचाई की खोज में और भारतीय सभ्यता के प्रचार हेतु गये।

प्राचीन काल से ही कश्मीर संस्कृत विद्या का एक बड़ा केन्द्र रहा है; अतः भारत के दूसरे ऐसे केन्द्रों से सामान्यतः और काशी से विशेषतः इसका सम्पर्क स्वाभाविक था। यही हाल इस देश के शैवमत के केन्द्रों का भी रहा है।

भौगोलिक दृष्टि से कश्मीर भारत के अन्य प्रान्तों से अलग रहा है क्योंकि अनेकों पर्वत श्रृंखलाएँ और उनके बीच बहने वाली छोटी नदियों ने एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के मार्ग दुर्गम बना दिये हैं।

यों इस रियासत के भिन्न-भिन्न भाग एक-दूसरे से अलग और बाकी भारतवर्ष से भी अलग हो गये हैं। प्राचीनकाल में सड़कें और यातायात के साधन न होने के कारण यहाँ से भारत जाना या भारत से इधर आना अत्यन्त कठिन था। परन्तु इन कठिनाइयों के होते हुए भी अनेकों विद्वान, सन्त, महापुरुष तथा साधारण जन दुःखमय यात्रा की कठिनाइयां झेल कर सत्य के अन्वेषण में इधर से उधर तथा उधर से इधर आते-जाते देखे गये हैं।

ये लोग अपने विचारों को प्रकट करने के लिए संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते थे। संस्कृत के साथ-साथ जो कि विद्वानों और दार्शनिकों की भाषा थी, जन साधारण के विचार प्रकट करने के लिए, हिंदी का विकास होता रहा। ये दोनों भाषाएं, संस्कृत तथा हिंदी, रियासत की मातृ भाषाओं कश्मीरी और डोगरी पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहीं। यह यों स्पष्ट है कि दोनों बोलियों में बोलचाल के कई संस्कृत तथा हिन्दी शब्द पाये जाते हैं।

इस सम्बन्ध में महाराजा रणवीरसिंह (१८५०-८५) का प्रयत्न प्रशंसनीय है, क्योंकि उन्होंने सबसे पहले हिन्दी को देवनागरी लिपि द्वारा सरकारी कार्यक्रम और पत्र-व्यवहार के लिए प्रयुक्त किया और कश्मीर के विद्वान ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत की कई एक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कराया। परन्तु उनके देहान्त के पश्चात् यह काम आगे न चला और महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में (१८८५-१९२५) फिर से उर्दू और फारसी ही सरकारी भाषाएं बन गईं। तब से व्यक्तिगत रूप में ही संस्थाओं अथवा लेखकों ने हिन्दी भाषा की उन्नति की ओर प्रयत्न किये हैं। हिन्दी भाषा में छोटे-छोटे लेख तथा छोटी-मोटी कविताएं लिखने का आरम्भ भी इसी काल में उन कवियों ने किया जो हिन्दी, संस्कृत तथा कश्मीरी भाषाओं में उच्चकोटि के कवि और प्रौढ़ दार्शनिक थे। श्री पी० एन० मधुप ने कश्मीर में हिन्दी का विकास-क्रम दो भागों में बांटा है :

१. सहभाषाकाल—इसमें प्रारम्भिक मिली-जुली हिन्दी का समय भी लिया जा सकता है।

२. प्रचार-सृजन काल—इस काल में हिन्दी भाषा का प्रचार कश्मीर में हुआ।

३. इनके अतिरिक्त दो और भाग जोड़े जा सकते हैं—हिन्दी भाषा को दूसरी भाषा की मिलावट से साफ करने का उद्योग।

४. रियासत भर में हिन्दी को जोर-शोर से फैलाने की मुहिम।

यहां हमारा काम रियासत में हिन्दी का विकास और उसकी वर्तमान स्थिति पर विचार करना है जो भारत के विधान के अनुसार सारे देश की राष्ट्रभाषा बनाई गई है और जिसके सम्बन्ध में श्री नेहरू ने उन अभी हिन्दी न बोलने वाले प्रान्तों को आश्वासन दिया है कि अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी तब तक एक सहायक भाषा के रूप में जारी रहेगा जब तक हिन्दी न बोलने वाले प्रान्त इस भाषा की लिखाई-पढ़ाई में काफी महारत प्राप्त न करें और हिन्दी को अंग्रेजी की जगह अपना न लें।

हिन्दी प्रचारिणी संस्थाओं ने रियासत की हिन्दू स्त्रियों पर गहरा प्रभाव डाला है और उन्हें हिन्दी प्रेमी बना दिया है। पुरुषों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी और उर्दू ही रहा, परन्तु स्त्रियों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी और हिन्दी हो गया है। आजकल भी यही कैफियत है। मर्द सरकारी या दूसरी नौकरियां प्राप्त करने के लिए या और प्रकार के काम-काज सीखने के लिए शिक्षा ग्रहण करते हैं। परन्तु स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें घरेलू काम-काज में निपुण बनाना होता है। अब स्त्रियों के काम का फैलाव बहुत विस्तृत हो गया है और लड़के भी थोड़ा-बहुत हिन्दी को ही अपनी शिक्षा का माध्यम बनाना पसन्द करते हैं। इस प्रकार हिन्दी का विस्तार और विकास दिन-प्रति-दिन तेजी के साथ बढ़ रहा है।

सर गोपाल स्वामी आयंगर के रियासत के प्रधान मन्त्रित्व (१९३७-४५) और ख्वाजा गुलामुस्सय्यदैन साहब के शिक्षा विभाग के अधिपतित्व में उर्दू को देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों में शिक्षा का माध्यम बनाया गया।

इसके अतिरिक्त महाराज हरिसिंह के शासनकाल में प्रजासभा की कई एक बैठकों में उस समय के कई सभासदों ने हिन्दी को तरक्की देने और विकास में लाने की मांग की।

पाठशालाएं और मकतब : पाठशालाएं जिन्हें महाराजा प्रतापसिंह के समय से सरकारी आर्थिक सहायता मिल रही है, देर से हिन्दी भाषा के प्रचार का कुछ-न-कुछ काम कर रही हैं।

हायर स्कूल और यूनिवर्सिटी परीक्षाएं : रियासत भर में आधे दर्जन से अधिक हिंदी महाविद्यालय हैं जिनमें अधिकतर संख्या कन्या महाविद्यालयों की है जो हिन्दी को रियासत में बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। ये हैं : १. महिला महाविद्यालय, २. राजकीय ओरियंटल कालेज, ३. रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय, ४. सनातनधर्म कन्या महाविद्यालय, ५. हिन्दू कन्या महा-

विद्यालय, ६. विश्वभारती कन्या महाविद्यालय, ७. रूपा देवी शारदापीठ। १९५८ से विश्वविद्यालय में पोस्ट ग्रेजुएट क्लासों के खोले जाने से हिन्दी को लेखन कला और साहित्य को बढ़ावा देने की ओर बड़ा प्रोत्साहन मिला है। इस विश्वविद्यालय से लगभग ९० छात्रों ने एम० ए० की परीक्षा पास की है। हिन्दी विभाग एक पत्र भी वितस्ता नाम से प्रकाशित करता है।

नीचे दिये हुए हुए ब्योरे से हिन्दी की यूनीवर्सिटी के स्तर पर प्रगति का पता लगता है :

परीक्षा	१९४९		१९६४	
	परीक्षित	परीक्षा में उत्तीर्ण	परीक्षित	परीक्षा में उत्तीर्ण
रत्न	१२७	७६	१२ छात्र ३० छात्रायें ४२	७ छात्र ८ छात्राएं १५
भूषण	१४८	४९	३२ छात्र ६९ छात्राएँ १०१	८ छात्र २६ छात्राएं ३४
प्रभाकर	१४२	३१	२०७ छात्र ११९ छात्रायें ३२६	९४ छात्र ५८ छात्राएं १५२
एम० ए० हिन्दी	—	—	३२ छात्र ३२ छात्राएं ६४	२७ छात्र २७ छात्राएं ५४
कुल	४१७	१५६	२८३ छात्र २५० छात्राएं ५३३	१३५ छात्र ११९ छात्राएं २५४

कल्चरल एकाडमी प्रान्तीय भाषाओं तथा हिन्दी भाषा में लिखी पुस्तकों के प्रकाशन में उनकी उत्तमता के अनुसार आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन देती हैं। इस एकाडमी से कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

डोगरी भाषा के लेखों के संकलन तथा उनके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। एकाडमी ने **शीराजा** नामक हिन्दी पत्रिका का संपादन भी जनवरी १९६५ से आरम्भ किया है। एकाडमी ने पांच उत्तम हिन्दी पुस्तकों के लेखकों को और दूसरों को १००० रु० और ७०० रु० क्रमशः प्रथम और द्वितीय पारितोषिक के रूप में दिये हैं।

केन्द्रीय सरकार के भिन्न-भिन्न विभाग, तार विभाग को छोड़कर, अपने कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। इन कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाने की सुविधा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सुविधाएँ भी दी जा रही हैं। रेडियो कश्मीर और जम्मू भी अपने विभाग के कर्मचारियों तथा जनता में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिए उपयुक्त और योग्य हिन्दी के प्रोग्राम प्रसारित करके भरसक यत्न कर रहा है।

हिन्दी समाचार पत्र और पत्रिकाएं :

कालेज के मैगजीनों में हिन्दी विभाग एक आवश्यक अंग बना हुआ है, तो साथ ही हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं भी उन्नति पा रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने से पहले समय-समय पर छः पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं।

१९४७ के बाद से हिन्दी में ११ पत्रिकाएं प्रकाशित हुई हैं जिनमें शीराजा सबसे नयी है और इसका प्रकाशन इसी वर्ष से प्रारंभ हुआ है।

कश्मीरी भाषा के कई एक लेखकों ने कश्मीर से बाहर जाकर कश्मीरी साहित्य में नाम पैदा किया है। उन्हें कई पुस्तकों के लिऐ प्रान्तीय सरकारों की ओर से पारितोषिक भी प्राप्त हुए हैं। उल्लेखनीय शुभनाम हैं- श्रीमती शचिरानी गुर्टू, श्रीमती सत्यवती मलिक, श्री प्रेमनाथ दर, श्री जीवनलाल प्रेम, श्रीमती विमला रैना, श्री नन्दलाल और श्री मोहनकृष्ण दर।

हिन्दी परिषद, जिसे कालेज में पढ़ने वाले चार जोशीले नवयुवकों ने बनाया था, और हिन्दी प्रचारिणी सभा के आपस में मिल जाने से हिन्दी साहित्य सम्मेलन अस्तित्व में आया है। अपनी साप्ताहिक साहित्य सम्बन्धी बैठकों के प्रोग्राम के अतिरिक्त सम्मेलन ने **अभिनव भारती** नामक एक नाटक सभा को भी जन्म दिया है और इसके मंच पर कई हिन्दी के एकांकी तथा दूसरे नाटक खेले जा चुके हैं जिनमें से एक के लिए सम्मेलन को कल्चरल एकाडमी की ओर से ५०० रुपये का पारितोषिक मिला है। इन्होंने एक बाल विभाग भी स्थापित किया है। इस सभा ने १९६१ से १९६३ तक लगभग दो साल तक **कश्यप** नाम का एक मासिक पत्र भी चलाया। व्यक्तिगत रूप से

तथा भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा समय-समय पर हिन्दी को लोकप्रिय बनाने और इसे बढ़ावा देने के यत्नों के फलस्वरूप अखिल जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति नामक एक महान संस्था सन् १९५६ से स्थापित है।

सन् १९६१ से इस समिति को कश्मीर सरकार की मान्यता प्राप्त है। इस समिति की ५८ शाखाएं जम्मू, कश्मीर, लद्दाख के तीनों प्रान्तों के नगरों तथा गांवों में खुल गई हैं। ठीक शिक्षण, मुफ्त किताबें देने और निर्धन पाठकों को छात्र वृत्तियां देने का प्रबन्ध भी किया गया है। भद्रवाह, डोडा, किश्तवार जैसी दूर पड़ी जगहों में भी शाखाएं खोली गई हैं। रियासत भर के हिन्दी न जाननेवाले लोगों को परीक्षा का शुल्क देने की भी मुआफी दी गई है।

परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों में से पहिले तीन छात्रों को अभिनन्दन पत्र दिये जाते हैं। मुस्लिम छात्रों को उनकी योग्यतानुसार परीक्षाएं पास करने के लिए और भाषणों में भाग लेने के लिए नकद पारितोषिक दिये जाते हैं। इस संबंध में इसी वर्ष ऐसे छात्रों को ५०० रुपये की रकम दी गई है।

हिन्दी शिक्षकों की एक सभा जनवरी १९६५ में बुलाई गई और उन्हें हिन्दी पढ़ाने का ढंग सिखाने की जानकारी कराई गई। वर्तमान स्थिति को और भी अच्छा बनाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

मुख्य मंत्री समेत राज्य के सभी ऊँचे अधिकारी समिति के उत्सवों और त्योहारों पर सभापति बनकर कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाने के लिए भाषण देते हैं। हिन्दी टंकण मशीनों के लिए प्रबन्ध किया गया है और हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शिनी होती है।

समिति के श्रीनगर वाले पुस्तकालय में ८००० हिन्दी पुस्तकों का स्टाक है। परन्तु लद्दाख में पुस्तकों की संख्या कम है। थोड़े हीं समय में दूसरे केन्द्रों पर भी पुस्तकालयों के खोले जाने की संभावना है।

समिति का उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को हिन्दी भाषी बनाना है। छात्रों को हिन्दी पढ़ना, लिखना और दिन प्रतिदिन की बोलचाल वाली हिन्दी सिखाने के अतिरिक्त विचारों को सुन्दर शब्दों में प्रकट करना, प्रस्ताव लिखना, भाषण देना तथा कविता करना भी सिखाया जाता है। समय-समय पर वाद-विवाद और कवि-सम्मेलन केन्द्रों पर मनाये जाते हैं ताकि इन शक्तियों का विकास हो और प्रतियोगियों को नकद पारितोषिकों द्वारा प्रोत्साहन मिले।

कश्मीरियों का मस्तिष्क भाषा सीखने में बड़ा तीक्ष्ण है । इसलिए संभव है कि अनुकूल समय के आने पर दक्षिणी भारत की भाषाओं के सीखने में कश्मीरी युवक-युवतियां अग्रसर हो जायेंगे ।

सन् १९५६ से १९६४ तक समिति की सेवा के कुछ आंकड़े नीचे दिये जाते हैं ।

संप्रदाय	१९५६ में परीक्षितों की संख्या	१९६४ में परीक्षितों की संख्या	१९६४ तक कुल परीक्षित	वि: विवरण
१. मुस्लिमों से अन्य	६६	८९९	लगभग५९००	इसके अतिरिक्त गैर मुस्लिम स्त्रियों के लिए शिक्षा का माध्यम देव-नागरी लिपि में उर्दू है ।
२. मुस्लिम		३६२	१४२५	
३. लद्दाखी		८६	लगभग ९८	
योग	६६	१३६७	७४२३	

संतोष की बात है कि जम्मू-कश्मीर यूनीवर्सिटी ने भी राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं को अपनी परीक्षाओं के मुकाबले में इस प्रकार स्वीकृत किया है :

नं०	राष्ट्रभाषा परीक्षा	मुकाबले की यूनीवर्सिटी परीक्षा
१.	कोविद	रत्न
२.	रत्न	भूषण

इस विषय में मतभेद नहीं है कि लोकराज्य की सफलता एक सर्वप्रिय लोकभाषा पर निर्भर है और यह निर्णय किया गया है कि यह भाषा हिन्दी होगी, इस कारण कि लगभग ३०/४५ करोड़ यह भाषा बोलते हैं और

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक कारण भी इस भाषा के पक्ष में हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि हिन्दी का प्रयोग कैसे किया जाय जिससे देश के किसी भाग को दूसरे की अपेक्षा अधिक लाभ न हो, न किसी भाग को दबाया जाय, न देश की एकता को हानि पहुंचे।

हमारी सभ्यता की एकता की नीव संस्कृत पर है। उत्तरी भारत की सारी भाषाओं का स्रोत संस्कृत है। इसके अतिरिक्त डा० भार्गव के शब्दों में दक्षिण के अधिक भाग की भाषाओं पर इसका गहरा प्रभाव है। यद्यपि दक्षिण की चार भाषाएं संस्कृत से नहीं निकलती हैं, पर यह सबकी सब संस्कृत शब्दों से भरी हुई हैं। जैसा कि, डाक्टर महोदय का मत है, सारी भारतीय भाषाओं का महत्तम संस्कृत है। इस प्रकार संस्कृत ही संघटित रखने का एक साधन और द्वार है जिसके द्वारा हम अपनी सभ्यता, अपना इतिहास, अपनी प्राचीन सफलताएं और रीति-रिवाज जान सकते हैं। हमें संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग करना चाहिए, इस तरह नहीं जिससे हिन्दी भद्दी और सर्वसाधारण के लिए कठिन बने, बल्कि यथा सम्भव सब भाषाओं का महत्तम मालूम करने के लिए और सबके दैनिक प्रयोग के लिए।

तो भी हमारा अभिप्राय यह होना चाहिए कि हिन्दी सरल बनाई जाय जिससे यह सर्वसाधारण के प्रयोग में आ सके, कुछ इस प्रकार जैसे बुनियादी अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है जिससे कि साधारण कारोबार के लिए लोगों को भाषा का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है।

हमारा यह आदर्श होना चाहिए कि सब मिलजुल कर काम करें। हिन्दी बोलने वाली अकसरीयत को हिन्दी न बोलने वाले लोगों का विश्वासपात्र बनना चाहिए और इसके साथ-साथ इनको भी उसका विश्वासपात्र बनना चाहिए ताकि भारतीयों में आपस में भातृभाव पैदा हो।

इसका अभिप्राय यह है कि विज्ञान आदि के लिए शब्द एक ही भाषा से लिए जायँ जो सब १४ प्रांन्तीय भाषाओं में प्रयोग किये जा सकते हैं जिससे कि एक दूसरे से अनुभव का लाभ उठाया जा सकता है और एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में वैज्ञानिक खोज का काम चलाया जा सकता है। देश भर में हिन्दी का प्रचार चार भिन्न भागों में बांटा जा सकता है :

१. हिन्दी भाषी राज्य, २. उर्दूभाषी लोग, ३. हिन्दी तथा उर्दू न जानने वाले हिन्दी सीखने के उत्सुक लोग, ४. बिल्कुल अहिंदी राज्य।

हिंदी भाषी गिनती में अधिक हैं। जब दूसरी तथा तीसरी श्रेणी के लोग भी उनके साथ मिलते हैं तो उनकी संख्या और भी बढ़ती है। उर्दू

जानने वाले लोगों के लिए बोली हुई हिन्दी भाषा का समझना सुगम है। उन्हें केवल देवनागरी सीखनी है जिससे वे हिन्दी में ठीक-ठीक् कारोबार कर सकें। जब काम करने की इच्छा हो तो क्या नहीं हो सकता ? श्रद्धा से पर्वत भी हिलाये जा सकते हैं। इसलिए तीसरी श्रेणी के लोग यह भाषा शीघ्रता से सीखेंगे, चाहे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़े। चौथी श्रेणी के लोगों की समस्याएं उनके दृष्टिकोण से समझकर ही उन्हें हिन्दी के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। हिन्दी लादने की बात ही नहीं जाती। पं० नेहरू ने जो विश्वास दिलाया है और बाद में लोक सभा में श्री शास्त्री और श्री नन्दा ने भी दुहराया है, इससे अहिन्दी भाषी लोगों का भय और संदेह दूर हो सकता है।

अखिल भारतीय परिक्षाएं हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से ली जानी चाहिए। तभी हिन्दी को सर्वोच्च स्तर पर मान्यता मिल सकेगी और उसकी राष्ट्रीय मान्यता सिद्ध होगी। शर्त यही है कि अहिन्दी राज्यों का शुभाशुभ ध्यान में रखा जाय। यह इस प्रकार किया जा सकता है :

१. मध्य मार्ग पर चलना।

२. भिन्न-भिन्न राज्यों में सीटों का बांटना। सीटों के बांटने के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार उनका अखिल भारतीय रूप नहीं रह सकेगा और देश के योग्यतम व्यक्ति सेवा से वंचित रह जायंगे और ऐसा करने से धीरे-धीरे बंटवारा आगे भी बढ़ सकता है। कठिनाई को आरम्भ में ही समाप्त करना चाहिए। सभी चौदह भाषाओं के प्रयोग में लाने से बातें और भी पेचीदा हो जाएंगी, जैसा कि राजा जी का मत है। इससे अंग्रेजी भाषा का अप्राकृतिक अधिराज्य जारी रहेगा और हिन्दी की उन्नति के मार्ग में बाधा पड़ेगी।

अंग्रेजी विज्ञान की कुंजी है और अन्तर्राष्ट्रीय मेल मिलाप का साधन है। यह कुछ चुने हुए होनहार लोग सीखेंगे, परन्तु अन्त में इस भाषा को हिन्दी के लिए स्थान खाली छोड़ना पड़ेगा क्योंकि अधिक जनसंख्या की भाषा वही है। यह कब होगा, इसका अनुमान ठीक-ठीक अहिन्दी प्रान्तों के लोग ही कर सकते हैं।

हिन्दी का जोर-शोर से प्रचार : यद्यपि हिन्दी भाषा नागरी लिपि में शुद्ध रीति से सीखी जा सकती है परन्तु इस प्रश्न के दो रूप हैं :

(अ) बालकों और युवकों के लिए हिन्दी।
(ब) अहिन्दी प्रान्तों के युवकों के लिए हिन्दी।

(अ) लड़कों, युवकों और सरकारी नौकरों के लिए नागरी लिपि में ही हिंदी भाषा का सीखना ठीक लगता है। बच्चे हिन्दी दूसरी भाषा के रूप में, दूसरी या तीसरी श्रेणी से सीख सकते हैं और बड़े लड़के ऊंची श्रेणियों में। सरकारी नौकर सरकारी तौर से हिन्दी सिखाये जा सकते हैं या राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वर्धा द्वारा। हिंदी सीखने के लिए लोगों का उत्साह बढ़ना चाहिए।

(ब) जिन्हें नागरी लिपि सीखने के लिए न सामर्थ्य है और न अवकाश, उन्हें हिन्दी अपनी मातृभाषा की लिपि में सिखानी चाहिये, ताकि वे लोग इस भाषा से परिचित हो जायँ और अपनी ही लिपि में लिखें। उन्हें इस प्रकार नई बातें सीखने की प्रसन्नता प्राप्त होगी और वे मातृभूमि की एकता के लिए यत्न करते रहेंगे। हरेक व्यक्ति को हिन्दी भाषा फैलाने का ठीक-ठीक अवसर मिलेगा।

निबन्ध, वाद-विवाद, कवि सम्मेलन, एकांकी नाटकों तथा चलचित्रों के प्रसार से इस भाषा की जड़ें सुदृढ़ हो जाएंगी और इस बहुत सी भाषाओं वाले देश को भी एक भाषा की एकता प्राप्त होगी।

अहिंसक नव रचना का मासिक

जीवन-साहित्य

हिन्दी के विशिष्ट मासिक पत्रों में से है। इसकी रचनाएँ विचार-प्रेरक होती हैं। इसके लेखों को घर का प्रत्येक सदस्य पढ़ कर लाभ उठा सकता है।

पत्र के वार्षिक विशेषांक के लिए पाठक लालायित रहते हैं। गत अगस्त मास में प्रकाशित १५० पृष्ठों की सामग्री तथा आकर्षक आवरण युक्त नेहरू स्मृति अंक की सभी ने प्रशंसा की है।

संपादक :

हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन

वार्षिक शुल्क—४-०० नेहरू स्मृति अंक—२-२५

व्यवस्थापक :

जीवन - साहित्य

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

उड़ीसा में हिन्दी की प्रगति : एक विश्लेषण

(आचार्य राधाकान्त मिश्र, हिन्दी ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट, कटक)

भाषा की समस्या सांस्कृतिक है। इसीलिए एक स्वाधीन देश की अपनी भाषा न होने पर वह विदेशी साँचे में ढलता जाता है। विदेशी रहन-सहन जाति के अंतर तक पैठ जाती हैं।

अंग्रेजी जमाने से ही

भारत के स्वाधीन नागरिक अपने कल्पित 'रामराज्य' में पूर्णतः भाग ले सकें, इसीलिए सरल बहुजन बोध्य और सांस्कृतिक परम्पराओं से पुष्ट एक भारतीय भाषा—हिन्दी—को राष्ट्र-भाषा बनाया गया। यही हिन्दी के पक्ष में एक मुख्य कारण है। अंग्रेजों के जमाने से ही हिन्दी भारतीयों के आपसी व्यवहार की भाषा बनी आ रही थी। अब भी इसका प्रमाण कटक शहर के तेलुगुभाषी रिक्शे वाले और होटल वाले हैं, जो हिन्दी में अपने ग्राहकों से विचार-विनिमय करना अधिक पसन्द करते हैं; हालांकि वे काम-चलाऊ उड़िया और अंग्रेजी जानते हैं।

हिन्दी प्रचारक संस्थाओं की सेवा

इसीलिए प्रारम्भ में हिन्दी प्रचारक संस्थाओं को अहिन्दीभाषी जनता से काफी बल मिला। तब भाषा से कोई द्वेष नहीं था, न आज है। मुझे अपनी प्रारम्भिक छात्रावस्था याद आती है, जब हम हिन्दी प्रचारकों से उत्साह के साथ हिन्दी सीखते, अभिभावक प्रोत्साहित करते और हिन्दी जानकारों का अंग्रेजी जानने वालों से अधिक आदर होता। राजनैतिक चालों, जातिगत, साम्प्रदायिक संकीर्णता से परे जनता ने हिन्दी को हृदय से अपनाया।

वैसे तो उत्कल में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार पं० अनसूया प्रसाद पाठक जी के नेतृत्व में १९३२ ई० से चलता रहा है, फिर भी १९५० तक इनके द्वारा स्थापित उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के प्रचारकों द्वारा यह कार्य सुचारु रूप से चला। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा चलाई जाने वाली प्रारम्भिक, प्रवेश, परिचय, कोविद और राष्ट्रभाषा-रत्न आदि परीक्षायें (जो हर सितम्बर और फरवरी को साल में दो बार ली जाती हैं)

तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं के लिए छात्र प्रस्तुत करना सभा का कार्य है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के विभिन्न परीक्षाओं के आंकड़े देखिए—

१९६३ ई० सितम्बर

	प्रत्याशी	उत्तीर्ण
प्रारम्भिक	६४९३	४३११
प्रवेश	४४०२	२७३७
परिचय	१५३५	६११
कोविद	४०७	१४२
रत्न	२६	७

१९६४ ई० फरवरी

	प्रत्याशी	उत्तीर्ण
प्रारम्भिक	४४६४	३९९७
प्रवेश	२७५३	१५७६
परिचय	१०९८	४९०
कोविद	२८६	८४
रत्न	३४	१६

सितम्बर

प्रारम्भिक	६६९४
प्रवेश	४३३९
परिचय	१३६४
कोविद	२८५
रत्न	१४

सम्मेलन के परीक्षार्थी (यथा उपलब्ध) संख्या लगभग ६० प्रतिसत्र।

यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सभा का काम हिन्दी के प्रचार में कितना महत्वपूर्ण है। प्रांत भर के अनेक गण्यमान्य हिन्दी प्रेमी सज्जनों की सहायता से यह काम चल रहा है। सभा का अपना एक प्रेस है, पुस्तकालय है, विशाल भवन है। इसके प्रचारक उत्कल प्रांत के विभिन्न स्थानों में बिखर कर हिन्दी का प्रचार कर रहे हैं। अभी कुछ दिनों से केन्द्र सरकार की सहायता से हिन्दी आशुलिपि और टंकण की शिक्षा दी जाने लगी है।

उत्कल में हिन्दी की सेवा करने वाली दूसरी संस्था है हिन्द राष्ट्रभाषा परिषद्, जगन्नाथ धामपुरी । परिषद् की आयु सभा से कम होने पर भी अनकूल अंचलों में अधिक लोकप्रियता के कारण इसके उद्यम प्रशंसनीय है । इसका प्रचार-क्षेत्र प्रदेश के बाहर भी फैला हुआ है । इसके द्वारा परिचालित परिक्षाएँ हैं—

१—प्राथमिक
२—वोधिनी
३—माध्यमिक
४—विनोद
५—प्रवीण (उपाधि)
६—शास्त्री (उपाधि)

इस संस्था के अनेक उपाधिधारी प्रांत भर में कार्य कर रहे हैं ।

हिंदी ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट

हिन्दी में साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर और भाषा तथा साहित्य का कुछ अध्ययन कर लेने के वाद अच्छे शिक्षकों को बनाने के लिए सरकार की तरफ से स्थापित हिन्दी ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट, कटक द्वारा विद्यार्थियों को तालीम देने की व्यवस्था की गई है । राष्ट्रभाषा कोविद, और प्रवीण या उनकी समकक्ष परीक्षाएँ उत्तीर्ण विद्यार्थी इंस्टीच्यूट में आते हैं और दस महीने तक हिन्दी साहित्य और शिक्षण कला के विभिन्न विभागों का अध्ययन करके हाई स्कूलों में शिक्षण करने जाते हैं ।

वैसे तो गत कई वर्षों से हाई स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई नवीं कक्षा तक चलती रही; किन्तु पिछले दिनों बोर्ड आफ सेकंडरी एजूकेशन, उड़ीसा के इस निश्चय से कि हिन्दी मैट्रिक परीक्षा में अनिवार्य होगी, प्रान्त में हिन्दी शिक्षा के प्रति नया उत्साह देखा जाता है । सरकार की तरफ से भी इस ओर प्रशंसनीय योजनाएँ बनाई जा रही हैं । हरेक स्कूल में शिक्षक पहुँचाने में और सभी डिग्री कालेजों और कई इण्टर कॉलेजों में हिन्दी के व्याख्याता नियुक्त करने में सरकार लगी हुई है ।

प्रचार की अपेक्षा

लेकिन यह सारा काम काफी देर में हुआ । वास्तव में केन्द्रीय सरकार को पहले सभी शिक्षालयों में हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था करानी चाहिए थी और वाद में हिन्दी को राजभाषा घोषित करना चाहिए था । लेकिन कई,

असुविधाओंवश काम उलटी रीति से चला, जिस कारण अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी विरोधी आंदोलन को बल मिला। अंग्रेजी-शिक्षित कर्मचारियों को हिन्दी माध्यम से काम करने के लिए कहा जायगा—असंतोष का यह मुख्य कारण था। इसलिए प्रचार-कार्य में सबसे बड़ी कमी रह गई–शिक्षितों में हिन्दी या राष्ट्रभाषा के महत्व का प्रतिपादन। वास्तव में जिस तरह किसी जमाने में राष्ट्रीयता को झकझोर कर जगाया गया था, वैसे अब हमें राष्ट्रभाषा प्रेम को भी जगाना होगा। इसलिए मेरा विनम्र मत है कि हिन्दी विद्वान अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के और विभिन्न आंचलिक भाषाओं के द्वारा 'हिन्दी ही क्यों ?' को अहिन्दी भाषी शिक्षित जनता के सामने रखें, तो संभवत: उनकी मनोवृत्ति बदल सकती है। जब तक इनमें अंग्रेजी-प्रेम जाग्रत है, हिन्दी की प्रगति में शिथिलता बनी रहेगी। अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि उड़िया जनता में कोई विरोध नहीं है। हाँ, नौकरी की दृष्टि से हिन्दीभाषी हिन्दी राजभाषा बन जाने पर अनुचित लाभ उठाकर अपना 'हिन्दी साम्राज्य' स्थापित कर लेंगे—यह भय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जागरूक है। यदि इस ओर जनता निरापद हो जाय तो में समझता हूँ कि हिन्दी के विरोध में डण्डे न उठेंगे।

चल-चित्र का योगदान

हिन्दी के प्रचार में चलचित्रों का योगदान भी कम नहीं है। प्रदेश के प्रत्येक शहर में सिनेमा घर हैं जहाँ अधिकतर हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं और जनता सादर उन्हें देखती है। सिनेमा की लोकप्रियता के बारे में कुछ कहना अनावश्यक है। उड़िया भाषा में अत्यल्प चलचित्र बन पाये हैं। उन्हें छोड़कर तेलुगु और बंगला के अत्यल्प दर्शकों के अलावा शेष सभी हिन्दी सिनेमा के दर्शक हैं और हॉल से निकल कर हिन्दी गाने भी खूब गाते हैं।

एक बात और। उत्कल में हिन्दी प्रचार के काम में वह वेग नहीं है, जो इतनी बड़ी जनता के पास राष्ट्रभाषा को १५ वर्ष के कम समय में पहुँचाने के लिए आवश्यक था या है। स्वयंसेवी संस्थाओं के उत्साह की मंदता तो अधिक दु:खदायी है। अवश्य इसमें सरकार का भी हाथ है। अनुदान के रूप में बहुत कम रुपये इन संस्थाओं को सरकार की तरफ से मिलते हैं। शिक्षा के वैज्ञानिक साधन, पुस्तकालयों और वाचनालयों की कमी गति में और अधिक मंदता ला देती है। अधिकांश सरकारी और गैर सरकारी शिक्षालयों में हिन्दी शिक्षक तो हैं (५०७ स्कूलों में से ४११ में शिक्षक हैं) पर वे छात्रों के अलावा दूसरों को हिन्दी नहीं सिखा पाते। स्वयंसेवी संस्थाओं

के अधिकांश परिक्षार्थी स्कूली छात्र ही हैं। इसलिए जनता तक हिन्दी को पहुँचाना और हिन्दी प्रेम जमाने का महत्पूर्ण काम वास्तव में नहीं हो रहा है जैसा कि समझ लिया जाता है।

अच्छे शिक्षक बनाने के लिए सारी आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था भी नहीं है। पहली बात यह है कि केन्द्रीय सरकार की ओर से जो छात्रवृत्तियाँ हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए दी जाती हैं उनका यथेष्ट प्रचार नहीं है; और दूसरे जो भी वृत्ति से प्रोत्साहित होकर पढ़ने लगते हैं उन्हें वापस आकर बैठा रहना पड़ता है। यह बात प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों के बारे में भी है। यह ठीक है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में ऐसी असुविधा होगी। उन्हें यथासंभव दूर करने के लिए हमें प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में एक छोटी सी बात का उल्लेख करना आवश्यक है जो अभी-अभी सर उठा रही है। अहिन्दीभाषी हिन्दी विद्वानों को अपने प्रान्तों की सेवा करने की सुविधा न मिलने पर हिन्दी-प्रेमी और अहिन्दी-भाषी विद्वान असंतुष्ट होंगे और यह समझ लिया जाएगा कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने से 'हिन्दी वालों' की ही रोटी चलेगी। इसी से हिन्दी विरोधी आंदोलन भयानक हो उठेगा।

उत्कल के शिक्षालयों में हिन्दी को स्थान तो दिया गया है—पर उसे संस्कृत के साथ अनावश्यक जोड़कर संस्कृत के साथ हिन्दी विरोध का बीजारोपण कर दिया गया है। यह नियम बनाया गया है कि जिस स्कूल में हिन्दी शिक्षक होंगे, वहाँ के छात्रों से हिन्दी की ५० नम्बर की और संस्कृत की ५० नम्बर की परीक्षा ली जाएगी। इसके पहले केवल संस्कृत की ५० नम्बर की परीक्षा होती थी। इसी से संस्कृत पण्डित हिन्दी शिक्षकों को अपना दुश्मन समझने लगे हैं।

साधारण जीवन में अंग्रेजी भाषा की अनावश्यकता का तथ्य जनता अनुभव नहीं कर पा रही है। मनीआर्डर फार्म या ट्रेजरी चालान भरने में अंग्रेजी ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि परिचित खानों में आवश्यकीय बातें लिखकर कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी काम चला लेता है; सूचनाओं को अच्छी तरह पढ़ने की जरूरत नहीं समझता; उन्हें हिन्दी या अन्य किसी आंचलिक भाषा में लिखा जा सकता है। यह हुई दफ्तर के कामों के बारे में एक बात। अगर वैज्ञानिक शिक्षा अंग्रेजी में ही दी जा सकती है—चाहे प्रो॰ सत्येन्द्रनाथ बोस कितना चिल्लाते रहें कि मातृभाषा ही विज्ञान-शिक्षा

का सर्वोत्तम माध्यम हो सकती है—तो उसे उच्च ज्ञानार्थी ही पढ़ेंगे, साधारण जनता के लिए उसकी आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी भाषी राज्यों की भूलें

हिन्दी-दाँ प्रदेशों ने अपने विधेयकों द्वारा हिन्दी विरोधी आन्दोलन को बल दिया। दक्षिणी भाइयों का लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में कृतित्व अर्जन करने का एक कारण उनका अंग्रेजी ज्ञान था। इसलिए 'हिन्दी वालों' ने तीसरी कक्षा से बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाया। यह कुश्ती के लिए कमर कसना हुआ। इसकी भी कोशिश हुई कि आयोग की परीक्षा में हिन्दी माध्यम बने। 'हिन्दी साम्राज्यवाद' से आशंकित अहिन्दीभाषी इसमें 'हिन्दी वालों' की एक चाल-मात्र देख सके—जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक था। स्मरण रहे कि 'हिन्दी साम्राज्यवाद' की कल्पना के विरुद्ध कोई कैफियत अभी तक 'हिन्दी वालों' ने नहीं दी है। केवल भावात्मक बातें ही सुनने को मिलती हैं। इसीलिए लोग सरकार से प्रतिश्रुति की माँग कर रहे हैं।

यही बात उत्तरी भारत के 'त्रिभाषा-सूत्र' को अपनाने के बारे में भी कही जा सकती है। हिन्दीतर भाषियों के लिए त्रिभाषा का मतलब मातृभाषा, हिन्दी और अंग्रेजी हुआ पर; हिन्दी भाषियो के लिए मातृ भाषा हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी बन गया। यह आशंका स्वभावत: पनपने लगी कि प्रतियोगिता में हिन्दी भाषियों को अधिक सुविधा मिल रही है।

अधिक दुःख तो इस बात का है कि सरकार की तरफ से कोई दबाव न रहने पर भी शिक्षित अहिन्दी भाषी हिन्दी को लदा बोझ समझते हैं। अंग्रेजीदाँ की ऐसी आलोचना—"मैं हिन्दी अधिक नहीं जानता, पर जहाँ तक जानता हूँ वह कोई अच्छी भाषा नहीं है" बन्द कराना होगा। हिन्दी के पक्ष में युक्तियाँ देनी होंगी। उन्हें समझाना होगा कि कब तक अंग्रेजी बोल लेना, सूट-बूट पहन लेना, चम्मच से खा लेना, भारतीय सभ्यता का प्रतीक, रहेगा? मैं आह्वान करता हूँ कि 'हिन्दी वाले' इस पर ध्यान दें।

परन्तु मैं आश्वस्त हूँ कि आंचलिक भाषाओं की प्रगति के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार बढ़ाया जा रहा है। हमें अपनी भाषा अच्छी लगने लगेगी, तब विदेशी भाषा के मुकाबले भारतीय हिन्दी को हम पसन्द करने लगेंगे।

* * *

केरल में हिन्दी की प्रगति

(प्राध्यापक सुधांशु चतुर्वेदी, श्री केरल वर्मा कालेज, त्रिचूर)

शिक्षा, संस्कृति, धर्म, सौम्यता एवं कला का केन्द्र केरल दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार की दृष्टि से अग्रगण्य है। सागर और मलय के क्रोड़ में पालित इस सुरम्य प्रदेश में कतिपय वर्ष व्यतीत करने की लालसा से मैंने मलयालम सीखकर वहाँ के साहित्य का अध्ययन किया। केरल जाने से पूर्व मैं यह समझता था कि केरल में हिन्दी बहुत कम व्यक्ति जानते हैं, परन्तु वहाँ पहुचने पर मुझे पता लगा कि वहाँ लगभग सभी आबाल-वृद्धि-वनिताएं कुछ-न-कुछ हिन्दी समझ और बोल लेती हैं। इतना ही क्यों, वहाँ तो कुछ लोग इतनी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं कि प्रथमतः मेरी तरह अन्य हिन्दी भाषियों को उनके उत्तर भारतीय होने का भ्रम हो सकता है। वहां मेरे सहयोगी बहुत-से प्राध्यापक तो ऐसे हैं जिन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और डा० रामकुमार वर्मा जैसे हिन्दी विद्वानों के श्रीमुख से हिन्दी का अध्ययन किया है, वे उनकी ही शैली का प्रचार वहाँ करते हैं।

उत्तरी भारत के वार्षिक यात्री

केरल से प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ हिन्दी प्रेमी उत्तर भारत के हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों का पर्यटन करने के लिए आते हैं। विगत वर्ष प्रो० चन्द्रहासन जी के साथ तथा इस वर्ष डा० विश्वनाथ ऐय्यर के साथ केरल के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों ने उत्तर भारत भ्रमण किया। बम्बई, जयपुर, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस आदि सभी स्थलों पर सुन्दर साहित्यिक गोष्ठियों में उन्होंने साहित्यकारों तथा वहाँ की बिशिष्ट बोलियों का परिचय प्राप्त किया। यह उनके हिन्दी प्रेम का डिंडिम घोष करता है।

हिन्दी प्राध्यापकों की बहुलता

जहाँ तक केरल में हिन्दी के प्राध्यापन का प्रश्न है, उसके विषय में मैं इतना ही कहूंगा कि वहाँ हिन्दी के प्राध्यापक बहुत अधिक हैं। वहाँ पांचवीं कक्षा के पश्चात् हिन्दी अनिवार्य है। परन्तु दुर्भाग्यवश बच्चों को हिन्दी पढ़ने के लिए बहुत कम घंटे मिल पाते हैं; अतः उनका ज्ञान अधूरा

रह जाता है और वे हिन्दी के स्वरूप तथा आवश्यकता को समझ नहीं पाते। केरल के लगभग सभी गांवों में भाषण देने के लिए गया। प्रत्येक गांव में एक-दो हिन्दी विद्यालयों को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँ पर लोग कितनी तत्परता से हिन्दी सीखते हैं। कुछ गांवों में तो मैंने हिन्दी के युवक अध्यापकों को बहुत शुद्ध हिन्दी बोलते देखा। दो-तीन महीने पहले मैं चेर्तला भाषण देने के लिए गया था, जहाँ विद्यार्थियों के स्वरचित दो हिन्दी नाटकों का अत्यधिक मनोहारी अभिनय देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। इतना सुन्दर अभिनय तो मैंने उत्तर भारत में भी कम ही स्थलों पर देखा था।

एक पत्र

उसके पास ही एक तेक्काट्टु शेरी नामक गांव में एक हिन्दी विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री ई० उण्णिकृष्णन् का दिनांक ५ अप्रैल का पत्र उद्धरणीय है जिससे वहां के गाँवों में निवास करने वाले लोगों तक की हिन्दी के रूप से पाठकवर्ग अवगत हो सकेगा :

माननीय चतुर्वेदी जी,

सप्रेम नमस्ते।

आपके लिए मैं अजनवी हूं। पर मेरे लिए आप अपरिचित नहीं हैं। साहित्यकार देश कालातीत हैं। इसीलिए वे सबके परिचित भी हैं। 'केरल भारती' में आपकी जो रचनाएं प्रकाशित हो रही हैं, उन्हें मैं चाव से पढ़ता हूं और उनके द्वारा आपसे परिचित भी हूं। इतना ही नहीं, मैंने यह भी सुन रखा है कि आप मलयालम के बड़े प्रेमी हैं और आप ने मलयालम के मशहूर साहित्यकार केशवदेव **ओटयिल् निन्नुं** नामक उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद किया है। आपकी इस महान् सेवा के लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

आज भारत को भावात्मक एकता की सबसे सख्त जरूरत है। आप अपने कार्यों के द्वारा वही कार्य कर रहे हैं। हम भी अपनी परिमित शक्ति के द्वारा इस दिशा में कुछ काम कर रहे हैं। हिन्दी का प्रचार कर रहे हैं। आपको मालूम है कि किसी बात के प्रचार में व्याख्यान-मंच और समाचारपत्र का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर हम प्रतिवर्ष विद्यालय की वाग्वर्द्धिनी सभा का वार्षिकोत्सव मनाते हैं।

इस वर्ष भी ता० १५ मई १९६५ को वार्षिकोत्सव मनाने का

निश्चय किया है। हमारी दिली ख्वाहिश है कि उस अवसर पर चलाये जाने वाले सम्मेलन में आप सभापतित्व ग्रहण कर लें। आपके दर्शन करने और व्याख्यान सुनने की हमारी बड़ी अभिलाषा है। अगर आप सभापतित्व ग्रहण कर मलयालम में एक छोटा व्याख्यान दें तो लोगों के मन से यह गलत धारणा दूर हो जायेगी कि उत्तर भारत वाले कोई दक्षिणी भाषा पढ़ना नहीं चाहते, अपनी मातृभाषा हिन्दी दक्षिण वालों पर थोपना ही चाहते हैं। अलावा इसके आपके हिन्दी व्याख्यान से हिन्दी के शुद्ध रूप का परिचय हम पा सकेंगे। आशा है, आप हमारे निवेदन को सहर्ष स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत करेंगे। यद्यपि विद्यालय की आर्थिक दशा दयनीय है, तथापि आपको आने-जाने का बस भाड़ा दिया जायेगा।

आशा है, आप सकुशल हैं। अनुकूल जबाब की प्रतीक्षा में—

आपका ही
ई० उण्णिकृष्णन्

दूसरा पत्र

इसी प्रकार ओट्टप्पालम के समीपस्थ एक छोटे-से गांव केरलश्शेरी के हिन्दी प्रचारक श्री पद्मनाभनजी के पत्र का कुछ अंश यहां उद्धृत करना मैं आवश्यक समझता हूँ—

प्रियवर सुधांशुजी,
सादर नमस्ते।

आपका पत्र कल प्राप्त हुआ। पत्र पढ़कर खुशी हुई। आपके जो जो पत्र मेरे पास आये थे, उनको मैंने सुरक्षित रखा है, क्योंकि यह पहली मर्तबा है जबकि मैं उत्तर भारत के किसी मित्र से पत्र-व्यवहार कर सका और वह भी एक ऐसे मित्र से जो कि मेरे साहित्यिक आचार्य बनते जा रहे हैं। सच पूछा जाय तो मुझमें कुछ लिखने की इच्छा तो प्रबल थी, पर आवश्यक सुविधाएं और मार्गदर्शन देने वाले नहीं थे। ·········आपने मुझ 'अकिंचन' को खुशी से कुएँ में से ऊपर उठाने का वायदा किया। इसलिए मैं आप का बड़ा आभारी हूँ। मैं जन्मभर आपका कृपा पात्र बना रहूँ, यही परमात्मा से मेरा निवेदन है।

मैं तुलसीदास जी के मानस के सेवक भाव से आप की और आप के द्वारा राजभाषा हिन्दी की सेवा करूँ, न कि सखा भाव से। मुझे उम्मीद है

कि जैसे श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान को भगवत्साक्षात्कार का सहारा दिया था, वैसे ही आप भी मुझे साहित्य समाराधना का मार्ग बतायेंगे। ... .

शेष सम्मुख

आपका विनीत—

ई० पद्मनाभन

केरल में हिन्दी की प्रगति के परिचायक

ये दोनों पत्र मैंने एक विशेष प्रयोजन से उद्धृत किये हैं। ये दोनों ही पत्र केरल में हुई हिन्दी प्रगति के प्रद्योतक हैं। केरल के कण-कण में हिन्दी समाहित हो चुकी है। वहाँ का जन-मानस पूर्णरूपेण हिन्दी के पक्ष में है। यदि उन्हें आवश्यक सहयोग एवं सुविधायें दी जायँ, और उनका मार्ग निर्देश किया जाय तो मेरा सुनिश्चित मत है कि अब तक की हिन्दी प्रगति को देखते हुए वहाँ की जनता कुछ ही वर्षों में हिन्दी बोलने और लिखने में समर्थ हो जायेगी। हां, इसके लिए परमावश्यक है कि कुछ उत्तर भारतीय विद्वान वहाँ अध्यापन हेतु सरकार की ओर से भेजे जायँ और वहाँ के लोगों को यहां हिन्दी सीखने के लिये सभी सुविधाएँ देकर बुलाया जाय। साथ ही उन्हें हिन्दी का सुन्दर, सरल और सरस साहित्य प्रदान किया जाय।

हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था

केरल में पांचवीं कक्षा के पश्चात् हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है। अतः एस० एस० एल० सी० तक तो सभी छात्र अनिवार्य रूप से हिन्दी पढ़ते हैं। प्रि-यूनिवर्सिटी, प्रि-डिग्री, बी० ए० तथा बी० काम० में भी अधिकांश विद्यार्थी मलयालम या संस्कृत आदि न लेकर हिन्दी ही लेते हैं, क्योंकि उनके लिये हिन्दी सरल पड़ती है। वहां बी० ए० में लगभग १६००० विद्यार्थी परीक्षा में प्रतिवर्ष बैठते हैं। प्रतिवर्ष परिक्षार्थियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। प्रत्येक गांव में हिन्दी प्रेमियों ने अपने-अपने विद्यालय खोल रखे हैं और हिन्दी का प्रचार कर रहे हैं। इस तरह दिन-दूनी, रात-चौगुनी हिन्दी की प्रगति केरल में हो रही है।

सिनेमा और रेडियो

दक्षिण में हिन्दी प्रचार के मुख्य साधन रहे हैं सिनेमा और रेडियो। केरल में मैंने देखा कि जो लोग बाहर सभा-समितियों' में हिन्दी का विरोध करते हैं, वे भी अपने बच्चों के साथ हिन्दी के सुन्दर गीत सुनकर परमानन्द

की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार गांवों में जाकर मैंने देखा कि केरल के बच्चे तक फ़िल्मी गीत बड़े शौक से गाते और सुनते हैं। जब कोई हिन्दी सिनेमा वहां पहुँचता है तो लोग उसको देखने के लिए ऐसे दौड़ते हैं मानो उन्हें जीवित सर्वस्व ही प्राप्त हो गया हो। केरल के त्रिवेन्द्रम (तिरुवनन्तपुरम) एरणाकुलम, कालीकट, कोट्टयम, क्वीलोन (कोल्लम) त्रिचूर आदि सभी शहरों में हिन्दी सिनेमा दिखाने का प्रबन्ध है। पता लगा है कि दिन प्रतिदिन हिन्दी सिनेमा देखने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है।

केरल में अध्यापन करते समय कई बार मेरे समक्ष लिपि, व्याकरण, शब्द भंडार और आधुनिक हिन्दी में उत्कृष्ट साहित्य का अभाव आदि विषयों पर अनेकानेक मौलिक प्रश्न पूछे गये जो वस्तुतः हिन्दी के गम्भीर अध्ययन के जागरूक प्रमाण हैं। ऐसे ही प्रश्नों का बहुधा मुझे अपने भाषणों में उत्तर देना पड़ता रहा है।

पत्रिकायें

केरल में इस समय हिन्दी की दो पत्रिकाएं अत्यधिक सुन्दर रूप से प्रकाशित हो रही हैं। एक पत्रिका है **युग प्रभात** जो पाक्षिक है। मैंने प्रारम्भ से लेकर आज तक के लगभग सभी अंकों को देखा है। यह पत्रिका अब सुन्दर कहानियों, लेखों, यात्रा विवरणों, अनुवादों तथा धारावाहिक उपन्यासों को सचित्र प्रकाशित कर रही है। इसके सम्पादक श्री एन० वी० कृष्णवारियर तथा श्री रविवर्मा दोनों ही हिन्दी प्रेमी सच्चे रूप में हिन्दी प्रचार कर रहे हैं। अतः वे हमारे साधुवाद के पात्र हैं। साथ ही **केरल भारती** नामक मासिक पत्रिका में भी कुछ अच्छी हिन्दी और मलयालम की चीजें प्रकाशित हो रही हैं। इसमें अभी हिन्दी का मौलिक साहित्य उतना प्रकाशित नहीं हो रहा है जितना होना चाहिए, क्योंकि अभी इसके विक्रय का प्रबन्ध नहीं हो सका है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की यह पत्रिका भी केरल में हिन्दी का खूब प्रचार कर रही है। इस समय **केरल भारती** कुछ सुन्दर रूप में निकल रही है। अतः उसके वर्तमान सम्पादक श्री आंजनेय शर्मा और पं० नारायण देव प्रशंसा के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पत्र-पत्रिकाएं भी केरल में समय-समय पर प्रकाशित की गयी हैं। आवश्यक सुविधाएं न होने के कारण वे बन्द हो गयीं, परन्तु उनके ये प्रयास हिन्दी प्रेम के दिग्दर्शक हैं।

विरोध की व्याख्या

केरल में हिन्दी प्रचार की इस प्रगति को बतला देने के पश्चात् यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में केरल में हिन्दी का विरोध

क्यों हुआ। मैं इसका उत्तर एक हिन्दी कहावत में दूंगा–'खरबूजा को देखकर खरबूजा रंग बदलता है' अर्थात् मद्रास में हुए विरोध की लहर अंशों तक केरल में भी आयी, जिसका आना स्वाभाविक भी था। परन्तु जो कुछ समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है, उसमें से अधिकाँश बातें गलत थीं। उसी समय हिन्दी की सभी परीक्षाएँ बराबर चलती रहीं। रजत जयन्ती की परिक्षाएँ हुई और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाएँ भी। हिन्दी के सम्मेलन भी चलते ही रहे। हाँ, उन दिनों इनकी रिपोर्ट अवश्य पत्रों में प्रकाशित नहीं की गयी। उस समय मैं केरल वर्मा कालेज में ही अध्यापन कर रहा था। मेरे कालेज में कोई भी विरोध-विद्वेष विद्यार्थियों के द्वारा प्रकट नहीं किया गया। साथ ही उन दिनों मैं भाषण भी देने के लिए चेर्तला, आलुवा तथा नार्थ पेरूर आदि स्थलों पर गया। मुझे कभी भी कोई विरोध नहीं दीख पड़ा। उस समय मेरे पास प्रति दिन ८-१० पत्र इसी आंदोलन के विषय में आते थे, जो हिन्दी के पक्ष में अपना मत प्रकट करते हुए इस आंदोलन को राजनैतिक बतलाते थे। एक पत्र का कुछ अंश उद्धरणीय है जो मुझे एम० ए० कालेज कोतमंगलम के प्राध्यापक से प्राप्त हुआ था—

"अभिन्न मित्र श्री सुधांशुजी,

.........हिन्दी विरुद्ध आंदोलन के संबंध में मुझे यही कहना है कि राजनैतिक लाभ उठाने के लिए नेता लोग विद्यार्थियों को बहका देते हैं। भावावेश में आकर विद्यार्थी अपना बौद्धिक संयम छोड़ देते हैं। अन्यथा शिक्षा-सम्पन्न कहे जाने वाले विद्यार्थियों के लिए यह कहाँ तक उचित है कि राष्ट्र की समग्र उन्नति के मार्ग में बुद्धिहीन व्यवहार करें। लोगों में चिन्तन की शक्ति कम और भावावेश की मात्रा अधिक है। इसीलिए हमारे देश की अवनति होती आयी है।

आप का ही 'अकिंचन' कृपाकाँक्षी

जे० पाण्डुरंग पै

हिन्दी प्रेम विशेष रूप से नारियों में

इस प्रकार हम देखते हैं कि केरल में हिन्दी से विशेष प्रेम है और वे बड़े चाव से हिन्दी पढ़ते हैं। वे हिन्दी साहित्य की जब भी उत्तम पुस्तकें प्राप्त कर पाते हैं, तभी वे उनको पढ़ डालते हैं। केरल वासियों को प्रकृति का कुछ ऐसा वरदान प्राप्त हुआ है कि उन्हें कोई भी भाषा कठिन लगती ही

नहीं। हिन्दी तो वे तीन महीने में सीख लेते हैं। हिन्दी उन्हें सबसे सरल भाषा मालूम पड़ती है। ऐसा मुझे वहाँ की अधिकाँश जनता ने बताया।

केरल में रहने पर मुझे एक बात का अवश्य पता लगा कि गांधी जी के समय जो एक मन होकर सद्भावना के साथ हिन्दी का प्रचार कार्य कर रहे थे, उनमें पदलोलुपता के कारण आपस में वैमनस्य हो गया है। अतः हिन्दी प्रचार के कार्य को गहरी क्षति पहुँची है। इस समय केरल में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, केरल हिन्दी प्रचार सभा तथा हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा कार्य कर रही हैं। परन्तु इनके द्वारा उतना कार्य नहीं हो पा रहा है जितना कि उस समय एक सभा कार्य कर रही थी।

उपरिलिखित विवेचन से यह स्पष्ट है कि केरल में हिन्दी का प्रचार प्रगति पर है। वहाँ के उत्साही युवक एवं युवतियाँ इस कार्य में दत्तचित्त हैं। अब अधिकतर युवतियाँ हिन्दी अध्ययन-अध्यापन कर रही हैं। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि भावी सन्तति हिन्दी के प्रति अगाध आदर एवं निष्ठा को लेकर उत्पन्न होगा; क्योंकि ये माताएँ बच्चों को जो भाषा अपने दूध के साथ पिला देंगी, वही भाषा बच्चों की अपनी भाषा होगी। इस प्रकार विगत वर्षों की हिन्दी प्रगति को देखते हुए विश्वास किया जा सकता है कि केरल में हिन्दी का प्रचार विकास को प्राप्त करेगा और वहाँ का जनमानस शीघ्र ही हिन्दी को अपनाकर उसमें लिखने-पढ़ने और बोलने की सामर्थ्य कर सकेगा। तथास्तु।

◆

युग प्रभात

केरल का सचित्र हिन्दी पाक्षिक

जिसमें दक्षिण की चार प्रमुख भाषाओं में अनूदित श्रेष्ठ सुन्दर उपन्यासों, कहानियों, कविताओं और निबन्धों के अलावा अहिन्दी भाषी, हिन्दी भाषी लेखकों की मौलिक रचनाओं का पिछले कई सालों से प्रकाशन किया जा रहा है, जो इस बात का प्रमाण दे रहा है कि भारतीयों का भाव एक है यद्यपि भाषाएँ अनेक हैं।

मैनेजर :

युग-प्रभात, कालिकट (केरल)

गुजरात का हिन्दी प्रेम

(श्री जेठालाल जोशी, मंत्री, गुजरात प्रान्तीय राष्ट्र भाषा प्रचार समिति)

गुजराती, राजस्थानी, ब्रजभाषा और पश्चिमी हिन्दी का उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। इन भाषाओं में बहुत साम्य है। पश्चिमी हिन्दी--खड़ी–बोली--के विकास में ब्रजभाषा का बहुत बड़ा सहयोग है। गुजरात में ब्रजभाषा कई युगों तक साहित्य सर्जन की भाषा रही है। गुजरात में करीब चार सौ कवियों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है। कच्छ का ब्रजभाषा महाविद्यालय गुजरात, सौराष्ट्र तथा राजस्थान में विख्यात था। सौराष्ट्र के भाट चारणों की काव्य रचनायें राजस्थानी के बहुत नजदीक हैं। सौराष्ट्र में रचा गया "प्रवीण सागर" आज भी ब्रजभाषा का प्रामाण्य ग्रन्थ माना जाता है।

प्रभास पाटन में ब्रजभाषा का बहुत बड़ा आदर था। यहाँ साहित्य गोष्ठियाँ होती थीं। होली के दिनों में कोई चार दिन तक दूर-दूर से कवि इकट्ठे होते थे। इस प्रकार ब्रजभाषा आदरणीय थी। इतना ही नहीं, उसमें साहित्य सर्जन भी होता था।

दो सौ वर्ष पहले कच्छ के राजा राव श्री लखपतिसिंह जी ने एक बड़े विद्वान कनक कुशल भट्टार्क जी से ब्रजभाषा का अभ्यास किया था और एक ब्रजभाषा पाठशाला की स्थापना की थी। इस पाठशाला में सौराष्ट्र और राजस्थान के राजकवि ब्रजभाषा के अभ्यास के लिये आते थे। राजा रावश्री लखपतसिंह जी ने "लखपत पिंगल" नामक एक ग्रन्थ की ब्रजभाषा में रचना की थी। गुजरात के कवि श्री दलपतराम ने भी कच्छ और पिंगल शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था।

गुजरात में देवनागरी लिपि शुरू से लोकप्रिय है तथा व्यापक रूप से प्रचलित रही है। पहले तो हमारे कविगण अपने काव्यों को शिरोरेखा युक्त सुन्दर देवनागरी लिपि में लिखते छपवाते थे।

अभी-अभी स्व० श्री रामनारायण भाई पाठक का पिंगल शास्त्र, पंडित वेचरदास जी के बसन्त व्याख्यान माला के व्याख्यान तथा पूज्य बापू की आत्मकथा देवनागरी में छापी गई थी।

गुजरात राज्य ने नागरी का बराबर सम्मान किया है। गुजरात प्रदेशों के प्रधान स्थानों में से अधिकांश स्थानों के नाम देवनागरी लिपि में लिखे मिलेंगे। संक्षेप में गुजराती में नागरी का प्रचलन व्यापक रूप से है। गुजरात के लिये देवनागरी लिपि सुपरिचत है। गुजरात में हिन्दी प्रचार का अधिकांश श्रेय देवनागरी लिपि की सरलता भी है।

आर्य गुरुकुलों का सहयोग

गुजरात के सुपुत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी की बहुत बड़ी सेवा की है। महर्षि दयानन्द युगदृष्टा थे। आपने अपने विचारों के प्रसारार्थ हिन्दी को माध्यम चुना। आर्य समाज ने राष्ट्रोत्थान तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा में बहुत बड़ा योग दिया है। आर्य समाज द्वारा स्थापित तथा संचालित विद्यालयों का शिक्षा का माध्यम शुरू से उच्च शिक्षा तक हिन्दी है। आज गुजरात में गुरुकुल सुपा, गुरुकुल सोनगढ़, आर्य कन्या विद्यालय पोरबंदर, बड़ौदा आर्य कन्या विद्यालय तथा कुमार विद्यालय जैसी संस्थाओं में हिन्दी की पढ़ाई का सुन्दर प्रबन्ध है। इस प्रकार आर्य समाज तथा उसके तत्वावधान में चलने वाले विद्यालयों में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

श्रीमती नाथीबाई दामोदरदास ठाकरशी महिला विद्यापीठ

महर्षि कर्वे ने दुनिया की यात्रा के परिणामस्वरूप निश्चय किया कि भारत में भी स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में नये क्रान्तिकारी सुधार किये जा सकते हैं। आपने महिलाओं के लिए एक विद्यापीठ की स्थापना श्रीमती लेडी ठाकरशी के दान से की। इस विद्यापीठ में पढ़ाई के माध्यम के रूप भारतीय भाषाओं को स्थान दिया गया। इस विद्यापीठ का क्षेत्र प्रधानतः भारतवर्ष का पश्चिमांचल रहा है। सामान्यतः इस विद्यापीठ की पढ़ाई और परीक्षायें मराठी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड और अंग्रेजी में होती हैं।

शुरू में कर्वे महिला विद्यापीठ ने अपनी प्रवेशिका-मैट्रिक परीक्षा में हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में स्थान दिया था। क्रमशः महिला विद्यापीठ में हिन्दी को विशेष महत्व प्राप्त होता गया। इस प्रकार कर्वे विद्यापीठ ने हिन्दी के प्रचार में भी सुन्दर योग दिया है।

गुजरात विद्यापीठ का सहयोग

सन् १९२० में भारत में बहुत बड़ी क्रान्ति हुई। इस राष्ट्रीय आंदोलन के युग में युगावतार पूज्य बापू ने राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दी पर बहुत जोर दिया। पूज्य महात्मा जी की सद्प्रेरणा से देश में काशी विद्यापीठ, तिलक विद्यापीठ, सदाकत आश्रम, जामिया मिल्लिया तथा गुजरात विद्यापीठ

जैसी राष्ट्रीय संस्थायें स्थापित हुईं। विद्यापीठ के विशारद तक के पाठ्यक्रम में हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान दिया गया था।

पूज्य बापू के सम्पादकत्व में "नवजीवन" (गुजराती), "यंग इंडिया" (अंग्रेजी), के साथ साथ **नवजीवन** (हिंदी) के नाम से पत्र प्रकाशित होते रहे। बाद में ये तीनों साप्ताहिक "हरिजन" (गुजराती-अंग्रेजी), "हरिजन सेवक" (हिन्दी) के नाम से प्रकाशित होते रहे। **हिन्दी नवजीवन** तथा हिन्दी **हरिजन सेवक** द्वारा पूज्य बापू की हिन्दी भाषा शैली का आदर्श सदा सामने रहता था।

"दक्षिणामूर्ति भवन" ने बाल-शिक्षा का बहुत बड़ा कार्य किया है। यहाँ के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी को जानना अनिवार्य था। बालकों के लिए बालोचित पाठावली का भी प्रबन्ध किया गया था। इस कार्य में श्री गिजुभाई श्री नानाभाई भट्ट, श्री हरभाई द्विवेदी तथा श्री ताराबहन मोडक की पूरी प्रेरणा रहती थी। शिक्षक गण भी हिन्दी सीखते तथा बोलते भी थे।

गुजरात प्रदेश की भूतपूर्व देशी रियासतों में हिन्दी प्रचार

गुजरात, सौराष्ट्र तथा कच्छ में सैकड़ों संख्या में देशी रियासतें छाई हुई थीं। इनमें बड़ौदा रियासत प्रगतिशील रियासत थी। बड़ौदा राज्य ने हिन्दी को राष्ट्र की सर्व सम्मान्य भाषा के रूप में स्वीकार करके उसके प्रचार और विकास के लिये प्रयत्न किये थे। राज्य का सर्व प्रथम कार्य यह था कि राज्य की ओर से "शासन शब्द कल्पतरु" नामक शब्दकोश सन् १९३१ में प्रकाशित हुआ। इस शब्दकोश में अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा बंगाली–यों आठ भाषाओं-के समानार्थी हजारों शब्दों का संकलन किया गया है। राज्य का दूसरा अनुकरणीय कदम यह था कि राज्य का रोज-ब-रोज का सारा कार्य प्रदेश की भाष गुजराती में शुरू किया गया था। कारोबार में गुजराती भाषा तथा अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर गुजराती, संस्कृत, हिन्दी के भारतीय शब्दों का का ही व्यवहार होता था। उच्च न्यायालय के फैसले तक गुजराती में दिये जाने की व्यवस्था की गयी थी।

बड़ौदा राज्य ने सारे राज्य की लिपि गुजराती के साथ ही साथ देवनागरी लिपि को भी बराबरी का स्थान दिया था। महाराजा सयाजीराव ने हिन्दी के उत्कर्ष की दृष्टि से हिन्दू विश्व विद्यालय के पुस्तकालय को ६ लाख रुपये दिये थे।

सन् १९३३ में राज्य ने सभी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का जानना अनिवार्य कर दिया था। राज्य की शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी की पढ़ाई

अनिवार्य कर दी गई थी। महाराजा सयाजीराव अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। आपने हिन्दी साहित्य निर्माण के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन को एक निधि भी अर्पण की थी।

बड़ौदा राज्य ने अपने कर्मचारियों के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की राष्ट्रभाषा परिचय परीक्षा को मान्य किया था। करीब-करीब सभी कर्मचारियों ने राष्ट्रभाषा परिचय परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। एक राज्य का यह प्रयत्न अनुकरणीय और प्रशंसनीय है कि अखिल भारतीय दृष्टि को सामने रखते हुए उसने हिन्दी प्रचार-प्रसार के राष्ट्रीय कार्य में पूरा सहयोग दिया।

साबरकांठा प्रदेश में आये हुए ईडर राज्य ने भी हिन्दी प्रचार के लिए थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया था। राज्य की भाषा तो गुजराती थी ही। परन्तु रियासत में आए हुए हाई स्कूलों में पहली श्रेणी (आज की पाँचवी) से छठवीं श्रेणी (आज की दसवीं श्रेणी) तक हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का केन्द्र

अहमदाबाद के प्रतिष्ठित नागरिक स्व० श्रीमती विद्याबहन नीलकंठ, मंत्री, गुजरात विद्या सभा, स्व० डा० हरिप्रसाद व्रजराय देसाई, अध्यक्ष, गुजरात साहित्य सभा, स्व० श्री बलवंतराय प्रमोदराय ठाकोर, आचार्य प्रोप्राइटरी हाई स्कूल, तथा स्व० श्री हरिप्रसाद पीताम्बर दास मेहता, अध्यक्ष, कांग्रेस कमेटी के समर्थन से हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का केन्द्र अहमदाबाद नगर में खोला गया। शुरू में सिर्फ तीन परीक्षार्थी कविवर श्री उमाशंकर जोशी, श्री कान्तिलाल जोशी, मंत्री, बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा तथा श्री भूलाभाई जोशी प्रथमा परीक्षा में सम्मिलित हुए। केन्द्र व्यवस्थापक के रूप में लेखक ने कार्य संभाला। बाद में परीक्षार्थी संस्था कुछ बढ़ी। आज गुजरात में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के केन्द्र अहमदाबाद, राजकोट, जामनगर, बड़ौदा, सूरत, नडीयाद, खंभात इत्यादि स्थानों में चल रहे हैं। सम्मेलन की इन विशारद तथा साहित्यरत्न परीक्षाओं में सैकड़ों परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। सम्मेलन की परीक्षाओं में देश की सभी भाषाओं के लिये स्थान है। साहित्यरत्न परीक्षाओं में देश की सभी भाषाओं के लिए स्थान है। साहित्यरत्न परीक्षा में हिन्दी साहित्य के अलावा भारत की अन्य भारतीय भाषा का १०० अंक का एक प्रश्नपत्र अनिवार्य है।

सन् १९३५ में श्री मोहनलाल जी भट्ट (वर्तमान मन्त्री, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) ने तथा परमेष्ठीदास जैन (सूरत) ने भी प्रचार का कार्यारम्भ किया था।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना

सन् १९३६ में नागपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर बापू के सद्मार्गदर्शन से तथा श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन और स्व० श्री जमनालाल जी बजाज के सद्प्रयत्नों से राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना हुई। उसके सर्वप्रथम मन्त्री श्री सत्यनारायण जी चुने गये । श्री सत्यनारायण जी अहमदाबाद आये और श्री मोहनलाल जी भट्ट से सद्परामर्श करके गुजरात में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिये चालू व्यवस्था को कार्य-भार सौंपा । सन् १९३८ में हरिपुरा कांग्रेस से प्रेरणा पाकर हिन्दी सीखने की ओर कुछ भाई बहनों का रुख बढ़ा तथा वे राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं में बैठने लगे । पूज्य बापू ने देश को संदेश दिया कि "राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है" । इस मंत्र ने जादू का काम किया और हिन्दी के लिए एक असाधारण वातावरण तैयार हो गया।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के कार्य को सुसंगठित रूप से आगे बढ़ाने के लिए सूरत में प्रचारकों और केन्द्र व्यवस्थापकों की एक सभा श्री परमेष्ठीदास जी जैन तथा लेखक द्वारा बुलाई गई। गुजरात प्रदेश के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। इस सभा में भदन्त आनन्द कौसिल्यायन तत्कालीन मंत्री राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा विशेष रूप से उपस्थित रहे। उनके साथ श्री कमलेश भारती भी थे। ता० ११-११-४४ को इस सभा में गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का संगठन हुआ। अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठक तथा उपाध्यक्ष श्री चंपालाल धीया और मंत्री श्री परमेष्ठीदास जैन नियुक्त किये गये।

समिति के सुसंगठित हो जाने से कार्य बढ़ता गया। १९४६ में अध्यक्ष श्री रामनारायण भाई पाठक के स्थान पर माननीय श्री कन्हैयालाल मुँशी अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के रूप में स्व० श्री दादा साहब मालवंकर चुने गये। दादा साहब मालवंकर के भारत की लोकसभा के अध्यक्ष चुने जाने पर डा० हरिप्रसाद देसाई उपाध्यक्ष चुने गये। बाद में उपाध्यक्ष के रूप में प्रा० श्री रामचन्द्र ब० श्री आठबले, श्री हरभाई द्विवेदी, श्री गौरीशंकर जोशी

"धूमकेतु'', श्री डोलरराय माकंड का सहयोग प्राप्त हुआ। सन् १९६१ से उपाध्यक्ष के पद पर श्री रमणीकलाल इनामदार तथा श्री गजानन भाई जोशी अपना सहयोग दे रहे हैं।

समिति में कार्याध्यक्ष का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व रहा है। सौभाग्य से कार्याध्यक्ष के लिये शुरू से श्रीमती शारदाबहन मेहता का पूरा सहयोग मिला श्रीमती शारदाब्रहन मेहता के संरक्षण में समिति खूब आगे बढ़ी। समिति के विकास में श्रीमती शारदाबहन का सक्रिय साथ तथा मार्गदर्शन सदा स्मरणीय रहेंगे। श्रीमती शारदा बहन के बाद श्रीयुत हरसिद्ध भाई दीवटिया ने यह स्थान संभाला। आपके बम्बई चले जाने पर कार्याध्यक्ष के पद पर सन् १९६१ से श्रीमती हंसाबहन मेहता (भूतपूर्व उपकुलपति सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदा) हैं और पूरा सहयोग दे रही हैं।

सन् १९४६ से लेखक मंत्री तथा संचालक का उत्तरदायित्व संभाले हुए हैं।

नयी तालीम

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज-शिक्षकों के लिए
सर्व-सेवा संघ की शैक्षिक मासिकी
प्रधान सम्पादक : श्री धीरेन्द्र मजूमदार

- ● शिक्षण, विकास और नव समाज-निर्माण की समस्याओं और संभावनाओं का विवेचन।
- ● क्रमिक शिक्षण के अतिरिक्त पंचवर्षीय योजना, देश-विदेश की प्रमुख घटनाओं और सामाजिक प्रश्नों पर स्वतन्त्र चिन्तन।
- ● बाल-शिक्षण, शिक्षा-दर्शन, शिक्षाशास्त्री-परिचय, शान्ति के पथ पर, सम्पादक के नाम चिट्ठी, शिक्षा-आयोग; सृष्टि और दृष्टि, समाचार-समीक्षा, शान्ति समाचार, पालकों से, सामयिक चर्चा, ग्राम निर्माण की भूमिका में, आदि स्थायी स्तम्भ।

वार्षिक चन्दा : ६ रुपये; किसी मास से ग्राहक बना जा सकता है

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

दक्षिण के हिन्दी विरोध का विश्लेषण

(एक तमिल भाषी)

गत जनवरी-फरवरी में अहिन्दी प्रदेशों में, खासकर दक्षिण भारत में, हिन्दी के विरुद्ध जो उग्र आन्दोलन चला उसके सम्बन्ध में देश के सभी भागों में काफ़ी चर्चा हुई है। फिर भी दक्षिण के छात्रों की वाणी, जो आंदोलन की प्रमुख प्रेरक शक्ति थी, यथा-स्थान पहुँच सकी है, यह बात अत्यन्त सन्दिग्ध है। यह सचमुच खेद की बात है कि इतने प्राण-नाश और वस्तु-नाश के बाद भी समस्या का वास्तविक रूप नहीं समझा जा रहा है, यह समझने पर भी उसके लिए सीधा हल नहीं ढूँढ़ा जा रहा है। वस्तुत: यह विरोध इस समय हिन्दी के काफ़ी प्रचलित न होने से उत्पन्न असुविधा को दृष्टि में रखकर अथवा पाठ्य पद्धति या शिक्षण क्रम की कमियों के कारण नहीं हुआ है, बिलकुल भिन्न कारणों को लेकर हुआ है। शिक्षा-पद्धति, प्रचार के उपाय आदि से सम्बन्धित प्रश्न तभी संगत होंगे जब छात्रों के स्तर और हिन्दी के प्रसार के बारे में विचार किया जाय। पर आंदोलन के सिलसिले में इन बातों को मौलिक कारणों के रूप में ग्रहण करना बिलकुल असम्भव है।

भ्रम की समस्या

देश के नेताओं से और हिन्दी प्रदेश की पत्र-पत्रिकाओं से अक्सर कहा जाता है कि कुछ देश-विरोधी व्यक्तियों के भड़काने से दक्षिण-वासियों को कुछ भ्रम हुआ है, जो अकारण है, और इस भ्रम को दूर करना ही हिन्दी के मार्ग को अवरोध-हीन बनाने का उपाय है। दिल्ली के बड़े-बड़े नेताओं ने सभा सम्मेलनों में और रेडियो भाषणों में यही कहा है कि तमिलनाड की निरीह ग्रामीण जनता को कुछ समाज विरोधी व्यक्तियों ने यह समझाया है कि उनकी तमिल एक दम नष्ट की जायगी, सर्वत्र हिन्दी का प्रचार होगा, हर जगह हिन्दी में ही बोलना पड़ेगा, इसी भ्रामक प्रचार के कारण हिन्दी का विरोध किया गया। इन नेताओं ने अपार उदारता से यह सांत्वना दी है कि ऐसा कुछ नहीं होगा, प्रत्येक भाषा को विकास का अवसर दिया जायगा, और हिन्दी के प्रचार से इन भावनाओं को भी लाभ ही होगा। उत्तर भारत के इन तर्कों को सुनकर याद आती है कि डा० रघुवीर के सांकेतिक शब्दों की हँसी उड़ाने के इच्छुक कुछ विद्वानों ने कैसे अपनी कल्पना से

'कुण्ठ लंगोटी' जैसे अनेक शब्द रचकर उनकी कड़ी आलोचना की थी। आज सम्पूर्ण उत्तर भारत से और दक्षिण के एक दल के नेताओं द्वारा इसी कुण्ठ लंगोटी न्याय से हिन्दी समस्या का उत्तर दिया जा रहा है। छात्रों द्वारा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत प्रश्नों के प्रति आँख मूँदकर, जब अनेक कल्पना-प्रसूत प्रश्न बार-बार उठाये जाते हैं, और उनके लिए 'अचूक' जवाब दिये जाते हैं, तब इन वक्ताओं की अपार कल्पना-शक्ति, बौद्धिक खोखलापन और अंधी दृष्टि ही प्रमाणित होती है।

१८ अप्रैल ६५ को मद्रास के समुद्र-तट के तिलक घाट पर कांग्रेस का एक सम्मेलन हुआ जिसमें अनेक नेताओं ने इन्हीं कल्पित समस्याओं को दुहराया और सांत्वना देते हुए कहा कि हिन्दी के प्रचार से तमिल की कोई हानि नहीं होगी, किसी को अपनी भाषा बोलने की मनाही नहीं रहेगी, अखिल भारतीय सर्विस में सुरक्षा दी जायगी इत्यादि इत्यादि। इन सांत्वनाओं से एक दम असन्तुष्ट होकर छात्रों ने निकट आयी हुई परीक्षाओं की भी चिन्ता न करके २५-४-६५ को उसी तिलक घाट पर एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें उन्होंने नेताओं को जवाब देते हुए अपने विचारों और माँगों को असन्दिग्ध रूप में स्पष्ट किया।

इस सिलसिले में यह विचार करना प्रासंगिक है कि विद्यार्थियों का इस समस्या से क्या सम्बन्ध है। दक्षिण में भी हिन्दी के कुछ समर्थक हैं जिनको दो श्रेणियों में रख सकते हैं। एक ढलती पीढ़ी के वे नेता हैं जिनका हिन्दी से कोई सम्पर्क ही नहीं रहा है और जिनके भविष्य के थोड़े से सालों के लिए भी हिन्दी कोई समस्या नहीं है; दूसरे वे हिन्दी प्रचारक हैं, जिनके लिए हिन्दी रोटी है और जो समस्या को जानने पर भी उस पर अपना वास्तविक मत प्रकट करना खतरनाक समझते हैं। हिन्दी को समस्या के रूप में देखने वाले छात्र ही हैं, क्योंकि उससे उन्हीं का सीधा सम्पर्क हो रहा है, और उन्हीं का भविष्य हिन्दी से जोड़ा जा रहा है। उनका विचार है कि पार्टी-नीति और नेतागीरी के हिमायती नेता छात्रों की समस्या को नहीं समझते, अतः स्वयं छात्रों को अपनी समस्याओं को व्यक्त करना चाहिए और अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करके अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए।

छात्रों ने जो मन्तव्य प्रकट किये, उनको संक्षेप में यहाँ दिया जाता है:—

१. यह हिन्दी के अध्ययन की क्लिष्टता का या अधिक समय देने की मांग का प्रश्न नहीं है। राज भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति से

प्रायोगिक रूप में हिन्दी-भाषियों को कुछ सुविधा होती है, और अहिन्दी भाषियों का अध्ययन-भार बढ़ता है। इससे एक असमानता का पोषण करने वाली किसी पद्धति को आज क्या, भविष्य में भी कभी विद्यार्थी स्वीकृत नहीं करेंगे।

[यह इस सम्मेलन में कही गयी नई बात नहीं है। २-२-१९६५ के छात्र संघ की बैठक में ही ऐसा एक प्रस्ताव पास किया गया है। इसके बाद बार बार इसे दुहराया गया है।]

१. समस्या को उसके यथार्थ रूप में समझने में उत्तर के नेता और संघ पत्र-पत्रिकायें, तथा उन्हें समझाने में दक्षिण के नेता बिलकुल असमर्थ रहे। उन्हें अपने स्वार्थ ही प्रिय हैं। अतः 'श्मशान के निकट पहुँचे हुए वृद्ध' नेताओं पर भरोसा न करके भविष्य को पीढ़ियों के हितार्थ स्वयं कदम उठाना चाहिए।

३. 'पूर्ण समानता' की गारण्टी देने वाले हल के अतिरिक्त कोई हल छात्रों को संतुष्ट नहीं कर सकता, और वह स्वीकृत नहीं किया जायगा।

४. समानता के बिना एकता की बात करना बिलकुल निरर्थक है।

५. अंग्रेजी को जारी रखने की माँग का अर्थ अंग्रेजी के मोह के कारण उसकी वकालत करना नहीं है, और न यह असली माँग ही है। असली माँग है चौदहों भाषाओं को समानाधिकार देने की। वस्तुतः माँग यही है कि अन्तिम दशा में प्रदेशों में प्रादेशिक भाषायें ही रहें और केन्द्र में चौदहों भाषाओं को मान्यता और समान व्यवहार प्राप्त हो। यह कोई असम्भव या अस्वाभाविक बात नहीं है। राज्यों (स्टेटों) का लगभग फ़ेडरल रूप हो और केन्द्र के कार्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को भाँति विविध भाषाओं में चलाये जायें। जब तक इसके अनुरूप सभी भाषाओं का विकास न हो तब तक सम्पर्क-भाषा के रूप से केन्द्र में अंग्रेजी ही रहे।

६. अंग्रेजी के तत्कालिक उपयोग की स्वीकृति के पक्ष में ये बातें हैं :—(अ) इससे हिन्दी के लोगों पर भी नया 'लादना' (Imposition) नहीं है। उनसे भी किसी नये त्याग की माँग नहीं है। (आ) सभी प्रदेशों की ओर से समान त्याग की मांग है ; (याने सभी मातृभाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भी सीखें)। (इ) और न किसी प्रदेश को कोई अतिरिक्त सुविधा ही दी जाती है।

७. हिन्दी की स्वीकृति से अहिन्दी भाषियों को हिन्दी भाषियों की तुलना में एक भाषा अधिक सीखनी पड़ती है। त्रि-भाषा फार्मुला के अनुसार

भी हिन्दी भाषियों की शिक्षा एक बहाना मात्र है। दक्षता की दृष्टि से सिर्फ हिन्दी या हिन्दी और अंग्रेजी का ही अध्ययन किया जाता है। पर अहिन्दी भाषियों को तीनों भाषाओं में दक्षता प्राप्त करनी पड़ती है। इसे समानता नहीं कहा जा सकता।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास
सन् १९६१ तक हिन्दी सेवा के कुछ आँकड़े

कुल हिन्दी विद्यार्थी	७५,००,००
सभा के परीक्षार्थियों की संख्या	१८,३२,५४७
प्रचार केन्द्रों की संख्या	६,०००
परीक्षा-केन्द्रों की संख्या	१,३५०
कुल हिन्दी प्रचारकों की संख्या	८,०००
प्रमाणित प्रचारक (दर्ज)	७,७६०
प्रमाणित प्रचारक (चालू)	४,५९२
स्थानीय संस्थाएँ	८००
प्रकाशित पुस्तकें	३१४
बिकी हुई पुस्तकों की संख्या	२,८०,००,०००
केन्द्रीय पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या	१९,८६१

८. यदि उचित और न्यायपूर्ण समाधान की कार्यवाही नहीं की जायगी तो पुनः आन्दोलन शुरू किया जायगा।

उपर्युक्त बातों से ज्ञात होगा कि दक्षिण का हिन्दी विरोध तात्कालिक मात्र नहीं है, और परिवर्तन दशा की अपनी असमर्थता के ही कारण उत्पन्न नहीं है। उसकी पृष्ठ भूमि अधिक विशाल है, और उसका रूप काफी गहरा है। भारत की देशीयता के कुछ मूल तत्वों से उसका गहरा सम्बन्ध है। इसे राजनीति में छात्रों का अनुचित प्रवेश मानकर खण्डन करना, और राजनैतिक दलों के हथकण्डे मानकर छोड़ देना समस्या के प्रति आँखें बन्द कर लेने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विद्रोह के रूप के बारे में भी एक बात ध्यान देने योग्य थी। किसी भी प्राइवेट संस्था या व्यक्ति की हानि नहीं की गयी। हिन्दी प्रचार सभा या हिन्दी-प्रचार करने वाली अगणित संस्थाओं में किसी को कोई क्षति नहीं हुई और न किसी हिन्दी अध्यापक को ही कोई कष्ट सहना पड़ा। मद्रास में रहने वाले हजारों हिन्दी भाषियों को छुआ तक नहीं गया। इन बातों से स्पष्ट होगा कि आन्दोलन कितना सोद्देश्य और लक्ष्य-केन्द्रित था किन परिस्थितियों

में वह अनेक व्यक्तियों के प्राण लेने वाले उग्र रूप में पहुँचा, उसका उल्लेख यहाँ अनुचित है।

इन माँगों और तर्कों के साथ उन बातों पर भी विचार करना उचित होगा, जिन पर हिन्दी के पक्षपाती जोर देते हैं।

दया की प्रार्थना नहीं; समानाधिकार की माँग

प्राय: त्रि-भाषा पद्धति के द्वारा हिन्दी भाषी और अहिन्दी भाषियों के अध्ययन-भार को बराबर करने की बात कही जाती है। पर अब तक के विकास-क्रम की गणना की जाय तो स्पष्ट होगा कि यह दक्षिण के लिए कितना खतरनाक होगा।

हिन्दी को स्वीकृत करने पर, सैद्धान्तिक रूप में और प्रायोगिक रूप में अहिन्दी भाषियों को तीन भाषायें सीखना अनिवार्य होगा, और तीनों में काफ़ी अच्छा ज्ञान प्राप्त करना होगा। यह भी स्मरण रखने की बात है इन तीनों की प्रतिलिपियाँ भिन्न हैं, व्याकरण भिन्न हैं, शब्द-समूह भिन्न हैं। इस तरह तीनों में (मातृ भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी) उचित स्तर प्राप्त करने के लिए स्कूल में ही तीनों का अध्ययन करना पड़ता है। हिन्दी भाषियों को इसकी आवश्यकता नहीं रहती। सैद्धान्तिक रूप में त्रि-भाषा पद्धति को स्वीकृत करने पर भी वे संस्कृत का थोड़ा अध्ययन करके या हिन्दी से सम्बन्धित उर्दू लेकर बच निकल सकते हैं। या फिर तमिल या तेलुगू के बारे में हिन्दी में कुछ-कुछ सीखकर इस फर्ज-अदाई को निभा सकते हैं, जैसे कि आज उत्तर के कुछ विश्वविद्यालयों में होता है। भविष्य की निरुपयोगिता को कारण स्वरूप मानकर इस प्रणाली का समर्थन भी किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह नहीं है कि दक्षिणवासी तीन भाषायें सीख सकते हैं कि नहीं, पर यह है कि इस असमानता की नीति को क्यों अपनावें? बिलकुल भिन्न तीन भाषाओं का अध्ययन करते हुए इन अहिन्दी भाषियों को भाषेतर विषयों में उन हिन्दी भाषियों के साथ हर क्षेत्र में होड़ करनी पड़ेगी —आर्थिक असन्तुलन और बेकारी के ऐसे युग में जब जीवन अपने ही प्रयत्न पर निर्भर रहता है, होड़ के बिना जीना ही संभव नहीं है—जिनको केवल दो ही भाषायें यथोचित ढंग से सीखनी पड़ती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अब दीखने लगा है। अब दक्षिण के राज्यों में अपनी इच्छा से कोई अतिरिक्त भाषा सीखने का अवसर नगण्य रहता है। हिन्दी के आगमन के बाद केरल में संस्कृत का अध्ययन प्राय: लुप्त ही हो चुका है। परिस्थितिवश एक

अतिरिक्त भाषा सीखने के लिए विवश लोगों की (जैसे मद्रास में रहने वाले तमिलीय और आंध्र लोग) दशा अधिक दयनीय हो जाती है। चार भाषाएँ पढ़ने के बाद उन्हें दूसरे विषयों के अध्ययन का समय कहाँ मिलेगा ? जिन छात्रों को एम० ए० आदि में एक अतिरिक्त भाषा सीखनी है, उनको भी कुल चार भाषायें सीखनी पड़ती हैं।

अंग्रेजी को एकदम हटाने पर अहिन्दी भाषियों को कम-से-कम दो भाषायें सीखनी होंगी, जब कि हिन्दी भाषी सिर्फ अपनी मातृभाषा सीखकर राज्य और केन्द्र के उच्च-से-उच्च पद के योग्य होंगे। इस दशा में सरकारी पदों के इच्छुक अहिंदी छात्रों को दो भाषायें सीखकर भी एक ही भाषा सीखने वाले हिन्दी भाषियों से स्पर्धा करनी होगी, सो भी अपने लिए अन्य एक भाषा में जिसमें पूरी दक्षता पाना बहुत कठिन है। यही नहीं, भाषाध्ययन में इतना अधिक समय और शक्ति का व्यय करने वाले अहिंदी छात्रों के इतर विषयों में भी हिन्दी भाषी छात्रों की तुलना में पिछड़े रहने की संभावना रहती है।

इसी बात को मानकर अखिल भारतीय सर्विस से संबंधित परीक्षाओं में क्रमीकरण (Moderation) और हिस्सेदारी (Quota system) की बात चीत की जाती है। दक्षिण के छात्र दोनों को स्वीकृत नहीं करते। भिन्न भाषाओं में या एक ही भाषा में लिखित परीक्षाओं में उत्तर पुस्तकों के मूल्यांकन के बाद परीक्षार्थी की मातृभाषा के आधार पर क्रमीकरण का क्या मापदण्ड हो सकता है ? और इसमें कैसे न्याय की आशा की जा सकती है? कोटा पद्धति असल में उन लोगों पर दया दिखाने के लिए होती है जो किसी कारण से पिछड़े हुए हों। यह न्याय भी है। दक्षिण के छात्र औद्योगिक ठेकेदारी नहीं चाहने, पर अपने को पिछड़े बनाने वाले एक सशक्त नियम को, या उपकरण को, अपना कर फिर कृपा-पात्र बनना भी नहीं चाहते।

बहु संख्या का सिद्धान्त

हिन्दी के पक्ष में सबल तर्क के रूप में बहु जन भाषा का जो सिद्धांत प्रस्तुत किया जाता है, उसे भी दक्षिण के छात्र नहीं मानते। सम्पूर्ण भारत की आबादी को लेकर हिसाब लगाना यहाँ एक दम गलत है। भारत की कुल जनसंख्या में करीब तेरह करोड़ हिन्दी भाषी हैं, और इनके अतिरिक्त तीन छः करोड़ हिन्दी जानने वाले हैं। इनकी भाषा को और सब लोग भी अनिवार्य रूप से सीखें, इसे उचित नहीं माना जा सकता। राज्यों के हिसाब

से देखा जाय तो कुल १५ राज्यों में केवल ५ राज्य और केन्द्र सरकार अधीन १० प्रदेशों में केवल १ प्रदेश हिन्दी भाषी है।

अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी सबसे अधिक लोगों में जाती है—इस बात को मानने में वास्तविक समस्या नही सुलझती। हमें वास्तविक दशा पर और प्रायोगिक कठिनाइयों पर विचार करना पड़ेगा। किसी राज्य में दो भाषायें बोलने वाले लोग सभी प्रदेशों में वित होकर रहें, तो दोनों एक दूसरे की भाषा को अपनाने में विशेष कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे। ऐसी दशा मे बहुसंख्यक जनता की भाषा को औद्योगि पद देने से अधिक कठिनाई नहीं होगी, अल्प संख्यक जनता भी उसे स्वी कर सकेगी। लेकिन यही अल्प संख्यक जनता एक ही प्रांत में केन्द्रित और बहुसंख्यक जनता से नित्य का सम्पर्क न रखती हो, तब दशा बिल भिन्न हो जाती है। बहुसंख्यक लोगों की भाषा होने मात्र से वह उनके सरल नहीं होती, और न वे उसे स्वाभाविक रूप में अपना ही सकेंगे। कभी उनकी अपनी न बनेगी, सदा श्रम-सिद्ध ही रहेगी। ऐसी दशा अल्प संख्यक जनता से अनिवार्यतः बहुसंख्यक की भाषा सीखने की अपे रखना 'लादने' के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। राष्ट्रीय जीवन में बहुसं की भाषा को अनिवार्य मानना और जीवन-क्रम में उसे स्पर्द्धा का माध्यम या उपकरण बनाना निश्चित ही अल्प संख्यक जनों के लिए असुवि कारक है, उनकी असमर्थता पर कड़ा व्यंग है, उनके प्रति अन्याय है।

गांधी और हिन्दी

हिन्दी के समर्थक बार-बार गांधी जी को उद्धृत करते हैं, महात्मा जी के समर्थन से अनुगृहीत हिन्दी को चुपचाप स्वीकृत करने का आग्रह करते हैं। इनके संबंध में भी हमें दो-एक बातें कहनी हैं। महात्मा गांधी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत किया था, महात्मा ने मातृभाषाओं (प्रांतीय भषाओं) के बराबर विकास पर भी दिया था। हिन्दी भाषियों का बहुमत प्राप्त केन्द्र सरकार और हिन्दी अन्य वक्ता इस बात को कितनी आसानी से भूल गये हैं ? (आगे इ चर्चा की जायगी।) गांधी जी के चेले क्या इसे भी भूल गये गांधी जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तुरन्त कांग्रेस दल को ही तोड़ देने सुझाव दिया था ? असली बात यह है कि गांधी जी ने जिस भारत स्वप्न देखा था, वह बिलकुल भिन्न था; और गांधी जी ने जिस राष्ट्र

की कल्पना की थी उसके रूप, ध्येय और क्षेत्र भी भिन्न थे। गांधी जी ने अब यह कहा कि बंगाली लोग दो महीने में और द्रविड़ लोग छः महीने में हिन्दी सीख सकते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि उनका तात्पर्य सामान्य उपयोग के लिए बोलचाल की भाषा थोड़ी-बहुत सीख लेने से ही था। उन्होंने हमारी आज की-सी राज्य-व्यवस्था की कल्पना ही नहीं की थी। ऐसी दशा में उसकी औद्योगिक भाषा का प्रश्न ही नहीं उठता। इन बातों पर विचार किये बिना, वर्तमान परिस्थिति में गांधी जी का नाम लेना या तो अज्ञान है, या जान बूझकर दूसरों को धोखे में डालने का प्रयत्न है।

अहिन्दी भाषियों की सामार्थ्य ?

और एक बचकाने ढंग का तर्क जो बड़े-बड़े विद्वानों के मुंह से सुनने में आता है। वह यह है कि अहिन्दी भाषी—खासकर तमिल भाषी—बड़े बुद्धिमान् होते हैं और कुछ ही वर्षों में वे हिंदी सीखकर हिंदी भाषियों को मात कर देंगे। कुछ आत्मकेन्द्रित अहिंदी भाषियों को भी यह प्रशंसा बड़ी सुन्दर लगती है। पर दोनों ही वस्तुस्थिति से अज्ञ रहते हैं। जिन दक्षिण भारतीयों ने अंग्रेजी में काफ़ी दक्षता प्राप्त की है, उनके लिए हिन्दी सीखने में क्या कठिनाई हो सकती है ?—यह प्रश्न यहाँ संगत ही नहीं है। दक्षिण में कितने लोग अंग्रेज़ी सीखकर अंग्रेजों की बराबरी कर सके ? इस सम्बन्ध में दो बातें उल्लेखनीय हैं। (१) मातृभाषा का अध्ययन जितना सरल होता है उतना सरल अन्य भाषा का अध्ययन कभी नहीं होता। इने-गिने लोग जीवन के अनेक अमूल्य वर्षों का व्यय करके अन्य भाषा में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं, यह बात, भिन्न है। ऐसे लोगों को भी काफ़ी परिश्रम से ही अन्य भाषा आती है। इस दृष्टि से देखें तो हिन्दी भाषियों को हिन्दी जितने स्वभाव से और स्वाभाविक रूप से आयेगी, अहिन्दी भाषियों को कदापि नहीं। (२) दूसरी बात यह है कि भाषा-अध्ययन मात्र बुद्धि का विषय नहीं, आदत का भी विषय है। किसी भाषा का स्वाभाविक अध्ययन उसके वातावरण में ही हो सकता है। अध्ययन के बाद भी उचित परिवेश में ही उसका स्वाभाविक अस्तित्व हो सकता है। भूगोल या इतिहास की तरह वस्तु-निष्ठ अध्ययन भाषा के सम्बन्ध में एकदम असम्भव है। स्वकीय वातावरण में श्रम से सीखी हुई भाषा में भिन्नता होती है। दोनों प्रकार के अध्ययन के श्रम की मात्रा में भी बहुत अन्तर होता है। अहिन्दी भाषियों को सामान्यतः वह स्वभाविक वातावरण कभी नहीं मिलेगा जो हिन्दी भाषियों को स्वतः प्राप्त है। यह स्थिति निरन्तर असमानता उत्पन्न करेगी।

संविधान

सामान्यतः संविधान में ऐसे ही नियम होते हैं, जिनके पालन के लि व्यक्ति की मानसिक सम्मति पर्याप्त होती है, एक लम्बे अरसे का अध्य आवश्यक नहीं होता। भाषा का अध्ययन कभी इच्छा मात्र से नहीं हो उसके लिए कुछ काल का निरन्तर अध्ययन आवश्यक होता है। औ एकाधिक भाषाओं के अध्ययन में सब समान सामार्थ्य नहीं रखते। हमेशा व्यक्तिगत कमी के कारण नहीं होता, भाषा की भिन्नता के कारण होता है। हिन्दी भाषियों को हिन्दी स्वतः सरल होती है, और अहिन्दी भा को आपेक्षिकतया अधिक श्रम करने पर भी उसमें पूरी दक्षता नहीं मिलती ऐसी दशा में संविधान का यह अधिनियम स्पष्टतः भाषा के आधार प असमानता का ही समर्थन करता है।

अब तक विरोध नहीं ?

अनेक व्यक्तियों ने यह प्रश्न उठाया है कि दक्षिण ने अब तक हि का विरोध क्यों नहीं किया, और अब लोग क्यों जनतंत्रीय विधाओं छोड़कर एकदम विद्रोहासक्त हो गये।

वस्तुतः इस प्रश्न का उठना ही उस दशा की ओर इंगित करता जिसमें आन्दोलन अनिवार्य हुआ। व्यापक रूप में इस तरह का प्रश्न कर इसी बात का सूचक है कि अब तक हिन्दी के विरुद्ध जनतंत्रीय पद्धति से आन्दोलन चला उसका एकदम तिरस्कार ही किया गया, और दक्षिण वाणी अब तक जनतंत्रवादियों के कानों तक नहीं पहुंच सकी। जो दक्षि के हिन्दी विरोध का इतिहास जानता है वह ऐसा प्रश्न नहीं कर सकता। इसका एक लम्बा इतिहास है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के काफ़ी पहले से शुरू होता है।[1]

१९३८ में मद्रास में हिन्दी की समस्या को लेकर काफ़ी रोष आन्दोलन हुआ था, और तालमुन्तु नटराजन् ने 'अग्नि स्नान' किया।

---

[1] हाल में मलयालम की पत्रिका 'मातृभूमि' ने हिंदी की सबल वका करने वाला महात्मा गांधी का एक पुराना भाषण पूरा-पूरा उद्धृत कि है। उसमें गांधी जी ने बंगालियों और द्रविड़ों के हिन्दी विरोध बात बतायी है, और उन्हें हिंदी को अपनाने का उपदेश दिया है (मातृभूमि २३ मई, १९६५, पृ० १५-१७)। स्पष्ट है कि गांधी जी काल में भी दक्षिण हिंदी का विरोध करता था।

जब राजा जी ने अपने मंत्रित्वकाल में हिन्दी को शिक्षा-क्रम में अनिवार्य बनाया तब उसका घोर विरोध हुआ। और अनिवार्यता अधिक अन्त तक नहीं रह सकी। यही नहीं, स्वतः राजा जी की जन-प्रीति नष्ट हुई। आज जो लोग राजा जी के परिवर्तन पर आश्चर्य करते हैं या उसकी हँसी उड़ाते हैं, उनको समझना चाहिए, कि उनका यह परिवर्तन वार्द्धक्य से दिमाग़ में उत्पन्न खराबी के कारण नहीं हुआ है, बल्कि जनतंत्रता के सिद्धान्त के पूर्णतः अनुकूल रूप में, जनमन को जानकर, उनके प्रति दायित्व निभाने के कारण हुआ है।

१९६० में हिन्दी पुनः स्कूली शिक्षा में अनिवार्य बनायी गयी। इसके विरुद्ध विद्यार्थियों का राज्य-व्यापक आन्दोलन हुआ, और सरकार ने नियम में कुछ परिवर्तन किया और ऐसा विधान किया कि हिन्दी अनिवार्य रूप में सिखायी जाय, पर परीक्षा में वह अनिवार्य न हो। इससे हिन्दी की शिक्षा की ही घोर दुर्दशा नहीं हुई, क्लास का संभालना ही मुश्किल होने से स्कूलों के अनुशासन में भी शिथिलता आयी। अनुशासन के पालन के लिए कुछ स्कूलों ने क्लास के समय में हिन्दी सिखाना छोड़ दिया। अब भी यही क्रम चल रहा है।

अब मुख्य मंत्री श्री भक्त वत्सलम् जी की दशा कुछ विचित्र है। वह दिल्ली में जाकर घोषणा करते हैं कि मद्रास में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य है और अन्य राज्यों में भी त्रि-भाषा सिद्धान्त का पालन होना चाहिए; परन्तु मद्रास में आकर लोगों को सांत्वना देते हैं कि पाठ्यक्रम अनिवार्य हो तो क्या, परीक्षा में तो अनिवार्य नहीं है, आप क्यों घबड़ाते हैं? दिल्ली के स्वामियों को खुश करने के लिए और मद्रास में अपने पद की सुरक्षा के लिए यह दुहरी नीति जरूरी है। पता नहीं यह नीति कब तक चल सकेगी। विद्यार्थियों का विश्वास है कि अब त्रिभाषा फार्मुला के अनुसार परीक्षा में भी हिन्दी अनिवार्य बनायी जायगी—और उसके विरोध के लिए आन्दोलन आवश्यक होगा।

ऐसी दशा में यह कहना बिलकुल गलत है कि अहिन्दी भाषियों ने जनतंत्र पद्धति की अवहेलना की है। जनतंत्र में अल्प संख्यकों की माँगों की पूर्ति न हो, तो उन्हें उसे आन्दोलन द्वारा ही व्यक्त करना पड़ता है। बहुमत का समर्थन प्राप्त शासक वर्ग इन माँगों के प्रति अंधे रहे और ये माँगें अल्पसंख्यकों के जीवन को मूल रूप में प्रभावित करने वाली बातों के बारे में हों तो आन्दोलन अनिवार्य हो जाता है। शासक वर्ग और बहुसंख्यक जन

न्याय और सहानुभूति की दृष्टि से ऐसी माँगों पर विचार न करें, और अल्पसंख्यकों में काफ़ी शक्ति भी रहे, तो आन्दोलन का उग्र होना स्वभाविक ही है। अब दक्षिण भारत में जो हुआ, वह बहुमत के द्वारा अल्पमत के माँगों की अवगणना के स्वभाविक परिणाम के रूप में फूटा हुआ विद्रोह ही था।

समता कहाँ रही ?

समता के बिना देशीय एकता की बातें करना व्यर्थ है। अब तक हमारी विविध भाषाओं के प्रति जो व्यवहार सम्बन्धित केन्द्रों से हुआ है, उसे समता पर आधारित नहीं कहा जा सकता। चौदहों भाषाओं को राष्ट्रभाषा मानने और उनको समान दृष्टि से देखने के बारे में लम्बे-लम्बे भाषण तो दिये जाते हैं, पर इन खोखले भाषणों और शाब्दिक सहानुभूति के अतिरिक्त इस दिशा मे कार्य रूप में कुछ नहीं हुआ है। केन्द्र की ओर से हिन्दी के विकास के लिए जितना रुपया खर्च किया जाता है, उसका दशांश भी अन्य भाषाओं के लिए खर्च नहीं किया जाता। भिखारी को रोटी के दो टुकड़े देने की तरह इधर दो-चार छात्र वृत्तियाँ, उधर दो-एक पुरस्कार—इस तरह देकर ही अपार उदारता दिखायी गयी है। वर्षों से यह क्रम चलता आ रहा है। हाल का उदाहरण ही लें। अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के विकास के लिए दो करोड़ रुपये खर्च करने की घोषणा हुई है। हिन्दी क्षेत्रों का व्यय अलग है। पर अन्य भाषाओं के लिए क्या किया गया है? अधिक से अधिक ४२% जनता (हिन्दी के समर्थकों के हिसाब से) की भाषा हिन्दी के लिए दो करोड़ का व्यय हो तो अन्य सब भाषाओं के लिए तीन करोड़ से कुछ अधिक का प्रबन्ध होना चाहिए। यही न्यायपूर्ण नीति है। इसके बिना समदृष्टि की बात करना ढोंग है।

वस्तुत: हिन्दी को चार-पाँच राज्य सरकारों से और केन्द्र सरकार से सहायता मिलती है, जिससे उसका काफ़ी विकास सम्भव है। ऐसी दशा में तनिक भी सहानुभूति रखने वाली देशीय सरकार को, केवल एक-एक राज्य से सहायधन प्राप्त प्रादेशिक भाषाओं के विकास के लिए ठीक अनुपातिक क्रम से कुछ अधिक का ही प्रबन्ध करना चाहिए। पर दक्षिण इस सहानुभूति की आशा नहीं करता। मात्र न्याय और नीति की दृष्टि से देखा जाय तो प्रादेशिक भाषाओं को आनुपातिक मात्रा में सहायता देना ही उचित है। पर क्या जनतंत्रता के वक्ताओं ने इस बात पर कभी ध्यान दिया है ?

यदि आज का ही क्रम जारी रहेगा, तो कुछ वर्षों में हिंदी का पर्याप्त विकास होगा, और उसमें निस्सन्देह शासन और उच्च शिक्षा का माध्यम बनने की क्षमता आ जायगी। अब भी यह क्षमता काफ़ी आ चुकी है और वह अंग्रेजी को विस्थापित करने को लगभग तैयार है। पर अन्य भाषाओं का कितना विकास हुआ है ? उनके विकास के लिए क्या किया गया है ? यह अन्तर हिन्दी की किसी विशेष योग्यता के कारण और अन्य भाषाओं की अयोग्यता के कारण नहीं हुआ है, हिन्दी के विकास के लिए अनुकूल नीति और उसे प्राप्त असीम सहायता के कारण ही हुआ है। तमिल भाषियों का विरोध न हिन्दी के विरुद्ध है, न हिन्दी भाषियों के विरुद्ध; पर इस घोर असमत्व के विरुद्ध है, जो संविधान का समर्थन और देशीय सरकार का आशीर्वाद पाकर विकसित हो रहा है, और आगे भी तीव्र वेग से विकसित होगा।

सभी क्षेत्रों में यह असमत्व और उसके प्रभाव अब भी दृष्टिगत होने लगे हैं। जब हिन्दी के सामान्य श्रेणी के कवियों और लेखकों को भी अन्य भाषाओं की तुलना में उचित आनुपातिक संख्या से बहुत अधिक अखिल भारतीय पुरस्कार दिये जाते हैं, उपाधियाँ दी जाती हैं और बड़े-बड़े पद दिये जाते हैं, तब हम देखते हैं कि भारत के बाहर प्रतिष्ठा पाने वाले प्रादेशिक भाषाओं के लेखक अवसर इनसे वंचित रह जाते हैं। इन अवगणित लेखकों की कृतियों से हिन्दी के सम्मानित लेखकों की रचनाओं की तुलना करें तो इस घोर असमानता और अन्याय का रूप स्पष्ट होगा। यही अहिंदी भाषियों पर लादी जाने वाली द्वितीय श्रेणी की नागरिकता है, जिससे बचना दक्षिण के हिन्दी विरोध का मूल उद्देश्य है।

केन्द्र के द्वारा कुछ लोगों से उनकी मातृभाषा के द्वारा सम्पर्क रखना, और दूसरे लोगों से मातृभाषा से अन्य एक भाषा के द्वारा सम्पर्क रखना भी कहाँ की समदृष्टि है ?

बढ़ती जाती हुई इन असमानताओं को हिन्दी भाषी नहीं देख सकते, देखने की आवश्यकता भी उन्हें नहीं है। पर दक्षिण को इसे देखना उनके जीवन की सुरक्षा के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है।

विशाल दृष्टिकोण

यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या दक्षिण के लोगों को प्रादेशिकता का मनोभाव तजकर एक विशाल दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

इसका उत्तर यही प्रश्न है कि इस सद्भावना को बढ़ाने के लिए और प्रादेशिक भाव को तोड़ने के लिए हिंदी भाषियों ने क्या किया है। उन्नीस करोड़ हिन्दी भाषियों में कितनों ने दक्षिणी भाषाओं का सामान्य स्तर तक का अध्ययन किया है ? मद्रास के लोग नहीं चाहते कि सभी हिंदी भाषी अन्य भारतीय भाषायें सीखें, पर अवश्य यह प्रश्न करते हैं कि सद्भावना और देशीयता पर बार-बार भाषण देने वाले इन विशाल मनस्क जनों में एक ने भी मद्रास आकर तमिल का अच्छा अध्ययन करने का प्रयत्न क्यों नहीं किया ? उन्हें फ्रेंच, रूसी या जर्मन सीखना अभीष्ट है, पर दक्षिणी भाषाओं के प्रति घोर अनास्था है। उत्तर के कुछ विश्वविद्यालयों में तमिल और तेलुगू शिक्षा के नाम पर चलने वाली बहानेबाजी की पूरी जानकारी के साथ ही हम यह लिख रहे हैं। यह कहना कि कुछ समय के बाद यह सब हो जायगा, और बड़ा धोखा है। सद्भावना के इन पुजारियों में तनिक भी ईमानदारी होती, दक्षिण को समझने और उसके प्रति समता का सम्बन्ध रखने की अभिलाषा होती, तो गत दस पंद्रह सालों में कम-से-कम एक-एक व्यक्ति इन दक्षिणी भाषाओं के अध्ययन के लिए क्यों उद्यत न होता ? जब रूस की महिलाओं ने मद्रास आकर तमिल सीखने का कष्ट उठाया है, तब हमारे हिंदी भाषी भाइयों को इस तरफ झांकने तक की आवश्यकता नहीं दीखी। जब चेकोस्लावेक्या जैसे छोटे से राज्य के डॉ० कामिल ज्वेलविल ने दक्षिण भारत में आकर तमिल और मलयालम सीखी है, इन भाषाओं के ग्रंथों का चेक भाषा में अनुवाद किया है और मद्रास की तमिल संस्कृति अकादमी का उपसभापति बनने का विशेष सम्मान प्राप्त किया है तब हिंदी भाषियों में दो-एक को भी तमिल की अच्छी शिक्षा पाने की इच्छा क्यों नहीं हुई ? गत दस वर्ष में लगभग एक दर्जन विदेशियों ने तमिल का अध्ययन—काफी अच्छा अध्ययन—किया है। जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, तब मलाया का विश्वविद्यालय १९६६ में विश्व तमिल महासम्मेलन चलाने का आयोजन कर रहा है।

पर हिंदी भाषियों से यही प्रश्न सुनने को मिला है कि जो भाषा हमारे भविष्य के लिए उपयोगी नहीं है, उसके अध्ययन में हम समय और शक्ति का दुर्व्यय क्यों करें ? यही वह सद्भावना है जिसके सामने दक्षिण-वासियों को द्वितीय श्रेणी के नागरिक बनने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं बचेगा। जब तक उत्तर में यह भावना रहेगी तब तक दक्षिण को उत्तर से सद्भावना की सीख लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी। जिन उन्नीस करोड़

हिंदी भाषियों में एक को भी तमिल या अन्य दक्षिणी भाषा का गंभीर अध्ययन करने की फुरसत नहीं मिली, उनकी सद्भावना कोरी प्रवंचना है। देशीय एकता के सम्बन्ध में उनके भाषण प्रहसन मात्र हैं। इस ढोंग और ढकोसले को बन्द कर के ईमानदारी से बातचीत करना देशीय एकता की पहली आवश्यकता है।

विस्तार नीति

सद्भावना की बात छोड़िए, उलटे बार-बार यह सुझाव हिंदी भाषियों की ओर से दिया जाता है कि दक्षिणी भाषाओं के लिए भी नागरी लिपि का उपयोग किया जाय। कारण बताया जाता है कि हिंदी भाषियों को उनके पढ़ने में सुविधा हो और दक्षिणवासी भी सिर्फ दो लिपियाँ सीख कर काम चला सके। जो हिंदी भाषी दक्षिण भाषाएँ सीखने की ओर अब तक उन्मुख ही नहीं हुए हैं, वे लिपि-परिवर्तन से इस ओर टूट पड़ेंगे—ऐसी आशा हम नहीं करते। सीमित संख्याओं में ही सही, हिंदी भाषी दक्षिणी भाषायें सीखते, तो उनका यह वाद सार्थक होता, अन्यथा इसे उनका साम्राज्यवाद नहीं, तो विस्तार-नीति कहना ही उचित लगता है। जो लोग और पत्रिकायें[1] इस तरह कहती हैं, उन्हें दक्षिणी भाषाओं से कितना सम्पर्क और कितना प्रेम है, इसे हम अच्छी तरह जानते हैं।

विश्वविद्यालयों में माध्यम के रूप में हिंदी को अखिल भारतीय स्वीकृति देने का आग्रह भी अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं से प्रकट हो चुका है।[2] इस समय तो यह तर्क निरर्थक और अस्वाभाविक लगेगा। पर जब प्रांत राज्य सरकारों और केन्द्र की सहायता से हिंदी का तीव्र विकास हो जायगा और आपेक्षिकतया बहुत कम सहायता और सहायधन पाने वाली अन्य भाषाओं का विकास बहुत कम ही होगा, तब यह तर्क अधिक सार्थक होगा, अधिक युक्ति-संगत भी होगा। उस समय अँग्रेजी का विस्थापन करने में हिंदी समर्थ रहेगी, अन्य भाषायें असमर्थ रहेंगी। तब विश्वविद्यालयों के माध्यम के

---

[1] हाल में राज्य सभा में हुई चर्चा स्मरणीय है। मासिक 'विश्व ज्योति' (होशियारपुर) 'एक लिपि विस्तार' नामक स्थायी स्तंभ रखता है।

[2] दक्षिण के आन्दोलन के बाद भी यह वाद चल रहा है, जिसका उदाहरण है 'नया साहित्य' (दिल्ली) का एक लेख। (नया साहित्य फरवरी, पृष्ठ ३)

रूप में किसी एक भारतीय भाषा को अपनाना पड़े—देशीय एकता और पारस्परिक संपर्क के नाम से भी यह तर्क-संगत है—तो हिंदी को ही अपनाना पड़ेगा। पहले लिपि-हत्या, फिर विश्वविद्यालय में माध्यम के क्षेत्र से अयोग्यता के कारण बहिष्करण—इसके बाद प्रारम्भिक शिक्षा और कुछ स्थानीय कामों में ही उपयोगी प्रादेशिक भाषाओं के हनन के लिए अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रहेगी।

अँग्रेजी की वकालत ?

उत्तर के जो विद्वान् तमिल भाषियों से पूछते हैं कि आप क्यों राजभाषा के रूप में विदेशी अँग्रेजी की वकालत करते हैं ? अपनी भाषा की वकालत करते तो हम प्रसन्न होते—वे अच्छी तरह यह जानते हैं कि तमिल भाषी तमिल को अखिल भारतीय औद्योगिक भाषा के रूप में स्वीकृति की मांग करने की मूर्खता नहीं करेंगे। और यह भी वे जानते हैं कि अँग्रेजी के हटाये जाने पर अन्य भाषाओं के साथ टक्कर लेने में हिंदी निश्चित सबल और सफल ही होगी। और हम भी यह जानते हैं कि उत्तर प्रदेश की विधान सभा में उर्दू को भी मान्यता देने वाले हिन्दी भाषी भारत की औद्योगिक भाषा के रूप अन्य किसी भाषा को कितना सहन करेंगे। यह सब वितण्डावाद है और यहाँ विस्तृत रूप में परिगणनीय नहीं है। इसी प्रकार रूस का उदाहरण देकर अनेक भाषाओं में एक को राजभाषा चुनने का समर्थन करने वाले और स्विटजरलैंड का नाम लेकर तीन भाषाओं के अध्ययन का समर्थन करने वालों के तर्क वस्तुतः असली प्रश्न पर केन्द्रित ही नहीं हैं। रूस की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। इन रूस-प्रेमियों को सोवियत के संविधान को, और विशेषकर उसके अधिनियम १६ व १७ को जरा देख लेना चाहिए। स्विटजरलैंड में चार भाषायें सीखनी पड़ें तो भी सबको अपनी ही भाषा में लिखने की स्वतन्त्रता होती है, अन्य भाषाएँ समझना ही पर्याप्त है। इन भाषाओं की लिपियाँ भी भिन्न नहीं हैं।

असली मांग क्या है ?

जैसे छात्रों के हाल के सम्मेलन में व्यक्त किया गया, उनकी असली मांग अँग्रेजी को सदा के लिये जारी रखना नहीं हैं। पर ऐसी ही भ्रान्त धारणा उत्तर भारत में फैली दीखती है। समानाधिकार को सैद्धान्तिक और प्रायोगिक रूप में मान्यता देनेवाला हल ही उनको स्वीकार्य होगा।

इसके लिए तात्कालिक हल यही है कि केन्द्र में अँग्रेजी को ही रखा जाय, जैसे कि २६ जनवरी, १९६५ के पूर्व था। इसमें उत्तर को वैकारिक विरोध हो सकता है। वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो इसमें असमानता नहीं रहती। सभी को अपनी मातृ भाषा के अतिरिक्त एक विदेशी भाषा अँग्रेजी का अध्ययन आवश्यक होगा। तीसरी भाषा सीखने या न सीखने की स्वतत्रन्ता रहेगी।

भविष्य की दृष्टि से स्थायी हल यही होगा कि संविधान में निर्दिष्ट सभी भाषाओं को सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक रूप में शासन और शिक्षा के क्षेत्रों में समान पदवी दी जाय। अत्यावश्यक कार्यों में ही केन्द्रीकरण हो, और केन्द्रीय शासन में भी इन सभी भाषाओं को समान पद दिया जाय। जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ आदि में विश्व की कितनी ही भाषाओं से काम चलाया जाता है, उसी तरह केन्द्र शासन चलाया जाय। जब तक इसके अनुरूप प्रान्तीय भाषाओं का विकास न हो तब तक अँग्रेजी ही सम्पर्क भाषा के रूप में रहे।

यही दक्षिण भारत के छात्रों की स्पष्ट माँग है, जिसे वे अनेक भाषणों में और वक्तव्यों में प्रकट कर चुके हैं। पत्र, पत्रिकाओं, लेखों से स्पष्ट होता है कि छात्रों के अतिरिक्त अन्य लोगों में भी व्यापक रूप से इन विचारों का प्रचार है। इन बातों पर ध्यान न देना असली समस्या से बच निकलना ही है।

* * *

हिन्दी और बंगाल

(श्री देवनाथ चतुर्वेदी, एम० ए०, हिन्दी भवन, विश्वभारती)

बंगाल ही अग्रणी

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया जाय और देवनागरी लिपि भारतीय भाषाओं की लिपि निर्धारित की जाय, इसका सर्व-प्रथम बंगाल के ही द्वारा समर्थन किया गया। यद्यपि बंगाल अहिन्दी भाषी प्रान्त है, फिर भी हिन्दी के सम्बन्ध में किया गया इसका अन्दोलन स्मरणीय है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित करना चाहिए, इस सम्बन्ध में बंगाल निवासी राजा राममोहन राय का प्रयास प्रशंसनीय है, जो इस क्षेत्र में सम्भवतः सर्वप्रथम प्रयास कहा जा सकता है। सन् १८२६ ई० में आपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु "बंग दूत" नामक एक पत्र निकाला और उसमें तत्कालीन चार (बंगला, हिन्दी, फारसी और अंग्रेजी) भाषाओं को ही स्थान दिया गया; क्योंकि उनके सामनें अपने विचारों को जनमानस तक पहुँचाने के लिए एक उत्तम माध्यम की आवश्यकता थी। इस समस्या के समाधान के ही निमित्त आप ने "बंग दूत" नामक पत्र में उपर्युक्त चार भाषाओं को स्थान दिया। बंगला के माध्यम से सम्पूर्ण बंगवासियों को लाभान्वित किया। हिन्दी भाषा के चुनाव से उनका तात्पर्य था एक बहुत बड़े जनसमूह से सम्पर्क स्थापित करना और इसी माध्यम से उन तक अपने बहुमूल्य सिद्धान्तों और विचारों को पहुँचाना। उस पत्र में फारसी को इसलिए स्थान दिया गया कि उस समय वह राज्य-भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी। अंग्रेजी के द्वारा इन शुभ सन्देशों को विदेशों तक भेजा जा सकता था। इसलिए उस पत्र में अंग्रेजी को भी स्थान प्राप्त हो गया। इस प्रकार व्यापक दृष्टिकोण लेकर किया गया हिन्दी को व्यवहारिक रूप देने का सर्व-प्रथम प्रयास राजा राममोहन राय का ही है।

केशवचन्द्र सेन

बंगाल के एक दूसरे सज्जन हैं श्री केशवचन्द्र सेन जिनका नाम हिन्दी के साथ सदैव जुड़ा रहेगा। ऐसा कहा जाता है कि एक बार स्वामी दयानन्द जी सरस्वती कुछ दिनों के लिए कलकत्ता गये हुए थे। उस समय

आप एक बहुत ही महत्वपूर्ण धर्म-ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रणयन कर रहे थे। इस ग्रंथ को स्वामी जी का विचार संस्कृत में लिखने का था; लेकिन श्री केशवचन्द्र सेन की ही प्रेरणा का फल है कि इसकी रचना हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में हुई। इस घटना का उल्लेख लगभग एक सहस्र पृष्ठों वाली श्री स्वामी जी की जीवनी में श्री घासीराम जी ने किया है। इतना ही नहीं, श्री सेन ने स्वामी जी से हिन्दी में ही अपना भाषण देने का अनुरोध किया। इस अनुरोध को स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार किया और अपने भाषण का माध्यम हिन्दी भाषा को ही रखा।

बंकिम बाबू

बंगाल के ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत के महान साहित्यकार श्री बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने भाषण में एक बार कहा था—"अंग्रेजी के विषय में लोगों की जो कुछ भी भावना हो, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हिन्दी की पुस्तकें लिख कर और हिन्दी बोल कर भारत के अधिकांश भाग को निश्चय ही लाभ हो सकता है। यदि हम देश में बंगला और अंग्रेजी जानने वालों की संख्या का पता चलायें, तो हमें साफ प्रकट हो जायगा कि वह कितनी न्यून है। जो सज्जन हिन्दी भाषा द्वारा 'भारत में एकता पैदा करना चाहते हैं, वे निश्चय ही भारतबन्धु हैं। हम सबको संगठित होकर इस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।"

बंकिम बाबू का यह व्याख्यान पढ़ कर उनके हृदय में हिन्दी के प्रति ममता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। भारत की एकता चिरस्थायी रखने के लिए उन्होंने हिन्दी भाषा की उन्नति करना बहुत आवश्यक समझा।

शारदाचरण मित्र

हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि के अनन्य उपासक न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र का नाम भी उल्लेखनीय है। हिन्दी का विकास करना ही उनके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता थी और हिन्दी सीखना तथा अबाधगति से हिन्दी बोलना ही उस समय उनकी सबसे बड़ी सफलता थी। धन्य है आप का राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अनन्य प्रेम। प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी भारतवासी के लिए शारदा बाबू का यह राष्ट्रभाषा प्रेम अनुकरणीय है। आपका यह प्रेम केवल सिद्धांतों तक ही सीमित नहीं था; अपितु इसे

व्यवहारिक रूप भी आपने प्रदान किया। उस समय अपने विचारों के प्रचार के लिए आप ने एक पत्र निकाला जिसका नाम था **देव नागर**। यह एक मासिक पत्र था। इस पत्र के माध्यम से समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य प्रकाशित करने की योजना थी। इस योजना में आप को बहुत अंशों तक सफलता भी प्राप्त हुई। इस योजना के साथ ही साथ आप के ही प्रयास के फलस्वरूप **एक लिपि विस्तार-परिषद** की भी स्थापना की गई जिसका उद्देश्य था सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का निर्धारित करना, और यह लिपि थी देवनागरी लिपि। एक बार इसी संबंध में भाषण देते समय श्री शारदा बाबू ने कहा था "हिन्दी समस्त जार्यावर्त की भाषा है। कलकत्ते की **एक लिपि विस्तार-परिषद** समस्त भारतवर्ष में देवनागरी लिपि का प्रचार करने में लगी हुई है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ, तथापि मेरे दफ़्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूंगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूंगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ हिन्दी में वार्तालाप करूँगा।"

सुभाष बाबू

हिन्दी के संबंध में जब भी बंगाल की चर्चा होगी उस समय नेता जी सुभाष चन्द्र वसु का नाम अवश्य लिया जायगा। नेता जी के हृदय में हिन्दी के प्रति ऐसा अटूट प्रेम था कि वह इस संबंध में होने वाली शंका को रंचमात्र भी सहन करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने सारे देश को स्पष्ट कर दिया कि केवल उन्हीं का नहीं प्रत्युत समस्त बंगवासियों का हिन्दी से अनुराग है। इस प्रसंग में २९ दिसम्बर, सन् १९२८ ई० की एक घटना का उल्लेख कर देना प्रसंगोचित होगा। कलकत्ता में उक्त तिथि को महात्मा गांधी के सभापतित्व में एक राष्ट्रभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। उस अवसर पर स्वागत समिति के अध्यक्ष पद का भार नेता जी को सौंपा गया। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आप ने उस सम्मेलन में कहा था—"सबसे पहले मैं एक गलतफहमी दूर कर देना चाहता हूँ। कितने ही सज्जनों का ख्याल है कि बंगाली लोग या तो हिन्दी के विरोधी होते हैं या उसके प्रति उपेक्षा करते हैं। यह बात भ्रमपूर्ण है और इसका खण्डन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मैं व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहता, पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि हिन्दी साहित्य के लिये जितना कार्य बंगालियों ने किया

है, उतना हिन्दी-भाषी प्रांतों को छोड़ कर और किसी प्रांत के निवासियों ने शायद ही किया हो। ……………महात्मा जी से और आप लोगों से मैं प्रार्थना करूँगा कि हिन्दी प्रचार का जैसा प्रबन्ध आपने मद्रास में किया है वैसा बंगाल और असम में भी करें। स्थायी कार्यालय खोल कर आप लोग बंगाली छात्रों तथा कार्यकर्ताओं को हिन्दी पढ़ाने का इन्तजाम कीजिये। इस कलकत्ते में कितने ही बंगाली छात्र हिन्दी पढ़ने को तैयार हो जायेंगे, पढ़ाने वाले चाहिये। ……………अन्त में बंगाल के निवासियों से और खास तौर पर यहाँ के नवयुवकों से मेरा अनुरोध है कि आप हिन्दी पढ़ें। …………यदि हम लोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया तो वह दिन दूर नहीं है, जब भारत स्वाधीन होगा और उसकी राष्ट्रभाषा होगी हिन्दी।"

चिरस्मरणीय योगदान

हिन्दी के विकास में बंगाल का योगदान चिरस्मरणीय है। भारत में हिन्दी का सर्वप्रथम प्रेस कलकत्ता में स्थापित किया गया। संचालक मनीषियों के प्रयास के फलस्वरूप ही कलकत्ता से हिन्दी का सर्व-प्रथम समाचार पत्र प्रकाशित किया गया। इस पत्र का नाम रखा गया **विहार बन्धु**। लगभग उसी समय हिन्दी के एक अन्य पत्र का प्रकाशन श्री अमृतलाल चक्रवर्ती के सम्पादकत्व में कलकत्ते से ही किया गया जिसका नाम था **हिन्दी बंगवासी**। शिक्षा जगत में भी हिन्दी शिक्षा के लिए बंगाल का प्रयास बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष में कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी का स्नातकोत्तर कक्षाओं में सर्वप्रथम तथा अध्ययन-अध्यापन आरम्भ किया गया।

विश्वविद्यालयों में हिन्दी

इस समय भी बंगाल में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में कोई कमी नहीं है। पश्चिम बंगाल के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन एवं अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। जिनमें कलकत्ता विश्वविद्यालय, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, विश्व-भारती, उत्तर बंग विश्वविद्यालय आदि प्रमुख हैं। हम पहले संकेत कर चुके हैं कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी को सबसे पहले स्थान प्राप्त हुआ। हिन्दी के अध्ययन की दृष्टि से कलकत्ता का महत्व आज भी बहुत अधिक है। यहाँ के हिन्दी विभाग में अध्यापकों तथा छात्रों की संख्या भी पर्याप्त है। कलकत्ता के बाद बंगाल में विश्व-भारती में हिन्दी-भवन की स्थापना सन् १९३६ ई० में की गई जिसका उद्देश्य ही था हिन्दी साहित्य के विभिन्न पक्षों का गम्भीरतापूर्वक

अध्ययन एवं मनन। हिन्दी भवन की स्थापना गुरुदेव की प्रेरणा से हुई। हिन्दी-भवन द्वारा हिन्दी का सर्वांगीण विकास करना ही गुरुदेव का मुख्य उद्देश्य था। सन् १९४० ई० में हिन्दी-भवन का उद्घाटन पंडित जवाहरलाल नेहरू के करकमल द्वारा हुआ। हिन्दी-भवन के माध्यम से हिन्दी साहित्य की जो सेवा की गई उसके लिए हिन्दी संसार चिरऋणी रहेगा। सन्त साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय आचार्य क्षितिमोहन सेन एवं आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य जी ने हिन्दी साहित्य को जो अपनी सेवायें अर्पित कीं, उन्हें कौन हिन्दी प्रेमी स्वीकार नहीं करेगा। इन लोगों ने सन्त साहित्य का विभिन्न दृष्टियों से मंथन करके अनेक अमूल्य निधियों को प्राप्त किया और हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों को नया मार्ग दिखाया। इन्हीं विद्वानों की प्रेरणा से आज हिन्दी साहित्य को पंडित हजारीप्रसाद जी द्विवेदी जैसे साहित्य मर्मज्ञ उपलब्ध हैं। हिन्दी-भवन से **विश्व भारती** नामक एक हिन्दी पत्रिका प्रकाशित की जाती थी। इसमें अधिकांश बंगाल के विद्वानों के ही लेख प्रकाशित होते थे। आज भी हिन्दी-भवन में हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों पर गवेषणात्मक कार्य किये जा रहे हैं। इस समय केवल हिन्दी-भवन के पुस्तकालय में लगभग १२००० पुस्तकें हैं। इसी प्रकार वर्द्धमान तथा उत्तर बंग विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन की समुचित व्यवस्था है।

महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में

बंगाल के विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त महाविद्यालयों एवं विद्यालयों में भी हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पश्चिमी बंगाल के सभी स्कूलों में ५वीं कक्षा से हिन्दी पढ़ाई जाती है। ५वीं और ६वीं कक्षा में सभी छात्रों को हिन्दी पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया है। ९वीं, १०वीं तथा ११वीं कक्षाओं में हिन्दी को वैकल्पिक विषय के रूप में रखा गया है।

परिणामस्वरूप माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले सभी छात्रों को हिंदी का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है। कलकत्ता में बहुत अधिक संख्या में ऐसे माध्यमिक विद्यालय हैं जहाँ हिन्दी माध्यम से ही सभी विषय पढ़ाये जाते हैं।

कलकत्ता के प्रायः सभी महाविद्यालयों में हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन की पूर्ण व्यवस्था है। प्रेसिडेंसी कालेज कलकत्ता का सबसे पुराना कालेज कहा जा सकता है। वहाँ सभी विषयों की भाँति हिन्दी के अध्ययन के लिए हिन्दी विभाग स्थापित किया गया है। इसी प्रकार स्काटिश चर्च, बंगबासी कालेज, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कालेज,

सेन्ट जेवियर कालेज़, जैपुरिया कालेज श्री शिक्षायतन, श्री सूरज मल जालान कालेज, आर्य कन्या महाविद्यालय आदि में हिन्दी के अध्ययन की समुचित व्यवस्था की गई है। इन विभिन्न महाविद्यालयों में प्रति वर्ष सैकड़ों छात्र-छात्रायें हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

विभिन्न परीक्षाएँ

पं० बंगाल के बहुत से विद्यालयों में विभिन्न प्रकार की हिन्दी परीक्षाओं की व्यवस्था की जाती है; जिनमें साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बर्धा; महिला विद्यापीठ प्रयाग आदि का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। जगह–जगह ऐसी गैर सरकारी संस्थायें स्थापित की गईं हैं जहाँ अतिरिक्त समय में अहिन्दी भाषा भाषियों को हिन्दी सिखाई जाती है और उपर्युक्त हिन्दी परीक्षाओं में सम्मिलित किया जाता है। साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, विशारद और साहित्य रत्न की परीक्षाओं में प्रति वर्ष बहुत अधिक संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं। प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाओं का प० बंगाल में बहुत अधिक प्रचार है। सैकड़ों अहिन्दी भाषी महिलायें प्रवेशिका तथा विद्याविनोदनी परीक्षाओं में प्रतिवर्ष प्रविष्ट होती हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की शाखायें पं० वंगाल के विभिन्न अंचलों में स्थापित की गई हैं। इनके माध्यम से प० वंगाल में हिन्दी भाषा के प्रचार का कार्य बहुत विस्तार के साथ किया जा रहा है। वंगाल के गांवों तथा छोटे-छोटे नगरों में भी इनकी कार्य कुशलता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए यहाँ एक छोटी सी हिन्दी प्रचार समिति के कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। बीरभूमि जिले में बोलपूर नामक एक छोटा सा कस्बा है। यहाँ हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना लगभग १९३७ ई० में हुई। यह छोटी सी संस्था है। उसी समय से हिंदी की सेवा करती चली जा रही है। इस समिति के समक्ष अनेक प्रकार के आर्थिक संकट उपस्थित होते रहे हैं, तथापि कुछ उत्साही नवयुवकों के प्रयास से आज इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत विस्तृत हो गया है। इस समिति ने अहिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था की है। एक छोटा सा पुस्तकालय भी स्थापित है जहाँ से हिंदी प्रेमी जन पुस्तकें लेकर पढ़ते हैं। इस समिति के तत्वावधान में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की प्राथमिक, प्रारम्भिक, प्रवेश परिचय और कोविद आदि हिंदी की परीक्षायें, प्रति वर्ष होती हैं। इसी प्रकार बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भी हिंदी प्रचार का कार्य सम्पादन कर रही है। ये सभी संस्थाएँ समय-समय पर यदि सरकार

से सहायता प्राप्त करती रहें तो हिंदी के विस्तार करने में इनका योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

आकाशवाणी

प० बंगाल के आकाशवाणी के कार्य क्रम में पहले हिंदी के कार्य क्रमों का महत्वपूर्ण स्थान था। इधर कुछ दिनों से आपदकालीन परिस्थिति की आड़ लेकर हिंदी के कार्यक्रमों में बहुत कमी कर दी गई है। हिंदी के प्रचार और प्रसार को दृष्टि में रखते हुए आकाशवाणी के प्रसार-केन्द्रों से हिंदी के विभिन्न कार्यक्रमों को प्रसारित करने की व्यवस्था होनी चाहिए। अधिकांश लोगों के यहाँ रेडियो से हिंदी के ही संगीत सुने जाते हैं। हिंदी के प्रचार में आकाशवाणी से समुचित लाभ उठाया जा सकता है। कुछ दिन पहले बंगला कार्यक्रम में भी सूरदास तथा तुलसीदास के मधुर पदों को प्रसारित किया जाता था। इस समय केवल सप्ताह में एक दिन कुछ मिनटों का हिंदी के कार्यक्रम पर्याप्त नहीं है। संबंधित अधिकारियों को संकुचित दृष्टि का परित्याग कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इस बात का प्रयास करना चाहिए कि हिंदी के कार्यक्रम को भी उतना ही महत्व प्रदान किया जाय जितना अन्य विषयों को इस समय दिया जा रहा है।

सरकारी सहयोग

अहिंदी भाषी प्रान्तों में हिंदी के प्रचार के निमित्त किया जाने वाला सरकार का प्रयत्न सर्वथा वांछनीय है। सरकारी कर्मचारियों को हिंदी का ज्ञान कराने के निमित्त केन्द्रीय-सरकार के द्वारा एक योजना कार्यान्वित की गई है। सरकार के इस प्रकार के प्रयास से हिंदी की व्यवहारिकता में पर्याप्त वृद्धि होगी।

चलचित्र

बंगाल के सामान्य जन जीवन में हिंदी भाषा का क्या स्थान है—इस दृष्टि से भी विचार करना उचित होगा। सामान्य जन जीवन से तात्पर्य विभिन्न क्षेत्रों के व्यावहारिक जीवन से है। आधुनिक युग में चलचित्रों का त्वरित विस्तार एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। आज के चलचित्रों का सम्बन्ध अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, तथा शिक्षित-अशिक्षित सभी स्तर के लोगों के जीवन से है। बंगाल के छोटे-बड़े सभी नगरों में जहाँ भी सिनेमा घर हैं प्रायः सभी में समय-समय पर हिन्दी के चलचित्रों का प्रदर्शन किया जाता

है। केवल कुछ ही सिनेमा घर ऐसे हैं जहाँ केवल बंगला या केवल अंग्रेजी के चलचित्रों का प्रदर्शन नियमित रूप से किया जाता है। इस प्रसंग में एक बात स्मरणीय है कि केवल अंग्रेजी चलचित्रों को प्रदर्शित करने वाले सिनेमा घर कुछ सीमित लोगों के लिए ही होते हैं, सामान्य स्तर के लोग अंग्रेजी के ज्ञान की कमी के कारण वहाँ नहीं जाते। वास्तव में अहिन्दी भाषी प्रान्त प० बंगाल में कितने लोग ऐसे हैं जो सामान्य रूप से हिन्दी समझ लेते हैं, इसका अनुमान किसी भाषा सम्मेलन में हस्ताक्षर करा कर नहीं लगाया जा सकता है, बल्कि सिनेमा घरों में उपस्थित होने वाले अपार जन समूह से। इस स्थल पर पहुँचकर सभी भारतीय भाषा भाषियों का भाषा सम्बन्धी भेद-भाव विलीन होकर हिंदी के साथ समन्वय स्थापित कर लेता है। कलकत्ता के कुछ सिनेमा घरों को छोड़कर शेष सभी में इस प्रकार का दृश्य देखा जा सकता है। यदि कलकत्ता जैसे विशाल नगर को छोड़ दें जहाँ दर्जनों सिनेमा घर हैं तो भी इस प्रकार के पर्याप्त उदाहरण मिलेंगे। यह इस बात का प्रज्ज्वलित प्रमाण है कि बंगाल की अधिकांश जनता हिंदी को सरलता से आत्मसात् कर लेती है।

हिन्दी की गति जन साधारण तक

बंगाल के किसी बाजार, मेला या सार्वजनिक स्थान में केवल हिंदी जानने से भी अपने सामने कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न होगी। किसी मोटर चालक या रिक्शा चालक को हिंदी के माध्यम से वार्तालाप करने में कोई असुविधा नहीं होती। सर्वप्रथम जब मैं प० बंगाल में आया तो उस समय मुझे बंगला भाषा का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं था। मार्ग में मुझे स्मरण हुआ कि बंगाल में बंगला भाषा का ज्ञान न होने से बहुत असुविधा होगी। लेकिन बंगाल में पहुंच जाने पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरा यह विचार केवल भ्रम मात्र था। बंगाल में निरन्तर चार वर्षों तक रहने के उपरान्त भी भाषा संबंधी कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से बंगला सीखने की आवश्यकता कभी नहीं ज्ञात हुई। बंगाल में आने के साथ ही एक बंगाली परिवार के साथ रहने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ जिनसे इसके पूर्व मेरा कोई परिचय नहीं था। उस बंगाली परिवार में मैंने एक वर्ष का समय व्यतीत किया, लेकिन उस परिवार के साथ मेरी बात चीत की माध्यम एक मात्र हिंदी ही थी। छोटे-छोटे बच्चे भी मेरी बातों को सरलता से समझ लेते थे; यद्यपि उनके बोलने में उच्चारण सम्बंधी कुछ भूलें अवश्य होती थी जिनका होना स्वाभाविक भी है।

विशेष भेद का अभाव

बंगला और हिंदी में लिपि अथवा भाषा की दृष्टि से भी दोनों भाषाओं में कोई विशेष भेद नहीं ज्ञात होता। इन दोनों भाषाओं में भिन्नता की अपेक्षा समानता अधिक है। गत कुछ वर्षों से कुछ कवियों को लेकर बंगाली तथा हिंदी भाषियों में विवाद होता रहा है कि वे हिंदी के कवि हैं या बंगाली के। इनमें विद्यापति का सर्वप्रमुख स्थान है। आज भी इसका पूर्णरूप से निर्णय नहीं हो सका है। ये विवाद हिंदी तथा बंगाली की निकटता के प्रमाण हैं। ठीक यही स्थिति ब्रजबुलि के कवियों के संबंध में है। ब्रजभाषा और ब्रजबुलि की अपूर्व समता को देखकर कोई भी बंगला तथा हिंदी की निकटता का अनुमान लगा सकता है। बंगला के अन्य आधुनिक कवि एवं लेखकों ने हिंदी के विकास में पर्याप्त योगदान दिया है। इनमें रवीन्द्र नाथ ठाकुर, द्विजेन्द्र लाल राय, उपन्यासकार बंकिम बाबू तथा शरच्चंद्र आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंगाल और हिंदी के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि बंगाल और हिंदी में सदा से प्रेम रहा है और अब भी उसी रूप में वर्तमान है। सम सामयिक कुछ विरोधी तत्वों के कारण जहाँ-तहाँ थोड़ा बहुत मतभेद दिखाई देता है। इन विरोधी तत्वों की संख्या हिंदी प्रेमियों के सामने नगण्य है।

* * *

डाकघर बचत बैंक में
खाता खोलना आय अधिक लाभदायक है।

खातेदारों को खाते की अपनी कुल जमा रकम पर ३ प्रतिशत के बजाय अब ४ प्रतिशत करमुक्त वार्षिक ब्याज मिलेगा।

डाकघर बचत बैंक में आप जितना धन चाहें जमा कर सकते हैं और जितना रुपया चाहें निकाल सकते हैं।
डाकघर बचत बैंक में अधिक से अधिक रुपया जमाकर लाभ उठाइए।

पूर्ण विवरण जिला संगठनकर्ता, राष्ट्रीय बचत से प्राप्त करें।

सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

आन्ध्र में हिन्दी

(डा० भीमसेन 'निर्मल', प्राध्यापक, उस्मानिया विश्वविद्यालय)

भौगोलिक तथा राजनैतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में 'मध्यदेश' की भाषा का प्रमुख स्थान रहा है। धर्मप्राण भारतीय जनता को एक सूत्र में बाँध रखने का कार्य, शतियों से संस्कृत भाषा द्वारा सम्पन्न होता आ रहा है। बौद्ध एवं जैन धर्मों के प्रचार तथा प्रसार के साथ-साथ पाली-प्राकृत की भी देश भर में विशेष परिव्याप्ति रही होगी। धर्म के अतिरिक्त राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों के निर्वाह के लिए भी 'मध्यदेश' की भाषाएँ अन्तः प्रान्तीय व्यवहार का माध्यम रही हैं। 'मध्यदेश' की जनता के देश के चारों ओर फैलने के साथ-साथ, उनकी भाषाएँ भी देश भर में फैलती गईं, भले ही उनका रूप प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव से अलिप्त न रहा हो। 'मध्यदेश' की भाषाओं तथा आर्यावर्त की अन्य भाषाओं में, संस्कृत की उत्तराधिकारिणी तथा शौरसेनी की आत्मजा हिन्दी को देश की सामान्य भाषा (Common language) अथवा सार्वदेशिक भाषा (Lingua Indica) बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस तथ्य के कई प्रमाण मिलते हैं कि मध्ययुग में हिन्दी-हिन्दुस्थानी देश भर में समझी अवश्य जाती थी। अर्थात् अंग्रेजों के आगमन से पूर्व, प्रादेशिक भाषाओं के साथ हिन्दुस्थानी का अस्तित्व प्रत्येक प्रान्त में था। परन्तु अंग्रेजों के शासन काल में प्रादेशिक भाषाओं के साथ अंग्रेजी को जोड़कर हिन्दुस्थानी की सार्वदेशिकता को बरबस मिटाया गया।

आजकल प्रायः सुना जाता है कि दक्षिण में हिन्दी का विरोध हो रहा है और यह बात आज बहुत हद तक सत्य भी है। किन्तु विरोध की इस भावना के पीछे केवल राजनैतिक पचड़े ही हैं। यदि हम अपने देश के सांस्कृतिक इतिहास पर ध्यान देंगे तो स्पष्ट हो जाएगा कि विरोध की इस भावना को साहित्यिक तथा धार्मिक क्षेत्र में कभी स्थान नहीं मिला है। प्रस्तुत लेख में हम ऐतिहासिक क्रम से आन्ध्र में हिन्दी के अस्तित्व तथा प्रचार का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

सुदूर अतीत में हिन्दी सेवा

आर्य और द्राविड़ के संगम स्थान पर स्थित आन्ध्रों ने आर्य संस्कृत को अपना कर, आर्य भाषाओं की सराहनीय सेवा की है। क्या संस्कृत, क्या

प्राकृत, क्या अपभ्रंश, क्या हिन्दी—सभी भाषाओं के साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि में उन्होंने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

हिन्दी में स्वयं न लिखकर भी हिन्दी साहित्य को अप्रतिम रूप से प्रभावित करने वाले आचार्य श्री वल्लभ आन्ध्र थे। ये कंभंपाटिवाले त्रिलिंग ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मण भट्ट गोदावरी तीरस्थ 'काकरवाड' या 'काकरपाडु' ग्राम के निवासी थे। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य ने तेलुगु में भी कुछ भजन लिखे थे। वल्लभ सम्प्रदाय ने हिन्दी को जो अक्षय निधियाँ प्रदान की हैं, वे किसी से छिपी नहीं हैं।

मध्ययुगीन साहित्य में श्री वल्लभाचार्य के बाद पद्माकर भट्ट का नाम लिया जा सकता है। रीतिकालीन कवियों में भाषा के विचार से प्रौढ़, वाग्विदग्ध एवं कुशल कलाकार पद्माकर जी तैलंग ब्राह्मण थे। उन्होंने स्वयं कहा है :—

"भट्ट तेलंगाने को बुन्देलखण्डवासी।"

किन्तु ये दोनों महानुभाव आन्ध्र होते हुए भी हिन्दी प्रान्त में रहे हैं और वहाँ की भाषा में रचनाएँ की हैं। इन महानुभावों की परम्परा में आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि श्री सी० बालकृष्णराव का नाम लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी कई आन्ध्र होंगे जो उत्तर भारत में रहते हुए हिन्दी-शारदा की अर्चना कर रहे हों।

१७वीं शती में तंजाऊर पर शासन करने वाले भोसलवंशीय शाह जी महाराज ने (सन् १६८४–१७१२) हिन्दी भाषा में दो यक्षगानों की रचना की थी। संगीत और साहित्य के प्रकांड विद्वान, उत्कृष्ट कवि और अनन्य आश्रयदाता के रूप में शाह जी महाराज तेलुगु साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय स्थान के अधिकारी हैं। शाह जी ने तेलुगु में २१ यक्षगानों की रचना की थी। यक्षगान दक्षिण का एक विशिष्ट लोक नाटक है। शाह जी के लिखे हिन्दी यक्षगानों में 'राधा बनसीधर विलास नाटक' राधाकृष्ण के संयोग-वियोग के वर्णन से सम्बन्धित है तो 'विश्वातीत विलास नामक' शिव की महिमा से सम्बन्धित है। इन नाटकों की भाषा के हिन्दी होने पर भी इनमें प्रयुक्त गीतों के राग-ताल कर्नाटक संगीत सम्प्रदाय के अनुसार हैं। दक्षिण भारत के संगीत के साँचे में, हिन्दी भाषा को ढालने का यह प्रथम एवं सफल प्रयास है, जो राष्ट्रीय भाव-समैक्य का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करता है।

सन् १८८० के लगभग श्री शिष्टु कृष्णमूर्ति और मंडकामय्य या

नरहरि नामक दो महानुभावों ने गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' का तेलुगु भाषा में सुन्दर काव्यानुवाद किया है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि अनुवादकों ने मूल हिन्दी छन्दों का ही प्रयोग किया है। अर्थात् दोहा, सोरठा, चौपाई आदि छन्दों में तेलुगु भाषा को ढाला है।

नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि्

सन् १८८४–८६ में, मछलीपट्टणम के निवासी, तेलुगु और संस्कृत के विद्वान श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि ने हिन्दुस्थानी में एकाध नहीं बत्तीस नाटकों की रचना की थी। ये नाटक तत्कालीन रंगमंचीय नाटकों के अनुकरण पर लिखे गए थे। उस समय के रंगमंचीय नाटक, महाराष्ट्र प्रान्त से आए हुए नाटकमंडलियों द्वारा अभिनीत होते थे। इन नाटकों की भाषा हिन्दी हुआ करती थी। इन हिन्दी नाटकों की देखादेखी श्री पुरुषोत्तम कवि ने स्वयं हिन्दी नाटकों की रचना की और स्वयं सूत्रधार बनकर अपने नाटकों को अभिनीत कराया। श्री पुरुषोत्तम जी की हिन्दी रचनाओं की लिपि तेलुगु है। इन ३२ नाटकों में से एक 'रामदास चरित्रम्', स्वयं लेखक द्वारा, तेलुगु लिपि में ही, सन् १९१६ में प्रकाशित किया गया है। दुर्भाग्य की बात है कि ये सभी रचनाएँ आज प्राप्त नहीं हैं। ३२ में से केवल १४ नाटक और कुछ फुटकर भजन ही उपलब्ध हैं। हिन्दी नाटक-साहित्य को श्री पुरुषोत्तम जी की देन अद्वितीय है और इन रचनाओं को हिन्दी नाटक-साहित्य के इतिहास में समादृत स्थान मिलना चाहिए।[1]

श्री पुरुषोत्तम जी के अतिरिक्त, १९वीं शती के अन्तिम दशकों में हिन्दी में नाटकों की रचना करने वाले तथा उन हिन्दी नाटकों को अभिनीत करने वाले आन्ध्रों का नामोल्लेख श्री पसुमर्ति यज्ञनारायण शास्त्री जी के 'आन्ध्र-नट प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ के ३१० से ३२२वें पृष्ठ तक के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आन्ध्र के नाटक साहित्य के प्रारम्भ काल में हिन्दी-हिन्दुस्थानी में पर्याप्त मात्रा में नाटक लिखे गए थे और उनका अभिनय भी हुआ था।

उपर्युक्त सभी रचनाएँ स्वच्छन्द रूप से हुई हैं। उन लेखकों पर न किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव था, न उनके सामने कोई राजकीय आदर्श

---

[1] इन पंक्तियों के लेखक ने पुरुषोत्तम जी की रचनाओं का सटिप्पण नागरी लिप्यन्तर तैयार किया है और आलोचना के रूप में प्रस्तुत थीसिस पर 'डाक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की है।

थे। ये रचनायँ इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि इस रचनात्मक कार्य के पीछे 'मध्यदेश' की भाषा की सार्वदेशिकता की ही भावना थी, कोई राजनैतिक या व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना नहीं थी।

गाँधी जी के नेतृत्व में

२०वीं शती के प्रारम्भ में पूज्य महात्मा जी की सत्प्रेरणा से, दक्षिण भारत में नियतरूप से हिन्दी का पठन-पाठन प्रारम्भ हुआ। महात्मा जी का सदुद्देश्य था कि इस प्रकार के प्रयत्न से, भाषा की विभिन्नताओं के कारण, अंग्रेजी शासन की कूटनीति के कारण, खंडित भारत की आत्मा के एकत्व का परिचय कराकर, समस्त राष्ट्र को 'भारतीयता' के एक सूत्र में निबद्ध किया जा सके।

सन् १९१८ में इन्दौर में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का वार्षिक सम्मेलन हुआ जिसके अध्यक्ष महात्मा जी थे। इस अधिवेशन में दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का कार्य प्रारम्भ कर देने का प्रस्ताव पास किया गया और तदनुसार १९१८ में मद्रास में 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालय' की स्थापना हुई। यही संस्था आगे चलकर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' बनी और आज अपने विस्तृत तथा प्रशंसनीय कार्य के कारण राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था बन सकी है। बापू जी ने प्रथम हिन्दी प्रचारक के रूप में अपने पुत्र श्री देवदास गान्धी को और उनके साथ स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक को मद्रास भेजा। सन् १९१८ में सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर की अध्यक्षता में स्व० एनी वेसेंट ने मद्रास के जार्ज टाउन नामक मुहल्ले के गोखले हाल में हिन्दी वर्ग का उद्घाटन किया। तदुपरान्त उत्तर से सर्वश्री अवधनन्दन, रामानन्द शर्मा, हृषीकेश शर्मा, रामगोपाल शर्मा, रामभरोसे, रघुवरदयालु मिश्र, प्रताप नारायण वाजपेयी, पं० देवदूत विद्यार्थी, पं० नागेश्वर मिश्र आदि सज्जन दक्षिण में हिन्दी प्रचार के लिए भेजे गए। इसके साथ-साथ दक्षिण में कुछ उत्साही नवयुवकों को उत्तर भारत भेजा गया जिन्होंने हिन्दी सीखकर दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य संभाला। इनमें सर्वश्री पं० हरिहर शर्मा, क० न० शिवराम शर्मा, जंध्यार्ल शिवन्न शास्त्री, पीसपाटि वेंकट सुब्बाराव, मुडुंबि नरसिंहाचार्य, मल्लादिवेंकट सीतारामांजनेयुलु, दप्मलपाटि रामकृष्ण शास्त्री, मेडिचर्ल वेंकटेश्वरराव, राजा मिट्टदोड्डि नरसिंगराव जी मुख्य हैं। प्रयाग, बनारस आदि नगरों में वर्ष-भर रहकर, हिन्दी की शिक्षा पाकर, ये युवक आन्ध्र के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में हिन्दी का प्रचार करने लगे। इस कार्य को व्यवस्थित

रूप देने के लिए आन्ध्र का कार्यालय नेल्लूर में १९२० को खोला गया। इसके संचालक श्री रामभरोसे थे।

आन्ध्र में प्रचार की प्रगति

प्रारम्भ से ही आन्ध्र की जनता ने गान्धी जी के स्वराज्य आन्दोलन का हृदय से स्वागत किया। हिन्दी प्रचार तो गान्धी जी के रचनात्मक कार्य-क्रमों में एक है! अतः आन्ध्र के राजनैतिक नेताओं ने भी हिन्दी प्रचार का समर्थन किया और इस कार्य में सक्रिय सहयोग दिया।

सन् १९२१–२२ में राजमहेन्द्रवरम में हिन्दी प्रचारक विद्यालय खोला गया। पं० श्री हृषीकेश शर्मा तथा पं रामानन्द शर्मा उस विद्यालय के अध्यापक नियुक्त किए गए थे। इस विद्यालय में शिक्षा पाने वालों में सर्वश्री उन्नव राजगोपालकृष्णय्या, एस० वी० शिवराम शर्मा, भट्टारम वेंकट सुब्रय्या, उन्नव वेंकटप्पय्या, जंध्याल राममूर्ति, इरगवरपु रामसोमयाजुलु आदि प्रमुख हैं। ये सभी महानुभाव विगत ४०-४५ वर्षों से हिन्दी प्रचार के कार्य में सक्रिय भाग ले रहे हैं।

दक्षिण के प्रचारकों को संगठित करने के उद्देश्य से १९२२ के दिसंबर मास में आन्ध्र प्रदेश के हिन्दी प्रचारकों की एक बैठक बुलायी गई। इस बैठक के फलस्वरूप मार्च १९२३ में, दक्षिण भारत के सभी हिन्दी प्रचारकों का प्रथम सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे श्री भाई कोतवाल।

भारतीय-स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सन् १९२०, २१, २२ महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन दिनों असहयोग आन्दोलन ज़ोरों पर था। इसी समय अर्थात् सन् १९२३ के दिसंबर महीने में, आन्ध्रदेश के काकिनाड़ा नगर में, कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। आन्ध्र के सैकड़ों हिन्दी प्रचारकों ने इस अधिवेशन में स्वयंसेवक बनकर काम किया। स्वागत-समिति के अध्यक्ष स्व० देशभक्त कोंडा वेकटप्पय्या जी ने हिन्दी में ही अध्यक्षीय भाषण देकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। इस अधिवेशन के कारण, आन्ध्र प्रान्त के हिन्दी प्रचार कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

हिंदी परीक्षाएँ

हिन्दी सीखने वाले विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाने के लिए परीक्षाएँ चलाने का कार्यक्रम सन् १९२२ से शुरू किया गया। 'प्राथमिक', 'प्रवेशिका'

और 'राष्ट्र भाषा' के नाम से तीन परीक्षाएँ चलाई जाने लगीं। इन परीक्षाओं के प्रमाणपत्रों पर, सन् १९२७ तक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अधिकारी के तथा मद्रास शाखा के संचालक व परीक्षामंत्री के हस्ताक्षर होते थे। इस प्रकार हिन्दी प्रचार का कार्य बढ़ता गया। फलतः हिन्दी प्रचारकों की मांग बढ़ने लगी। इस माँग की पूर्ति के लिए सन् १९२४-२५ में मद्रास में एक विद्यालय शुरू किया गया। इस विद्यालय में एक वर्ष तक पढ़कर और 'हिन्दी प्रचारक' सनद प्राप्त कर, उत्साही नवयुवक अपने ज़िलों में हिन्दी प्रचार-कार्य में लग गए।

सन् १९२४ में कांग्रेस के नेता नगर पालिकाओं के अध्यक्ष चुने गए थे। उनके प्रयत्नों से काकिनाड़ा, राजमहेंद्री, विजयवाड़ा, गुंटूर, नेल्लूर आदि कुछ शहरों के म्युनिसिपल स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। इसके बाद धीरे-धीरे ज़िला बोर्डों के स्कूलों में भी हिन्दी को स्थान मिला।

विभिन्न प्रान्तों में कार्य भार के बढ़ जाने से केवल मद्रास के कार्यालय से सारा काम चलाना असम्भव-सा हो गया। इसलिए आन्ध्र तथा तमिलनाडु में शाखा कार्यालय खोले गए।

सन् १९२७ में बापू जी की सलाह के अनुसार, मद्रास के कार्यालय का नाम बदलकर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' रखा गया। सभा का अपना अलग संविधान बनाया गया। पूज्य बापू जी सभा के आजीवन अध्यक्ष चुने गए।

सन् १९३० में मद्रास में दूसरी बार 'प्रचारक विद्यालय' चलाया गया। इस विद्यालय में 'राष्ट्रभाषा विशारद' नामक उपाधि परीक्षा तथा 'प्रचारक' दोनों की पढ़ाई होती थी। साहित्यिक रुचि रखने वाले विद्यार्थियों के लिए 'विशेष योग्यता' नाम की परीक्षा चलाई जाती थी, जो कालान्तर में 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' नामक उपाधि परीक्षा में बदल दी गई। विद्यालय, परीक्षा तथा साहित्य-निर्माण में सभा को परामर्श देने के लिए विभिन्न समतियों तथा उपसमितियों का निर्माण किया गया। इस प्रकार सन् १९३२ से सभा का सारा कार्य व्यवस्थित और सुचारु रूप से चल रहा है।

साहित्यिक आदान-प्रदान द्वारा उत्तर और दक्षिण के मध्य सौजन्यपूर्ण सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से एक हिन्दी प्रेमी यात्री दल सन् १९३४ में उत्तर भारत की यात्रा करने निकल पड़ा। इस यात्री दल का नेतृत्व पद्मश्री मोटूरि सत्यनारायण जी

ने किया और आन्ध्र की ओर से इसमें श्री उन्नव राजगोपालकृष्णय्या और स्व० डा० गुल्लपल्लि नारायणमूर्ति ने भाग लिया ।

सन् १९३६ से

सन् १९३६ के बाद आन्ध्र के हिन्दी प्रचार के इतिहास में नया अध्याय शुरू होता है। प्रचार कार्य को सुसंगठित रूप देने के लिए दक्षिण के चारों प्रान्तों में चार प्रान्तीय सभाओं का निर्माण हुआ। प्रान्तीय सभाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचार-कार्य के आवश्यक सभी कार्य करने के अधिकार दिए गए। आन्ध्रराष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ का कार्यालय बेजवाडा (अब विजयवाड़ा) में खोला गया। इस शाखा सभा के प्रथम अध्यक्ष स्व० देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्या जी थे, जो आजीवन इस पद को समलंकृत करते रहे। स्व० पीसपाटि वेंकट सुब्बाराव जी मंत्री नियुक्त हुए। सन् १९४८ से १९५४ तक स्व० टंगुटूरि प्रकाशम पन्तुलु जी शाखा सभा के अध्यक्ष रहे। आजकल डा० बी० गोपालरेड्डी जी अध्यक्ष हैं। श्री पी० वी० सुब्बाराव जी के निधन के बाद, सन् १९४१ से १९५८ तक श्री उन्नव राजगोपालकृष्णय्या और १९५९ में श्री वेमूरि आंजनेयशर्मा और १९६० में श्री चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा शाखा सभा के मंत्री रह चुके हैं। अब श्री जी० सुब्रह्मण्यम इस पद पर हैं। शाखा सभाओं के बनने के बाद विद्यार्थियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। सन् १९३६ में ही मद्रास प्रान्त की सरकारी परीक्षा—यस० यस० एल० सी० (Secondary School Leaving Certificate) में भी हिन्दी को स्थान मिला। स्व० डा० सी० आर० रेड्डी (जो तेलुगु में आधुनिक आलोचना के जन्मदाता माने जाते हैं) ने आन्ध्र विश्वविद्यालय में 'बी० काम' तथा 'बी० काम आनर्स' में हिन्दी को परीक्षा के लिए अनिवार्य विषय बना दिया। यह भारतीय विश्वविद्यालयों के इतिहास में एक अविस्मरयीय घटना है। आन्ध्र में सर्वप्रथम बेल्लूर के वी० आर० कालेज में हिन्दी की पढ़ाई होने लगी। श्री भाट्टम् वेंकटसुब्बय्या जी वहाँ के प्रथम हिन्दी प्राध्यापक थे।

सन् १९३८ में श्री राजा जी मद्रास प्रदेश (जिसमें आन्ध्र प्रदेश भी शामिल था) के मुख्य मंत्री बने तो मिडिल स्कूल की कक्षाओं में हिन्दी की शिक्षा को अनिवार्य बना दिया। तीन वर्ष के बाद जब कांग्रेसी मंत्री-मंडलियों ने त्यागपत्र दे दिया तो स्कूलों में हिन्दी शिक्षा के कार्य को थोड़ा धक्का लगा, किन्तु सार्वजनिक रूप से जनता हिन्दी सीखती ही रही।

सन् १९४२ के आन्दोलन के समय जेलों में हिन्दी प्रचार का जोर रहा। आन्ध्र के कई नेताओं ने इस समय हिन्दी सीखी थी। स्व० अल्लूरि

सत्यनारायण राजु ने (जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री रह चुके जेल में रहते समय हिन्दी सीखकर ही महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी 'वोलगा से गंगा' का तेलुगु में अनुवाद किया है।

हैदराबाद में हिन्दी प्रचार के कार्य के लिए सन् १९३५ में राष्ट्रभा समिति के तत्वाधान में 'हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना यह सभा (पूर्व) हैदराबाद रियायत के प्रान्तों में हिन्दी प्रचार का सफलतापूर्वक करती आई है।

सन् १९४६ में पूज्य महात्मा जी के करकमल द्वारा दक्षिण भा हिन्दी प्रचार सभा की रजत जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी।

सन् १९५० से आन्ध्र के सभी विद्यालयों में हिन्दी को अनिवार्य वि के रूप में पढ़ाया जा रहा है।

आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ, जनता में हिन्दी के प्रति रुचि उत करने के लिए हिन्दी महासभाओं का और प्रचारक बन्धुओं के विचार-विनि के लिए हिन्दी प्रचारक सम्मेलनों का आयोजन करती आ रही है। नगर-नग गाँव-गाँव में हिन्दी प्रेमी मंडलियों की स्थापना कर, स्थानीय जनता में हि के प्रति रुचि तथा प्रेम उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न कर रही है।

आँकड़े

विभिन्न परीक्षाओं का संचालन करके हिन्दी प्रचार सभाएँ, हि प्रचार का कार्य कर रही हैं। नीचे आन्ध्र के हिन्दी परीक्षार्थियों की संख्या दी जा रही हैं, जिनसे जनता में बढ़ते हुए हिन्दी प्रेम का स्पष्ट परिचय प्रा हो जायगा। इन परीक्षाओं में स्त्री-पुरुष, स्कूल-कालेज के विद्यार्थी, अध्याप वकील, सरकारी कर्मचारी भी भाग लेते आ रहे हैं।

वर्ष	केंद्र	प्रारम्भिक परीक्षाओं के परीक्षार्थी	उच्च परीक्षाओं के परीक्षार्थी
१९२२ से ३० तक	७३	९,११६	३२
१९३१ से ३५ तक	३९४	३०,७१०	२,१६६
१९३६ से ४० तक	५७८	७०,९८७	४,१५२
१९४१ से ४५ तक	५२८	६५,१६२	५,०२२
१९४६ से ४९ तक	६४५	१,७६,६२१	१५,३३८
१९५०	७४०	७८,६९७	११,५४७

वर्ष	केंद्र	प्रारम्भिक परीक्षाओं के परीक्षार्थी	उच्च परीक्षाओं के परीक्षार्थी
१९५१	८२२	७८,५७८	१६,१७०
१९५२	८६५	७७,५८८	१५,३३८
१९५३	८३२	७५,५४९	१२,९४९
१९५४	९७३	८१,३९०	१५,५२२
१९५५	१०६४	८१,३२५	१६,८९६
१९५६	१२२३	९८,५५७	१६,९१३
१९५७	१२३१	९०,७२९	१८,११३
१९५८	१२७५	१,०४,५७८	१९,०३४
१९५९	१३०२	१,१६,७०१	२०,८५६
१९६०	१३२६	१,१५,८५९	२३,०४५

(नोट :— ऊपर के आँकड़े श्री एस० महालिंगम, मन्त्री, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के एक लेख से साभार लिए गए हैं।) ये आँकड़े समग्र दक्षिण भारत से संबद्ध हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास निम्नलिखित परीक्षायें चलाती है।

(१) प्राथमिक (२) माध्यमिक (३) राष्ट्रभाषा (४) प्रवेशिका (५) राष्ट्रभाषा विशारद (६) राष्ट्रभाषा प्रवीण तथा (७) हिन्दी प्रचारक। स्नातकोत्तर विद्यालय में 'राष्ट्रभाषा पारंगत' (एम० ए०) तथा राष्ट्र भाषा साहित्याचार्य (पीएच० डी०) की शिक्षा दी जा रही है।

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद निम्नलिखित परीक्षाएँ चलाती है।

(१) प्रवेश (२) प्रथमा (३) मध्यमा (४) उत्तमा (५) हिन्दी विशारद (६) हिन्दी भूषण (७) हिन्दी विद्वान् (८) हिन्दी वाचस्पति तथा हिन्दी शिक्षक।

अब नीचे केवल आन्ध्र प्रान्त के हिन्दी परीक्षार्थियों के आंकड़े दिए जाते हैं।

वर्ष	परीक्षार्थियों की संख्या
१९६१	३५,५३२
१९६२	४०,११४
१९६३	४३,४९२
१९६४	४२,०५७

(नोट :— इन आँकड़ों में हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा के परीक्षार्थियों की संख्या सम्मिलित नहीं है ।)

इसके अतिरिक्त प्रचारक सनद प्राप्त हिन्दी शिक्षकों की संख्या ८००० से ऊपर है । इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी प्रचार सभाओं के सतत प्रयत्नों से दक्षिण में हिन्दी शिक्षितों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। साहित्य रचना करने वालों का परिचय अलग दिया जा रहा है ।

पत्रिकाओं का योगदान

सभा के अतिरिक्त प्रारम्भ से ही आन्ध्र देश की कई दैनिक तथा सप्ताहिक पत्रिकायें हिन्दी सीखने के लिये हिन्दी पाठ प्रकाशित कर, हिन्दी प्रचार कार्य में सहयोग देती रही हैं । इनमें 'आन्ध्र पत्रिका', 'कृष्णा पत्रिका' तथा 'कांग्रेस पत्रिका' विशेष उल्लेखनीय हैं । श्री दोनेपूडि राजाराव ने स्वतन्त्र रूप से हिन्दी में 'शिक्षक' नाम की पत्रिका सन् १९५०–५२ में चला कर हिन्दी प्रचार कार्य में अपनी अमूल्य सेवायें समर्पित की हैं ।

राजमहेंद्री, विजयवाडा, तेनालि, विद्यावनम (पामरु), चित्तूरु, एलुरु, विजयनगरम, हैदराबाद, कर्नूल, विनयाश्रम आदि स्थानों में कई वर्षों से हिन्दी महाविद्यालय बड़ी सफलतापूर्वक चलाए जा रहे हैं, जहाँ प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं ।

आन्ध्र में हिन्दी के चलचित्र भी पर्याप्त संख्या में प्रदर्शित होते हैं और उन चलचित्रों को देखने वालों की संख्या भी दिन-दिन बढ़ रही है। चलचित्रों ने हिन्दी के प्रचार में काफी सहयोग दिया है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को दक्षिण भारत के दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा आन्ध्र में अति उत्साह के साथ अपनाया गया है। इस प्रान्त में हिन्दी के विरोध के दर्शन नहीं होते ।

हिन्दी के तेलुगु साहित्यक

हिन्दी भाषा साहित्यिक की शिक्षा प्राप्त कर, हिन्दी का काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त कई आन्ध्रों ने हिन्दी में मौलिक रचनायें की हैं और कर रहे हैं । हिन्दी में लिखने वाले आन्ध्रों की संख्या पर्याप्त हैं। इन लेखकों के तीन विभाग किये जा सकते हैं ।

(१) हिन्दी में मौलिक रचनायें करने वाले,
(२) तेलुगु रचनाओं का हिन्दी अनुवाद करने वाले, और

(३) हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद करने वाले।

हिन्दी में मौलिक रचनाएँ करने वालों में सर्व श्री मोटूरिसत्यनारायण रमेश चौधरी, बालशौरि रेड्डी, राममूर्ति 'रेणु', जी० सुन्दर रेड्डी, चावलि सूर्यनारायण मूर्ति, हनुमच्छास्त्री अयाचित, कर्णराज शेषगिरिराव, डा० ऐ० पांडुरंगाराव, ए० सी० कामाक्षिराव, वेमूरि आंजनेय शर्मा, वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति, आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं। अनुवाद करने वाले तो बीसियों लेखक हैं, जिनकी रचनायें समय-समय पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को अलंकृत करती रहती हैं। इस प्रकार हिन्दी में साहित्य सृजन का पक्ष भी उन्नततम रूप ग्रहण करता जा रहा है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि निकट भविष्य में आन्ध्र के हिन्दी लेखक अपनी रचनाओं के कारण हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट और स्पृहणीय स्थान के अकिकारी बनेंगे। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये 'हिन्दी को आन्ध्र की देन' शीर्षक मेरा लेख (आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित) देखा जा सकता है।

कतिपय समस्याएँ

आन्ध्र में हिन्दी प्रचार व प्रसार के उपर्युक्त विवरण के बाद अब हम कुछ समस्याओं पर दृष्टिपात करेंगे, जो आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी प्रचार के अवसर पर उठ खड़ी होती है। सबसे पहले और मुख्य रूप से जो समस्या हमारे सामने आती है, वह शिक्षा विभाग के सहयोग की बात है। आन्ध्र प्रदेश के हाई स्कूलों में तथा एस० एस० एल० सी० परीक्षा में हिन्दी अनिवार्य विषय है। ठीक है, लेकिन इस विषय को पढ़ाने के लिये सप्ताह में केवल दो ही पीरियड दिए जाते हैं। दो पीरियड में, आप कल्पना कर सकते हैं कि, अध्यापक क्या पढ़ा पाएगा और उससे विद्यार्थियों के भाषा ज्ञान में कहाँ तक वृद्धि हो पाएगी। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए १५% अङ्क प्राप्त कर लेना पर्याप्त समझा गया है। अतः सरकार को चाहिये कि हिन्दी को भी अन्य विषयों के समान, सप्ताह में ५ या ६ पीरियड दे और उत्तीर्णाङ्क को ३५% बना दे।

हिन्दी के शिक्षकों के सामने भी कई समस्याएँ खड़ी होती हैं। व्याकरण की शिक्षा इनमें मुख्य है। हिन्दी भाषा को सीखने में तेलुगु भाषियों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। 'भाषा' (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली) के मार्च अंक में, मैंने इन समस्यायों की विस्तार से

चर्चा की है। 'ने' का प्रयोग, लिंग भेद की समस्या, उच्चारण सम्बन्धी विभिन्नतायें, हिन्दी के नाम पर अन्य उपभाषाओं–यथा ब्रज, अवधी, मैथिली, राजस्थानी—की रचनायें आदि हिन्दी के अहिन्दी विद्यार्थी को परेशान कर डालती हैं। हिंदी अर्थात् खड़ी बोली के वर्तमान रूप को जब राष्ट्र भाषा राजभाषा मान लिया गया है, तब हिंदी के विद्वानों का परम कर्तव्य यह हो जाता है कि वे हिंदी व्याकरण को यथा-साध्य सरल बनावें। आगरा केन्द्रीय हिंदी शिक्षण संस्थान के द्वारा आयोजित संगोष्ठी में भाग लेने वाले विद्वानों का बहुमत था कि हिंदी प्रचार के दो विभिन्न रूप हों। प्रथम, केवल भाषा याने खड़ी बोली के वर्तमान रूप की शिक्षा हो। तो द्वितीय साहित्य की शिक्षा हो जिसमें ब्रज, अवधी आदि उपभाषाओं की शिक्षा दी जाए। अहिंदी प्रांत के लोगों को हिंदी के व्यावहारिक ज्ञान (working knowledge) से सम्पन्न बनाने के लिए केवल खड़ी बोली हिंदी ही सिखाई जाए। जिन्हें रुचि होगी वे साहित्य का अध्ययन कर लेंगे।

एक और बात। हिंदी भाषा भाषी विद्वानों को अपने बन्धु अहिंदी भाषी हिंदी विद्यार्थियों तथा अहिंदी लेखकों व विद्वानों के प्रति सहानुभूति युक्त दृष्टि अपनानी चाहिये। हिंदी वालों का यह कहना कि अहिंदी भाषियों को हिंदी में बोलना नहीं आता, उनका उच्चारण अशुद्ध होता है, उन्हें मुहाविरेदार हिंदी में बोलना नहीं आता, कोरी बकवास है। ऐसा दृष्टिकोण हिंदी के लिए सौमनस्य की जगह विरोध को ही उत्पन्न करेगा। दक्षिण के हिंदी शिक्षित लोगों में हिंदी वालों के domination की बात भी जड़ जमाए हुए है। इस आशंका को दूर करने का तहेदिल से प्रयत्न होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी धीरे-धीरे आम जनता तक फैल रही है और निकट भविष्य में पर्याप्त संख्या में लोग हिंदी में बोलने तथा लिखने-पढ़ने के योग्य बनेंगे। यदि राज्य सरकार हिंदी के प्रति अपेक्षाकृत उदार दृष्टिकोण और हिंदी वाले सहानुभूति पूर्वक दृष्टिकोण अपनायें तो हिंदी के विकास की योजनाओं के चार चाँद लग जाएँगे।

[इस लेख के लिखने में हिंदी प्रचार का इतिहास (आंध्र) तथा रजत जयंती संस्मरण ग्रंथ (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र तथा बम्बई) आदि पुस्तकों से सहायता ली गई है। लेखक उनका हृदय से आभार मानता है।]

महाराष्ट्र में हिन्दी प्रचार की प्रगति

[डॉ० न० चिं० जोगलेकर, एम० ए०, पीएच० डी०, तथा
श्री मुरलीधर शहा, एम० ए०, पुणे विश्वविद्यालय]

महाराष्ट्र में हिन्दी प्रचार का मूल स्रोत

राष्ट्र भाषा के प्रचार का कार्य महाराष्ट्र में अपना एक विशेष महत्व रखता है। राष्ट्र भाषा राष्ट्रीय भावनात्मक एकता, सांस्कृतिक समन्वय और सहजीवन का एक श्रेष्ठ अंग है, इसे सारभूत रूप में महाराष्ट्र के संतों, कवियों और लोक नेताओं ने बहुत ही प्रथम समझ लिया था। महाराष्ट्रीय संतों की हिंदी रचनायें इसको सिद्ध करती हैं। पूना विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ० भगीरथ मिश्र और डॉ० रा० ना० मौर्य द्वारा संपादित "नामदेव-पदावली", "ग्रंथ साहब", "सर्वंगी", "मराठी संतों की हिंदी को देन" आदि पुस्तकों में नामदेव आदि संतों की हिंदी कृतियों के प्रमाण उपलब्ध हो जाते हैं। यह उस समय की बात है जबकि आधुनिक परिभाषा और धारणा के अनुसार बोध कराने वाला 'हिंदुस्थान' जैसा राष्ट्र लोगों के सामने न था। परंतु मातृभूमि, पितृभूमि और पुण्यभूमि भारतवर्ष की धार्मिक और मानवीय एकता की इकाई को इन लोगों ने आत्मसात् कर लिया था, इसे मानना ही पड़ेगा। इस दृष्टि से इन संतों की हिंदी कृतियाँ केवल महाराष्ट्र में ही प्रचारित नहीं हुईं बल्कि सारे भारतवर्ष में विशेषतः बनारस, पंजाब, प्रयाग, मथुरा, हरद्वार जैसे धार्मिक प्रदेशों और स्थलों में लोकमान्य होती रहीं। इसे हम महाराष्ट्र के हिंदी प्रचार का मूल स्रोत ही मानेंगे।

छत्रपति शिवाजी और अन्य भोसला नृपतियों ने तथा पेशवाओं ने अपनी साहित्यिक अभिरुचि तथा हिंदी प्रेम का परिचय राष्ट्र भाषा में रचना करने वालों को पुरस्कृत करके दिया है। जयराम पिंडे, भूषण जैसे ख्यातनाम कवि इस बात का भी प्रमाण उपलब्ध कर देते हैं। राज्य शासन के निमित्त भी अपने पत्र व्यवहारों में तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यों के लिये राष्ट्र भाषा का व्यवहार किया गया है। इसे प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है। अँग्रेजों के शासन काल की पराधीनता के अंधकार ने तथा विदेशी शासन की कड़ाई ने कुछ काल तक इस कार्य पर तिमिर-पटल भले ही डाल

दिया हो, पर यह स्थिति बनी नहीं रह सकी। लोकमान्य तिलक, पूज्य महात्मा गाँधी, स्वातंत्र्यवीर सावरकर आदि ने राष्ट्र भाषा के महत्व को बराबर समझा था। अत: उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से महाराष्ट्र में भी हिंदी के प्रचार और प्रसार की ठोस नींव डाली गई।

विशिष्ट व्यक्तिनेता और संस्थाओं का प्रचार कार्य

राष्ट्रीय जीवन में हिंदी के महत्व को स्वीकार करते हुए जो कार्य महाराष्ट्र में कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा हुआ वह कम गौरवपूर्ण कार्य नहीं है। लोकमान्य तिलक के 'केसरी' साप्ताहिक का हिंदी संस्करण भी उन दिनों निकलता था, जो महाराष्ट्र में किए गए हिंदी प्रचार को बल देने में सहायक सिद्ध हुआ। सन् १८९४ में श्री के० आ० पेठे ने 'राष्ट्र भाषा' नाम की एक पुस्तक लिख कर राष्ट्र भाषा हिंदी का समर्थन किया। 'लोकमान्य' जी की तो यह धारणा थी कि भारत में देश भक्ति और राष्ट्र-निष्ठा की भावना हिंदी के द्वारा उत्कट रूप में प्रकट हो सकती है। उनके इस विचार को बल देने वाले और कार्यान्वित करने वाले नेताओं में स्वातंत्र्यवीर सावरकर, पूना विश्वविद्यालय के कुलगुरु श्री न० वि० तथा काकासाहब गाडगील, श्री काका साहेब कालेलकर, स्वर्गीय पं० ग० र० वैशंपायन और पं० सातवलेकरजी विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना के पूर्व ही पूना में सन् १९३४ को स्व० पं० ग० र० वैशंपायन गुरू जी के प्रयत्नों से श्री न० वि० गाडगील जी के घर पर हिंदी प्रचार संघ की स्थापना की गई। महाराष्ट्र में देवनागरी लिपि में हिंदी का प्रचार करने वाली वह आद्य संस्था मानी गई है। इसके कार्यकर्त्ताओं में जो लगन, उत्साह तथा निस्वार्थ भाव से हिंदी प्रचार करने की कर्मण्यता देखी गई वह अन्यत्र दुर्लभ है। पूने में हिंदी प्रचार संघ ने जो ठोस कार्य किया उसके परिणामस्वरूप ही सन् १९४० में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन डॉ० संपूर्णानंद की अध्यक्षता में सुसंपन्न हुआ। आज महाराष्ट्र तथा पुणे में हिंदी प्रचार का कार्य करने वाले जो गणमान्य हिंदी के विद्वान विद्यमान हैं, उनमें प्राय: सभी हिंदी प्रचार संघ के कार्यकर्त्ता रह चुके हैं। हिंदी का अध्यापन, अध्ययन, अनुवाद, पुस्तकालय 'हिंद शक्ति' नाम की हस्तलिखित मासिका का प्रकाशन, हिंदी में वादविवाद, चर्चायें, व्याख्यान, आदि कार्यों के अतिरिक्त, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की परीक्षाओ में सम्मिलित होने वाले छात्र, छात्राओं की पढ़ाई

तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन की 'प्रथमा', 'मध्यमा' और 'उत्तमा' के वर्ग चलाने का कार्य इस संस्था के द्वारा चलता रहा । स्मरण रहे कि उस समय राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' 'वर्धा' स्थापित नहीं हुई थी । २० जुलाई ११३४ में श्री पं० नारायन शास्त्री बालावलकर जी के प्रयत्नों से कोल्हापुर में श्रीमद् दयानंद निःशुल्क हिंदी विद्यालय की स्थापना हुई थी । इसी तरह अहमद नगर, धुलिया और जलगाँव, नासिक आदि स्थानों में ऐसे ही प्रकार के प्रयत्न और कार्य होते रहे । इन सब के पीछे प्रेरणा स्वर्गीय पं० ग० र० वैशंपायन जी की थी, और मार्गदर्शन भी उनका था । हिंदी प्रचार की यह सूक्ष्म धारा आगे चल कर पर्याप्त रूप में विस्तृत और विकसित हुई ।

सन् १९३६ में वर्धा में 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई । इसके बाद महाराष्ट्र में श्री काकासाहेब कालेलकर और शंकरराव देव ने राष्ट्रभाषा के प्रचारार्थ परिभ्रमण किया और हिंदी प्रचारकों की एक परिषद आयोजित की गई । इन प्रयत्नों के फलस्वरूप 'अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना हुई । इसके अध्यक्ष थे श्री शंकरराव देव और मंत्री एवं संचालक थे श्री कृ० ज० धर्माधिकारी । अमलनेरके प्रताप सेठ जी ने भी तब हिंदी प्रचार के लिए छः हजार रुपयों का दान प्रदान कर दिया था । इस आर्थिक सहायता से हिंदी प्रचार सम्मेलन तथा विद्वानों के व्याख्यानों का कार्यक्रम संचालित हुआ, कई प्रचारक बनाये गये तथा उनको राष्ट्र भाषा के प्रचार का कार्य सौंपा गया । सन् १९४० में इस समिति का नाम 'महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' रखा गया और वह 'तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ' के अंतर्गत अपना प्रचार कार्य करती रही ।

सन् १९४६ से कुछ लोगों ने स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिये 'महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा' स्थापित की और अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया । महामहोपाध्याय प्रा० दत्तो वामन पोतदार इसके अध्यक्ष बने और श्री गो० प० नेने इसके संगठन मंत्री । समिति से सम्बंध-विच्छेद के बाद यह संस्था अपना कार्य स्वतंत्र रूप से करने लगी ।

'महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' (वर्धांतर्गत) को पुनः संगठित किया गया । प्रथम श्रीमती सोनुताई काले संगठन मंत्री नियुक्त हुईं । सन् १९४६ से पं० मु० डांगरे संचालक पद पर आसीन हुए । इनके सुयोग्य नेतृत्व में हिंदी प्रचार का कार्य जोरशोर से चलता रहा । लगभग ६०० प्रमाणित प्रचारकों, चार सौ परीक्षकों एवं पांच सौ केंद्र व्यवस्थापकों के सहयोग से समिति का प्रचार कार्य सुंदर ढंग से चल रहा है । लगभग साढ़े

पाँच लाख से भी अधिक लोगों ने हिंदी का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तथा प्रत्येक वर्ष लगभग पचीस हजार से भी अविक परिक्षार्थी महाराष्ट्र से वर्षा समिति की विभिन्न परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं। माननीय यशवंत राव चव्हाण, माननीय काका साहब गाडगील, कुलगुरु पूना विश्लविद्यालय तथा माननीय मधुकर राव चौधरी जैसे लोकमान्य नेताओं का समिति से सीधा सम्बन्ध है। यशवंत राव जी समिति के अध्यक्ष हैं और काका साहब उपाध्यक्ष। महाराष्ट्र भर समिति का कार्यक्षेत्र फैला हुआ है। पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में तथा हिंदी अध्यापन करने के लिये हिंदी अध्यापकों का निर्माण करने वाले विद्यालय भी समिति की ओर से चलाए जाते हैं। जयभारती पाठमाला का संपादन तथा 'जयभारती' पत्रिका का प्रकाशन समिति के उल्लेखनीय कार्यक्रमों में गिनाए जायेंगे। समिति के अपने 'पुरुषोत्तम ग्रंथालय', तथा 'राष्ट्रभारती ग्रंथालय' हैं, जिनमें लगभग पांच हजार और ढाई हजार हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकें संग्रहीत हैं। सन् १९५१ में एक विशेष प्रचार संमेलन श्री वियोगी हरि जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ, जिसमें आचार्य क्षितमोहन सेन को रु० १५०१ का 'महात्मा गाँधी पुरस्कार' उनको हिंदी साहित्य की सेवा के उपलक्ष में प्रदान किया गया।

'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार सभा' पूना का भी कार्य सन् १९३५ से अब तक महामहोपाध्य प्रा दत्तो वामन पोतदार जी और श्री गो० प० नेने जी के सुयोग्य नेतृत्व में उन्नति करता रहा है। सभा की अपनी परीक्षायें हैं, जो 'प्रबोध', 'प्रवीण', 'पंडित', 'पद्म', आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। अब तक लगभग बीस लाख परीक्षार्थी हिंदी प्रचार की परीक्षाओं का लाभ उठा चुके हैं और प्रति वर्ष दो लाख से भी अधिक परीक्षार्थी सभा की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं। 'राष्ट्रवाणी' पत्रिका का प्रकाशन, तथा कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन, सभा की अपनी विशेषतायें हैं। विशेष रूप से उल्लेखनीय राष्ट्र भाषा का ग्रंथालय है, जिसमें हिंदी की, पुरानी और नई, लगभग बीस हजार पुस्तकें संग्रहीत हैं। सभा का अपना निजी भवन, मुद्रणालय तथा 'हिंदी पुस्तक भण्डार' जैसा अपना विस्तृत पुस्तक बिक्री केंद है। महाराष्ट्र में दिवंगत श्री शं० दा० उपनाम अप्पा साहब चितले जो ने एक पुस्तक मराठी में लिखी थी, जिसका शीर्षक था "हिंदी हीच आमची राष्ट्र भाषा।" उनका यह कार्य विशेष संस्मरणीय माना जाएगा। इसके अतिरिक्त उनमें प्रचार कार्य करने का कौशल-संघटन और उचित मार्गदर्शन का नेतृत्व आदि विशेषतायें थीं, जिससे वे हिंदी प्रचार संघ, पुणें, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति,

76257

वर्धा, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग आदि से संपर्क रखते हुए अपना कार्य महाराष्ट्र भर करते रहे। यह नहीं भूलना चाहिये कि हिंदी प्रचार संघ की स्थापना राष्ट्रपिता बापू जी के कर कमल द्वारा २१ जून १९३४ को हुई थी। तब से अब तक पुणें में इन दो विभिन्न संस्थाओं द्वारा हिंदी प्रचार का कार्य अपने-अपने ढंग पर होता रहा है।

अन्य संस्थायें

"बम्बई हिंदी विद्यापीठ" और "ज्ञान लता मंडल" नामक दोनों संस्थाओं ने भी बम्बई तथा महाराष्ट्र में अपनी परीक्षाओं के द्वारा हिंदी का प्रचार और प्रसार करने में काफी सहायता पहुंचाई है। बम्बई हिंदी विद्यापीठ के लगभग १०० केंद्र हैं, और प्रतिवर्ष अस्सी हजार से भी अधिक विद्यार्थी प्रचार परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं। वर्धा प्रचार समिति का भी बम्बई में कार्य श्री कांतिलाल जोशी जी के नेतृत्व में योग्यता पूर्वक होता रहा है। ५ लाख से भी अधिक लोगों ने हिंदी का ज्ञान सभा के संपर्क से प्राप्त कर लिया है और लगभग ३० हजार परीक्षार्थी प्रतिवर्ष राष्ट्र भाषा की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं।

महाराष्ट्र माध्यमिक शालान्त प्रमाण पत्र परीक्षा में हिंदी को अनिवार्य रूप से स्थान मिल जाने के कारण भी हिंदी का प्रचार और प्रसार महाराष्ट्र भर होता रहा। "विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" नागपुर और मराठवाडा में भी "महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा समिति" और "महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा" दोनों के अपने-अपने प्रयत्नों से हिंदी का प्रचार और प्रसार बढ़ रहा है। नागपुर का कार्य पंडित हृषिकेष शर्मा जी के नेतृत्व में फलता-फूलता रहा है। एक और नई संस्था का अभी-अभी जन्म हुआ है, जिसका नाम है "महाराष्ट्र हिंदी विद्यापीठ" सातारा। इस संस्था के द्वारा आयोजित परीक्षाओं में पुणें से भी काफी अधिक संख्या में परीक्षार्थी सम्मिलित होते रहे हैं।

'-मराठवाडा विद्यापीठ," औरंगाबाद में डॉ० भास्कर तेलंग जैसे विद्वान हिंदी के अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान का निर्देशन करते रहे हैं। बम्बई में बम्बई विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों में अनेक हिंदी भाषी विद्वान कार्य कर रहे हैं जिनमें डॉ जगदीशचन्द्र जैन, डॉ० प्रभात, डॉ० पंडा और डॉ० भ्रमर के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम' के क्युरेटर डॉ० मोतीचंद्र का कार्य भी विशेष संस्मरणीय माना जाएगा।

सब से उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण घटना जो महाराष्ट्र में हुई है, वह है पूणे विद्यापीठ में हिन्दी विभाग की स्थापना। सन् १९६० में लखनऊ विश्वविद्यालय के रीडर डॉ० भगीरथ मिश्र को उस समय के कुलगुरु डॉ० कर्वेजी ने विशेष रूप से यहाँ हिंदी विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया।

अनुसंधान के नए आयाम

महाराष्ट्र में अन्यान्य व्यक्ति और संस्थाओं द्वारा चतुर्दिक फैलने वाली राष्ट्रभाषा को डॉ० मिश्र के आगमन से एक नया मोड़ मिलता है। संस्थाओं की प्रचार परीक्षायें जनसामान्य में हिंदी के प्रति रुचि तो अवश्य निर्माण कर रही थी, परंतु उनके द्वारा अनुसंधान एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर होती थी। एम० ए० तक हिन्दी का पठन-पाठन करने वाले जिज्ञासु अनुसंधान के क्षेत्र में किसी अनुभवी एवं पारंगत निर्देशक का अभाव महसूस करते थे। डॉ० मिश्र जी के आते ही यह अभाव दूर हो गया। आलोचना, इतिहास, काव्यशास्त्र, तुलनात्मक अध्ययन, भाषाविज्ञान, सभी क्षेत्रों में डॉ० मिश्र जी की गहरी पहुंच है। लगभग १७–१८ सालों का उनका हिंदी अनुसंधान में निर्देशन का अनुभव महाराष्ट्र के लिए बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ हुआ। साहित्य अपने सर्वांगीण रूप के साथ समय और स्थान के प्रभाव को ग्रहण करता है। अनुसंधान कार्य की उपयोगिता का पल्ला पकड़ कर चलना चाहिये। काल और देश की उपेक्षा वह नहीं कर सकता। महाराष्ट्र एक 'अहिंदी भाषी' प्रदेश है। परंतु यहाँ हिंदी की परम्परा बड़ी प्राचीन है। यह जान कर डॉ० मिश्र जी ने अपने छात्रों को शोध के ऐसे विषय दिए जिनसे यह परंपरा और भी स्पष्ट रूप से हिंदी जगत के सम्मुख उभरे और महाराष्ट्र की इस परंपरा को हिंदी जगत में सम्मान मिले। इसके अतिरिक्त ऐसे विषयों की उपयोगिता का भी एक दृष्टिकोण होता है। हिंदी आज नहीं परंतु छः सौ वर्ष पूर्व से ही अन्तर्प्रांतीय भाषा के माध्यम के रूप में व्यवहृत होती रही है, और महाराष्ट्र की हिंदी परंपरा इस बात की साक्षी है। इस तथ्य को जनसामान्य एवं हिंदी विद्वानों के सम्मुख रखने के लिए उस पर प्रामाणिक काम होना आवश्यक था। मराठी और हिंदी के अनेक साहित्य रूपों का तुलनात्मक अध्ययन इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रख कर प्रस्तुत करने का सुयोग्य निर्णय डॉ० मिश्र ने लिया। उदाहरणार्थ—

(१) हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन।

(२) भोसले राजाओं के आश्रित एवं सम्मानित कवि।
(३) अठारहीं शताब्दी के मराठी क्षेत्र के हिंदी पत्रों का अध्ययन।
(४) हिंदी और मराठी के क्रियापदों और मुहाविरों का तुलनात्मक अध्ययन।
(५) हिन्दी और मराठी के समस्यामूलक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन।
(६) मराठी संतों की हिंदी पदावली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन।
(७) एकनाथ और सूरदास के कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन।
(८) ज्ञानेश्वर और कबीर पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव आदि।

इसी प्रकार इनके द्वारा अन्य निर्देशित विषय आदि इस बात की साक्ष्य देते हैं कि महाराष्ट्र में दोनों भाषाओं (मराठी–हिंदी) के अनेक साहित्य रूपों का उच्च स्तर पर जो तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, वह अपने आप में न केवल प्रशंसनीय है वरन् अनुकरणीय भी है। पूना विश्वविद्यालय में डॉ० भगीरथ जी मिश्र के निर्देशन में प्रस्थापित 'हिंदी अनुसंधान मण्डल' भी अनुसंधान की दिशा में ठोस प्रगति कर रहा है। गत ४ वर्षों में अन्यान्य विषयों पर विद्यार्थियों, प्राध्यापकों एवं साहित्य प्रेमियों द्वारा संशोध-निबंध पढ़े गये। उन पर चर्चायें हुईं। 'हिंदी अनुसंधान मण्डल' साहित्य प्रेमी-प्रबुद्ध पाठकों में और लेखकों में भी अनुशीलन के प्रति एक नया लगाव जागृत करने में पर्याप्त मात्रा में सफल रहा।

अनुसंधान के क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों में बम्बई के डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० जैन, डॉ० प्रभात, डॉ० भ्रमर, डॉ० पंडा और डॉ० शर्मा, कोल्हापुर के डॉ० चंद्रलाल दुबे तथा नागपुर के डॉ० कमलाकाँत पाठक जी आदि विद्वान हैं। हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इन पारंगत विद्वानों के निर्देशन में महाराष्ट्र के हिंदी अनुसंधान कार्य को एक अत्यन्त सुव्यवथित एवं गंभीर रूप प्राप्त होगा जो उसके निम्नस्तर की शिकायत करने वालों के लिए एक अकाट्य उत्तर होगा। अनुसंधान क्षेत्र की पद्धति, उसका विज्ञान और प्रविधि (Methodology and Technique) पर भी पूना विश्वविद्यालय में विचार हो रहा है। इससे अनुसंधान कार्य में पारस्परिक सौहार्द्र, सहयोग एवं सामंजस्य प्रस्थापित होगा और एक उच्च स्तरीय वातावरण निर्माण हो जाएगा।

हस्तलिखित पोथियों का केन्द्र

बनारस, उदयपुर, जयपुर आदि की तरह महाराष्ट्र में पुणे शहर भी हिंदी हस्तलिखित पोथियों का केंद्र बनने जा रहा है। यों भी पुणे को दक्षिण भारत की काशी कहते हैं। पुणे के भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, डेकन कालेज और पुणे विश्वविद्यालय के जयकर ग्रन्थालय में अनेक हस्तलिखित पोथियाँ संगृहीत हैं। इन पर कार्य भी चल रहा है। पुणे विश्वविद्यालय में २०० से ३०० तक हस्तलिखित पोथियाँ हैं। जैन धर्म के भी अनेक अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ इनमें विद्यमान हैं। इनको डॉ० मिश्र ने स्वयं प्राप्त कर लिया था।

पुणे की ही तरह हस्तलिखित पोथियों का दूसरा केंद्र धुलिया है। धुलिया में राजवाड़े संशोधन मण्डल और समर्थ वाग्देवता मंदिर में प्रभूत हस्तलिखित पोथियाँ हैं। समर्थ रामदास की हिंदी रचनायें भी यहां पर मिलती हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महाराष्ट्र में हिंदी की प्रगति सभी क्षेत्रों में दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है। उसकी एक सुव्यवस्थित योजना है, यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के लिए उचित स्थान है और गत १५ वर्षों में हिन्दी भाषा लेकर परीक्षार्थियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। अन्यान्य प्रचार संस्थाओं में वार्षिक रिपोर्टें यह बताती है कि उनकी परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। महाराष्ट्र राज्य के बहुसंख्य सिनेमा घरों में हिंदी की प्रगति का संक्षिप्त लेखा-जोखा हमने यहां प्रस्तुत करने का प्रयास मात्र किया है। विस्तार भय के कारण कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश हम नहीं डाल सके हैं—इसका हमें हार्दिक खेद है।

असम में हिन्दी की प्रगति

(श्री देवेन्द्रनाथ 'प्रशान्त', गौहाटी)

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार भारत के सीमाप्रदेश असम में अपेक्षाकृत विलम्ब से हुआ। सन् १९२० में महात्मा गांधी के राजनीति में पदार्पण से देश भर में राष्ट्रीय जागृति की जो आँधी आई, उसने असम को भी झकझोर दिया और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लोहे से लोहा बजने लगा। गुलामी की प्रतीक विदेशी भाषा अंग्रेजी के स्थान पर एक सर्वमान्य राष्ट्रीय भाषा की माँग बुलन्द होने लगी और तभी हिन्दी की ओर ध्यान गया। असम के राष्ट्रीय पुरुषार्थ ज्योति लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्री बरदलै के तेजस्वी व्यक्तित्व में व्याप्त रचनात्मक तत्वों ने हिन्दी समर्थकों को खूब प्रभावित किया और उन्हीं की प्रेरणा से प्रदेश में हिन्दी प्रचार की नींव पड़ी। विदेशी भाषा अंग्रेजी के एकांकी दृष्टिकोण एवं कुत्सित भावनाओं ने श्री बरदलै के अन्दर एक चिनगारी प्रज्ज्वलित की व राष्ट्रोपयोगी शिक्षा प्रसार की दिशा में वह अंग्रेजी के विरुद्ध अग्रणी हुए। और तभी से असम के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को उनका भरपूर समर्थन रहा।

कहा जा चुका है कि महात्मा गांधी के प्रयत्नों से देश भर में राष्ट्रीय जागरण के साथ हिन्दी प्रचार का जो शंखनाद हुआ, उसकी जोरदार प्रतिध्वनि ने समूचे असम को जगा कर खड़ा कर दिया। लोकप्रिय बरदलै का रचनात्मक नेतृत्व प्राप्त ही हो चुका था; पर संगठित कार्य में काफी देर हुई और सन् १९३१ तक श्री अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी के प्रयत्नों से असम में बाकायदा हिन्दी समितियाँ स्थापित होने लगीं। हिन्दी प्रचार आन्दोलन को जनता की सहानुभूति भी प्राप्त हुई और फिर बाबा राघवदास जैसे जनसेवियों के आगमन व उनके उद्‌बोधक भाषणों से हिन्दी को पर्याप्त बल मिला। सन् १९३९ में बरदलै ने असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति स्थापित की। सुप्रसिद्ध गांधीवादी विचारक श्री काका कालेलकर भी असम आये और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की जनप्रियता में वृद्धि होने लगी। यहीं स्वर्गीय कमल देव नारायण का सहयोग भी प्राप्त हुआ व हिन्दी प्रचार का कार्य तीव्र वेग से बढ़ने लगा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अन्तर्गत काफी

कार्य हुआ। सन् १९५० में वर्धा समिति के कार्य का पुनर्गठन प्रारम्भ हुआ और श्री छगनलाल जैन प्रांतीय संचालक नियुक्त हुए। हिन्दी प्रचार का कार्य इस प्रकार ठीक-ठीक चल रहा था। किन्तु बाद में परिस्थितियां कुछ ऐसी बनीं कि श्री जैन को वर्धा समिति से छुटकारा लेना पड़ा और वह असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहयोगी बन गये व साहित्य मंत्री के रूप में कई वर्ष कार्य किया। किन्तु कुछ समय बाद वर्धा समिति का कार्य पुनः चालू हुआ तथा श्री जितेन्द्र चौधुरी को उसका संचालक नियुक्त किया गया। अब असम में वर्धा नियंत्रित असम राज्यिक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति दोनों का कार्य समानांतर चलने लगा। हजारों छात्र आज हिन्दी की परीक्षाओं में बैठते हैं। असम राष्ट्रभापा प्रचार समिति के सभापति प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री विमला प्रसाद चलिहा हैं। समिति का एक व्यवस्थित प्रेस है जिसके अनेक प्रकाशन भी हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अतिरिक्त असम में यत्र-तत्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा केन्द्र भी हैं। गौहाटी, तिनसुकिया, गोलाघाट इत्यादि में दर्जनों छात्र उनकी परीक्षाओं में बैठते हैं। विगत १९६१ की गर्मियों में तिनसुकिया में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। इस अवेसर पर डॉ० सम्पूर्णानन्द, स्व० गोपाल सिंह नेपाली, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क प्रभृति साहित्यकों का आगमन भी हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भी अधिवेशन हुआ व अब पुनः उसे सक्रिय करने के संबंध में प्रयत्न जारी हैं। प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी इधर असम में दिलचस्पी ले रहा है और हिन्दी के अन्य क्षेत्रों में भी असम के अग्रसर होने की आशा है।

असम से इस समय हिन्दी के कई पत्र भी प्रकाशित होते हैं, किन्तु किसी भी प्रभावशाली हिन्दी दैनिक के न होने से हिन्दी भापियों की आवाज को आपेक्षित बल नहीं मिल पा रहा है। पर हिन्दी प्रचार के राष्ट्रीय आन्दोलन ने असम में जैसे-जैसे अपना स्वरूप फैनाया, वैसे-वैसे ही हिन्दी-अहिन्दी भाषियों की साहित्यिक सांस्कृतिक चेतना भी बलवती होने लगी। समाचार पत्र सामाजिक-राजनीतिक जागृति के सूत्रधार होते हैं। अतः असम में हिन्दी-पत्रों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। किन्तु बहुत से पत्र अकाल ही मुरझा गये। वैसे श्री विश्वनाथ गुप्त के सम्पादकत्व में तिनसुकिया से प्रकाशित होने वाले 'अकेला' ने बहुत हद तक मरुभूमि में मरुउद्यान का काम किया। श्री रजनीकांत चक्रवर्ती के सम्पादन में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मासिक "राष्ट्रसेवक" ने हिन्दी-असमिया एकता की दिशा में अच्छा काम

किया है। इधर विगत ६ वर्षों से गौहाटी से श्री छगनलाल जैन का साप्ताहिक 'पूर्व ज्योति' बड़े धड़ल्ले से निकल रहा है। पहिले श्री जैन ने इसे मासिक रूप में तीन साल तक चलाया था। 'पूर्व ज्योति' से अब आशा बंधने लगी है कि विशेष प्रयत्न करने पर हिन्दी के पत्र असम में सफलता पूर्वक चल सकते हैं। असम हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में उपस्थित लम्बा गतिरोध भंग हो चुका है और आगे की सम्भावनाएँ क्रमशः स्पष्ट होने लगी हैं। इधर 'देशहित' एवं 'अन्तर्द्वन्द्व' नामक दो साप्ताहिक भी प्रकाश में आये हैं।

राष्ट्रभाषा के स्थान पर हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने के अनन्तर उसके समर्थकों का कर्तव्य है कि वे उसे अब समृद्धशाली व सम्पन्न बनाने की ओर अग्रसर हों। और फिर हिन्दी के क्षेत्र में असम के सम्मुख विपुल सम्भावनाएँ हैं। अन्य प्रदेशों की तरह यहाँ घातक प्रतिस्पर्धाएँ उछालें नहीं ले रहीं और असमिया जनता की सहानुभूति भी हिन्दी की ओर हैं। बंगाल के समान यहाँ हिन्दी विरोधी मनोभाव नहीं। हिन्दी सीखने की प्रवृत्ति असमिया जनता में घर कर रही है। राष्ट्रलिपि में असमिया की लोकप्रियता निरन्तर वृद्धिमान है और श्री विष्णु राम मेधी जैसे लोग भी देवनागरी लिपि की महत्ता प्रतिपादित करते रहे हैं। असम में श्री नीलमणि फुकन जैसे वयोवृद्ध एवं प्रो० परेशचन्द्र देव शर्मा जैसे तरुण साहित्यकार भी हैं जो अध्ययन एवं अनुभव की दोहरी ज्योति से राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रचुर सेवा कर रहे हैं व इनका उदाहरण निरन्तर संक्रामक बनता जाता है। असमिया लेखकों की नई पीढ़ी भी हिन्दी की ओर आकृष्ट हो रही है, यह सचमुच शुभ लक्षण हैं। आशा है, हिन्दी-असमिया का यह विकासोन्मुख संगम पूर्वांचल में नवीन सांस्कृतिक जागरण की सृष्टि करेगा। वैसे असम हिन्दी के लिए अब मरुभूमि नहीं। अगर पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार सोच-समझ कर चला गया एवं प्रचार के क्षेत्र में पर्याप्त दूरदर्शिता बरती गई तो चारों ओर हरियाली ही हरियाली नजर आयेगी। लगनशील साहित्यकार पं० चन्द्र भूषण शर्मा "भूषण" काफ़ी अरसे से हिन्दी की सेवा में अग्रणी हैं। आप की प्रकाशित रचनाओं में 'सीमान्त सिन्दूर', 'स्वप्न तिलक', 'कहानी की होली', 'प्रेयसी' प्रमुख हैं। पर इधर असम के हिन्दी लेखकों की चर्चा करते समय जिस लेखक का नाम कलम की नोक पर आना चाहिए, उसने अपनी सूझ-बूझ व प्रतिभा को साजने- सँवारने का कभी उद्योग ही नहीं किया। 'शंखनाद' के भूतपूर्व सम्पादक श्री शंकर लाल शर्मा हिन्दी के ऐसे मौलिक शैलीकार हैं जो अपनी वीतराग वृत्ति के कारण आज के कोलाहल में बिलकुल दबे-दबे से

मालूम पड़ते हैं। उनके 'माधुरी', 'अन्तर्द्वन्द्व' व 'राष्ट्र चिन्तन' बहुत पहिले प्रकाशित हुए जो अपनी विशिष्ट शैली के कारण श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। काफी अरसे से शर्मा जी ने कुछ लिखा नहीं, किन्तु उनसे अभी भी हमें बड़ी आशाएँ हैं।

आज असम में हिन्दी भावियों की संख्या पर्याप्त है, किन्तु उनका अधिकांश समय आजीविका की पूर्ति में ही लग जाता है। अतः साहित्यिक प्रगति में विशेष प्रौढ़ता अभी तक परिलक्षित नहीं हो पा रही। फिर असम के वायुमण्डल में हिन्दी के लिए अपेक्षित जागरण-भावना भी नहीं। तभी नई प्रतिभाओं को आगे बढ़ने के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं बन पाता। बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश इत्यादि में हिन्दी के लिए जो उछाल व प्रेरणा होती आती है, उसका हमारे इस सीमा प्रदेश में बिल्कुल अभाव है। तभी यहाँ का साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण विशेष उत्साहप्रद नहीं। फिर भी हिन्दी साहित्य साधना के क्षेत्र में असम की प्रगति निराशाजनक नहीं है। अन्य प्रान्तों के अनेक हिन्दी साहित्यकार भी आज असम में बस गए हैं और इनका योगदान भी महत्वपूर्ण है। श्री नवारुण वर्मा भी बहुत समय से हिंदी में लिख रहे हैं। 'लाचित बड़ फुकने', 'युगदेवतां शंकर देव' एवं 'सती जयमती' उनके उल्लेखनीय काव्य ग्रंथ है। श्री नवारुण जी सोचते हैं और लिखते हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन भी बड़े त्याग-तप का है। इस तरुण साहित्यिक से हिंदी की श्री वृद्धि में विशेष योगदान आपेक्षित है। सर्व श्री रवीन्द्र द्विवेदी 'कान्त', ब्रजकिशोर सिंह 'ब्रजेश', प्रो० हीरालाल तिवारी एवं 'प्रदीप' की रचनाएं भी पत्र-पत्रिकाओं में जब–तब प्रकाशित होती रहती हैं। सर्व श्री रामानन्द मिश्र 'विकल', श्री गोपाल सिंह 'शान्त', श्री डी० के० 'अरविन्द', ओंकार शर्मा 'कृष्ण', 'शलभ', 'शिव' के लेखादि भी यत्र-तत्र देखने में आते हैं। श्री शिव-सिंहासन मिश्र ने असम का इतिहास और भूगोल प्रस्तुत किया है। पर खेद है कि फिर लेखनी को विराम दे दिया। इधर असमिया अंग्रेजी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत हुए हैं। श्री लोकनाथ भराली ने असमिया के प्रसिद्ध कलाकार श्री वीरेन महाचार्य की रचना 'मां' का अनुवाद उपस्थित किया है। श्री गोपाल माहेश्वरी का अनुवाद कार्य भी महत्वपूर्ण है। 'रेड रिवर एंड ब्ल्यू हिल्स" का अनुवाद 'लौहित्य और नीलाचल' भी प्रकाश में आ चुका है।

असम के हिन्दी साहित्यकारों में श्री छगनलाल जैन का नाम सर्वप्रथम आता है। अपने कर्मठ जीवन के प्रारम्भ से ही आप साहित्य सेवा

और हिन्दी प्रचार के कार्य में एकान्त भाव से निरन्तर संलग्न हैं। हिन्दी-असमिया एकता के क्षेत्र में आपने जो काम किया, वह नींव की पत्थर की तरह है। उनका "राष्ट्रभाषा अभिधान" हिन्दी-असमिया का सर्वप्रथम शब्दकोष है जिसके आधार पर आगे बहुत कुछ हो सकता है। 'हंसते-हंसते जीना', (कहानी संग्रह), 'इन्सान की खोज' (ध्वनि-नाटक) 'राह और खंड', और 'संघर्ष' (नाटक) आपकी प्रमुख रचनाएं हैं। श्री जैन हिन्दी, असमिया, बंगला, राजस्थानी एवं अंग्रेज़ी भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। असमिया भाषा में भी कहानी संग्रह व नाटक लिखे हैं।

हिन्दी-असमिया साहित्य के क्षेत्र में मील के पत्थर की तरह आपने उद्बोध व संकेत स्थापित किये हैं। आकाशवाणी गौहाटी से भी आपके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। फौजी भाइयों के लिए भी श्री जैन के कार्यक्रम विशेष दिलचस्प हैं। रेडियो पर प्रो० नन्दकिशोर सिंह और श्री सूर्यनारायण सिंह के प्रोग्राम भी उल्लेखनीय हैं।

खेद है कि स्वधीनता के उपरान्त आज भी भारत के अन्य प्रान्तों से असम के पास सम्पर्क का कोई सशक्त माध्यम नहीं। वैसे कोई उच्चि कोटि का हिन्दी मासिक ही इस अभाव की पूर्ति कर सकेगा। पर यहाँ के हिन्दी साहित्यिकों को भी इस ओर अग्रसर होना चाहिए। तभी अन्तर्प्रान्तीय साहित्यिक-सांस्कृतिक सम्पर्क को बल मिलेगा व असम के मौलिक विशेषत्व को अखिल भारतीय रूप दिया जा सकता है। आज भारत के अन्य प्रदेशों में असम के बारे में उत्सुकता जोर पकड़ रही है और प्रदेश के हिन्दी लेखक ही इस दिशा में तत्पर-जागरूक हो सकते हैं। हिन्दी-असमिया को नजदीक लाना भी सम्प्रति आवश्यक है, पर इस ओर दोनों ही भाषाओं के लेखकों को क्रियाशील होना चाहिए।

अन्य प्रदेशों में पिछले दिनों इधर हिन्दी के विरुद्ध जो तूफान उठा, उसके पीछे जैसे भी राजनीतिक कारण क्यों न रहे हों, भारत का यह सीमा प्रदेश असम भी उससे अप्रभावित न रहा। असम सरकार के रुख में भी शिथिलता दिखी व हिन्दी का 'केस' कमजोर पड़ने लगा। असम में अंग्रेज़ी के पक्ष में वातावरण कुछ उग्र दिखता है। हमें आज अंग्रेजी हटानी है। किन्तु गौहाटी विश्वविद्यालय में ही अभी तक हिन्दी विभाग नहीं खुला है। असम में अगर हिन्दी को जनप्रिय बनाना है तो हिन्दी लेखकों का दायित्व विशेष है। आसन्न विदेशी हमले के खतरे को देखते हुए भी हिन्दी साहित्यकारों को आज जाग जाना है। अगर हिन्दी वाले असमिया के सहयोग से सही दिशा में गतिमान हुए तो सफलता निश्चित है और प्रादेशिक सरकार की बढ़ती उपेक्षा वृत्ति भी तब आपसे आप निस्तेज हो जायगी।

पंजाब और हिन्दी

(श्री रघुनन्दन शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, चण्डीगढ़]

स्वतन्त्रता के पश्चात् पंजाब में भाषा की समस्या कुछ जटिल रूप पकड़ गयी। स्वतन्त्रता के पूर्व यहाँ उर्दू का प्रचलन था। सरकारी दफ्तरों, अदालतों और स्कूलों की प्रथम भाषा उर्दू थी। प्रायः प्रत्येक बच्चा अपनी शिक्षा उर्दू अक्षरों से प्रारम्भ करता था। प्रायः समूचा पंजाव उर्दू-दाँ था। पंजाबियों के निजी काम, घरेलू हिसाब-किताब, चिट्ठी-पत्री तक भी प्रायः उर्दू में ही चलते थे। भाषा, व्याख्यान, सरकारी विज्ञप्तियां, सूचनाएं, व्यापारी इश्तहार और राजनैतिक प्रचार सब कुछ उर्दू में ही होता था। अखबार और रिसाले भी अधिकतर उर्दू में ही छपते और पढ़े जाते थे। हिन्दी और पंजाबी प्रायः स्त्रियाँ, पुराने ढंग की पाठशालाओं और धार्मिक क्षेत्रों में ही सीमित थीं। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ से आर्यसमाज और सिंह सभा के आंदोलन हिन्दी और पंजावी को कुछ-कुछ पुष्टि देने लगे थे। परन्तु इनके संचालक और कार्यकर्त्ता स्वयं अपना काम उर्दू में ही करते थे और इन का प्रचार-कार्य और प्रचार-साहित्य भी प्रायः उर्दू में ही होता था। दोनों ही संस्थाओं के मुखपत्र—**आर्य गजट** और **खालसा समाचार**—भी उर्दू में ही निकलते थे। प्रचार और प्लेटफार्म की भाषा भी अधिकतर उर्दू ही होती थी।*

हाँ, एक बात अवश्य थी। उर्दू के विरुद्ध हिंदी और पंजावी के समर्थक मिलकर काम करते थे। उर्दू को पदच्युत करने के लिए दोनों ने साझा फ्रंट जैसा वना रखा था। सरकारी संरक्षण प्राप्त करने के लिए दोनों पूरे सहयोग से संघर्ष करते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उर्दू का एक दम बहिष्कार कर दिया गया और उसके स्थान पर हिंदी और पंजाबी के आरूढ़ करने के यत्न जारी हुए। प्रकट है कि पहले उर्दू के विरुद्ध जहाँ ये दोनों दल

---

* बींसवी सदी के तीसरे दशक के प्रारम्भ में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। उसकी सूचना के विज्ञापन भी उर्दू में छप कर लाहौर की दीवारों पर चिपकाये गए थे। इस अधिवेशन का कार्य-क्रम भी उर्दू में छापा गया था।

मिल कर कार्य करते थे, अब उसका स्थान ग्रहण करने के लिए आपस में ही उलझ पड़े। पहले झगड़ा हिंदी-उर्दू का था। अब वह 'हिंदी-पंजाबी' का रूप पकड़ गया। इन दोनों भाषाओं की समस्या अपने असली रूप में जटिल नहीं, तथापि राजनैतिक स्वार्थों के लिए इस में जटिलता और विकटता उत्पन्न करने की पूरी कोशिश की गई।

यह ठीक है और स्वाभाविक भी कि पंजाब की अधिकतर पंजाबी भाषी है। पंजाबियों को अपनी भाषा से सहज प्रेम है। वे माँ के दूध के साथ ही इसे सीखते हैं। हिंदी, उर्दू, अँग्रेजी आदि इतर भाषाओं को पढ़ते हुए भी वे अपनी प्यारी बोली को किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं। फिर भाषा सम्बन्धी झगड़े का कोई आधार नहीं दीखता। झगड़ा तब पैदा हुआ जब पंजाबी भाषियों पर सरकारी तौर से 'गुरमुखी पाठी' बनने का बोझ भी लादा जाने लगा। पंजाबी उनकी बोल-चाल की भाषा है। उसे वे शुरू से ही निजी सुविधा के अनुसार उर्दू, देवनागरी, टाकरी, लड़े आदि स्थानीय लिपियों में लिखते जा रहे थे। पंजाब के मुसलमान, ईसाई और उर्दू-रवां हिंदू भी उसे फारसी लिपि में लिखते-पढ़ते थे। प्रगतिशील हिंदू जनता उसे देवनागरी में लिखती थी। पंजाबी गीतों, क़िस्से, कहानियों की हजारों पुस्तकें फारसी लिपि में छपतीं और पढ़ी जाती थीं। आर्य समाज के बीसियों भजन, ट्रैक्ट और पैंफ्लेट देवनागरी में छपते थे। इन पंक्तियों के लेखक के घरों में बुजुर्गों की अनेक हस्तलिखित पंचाबी पुस्तकें टाकरी लिपि में लिखी मौजूद हैं। पंजाबी के लिये गुरमुखी लिपि का प्रयोग सिक्ख जनता तक ही सीमित था। पंजाब विश्वविद्यालय (लाहौर) में पंजाबी की परीक्षायें—गुरुमुखी, फारसी और देवनागरी—तीनों ही लिपियों में हुआ करती थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् यहाँ के पंजाब विश्वविद्यालय ने भी यही क्रम अपनाया, किंतु एक-दो वर्ष बाद ही फारसी और देवनागरी लिपि में पंजाबी की परीक्षा बन्द कर दी गई और पंजाबी के लिए एक मात्र गुरुमुखी लिपि को ही सरकारी तौर पर मान लिया गया।

कहना न होगा कि 'पंजाब' और 'पंजाबी' क्षेत्रीय नाम हैं। इनका संकेत प्रान्त, प्रदेश या भूगोल पर अवलम्बित है। पंजाबी निःसन्देह क्षेत्रीय भाषा है, परन्तु 'गुरमुखी' क्षेत्रीय लिपि कभी नहीं रही, न इसका सांकेतिक अवलम्ब किसी भू-भाग या प्रान्त से कोई सम्बन्ध रखता है। इसका प्रयोग एक सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित था। पंजाबियों का पंजाबी भाषा को

अपनाना नैसर्गिक है, परन्तु गुरुमुखी को क्षेत्रीय लिपि मानना अस्वाभाविक है। पंजाबी जहाँ कहीं भी हैं, उन्हें पंजाबी भाषा से अगाध प्रेम है। पाकिस्तान के पंजाबी भी अपनी भाषा के लिए प्रबल आन्दोलन चला रहे हैं। वहां पंजाबी साहित्य और पत्रिकायें भी पुष्कल मात्रा में रची और छापी जा रही हैं। पर वे लोग अपनी सुविधा के अनुसार पंजाबी को फारसी लिपि में ही लिखते हैं। पंजाबी के लिए एक मात्र गुरुमुखी लिपि कभी स्वीकार नहीं की गई।

वस्तुत: किसी भी क्षेत्रीय भाषा को किसी एक लिपि-विशेष से विवाह सूत्र के समान जकड़ देना किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं। इससे भाषा बाहुल्य के साथ लिपि बाहुल्य की समस्या भी खड़ी हो जाती है जो इस जटिलता को और भी जटिलतर बना देती है। इस से देश की राष्ट्रीय एकसूत्रता को अप्ररिहार्य क्षति पहुंचती है। महात्मा गांधी जी ने इस विषय पर अपने विचार यों प्रकट किए हैं :—

"एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र की भाषा सीखना चाहते हैं, तो लिपि भेद उनके इस पुनीत उद्योग में रोड़े अटकाता है। योरप में बहुत से राष्ट्र हैं, परन्तु वे सब एक ही रोमन लिपि अपनाये हुए हैं। भारतवर्ष एक राष्ट्र होने का दावा करता है और है भी, तो यहां लिपि की समानता क्यों न हो। अतएव ऐसे सुधार आंदोलन की अतीव आवश्यकता है जिससे प्रान्तों के मध्य जन-संपर्क की मात्रा बढ़े। हमारे देश में अधिकांश जन निरक्षर है। रूढ़ि या प्रमाद वश उन पर लिपियों की बहुलता लादे रहने देना नितान्त घातक है।"

पंजाब अहिंदी प्रान्त ?

सदियों तक यहाँ उर्दू की प्रबलता रहने कारण कई लोग भ्रम वश पंजाब को 'अहिन्दी प्रान्त' कह देते हैं। परन्तु यह धारणा सर्वथा निर्मूल है।* तथ्य यह है कि उर्दू की पृष्ठ-भूमि ने ही वस्तुत: हिन्दी को पनपने के लिये यथेष्ट क्षेत्र तैयार कर दिया है। मेरे विचार में तो उर्दू की प्रधानता ने ही पंजाब को पूर्ण रूप से हिंदी प्रान्त बना दिया है। भाषा की दृष्टि से आखिर

---

* विशेष जानकारी के लिये लेखक की पुस्तकें **पंजाब में हिन्दी की प्रगति** (१९४३) के पृष्ठ ३-८ देखिये। प्रकाशक : काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

उर्दू और हिंदी एक ही भाषा है। इनमें भेद केवल लिपि और शब्दावली के अनुपात का ही है। इसलिये पंजाबियों के लिए, यहाँ के अनपढ़ देहातियों के लिए भी, हिन्दी कोई अजनवी या अनजानी भाषा नहीं है। वे बराबर इसे बोलते और समझते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि जहाँ पहले फारसी अक्षर सीखने पढ़ते थे, अब देवनागरी अक्षर सीखने होंगे। शब्दावली का अनुपात तो स्वयं अपना स्तर पकड़ लेगा। देखा गया है कि महात्मा गाँधी, श्री जवाहरलाल नेहरू और दूसरे नेताओं के व्याख्यान सुनने के लिए लाखों अनपढ़ देहाती भी आते थे और वे उनके हिन्दी या हिंदुस्तानी भाषणों को बराबर सुनते और समझते थे। भाषा विज्ञान के अनुसार बोल लेना और समझ सकना ही भाषा की कसौटी है। पंजाब के सम्बन्ध में विख्यात भाषा-वैज्ञानिक श्री बीम्स महोदय के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—"पारस्परिक संपर्क में जो भाषा समझी-बोली जा सके, वही उस क्षेत्र की भाषा मानी जानी चाहिए ……… अधिकांश पंजाबी तुरन्त ही हिंदी समझ लेते हैं और बहुत शीघ्र उसे सही-सही बोलना भी सीख जाते हैं।"

वैसे भी पंजाब का एक पुष्कल भाग शुद्ध हिंदी भाषी है। अंबाला, हरियाणा, कांगड़ा और होशयारपुर के कुछ भाग पंजाबी भाषी नहीं हैं। तथाकथित पंजाबी भाषी प्रदेश में भी आधे से अधिक जनसंख्या हिंदी लिखती-पढ़ती है और हिन्दी की उग्र समर्थक है। सैकड़ों शिक्षण संस्थायें और बीसियों प्रचार सभायें वर्षों से अंग्रेजी राज्य के समय से ही हिन्दी का प्रचार कर रही हैं। यहां की अशिक्षित और अनपढ़ जनता भी हिंदी खूब समझती और बोल भी लेती है। अतः किसी भी दृष्टि से पंजाबी को 'अहिन्दी प्रान्त' कहना युक्ति-युक्त नहीं है।

पंजाब द्वि-भाषी ?

जैसा कि ऊपर बताया गया है, पंजाब का तथाकथित पंजाबी भाषी क्षेत्र भी जिसे पंजाबी क्षेत्र या पंजाबी सूबे का नाम दिया जा रहा है, समूचे रूप में हिन्दी और पंजाबी दोनों को ही बराबर बोलता, सुनता और समझता है। राजनैतिक स्वार्थों की खातिर 'द्विभाषिता' की आड़ में भले ही इस के दो टुकड़े कर के एक क्षेत्र को शुद्ध पंजाबी सूबा बनाने की चेष्टा की जाय, परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। हिंदी के अनेक प्रख्यात लेखक और कलाकार श्री उपेन्द्र नाथ अश्क, श्री यशपाल, श्री अज्ञेय आदि इसी पंजाबी क्षेत्र के अधिवासी हैं। सच्चाई यह है कि पंजाबी भाषी क्षेत्र का प्रत्येक

जिला, प्रत्येक तहसील, प्रत्येक नगर और गांव, प्रत्येक गली और मोहल्ला, प्रत्येक परिवार और प्रत्येक व्यक्ति द्विभाषी है और हिन्दी और पंजाबी दोनों को जानता, बोलता और समझता है। दोनों भाषाओं के हित और देश के लाभ की दृष्टि से इस तथ्य को इसी रूप में मानना होगा।

स्वतन्त्रता के पश्चात्

स्वतन्त्रता के बाद सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति का न निर्धारण विस्पष्ट था और न उस का प्रयोग सबल। निर्धारण और प्रयोग दोनों ही शिथिल और दुर्बल थे। संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान लिया गया, परन्तु उसको पुष्ट और सम्पन्न करने के लिये १५ वर्ष की अवधि निश्चित की गई। साथ ही १४ अन्य भाषाओं को क्षेत्रीय भाषा माना गया और उन्हें भी विकसित और प्रफुल्लित करने की नीति अपनाई गई। इस के लिए समय-समय पर कई कमेटियां और आयोग बनाए गए जिनकी सिफारिशों में प्रायः एक-वाक्यता का अभाव और एकांगिता पाई जाती है। अनेक नेताओं के परस्पर विरोधी मन्तव्य भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। वस्तुतः हिन्दी को समृद्ध बनाने की दिशा में ईमानदारी से कोई ठोस पग नहीं उठाया गया। परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीयता का मोह हिन्दी का प्रतिद्वन्द्वी बन कर रह गया। इधर पंजाब में ब्रिटिश राज्य के समय में भी हिन्दी को जो अधिकार प्राप्त थे, उन्हें भी उससे छीनने की चेष्टायें होने लगीं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वतन्त्रता के बाद पंजाब में उर्दू का एकदम बहिष्कार कर दिया गया और उसके स्थान पर हिन्दी और पंजाबी को आरूढ़ करने की नीति अपनाई गई। प्रयोज्यता की दृष्टि से यह परिवर्तन इतना सुगम नहीं था। इस की पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि आम जनता जो अंग्रेजी राज्य के समय में हिन्दी की समर्थक थी और हिन्दी प्रचार के लिए संस्थायें बना कर पूरी लगन से कार्य करती थी, अब उसका जोश कुछ ठंडा पड़ गया। कुछ तो इस विचार से सन्तुष्ट हो गए कि अब तो हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गई है और इस के लिए अब उन्हें कुछ भी करना शेष नहीं रहा। अब यह काम सरकारी मशीनरी स्वयं कर लेगी। पर अधिकांश कारण यह था कि उर्दू से चिरपरिचित और चिरअभ्यस्त ये लोग मन-ही-मन यथा पूर्व की नीति से चिपके रहना चाहते थे। इस परिवर्तन से उन्हें डर था कि उनकी अपनी स्थिति खतरे में पड़ जायगी। अब नए सिरे से हिंदी सीखने और उसमें पारंगता प्राप्त करने की आफत में वे लोग नहीं पढ़ना चाहते थे। उर्दू-दाँ अध्यापक, क्लर्क, पटवारी, वकील या मुंशी—कोई भी इस परिवर्तन का

र्दिक स्वागत करने को तैयार न था। इस प्रकार उर्दू के बहिष्कार की म प्रतिक्रिया साधारणतया हिन्दी प्रेम भावना की आंशिक हत्या के रूप में ट हुई।

प्रयोज्यता की दृष्टि से सरकारी दफ्तरों, अदालतों और दूसरे स्थानों र तो यथापूर्व’ की नीति चलने दी गई, परन्तु स्कूलों में उर्दू के स्थान पर ी-पंजाबी तत्काल जारी कर दी गई।

पंजाब में पहली स्वतन्त्र मिनिस्ट्री डा० गोपीचन्द जी की बनी थी। होंने यह नीति अपनाई कि पंजाब का प्रत्येक बालक चाहे जिस भाषा हिंदी या पंजाबी—में अपनी शिक्षा प्रारम्भ कर सकता है; हाँ, तीसरी क्षा के बाद हिंदी वालों को पंजाबी और पंजाबी वालों को हिन्दी अवश्य नी होगी। उद्देश्य यह था कि प्रत्येक पंजाबी बालक एक भाषा का विशेषज्ञ र दूसरी का अभिज्ञ बन जाय। परन्तु यह नीति बहुत दिन तक नहीं चलने यी। कुछ राजनीतिक उथल-पुथल के बाद दूसरी मिनिस्ट्री श्री भीमसेन च्चर की बनी। उन के समय में प्रसिद्ध सूत्र ‘सच्चर’ फार्मूला का निर्माण आ। इसके अनुसार पंजाब के हिन्दी क्षेत्र और पंजाबी क्षेत्र दो अलग प्रदेश ने गए। हिंदी क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी से और पंजाबी क्षेत्र में जाबी से शुरू करने की व्यवस्था की गई। साथ ही हिंदी के लिए देवनागरी ौर पंजाबी के लिए एक मात्र गुरुमुखी लिपि का प्रयोग निश्चित कर दिया या। स्वभावतः ही पंजाबी क्षेत्र के हिन्दी प्रेमी इस से असन्तुष्ट हुए। ग्रेजी राज्य में भी उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा हिन्दी से प्रारम्भ करने की विधा थी। सच्चर फार्मूला से वह भी छिन गई। निदान सर टेकचन्द, सर ोकलचन्द्र नारंग, गोस्वामी गणेशदत्त आदि कतिपय हिंदी नेताओं का एक डल पंजाब के राज्यपाल तथा केन्द्रीय नेताओं से मिला। परिणामस्वरूप च्चर फार्मूले में कुछ छोटे-मोटे संशोधन कर दिए गए, किंतु मूल आधार ही रहा। भाषा के आधार पर पंजाब के दो क्षेत्र और पंजाबी के लिए क मात्र गुरुमुखी लिपि का प्रयोग। कहना न होगा कि स्कूलों में भी यह ार्मूला कई वर्ष तक पूरी सफलता से चालू न हो पाया। सांप्रदायिक संस्थाओं में पनप कर इसने एक प्रकार से सांप्रदायिकता को ही तीव्रता दी।

पंजाब विश्वविद्यालय का योगदान

इधर पंजाब विश्वविद्यालय ने भी पंजाबी के लिए एक मात्र गुरुमुखी लिपि को स्वीकार कर लिया, परन्तु अपने पाठ्यक्रम में ऐसी व्यवस्था कर दी

जिससे यूनिवर्सिटी का प्रत्येक विद्यार्थी हिंदी-पंजाबी दोनों को ही यथारुचि पढ़ सके—एक को अनिवार्य तो दूसरी को ऐच्छिक विषय के रूप में। विज्ञान आदि इतर विषयों के विद्यार्थियों के लिए भी हिन्दी-पंजाबी आदि का 'आनुषंगिक-ऐच्छिक पत्र रखा गया।

स्वतन्त्रता से पूर्व यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में—हिन्दी, पंजाबी और उर्दू—तीनों ही भाषाओं को कोई विशेष स्थान प्राप्त न था। बहुत संघर्ष के बाद इन भाषाओं की अलग परीक्षायें रखी गईं और एफ० ए० तथा बी० ए० में एक आनुषंगिक-ऐच्छिक पत्र के रूप में इन्हें स्थान मिल पाया। विषय के रूप में न होने के कारण इन भाषाओं में आनर्स या एम० ए० का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। स्वतन्त्रता के बाद हिंदी और पंजाबी के आनर्स और एम० ए० तो तत्काल खोल दिए गए और पीछे उर्दू का एम०ए० भी जारी कर दिया गया।

विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम की समानता होते हुए भी नीचे दिए हुए कुछ परीक्षाओं के आंकड़े इन भाषाओं की सर्वप्रियता की तारम्यता भली भांति प्रकट करते हैं :—

मैट्रीकुलेशन

	क्षात्र संख्या		
वर्ष	हिन्दी	पंजाबी	उर्दू
१९६०	६६०२७	२५५१४	११८२
१९६१	६००८४	२५८४०	५७९
१९६२	७४२४१	४८४७१	४४०
१९६३	७१४२४	५०८१७	३१७
१९६४	६३७८९	४४९७९	१९३

आधुनिक भारतीय भाषाएं

वर्ष	प्रभाकर हिन्दी	ज्ञानी (पंजाबी)	अदीब फाजिल उर्दू
१९५९	५८१०	२२१६	३६६
१९६०	६५१५	२१३३	४५६
१९६१	५०५४	११२७	३७४
१९६२	४६५०	१७३९	३२१
१६६३	४२०७	१७६४	२५९

ए० (आनर्स)

	छात्र संख्या		
र्ष	हिन्दी	पंजाबी	उर्दू
५८	७५	२३	५
५९	५०	१९	३
६०	६५	४०	१
६१	४९	२०	३
६२	२५	३१	१
६३	४३	३१	—

ए०

	छात्र संख्या		
र्ष	हिन्दी	पंजाबी	उर्दू
५८			
प्रथम खंड	६०६	१७०	२३
द्वितीय खंड	२५५	१०९	१५
५९			
प्रथम खंड	५३६	१८२	२१
द्वितीय खंड	४३७	८९	२५
६०			
प्र० खं०	४११	२०१	१
द्वि० खं०	४८१	१४७	१९
६१			
प्र० खं०	२६३	१३३	३
द्वि० खं०	४१०	११७	१८
६२			
प्र० खं०	२२२	१३३	३५
द्वि० खं०	२३९	१२५	१२
६३			
प्र० खं०	१९०	११९	२३
द्वि० खं०	२०३	१०९	२३

एम० ए० के अतिरिक्त इन भाषाओं की ऊंची शिक्षा, परिशोध एवं षणा के निमित्त पंजाब विश्वविद्यालय ने हिन्दी, पंजाबी तथा उर्दू में

डाक्टरेट की उपाधि की भी व्यवस्था की है। अब तक (मई, १९६५ तक) हिंदी में ४३ व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न विषयों में मौलिक गवेषणा के लिए पीएच० डी० की उपाधि मिल चुकी है। आठ व्यक्तियों के शोध निबन्ध इस समय विचाराधीन हैं जिनका परिणाम निकलने ही वाला है। इसके अतिरिक्त इस समय ८० व्यक्ति पीएच० डी० के लिए रजिस्टर्ड हैं और अपने-अपने विषय की तैयारी में संलग्न है। (पंजाबी और उर्दू के आंकड़े प्राप्त नहीं हो सके)। पंजाब विश्वविद्यालय ने सन् १९४८ से ही हिंदी-पंजाबी भाषाओं की समृद्धि के लिए एक विशाल योजना बनाई हुई है जिस पर इन भाषाओं के धुरंधर विद्वान् कार्य कर रहे हैं। इस योजना के अनुसार इन भाषाओं के मौलिक व्याकरण, कोश, लोकोक्तियों तथा मुहाविरों के संग्रह-कोश, साहित्य का इतिहास, प्राचीन काव्यों और कवियों का प्रामाणिक सम्पादन, आलोचना के सिद्धान्तों और ग्रंथों का निर्माण एवं दूसरी भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथों का अनुवाद एवं रूपांतर इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण एवं ठोस विषय सम्मिलित हैं। पंजाबी में दो-तीन ग्रंथ निकल भी चुके हैं। विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की ओर से एक शोधपत्रिका 'परिशोध' नाम से निकलती है। लाहौर में इन भाषाओं के नाम पर केवल एक-एक व्यक्ति नियुक्त था। अब तो हिंदी और पंजाबी का भरा-फूला पूरा विभाग खोला गया है जिसमें एक-एक प्राध्यापक २-३ रीडर और आधे दर्जन के लगभग लेक्चरर, इन्स्ट्रक्टर एवं स्कालर नियत हैं। इस प्रकार पंजाब विश्वविद्यालय हिंदी के प्रसार, उच्च परीक्षा और ऊंची शोध के लिए बराबर यत्नशील है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

पंजाब के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय भी लगभग इसी पद्धति पर कार्य कर रहा है। वहां का हिंदी विभाग एवं साहित्य गोष्ठियां, साहित्य सम्मेलन एवं हिंदी एकादमी, शिक्षण एवं शोध के कार्य में तीव्रता से संलग्न हैं। वहां से भी शोध सम्बन्धी एक पत्रिका **विश्लेषण** नाम से प्रकाशित होती है जिस में अच्छे-अच्छे लेख निकलते हैं।

साधु आश्रम

साधु आश्रम होशयारपुर की वी० वी० शोध संस्था भी हिन्दी की ठोस सेवा कर रही है। इस संस्था के अधीन **हिंदी साहित्य सारिणी** का सम्पादन हो रहा है। यह एक प्रकार से हिंदी साहित्य का विश्वकोश है जो उपयोगी संदर्भ ग्रंथ का काम देगी। इस पर अनेक विद्वान कार्य कर रहे हैं। इसे भारत

ार (शिक्षा मंत्रालय) से अनुदान भी प्राप्त है। इस संस्था से हिंदी की मासिक पत्रिक **विश्वज्योति** भी पिछले १४-१५ वर्ष से नियम पूर्वक त रही है।

ब सरकार का योगदान

इधर पंजाब सरकार ने भी उपयुक्त नियमानुसार प्रारम्भिक पाठ्यक्रम दोनों ही भाषाओं की व्यवस्था की है। सरकार की ओर से एक भाषा ाग भी खोला गया है जिसमें शासन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के ए पारिभाषिक शब्दावलियां तैयार हो रही हैं। मौलिक ग्रन्थ और अनुवाद र्य भी यथेष्ट तीव्रता से हो रहा है। इस विभाग के पंजाबी और हिन्दी अलग-अलग भाग हैं जो अपनी-अपनी भाषा के लिए ठोस कार्य कर रहे । शोध कार्य की तीव्रता के लिए प्रति वर्ष उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा व निबन्ध गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। कविता, भाषण और क की वार्षिक प्रतियोगिताओं के द्वारा भी जनता में इन भाषाओं को त्साहन दिया जाता है। साथ ही प्रांत के उच्चकोटि के विद्वानों, लेखकों कलाकारों को प्रति वर्ष मानपत्र एवं पुष्कल नकद परितोषिक भेंट करने ी व्यवस्था है। इस विभाग की ओर से भी एक हिंदी पत्र **सप्तसिंधु** नाम निकलता है।

सरकार का लोक सम्पर्क विभाग भी हिंदी की स्तुत्य सेवा कर रहा । इस विभाग से भी **जागृति** नाम से एक पत्र हिंदी में निकलता है जिसमें रकारी लोक सम्पर्क सम्बन्धी बातों के साथ ही साहित्यिक सामग्री भी च्छी मात्रा में रहती है।

इन भाषाओं की प्रगति के लिए पंजाब सरकार ने एक और ठोस पग ाया है। पहले जिला स्तर तक सब दफ्तरी कार्य उर्दू में होता था। अब रकार ने उसे हिन्दी-पंजाबी में करने के आदेश निकाले हैं। अब अहिंदी त्र में हिन्दी में और पंजाबी क्षेत्र में जिला स्तर तक सब काम पंजाबी में ोगा। इसके लिए परिभाषिक शब्द गढ़े जा चुके हैं। शार्ट हैंड और टाइप ी भी व्यवस्था की जा रही है। भाषा विभाग की ओर से क्लर्कों और सरे कर्मचारियों को हिंदी-पंजाबी सिखाने की व्यवस्था भी की जा ही है।

प्रकाशकों का दायित्व

कहना न होगा कि इस समूचे प्रसार कार्य में सरकारी सहयोग और अनुदान का यथेष्ट भाग है। निजी क्षेत्र में विशेष प्रगति के दर्शन नहीं होते। **हिन्दी मिलाप** और **वीर प्रताप** यही दो पुराने दैनिक हैं। इस मास से **हिन्द समाचार** (हिन्दी) के निकलने की भी सूचना आई है। इस समय पंजाब में पंजाबी की दर्जनों पत्र-पत्रिकायें निकलती हैं, वहाँ निजी क्षेत्र में व्यापारी नींव पर एक भी हिन्दी की पत्रिका नहीं हैं। हिन्दी के प्रकाशक और लेखक विभाजन के बाद पंजाब के बाहर जा कर बस गए हैं। इस से व्यापारी स्तर पर हिन्दी प्रकाशनों की विशेष प्रगति नहीं दीख रही। इसका यह अर्थ नहीं कि पंजाब के लोग साहित्यिक पत्रिकाओं और पुस्तकों के पाठक नहीं। दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा अन्य राज्यों से हजारों की संख्या में हिन्दी की पुस्तकें पंजाब में खपती हैं और यहाँ के लोगों की साहित्य-पिपासा शान्त करती हैं। फिर भी पंजावी प्रकाशकों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। प्रकाशकों और प्रकाशनों का अभाव पंजाव में हिन्दी की स्थिति आँकने में निस्सन्देह एक विरोधी प्रमाण उपस्थित करता है जिसका राजनीतिज्ञ लोग दुरुपयोग कर सकते हैं।

* * *

प्राग (चेकोस्लोवाकिया) विश्वविद्यालय के प्राध्यापक
डाक्टर ओडोलेन स्मेकेल

...मेरी गहरी इच्छा है कि भविष्य में भी भारत की यात्रा करते समय सभी हिन्दी-सेवियों व लेखकों से मिलूं और हमारे हिन्दी से सम्बन्धित कार्य से उनको परिचित कर दूं। मेरी भावी यात्रा निकट आ रही है। अनेक भाषणों में हिन्दी के विकास पर अपनी सम्मतियाँ प्रकट करने की उत्कट इच्छा है। राष्ट्रभाषा का प्रश्न केवल भाषा का प्रश्न नहीं, वह अन्य अनेक विषयों से सम्बन्ध रखता है, वह राष्ट्रीय चरित्र, उन्नतिशीलता तथा योग्यता का दर्पण है। इन दिनों विशेषकर इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दी विकासशील भाषा हो जाए, उसकी बनावट सुस्थिर तथा अभिव्यक्ति सम्बन्धी संभावनाएं विशाल, असीमित, अगाध हों।

हिन्दी की व्यथा

(पांडेय सीताराम प्रसाद, लखनऊ)

रेडियो ने बोल कर कहा। समाचारपत्रों ने लिखकर बताया। बहुतों ने सुन कर समझा, बहुतों ने पढ़ कर। जिनके पास तबियत थी उन्होंने तबियत से समझा, जिनके पास नहीं थी उन्होंने वैसे ही समझा। मतलब यह है "२६ जनवरी, १९६५ से हिन्दी राष्ट्रभाषा पद पर सुशोभित होने जा रही है।"

फिर एक लहर-सी चली। हिन्दुस्तान तो लहरों का देश है ही। ज़रा सा मननशील होने पर यह तथ्य साफ-साफ झलक जाता है। तो लहरों में बह निकले सरकारी कार्यालयों के कर्मचारी भी। संकल्प हुआ कर्तव्य की दुहाई देकर "हम कार्यालयों के कार्यों में अपनी सामर्थ्य, योग्यतानुसार तथा निष्ठा द्वारा प्रेमपूर्वक हिन्दी का प्रयोग करेंगे।" ऐसा भी सोचा गया "सम्भव है कि प्रारम्भ में हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़े, किन्तु अपने राष्ट्र द्वारा सौंपे गए पवित्र उत्तरदायित्व का स्वागत करते हुए अपनी क्षमतानुकूल कार्यालयों के कार्यों में हिन्दी का प्रयोग निर्धारित दिवस से प्रारम्भ करने का पूर्ण प्रयास करेंगे।"

केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों ने तो दिल्ली में अपनी निष्ठा को **केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद** के रूप में देहधारी सा कर दिया था। शुभ दिन था ३ मई, १९६०। संस्था का लक्ष्य रहा "आए दिन प्रयोग में आने वाली अंग्रेजी की ज़गह पर हिन्दी में अधिकाधिक कर्मचारियों को ठोस सहयोग देकर कार्य करने की प्रेरणा देना।" धीरे-धीरे दिल्ली वालों ने अन्य स्थानों में भी अपनी सेवाओं को पहुंचाने का बीड़ा उठाया।

फलस्वरूप परिषद की शाखाएँ हिन्दुस्तान के कोने-कोने में खुलने लगीं। सम्भवत: बम्बई, नागपुर, सूरत, राजकोट, रुड़की, अहमदाबाद, तूतीकोरिन, त्रिचूर, त्रिवेंद्रम, देहरादून, आगरा, लखनऊ, क़ानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, वाराणसी, झांसी, जबलपुर, बिलासपुर, अजमेर, इन्दौर, क़ोटा, जयपुर आदि स्थानों के प्रत्येक सरकारी कार्यालय में जहाँ ४० सदस्य तक बन सकें, शाखा काम करने लगी। अभीष्ट रहा है कि हिन्दी हमारी पसर सके अपनी वाटिका में। अच्छा नहीं लगा कि हिन्दी रूपी गुलाब की क्यारी

में अंग्रेजी रूपी लिली खिले और गुलाब पर हावी होकर खिले या खिलती रहे।

दूसरी ओर हमारी सरकार ने भी कोई कसर नहीं उठा रखी। परिपत्र पर परिपत्र, खट-खट, दनादन, छपकर निकल पड़े इस आशय को लेकर कि हिन्दी जानने वाले तथा हिन्दी सीखे हुए कर्मचारियों से हिन्दी में काम कराया जाय ताकि वे नियमित अभ्यास द्वारा हिन्दी की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें और हिन्दी को प्रशासनिक काम-काज की आवश्यकताओं के अनुकूल बना सकें। सभी कर्मचारियों को अपने आवेदन आदि हिन्दी में देने की पूरी छूट दी गई। साथ-साथ जो अहिन्दी भाषी कर्मचारी थे उनको हिन्दी में प्रशिक्षण देने के लिये सरकार ने अपने व्यय पर और कार्यालयों के काम के समय में ही छुट्टी की सुविधा देकर उचित रूप से व्यवस्था करा दी। हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत स्कूल खोले गए। प्रशिक्षणार्थियों को तरह-तरह से प्रोत्साहित करने के लिए हितकर आश्वासन दिए गए जैसे वेतन वृद्धि, पुरस्कार, दान नगद या वस्तुओं में आदि-आदि। सारांश में 'अर्क आशय' यह निकला कर्मचारियों के दिमाग की शीशी में भरने के लिए कि २६ जनवरी, १९६५ से हिन्दी वैधानिक रूप से भारतीय संघ की राज्य भाषा हो गई जिसके पश्चात् सारा काम हिन्दी में करने के लिए कोई रोक नहीं रही। लेकिन कोई सरकारी आदेश ऐसा न मिल सका कि हिन्दी में कार्य करना अनिवार्य होगा। बस गुड़ इसी प्रकार गोबर बन गया। अंग्रेजी मात खाते-खाते बच गई और परोक्ष रूप से सहभाषा मानी जाकर शह पा गई।

फिर भी ऐसा लगा मानो भगवान की तरह-तरह की भक्ति सहस्र हृदयों से एक साथ फूट पड़ी। घंटा बजा, घड़ियाल बजे, हर्षोध्वनि हुई, करतल ध्वनि भी। शंख फूंके गए जन-मन-मानस मन्दिर में। सब तरह के समारोह मनाए गए, छोटे-बड़े। उल्लासपूर्ण वातावरण में संकल्प सा मन्त्रोच्चारण गूंज उठा "हिन्दीं में काम करेंगे, हिन्दी में काम करेंगे।" सब लीक पूरी हुई उद्घाटन, भाषण आदि। पर, क्या पता कि गहराई में बैठ कर, जहां शायद दूसरों की पैठ कठिन ही है, देश के आधुनिक चाणक्यों ने एक "उच्चाटन विद्या" का अध्याय जोड़ दिया है, इस प्रकार कि अधिनियम १९६३ के अनुसार यद्यपि अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा तथापि २६ जनवरी, १९६५ के पश्चात् सरकारी कार्यालयों के कार्यों में हिन्दी का प्रयोग होना चाहिये। कर्मचारी बस द्वन्द्व में फँस गया। लगा सोचने "इधर कि उधर"।

अतः एक समस्या बन गई "अपने मन से हिन्दी में लिखा-पढ़ी कोई कुछ करे तो क्यों करे ? कैसे करे ? कहाँ करे ? क्यों करे ? उत्तर रहा जब अंग्रेजी में काम करने की मनाही नहीं तो अंग्रेजी में ही क्यों न करे।"

"कैसे करे ?" का उत्तर मिला "अंग्रेजी में अभ्यास इतना हो गया है कि अनायास चुटकी बजाते बजाते बड़ा से बड़ा ड्राफ्ट लिख जाता है। दिमाग पर जरा भी जोर नहीं पड़ता। तो आसानी को छोड़ कर बेमतलब लिखने का बवाल कौन सिर पर मोल ले। दूसरे लिखा-पढ़ी का मसाला जैसा अंग्रेजी में है वैसा हिन्दी में है ही नहीं। फिर भय सता रहा है कि हिन्दी बड़ी मुश्किल है। कैसे हम लिख सकेंगे। हमारे लिए विदेशी भाषा जैसी है। इसलिये भीतर-भीतर विरोध-भाव से अच्छा यही है कि हम कदम ही न उठावें।"

"कहाँ करे ?" के उत्तर में सुन पड़ा "हम तो अपनी तरफ से लिखते हैं हिन्दी में, लेकिन जिसके पास लिखते हैं उनको हिन्दी नहीं चाहिए, अंग्रेजी चाहिए। मतलब यह कि कोई हिन्दी में लिखे तो अंग्रेजी अनुवाद भी चाहिये। तो दुहरी मेहनत बेकार कैसे और क्यों की जाय जिसमें समय और शक्ति का अनावश्यक दुरुपयोग हो। अतः अंग्रेजी में लिखने की क्रिया ह श्रेयस्कर है।

वैसे भी अगर कोई पूछे "हम हिन्दुस्तानी अपना काम मजबूरी में करते हैं अधिक कि फर्ज समझ कर ?" तो शत-शत मुख से निकलेगो "मजबूरी में अधिक।" सो जब हिन्दी में कार्य करने की मजबूरी नहीं है त अपनी तरफ से करने की क्या पड़ी है। कुछेक हैं कर्मचारी जो सारी अड़चनों तथा अवरोधों के सामने भी लगन से, आज नहीं तो, कल संभल जाएँगे। किन्तु, वे वैसे ही हैं जैसे ऊंट के मुंह में जीरा और उनका किया-कराया वैसे जैसे गरम तवे पर पानी की बूंद।

अब देखना है कि इन परिस्थितियों में येन-केन-प्रकारेण कुछ प्रगति हुई कि नहीं। सही तो है, हिन्दी वाले छाती पीट कर रह गए। किन्तु समझदारी से बात की जाय तो पग बढ़े हैं आगे पर झुंझलाहट के साथ। जिस भवन का निर्माण कार्य चला उसमें नींव पड़ गई जो अचल है। कुछ-कुछ आधार-भित्तियां जमीन से ऊपर भी खड़ी हो गई हैं। इधर जनवरी, ६५ के बाद पांच महीने बीते है और मई का महीना चल रहा है। कुल छः - सात महीने की बात है। समय को देखते हुए एक अच्छी गति बनी है।

सचिवालय परिषद की अनवरत क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप कर्मचारियों के हित में कई प्रकाशन उपलब्ध हो गए हैं; मुख्यत: **कार्यालय सहायिका** जिसमें काफी संख्या में अंग्रेजी के वाक्यांशों, शब्दों आदि का हिंदी रूपान्तर संग्रहीत है। टिप्पणी, वाक्यांश, मसौदा लिखने के तरीके, छोटी-मोटी चीजों से व्याकरण का सरल प्रयोग आदि-आदि कार्यालय के दैनिक कार्यों में चल पड़े है। **हिन्दी परिचय** नामक पत्रिका वर्ष में ६ बार प्रकाशित होती है। प्रत्येक अंक में बारी-बारी से विभागीय कार्यों के अनुरूप विविध प्रकार की सामग्रियां मिलती रहती हैं।

कार्यालयों में काम करने वाले यदि हिन्दी को अपना लेते हैं तो इसका विकास और गौरव बहुत दूर की बात नहीं है। सवा लाख की बात है कि, सरकारी कर्मचारियों के हृदय में, कम से कम जो हिन्दी भाषी क्षेत्रों में है, चेतना है, हिन्दी के लिए प्रेम है, पर अवसरहीन होते जा रहे हैं। अभी-अभी एक सरकारी परिपत्र देखने से आभास होता है कि २६ जनवरी, १९६५ से पूर्व जो भाषा प्रयोग में थी उसीमें अब कार-बार होना चाहिये।

फल यह दृष्टिगोचर है कि हिन्दी में कार्य करने वालों के पैर थक से गए और दिल बैठा जा रहा है। एक तरफ हिन्दी में कार्य करने की मांग है और दूसरी तरफ न करने देने के लिए चाल।

ऐसा लगता है कि हिन्दी सीता-माता अंग्रेज़ी की अशोक वाटिका में दक्षिणेश की विलायती माया की वन्दिनी हो गई है। भक्त हनुमान जैसे भारतीए उद्यत हैं, सशक्त हैं उसे मुक्त करा लेने को; किन्तु शासन के राम अपने मर्यादानुकूल करुण विलाप के साथ माँ सीता को ढूंढ़ निकालने का संकेत तो करें।

हनुमान राम का मुंह देखते थे। हिन्दी भक्त अपने शासनासीन नेताओं के मुंह देख रहे हैं।

सेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी के माध्यम विकल्प किन शर्तों पर स्वीकृत हो

१. हिन्दी और उर्दू भाषा के दो रूप हैं। कश्मीर के अतिरिक्त उर्दू राज्य की राज्य भाषा नहीं। वहाँ भी कश्मीरियों की मातृ-भाषा उर्दू से भिन्न है।

२. जो प्रत्याशी हिन्दी साहित्य लेकर हाई स्कूल की परीक्षा में हो चुके हैं, उन्हें अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त नीचे लिखी किसी क्षेत्रीय की परीक्षा देनी होगी : बंगला, असमिया, उड़िया, तेलुगु, तमिल, लम, कन्नड, मराठी, गुजराती। इन प्रत्याशियों को हिन्दी के प्रश्न-पत्र और उन्हें हिन्दी में उत्तर देने की छूट मिलेगी। प्रत्याशियों को के पारिभाषिक शब्दों को देवनागरी लिपि में व्यक्त करने की छूट। परन्तु व्याकरणीय शुद्धता की आशा उनसे की जायेगी। अशुद्ध पर नम्बर काटे जायेंगे।

विनोबा जी के वचन

पत्र मिला। भाषा के सिलसिले में एक त्रिसूत्री मैंने पेश की सब प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों ने मान्य की। तो यहाँ सूत्रकार का समाप्त हो जाता है। सूत्रकार स्वयं ही भाष्य करने लगे तो कैसे गा ? —जय जगत

३. जो प्रत्याशी कोई उपर्युक्त क्षेत्रीय भाषा लेकर हाई स्कूल में उत्तीर्ण हुए हैं, उन्हें अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी भाषा की परीक्षा होगी। इनके सामने दो विकल्प होंगे :—

अ. वे अंग्रेजी का प्रश्न-पत्र लें और अंग्रेजी में उत्तर दें। यदि में उत्तर देते हैं, तो उनसे उस स्तर की भाषा की आशा की जायगी व्याकरण और हिज्जे की दृष्टि से सही हो। गल्तियों पर नम्बर कटेंगे।

ब. वे हिंदी का प्रश्न पत्र लें और हिंदी में उत्तर लिखें। यदि हिन्दी त्तर देते हैं तो लिंग और वचन सम्बन्धी उनकी भूलें क्षम्य होंगी, परन्तु के पारिभाषिक शब्द उन्हें देवनागरी लिपि में ही व्यक्त करने होंगे।

४. सब प्रत्याशियों को अंग्रेजी भाषा की परीक्षा देनी होगी,

साहित्य की नहीं। प्रत्येक भाषा की परीक्षा की माध्यम भी वही भाषा होगी।

५. भाषा के प्रश्नपत्रों के अतिरिक्त अन्य विषयों के प्रश्न-निर्माता और परीक्षक वही विद्वान होंगे जिनका हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार हो। उनके पास अंग्रेजी की उत्तर-पुस्तकें जायंगी और हिन्दी की भी जिनके मुख-पृष्ठ पर आयोग के सचिव का समुचित आदेश होगा।

६. हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं की परीक्षा के प्रश्नपत्र एक बोर्ड आफ माडरेशन के आदेश से बनाये जायँगे और इस बोर्ड के आदेशानुसार ही विभिन्न परीक्षक उत्तर-पुस्तकों का मूल्यांकन करेंगे। इस मूल्यांकन पर बोर्ड आफ माडरेशन की निगरानी रहेगी।

हमारी प्रमुख पत्रिकाएँ

सरस्वती

जनवरी सन् १९०० से निरंतर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की अग्रणी साहित्यिक पत्रिका हिन्दी साहित्य की उन्नति की मानदंड है। आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवि, लेखक, समालोचक, कहानीकार और साहित्यिक इस गौरवशालिनी पत्रिका की ही देन हैं। इस समय इसका सम्पादन हिन्दी के यशस्वी साहित्यसेवी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा हो रहा है। वार्षिक मूल्य रु० ७·५०; एक प्रति का ६५ पैसे।

बालसखा

१९१६ से अनवरत प्रकाशित होते रहनेवाला बच्चों का साहित्यिक सखा यह बालसखा मासिक है। इसमें बालोपयोगी कविता, कहानी, यात्रा-वर्णन, साहसिक कथायें, खेलकूद, पहेलियाँ, चुटकुले, वैज्ञानिक बातें, महापुरुषों के जीवन-चरित्र आदि सचित्र मनोरंजक सामग्री रहती है। इसका सम्पादन पं० लल्लीप्रसाद पांडेय और पं० सोहनलाल द्विवेदी द्वारा होता है। वार्षिक मूल्य रु० ५·५०; एक प्रति का ५० पैसे।

विज्ञान-जगत्

दिसम्बर १९६१ से निरंतर प्रकाशित होनेवाला, सर्वसाधारण तथा छात्रों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक। बहुरंगा आकर्षक आवरण-पृष्ठ, सुन्दर सचित्र पाठ्य सामग्री। वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार। छपाई और सजावट पर भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठता प्रमाणपत्र प्राप्त। इसका सम्पादन श्री आर० डी० विद्यार्थी द्वारा होता है। वार्षिक मूल्य रु० ९; एक प्रति का ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
तथा ब्रांच और एजेंसियों से प्राप्य।

तिक्रियाएँ

–प्राध्यापक शं० ना० गणेशन्, मद्रास विश्वविद्यालय

१. इस फार्मूला के अनुसार हिन्दी भाषियों से उनकी अपनी ही मातृ-ा शुद्ध लिखने की अपेक्षा जाती है (खण्ड २) और अहिन्दी भाषियों से या क विदेशी भाषा शुद्ध लिखने की आशा की जाती है (खण्ड ३ अ) या हिन्दी लिखने की जिसमें लिंग और वचन की त्रुटियाँ क्षम्य हों (खण्ड ३)। प्रथम दशा में—याने शुद्ध हिन्दी और शुद्ध अंग्रेजी के सिद्धान्त में नीति नहीं हैं; अतः न्याय्य नहीं है। दूसरी दशा (खण्ड ३ ब) के सम्बन्ध नेक आपत्तियाँ हैं। (क) कठिनाई सिर्फ लिंग और वचन में नहीं है। ि और उच्चारण से लेकर हर स्तर पर कठिनाई रहती है। त्रुटियाँ तक क्षम्य होंगी और क्षम्य बनाने का नियम कहाँ तक सफल होगा, विन्त्य है; (ख) त्रुटियों के सम्बन्ध में काफ़ी उदारता दिखाई जाय तो ा निश्चित मत है कि वह एकदम गलत है। भाषा सीखें और उसका त्रुटिपूर्ण ोग करें, यह एकदम वर्ज्य कार्यक्रम है। (ग) त्रुटि-क्षमा का यह सिद्धान्त एक श्रेष्ठता ग्रन्थि (Superiority Complex) से उत्पन्न है, और कोई ाभिमानी युवक उसे स्वीकृत न करेगा। स्वीकृति का अर्थ होगा एक हीनता ि का विकास। (घ) परीक्षा में इस तरह त्रुटि क्षमा होने पर भी क्या ियुक्ति के उपरान्त दफ्तरी कार्यक्रम में ऐसी च्युत हिन्दी को मान्यता ेगी? क्या सरकारी कार्यक्रम में ऐसी त्रुटिपूर्ण भाषा को स्वीकृत करने की ारण्टी रहेगी?

२. हिन्दी भाषियों को और किसी आधुनिक भारतीय भाषा में रीक्षा देने की और अहिन्दी भाषियों को हिन्दी में परीक्षा देने की ावश्यकता है (खण्ड २, ३)। इस सम्बन्ध में भी दो-तीन बातें विचारणीय । (क) स्वतः हिन्दी भाषी इसे स्वीकृत करेंगे—इसमें काफ़ी सन्देह है। ीकृत करें तो भी क्या इन भाषाओं के प्रश्न-पत्र भी उसी स्तर और रूप होंगे जो अहिंदी भाषियों के हिन्दी प्रश्न पत्र के होंगे? सम्भव है सिर्फ रीक्षा की दृष्टि से दोनों (हिन्दी पत्रों और अन्य भाषा पत्रों) के स्तर राबर रक्खे जायें, और काफ़ी निम्न रक्खें जायें। (ख) तो भी परीक्षा के ाद? हिन्दी भाषी के लिए उसकी सीखी हुई भाषा प्रायोगिक रूप में

अनिवार्य नहीं रहेगी, पर अहिन्दी भाषी के लिए नियुक्ति के बाद भी हिन्दी का ज्ञान और निरन्तर प्रयोग अनिवार्यतः आवश्यक रहेगा। यथोचित कार्य संचालन के लिए उसे हिन्दी का सामान्यतः अच्छा ज्ञान प्राप्त करना होगा, और प्रत्येक स्तर पर हिन्दी उसके भाग्य-निर्णय के तत्त्व के रूप में रहेगी। हिन्दी भाषी परीक्षा मात्र के लिए अन्य कोई भाषा सीखकर भी बाद में उसे पूर्णतः छोड़ सकता है, फिर भी हिन्दी पर अधिकार के कारण कार्य संचालन में अधिक समर्थ माना जायगा। (ग) जो भाषा परीक्षा के बाद उपयोगी नहीं है, उसके अध्ययन के लिए हिन्दी भाषियों को क्यों विवश किया जाय?—यह प्रश्न अवश्य उठेगा—और उठाना अस्वाभाविक भी नहीं है।

काँग्रेस कार्यकारिणी समिति के निर्णय (२ जून)

१. सभी प्रदेशों को अपने शिक्षण क्रम में त्रिभाषी फारमूले को अमल में लाना लाजमी होगा और इसका विश्वविद्यालयीन शिक्षा के स्तर तक कड़ाई से पालन होगा।

२. यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन की सरकारी नौकरियों के लिए होने वाली परीक्षायें अंग्रेजी, हिन्दी तथा विधान के आठवें शिड्यूल में दी गई किसी भी राष्ट्रीय भाषा में दी जा सकेंगी। इस बात को लागू करने में शीघ्रतम कदम उठाये जाने चाहिये।

३. इन परीक्षाओं में हिन्दी और अंग्रेजी में अनिवार्य परीक्षा पत्र होंगे तथा हिन्दी भाषी के लिए हिन्दी के अतिरिक्त अन्य एक भाषा जानना अनिवार्य होगा जिसमें उसकी परीक्षा ली जायेगी।

४. उपरोक्त निर्णयों को मूर्त करने के लिए—

क—हर प्रदेश की भाषा उस प्रदेश की राज्य भाषा बनेगी और यथाशीघ्र विश्वविद्यालयीन स्तर तक शिक्षण का माध्यम होगी।

ख—हिन्दी के शिक्षण का स्तर पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में भी उत्तरोत्तर ऊंचा उठाना होगा।

ग—अंग्रेजी भाषा का ज्ञान दिया जाना जरूरी रहेगा, क्योंकि वह एक महत्वपूर्ण भाषा है।

५. हिन्दी, केन्द्र सरकार की राज्य भाषा बन सके और राज्यों के बीच एक जोड़ भाषा का माध्यम बन सके, इसके लिये हिंदी के विकास का क्रमगत कार्यक्रम बनाया जायगा।

६. देश की दूसरी राष्ट्रीय भाषाओं के विकास के भी कार्यक्रम बनाये जायेंगे और उन पर अमल किया जायगा।

३. भाषेतर विषयों में दो भिन्न भाषाओं में लिखित तीन प्रकार ओं (अंग्रेजी के पत्र, हिन्दी भाषियों के हिन्दी पत्र, अहिन्दी भाषियों के त्र) के मूल्यांकन में माडरेशन किस आधार पर होगा ? एक वर्ग को में ही सुविधा दी जाय और अन्यों के प्रति माडरेशन के द्वारा दया जाय, यह मूल्यांकन का ढंग ही नहीं है। इस माडरेशन की सीमा अव्यक्त रहेगी। [मद्रास के छात्र मंडल ने अपना यह मत प्रकट कि छात्र ऐसी दया की भीख नहीं चाहते। समानाधिकार ही की माँग । वे सर्विस में किसी तरह पद पाना नहीं चाहते।] असमानता करने वाली पद्धति अपना कर फिर माडरेशन द्वारा उदारता कृत की जाय ?

४. भाषेतर विषयों के प्रश्न निर्माताओं और परीक्षकों के सम्बन्ध म हैं कि वे उन विषयों में सुयोग्य विद्वान् होने के साथ अंग्रेजी दी दोनों पर समान अधिकार रखते हों। यह प्रश्न-निर्माण और के क्षेत्र से दक्षिण के (संभवतः अन्य अहिन्दी प्रदेशों के भी) विद्वानों दम विस्थापित करने का सरलतम उपाय है। दक्षिण में विविध के ऐसे विद्वान् मिलेंगे ही नहीं, जो अपने विषय के अतिरिक्त अंग्रेजी न्दी दोनों में समान अधिकार रखते हों। परिणामतः प्रश्नपत्र-निर्माण क्षण के क्षेत्रों में हिन्दी क्षेत्र के विद्वानों की ही ठेकेदारी चलेगी। बाद परीक्षा के किसी भी अंश में न्याय की आशा करना व्यर्थ है।

चार्य उपेन्द्रकुमार दास, विश्वभारती, शान्ति निकेतन

लोक-सेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी के माध्यम के विकल्प के में जो विचार रखे गये हैं, वे तर्कसंगत और उचित हैं। भाषा-विषयक को हल करने में ये विचार बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

अहिन्दी भाषियों को भी इन सूचित शर्तों से सहमत होने में कोई ई नहीं होगी। इतना होने पर भी इस विषय में किसी के मन में किसी का संदेह न हो; इसलिए परीक्षक वाली शर्त को (५वीं शर्त) कुछ चाहिए। हम लोगों का मत यह है कि :—

भाषा के अतिरिक्त अन्य विषयों के दो-दो परीक्षक हों। इनमें से रीक्षक की मातृ-भाषा हिन्दी न होकर अन्य भारतीय भाषा हो, साथ दी और अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान हो। दूसरे परीक्षक की मातृ-भाषा हिन्दी ग्रेजी का पूर्ण ज्ञान हो। प्रत्येक उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन कर दोनों

परीक्षक अलग-अलग अंक देंगे, और दोनों परीक्षकों के अंकों का मध्यक-अंक ही प्रमाणिक माना जायगा।

उल्लिखित शर्तों में एक-आध और संशोधन कर देना अच्छा होगा। दूसरी और तीसरी शर्तों में जहाँ अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखने की छूट दी गयी है, वहाँ यह छूट कुछ ठीक नहीं जंचती। अंग्रेजी भाषा के पारिभाषिक शब्दों को रोमन लिपि में लिखना ही अच्छा होगा; नहीं तो उत्तर-पुस्तिकाओं के मूल्यांकन में कुछ गड़बड़ी होने की संभावना होगी; क्योंकि एक ही अंग्रेजी शब्द को हिन्दी-भाषी जब देवनागरी लिपि में लिखेंगे, तो उसका रूप अहिन्दी भाषी वालों से भिन्न हो जायगा। जैसे "Formula" शब्द को हिन्दी भाषी 'फार्मूला' लिखेंगे और हम लोग 'फारमूला' लिखेंगे। वर्तमान वातावरण में प्रस्तावित शर्तों को हम वाजिब समझते हैं। इन शर्तों की उपयोगिता की परीक्षा करना आवश्यक जान पड़ता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददास जी का वक्तव्य

जब सन् १९४९ में संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया। उस समय अंग्रेजी का स्थान हिन्दी द्वारा लिये जाने की पन्द्रह वर्ष की अवधि रखी गई थी। आशा थी कि इतने लम्बे काल में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी। परन्तु यह नहीं हुआ। सन् १९६३ में संसद् ने राजभाषा विधेयक नामक एक कानून बनाया जिसके अनुसार हिन्दी के साथ अंग्रेजी सहभाषा के रूप में अनिश्चित काल तक चलने का विधान है। यह विधेयक स्वर्गीय पंडित जवाहरलालजी नेहरू की इच्छानुसार स्वीकृत हुआ था; पर अब फिर प्रश्न उठा है कि इस विधेयक में भी संशोधन किया जाय। इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यकारिणी ने अभी जो निर्णय किया है उसके अनुसार संसद के आगामी अधिवेशन में यह विधेयक आने वाला है। यद्यपि इस विधेयक का मसौदा हमारे सामने नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि यह विधेयक अंग्रेजी के और भी पक्ष में जायगा। यह सब हो रहा है स्वर्गीय नेहरूजी की इच्छाओं को कानूनी रूप देने की बिना पर। उनकी इच्छाओं को तो कानूनी रूप सन् १९६३ में दिया जा चुका है। यथार्थ में यह विधेयक उनकी इच्छाओं को कार्य में परिणित करने के लिए बतलाया जाकर उन मुट्ठी भर उपद्रवकारियों के संतोष के लिए है जिन्होंने अकारण गत २६ जनवरी को समाज विरोधी हिंसात्मक कृतियाँ की थीं। ऐसे लोगों को कभी भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता; क्योंकि यह प्रश्न भाषा का यथार्थ में नहीं है।

ो भारतीय सँघ को ही तोड़ना चाहते हैं। अतः संसद के आगामी त्र में सन् १९६३ के राजभाषा कानून के सुधार के लिए जो विधेयक ाने वाला है, उसका डटकर विरोध होना चाहिए; क्योंकि यह को देश पर और मजबूती से लादेगा जो एक अन्तर्राष्ट्रीय कृति है।

भाषा सम्बन्धी त्रिसूत्री कार्यक्रम का मैं विरोधी नहीं हूँ। उसे रिक रूप देने के सम्बन्ध में किस प्रकार का प्रस्ताव आता है, इस पर रुख का निर्णय करूँगा।

मेरी दृष्टि से इस समय सबसे महत्वपूर्ण बात है हिन्दी भाषी राज्यों ार का सारा काम हिन्दी में चलवाना। इन हिन्दी भाषी राज्यों ने पने राज्य की राजभाषा हिन्दी सन् १९४८ और' ५२ के बीच में ार करली थी और इस स्वीकृति को कार्यरूप में परिणित करने के रकारी आदेश भी समय-समय पर निकले। पर अधिकाँश में यह ी कार्यवाही रही। हिन्दी का भविष्य इन हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों पर है नमें भी प्रधानतया उत्तर प्रदेश पर जो सारे हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों तृत्व करता है।

* * *

प्रशस्ति

'पुनि-पुनि उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।' ा साहब के मन-पंछी का जहाज था वह वट-वृक्ष जो प्रयाग विश्व-द्यालय के शीर्षचिह्न में गंगा-यमुना के संगम पर अपनी विशाल ाखाएँ फैलाये दिखाया गया है। ज्ञानगरिमा में जिसके असंख्य मूल राओं से बिछे हैं, वह अनादि वट वृक्ष, जिसकी पत्तियों पर नवीन ढ़ियों के बालमुकुन्द खेलते-खेलते अविकसित विश्व की विराट ाँकियां दिखाते हैं, वही वट-वृक्ष गुरु-प्रवर अमरनाथ झा के शुक-वरूप व्यक्तित्व का चितरंजन नीड़ था।

—शिष्यवर जगदीशचन्द्र माथुर की दस तस्वीरें से

परिचायिकी

सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी के प्रकाशन

(१) आचार्य विनोबा :—भाषा का प्रश्न; डिमाई अठपेज़ी के ४८ पृष्ठ; ५० पैसे

भारतीय शिक्षा के इस विशेषांक का विषय ही इस पुस्तक का विषय है। जवाहरलालजी गांधी के भौतिक उत्तराधिकारी थे तो विनोबा जी उनके मानस-पुत्र हैं। विनोबा जी का विश्वास है कि देश में अंग्रेजी की मान्यता जिस अनुपात में घटेगी, उसी अनुपात में हिन्दी समेत भारतीय भाषाओं के साहित्य का विकास होगा। विनोबाजी की मातृभाषा मराठी है। सुदूर अतीत के शंकर, रामानुज, मध्व और वल्लभ जैसे दक्षिण के पूर्वजों ने प्रचार के लिए संस्कृत अपनाई, तो निकट अतीत के सर्वमान्य अहिन्दी पूर्वजों ने भी भारतीय प्रचार के लिए हिन्दी अपनाई है। संस्कृत के लिए देवनागरी लिपि ही की मान्यता है। देवनागरी लिपि में हिन्दी सीखी जाती है और मराठी भी। बाकी भाषाओं की अलग अलग लिपियाँ हैं, और विनोबाजी चाहते हैं कि धीरे धीरे—और प्रेम पूर्वक—देवनागरी लिपि की मान्यता बढ़े। इस पुस्तक का व्यापक प्रचार आवश्यक है। प्रकाशक की अनुमति से पुस्तक का शंका समाधान शीर्षक अंतिम अध्याय उद्धृत है :—

(१) **प्रश्न :** हिन्दी भाषी प्रांत वाले चाहते हैं कि जैसे अंग्रेजी शासन करने की भाषा है, वैसा पद हिन्दी को मिल जाय। इस पर आपकी क्या राथ है ?

विनोबाजी : शासन करने वाली भाषा इसके आगे कोई नहीं रहेगी, भाषा तो सेवा करने की ही होगी। हमें हिन्दुस्तान की राजनीति समाप्त करनी है और उसकी जगह लोकनीति की स्थापना करनी है। इसलिए हिन्दुस्तान में भाषा संस्कृति का प्रचार करने वाली होगी, शासन करने वाली नहीं होगी। ऐसी भाषा अंग्रेजी तो बिलकुल ही नहीं हो सकती। अपने-अपने प्रांत में यह कार्य मातृभाषा के जरिये और सारे देश में हिन्दी के द्वारा होगा।

(२) **प्रश्न** : क्या हिन्दी मातृभाषा को दबाएगी ?

विनोबाजी : मातृभाषा को हिन्दी कभी नहीं दबा सकती । मातृभाषा दबाती है अंग्रेजी । हमने यह स्वयं देखा है । हम वेलूर-जेल में थे । वहाँ गु, मलयालम, तामिल, कन्नड, ऐसी चार ही भाषाओं के लोग थे । मैंने वहाँ जाते ही उन चारों भाषाओं का अध्ययन शुरू कर दिया । लेकिन लोग आपस में अंग्रेजी में बोलते थे । एक भाषा वाले भी आपस में अंग्रेजी बोलते थे । तब दूसरों की भाषा सीखने की बात तो दूर ही रही । भारी ता थी । अंग्रेजी के अलावा दूसरा कोई साधन नहीं था । इस प्रकार जी के दबाव के कारण मातृभाषा का भी अच्छा अध्ययन नहीं होता । जी के पीछे इतना भारी शक्ति-क्षय हुआ है । हिन्दी आपकी भाषा को नहीं सकती, परन्तु उसे आप दबा सकते हैं । 'उसने देखा' को आप देखा' कहते हैं, 'उसने देखा' के समान ही कहते हैं 'उसने गया' । लेकिन भी हिन्दी होगी । आपकी भाषा की रचना हिंदी में आयगी । हमारी भाषा मराठी है, फिर भी हम हिन्दी बोलते हैं । कई बार ऐसा होता है उसमें मराठी की रचना आ जाती है । कभी-कभी शब्द भी आ जाते हैं । लोग कहते हैं कि यह बाबा की शैली है । वैसे ही उसमें आप की शब्द-ता, वाक्य-रचना, आ सकती है । वह भी एक प्रकार की शैली होगी । हिंदी है । उसमें सब नदियाँ मिलने ही वाली हैं । आप उसे दबानेवाले हैं र वह दबने के लिए राजी है । यही हिन्दी की खूबी है । इतना सब ने की जिसमें शक्ति है, वही राष्ट्रभाषा हो सकती है । सरदार वल्लभभाई दी बोलते थे, उसमें गुजराती मिली रहती थी । गांधीजी की भी हिन्दी थी ? हिन्दी भाषा को इतना प्रोत्साहन देकर किसने चलाया ? मी दयानन्द ने । वे काठियावाड़ के थे । उनकी हिन्दी काठियावाड़ी हिन्दी । लेकिन वह हिन्दी भी आर्यसमाज वाले पसंद करते हैं और कहते हैं वह उनकी एक शैली है । हिन्दी यह सब सहन करने के लिए राजी है । र में जाकर आप हिन्दी बोलिये, कोई कुछ नहीं कहेगा । अगर हम यहाँ ड बोलें, तो क्या आप हमारी कन्नड भाषा सहन करेंगे ? सब एकदम ने लगेंगे । लेकिन हिन्दी 'आपकी हिन्दी' सहन करेगी ।

इसलिए हिन्दी का बहुत व्यापक रूप होगा । आपको यह जो डर म हो रहा है कि हिन्दी आपकी भाषाओं को दबायेगी, आप पर राज गी, यह केवल प्रतिक्रिया के कारण है, क्योंकि अंग्रेजी ने हमें दबाया था । जानता हूँ कि हिन्दी वाले कुछ कट्टर हैं । लेकिन आप जानते हैं कि तरह-

तरह के लोग होते हैं; कई बातें कहते रहते हैं। लेकिन उस भावना से काम नहीं होने वाला है, यह समझना चाहिए।

(३) **प्रश्न** : जैसे आप दक्षिण वालों को जबरदस्ती से हिन्दी सीखने के लिए मजबूर करते हैं, क्या आप ने किसी उत्तर वाले को दक्षिण की कोई भाषा सीखने के लिए मजबूर किया है ?

विनोबाजी : मैं खुद उत्तर वाला हूँ। मैंने जिस दिन वेलूर-जेल में सुबह चार बजे प्रवेश किया, उस वक्त जेल के अधिकारी मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे पूछा कि आपकी आवश्यकताएँ क्या हैं ? तो मैंने कहा मेरी दो आवश्यकताएँ हैं। एक तो मेरी दाढ़ी बढ़ी है, इसलिए मुझे हजामत करानी है, नाई चाहिए। दूसरा मुझे तामिल सिखाने वाला शिक्षक चाहिए। मैंने हजामत की, स्नान किया और कुछ खाने के पहले ही तामिल का अध्ययन शुरू किया। आप पूछ रहे हैं कि क्या आपने किसी उत्तर वाले को दक्षिण की भाषा सीखने के लिए मजबूर किया है, तो उसका उत्तर यह है कि मैंने अपने को ही मजबूर किया है।

★ ★ ★ ★

हिन्दी का भविष्य भारतीय नारी के हाथ में है। वड़े हर्ष की बात है कि नौकरी के लिए नर अंग्रेजी का पल्ला पकड़े रहें, परन्तु नारी की प्रवृत्ति हिन्दी-अध्ययन की ओर है। घबराने की कोई बात नहीं, आज की हिन्दी पढ़ी लड़कियाँ कल माताएँ होंगी तो उनके बच्चों को उनके दूध के साथ उनको हिन्दी भी मिलेगी।

(१) बिना पैसे दुनिया का पैदल सफर—लेखक, श्री सतीशकुमार; सुन्दर आवरण, चित्रों और मानचित्रों के अतिरिक्त ३२४ पृष्ठ : ३ रुपये ५० पैसे

उत्तर भारत से चि: सतीशकुमार और दक्षिण से उनके समवयस्क चि० प्रभाकर मेनन की गणना स्वतन्त्र भारत के पथ-प्रदर्शक नवयुवकों में होनी चाहिए। मोटर और विमान के युग में इन दोनों युवकों ने पद-यात्रा का व्रत लिया; भौतिक सुखों की व्यापक भूख के युग में ये दोनों युवक अपरिग्रही रहे; और व्यापक अंतर्राष्ट्रीय अविश्वास तथा सशस्त्र तैयारियों के मध्य दोनों युवक पदयात्रा द्वारा अधिक-से-अधिक जन-संपर्क करके उस व्यापक

ति ओर सौहार्द का संदेश देते रहे जिसकी सिद्धि के लिए गांधीजी के स-पुत्र अपना जीवन अर्पित किये हुए हैं ।

चि० सतीशकुमार और उनके साथी सहिष्णु, दृढ़व्रती और सफल ी तो रहे ही, जोड़ी के प्रवक्ता सतीशकुमार कुशल लेखक भी हैं। मुझे तौर पर किसी पुस्तक के आद्योपांत पढ़ने का धैर्य नहीं होता; परन्तु ात्रा की कहानी में इतना मजा आया कि उसे आदि से अंत तक पढ़े ा चैन नहीं मिली ।

पुस्तक का व्यापक प्रचार कई दृष्टियों से आवश्यक है। पाठकों को े संसार के विभिन्न देशों की जानकारी मिलती है; उन्हें एक त्वपूर्ण संदेश मिलता है; और वे इन दोनों की करनी के अनुकरण के प्रेरित होते हैं ।

हिंदी में यात्रा-साहित्य की बहुत कमी है। प्रस्तुत पुस्तक का ाशन इस अभाव की पूर्ति की ओर है। लेखक और प्रकाशक को हार्दिक ाई ।

* * *

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-१४ के प्रकाशन

हम सब एक पिता के बालक—शिक्षा, स्त्री जगत, आत्म-परिचय, ात्म संयम और अंतर्राष्ट्रीय शांति जैसे बारह विषयों पर गांधीजी के चारों के यूनेस्को द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी संग्रह का हिन्दी में अनुवाद।

ष्ठ संख्या, २६० : तीन रुपये

मूल लेख-संग्रह को मानव-मात्र की शिक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ से बद्ध यूनाइटेड नेशंस एजुकेशनल, साइंटिफिक ऐंड कल्चरल आर्गेनिज़ेशन मक संस्था ने अंग्रेजी में **आल मेन आर ब्रदर्स** शीर्षक से प्रकाशित किया सका हिन्दी संस्करण पाठक के सामने है और अब इसी संग्रह के फ्रेंच तथा निश संस्करणों के प्रकाशन की भी तजवीज है। गांधी साहित्य के सस्ते ाशन द्वारा नवजीवन ट्रस्ट देश की बहुमूल्य सेवा कर रहा है। अंग्रेजी करण में तब के उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की प्रस्तावना । सो हिंदी संस्करण में उक्त प्रस्तावना का अनुवाद भी है। यों तो गांधी हित्य बहुत विस्तृत है, परन्तु इस संग्रह में उन सब विषयों पर विभिन्न मों में गांधी जी के विचार इतने कौशल से संग्रहीत हैं कि वे क्रमवद्ध

दिखकर गांधी विचार का सर्वांगीण चित्रण करते जान पड़ते हैं। पुस्तक संग्रहणीय तथा पठनीय है।

(२) महामानव के विविध रूप—लेखक, सोमेश पुरोहित; पृष्ठ संख्या ६४ : ६० पैसे

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने गांधीजी की कथनी और करनी से संबद्ध दस शिक्षाप्रद और रोचक कहानियां बाल-शिक्षण के लिए प्रकाशित की हैं। कहानियां सच्ची हैं और उनमें नाटकीय रस भी है। बालोपहार के रूप में पुस्तक बहुत उपयोगी है। इनसे बच्चों को अहिंसा, दान, श्रम, मितव्यय और अछूतोद्धार की शिक्षा मिलती है। वे गांधीजी के पुजारी बनते हैं।

(३) महात्मा गांधी : पूर्णाहुति—प्यारेलाल कृत 'महात्मा गांधी : दि लास्ट फ़ेज' के प्रथम खंड का हिन्दी अनुवाद; अनुवादक, रामनारायण चौधरी; पृष्ठ संख्या, ४९१ : आठ रुपये

गांधीजी की अन्तिम जेल यात्रा 'भारत छोड़ो' आंदोलन के परिणामस्वरूप हुई। वह मई १९४४ में जर्मनी की पराजय के एक वर्ष पूर्व, जेल से मुक्त कर दिये गए। तब से उनके बलिदान (३० जनवरी, १९४८) तक की कहानी उनके निजी सचिव और साथी प्यारेलालजी ने बहुत सच्चाई तथा कौशल से अंग्रेजी के दो खंडों में प्रकाशित की है। पहले खंड का हिंदी अनुवाद पाठक के सामने प्रस्तुत है। दूसरे खंड का भी प्रकाशन होगा।

गांधीजी की पार्थिव लीला के इस अन्तिम भाग का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व समझाने के लिए प्यारेलालजी ने दूसरे अध्याय में उन महीनों की क़हानी भी कही है जब वह आगाखां महल में बन्द थे। इसके आगे किस प्रकार उन्होंने देश का विभाजन रोकने की कोशिश की, गृह कलह शांत करने का भगीरथ प्रयत्न किया, इस सबकी विस्तृत कहानी प्यारेलालजी ने अपने मूल पुस्तक में प्रस्तुत की थी। अपने निजी जीवन में ब्रह्मचर्य का उन्होंने किस प्रकार निर्वाह किया और इस संबंध में उनके प्रयोग किस प्रकार चलते रहे, इस नाजुक विषय पर भी प्यारेलालजी ने अपनी इस महत्वपूर्ण पुस्तक में चर्चा की है।

प्रत्येक विद्यालय में अंग्रेजी की पुस्तक होनी चाहिए और उसका हिंदी अनुवाद भी। इससे विद्यार्थियों को इस महामानव के जीवन के अंतिम

ों की जानकारी होगी, भारतीय स्वतन्त्रता की भूमिका से वे परिचित होंगे र अनुवाद के सहारे वे अंग्रेजी में अपनी ज्ञानवृद्धि भी कर सकेंगे ।

★ ★ ★

श्री मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली-६ के प्रकाशन

) नेहरू : राजनीतिक जीवनचरित—माइकेल ब्रीचर कृत नेहरू : ोलिटिकल बायोग्राफी का हरिवंशराय 'बच्चन' द्वारा हिंदी अनुवाद; िल्द, ३५४ पृष्ठ; छः रुपए

मूल पुस्तक सन् १९५९ में प्रकाशित हुई। फिर सन् १९६१ में क ने अपनी पुस्तक का संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किया। अनुवादक डा० वंशराय 'बच्चन' अंग्रेजी के पंडित हैं और हिन्दी संसार में कवि के रूप प्रसिद्ध हैं ही। संक्षिप्त संस्करण के अनुवाद में अनुवादक को विशेष ठिनाई का सामना करना पड़ना है। परंतु 'बच्चन' जी अंग्रेजी के विद्वान ने के कारण कुशल अनुवादक भी हैं। इस कारण प्रस्तुत पुस्तक अनुवादित हीं जान पड़ती।

नेहरूजी अब हमारे मध्य नहीं हैं। हमारी स्वतन्त्रता के जन्म से मरण त वह भारतीय राष्ट्र के कर्णधार रहे। भारतीय स्वतन्त्रता को अपने शव और बाल्यकाल में एक अधिनायक की जरूरत थी; सो भारतीय नता उन्हें अपना पितृव्य मानकर उनकी निरंतर पूजा करती रही। उन्हें ना परम पूज्य अधिनायक ही मानती रही। परंतु जवाहरलालजी लोक-ष्ठा से कभी विचलित नहीं हुए, जिसके परिणाम देश के लिए अच्छे हुए ौर बुरे भी। इस दृष्टि से पुस्तक का अन्तिम अध्याय पठनीय है और चारणीय भी। यह पुस्तक विद्यार्थियों के काम की यों है कि इसके सहारे अंग्रेजी का मूल ग्रंथ भली-भांति समझ सकेंगे और परोक्ष रूप में वे नुवाद के लिए प्रशिक्षित भी होंगे।

२) संस्कृत और संस्कृति—लेखक डा० राजेन्द्रप्रसाद; सजिल्द और चित्र, पृष्ठ १६१ ।

प्रस्तुत पुस्तक स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद के उन व्याख्यानों का संशोधित ौर परिवर्धित संस्करण है जो उन्होंने २५ वर्ष पहले मिथिलेश महेश रमेश याख्यानमाला के सिलसिले में दिये थे। संशोधित और परिवर्धित संस्करण ी तैयारी में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का योगदान लेखक महोदय नें

स्वीकार किया है। सर्वश्री मोतीलाल बनारसीदास की गणना संस्कृत वाङ्मय के शीर्षस्थ प्रकाशकों में है। अतएव इस पुस्तक का प्रकाशक इन्हें होना ही चाहिए था।

प्रस्तुत पुस्तक से बहुत संक्षेप में हमें उस सांस्कृतिक निधि का परिचय मिलता है जो संस्कृत वाङ्मय से हमें उपलब्ध है। आधुनिक युग विज्ञान का माना जाता है। सो दूसरे अध्याय में लेखक महोदय ने १३ प्रकरणों के भीतर हमें बताया है कि विज्ञान के किन-किन अंगों में हमारे पूर्वजों ने खोज और अन्वेषण की पहल की। इसी प्रकार तीसरे अध्याय में इतिहास विषयक सामग्री संकलित है।

उपसंहार शिक्षक बन्धुओं के लिए विशेष काम का है, क्योंकि इसमें संकेत दिये गये हैं जिनसे अनुकूलता करके हम संस्कृत ज्ञान के आधार पर आधुनिक युग की बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते है।

पुस्तक संग्रहणीय है और पठनीय भी।

(३) भारत में जनतंत्र के नवीन आदर्श—मूल लेखिका वेरा माइकेल्स डीन की पुस्तक का राधेश्याम शर्मा द्वारा हिन्दी अनुवाद; २५२ पृष्ठ; पांच रुपये

हमारे देश में एक प्रकार की स्थानीय जनतांत्रिक शासन की परंपरा अवश्य रही; परन्तु अपने संविधान में हमने जिस प्रकार की लोकतन्त्रीय व्यवस्था अपनाई है, वह ब्रिटेन की देन है। हम इस नयी व्यवस्था के अन्तर्गत कितना विकास कर रहे हैं, कितने सफल या विफल हो रहे हैं, इस पर विदेशी विचारक की सूझ हमारे लिए विचारणीय है। यह सूझ हमें लेखिका की इस गवेषणापूर्ण पुस्तक से मिलती है। हमने बहुत कठिन मार्ग पकड़ा है। ब्रिटेन का संसदीय लोकतंत्र पूंजी-रक्षा पर आधारित है। इस लोकतन्त्र में पंचवर्षीय योजनाएँ नहीं है जो संसार को अधिनायकी साम्यवाद की देन हैं। हमने ब्रिटेन का लोकतंत्र अपनाया है और रूस की पंचवर्षीय योजनाएँ। दोनों के समन्वय का भीषण प्रयत्न हम कर रहे हैं, ऐसे समय जब देश पर दो पड़ोसी देशों के दांत लगे हैं। इस भूमिका में प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन राजनीति के विद्यार्थियों के लिए अतीव आवश्यक है। पुस्तक विषय विद्यार्थियों के लिए पठनीय है, तो वयस्क मतदाताओं तथा उनके नेताओं के लिए विचारणीय भी है।

सर्वश्री श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, हास्पिटल रोड, आगरा के प्रकाशन

(१) माध्यमिक समाजशास्त्र—लेखक, रामबिहारी सिंह तोमर; सजिल्द; २९७ पृष्ठ; २ रुपये ५० पैसे

(२) भारतीय सामाजिक संगठन—लेखक, रामबिहारी सिंह तोमर; सजिल्द; २०० पृष्ठ; २ रुपये ५० पैसे

उच्चतर माध्यमिक या उत्तर प्रदेश की इंटरमीजिएट कक्षाओं के ऐच्छिक विषयों में समाजशास्त्र को जगह दी गई है। नया विषय है। इस विषय पर पाश्चात्य देशों में जो अध्ययन हुआ है और जो ग्रन्थ लिखे गये हैं उनके आधार पर यहां पाठ्य-क्रम बनाये गये हैं और इन पाठ्यक्रमों के अनुसार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इस दृष्टि से दोनों पुस्तकें उपयोगी हैं।

लेखक का पाठ्यक्रम के बाहर जाना खतरे से खाली नहीं। परन्तु पाठ्य-क्रम के निर्माताओं के लिए समझना जरूरी है कि समाजशास्त्र की पढ़ाई बेकार है यदि युवक-युवती यह विषय परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए ही पढ़ते हैं, उन्हें विषय के अध्ययन से समाज सेवा की प्रेरणा नहीं मिलती।

(३) आधुनिक शिक्षा शास्त्र—लेखक, आई० बी० वर्मा तथा एल० एन० वर्मा; सजिल्द; १५३ पृष्ठ; २ रुपये ५० पैसे

ट्रेनिंग कालेजों और नार्मल स्कूलों के काम की यह पुस्तक हिन्दी में शिक्षण साहित्य के अभाव की पूर्ति करती है। विभिन्न प्रकरणों के प्रतिपादन में लेखकों के भारतीय स्थिति के आधार पर स्वतन्त्र चिन्तन की झलक मिलती है, जो प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता है।

(४) सामान्य मनोविज्ञान—लेखक, आर० डी० गुप्त; सजिल्द; २७२ पृष्ठ; चार रुपये पचास पैसे

उत्तर प्रदेश की इंटरमीजिएट कक्षाओं में मनोविज्ञान को ऐच्छिक विषयों में जगह दी गई है। पुस्तक का प्रणयन विद्यार्थियों के लिए किया गया है। अतएव प्रत्येक प्रकरण के अन्त में उसका सारांश दिया गया है और उस पर प्रश्न पूछे गये हैं। मनोविज्ञान का शरीर रचना से घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव यथा-स्थान यह सम्बन्ध चित्रों द्वारा समझाया गया है। यों यह पुस्तक सब प्रकार से उपयोगी हो गयी है।

(५) शिक्षा मनोविज्ञान के मूलतत्व—लेखक, आई० बी० वर्मा तथा एल० एन० वर्मा; सजिल्द; २५३ पृष्ठ; दो रुपये पचास पैसे

मनोविज्ञान के शैक्षिक रूप का अध्ययन शिक्षकों के लिए आवश्यक है। अतएव प्रशिक्षण विद्यालयों में इस विषय की पढ़ाई की व्यवस्था है। प्रस्तुत पुस्तक इस आवश्यकता की पूर्ति करती है। प्रत्येक प्रकरण के पश्चात् प्रश्न और पुस्तक के अन्त में शब्दावली देकर लेखकों ने इसे विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी बना दिया है।

★ ★ ★

विश्व के महान शिक्षाशास्त्री—लेखक, जयजयराम शाक्य; प्रकाशक, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; सजिल्द; २०४ पृष्ठ; ३ रुपये ५० पैसे

शिक्षकों के प्रशिक्षण का एक विषय है शिक्षा का इतिहास। यह विषय संसार के प्रमुख शिक्षकों की जीवनियों और उनके शिक्षण दर्शन के संदर्भ में पढ़ाया जाता है। समीक्षक के प्रशिक्षण काल में किसी भारतीय को महान शिक्षकों की सूची में कोई जगह प्राप्त न थी। तब रूसो, पेस्टालाजी, हरबार्ट और फ्रोबेल ही शिक्षकवर्ग के पथ-प्रदर्शक थे। अब इटली की मांटेसरी, संयुक्तराज्य के जान डिवी और भारत के रवीन्द्र, गांधी तथा विनोबा को भी इस सूची में जगह मिल गई है। लेखक ने एक-एक अध्याय प्रत्येक को दिया है।

भारत में एक शिक्षा-शास्त्री हुए हैं जिन्होंने अपनी बाल शिक्षण विधि में फ्रोबेल, मांटेसरी तथा जान डिवी के दर्शन का समन्वय सिद्ध किया। यह थे भावनगर के गिजूभाई बधेका। यह शिक्षक प्रचारक न थे जिस कारण इनकी धूम नहीं है। परन्तु बाल शिक्षण में इन्होंने सफल प्रयोग किये जिनकी ज़ानकारी आजकल के शिक्षकों को होनी चाहिए। अतएव सुझाव है कि अगले संस्करण में इन्हें भी जगह दी जाय। इनकी दो पुस्तकें **दिवास्वप्न** और **प्राथमिकशाला में भाषा शिक्षा** प्रारम्भिक शिक्षालयों के शिक्षकों के लिए विशेष महत्व की हैं।

★ ★ ★

ा में क्रियात्मक अनुसंधान–लेखक, कामताप्रसाद पांडेय;

ाशक–विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा; सजिल्द;
रिशिष्ट समेत १६२ पृष्ठ; तीन रुपये

इस पुस्तक का उद्देश्य है शिक्षालयों की शिक्षण प्रक्रिया को एक नयी ा दिखाना। शिक्षक का काम घिसी-पिटी विधियों से विद्यार्थियों को य पढ़ाने ही का नहीं है। उस पर एक और दायित्व भी है और यह है ते विद्यार्थियो की प्रतिक्रियाओं पर अनुसंधान करना और इस मार्ग से रंतर बदलती परिस्थितियों के अनुकूल शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यक परिवर्तन ते रहना। अनुसंधान की प्रक्रिया समझाना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। क्षण महाविद्यालयों में इस विषय को मान्यता मिली हुई है। परन्तु ना यथेष्ट नहीं है। सब नहीं, तो प्रत्येक राज्य के प्रत्येक स्तर र चुने विद्यालयों में शिक्षकों को क्रियात्मक अनुसंधान की सुविधा लनी चाहिए। तभी प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इस विषय की मान्यता र्थक होगी। उदाहरणार्थ, शिक्षा क्षेत्र में गांधी दर्शन पूजनीय ही रह गया है, सक्रिय नहीं हो पाया है, इसी कारण कि इस दर्शन पर क्रियात्मक अनुसंधान की कोई व्यवस्था अभी तक नहीं हो पाई है।

पांडेय जी अपनी कृति के लिए बधाई के पात्र हैं।

* * *

किताब महल, प्रयाग से प्रकाशित अंग्रेजी की पुस्तकें

Secondary Education : The Democratic Approach—

लेखक, डा० राघव प्रसाद सिंह; सजिल्द; १४६ पृष्ठ; पांच रुपये

लेखक महोदय यह पुस्तक हिन्दी में लिख सकते थे, परन्तु प्रथम संस्करण अंग्रेजी में ही है, क्योंकि इस पुस्तक के विषय में दीक्षा इन्हें डा० जोजेफ ए० लौवेरीज़ नाम अंग्रेज विद्वान से मिली है जिनका प्राक्कथन पुस्तक में उद्धृत है।

पुस्तक का विषय भारतीय शिक्षा के नीति-निर्माताओं के लिए विचारणीय है। देश के स्वतन्त्र होने के समय से शिक्षा का विस्तार तो बढ़ा है, परन्तु विद्यार्थियों के मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास का स्तर घटा है। मशीन संचालित व्यवसायों की मात्रा तो बढ़ी है, परन्तु इन

व्यवसायों को उस स्तर के संचालक नहीं मिल रहे हैं जो अपने चरित्र तथा बुद्धिबल से राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा और निपुणता बढ़ा सकते। ग्रामीण क्षेत्रों तक माध्यमिक शिक्षा की सुविधा पहुँचने पर पढ़े-लिखे युवक पैतृक कृषि से मुख मोड़ कर नगरों की कुर्सी वाली नौकरियों की ओर भागते हैं। यह प्रगति चिंतनीय है।

माध्यमिक सिक्षा के अधिकांश क्षेत्र पर गैर सरकारी संस्थाओं का नियंत्रण है। ये संस्थाएँ परतन्त्र भारत में विदेशी शासन से बहुत-कुछ मुक्त रह कर यथेष्ट राष्ट्रीय सेवा कर सकीं, परन्तु स्वतन्त्रता के संदर्भ में वही संस्थाएं अब जाति और अर्थ भेद की पोषक हैं, जो लोकतंत्रीय उद्देश्य के एकदम विपरीत है।

शिक्षा के साथ शिक्षक के प्रति अविश्वास पर आधारित परीक्षा प्रणाली शिक्षण प्रक्रिया कुंठित करती है, शिक्षक की स्वतन्त्रता की बाधक है, शिष्य की जिज्ञासा का दमन करती है और अनुसंधान तथा प्रयोग पर रटाई को वरीयता देती है।

लेखक महोदय ने तुलना के लिए संयुक्त राज्य के उदाहरण दिये हैं। अमरीकी शिक्षा प्रणाली लोक निष्ठा पर आधारित है। परन्तु कई अर्थों में रूसी शिक्षा प्रणाली अधिक लोकतांत्रिक है, क्योंकि वहां नीचे से ऊपर तक विद्यार्थियों से फीस नहीं ली जाती, सभी नागरिकों को शिक्षा की समान सुविधा प्राप्त है, जिस कारण रूसी अब प्रविधि तथा विज्ञान में अमरीकियों के पीछे नहीं।

पुस्तक का हिन्दी संस्करण वांछनीय है। नीति-निर्माता विचार के लिए तभी वाध्य होंगे जब सुधार का स्वर नीचे से बुलन्द होगा और यह तभी होगा जब मातृभाषा के माध्यम से जनता की दृष्टि खोलने में हम सफल होंगे।

* * *

A Survey of Educational Problems and Experiments in India

—लेखक, डा० सरयूप्रसाद चौबे; सजिल्द; १७७ पृष्ठ; सात रुपये पचास पैसे

चौबे जी का अधिकार दोनों भाषाओं पर है। परन्तु हिन्दी को वह अंग्रेजी पर वरीयता देते हैं, जिस कारण प्रस्तुत पुस्तक इनकी **भारतीय शिक्षा की समस्याएं और परीक्षण** का अंग्रेजी संस्करण है।

चौबे जी ने अपनी पुस्तक के विषय में सुझाव माँगे हैं। प्रत्येक ला के अन्तर्गत वस्तुस्थिति का विवरण यथेष्ट विस्तार से किया गया है। क के चिंतन की मात्रा अध्ययन से अधिक रही है। अतएव नीचे लिखे विचारणीय है :—

वयस्क शिक्षा : समस्या है वयस्क और शिक्षक का अवकाश काल ने की। ग्रामीण वयस्क को सबसे अधिक अवकाश रबी की फसल कटने द मिलता है। वही नगरवासी शिक्षकों, न्यायाधीशों और वकीलों का वकाशकाल है। शिक्षिताएं विवाहित होकर ४० वर्ष की अवस्था प्राप्त पर मातृत्व के दायित्वों से बहुत-कुछ मुक्त हो जाती हैं। वे वयस्क को ५-६ घंटे का दैनिक समय न दे सकें, परन्तु दो-तीन घंटे का समय ही सकती हैं। सुविधा और सेवा शक्ति का समन्वय सिद्ध करना शैक्षिक निर्माताओं का काम है।

नारी शिक्षा : नारी शिक्षा को हम बहुत व्ययसाध्य बनाये हुए हैं। कियों को विद्यालय तक लाने के लिए, उन्हें विद्यालय से घर तक पहुँचाने लिए सवारियाँ हमने आवश्यक मान रखी हैं। लड़कियों को ७-८ घंटे नित्य से बाहर रहना पड़ता है, उनके भोजन की व्यवस्था इस बीच नहीं हो ती, उनके शारीरिक पोषण में हम बाधा डालते हैं, उन्हें सुकुमार बनाते और जन-संपर्क से अलग रखकर उनकी मनोवृत्ति हम कमजोर करते ते हैं।

किशोरावस्था तक पहुँचने पर लड़कियों के लिए वे खेल और व्यायाम के नहीं रहते जो लड़कों के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं। परन्तु हम कियों को पैराई सिखाने से हिचकते हैं और दौड़ों में, हाकी मैचों में, उन्हें म्मलित होने देते हैं। इस पर भी नीति-निर्माता विचार करें।

सर्वोच्च शिक्षा : चौबे जी ने सर्वोच्च शिक्षा के माध्यम पर और क्षा प्रणाली पर तो अपनी राय प्रकट की है परन्तु आपने यह नहीं बताया कि विश्वविद्यालयों में कितनी अधिक छुट्टियाँ होती हैं और इन छुट्टियों कितना अधिक दुरुपयोग होता है। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के ध्यक्ष सर्वोच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की माँग करते हैं। सो हुत उचित है। परन्तु इस स्तर तक हमारे युवक-युवतियाँ किस प्रकार हुँचें, यदि शिक्षक के सामने शिष्यों की विशाल संख्या की समस्या बनी हती है, शिष्यों को पढ़ाई के दिन बहुत कम मिलते हैं, और उनकी छुट्टियों कोई उपयोग नहीं होता। विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है, नका शैक्षिक स्तर घटता जा रहा है। यह वस्तुस्थिति भी चिंतनीय है।

माध्यमिक शिक्षा : माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र पर गैर सरकारी प्रबन्ध का अभिशाप है। किसी समय गैरसरकारी विद्यालयों को आदर्शवादी और राष्ट्रीय भावनाओं की उमंग लिए शिक्षक प्राप्त होते थे। देश के स्वतन्त्र होने के समय से वही विद्यालय अब कूटनीति, सांप्रदायिकता और अनीति के गढ़ बनते जा रहे हैं। ये विद्यालय मान्य हैं क्योंकि सरकार के लिए ये अपेक्षाकृत सस्ते हैं। प्रारंभिक और सर्वोच्च शिक्षा के बीच माध्यमिक शिक्षा की निर्बलता पूरी शिक्षा-श्रृंखला को निर्बल बनाये हुए हैं।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा तथा अपाहिज शिक्षा : लेखक महोदय ने शिक्षा के इन क्षेत्रों के लिए पुस्तक में जगह निकाल ली है। परन्तु जिस देश में संविधान से निदेशित प्रारंभिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायी है, वहाँ पूर्व प्राथमिक शिक्षा तथा अपाहिज बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था संपन्न परिवारों के बच्चों ही के लिए पायी जाती है। अन्धकार के विशाल क्षेत्र में उधर-उधर बिखरे थोड़े-से प्रकाश-पुंजों की संख्या और सेवा नगण्य है।

प्रारम्भिक शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या इतनी भीषण है कि जिस विदेशी धारणा के हिसाब से हम इसके हल पर विचार करते आ रहे हैं वह हमारी अर्थव्यवस्था के लिये अत्यधिक भारी हो जाती है। उत्तर प्रदेश के आँकड़े ही लीजिए। यदि अनिवार्य और निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा हम ५ वर्ष ही रखें, तो हमें कम से कम १२० लाख बच्चे पढ़ाने हैं। इन्हें पढ़ाने के लिए कम-से-कम ४ लाख शिक्षक आवश्यक होंगे। यदि प्रत्येक प्रशिक्षित शिक्षक से पूरे समय की हम माँग करते हैं, तो उसे कम-से-कम सौ रुपये प्रति मास मिलने चाहिए। यों उत्तर प्रदेशीय सरकार का प्रारम्भिक शिक्षक के वेतन पर ही ४८ करोड़ का वार्षिक व्यय बैठता है जो करदाता की सामर्थ्य के बाहर है। इस समस्या का हल संभव है यदि नीति निर्माता स्वतन्त्र मानस से चिंतन कर सकें।

शारीरिक शिक्षा और अनुशासन : लेखक महोदय का वस्तुस्थिति-निरूपण सही है। परन्तु देश की जलवायु के विपरीत पढ़ाई का समय बने रहने के कारण योजनाओं से किस स्तर के परिणाम अभी तक निकले हैं, यह विचारणीय है।

लेखक महोदय को समीक्षक की हार्दिक बधाई। आशा है कि अगले और हिन्दी संस्करण में उपर्युक्त आलोचना आपके ध्यान में रहेगी।

—का० दा०

सम्पादकीय

विवाद की रूपरेखा—

शिक्षा का घनिष्ट सम्बन्ध उस भाषा से है जिसके माध्यम से शिक्षा दी है, उस लिपि से भी है जिसमें वह भाषा छपकर, लिखी जाकर, व्यक्त है। भाषायें अपनी-अपनी लिपियाँ अपनाये हुए हैं। इनमें सबसे कठिन लिपियाँ जिन्हें चीनी-जापानी अपनाये हैं। इनसे कुछ कम कठिन हैं अरबी लिपियाँ जो हिन्देशिया, मलाया, पश्चिमी पाकिस्तान, ईरान इराक से मारक्को तक अरब प्रदेशों में चालू हैं। तुर्की में अरबी लिपि रही। परन्तु क्रान्ति के परिणामस्वरूप वहाँ अब रोमन लिपि चालू है। लिपि में फजूल व्यंजनों की बहुतायत है और आवश्यक स्वरों तथा व्यंजनों कमी है। यह युग शक्ति संचालित मशीन का है और मशीन इस लिपि सेवा कर नहीं पाती। रोमन लिपि से स्वरों, व्यंजनों की अच्छी अभि- नहीं होती, परन्तु मशीन के लिए बहुत उपयुक्त है। लैटिन भाषा की व्यक्ति रोमन लिपि में हुई, लैटिन सभ्यता पश्चिमी योरप पर छा गई कालांतर में पश्चिमी योरप पूरे संसार पर छा गया। अतएव रोमन का क्षेत्र जितना विशाल है उतना किसी अन्य लिपि का नहीं।

वाणी और लिपि की दृष्टि से संस्कृत सबसे अधिक वैज्ञानिक है और चीन भी। सर्वोच्च अध्ययन में संस्कृत को प्रायः सभी देशों में स्थान प्राप्त । अतएव संस्कृत की देवनागरी लिपि से संसार के प्रायः सभी दार्शनिक चित हैं। जनसंख्या की दृष्टि से, साक्षरता की दृष्टि से नहीं, भारत का र में दूसरा पद है, संस्कृत उत्तरी भारत की सभी भाषाओं की जननी और दक्षिण की चारों भाषाएँ संस्कृत से थोड़ी-बहुत प्रभावित हैं। यों चितों में संस्कृत भाषा तथा देवनागरी लिपि से परिचितों का भारी पात है।

देवनागरी लिपि वैज्ञानिक होते हुए भी दोष-मुक्त नहीं। मशीन के यह रोमन लिपि जैसी उपयुक्त नहीं और इस लिपि में भी अभी तक ऐसे अक्षर चालू हैं जिनकी कोई जरूरत नहीं। तुलसीदास जी ने कहीं 'ज्ञ' और 'ऋ' का प्रयोग रामचरितमानस में नहीं किया। 'ज्ञ' और भी जरूरी नहीं। हिन्दी और मराठी भाषाएँ देवनागरी लिपि अपनाए

हुए है। देश में चार प्रमुख भाषाएँ हैं जो संस्कृत की आत्मजा नहीं और फारसी तथा अरबी से प्रभावित उर्दू की अभिव्यक्ति के लिए भी देवनागरी को सक्षम होना है। अतएव भाषा-विज्ञान के विद्वानों को देवनागरी लिपि के वे वैज्ञानिक सुझाव देने हैं जिनसे यह लिपि देश की सभी भाषाओं की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम हो सके।

काल चक्र की प्रगति—

देश में भाषा और लिपि भेद उस लम्बे अतीत की विरासत है जब पारस्परिक संपर्क की असुविधाएँ थीं, देश बहुत-से राज्यों में विभाजित था। सन् १९४७ से देश स्वतन्त्र है और कश्मीर से कन्याकुमारी तक, गुजरात से असम तक एक शासन-सूत्र से आबद्ध है। देश के अधिकांश पर लंबे काल तक दिल्ली से मुस्लिमों का शासन होता रहा, जिस कारण उर्दू का आस्तित्व हुआ और विकास भी। फिर अंग्रेजों ने सारा भारत एक सूत्र में बाँधा और देश को मशीन युग की सुविधाएँ प्रदान कीं, तो शासन की भाषा अंग्रेजी हुई और देश की सभी भाषाओं को प्राणदान मिला। देश के स्वतन्त्र होने के समय से अंग्रेजी का प्रभाव घटता जा रहा है, यद्यपि उसके हिमायती स्तर की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त है। अतएव इसकी मान्यता भारत में रहेगी, परन्तु उतनी ही जितनी उसे रूस तथा जापान जैसे उन्नत राष्ट्रों में प्राप्त है, आज से १७ वर्ष पहले जैसी नहीं।

यह सर्वमान्य है कि मातृभाषा शिक्षा की माध्यम होना चाहिए। परन्तु मातृभाषा पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदलती रहती है। जो लड़कियाँ आज पाठशालाओं में खड़ी बोली की हिन्दी पढ़ रही हैं, इस हिन्दी के माध्यम से अन्य विषय भी पढ़ रही हैं, वे माता होकर अपने बच्चों से खड़ी बोली की हिन्दी बोलेंगी। अभी देश में शिक्षा का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाया है, अतएव जनपदीय बोलियाँ जीवित हैं। दो पीढ़ियों के भीतर हिन्दी भाषी राज्यों में जनपदीय बोलियाँ मान्य हिन्दी को प्रभावित करती हुई उससे मिल जायँगी।

अहिन्दी भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक रूप मान्य होंगे। लड़कियाँ क्षेत्रीय भाषा के साहित्यिक रूप का अध्ययन करेंगी, उसके माध्यम से अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करेंगी। अधिकांश भारतीय लड़कियों को शिक्षित होकर गृह-भार वहन करना है, मातृत्व-धर्म का निर्वाह करना हैं, केन्द्रीय नौकरियों के लिए उन्हें तैयारी नहीं करनी। इनके लिए तो

का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए । ये अपनी मातृभाषा के साथ हिन्दी पढ़ रही हैं और संस्कृत भी । इन्हें तो भारतीय संस्कृति की रक्षा उसका विकास करने की, सुविधा दी जाती रहे । अतएव वे जब माता ब उनके बच्चे वह क्षेत्रीय भाषा बोलेंगे जो उनकी माता ने अपने य में पढ़ी है । उस भाषा के जनपदीय रूप वहाँ भी विस्मृत हो जायँगे; बाल्यकाल ही से वे हिन्दी समझने लगेंगे; यदि उसे भली प्रकार भी न पायें । तब हिन्दी उनके लिए इतनी अपरिचित न रह जायगी अब है ।

इस देश में भाषाओं की संख्या १७९ है और उसकी बोलियों की ५५४ तक जाती है । शिक्षा का व्यापक प्रचार हो सका तो देश में वही मान्य रह जायँगी जिन्हें राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त रहेगी । इन में छः राज्य—उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली हिमाचल प्रदेश—हिन्दी को मान्यता दिये हुए हैं और पंजाब में हिन्दी जाबी से साझा है । उर्दू और संक्रत को संविधान में राष्ट्रीय भाषाओं णी में रख दिया गया है । परन्तु उर्दू या संस्कृत किसी भारतीय राज्य ाषाएँ नहीं और उर्दू तो देवनागरी लिपि में व्यक्त होने पर हिन्दी के ारे भारत में मान्य हो सकेगी । इनके अतिरिक्त असमिया, तेलुगु, ा, कश्मीरी, मलयालम, गुजराती, बँगला, तमिल, मराठी और कन्नड पने-अपने साहित्यिक रूप में मान्य होंगी । पंजावी मूल रूप में हिन्दी एक बोली ही है । उसका अलग अस्तित्व तभी तक है जब तक वह एक लिपि अपनाये है । तत्पश्चात् उर्दू की भाँति पंजाबी भी हिन्दी के साथ की भाषा प्रभावित करेगी ।

प्रस्तुत सामग्री से प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए कि हिन्दी और देवनागरी की व्यापकता बढ़ रही है और अंग्रेजी की मान्यता घट रही है, तो ीय भाषाएँ भी विकासशील हैं ।

न्दी नागरिकों की शंकायें—

इस विशेषाँक में एक लेख है **दक्षिण में हिन्दी का विरोध** । इसे हमें न्दी भारतीय नागरिकों की शंकाओं का प्रतीक मानना चाहिए । राष्ट्रीय ा के विकास के लिए यदि देश में एक भाषा की व्यापकता जरूरी है, अधिक जरूरी है कि यह व्यापकता अहिन्दी भाषाओं के हार्दिक सहयोग से हो ।

इस देश में सर्वोच्च पढ़ाई तो सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए

ही होती है । सरकारी नौकरियाँ प्रान्तीय होती हैं और केन्द्रीय भी, । केन्द्रीय नौकरियाँ अधिक महत्व की होती हैं । इन नौकरियों के लिए परीक्षाएँ होती हैं । इन परीक्षाओं का माध्यम अभी तक अंग्रेजी है । हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित की जाती है और इन परीक्षाओं में माध्यम के लिए अंग्रेजी के साथ हिन्दी का विकल्प मान्य होता है, तो अहिन्दी भाषी प्रत्याशी शंका करते हैं कि प्रतियोगिता में हिन्दी भाषिओं को मातृभाषा की सुविधा मिलेगी और अहिन्दी भाषियों को विदेशी माध्यम की असुविधा, तो हिन्दी भाषी प्रतियोगिता में सफल होंगे और और अहिन्दी भाषी पीछे रह जायँगे । यों उन पर अन्याय होगा । प्रशासनिक योग्यता में भी वही आगे रहेंगे, क्योंकि राष्ट्रभाषा वही होगी जो उनकी मातृभाषा है ।

अतएव वे चाहते हैं कि अंग्रेजी प्रतियोगी परीक्षाओं का माध्यम रहे या फिर सभी क्षेत्रीय भाषायें परीक्षा की माध्यम हों । यदि प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी का माध्यम मान्य रहता है, तो विश्वविद्यालयों में हिन्दी या क्षेत्रीय भाषा का माध्यम चालू न हो सकेगा, भले ही विदेशी भाषा के ज्ञान का स्तर गिरता चला जाय, इसके माध्यम से विषयोचित ज्ञान का स्तर भी अवनत होता रहे ।

उच्च स्तरीय हल की रूपरेखा—

देश पर कांग्रेस दल का राज्य है । अतएव इस दल की कार्यकारिणी समिति द्वारा भाषा विवाद पर स्वीकृत प्रस्ताव विचारणीय है ।

समिति चाहती है कि प्रत्येक विद्यालय में शिक्षा की माध्यम वह भाषा हो जिसे उस विद्यालय के राज्य में मान्यता मिली हुई हो । विद्यार्थी उस राज्य की भाषा के साथ उसके साहित्य से भी परिचित हों । इसके अतिरिक्त वे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करें । यदि उनके राज्य में हिन्दी मान्य है तो वे किसी क्षेत्रीय भाषा की जानकारी प्राप्त करें । यदि उनका राज्य अहिन्दी भाषी है, तो वे हिन्दी सीखें ।

यहाँ से सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य संघर्ष प्रारम्भ होता है । संविधान में उर्दू को मान्यता मिली है और संस्कृत को भी । तो हिन्दी वाले हिन्दू संस्कृत लेते हैं और मुसलमान उर्दू लेते हैं । साहसी हुए तो उन्होंने मराठी लेली, क्योंकि दोनों की लिपि एक ही है । परन्तु विभिन्न लिपि की किसी द्रविड़ भाषा पढ़ने की उमंग उनमें नहीं होती, कहते हैं कि आगे चलकर यह उनके दैनिक व्यवहार में भी नहीं आयेगी ।

अहिंदी भाषी राज्यों के विद्यार्थी व्यावहारिक सुविधा पड़ोसी राज्य ाषा में ही देखते हैं। मद्रास में तमिल और तेलुगु भाषी एक-दूसरे के ो हैं। उन्हें तेलुगु या कन्नड या मलयालम में ही अपनी व्यावहारिक ा दिखती है, हिन्दी में नहीं।

स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी को मान्यता इसीलिए तो मिली हुई है कि िक ज्ञान का जो भंडार हमें अंग्रेजी से मिलता है, वह किसी भारतीय ा से नहीं। तो ज्ञान भंडार के नाते अंग्रेजी की जगह लेकर ही हिन्दी अखिल भारतीय मान्यता सिद्ध हो सकती है। सो उद्योग अभी तक हुआ है।

उक्त उद्योग का मार्ग कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने खोल दिया ह प्रस्ताव पारित करके कि लोक सेवा आयोग की परीक्षायें सभी राष्ट्रीय ाओं के माध्यम से दी जा सकेंगी।

यहाँ भी सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य संघर्ष है। चौदह भाषाओं ारह लिपियाँ हैं। परीक्षा में स्तर की समानता जरूरी है, यदि नौकरियाँ ंख्या के अनुपात से नहीं बांटी जातीं। प्रश्न-पत्र तो अनुवादित होकर ाशियों को दिये जा सकते हैं; परन्तु वे परीक्षक कहाँ उपलब्ध होंगे, जो े विषय के विशेषज्ञ होकर चौदह भाषाओं और बारह लिपियों के कार भी हों ?

लोक सेवा आयोग की चालू परीक्षाओं में किसी क्रांतिकारी परिवर्तन ा समान स्तर की संभावना दिखती नहीं। ऐसे परिवर्तन की रूपरेखा ेषज्ञों के सामने नहीं। अतएव नौकरियों की अनुपातिक बँटाई का विकल्प स्वीकृति के लिए सामने जाता है।

इस विकल्प की स्वीकृति होने पर उन्हीं राज्यों के विद्यार्थियों और के पालकों को स्वार्थ हानि दिखती है जहाँ से हिन्दी का उग्र विरोध हुआ है। िल और बंगाली नवयुवक मेधावी हैं, अंग्रेजी में उनकी गति अपेक्षाकृत ी हुई है। केन्द्रीय प्रतियोगिताओं में वे अधिक सफल होते हैं। नौकरियों ी अनुपातिक बंटाई होने पर उन्हें स्वार्थहानि दिखती है। जनसंख्या के धार पर नौकरियों की अनुपातिक बंटाई का सिद्धान्त इन राज्यों की तिर अभी न भी चालू हो और कुछ वर्ष तक हिसाब से अधिक नौकरियाँ के लिए सुरक्षित रहें; परन्तु परीक्षाओं का माध्यम तो मान्य हो ही जाय।

यों विश्वविद्यालयों के लिए शिक्षा का माध्यम बदलना संभव हो

जायगा, तो हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च स्तरीय साहित्य का निर्माण भी सम्भव होगा ।

उच्च स्तरीय निर्माण योजना—

निर्माण योजना की पहल एक-दूसरे से मिलकर देशके हिन्दी भाषी राज्यों को केन्द्रीय शासन के सहयोग से सक्रिय करनी है ।

हिन्दी भाषी राज्यों में विश्वविद्यालयों और सर्वोच्च स्तर की शिक्षण संस्थाओं की संख्या ३६ तक पहुँचती है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन को राष्ट्रीय संस्था का पद मिल गया है । भारतीय शिक्षक संघ को केन्द्रीय शासन का समर्थन प्राप्त हैं, सर्वोच्च स्तर तक की शिक्षण संस्थाएँ उसके सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत हैं और वह अब हिन्दी सेवा की ओर उन्मुख है । अतएव दोनों मिलकर हिन्दी भाषी राज्यों के मुख्य मंत्रियों और शिक्षा मन्त्रियों की एक गोष्ठी आयोजित करें जिनमें नीचे लिखे प्रस्तावों पर विचार और निर्णय हो—

हिन्दी क्षेत्र की सर्वोच्च शिक्षण संस्थाएँ

विश्वविद्यालय

आगरा, अलीगढ़, इलाहाबाद, बनारस, भागलपुर, बिहार, दिल्ली, गोरखपुर, खैरागढ़, इन्दौर, जबलपुर, कृषि (जबलपुर), ग्वालियर, जोधपुर, दरभंगा, कुरुक्षेत्र, लखनऊ, बोधगया, लुधियाना, चंडीगढ़, पटना, जयपुर, उदयपुर, पंतनगर, वाराणसी, उज्जैन—३०

समान स्तर प्राप्त

पिलानी, गुरुकुल कांगड़ी, कृषि (नई दिल्ली), अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन (नई दिल्ली), जामिआ मिल्लिया, काशी विद्यापीठ—६

(१) इन राज्यों से विद्वानों की एक समिति मनोनीत हो जो सभी हिन्दी भाषी राज्यों का प्रतिनिधित्व करे, जिसमें सामाजिक और प्राकृतिक विद्वानों के प्रतिनिधि भी हों । इस समिति के सामने सर्वोच्च वैज्ञानिक स्तर पर लिखी पांडुलिपियाँ आयें या लिखने के प्रस्ताव आयें। जो स्वीकृत हों उनकी १००० प्रतियाँ तक की खरीदारी सुरक्षित कर दी जाय । इन १००० प्रतियों की बिक्री राज्य की जनसंख्या के अनुपात से हिन्दी राज्यों में हो जाय । चुनी हुई शिक्षण संस्थाओं को खरीदने का आदेश दे

ता जाय। बिक्री के दाम कम-से-कम रहें और प्रकाशन सेवा उन संस्थाओं सुपुर्द हो जो लाभमुक्त सेवा की क्षमता रखती हों। उक्त समिति का क्रिय सहयोग केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से बना रहे जो दूसरे ढंग से प्रायः मेल की सेवा कर रहा है।

(२) केंद्रीय शिक्षा मंत्री, हिन्दी भाषी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों र विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आदेश से हिन्दी भाषी राज्यों के कुलपतियों का सम्मेलन बुलाया जाय। यह सम्मेलन विषय समितियाँ वे जो अपने विषय के पाठ्यक्रम का विभिन्न विश्वविद्यालयों के लिए नीकरण करें और अपनी एक उपसमिति नियुक्त करें जिसे पाठ्य क के निर्माण का दायित्व सुपुर्द हो।

इस उपसमिति में सात सदस्य हों जिनमें एक पाठ्य पुस्तक का क भी हो। इस विद्वान को निश्चित अवधि के भीतर पाठ्यपुस्तक तैयार ने का दायित्व सुपुर्द हो। जब पांडुलिपि चित्रों समेत पूरी हो जाय तो की प्रतिलिपियाँ टाइप करा ली जायँ। बाकी सदस्य प्रत्येक प्रतिलिपि पर चार करें। इस सेवा की पूर्ति होने पर उपसमिति की कुछ दिनों तक क हो और पांडुलिपि प्रेस के लिए तैयार कर दी जाय।

पाठ्य पुस्तक के सम्बन्ध में यह संकेत कर देना आवश्यक है कि समें पारिभाषिक शब्द वही रहें जो अंग्रेजी में अब तक चालू रहे हैं। नये रिभाषिक शब्दों का प्रयोग न किया जाय। ऐसा होने पर पाठ्य पुस्तक न विद्यार्थियों के भी काम की हो सकेगी जो अध्ययन के लिए अंग्रेजी या त्रीय भाषा का माध्यम अपनाये हुए होंगे।

पाठ्यपुस्तक का लाभमुक्त प्रकाशन हो। लेखक तथा उपसमिति के स्यों को रायल्टी के रूप में पारिश्रमिक मिलता रहे। आलोचनाओं की ओर से और नये ज्ञान के समावेश के लिए उपसमिति के सदस्य जागरूक हें और प्रति तीसरे या पाँचवें वर्ष पाठ्य-पुस्तक का नवीन संस्करण काशित होता रहे।

यदि पाठ्य पुस्तक अपने विषय पर ज्ञान की चरम सीमा की प्रतीक बनी हती है, यदि सभी हिन्दी भाषी राज्यों में मान्य रह कर यह खूब बिकती है और सका मूल्य कम रखा जाता है तो यह अहिंदी भाषी राज्यों में भी अंग्रेजी की ठ्यपुस्तक की जगह मान्य होगी और इस बहाने बहुत-से अहिन्दी विद्यार्थी रीक्षा के लिए हिन्दी के माध्यम का पक्ष लेने लगेंगे।

जन साधारण में हिन्दी की जानकारी हिन्दी के जनप्रिय चलचित्रों और रेडियो के आकर्षक गीतों द्वारा बढ़ रही है। यह बढ़ती रहे। परन्तु विद्वान और विद्यार्थी तो हिन्दी सीखने के लिए तभी प्रेरित होंगे जब उन्हें कम व्यय पर आधुनिक ज्ञान की उपलब्धि हिन्दी के माध्यम से मिलने लगे।

हिन्दी के पक्ष में आंदोलन बहुत हुआ है जिसमें पत्रकारों, कवियों, नाट्यकारों, नेताओं, औपन्यासिकों या हिन्दी शिक्षकों ही का विशेष योगदान रहा है। इस आंदोलन मे दफ्तरों के बाबू और अधिकारी, अदालतों के वकील और न्यायाधीश, विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक और विद्यार्थी प्रभावित नहीं होते; क्योंकि उनके हुल्लड़ से उस साहित्य का निर्माण नहीं होता जो इनके काम का हो, जो इन्हें अँग्रेजी की जगह हिन्दी के प्रयोग के लिए प्रेरित कर सके। हुल्लड़ घटे और ठोस सेवा के लिए अवकाश प्राप्त या वैतनिक सेवा में लगे प्रशासनिक अधिकारियों, न्यायाधीशों तथा प्रध्यापकों का एक जत्था बने जो हिन्दी में उच्च स्तरीय साहित्य निर्माण के लिए सक्रिय हो और उसे शिक्षा मंत्रालय तथा हिन्दी भाषी राज्यों से प्रोत्साहन तथा सहायता मिले, तो हिन्दी का पक्ष अहिन्दी क्षेत्रों से समर्थन प्राप्त करने लगे।

शिक्षण सेवा में संलग्न भाई-बहनों को उक्त स्तर के निर्माण और प्रचार के लिए स्फूर्त करना **भारतीय शिक्षा** का दायित्व है।

संपादकीय परामर्श दात्री समिति के नए सदस्य

संपादकीय परामर्श दात्री समिति के दो नए सदस्यों से पाठक परिचित हो जायं। **भारतीय शिक्षा** को भारतीय शिक्षा मंत्रालय का सहारा प्राप्त है। अतएव संपादकीय परामर्श दात्री समिति में मंत्रालय के प्रतिनिधि की व्यवस्था है। सो केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के उप निदेशक डा० गोपाल शर्मा सदस्यता के लिए मंत्रालय से मनोनीत हुए हैं। आप प्रशिक्षित शिक्षक और प्रशासक रह चुके हैं, साहित्यिक भी हैं। हमें पूर्ण आशा है कि इन बन्धु के सहयोग से **भारतीय शिक्षा** का सेवा-स्तर उन्नत होगा। समिति पर असम का प्रतिनिधित्व करना अब आचार्य परेशचंद्र देव-शर्मा एम० ए० ने स्वीकार किया है। आप हिन्दी के विद्वान हैं और मातृ भाषा असमिया के भी। आजकल काटन कालेज, गोहाटी में आप हिन्दी के प्रोफेसर हैं। असम भारत के पूर्वी सीमांत का राज्य है। उसके सेवियों के सामने प्रतिरक्षा की भारी समस्या के अतिरिक्त हिन्दी के माध्यम से भावात्मक एकता की सिद्धि की भी समस्या है।

ाशा है कि देव-शर्मा जी के सक्रिय सहयोग से **भारतीय शिक्षा** का किंचित ोगदान इस ओर हो सकेगा ।

मा याचना

इस विशेषांक के प्रकाशन में हमें बहुत देर लगी है। लेखों के प्राप्त रने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। फिर कानपुर में ग्रीष्म की त्यधिक प्रचंडता के कारण प्रेस को कर्मचारियों के अभाव का सामना करना ड़ा है। **भारतीय शिक्षा** का शैशव काल है। इसकी अवैतनिक सेवा में ंपादक और प्रकाशक लगे हैं; तो ग्राहकों तथा पाठकों से भी क्षमा मांगते ुए धैर्य तथा सहयोग की अपेक्षा है।

विशेषांक योजना पाठकों के सामने है। पहला विशेषांक पाठकों की ेवा में प्रस्तुत है। इससे हिन्दी भाषी राज्यों के शिक्षकों-पालकों को आवश्यक रणा मिलनी चाहिए। हिन्दी भाषा की व्यापकता और साहित्य का र्वांगीण निर्माण क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक विकास के सहारे ही संभव ोगा। अतएव अगले विशेषांक द्वारा पाठक स्वतन्त्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं ी साहित्यिक गति विधि से परिचित होंगे। प्रतीक्षा की प्रार्थना है।

* * *

★ अन्धा वह नहीं है, जिसकी आँखें फूट गई हैं, अन्धा वह भी है जो अपने दोषों को ढाँकता है। **—महात्मा गाँधी**

★ दूसरों को उपदेश देने के पहले स्वयं को पहचानो, जो स्वयं भूला है वह दूसरों को क्या मार्ग प्रदर्शन करेगा।

—शङ्कराचार्य

★ सुख बाहर से मिलने वाली चीज नहीं है। वह हमारे अन्दर ही है, मगर अहंकार छोड़े बिना उसे नहीं पाया जा सकता है। **—विवेकानन्द**

★ गंगा पाप शमन करती है, चन्द्रमा ताप का शमन करता है और कल्पवृक्ष मैल दूर करता हैं, यह सच है पर गाँधी चन्द्र की अपेक्षा अधिक शीतल और कल्पवृक्ष की अपेक्षा अधिक सामर्थ्यशाली हैं। **—महामना मालवीय**

ाधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

भिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
त्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
ारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
धान का पत्र
भिभावकों का समस्या-समाधान
क्षक प्रशस्ति
क्षागत समस्या
ठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
क्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा

विशेषांक योजना

तंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
देशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन ांस, प० जर्मनी)
विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
विदेशों में शिक्षक संघ
विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
वासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था
(मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
-विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
नारी शिक्षा
-हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
-शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल ंस, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, ीय शिक्षक संघ, झा-शेषाद्रि-खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर ारा प्रकाशित ।

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लिखे या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने प लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। ले भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ–३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र–पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

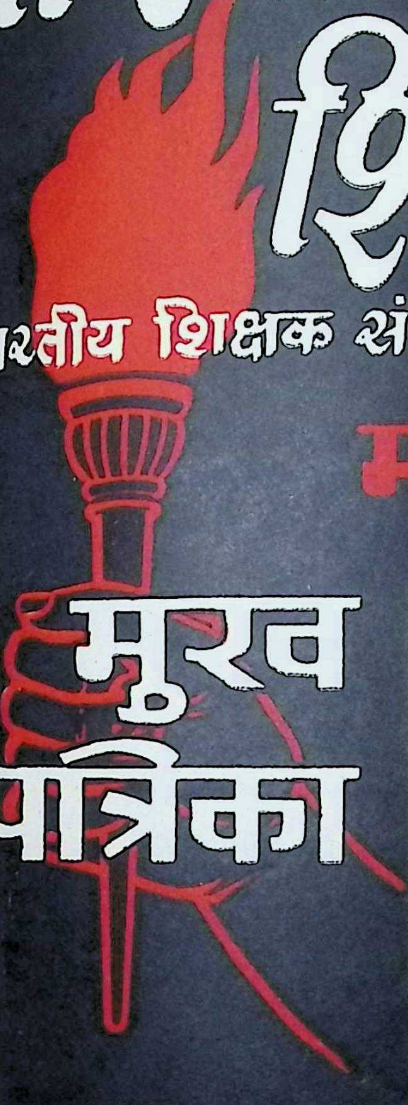

जुलाई, १९६५

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation of Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा करता आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो चार वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आपकी सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक ही सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हममें से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूसरा (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का पंचम अंक है। पहला अंक पिछले गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हुआ था। जिस भावना और उद्देश्य से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्वयं और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदान दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार के अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

6375
10-12-65

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की
मासिक मुख-पत्रिका

म वर्ष ● जुलाई, १९६५ ● पंचम अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–**अध्यक्ष**–दीवानचन्द शर्मा
२–**शिक्षामंत्रालय से मनोनीत**—डा० गोपाल शर्मा
३–**असम**–परेशचन्द्र देव शर्मा
४–**आंध्र**–डा० भीमसेन निर्मल
५–**उड़ीसा**–राधाकान्त मिश्र
६–**कश्मीर**–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–**केरल**–ए० चन्द्रहासन
८–**गुजरात**–जेठालाल जोशी
९–**पंजाब**–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–**बंगाल**–मोहितकुमार बनर्जी
११–**बिहार**–श्यामजी सिंह
१२–**मद्रास**–डा० शं० ना० गणेशन
१३–**मध्यप्रदेश**–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–**महाराष्ट्र**–प्र० रा० भूपटकर
१५–**मैसूर**–ना० नागप्पा
१६–**राजस्थान**–शंकरसहाय सक्सेना
१७–**सम्पादक : सचिव**–कालिदास कपूर

ारतीय शिक्षक संघ
स्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
एक अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

१—नेहरू : शिक्षक के रूप में—आचार्य दीवानचंद शर्मा ...
२—नेहरू बिना क्या करें—श्री कालिदास कपूर ... ...
३—नेहरू—"हमारे युग के एक महानतम व्यक्ति"
—ब्रिटिश प्रधान मन्त्री द्वारा मार्मिक श्रद्धांजलि ...
४—स्वावलम्बी छात्रावास—प्राचार्य शंकर सहाय सक्सेना ...
५—हमारी शिक्षा की पुनर्रचना—डॉ० सरयू प्रसाद चौबे ...
६—शिक्षा का मौलिक आधार—डॉ० सेठ गोविन्ददास ...
७—जामिआ और गान्धी जी—प्राध्यापक अब्दुल्ला वली बख्श कादरी
८—संग्राहालय द्वारा राष्ट्रीय भावात्मक एकता का समाधान
—श्री रमेशचन्द्र शर्मा ...
९—शिक्षा द्वारा वृतियों का उन्नयन—श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह
१०—स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा—डॉ० हरि भगवान ...
११—शैक्षणिक मूल्यांकन—प्राध्यापक शम्सुद्दीन ... ...
१२—शैक्षिक समाचार समुच्चय—'संजय' ... ...
१३—शिक्षामन्त्री सम्मेलन के प्रस्ताव ... ...
१४—पत्राचार ... ...
१५—परिचायिकी ... ...
१६—संपादकीय ... ...

हरू : शिक्षक के रूप में

ाचार्य दीवानचंद शर्मा, अध्यक्ष, भारतीय शिक्षक संघ)

भारत को अपने स्वतन्त्र काल में दो बहुत बड़े आघात सहने पड़े। े आघात' शब्द बहुत मामूली से हैं, परन्तु मैंने जानबूझ कर इनका प्रयोग ा है, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि इसके लिये अधिक आडम्बरपूर्ण शब्द जायँ। आघात तो आघात ही है। इसका शरीर के अतिरिक्त मन और ा पर भी गहरा असर होता है। शारीरिक आघात विनाशकारी होता और मानसिक आघात मन को विचलित करने वाला, परन्तु आत्मिक ात मनुष्य को सदा के लिये अव्यवस्थित कर देता है। व्यक्तिगत रूप से यह तिगुना आघात सहना बहुत कठिन है, परन्तु जब ऐसा आघात ालीस करोड़ लोगों के एक महान राष्ट्र पर आन पड़े तो उसके दुःखों का ुमान लगाना कठिन हो जाता है तथा उसके परिणाम बड़े भयावने हो ते हैं। भारत को पिछले सत्रह वर्षों में ऐसे दो आघात सहने पड़े— क राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के शहीद होने का तथा दूसरा २७ मई, ९६४ को प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के दिवंगत हो जाने का।

हमें यह जानना है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू के जाने से हम कों को कितनी हानि उठानी पड़ी है। उनकी मृत्यु से पूरे संसार की री हानि हुई है, यह निर्विवाद है। इसे विश्व के सभी नेताओं ने अनुभव या है। परन्तु संसार के किसी भी दूसरे देश से अधिक भारत ने उनकी यु से हुई हानि को सबसे अधिक महसूस किया है। यह स्वाभाविक भी ा। उनका अभाव राजनैतिक क्षेत्रों को तो खला ही है, बच्चों, लड़कों, ड़कियों, युवकों, युवतियों, बड़ों-बूढ़ों ने भी ने इसे महसूस किया है। हें ऐसा लगा कि राष्ट्र की हानि ही नहीं, उनके किसी सगे सम्बन्धी ी ही थी।

इस शोकाकुल जनता के साथ शिक्षक भी शामिल हैं। मुझे संयुक्त ज्य अमेरिका के डा० विलयम जी० कर, महामन्त्री राष्ट्रीय शिक्षा संघ (National Education Association), की ओर से सहानुभूति का सन्देश प्त हुआ। मुझे अध्यापन संस्थाओं के विश्व संगठन (World onfederation of Organisations of Teaching Profession) के

एशिया के विशेष सहायक डा० विलयन ई० युलरिच का एक तार भी मिला, जिसमें उन्होंने इसके लिये गहरा खेद प्रकट किया। न्यासालैण्ड तथा वीनिस के अध्यापकों ने संवेदना संदेश भेजे। ये सभी बहुत ही विचलित कर देने वाले हैं, परन्तु कैनिया के अध्यापकों की ओर से जो संवेदना सन्देश मुझे प्राप्त हुआ, उसका मेरे मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव पड़ा। उन्होंने नेहरू जी को एक महान् शिक्षक मानते हुए अपने शिक्षक बंधुओं से अपनी संवेदना प्रकट की।

सच तो यह है कि वे अपने देश के महान् शिक्षकों में से थे। मुझे आशा है कि इस बात को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करने के लिए मुझे दोषी नहीं ठहराया जायगा, यदि मैं यह कहूँ कि वे संसार के महान् शिक्षकों में से थे। शिक्षक के रूप में उनमें बहुत से गुण थे, जिनमें से कुछ तो जन्म-जात थे और कुछ बाद में ग्रहण किये गये थे। अपने देश तथा संसार के दूसरे देशों के प्रति उनके विचार प्यार से उद्भूत थे। वह यह कहते नहीं अघाते थे कि उन्हें भारत के लोगों से असीम प्यार है। इसके साथ ही वह इस बात पर जोर देते थे कि घृणा उनके स्वभाव के विरुद्ध है। वह कहा करते थे कि चाहे कुछेक देशों की सरकारों की नीतियों से वह सहमत न हों, तो भी उन देशों के नागरिकों को वह बेहद प्यार करते हैं। प्यार की यह भावना किसी भी शिक्षक की सबसे बड़ी निधि है, जिसे प्राइमरी स्कूल से विश्वविद्यालय तक के शिक्षक वितरित करते रहते हैं। यदि हमारे सभी शिक्षकों में छात्रों के प्रति इस तरह की स्नेह-पूर्ण भावना हो, तो उनकी सेवायें बहुत ही सहज तथा सफल हो जायँ। एक बार मैं किसी जापानी शिक्षक के बारे में पढ़ रहा था, जिसने विश्वविद्यालय छोड़ कर पत्रकारिता अपना ली थी। किसी ने उससे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया है। उसका उत्तर था कि विश्व-विद्यालय में वह केवल कुछ सौ छात्रों का ही शिक्षक था, परन्तु पत्रकार के नाते वह अपने सम्पूर्ण राष्ट्र का शिक्षक है। अगर यह बात किसी पत्रकार के सम्बन्ध में सत्य है तो एक लोकतन्त्र राष्ट्र के प्रधान मन्त्री के सम्बन्ध में यह और भी अधिक सत्य है। वह वस्तुतः अपने लोगों का शिक्षक है, परन्तु जब एक देश का प्रधानमन्त्री विश्व का महान् राजनीतिज्ञ माना जाने लगे तो वह संसार के सभी राष्ट्रों का शिक्षक बन जाता है। जवाहरलाल बिल्कुल ऐसे ही शिक्षक थे, इस बात से किसी को इंकार नहीं होगा। जब कभी वह देश-देशान्तरों को गए, लोग उन्हें सुनने के लिए उमड़ पड़े। यह सभी कुछ

लिये था क्योंकि उनके और लोगों के बीच प्यार का निगूढ़ सम्बन्ध था, सम्बन्ध जिसके लिए किसी भी शिक्षक को स्पर्द्धा हो सकती है, चाहे का कार्यक्षेत्र केवल कक्षा का कमरा मात्र ही क्यों न हो । यह अपने लोगों प्रति उनका प्यार ही था जिससे उनके भाषणों तथा उनके लेखन कार्य को ता मिली । उनका प्यार किसी विशेष आयु या वर्ग तक ही सीमित नहीं । वह बच्चों, बूढ़ों के बीच अपने आपको एक सा पाते थे । इन सभी ने अपना दोस्त समझा, अनपढ़ मजदूर तथा किसान भी उस प्यार के ण, उनकी ओर खिंचे चले आते थे ।

यह सच है कि उन्होंने शिक्षक के रूप में कभी कार्य नहीं किया, तु वास्तविक रूप में, उनमें वे सभी गुण थे जो कि किसी महान् शिक्षक हो सकते हैं । भारतीय संसद में कई ऐसे सदस्य हैं तथा कई दूसरे स्थानों भी हैं, जो उनके साथ जेल गए थे । उन सभी का कहना है कि वे जेल क्लास लिया करते थे । संसद के एक सदस्य ने मुझे बताया कि उन्होंने त पढ़ाया था, जिसमें वह सदस्य निपुण नहीं था । एक दूसरे सदस्य ने जो कैबिनेट मन्त्री है, उनके सम्बन्ध में कई छोटी-छोटी घटनाएँ सुनाईं और होंने बताया कि नज़रबन्दी की अवधि के दौरान उन्होंने उसे फ्रेंच भाषा ाई थी । इससे पता चलता है कि शिक्षण कार्य उनके लिये कोई अपरिचित य नहीं था । मुझे भारतीय संसद के कुछेक विरोधी सदस्यों के व्यंग तथा क्ष याद हैं, जो कुछ विषयों पर उनके वक्तव्यों की आलोचना करते समय ते थे कि इस बारे में उनका दृष्टिकोण सैद्धान्तिक है । मैं नहीं जानता का इस सद्धान्तिक दृष्टिकोण से क्या अभिप्राय है, परन्तु स्पष्ट है कि जब भी भी उन्हें किसी नीति या योजना के बारे में समझाना होता तो वह उसे ी तरह समझाते थे जैसे कोई भी शिक्षक समझाता है । उनमें तथा सरूम के शिक्षक में अन्तर केवल इतना था कि क्लासरूम का शिक्षक सी विषय की व्याख्या यह मानकर करता है कि छात्र उस विषय में नजान है, परन्तु उन्होंने सदा अपना दृष्टिकोण यह बात याद रखते हुए तुत किया कि उनके सुनने वाले न केवल उतने विद्वान ही हैं जितना वह स्वयं है, वरन् बहुत कड़ी आलोचना करने वाले भी हैं ।

बहुत ही कठिन बातों को आसानी से समझाने का उनका यह गुण को प्राकृतिक देन था । ऐसा नहीं कि वह सदा संसद के सदस्यों या विश्व-द्यालयों के दीक्षान्त समारोहों में ही भाषण करते थे, उन्होंने बहुधा दूसरे ों के मुकाबले में जन साधारण में सबसे अधिक संख्या में भाषण दिये ।

उनके सुनने वालों की संख्या हजार लाखों की रही होगी। उन्हें वह तटस्थता की नीति तथा पंचवर्षीय योजनाओं के सन्बन्ध में इस तरह बताते थे कि वे उनके दिमाग में घर कर लेती थीं। उनमें शिक्षक के तीन आवश्यक गुण थे—सुनने वालों के प्रति प्यार, उस विषय से लगाव तथा उसका ज्ञान जिसके सम्बन्ध में उनको बोलना हो, और सादी तथा स्पष्ट शैली, जिसे प्रत्येक समझ सके।

इसलिये इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि उन्हें उस समय बहुत खुशी होती थी जब वह शिक्षकों के बीच होते थे। भारत तथा विदेशों में शिक्षकों की उन सभाओं की संख्या दे पाना संभव नहीं, जिनमें उन्होंने भाषण दिये थे। शिक्षकों का कोई ऐसा वर्ग शायद ही होगा, जिसे कभी न कभी उन्होंने भाषण न दिया हो। मुझे याद है जब १९३९ में उन्होंने लखनऊ के अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन किया था। उसमें दिये गये महान भाषण में उन्होंने शिक्षा के निजी, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के प्रसंग में बातचीत की थी। उसके बाद फिर १९६१ में उन्होंने नई दिल्ली में अध्यापन संस्थाओं के विश्व संघ के तत्त्वाधान में आयोजित दसवीं विश्व सभा का, जिसका अखिल भारतीय शिक्षा संस्था संघ ने प्रबन्ध किया था, उद्घाटन किया। इस सभा में विश्व के ७८ देशों के अध्यापक, शिक्षा शास्त्री तथा शिक्षा-क्षेत्र में कार्य कर रहे अन्य कार्य-कर्ता उपस्थित हुए थे। इस सभा का विषय था "उत्तरदायित्व के लिये शिक्षा।" हमारे राजनीतिज्ञ प्रधान मन्त्री की इस विषय को देन बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने कहा था :—

"शिक्षा मेरे विचार में भारत में सब से बड़ा क्रान्तिकारी तथ्य है जो इसे बिल्कुल नया रूप दे रहा है। यह एकदम से स्पष्ट तो नहीं है परन्तु यदि कोई व्यक्ति आने वाली तबदीली को देखता है तो वह इससे बहुत ही प्रभावित होता है।

"यह हो रहा है और यह होता भी रहेगा, परन्तु मूल समस्या, जिसके सम्बन्ध में मैंने आरम्भ में ही हवाला दिया है, यह है कि जहां इस समय सबसे उत्तम शिक्षा दी जा रही है, वहां हम इसके साथ लड़ाकू मानवता का विकास कर रहे हैं, न कि सहकारिता का। देखना यह है कि इस संकीर्ण दृष्टिकोण से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है, जिसका परिणाम केवल झगड़ा ही हो सकता है, यद्यपि झगड़ा आज के जमाने में बहुत खतरनाक है।

"हो सकता है ये सभी कुछ आप के विचारणीय विषय से दूर की हों, परन्तु किसी न किसी रूप में इनका संबंध इससे अवश्य है। दायित्व के लिए शिक्षा । हाँ । यह उत्तरदायित्व चाहे किसी कारोबार, यापार या आपके गाँव की व्यवस्था आदि के बारे में या किसी भी र का हो; परन्तु यह सत्य है कि अन्ततः शिक्षा का उद्देश्य शिक्षित को योग्य बनाना है कि वह स्वयं को अधिक सुव्यवस्थित ढंग से चला सके, को इतना नहीं । बहुत पुराने समय से दार्शनिकों तथा अन्य बड़े-बड़े यों ने बताया है कि वास्तविक शिक्षा की बुनियाद अपने आपको जानने है। उसका कुछ भी अर्थ क्यों न हो, कभी-कभी ऐसा लगता है कि ज्ञान खोज में हम बिना किसी विवेक के बहुत कुछ पढ़-लिख जाते हैं, जिस त हम अपने आपको या दूसरों को नहीं समझ पाते, चाहे हम लोग क्या हैं और क्या करते हैं, इसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े आँकड़े इकट्ठे कर लें। क तथा दूसरे मामलों के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी पुस्तकें हमारे पास रहती रन्तु फिर भी हममें व्यावहारिक ज्ञान की कमी है और इसी कमी के ण बहुत सी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। अपनी शिक्षा-प्रणाली में कशीलता और व्यावहारिक ज्ञान के गुण को कैसे पैदा किया जाए, यही समस्या है जो आप सबके अध्ययन का विषय है।"

ये शब्द केवल एक महान राजनीतिज्ञ के ही नहीं थे वरन् मानवता क बहुत बड़े शिक्षक के थे, जो शिक्षा को व्यावहारिक ज्ञान का स्कूल ना चाहता था तथा जो पढ़े लिखे लोगों को सहकारिता का पाठ पढ़ाना ता था, ताकि वे विश्व राष्ट्रमण्डल के योग्य सदस्य बन सकें।

बड़े दुःख की बात है कि वह हमारे बीच एक वर्ष से नहीं हैं; परन्तु विश्वास है कि हमें शिक्षा में उचित मार्ग पर चलाते रहने की प्रेरणा उनकी नियाँ और करनियाँ देती रहेंगी।

नेहरू बिना क्या करें

गांधीजी की हत्या होने पर जो हाहाकार मचा उसकी पुनरावृत्ति हुई जब नेहरूजी हमसे अकस्मात् विदा हो गये। उत्तरप्रदेश कांग्रेस का गढ़ रहा है। यहाँ इस विशाल संस्था के भीतर अधिकारलिप्सा की प्रगति देखते यह भय हो रहा था कि नेहरूजी की गद्दी के लिए कोई तमाशा न खड़ा हो जाय। गाँधीजी का निधन होने पर कोई गड़बड़ की आशंका न थी, क्योंकि पंचतत्व में मिलने के पहले ही वह नेहरूजी को स्वतन्त्र भारत का शासन-भार सुपुर्द कर गये थे और बिनोबाजी उनके मानसपुत्र मान्य हो चुके थे। देश के लिए कितने सौभाग्य की बात है कि ऐसे भीषण संकट के समय हमें राष्ट्रपति राधाकृष्णन् और कांग्रेस-अध्यक्ष कामराज नादर का नेतृत्व प्राप्त था जिनकी सूझ-बूझ सफल हुई और मतैक्य से लालबहादुरजी शास्त्री रिक्त पद पर आसीन हुए।

स्थायी स्मृति रक्षा—

राष्ट्रपिता गाँधी और राष्ट्रनिर्माता नेहरू की पुनीत स्मृति की रक्षा के लिए हम बहुत से भवन, उद्यान, मार्ग और स्मारक बनवाते रहेंगे। परंतु अपनी जीवनचर्या में इन दोनों स्वर्गीय महामानवों की कथनी और करनी द्वारा कर ही हम उन्हें अमर कर सकेंगे। हमें अपने राष्ट्रीय संकट का सही अनुमान करना है; फिर इस संकट से मुक्ति के लिए प्रत्येक नागरिक को स्वधर्म (भगवद्गीता के अर्थ में) समझना है और उसके निर्वाह के लिए कटिबद्ध होना है।

राष्ट्रीय संकट की व्याख्या—

पहले हम राष्ट्रीय संकट का सही अनुमान करें।

गांधीजी और उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी नेहरू के नेतृत्व में हमने नागरिक की वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए धर्म निरपेक्ष शासन की नीति अपनाई है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के लिए, व्यापक शांति के पक्ष में, सत्य, अहिंसा और सहिष्णुता की रक्षा करते हुए, भावी दृष्टा नेहरूजी के नेतृत्व में वह पंचसूत्री नीति कार्यान्वित होती रही है जो पंचशील के नाम से प्रसिद्ध है। अपने दीर्घ स्वाध्याय और चिंतन के बल पर दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि

ट्रीय शासन के यह आधार-स्तम्भ सही हैं। परंतु आंतरिक और अन्तर्राष्ट्रीय तियाँ इन स्तम्भों को उखाड़ फेंकने के फेर में हैं। इन प्रगतियों को हम कें। अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतियाँ हमारे बस के बाहर हैं। परन्तु यदि देश के दर हम अपनी संगठित शक्ति से राष्ट्रीय शासन के आधार स्तम्भ दृढ़ ते रहें तो प्रतिकूल वैदेशिक शक्तियाँ हमारा कुछ बिगाड़ न सकेंगी। हमारी तरिक शक्ति से परिचित होने पर कदाचित् कल की प्रतिकूल शक्तियाँ के लिए अनुकूल ही हो जायँ।

एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। प्रतिकूल अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियाँ नेहरू के पश्चात् फूट की प्रतिज्ञा में थीं। उन्हें फूट नहीं दिखी। राष्ट्रीय सन पहले जैसा चालू है। हमारी इतनी ही प्रत्यक्ष दृढ़ता ने समस्त संसार भारतीय शासन की शक्ति से परिचित कर दिया है।

परंतु इतना ही प्रदर्शन करके हम अपने संकटों से मुक्त नहीं हो पाते। समय देश पर बढ़ती हुई मंहगाई, व्यापक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक का भूत सवार है। दवा होती जाती है, मर्ज बढ़ता जाता है। विदेशों हम पर भारी कर्ज है। अदायगी बहुत दूर, अपने उत्पादन से हम उसका ज देने की स्थिति में भी नहीं हैं। देश की न्याय व्यवस्था का कागज़ी त्व बहुत है। परन्तु निर्णय तक पहुँचने में अत्यधिक समय और धन की नि होती है। विवादग्रस्त निधि भी उपयोग से बंचित रहती है। यदि त्पादन की दृष्टि से इस विशाल बरबादी की समीक्षा करें, तो बढ़ती मंहगाई मूल में हमें वह न्यायव्यवस्था भी दिखने लगती है, जो विदेश से प्राप्त कर वकील नेताओं के नेतृत्व में हमारे गले लगी है।

प्रशासनिक ढील, व्यापक भ्रष्टाचार और बढ़ती मंहगाई के प्रेत एक सरे के सहयोगी हैं। न्याय-व्यवस्था तो इनकी सहायक है ही, वह चुनाव णाली-ब्रिटिश पार्लियामेंटरी डेमोक्रैसी की नकल—भी कम सहायक नहीं सका गाँधीजी विरोध करते रहे और जिसे अभी तक उनके मानस-पुत्र नोबाजी का आशीर्वाद नहीं मिल पाया है। श्रमिक वर्ग की ओर से ढील, द्योपति की ओर से शोषण की वृत्ति, व्यापारी की ओर से कर-वंचना, रतीय किसान की ओर से कौशलहीन खेती और प्रमाद तथा संकुचित र्थों की व्यापकता—ये सब व्याधियाँ परतन्त्रता के वातावरण में पहले ष्ट्रीय चेतना दबाये रहीं। चेतना उभरने पर उसे अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय रिस्थिति मिली और विदेशी पंजे से देश मुक्त हुआ, तो हमारा राष्ट्रीय रित्र इतना गिर चुका था, हम एक-दूसरे से मिलकर उत्पादक श्रम के

लिए इतने अक्षम हो चुके थे, कि ये व्याधियाँ प्रत्यक्ष होकर फूलने-फलने लगी हैं।

श्रद्धा की रजत रेखा—

इन सब व्याधियों के साथ और उनसे अपनी रक्षा के लिए, हमें एक बहुमूल्य निधि मिली—अपना सच्चा सेवक पहचान लेना और उसे अपना अटल विश्वास अर्पित कर देना। पहले यह विश्वास हमने गांधीजी को अर्पित किया, फिर उतना ही जवाहरलाल जी को। क्या ही अच्छा हो कि उनके उत्तराधिकारी पर हमारी उतनी ही सक्रिय निष्ठा हो। परन्तु यह भी याद रखना है कि हमारी स्वतन्त्रता अब वयस्क हो रही है। अपने नेताओं पर हमारी निष्ठा दृढ़ होती रहे, परन्तु हमें अब अपने पर निष्ठा करनी भी सीखनी है, आत्मविश्वास पुष्ट करना है।

इस आत्मविश्वास की पुष्टि हमारा कर्तव्य है। परंतु पुष्टि-मार्ग की बाधायें बताना, उनके निराकरण की प्रार्थना अपने आराध्य नेताओं से करना भी आवश्यक है।

अप्रिय सत्य कहते संकोच होता है; परन्तु कर्तव्य-निर्वाह के नाते निवेदन है कि संविधान से मान्य चुनाव-प्रणाली, न्याय-व्यवस्था और विरासत के रूप में देश का विदेशी प्रशासनिक ढाँचा—ये तीनों हमारे आत्म-विश्वास की पुष्टि के बाधक हैं।

जो संविधान एक विदेशी कानून के अनुसार निर्वाचित नेताओं ने संविधान मंडल में दो-तीन वर्ष बैठकर भारत जैसे विशाल, निर्धन, अरक्षित, रूढ़िग्रस्त और कृषि-प्रधान देश के लिए अपनाया है उसे ब्रिटेन जैसे छोटे, समृद्ध, सुरक्षित, शिक्षित और व्यवसाय प्रधान देश में विकास के लिए चार सौ वर्ष लगे हैं। जिन दिनों हम पर अँग्रेजों का पाश बंध रहा था, उन्हीं दिनों उदय-अस्त-लौं ब्रिटिश साम्राज्य बढ़ रहा था और अँग्रेजों का संविधान विकासशील था। सात सौ वर्ष की परतन्त्रता के अभिशाप से ग्रस्त अपने सभी वयस्क नर-नारी नागरिकों को हमारे संविधान ने मताधिकार दे दिया है, जब कि इस अधिकार के विकास ही में ब्रिटेन को सौ वर्ष (१८३२-१९२८) लग गये थे।

जिन्हें यह मताधिकार मिला है उनमें ८० प्रतिशत आज भी वयस्क बालक ही हैं। तीस चुनाव हो चुके हैं। सब में जनता को उसकी मुसीबतें बताई गई हैं और इन मुसीबतों से उद्धार का एक ही मार्ग बतलाया गया है

और वह है प्रत्याशी को अपना मतदान । राष्ट्रीय शासन ने जनकल्याण का ठेका लिया है न । हम वोट दे दें । फिर हमारे नेता और उनके संकेत पर चलने वाले सरकारी कर्मचारी हमें अपनी सब मुसीबतों से मुक्त कर देंगे ।

दलबन्दी का अभिशाप—

यदि एक ही दल होता, तो अपढ़ और निर्बल मतदाताओं को विशेष मुसीबतों का सामना न करना पड़ता । संविधान दलबन्दी का पोषक है । कहा भी यही जाता है कि दलीय रस्साकशी बिना संविधान की सफलता सिद्ध नहीं होती । जाग्रत ब्रिटिश जनता के लिए यह कदाचित वरदान हो, परंतु यहाँ तो यह अभिशाप ही सिद्ध हो रही है । जनता की राजनैतिक शिक्षा तो क्या होती है, दायित्व निर्वाह के लिए उसका प्रशिक्षण तो क्या हो पाता है, शासन के प्रति अविश्वास और अश्रद्धा ही बढ़ती है, जो भारत जैसे पिछड़े और निर्धन देश के लिए अत्यन्त घातक है ।

कोई आश्चर्य नहीं कि यदि अधिकाँश मतदाता भोले हैं तो प्रत्याशी धूर्त बनकर ही उनसे अपने लिए वोट की आशा कर सकते हैं । जो प्रत्याशी भले होते हैं, उन्हें भी धूर्तों या कलंकित द्रव्य का सहारा लेना पड़ता है । भ्रष्टाचार के दमन में शासन की असफलता का एक कारण यह भी है कि जिन साधनों से शासन के संचालक अपने पद तक पहुँचते हैं वे दूषित हुए बिना नहीं बचते ।

नेहरूजी की छत्रछाया पाकर संविधान, प्रशासन और न्याय-व्यवस्था के प्रत्यक्ष दोष जनता को विशेष रूप से त्रस्त नहीं कर सके । हमें अब दूसरा नेतृत्व नसीब है । इस नेतृत्व के सामने तीनों के संशोधन के व्यावहारिक सुझाव भी हैं जिन्हें विनोबाजी और जयप्रकाशजी जैसे सर्वमान्य विचारकों का समर्थन प्राप्त है । सक्रिय विचार और निर्णय वाँछनीय है । तभी अधिकार के पहले और साथ दायित्व-निर्वाह के लिए देश के नागरिक प्रशिक्षित हो सकेंगे ।

देश में गणतांत्रिक अधिकारों की धूम है । यह धूम वक़ील वर्ग की पोषक है, दलबंद रस्साकशी की सहायक है । परन्तु बढ़ती मँहगाई के साथ पारिश्रमिक बढ़ाने की माँग ही से कुचक्र की काट सम्भव नहीं । बढ़ती मँहगाई के केन्द्र में उत्पादक श्रम की कमी है । विद्यालयों में विद्यार्थी पढ़ते नहीं, शिक्षक पढ़ाते नहीं, छुट्टियों की धूम रहती है, उनका सदुपयोग होता नहीं । कारखानों और दफ़्तरों में कामचोरी की धूम है । गाँधीजी कृषक वर्ग के

फालतू समय के सदुपयोग ही के लिए चरखे की हिमायत करते रहे थे, उनके मानस-पुत्र निरन्तर पद यात्रा करते हुए ग्रामोद्धार की पुनीत सेवा कर रहे हैं। परन्तु इस सेवा के लिए बनी सरकारी मशीन उनकी तपस्या से सहयोग नहीं कर पाती।

इसी कारण उस राजनीतिक दल के विरुद्ध वातावरण बन रहा है जिसके हाथ में राष्ट्रीय शासन की बागडोर है। नेहरू जी के निधन से इस दूषित वातावरण को बहुत सहारा मिला है—यह हमें हृदयंगम करना है।

ब्रिटेन, संयुक्तराज्य, आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे विकसित, समृद्ध और सुरक्षित देशों में दलबंद गणतांत्रिका के चालू रहने पर कोई हानि प्रत्यक्ष नहीं होती। एक दल के बाद दूसरे दल का शासन होता रहता है, तो विरोधी दल अपने दायित्वों के भीतर शासनिक नीति की आलोचना करते हैं, वे गालियों पर नहीं उतर आते। यहाँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति में कांग्रेस दल का प्रमुख योग रहा। फिर शासन की बागडोर भी इस दल के हाथ में अब तक है। यों तो देश में कई राजनैतिक दल हैं, परन्तु इन्हें हम तीन दलों में श्रेणी वद्ध कर सकते हैं—दाहिना, बायाँ और केन्द्रीय। कांग्रेस आंशिक रूप में देश का केन्द्रीय दल है, पूँजी की रक्षा करते हुए समाज के विकास के लिए प्रयत्नशील है। नेहरूजी का व्यक्तित्व, उनपर जनता की अटल श्रद्धा, कांग्रेस की सेवा में उनका अतुलनीय श्रम, काँग्रेस को तीनों चुनावों में जितवाता रहा। बहुत से मतदाता कांग्रेस को भला-बुरा कहते हुए भी 'दो बैलों की जोड़ी' को वोट दे आते। वे कहते रहे, उन्होंने अपने वोट नेहरूजी को दिये, कांग्रेस को नहीं। विरोधी दल चौथे चुनाव में कांग्रेस को पदच्युत करने के सपने देखने लगे हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। अधिकांश राज्यों में दल के भीतर ही फूट है जो जनता से छिपी नहीं।

चेतावनी—

अतएव एक चेतावनी देनी आवश्यक है। यह तो दिखता नहीं कि अवनतिशील कांग्रेस को हराकर कोई दल निर्द्वन्द्व शासनासीन हो सकेगा। दिखता यही है कि जिस प्रकार फ्रांस में दगाल के शासनासीन होने के पहले मंत्रिमंडल टूटते-बनते रहे और देश ने इस तमाशे से त्रस्त होकर दगाल का अधिनायकी नेतृत्व स्वीकार कर लिया है, वही तमाशा अधिक भीषण रूप में यहाँ भी संभव है, यदि वर्तमान नेतृत्व में देश का यह विशाल दल आंतरिक कमजोरियों से अपने को मुक्त नहीं कर पाता। नेहरूजी की स्वर्गीय आत्मा

क्य दिख रही है। जिस प्रकार मतैक्य से शास्त्री जी ने केंद्रीय मन्त्रिमंडल नेतृत्व प्राप्त किया, उसी प्रकार यदि विभिन्न राज्यों में दल के भीतर क्य सक्रिय होता है, तो कांग्रेस का कायाकल्प अब भी संभव है।

परन्तु इतना हमें भली प्रकार समझ लेना है कि यह मतैक्य सार्वजनिक कता के आधार-स्तंभों ही पर स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा। कांग्रेस के मान नेतृत्व को प्रत्येक राज्य का मंत्रिमंडल सार्वजनिक नैतिकता की टी पर कसना है और दल के संगठन-पक्ष को लोक-शिक्षण की नितांत वश्यक सेवा की ओर प्रवृत्त करना है। यह सेवा उन कांग्रेसियों की ही ती न बनी रहे जिन्हें कारागार के प्रमाण-पत्र प्राप्त हैं। नेतृत्व को नये रूट भी भरती करने हैं।

इस प्रकार शक्ति-संचय की ओर प्रवृत्त होकर ही हम नेहरू के बिना के भीतर सुखी हो सकेंगे, बाहर हमारा मान बढ़ेगा, हमारी शांतिनीति संचय करती रहेगी और अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतियाँ अभी किंचित प्रतिकूल ने पर भी हमारे अनुकूल हो जायेंगी।

—कालिदास कपूर

* * *

इंग्लैण्ड में जीवन

लन्दन में एक भेंट में श्री निर्मल सिंह ने कहा : "नेहरू भारत थे। भारत का जो रूप हमें आज मिलता है उसके निर्माता श्री नेहरू ही थे। अतः यह प्रदर्शिनी श्री नेहरू के जीवन और उनके देश सम्बन्धी तथ्यों पर ही आधारित होगी।"

श्री सिंह ने कहा : "हमें भूलना न चाहिये, और निश्चय ही श्री नेहरू स्वयं भी इस तथ्य को कभी नहीं भूले थे, कि उनके प्रारम्भिक जीवन के कुछ वर्ष इंग्लैण्ड में ही स्कूल और विश्वविद्यालय में व्यतीत हुए थे। प्रदर्शिनी में इस अवधि के उनके चित्रों का प्रदर्शन नितान्त आवश्यक है। "हमें विश्वास है कि लन्दन के सहस्त्रों नागरिक श्री नेहरू के प्रति इस श्रद्धांजलि में भाग लेंगे।"

नेहरू—"हमारे युग के एक महानतम व्यक्ति"

(ब्रिटिश प्रधान मन्त्री द्वारा मार्मिक श्रद्धांजलि)

ब्रिटिश प्रधान मन्त्री, श्री हैरल्ड विल्सन, ने १० जून को लन्दन स्थित रायल फेस्टिवल हाल में आयोजित नेहरू स्मारक प्रदर्शिनी का शुभारम्भ किया।

श्री विल्सन ने भारत के दिवंगत प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि श्री नेहरू के निधन में विश्व ने "हमारे युग के महानतम व्यक्तियों में से एक को खो दिया।"

इस अवसर पर उपस्थित कोई १,००० अतिथिगण श्री नेहरू की स्मृति में लाल गुलाब धारण किये हुये थे। इनमें श्रीमती इन्दिरा गान्धी, लार्ड ऐटली, लार्ड माउण्टबैटेन तथा अन्य अनेक अग्रणी ब्रिटिशजन शामिल थे जो विगत दो दशाब्दियों से अधिक से भारत के इतिहास से सम्बन्धित रहे हैं।

श्री विल्सन ने अपने भाषण में कहा : "लोकतन्त्र, उपनिवेशवाद और साम्यवाद के बीच तीसरा मार्ग; व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उसके साथ ही आर्थिक प्रगति के लिए राज्य-शक्ति का व्यापक उपयोग; एक निश्चित गतिशील तटस्थता; संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रकुल में नेतृत्व-ये हैं महान उपलब्धियाँ उस देश और उस व्यक्ति की जिसकी ओर नेतृत्व के लिये सर्वप्रथम निहारा गया था।"

उक्त नेहरू स्मारक प्रदर्शिनी की संयोजन समिति के अध्यक्ष, लार्ड माउण्टबैटेन ने भी इस अवसर पर श्री नेहरू के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि व्यक्त की। उन्होंने कहा कि श्री नेहरू की महान सेवाओं के लिए केवल भारत ही कृतज्ञ नहीं है, बल्कि "राष्ट्रकुल का जो वर्तमान स्वरूप है उसकी शुरूआत का श्रेय भी नेहरू को प्राप्त था।"

महान हृदय

भारतीय सूचना तथा प्रसारण मन्त्री, श्रीमती इन्दिरा गान्धी, ने इसके पूर्व एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा : "मेरे पिता में भारत के विभिन्न पहलुओं का सामंजस्य था, और सभी भारतीय उनमें अपनी भावनाओं-अरमानों को साकार पाते थे।"

श्री विल्सन का भाषण इस आशय का था :

"एक वर्ष बीत गया है, मई के उस दुखद दिन से, जबकि ब्रिटेन में यह खबर मिली थी कि जवाहरलाल नेहरू के महान हृदय ने अब धड़कना कर दिया है, श्री नेहरू के निधन से ब्रिटेन का प्रत्येक व्यक्ति शेष विश्व साथ शोक निमग्न हो गया था।

यद्यपि श्री नेहरू के बराबर गिरते हुए स्वास्थ्य के बारे में सबको कारी थी, इसलिए उनका निधन बिल्कुल अप्रत्याशित (आकस्मिक) न । किन्तु यह एक निश्चित तथ्य है कि श्री नेहरू का निधन भारत के साथ ब्रिटेन, राष्ट्रकुल और संसार भर के लिये एक अत्यधिक शोक विषय था कि "हमारे युग ने अपने महानतम व्यक्तियों में से एक को खो दिया था।" ली के भारतीय संसद् में श्री नेहरू के निधन की घोषणा करते हुए ठीक हा गया था : "ज्यतिपुंज विदा हो गया है।"

श्री नेहरू की अन्य उपलब्धियों के अतिरिक्त वह सर्वप्रथम एक निर्माता थे। जैसा कि एक वर्ष पूर्व मेंने रायल अलबर्ट हाल की नेहरू सभा में कहा था : "भारत की यह महान उपलब्धि और खुशकिस्मती है कि उसे महात्मा गांधी और श्री नेहरू के रूप में दो महान नेता मिले होंने सरकार में ईमानदारी, मानवता, आदर्शवाद और नम्रता आदि गुणों प्राधान्य प्रदान किया। उनके कारण ही भारत की आवाज़ संसार भर में मान से सुनी जाती है।

"और जो तथ्य भारत के लिए गौरव का विषय था वही ब्रिटेन के भी गौरव की बात है। जवाहरलाल नेहरू को शिक्षा-दीक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी।

तन्त्र के प्रेमी

"श्री नेहरू लोकतन्त्रीय मार्ग के उत्कट प्रेमी और व्यक्ति-स्वातंत्र्य जबर्दस्त हामी थे। उनके ही शब्द हैं : "हम अपने देश के लोगों का न-स्तर उठाने के लिए कृतसंकल्प और यत्नरत हैं लेकिन इसके लिए हम की रचनात्मक भावना पर आघात नहीं होने देंगे। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के पर हम ऐसा नहीं चाहेंगे।"

"तटस्थता के वे हामी थे और तटस्थता का मतलब उनके समक्ष था के कारणों के विरुद्ध संघर्ष में सम्बद्धता और नेतृत्व।"

"संयुक्तराष्ट्र के वह अप्रतिम रूप से प्रबलतम समर्थक थे।"

स्वावलम्बी छात्रावास

(प्राचार्य शंकर सहाय सक्सेना, यूनिवर्सिटी राजस्थान कालेज, जयपुर)

शिक्षा का विस्तार :

स्वतन्त्र होने के उपरान्त पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा का तेज़ी से विस्तार हुआ है। गाँवों और कस्बों में शिक्षा की भूख जागृत हुई है। राज्य सरकारों ने तेज़ी से शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की है। केवल प्राथमिक शिक्षा का ही नहीं माध्यमिक और उच्च शिक्षा का भी तेज़ी से विस्तार हो रहा है। गाँवों और छोटे कस्बों में माध्यमिक स्कूल स्थापित हो गए हैं। बड़े कस्बों और जिला केन्द्रों में इंटर या डिग्री कालेज खुल गये हैं। बड़े केन्द्रों में स्नाकोत्तर कालेज और विद्यालयों की स्थापना हुई है। इस देश में ६० से ऊपर विश्वविद्यालय मौजूद हैं और नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित होते जा रहे हैं। यह शुभ चिह्न है। परन्तु हमारे शिक्षा-शास्त्री और शिक्षा-अधिकारी एक अत्यन्त गम्भीर समस्या की ओर से नितान्त उदासीन हैं। यदि हम उस समस्या का उपयुक्त समाधान नहीं निकाल सके तो भारत की भावी पीढ़ी का जैसा हम निर्माण करना चाहते हैं वैसा नहीं होगा और शिक्षा का विस्तार एक अभिशाप बन जावेगा। वह समस्या शिक्षा-केन्द्रों में छात्रावासों की है।

नगरीकरण की बाढ़ :

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश एक औद्योगिक क्रान्ति में से निकल रहा है। उद्योगों की तेज़ी से स्थापना की जा रही है, बहुत से राजकीय कार्यालय नगरों में स्थापित हो रहे हैं, व्यापार इत्यादि की वहाँ सुविधा है; अतएव पिछले पंद्रह वर्षों में देश में नगरीकरण की प्रवृत्ति बहुत तेज़ी से बढ़ी है। गांवों में जनसंख्या का प्रवाह नगरों की ओर वेगवती नदी धारा के समान हो रहा है। नगरों का जीवन अधिक आकर्षक होने के कारण तथा आय के उत्तम साधनों की सम्भावना के कारण गाँवों से बहुत अधिक जनसंख्या नगरों की ओर प्रवास कर रही है। परिणाम यह हुआ कि नगरों में कल्पनातीत भीड़ इकट्ठा हो गई है और आवास की समस्या भयंकर हो उठी है। बहुत बड़े शहरों में तो मकान किराये पर मिलना ही कठिन हो

ा है। बम्बई, कलकत्ता, देहली, मद्रास, कानपुर, अहमदाबाद इत्यादि में हजारों रुपया पगड़ी देकर और कल्पनातीत ऊँचा किराया देकर ही कोई टा-सा मकान पाने की आशा कर सकता है। अन्य शहरों में भी मकानों समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। स्वस्थ-प्रद अच्छे हवादार ानों का नितान्त अभाव है और जो अस्वस्थकर गंदे मकान हैं उनका राया इतना ऊँचा है कि साधारण आय वाले के लिए उसका देना कठिन । परिणाम यह है कि छोटे शहरों में भी बहुत अधिक भीड़ इकट्ठी हो गई यहाँ तक कि छोटे कस्बों में भी मकानों की समस्या ने भयंकर रूप रण कर लिया है। मकानों की कमी के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक राइयाँ तथा अनैतिकता में भी वृद्धि हो रही है।

त्रावासों का अभाव :

जहाँ शिक्षा का तेज़ी विस्तार हो रहा है वहाँ हमने छात्रों के रहने के ए छात्रावासों की ओर ध्यान नहीं दिया। अधिकांश माध्यमिक स्कूलों के ास छात्रावास नहीं हैं और ऐसे कालेज भी मिलेंगे जिनके पास छात्रावास ी व्यवस्था नहीं है। विश्वविद्यालयों और कालेजों में जहाँ छात्रावास हैं वे भी ावश्यकता को देखते हुए बहुत कम हैं। बड़े शिक्षा केन्द्रों में विश्वविद्यालय ा कालेज में यदि प्रवेश मिल भी जाय, तो छात्रावास में प्रवेश मिलना तो लगभग असम्भव ही है। फिर जो छात्रावास हैं भी उनका व्यय इतना अधिक है कि साधारण आयवाला अभिभावक अपने बच्चे को वहाँ नहीं रख सकता। सका परिणाम यह हुआ है कि गाँव या छोटे कस्बे से जब ग्रामीण बालक हरों में आता है तो वह कहीं गन्दे स्थान पर दो-चार अन्य विद्यार्थियों के ाथ कोई कोठरी या कमरा लेकर रहता है। खाना या तो वह स्वयं बनाता है अथवा किसी सस्ते ढाबे या होटल में खाता है। रोशनी और हवा रहित मरे केवल अस्वस्थकर ही नहीं होते वे बहुधा अनुपयुक्त स्थानों पर ोते हैं। गाँव और कस्बों से आया हुआ विद्यार्थी जिसकी उमर कम है, ो अनुभव शून्य है, जो पहली बार बड़े शहर में आया है; शहर में आकर ैसे खो जाता है। फिर गाँव या छोटे कस्बे का सामाजिक अनुशासन भी स पर नहीं रहता, माता-पिता तथा अभिभावक की छत्रछाया से तो वह ूर हो ही जाता है। गाँव या छोटे कस्बे में अभिभावक की देख-भाल तो हती ही है, साथ ही विद्यार्थी को प्रत्येक गाँव का स्त्री-पुरुष जानता है कि वह किसका पुत्र है। अस्तु, यदि वह कोई अशोभनीय बात करता है

तो तुरन्त पकड़ जाता है। सामाजिक अनुशासन के कारण विद्यार्थी पथभ्रष्ट होने से बच जाता है।

परन्तु जब १५ वर्ष से २०-२२ वर्ष के बीच का विद्यार्थी शहर में आता है, माता-पिता तथा अभिभावक की दृष्टि से दूर और ऐसे स्थान पर रहता है जहाँ कोई उसको जानता भी नहीं, तो सामाजिक अनुशासन उस पर से समाप्त हो जाता है, उसे उन लोगों से कोई मतलब नहीं होता जहाँ वह आकर रहता है।। ऐसी स्थिति में रह कर वह उच्छृंखल हो जाता है। नगरों की सामाजिक बुराइयों को शीघ्र ही अपना लेता है, बहाना करके अपने अभिभावकों से उनकी सामर्थ्य के वाहर रुपया मँगाता है। भारतीय विद्यार्थी आज अस्वस्थकर स्थानों में रहकर और उचित भोजन व्यवस्था के अभाव में केवल अपने स्वाथ्य का ही नाश नहीं करता वरन् नैतिक पतन का भी शिकार हो जाता है। बहुधा वह शिक्षा के प्रति भी उदासीन हो जाता है और शहरी तीव्र जीवन के प्रलोभन में पड़कर अपना बहुमूल्य समय नष्ट करता है। आज जो हमारे तरुणों में असामजिक प्रवृत्तियाँ, दुर्व्यसन, स्वास्थ्यहीनता और हल्केपन का बाहुल्य देखने को मिलता है, उसका यह एक मुख्य कारण है। यदि हमारा शिक्षित युवक ऐसे वातारण में रहने पर विवश है तो उससे यह आशा करना व्यर्थ होगा कि वह धैर्यवान, पुरुषार्थी और नागरिक के गुणों से युक्त होगा।

यदि शिक्षा का विस्तार इसी तेज़ी से होता रहा और गाँवों तथा कस्बों से आने वाले युवक विद्यार्थियों की भीड़ इसी प्रकार शारीरिक और मानसिक अस्वस्थकर जीवन व्यतीत करती रही तो राष्ट्र को भयंकर स्थिति का सामना करना होगा और शिक्षा वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध होगी।

स्वावलम्बी छात्रावासों की आवश्यकता :

अस्तु इस बात की आवश्यकता है कि हम शिक्षा केन्द्रों में स्वावलम्बी छात्रावासों की व्यवस्था करें। खर्चीले छात्रावासों से भारतीय विद्यार्थी की समस्या हल नहीं हो सकती। विश्वविद्यालयों, कालेजों और माध्यमिक स्कूलों के जो वर्तमान छात्रावास हैं वे अत्यधिक खर्चीले हैं। साधारण आय वाला अभिभावक उनका व्यय सहन नहीं कर सकता। फिर इन छात्रावासों में रहकर विद्यार्थियों में फिजूलखर्ची, कठोर परिश्रम की ओर से उदासीनता, विलासिता और अपने को औरों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानने का दम्भ उत्पन्न हो जाता है। अतएव हमें देश में स्वावलम्बी छात्रावास आन्दोलन को जन्म

ना होगा जो सस्ते होंगे और जिनमें रहकर विद्यार्थी स्वावलम्बन का पाठ खेगा, अपना काम स्वयं करेगा। यदि इस प्रकार के छात्रावास स्थापित हीं हुए और आधुनिक खर्चीले छात्रावासों की ही स्थापना की गई, तब भी धिकांश छात्र शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अस्वस्थकर स्थानों में ही हने पर विवश होंगे और देश को उसके भयंकर परिणाम भोगने होंगे।

वावलम्बी छात्रावास की रूप रेखा :

छात्रावासों के भवनों में बहुत व्यय होता है। अस्तु हमें सस्ते त्रावास भवनों का निर्माण करना होगा। सार्वजनिक निर्माण विभाग के र्किटेक्टों को ऐसे छात्रावासों की डिजाइन तैयार करनी चाहिए जिसमें द्यार्थियों की आवश्यकताओं को देखते हुए सुविधाएं उपलब्ध हों, परन्तु ह भवन अधिक खर्चीला न हो, छोटे कमरों के स्थान बड़े कक्ष (डारमिटरी) नाने से जिनमें दस विद्यार्थी रह सकें व्यय कम किया जा सकता है। अच्छा हो कि केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय इस प्रकार की कुछ डिजाइन विशेषज्ञों से यार करवा ले और सभी राज्यों में इस प्रकार के छात्रावासों का निर्माण हो।

इन छात्रावासों में रहने वाले छात्रों को अपना काम स्वयं करना होगा। कमरों की सफाई, कपड़ों की धुलाई, बर्तनों की सफाई के लिए कोई नौकर न दिये जायँ। जो छात्र गाँवों से आवें उन्हें निश्चित राशि में अनाज और दाल छात्रावास में जमा करानी होगी। रसोई बनाने के लिए अवश्य ही रसोइया रखा जाय; परन्तु प्रत्येक छात्र को बारी-बारी से सब्जी काटने, भोजन के समय परोसने तथा अन्य फुटकर कामों में सहायता करना आवश्यक होगा।

अनाज, दाल इत्यादि तो प्रत्येक छात्र निश्चित मात्रा में लायेगा; परन्तु सब्जी, मसाले तथा ईंधन इत्यादि के लिए उसे निश्चित रकम देनी होगी। इन छात्रावासों में केवल रोशनी या पानी का जो व्यय हो उतना ही छात्रावास शुल्क लिया जाय। कमरे का किराया न लिया जाय। भारतवर्ष में धर्मशाला, मंदिर, कुंआ इत्यादि बनवाना धार्मिक कृत्य माना जाता है। यदि शिक्षण संस्थाएं प्रयत्न करें तो छात्रावास भवन बनवाने के लिए धनी व्यक्तियों को आकर्षित किया जा सकता है। आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाएं इस कार्य में पहल कर सकती हैं।

छात्रावास में रहने वाले छात्र के लिए दिनचर्या निश्चित हो। प्रत्येक

छात्रावास के छात्र के लिए प्रातःकाल व्यायाम अनिवार्य हो। इन छात्रावासों के वार्डन ऐसे व्यक्ति हों जो चरित्रवान अनुभवी शिक्षक हों। अवकाशप्राप्त चरित्रवान अध्यापकों की सेवाओं को इन छात्रावासों के लिए प्राप्त किया जा सकता है। बहुत से सेवाभावी अध्यापक इस कार्य को सहर्ष करने के लिए तैयार होंगे। इन छात्रावासों का सम्बन्ध किसी एक शिक्षण संस्था से न हो। उस नगर में जो भी शिक्षण संस्थाएँ हों उन सभी के छात्र उनमें रह सकें। छात्रावास से वार्डन शिक्षण संस्थाओं से सम्बन्ध रक्खेंगे और उस छात्रावास में रहने वाले छात्रों की शैक्षिक प्रगति से अवगत रहेंगे।

इन छात्रावासों की जीवनचर्या भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल युवक में श्रद्धा और आदर उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए। छात्रों का मार्गदर्शन करने के लिए वार्डन रहेंगे; परन्तु छात्रावास की व्यवस्था और प्रबन्ध तूर्णतया स्वयं छात्रों को ही करना होगा। इससे एक बड़ा लाभ यह होगा कि युवकों को मूल्यवान व्यावहारिक शिक्षा मिलेगी। वे भावी जीवन के लिए अनुभव प्राप्त करेंगे। सर्वसाधारण को दैनिक जीवन से कौन-कौन सी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उसका उन्हें अनुभव होगा। आज जो कालेजों और विश्वविद्यालयों से निकलने वाले युवकों में परिश्रम से जी चुराने, तनिक सी कठिनाई से निराश होकर धैर्य खो देने और पुरुषार्थहीनता के दुर्गुण घर कर गये हैं वे इन छात्रावासों में स्वालम्बन का पाठ पढ़ने से दूर होंगे। इन छात्रावासों का जीवन राष्ट्रीयता की भावना को मजबूत करने वाला होना चाहिए। राष्ट्रीय एकता का बीजवपन इन छात्रावासों में रहकर किया जा सकता है। सभी धर्मों और जातियों के छात्र वहाँ रहेंगे, सभी महत्वपूर्ण पर्वों और त्योहारों को मनाने से तथा राष्ट्रीय त्योहारों का आयोजन करने से हमारे युवकों में राष्ट्रीय एकता की भावना का उदय करने के उपयुक्त केन्द्र ये छात्रावास बन सकेंगे।

छात्रावासों में वर्कशाप :

यदि इन छात्रावासों के साथ छोटे-छोटे वर्कशाप सम्बद्ध किए जा सकें जिसमें काम करके छात्र कुछ आय भी प्राप्त कर सकें तो और भी अच्छा हो। छुट्टियों में तथा प्रतिदिन सायंकाल वर्कशाप में काम करके छात्र केवल अपने माता-पिता का आर्थिक भार ही हल्का नहीं करेगा, वह स्वावलम्बन की दिशा में आगे बढ़ेगा, उसमें आत्मविश्वास जाग्रत होगा और हाथ से काम करने की शिक्षा बह प्राप्त करेगा। सरकार इन छात्रावासों के भवन

बनाने में तथा वर्कशापों को खड़ा करने के लिए अनावर्तक अनुदान दे। अनुदान की शर्तें सरल हों। जो भी कोई शिक्षा प्रेमी व्यक्ति अथवा समाज सेवी संस्था इस प्रकार के स्वावलम्बी छात्रावास की स्थापना करना चाहे तो उसे भूमि देने और भवन निर्माण तथा वर्कशाप के लिए अनावर्तक अनुदान देने का दायित्व राज्य सरकार और केन्द्र सरकार अपने ऊपर लें।

आज हम देश में शिक्षा का तेज़ी से विस्तार कर रहे हैं और यह गति तीव्र होती जा रही है, तो स्वावलम्बी छात्रावासों की आवश्यकता हमारी एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आवश्यकता बन गई है। शैक्षिक नीति निर्माताओं का उपर्यक्त ओर ध्यान देना अब नितांत आवश्यक है।

अहिंसक नव रचना का मासिक

जीवन-साहित्य

हिन्दी के विशिष्ट मासिक पत्रों में से है। इसकी रचनाएँ विचार-प्रेरक होती हैं। इसके लेखों को घर का प्रत्येक सदस्य पढ़ कर लाभ उठा सकता है।

पत्र के वार्षिक विशेषांक के लिए पाठक लालायित रहते हैं। गत अगस्त मास में प्रकाशित १५० पृष्ठों की सामग्री तथा आकर्षक आवरण युक्त नेहरू स्मृति अंक की सभी ने प्रशंसा की है।

संपादक :

हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन

वार्षिक शुल्क—४-०० नेहरू स्मृति अंक—२-२५

व्यवस्थापक :

जीवन - साहित्य

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

हमारी शिक्षा का पुनर्रचना

(डा० सरयूप्रसाद चौबे, लखनऊ विश्वविद्यालय)

देश में प्रचलित शिक्षा से आज कोई सन्तुष्ट नहीं दिखलाई पड़ता। सभी लोग इसकी आलोचना करते हैं। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद यह आलोचना और कटु हो चली है, और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि अपनी सरकार से अधिक अपेक्षायें रखना उचित ही है। हमारी वर्तमान शिक्षा अभी भी उन्हीं आधारों पर स्थित है जिन पर इसका भवन ब्रिटिश काल में खड़ा किया गया था। ब्रिटिश काल में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण भारतीयों की आवश्यकता के अनुसार न करके विदेशी साम्राज्य को देश में सुदृढ़तर करने के लिए किया गया था। तब शासकों के सामने कुछ ऐसे सहायकों को उत्पन्न करने का प्रश्न था जो अंग्रेजी राजकाज में मदद करते। इस प्रकार तब शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का पूर्ण विकास न हो करके विदेशी सरकार के लिए कुछ नौकरों को उत्पन्न करना था। इस संकीर्ण उद्देश्य का परिणाम यह हुआ कि भारतीय शिक्षा देश की संस्कृति और परम्पराओं से विहीन हो चली। इस दोष की ओर हमारे नेतागण समय-समय पर अवश्य संकेत करते रहे। परन्तु उनके विचारों का चालू प्रणाली पर कुछ विशेष प्रभाव न पड़ सका। फलतः शिक्षा अपने पुराने आधारों पर चलती रही। नेताओं की माँग से समय-समय पर प्रभावित होते रहने के कारण अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए कुछ आयोग और समितियां अवश्य बैठाईं। परन्तु इनकी संस्तुओं को पूर्णरूपेण कभी कार्यान्वित नहीं किया गया।

सन् १९३७ ई० में महात्मा गांधी के प्रेरणास्वरूप बेसिक शिक्षा का सूत्रपात किया गया। यह शिक्षा भारतीय संस्कृति और परम्पराओं पर आधारित की गई। परन्तु सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ जाने पर इस नवीन शिक्षा प्रणाली का कार्यान्वयन स्थगित कर दिया गया। देश के कुछ प्रान्तों में १९४६ से इस प्रणाली के अनुसार पुनः कार्य प्रारम्भ किया गया। १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो यह प्रणाली सम्पूर्ण देश के लिए प्राथमिक शिक्षा का आदर्श मान ली गई है और इसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रयास किया जा रहा है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद

ारी विविध आशायें स्वभावत: बलवती हो उठी हैं और शिक्षा के क्षेत्र में हम कुछ ऐसे परिवर्तन लाने के इच्छुक हो गये हैं जिससे हमारी शिक्षा तीय संस्कृति और परम्पराओं तथा जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के अनुकूल । फलत: १९४९ में विश्वविद्यालय शिक्षा पर राधाकृष्णन कमीशन रिपोर्ट १९५३ में माध्यमिक शिक्षा पर मुदलियर कमीशन रिपोर्ट हमारे सामने । इन दोनों कमीशनों (आयोगों) ने अखिल भारतीय स्तर पर विश्व-लय और माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर विचार किया और उनकी रचना के लिए रचनात्मक सुझाव हमारे सामने रक्खे। परन्तु हमारी सरकार को इनकी संस्तुतियों को कार्यान्वित नहीं कर सकी है और न शिक्षा की पुनर्रचना के पथ की ओर अभी विशेष सफल नहीं सका है।

१९६५ से कोठारी शिक्षा आयोग ने शिक्षा में सुधार हेतु अपने वों को खोजने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। देखना है कि हम इस कार्य में कितना सफल होते हैं। हमारे सामने अपनी शिक्षा की रचना करने की कठिन समस्या है। परन्तु इस पुनर्रचना का क्या तात्पर्य ? यह पुनर्रचना कैसे की जा सकती है ? इसमें हमें किन-किन बातों पर न देना चाहिए ? नीचे हम इन्हीं सबको समझेंगे।

क्षा की पुनर्रचना का तात्पर्य

अपने देश की शिक्षा प्रणाली की पुनर्रचना के दो तात्पर्य समझे जा ते हैं। एक के अनुसार आमूल परिवर्तन का प्रयत्न है और दूसरे के अनुसार लित प्रणाली में ही आवश्यक सुधार की बात आती है। किसी प्रणाली आमूल परिवर्तन बहुत ही कठिन होता है। आमूल परिवर्तन में धन, और अन्वेषण की आवश्यकता होती है। अचानक आमूल परिवर्तन ना न सम्भव ही है और न श्रेयस्कर। वस्तुत: पुनर्रचना के लिए धीरे-धीरे वर्तन लाना ठीक होगा। परन्तु जो भी हम परिवर्तन लायें उसका अन्तिम श्य अपनी संस्कृति, परम्परा तथा वर्तमान आवश्यकता के अनुसार रचना होना चाहिए। पुनर्रचना का उद्देश्य तात्कालिक क्रान्तिकारी वर्तन नहीं होना चाहिए, परन्तु इसका उद्देश्य यह अवश्य हो कि बहुत म्भ से ही विद्यार्थियों, अध्यापकों, अभिभावकों और सम्बन्धित शासकों के ष्टिकोण में आवश्यक परिवर्तन आ जाय। यह परिवर्तन भारतीय संस्कृति, परा तथा देश के संविधान द्वारा स्वीकृत जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों से सिक्त ना चाहिए। वस्तुत: भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना का यही तात्पर्य है।

हमारी शिक्षा की पुनर्रचना कैसे हो ?

भारतीय संस्कृति और दर्शन : अपनी शिक्षा की पुनर्रचना में हमें सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति और दर्शन पर ध्यान देना होगा और इन्हीं को अपनी शिक्षा रूपी भवन की नींव बनानी होगी। परन्तु भारतीय संस्कृति और दर्शन की नींव बनाने का क्या तात्पर्य है ? इसका अर्थ देश के भावी नागरिकों को अपने देश के साहित्य, काव्य, दर्शन, संस्कृति तथा परम्पराओं में आस्था उत्पन्न करना है। जब तक हम अपने को न समझेंगे तब तक हमारा सर्वांगीण विकास सम्भव न होगा। हममें बहुत से ऐसे लोग मिलेंगे जो प्राच्य संस्कृति और दर्शन से अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। कितनी बड़ी विडम्बना है यह। इस विडम्बना के कारण ऐसे लोग अपने देश सम्बन्धी सभी बातों को तुच्छ समझते हैं और उसकी अच्छाइयों की ओर से मुख मोड़ लेते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए तथा सबको अपनी संस्कृति और परम्परा से अवगत करने के लिए हमें अपनी शिक्षा को राष्ट्रीय बनाना चाहिए। नीचे हम इस राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य समझेंगे।

हमारे राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य

हमारे राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य एक ऐसी शिक्षा से है जो देशीय संस्कृति में पगी हो। शिक्षा को देशीय संस्कृति में पागने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम पाश्चात्य देशों की विविध प्रगतियों तथा विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों से लाभ न उठायें। हम अपनी राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा देश के सभी नागरिकों का सर्वतोन्मुखी विकास करना चाहते हैं। अतः विदेशी प्रगतियों और अनुभवों से हमें लाभ उठाना ही होगा। परन्तु इस लाभ को प्राप्त करने के प्रयास में हम अपने 'अपनत्व' को नहीं खोना चाहते : अर्थात् हम अपनी संस्कृति के गुणों की अवहेलना नहीं करना चाहते। अपनी संस्कृति के गुणों को अपनाने का हमारा तात्पर्य यह होगा कि पाश्चात्य सभ्यता तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के सदुपयोग करने के अपने प्रयास में हम उन्हें अपनी भारतीय संस्कृति की कसौटी पर कसें। उनकी अच्छाइयों और बुराइयों को आंकने का मापदण्ड हम अपनी संस्कृति के अनुसार बनायें। हम अपनी संस्कृति की आध्यात्मिकता, चरित्र निर्माण, सात्विकता तथा सामाजिक आदर्श से विलग न हों और इन्हीं की कसौटी पर दूसरों की अच्छी बातों को कसकर स्वीकार करें।

हम उसे राष्ट्रीय शिक्षा नहीं कहेंगे जो केवल डिग्री प्रदान करती है

र जो चिन्तन, तर्क और कल्पना शक्ति का विकास न करके कोरी स्मरण क्ति पर बल देती है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में नम्रता, तिप्रियता, आत्म-नियन्त्रण और मानव-साम्य का भाव भरना होगा। रचनात्मक रूप में मस्तिष्क को शिक्षा देनी होगी। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा उद्देश्य व्यक्ति को इस प्रकार सक्रिय बनाना होगा कि वह कर्म पर वास करे और फल की कामना न करे। हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो क व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ बनाये। वस्तुतः आज इसी प्रकार की शिक्षा की हमें श्यकता है। हम देखते हैं कि आज लोग अपने अधिकारों के प्रति अधिक न हैं और कर्तव्यों की अवहेलना कर रहे हैं। हमें शिक्षा द्वारा इस वृत्ति को बदलना होगा। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा का यह भी उद्देश्य । हमारी राष्ट्रीय शिक्षा शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स को करने में सक्षम होगी। राष्ट्रीय शिक्षा अपने इन सब उद्देश्यों में न हो, इसके लिए शासन की सक्रिय सहायता आवश्यक होगी। तो इस न के उत्तरदायित्व की विवेचना भी आवश्यक है।

न का उत्तरदायित्व

शिक्षा की पुनर्रचना में हमें शासन की सहायता की आवश्यकता ी। उसके सहयोग और आर्थिक सहायता बिना कुछ न हो सकेगा। ब्रिटिश न में शिक्षा के प्रति शासन की उदासीनता का अर्थ तो समझा जा सकता । परन्तु अपनी सरकार की इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की उदासीनता नीय होगी। हमारी राष्ट्रीय सरकार शिक्षा के स्वरूप को सुधारने में शील है, परन्तु उसकी यत्नशीलता राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल नी चाहिए। इस सम्बन्ध में हमें और उसे भगीरथ प्रयत्न करना होगा। न को शैक्षिक योजनायें इस प्रकार चलानी होंगी कि उनसे सम्पूर्ण शिक्षा ध्यान दिया जा सके, न कि केवल कुछ अंग विशेष पर। हमें शिक्षा के सभी ों—प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालयी तथा प्राविधिक और व्यवसायी— ध्यान देना होगा। शिक्षा एक क्रमिक प्रक्रिया है। अतः एक पर ध्यान देने र दूसरे की अवहेलना करने पर सभी श्रम व्यर्थ हो जायगा।

रिकों की मनोवृत्ति

शिक्षा की पुनर्रचना उपर्युक्त आदर्शों के अनुसार तभी सम्भव होगी नागरिकों की मनोवृत्ति में आवश्यक परिवर्तन आये और उनमें अपनी ृतिक परम्परा और जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों में आस्था हो। इस आस्था

को उत्पन्न करने के लिए हमें प्रयास करना होगा। इस प्रयास में राजनीतिज्ञों, नेताओं, शिक्षकों तथा अन्य लोगों को समुचित भाग लेना है।

शिक्षा की पुनर्रचना में ध्यान देने की बातें

अब हमें उन बातों पर विचार करना है जिन पर शिक्षा की पुनर्रचना में हमें ध्यान देना आवश्यक है।

१. **पुनर्रचित शिक्षा के उद्देश्य** : १. शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना।

२. जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले ऐसे नागरिकों को उत्पन्न करना जो समाज सेवा के लिए सदा तत्पर रहें।

३. पर्यावरण में अपना समंजन कर सकने में व्यक्ति को आवश्यक कौशल देना।

४. अपनी आजीविका के लिए खड़ा हो सकने के लिए व्यक्ति को समर्थ करना।

५. अवकाश का सदुपयोग करना सिखाना।

६. देश के विभिन्न राज्यों के निवासियों के प्रति सहानुभूति का भाव देना।

७. जाति तथा धर्म के भेद-भाव को राष्ट्रीय कार्यों में स्थान न देने की प्रवृत्ति पैदा करना।

८. संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का विकास करना।

९. तर्क, चिन्तन तथा विवेक का विकास करना।

२. **पाठ्य क्रम** : उपर्युक्त उद्देश्यों के अनुकूल ही पाठ्यक्रम का स्वरूप होना चाहिए। इसके संगठन में हमें स्थान, काल तथा बच्चों की अवस्था और आवश्यकता पर ध्यान देना चाहिए।

३. **शिक्षा की व्यवस्था** : कम से कम माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यालयों के संगठन में तथा शिक्षा के आयोजन में जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों का पूर्णरूपेण आदर करना चाहिए। सभी प्रकार की शिक्षा—सामान्य, व्यावसायिक और प्राविधिक—की व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा के प्रत्येक स्तर—प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयी—की पुनर्रचना होनी चाहिए।

४. **शिक्षण पद्धति** : शिक्षण पद्धति कार्य-प्रधान होनी चाहिए। सीखने की प्रक्रिया को प्रधानता देनी चाहिए। शिक्षण परीक्षा में उत्तीर्ण करने के लिए न होकर विद्यार्थियों में आवश्यक गुण और कौशल उत्पन्न करने के लिए होना चाहिए। शिक्षण पद्धति द्वारा विद्यार्थी को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास करना चाहिए।

५. **अनुशासन** : शिक्षा की हमें इस प्रकार की पुनर्रचना करनी चाहिए कि विद्यार्थियों में आत्म नियन्त्रण और सहिष्णुता के गुणों का विकास हो जिससे अनुशासन की समस्या का स्वतः समाधान हो जाय और वह समस्या हा न उत्पन्न हो।

६. **योग्य अध्यापकों की तैयारी** : पुनर्रचित शिक्षा की सफलता योग्य अध्यापकों पर निर्भर करेगी। अतः कुशल अध्यापकों की तैयारी का यत्न करना चाहिए। इसके लिए हमें प्रशिक्षण महाविद्यालयों के दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन लाना होगा कि वे पुनर्रचित शिक्षा के उद्देश्यों में आस्था रखते हों।

८. **परीक्षा प्रणाली** : परीक्षा प्रणाली में हमें इस प्रकार परिवर्तन लाना है कि अध्यापक और विद्यार्थीगण परीक्षा के लिए ही पठन-पाठन न करें। पूरे सत्र के कार्यों के आधार पर मूल्यांकन, निबन्ध परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करना तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुणों को अपनाना प्रचलित परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए आवश्यक है।

८. **अभिभावकों का सहयोग** : शिक्षा रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं—एक अध्यापक दूसरा अभिभावक। बालक अपना अधिकांश समय परिवार में ही व्यतीत करता है। अतः स्कूल के उद्देश्यों की पूर्ति में अभिभावकों का सहयोग आवश्यक है। इस सम्बन्ध में शिक्षाधिकारियों के लिए उचित है कि वे अभिभावकों में आवश्यक जागृति उत्पन्न करें।

९. **शैक्षिक वातावरण** : हमारी पुनर्रचित शिक्षा के उद्देश्य तभी कार्यान्वित किये जा सकते हैं जब उनके अनुकूल शैक्षिक वातावरण उपलब्ध हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि स्कूलों की स्थापना स्वास्थ्यकर वातावरण में की जाय और स्कूल का मनोबल और स्तर सभी विधि से उन्नत हो।

शिक्षा का मौलिक आधार*

(डा० सेठ गोविन्ददास, संसद-सदस्य, जबलपुर)

सृष्टि में कोई भी वस्तु पूर्णतया पूर्ण और निर्दोष तो नहीं हो सकती, परन्तु मानव हर वस्तु को निर्दोष बनाने का यत्न अवश्य करता है; यद्यपि चूंकि वह स्वयं पूर्ण नहीं है इसीलिए उसके समस्त कार्य अपूर्ण ही रहते हैं। हजारों वर्षों के मानव इतिहास में कहीं भी शिक्षा की कोई पद्धति सर्वथा निर्दोष और सर्वमान्य नहीं रही है, परन्तु शिक्षा की वर्तमान पद्धति तो अत्यन्त शोचनीय और चिंतनीय हो गई है। सारे संसार में कोई भी उससे संतुष्ट नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति के माध्यम से मनुष्य को जानकारियाँ (Informations) तो मिल जाती हैं, लेकिन सच्चे ज्ञान की उपलब्धि उसे नहीं होती। यह ज्ञान उपलब्ध न होने से स्वयं मानव का निर्माण यह शिक्षा नहीं कर पाती। तथ्यों की जानकारी से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है, परन्तु उसकी अन्तरात्मा खाली की खाली बनी रहती है; न तो उसके अन्तःकरण का जागरण होता है, न उसके हृदय में शुभ भावनाओं का अवतरण। कह सकते हैं कि यह उस आहार की भाँति है जिससे भूख तो मिट जाती है परंतु तृप्ति नहीं होती और न ही नया रक्त शरीर में बन पाता है। परिणाम यह होता है बिना रुचि के इस भोजन से, जिसे हमारे शरीर की प्राकृतिक प्रक्रिया स्वीकार नहीं करती, न तृप्ति होती है और न उसका परिपोष। समय के साथ उल्टे उसका ह्रास होने लगता है और अन्ततोगत्वा एक अवधि पूर्ति के सदृश हमारा शरीर और मस्तिष्क और हृदय एक बिना प्रवाह की सरिता के समान सूख जाता है, समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि वर्तमान शिक्षा हमारे चरित्र को स्पर्श भी नहीं कर जाती और इससे मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने का कोई उपाय प्रतिपादित नहीं होता। यह कितना आश्चर्यजनक और अभाग्यपूर्ण है कि 'शिक्षा में प्रशिक्षण द्वारा पशु को मानव बनाने का उपक्रम तो किया जाता है, किन्तु मानव को मानव बनाने का नहीं। या इसे यों कहें कि पशु की पशुता दूर करने के प्रयत्न तो किये जा रहे हैं जबकि मनुष्य में अन्तर्निहित पाशविकता को उल्टा बढ़ाया जा रहा है।

---

*आचार्य रजनीश से एक वार्तालाप के आधार पर।

और यही क्या, उसे मानव से कुछ और बनाने के सभी प्रयत्न आधुनिक शिक्षा में किये जा रहे हैं ।

मानव को मानव बनाये रखना है अथवा कुछ और बना देना है–यही आधुनिक शिक्षा की एक समस्या है जिस पर ही बुद्धिवादी विवेकशील व्यक्ति और संसार का हर वर्ग चिंतित है ।

मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी जीव को शिक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि निसर्ग ने जो ज्ञान-शक्ति मनुष्य को दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं । अन्य जीवों को केवल प्रशिक्षण (traininig) दिया जा सकता है, जैसे सर्कस के सिंह, हाथी, घोड़ा, बन्दर, बकरे और तोता मैना आदि को । शिक्षा का सूत्र, उसका स्रोत, उसके चिर अन्तस में है । वह एक संस्कार है, जो बीज रूप से अंकुरित हो वृक्ष बनता है और उसमें पुष्प एवं फल फलते हैं, जबकि प्रशिक्षण मात्र अभ्यास है । यह उस पौधे की भाँति है जो पुष्प और फलों से रहित रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सजावट के किसी स्थल पर क्षणिक महत्व के लिए रोपा जाता है । याने शिक्षा एक प्राकृतिक (natural) संस्कार है और प्रशिक्षा एक कृत्रिम (artificial) वस्तु मात्र । पहले का सम्बन्ध अन्तस में है, दूसरे का बाहर से । पहला प्राकृतिक है, दूसरा कृत्रिम । एक विकासशील प्राण तत्व है तो दूसरा ह्रासोन्मुख निर्जीव पदार्थवत् । इस प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से जबरदस्ती थोपा हुआ ढांचा है । शिक्षा ऊपर से नहीं थोपी जाती, वरन अन्तस् जगाकर दी जाती है । पानी के हौज में जिस प्रकार पानी ऊपर भरा जाता है, उसी प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से दिया जाता है। जबकि शिक्षण कुएं में भरे हुए पानी की भांति है, जो भीतरी झिरों से भरता है । अंग्रेजी शब्द एजुकेशन का अर्थ बड़ा महत्वपूर्ण है । उसका अर्थ है (to draw out) भीतर से बाहर निकालना । उसका अर्थ बाहर से भीतर डालना नही है, पर हम जो कुछ कर रहे हैं वह बाहर से भीतर डालना है ! इसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है ? यह मात्र प्रशिक्षण है और यही कारण है कि जिसे हम शिक्षित होना कहते हैं और जिसे हमारे विश्वविद्यालय तक सम्मानित करते हैं, वह जीवन की व्यापक और वृहत परीक्षा में असफल हो जाता है । ऐसा शिक्षित जन केवल रटा हुआ तोता होता है । उसमें स्वयं विचार की न तो कोई ऊर्जा होती है और न अपने जीवन को निर्देशित करने का कोई विवेक । वह लहरों पर बहती हुई लकड़ी के के उस टुकड़े की भांति होता है जिसे लहरें जहाँ ले जाती हैं, चला जाता है ।

प्रशिक्षण का शिक्षण के रूप में इस भांति प्रचलित होना तकनीकी शिक्षा के अतिप्रभाव के कारण हुआ है, क्योंकि तकनीक का प्रशिक्षण ही हो सकता है, शिक्षण नहीं। सारा संसार चूंकि भौतिक समृद्धि के लिए लालायित है और हमारा देश तो गरीबी के कारण और अधिक। इसलिए तकनीकी ज्ञान को ही प्रमुखता मिली है। मैं तकनीकी ज्ञान और उसके द्वारा होने वाली भौतिक समृद्धि के विरुद्ध नहीं हूँ। संसार के लिए और हमारे लिए वह भी आवश्यक है। किन्तु इससे जो हमारा अनिष्ट हो रहा है, उसकी दिनों दिन बढ़ती हुई संभावना से हमारे बुनियादी जीवन का जो आधार खोखला हो रहा है, उससे अब हम अधिक समय तक अपनी आंखें मूंद कर नहीं रह सकते। अपनी अयोग्यता को छिपाकर केवल अभ्यास बल पर आखिर कहाँ तक हम आगे बढ़ सकेंगे। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लालच में नकल करके कोई भी विद्यार्थी जीवनरूपी परीक्षा में सफल हो सकेगा, यह स्पष्टतया असम्भव है। इस प्रकार सच्ची शिक्षा के अभाव में यह प्रशिक्षण हमारे जीवन को दरिद्र और एकंगा बना रहा है। और इसी के साथ इसके कुछ भयानक नतीजे भी निकल रहे हैं। तकनीकी ज्ञान भौतिक जगत के नियंत्रण के लिए आवश्यक है, परन्तु जिसे मैं सच्ची शिक्षा कहता हूँ, उसके द्वारा शिक्षित न होने के कारण मनुष्य अपने पर नियन्त्रण नहीं कर पा रहा है। और स्वयं पर इस अनियन्त्रण के कारण उसका पदार्थ ज्ञान एवं भौतिक वस्तुओं पर आअधिपत्य वैसा ही है जैसा अबोध बच्चे के हाथ में तलवार देना पिछले दो महायुद्ध इसके प्रमाण हैं और हम आज भी उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। हमें इन महायुद्धों से चेतावनी नहीं मिली। यदि मनुष्य व्यापी और समाजी रूप से सचेत नहीं होता तो अनियंत्रित मनुष्य के हाथ में प्रकृति की नियंत्रित शक्तियाँ आत्मघातक सिद्ध होंगी। इसकी चरम परणति समस्त मानवता के अन्त में हो सकती हैं। अत: भौतिक वस्तुओं पर नियन्त्रण के पूर्व मनुष्य का उससे कहीं अधिक स्वयं पर नियन्त्रण होना आवश्यक हैं; क्योंकि शक्ति केवल संयम के हाथों में ही सुरक्षित रहती है, असंयमी, अविवेकी के शक्तिशाली होने से भस्मासुर की पुनरावृत्ति आवश्यम्भावी होगी।

इस जगत में मनुष्य के लिए मनुष्य से अधिक महत्वपूर्ण और कुछ भी नहीं है। वह प्रथम है। और जो शिक्षा मनुष्य के सृजन की शिक्षा न होकर उसके संहार का कारण बनती है उसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है? शिक्षा का अर्थ ही एक सदिच्छा, सद्भाव के प्रसार को

ता है। ऐसे ज्ञान का विस्तार शिक्षा तत्व में निहित है जो व्यष्टि के म से समष्टि के कल्याण का केन्द्र बने। तकनीकी ज्ञान शिक्षा का प्रधान कभी नहीं होना चाहिए, वह गौण रहना चाहिए। मानवीय मूल्यों की ना ही शिक्षा का केन्द्रीय तत्व है। तकनीकी ज्ञान से उपार्जित वस्तुएँ नयापन का साधन हो सकती है, साध्य नहीं। साध्य तो मनुष्य स्वयं। इस साध्य की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा उसका एक शस्त्र है, एक साधन। वर्तमान शिक्षा पद्धति में हुआ यह है कि जो साध्य है वह साधन गया है और साध्य उसके नीचे आ गया है। इस प्रकार साधन को साध्य पर रखना घातक सिद्ध हुआ है। आध्यात्मिक शिक्षा और भौतिक ा का यही एक भेद है। भौतिक शिक्षा में साधन साध्य बन जाते र आध्यात्मिक शिक्षा में साधन, साधन रहते हैं और साध्य, साध्य। आवश्यकता पड़े एवं कोई अन्य विकल्प शेष न रहे तो सच्ची शिक्षा नों का परित्याग कर सकती है, लेकिन साध्य का नहीं। उसकी दृष्टि में व साधन सम्यक हैं जो जीवन के चरमसाध्य की उपलब्धि में सहयोगी हैं। के विपरीत पड़ते ही वे व्यर्थ और त्याज्य हो जाते हैं।

मानव की शिक्षा मूलत: उसके विवेक और उसकी भावनाओं की ा होगी। विवेक जागृत और शक्तिशाली हो तथा भावनाएँ संयमित और । वासनाएँ नियंत्रित हों और विवेक की अनुगामिनी हों। विवेक को ी भी परिस्थिति में वासना का अनुगमन न करना पड़े। विवेक जीवन का हो और उसके लिए सब कुछ समर्पित किया जा सके। ऋषि-महर्षियों तत्व-वेत्ताओं ने, आचार्यों और दार्शनिकों ने इसे ही यज्ञ-पूर्ण जीवन है। यज्ञपूर्ण जीवन का अर्थ हुआ विवेक के लिए वासनाओं को समर्पित ना। श्रेय के लिए प्रेय की बलि देना।

श्रेय विवेक है, जीवन है; मात्र प्रेय-पूर्ण जीवन पाशविक जीवन वासना है। विवेक-पूर्ण जीवन वरण करना है; प्रेय पशु है, ना है, वह त्याज्य है। ऐसी शिक्षा जो हमारे श्रेय को पुष्ट करती है, क को सशक्त बनाती है, जीवन में प्राणदायी तत्व भरती है, हमारे लिए है। यज्ञ-पूर्ण जीवन शिक्षा का उद्देश्य है, यज्ञ-शून्य जीवन ही अशिक्षित र असंस्कृत जीवन है। यही पशुता है। पशु तो पशु है ही, अशिक्षा मनुष्य भी पशु बना देती है। जो जानते हैं उन्होंने पशु उसे कहा है जो वासनाओं पाश में बंधा हो। मानव में भी पशुता है, पर सच्ची शिक्षा उसे अपने ही पर योग्य सवार बना देती है। शिक्षा उसे इस पाश से मुक्त करती है और

तभी वस्तुतः सच्चे मानव का जन्म होता है। इस भाँति शिक्षित होकर ही मनुष्य द्विज बनता है। एक जन्म तो वह है जो माता के गर्भ से मिलता है और दूसरा जन्म वह है जो शिक्षा से मिलता है। भारतीय संस्कृति में उपनयन के पूर्व कोई द्विज नहीं माना जाता था। उपनयन और समावर्तन संस्कार के बीच में उसे शिक्षा दी जाती थी और वही सच्ची शिक्षा होती थी। सरस्वती माता है और भी महिमायुक्त अर्थों में वह माता से बड़ी माता है।

ब्रिटिश स्कूली बच्चों ने नेहरू स्मारक प्रदर्शिनी देखी

लन्दन के रायल फेस्टिवल हाल में हो रही नेहरू स्मारक प्रदर्शिनी को देखने के लिए ब्रिटेन भर से स्कूली बच्चों के दल जून के दूसरे और तीसरे सप्ताहों तक पहुँचते रहे।

न्यूयार्क स्थित भारतीय कांसुलेट-जनरल के प्रथम सचिव (सूचना), श्री निर्मलसिंह, ने बताया : "मैं यहाँ आने वाले प्रत्येक लड़के और लड़की को उस पुस्तक की एक प्रति देता हूँ जिसमें श्री नेहरू के भाषणों के उद्धरण दिये गये हैं।" आप इस प्रदर्शिनी के आयोजन के सम्बन्ध में लन्दन आये हुए थे।

आपने आगे कहा : "ये युवा विद्यार्थी यहाँ प्रदर्शित छायाचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत भारतीय इतिहास में बड़ी रुचि दिखाते हैं। इनमें से अधिकतर अपनी याद के लिए लिखते भी पाये जाते हैं क्योंकि स्कूल लौटने पर उन्हें निबन्ध लिखने पड़ेंगे।"

मिआ और गान्धी जी

ाध्यापक अब्दुल्ला वली बख्श कादरी साहब, दिल्ली)

जवाहरलाल नेहरू ने जामिआ बनने के फौरन बाद उसके बारे में एक ख लिखा था जिसमें जामिआ को असहयोग आन्दोलन का एक स्वस्थ च्चा घोषित किया था। पंडित जी के ये शब्द जामिआ की असलियत और विकता का अच्छा और सच्चा परिचय देते हैं। उस समय देश में ाफत और असहयोग आन्दोलन का जोर था। गान्धी जी चाहते थे कि न्दुस्तानियों की तालीम उनके अपने हाथ में हो और वे विदेशी साम्राज्य ी नौकरी के चक्कर से निकलें। वह अली भाइयों (मौलाना मोहम्मद अली र शौकत अली) के साथ मुल्क का दौरा करते हुए अलीगढ़ कालिज चे। उस वक्त यहाँ सरकारी रंग इतना चढ़ा हुआ था कि देश की भलाई ा ध्यान कम ही लोगों को आता था; फिर भी अपने दिल में सच्ची लगन ने वालों की कुछ कमी न थी और ऐसे ही नौजवान इन देश भक्तों को ला भी रहे थे। उन्होंने उनके सामने मुल्क की आजादी के लिए हुकूमत से हर क काम काज में नाता तोड़ने का महत्व जताया और उनसे कालिज छोड़ने लिए कहा। एक तरफ नौजवानों का कौमी जोश जोर मार रहा था और सरी तरफ अंग्रेजी हुकूमत के पिट्ठू हिन्दुस्तानी उन्हें लालच दे देकर बहका हे थे। बड़ी खींचातानी होने लगी। लेकिन कुरबानी का वक्त भी आ हुँचा था। आखिर में एक नतीजा निकल ही आया। कालिज के लड़कों अपने लीडरों से कहा कि अगर अलीगढ़ कालिज की तालीम, देश के लिए च्चे सपूत नहीं बना सकती तो उनकी तालीम का कोई दूसरा और उचित बन्ध किया जाए। इसी सूझ बूझ ने जामिआ को मूर्त किया।

जामिआ मिल्लिया इस्लामिया २९ अक्तूबर १९२० को अलीगढ़ में यम हुई। इसकी आँख एक राष्ट्रीय और सियासी आन्दोलन की गोद में ली थी, इसीलिए इसके देख-रेख की जिम्मेदारी भी देश के नेताओं पर ही ई। हकीम अजमल खाँ, अमीर जामिआ (चान्सलर) मौलाना मोहम्मद ली, शेख-उल-जामिआ (वाईस चान्सलर) और डा० मुखतार अहमद सारी, आनरेरी सैक्रेट्री बनाए गए और सारे खर्चे का बोझ केन्द्रीय खिलाफत मेटी के कंधों पर आया। जामिआ की बुनियादी कमेटी के (फाउंडेशन

कमेटी) का पहला जलसा २२ नवम्बर १९२० को हुआ। इस जलसे में तय हुआ कि मुसलमानों की धर्म-शिक्षा को एक अनिवार्य विषय की हैसियत से पढ़ाया जाय। गाँधी जी न केवल इस बात के पक्ष में थे, बल्कि उन्होंने हिन्दुओं की धर्म शिक्षा का भी इन्तजाम करने के लिए कहा, इस जलसे में यह भी साफ-साफ कह दिया गया कि जामिआ के दरवाजे हिन्दू बच्चों के लिए भी बराबर खुले हैं। उसी वक्त पूरी शिक्षा का एक नया पाठ्यक्रम बनाने के लिए १९ आदमियों की एक कमेटी भी बनाई गई, जिसमें पंडित जवाहरलाल और डा० राजेन्द्रप्रसाद के नाम भी शामिल थे। अगले साल जामिआ के पहले कन्वोकेशन के मौके पर हकीम अजमल खां ने अपने सदारती भाषण में जामिआ की तामील के पांच उसूल गिनाये :—

(१) धर्म की कुन्जी से दुनिया के दरवाजे खोलो :—अगरचे हमने तमाम आधुनिक शास्त्रों को अपनी शिक्षा में जगह दी है, लेकिन कुरान और इस्लाम को मुख्य और उन्हें गौण बनाया है।

(२) इस्लाम की तारीख :—हमने इस्लामी इतिहास को अपनी शिक्षा में अनिवार्य ठहराया क्योंकि यह मुस्लिम कौम की परम्परा को एक सूत्र में बांध रखने के लिए स्मरण रखने की चीज़ है।

(३) मातृभाषा में तालीम :—हम तालिब इल्मों में ज्ञानार्जन का शौक और आचार-विचार पर उसका असर देखना चाहते हैं। इसलिए हमने एक गैर-भाषा के द्वारा तालीम देने के अस्वाभाविक तरीके को भी छोड़ दिया है।

(४) रोज़गार और दस्तकारी की शिक्षा :—मैं यकीनी तौर पर चाहता हूँ कि इससे हम अपने शागिर्दों के लिए रोजगार की हर मुमकिन सहूलियत पेश करें। और मुझे बड़ी खुशी है कि जामिआ मिल्लिया तालीम की इस नई व्यवस्था में दस्तकारी की शिक्षा हर शख्श के लिए अनिवार्य कर दी गई है।

(५) मिला-जुली हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता :—जहाँ हमने सच्चे मुसलमान पैदा करने के उपाय किए वहाँ उस बात को भी नहीं छोड़ा है कि शिक्षा-दीक्षा में वातावरण का बहुत बड़ा असर होता है और इस्लामियत के साथ देश सेवा की भावना पैदा करना भी हमारे सामने है। चुनांचे इस बात का विशेषरूप से ध्यान रखा गया है कि जहाँ हिन्दू तालिब इल्मों के लिए इस्लाम की बहुत-सी बातों का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है, वहाँ मुसलमान

विद्यार्थी भी हिन्दू रीति रिवाजों और हिन्दू सभ्यता से अपरिचित नहीं होंगे मिली-जुली और हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता की ठोस बुनियाद इसी आदान-प्रदान पर निर्भर है ।

पहले दो वर्ष का हंगामी जीवन गुजारने के बाद जामिआ विधिवत रूप से एक आजाद राष्ट्रीय शिक्षा संस्था बन गई । । सियासत का वक्ती जोश ठंडा पड़ने लगा और तालीम का गम्भीर वातावरण बढ़ने लगा । प्राइमरी, सेकंडरी और उच्च शिक्षा के लिए नया पाठ्यक्रम तैयार हुआ और खर्च के लिए एक फंड भी बनाया गया । फिर भी अलीगढ़ में जामिआ की बुनियाद मजबूत न हो सकी; क्योंकि अलीगढ़ कालिज का हर वक्त सामना था और देश की सियासी हवा भी बिगड़ने लगी थी । माली दुश्वारियाँ अलग थीं । हकीम अजमल खां साहब बहुत-कुछ परेशान थे । इस नाजुक घड़ी में गान्धी जी ने उन्हें हिम्मत बंधाते हुए कहा था कि जामिआ को तो चलाना ही होगा । आपको रुपये की दिक्कत है तो मैं भीख मांग लूंगा । फिर क्या था, हकीम साहब को सहारा मिल गया । उन्होंने बुनियादी कमेटी का जलसा बुला लिया । गान्धी जी जलसे में शरीक हुए और जामिआ को बन्द करने के बजाए अलीगढ़ से हटाकर देहली में बनाने का फैसला कर लिया गया । उस वक्त गान्धी जी जामिआ के "विजिटर" थे, क्योंकि यह बात उनके दिल को लगी हुई भी कि हिन्दुस्तान में कम-से-कम एक ऐसी संस्था जरूर हो जहां मुसलमानों की सभ्यता पर सच्ची राष्ट्रीयता की बुनियाद रखी जाए । वह हर मुमकिन तरीके से जामिआ की मदद के लिए तैयार थे ।

जुलाई १९२५ में जामिआ ने अपना नया ठिकाना करौल बाग देहली में बनाया । कुछ साथी नाउम्मीद होकर बैठ रहे थे । कुछ रूठ कर अलग हो गए थे । अब बुजुर्गों में हकीम अजमल खां और डाक्टर अंसारी ही जामिआ में प्राण फूंकने के लिए रह गये थे और उसे चलाने वाले वही मुट्ठी भर उस्ताद थे जिन्होंने दिल और जान की बाजी लगा कर यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी । इस मौके पर गान्धी जी जामिआ तशरीफ लाए तो उन्होंने उस्तादों और तालिब इल्मों से कहा "हिन्दुस्तान को हम उस वक्त आजाद करा सकते हैं, जबकि हमारे दिल में खुदा का खौफ हो और हम हुकूमत से बेखौफ हो जाएं" साथ ही अपने इस विश्वास को भी उन्होंने दुहराया कि जामिआ में इसी बात की तालीम दी जाती है । उन्होंने इस बात पर इतमिनान जाहिर करते हुए कि इस आड़े वक्त में जामिआ के लोग अपने पांव जमाए हुए हैं, अपनी हमदर्दी और मदद का पूरा यकीन दिलाया ।

गान्धी जी के लफ़्ज़ों ने कुछ ढाढ़स तो जरूर बंधाया, लेकिन सच यह है कि यह जमाना बड़ी बेचैनी और परीशानी के साथ गुजरा रहा था। ऐसे वक्त ज़ाकिर साहब के जामिआ आने की खबर ने लोगों का हौसला बढ़ा दिया। सात-आठ महीने बाद ज़ाकिर हुसैन, डा० आबिद हुसैन और प्रोफेसर मोहम्मद मुजीब तीनों एक साथ जर्मनी से लौटे और जामिआ के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। इन तीनों में ज़ाकिर साहब तो बेशक अलीगढ़ के उन विद्यार्थियों में से थे जो नई संस्था बनाने की मांग करने वालों में सबसे आगे रहे थे और जिन्होंने अलीगढ़ कालिज छोड़ कर जामिआ बसाई थी। बाकी दोनों साथियों का कोई पिछला सम्बन्ध नहीं था। लेकिन अब तीनों एक साथ जामिआ आए थे एक ही लगन और एक ही धुन के साथ सबकी मर्जी से ज़ाकिर साहब को शेख-उल-जामिआ (वाइस-चांसलर) बनाया गया और दूसरे दोनों साथियों ने भी दूसरी जिम्मेदारियां सम्हालीं।

अब जामिआ की बागडोर ज़ाकिर साहब के हाथ में थी और वह जामिआ के मामलों को सुधारने की बातें सोच ही रहे थे कि १९२९ के शुरू में ही हकीम अजमल खां साहब का इन्तकाल हो गया। अब सारी जिम्मेदार डा० अंसारी के सर आ गई। वही उसके अमीर-जामिआ (चांसलर) थे, वही उसकी बुनियादी कमेटी के सेक्रेट्री। ज़ाकिर साहब ने उसी साल जामिआ के दस्तूर (विधान) में इस तरह संशोधन कराया कि उसके कर्ता-धर्ता उसके उस्ताद ही हो गए। अब जामिआ एक ऐसी संस्था बन गई जहाँ काम लेने वाले और काम करने वाले सब कुछ उस्ताद ही थे। जिन उस्तादों ने २० साल तक एक थोड़ी सी निश्चित रकम पर काम करने का सँकल्प किया था वही अंजुमन तालीम-मिल्ली के हयाती रूक्न या आजीवन सदस्य बनाए गए और इसी अंजुमन के सुपुर्द जामिआ के चलाने की जिम्मेदारी आई। इस नई अंजुमन के सदर और अमीरे-जामिआ डा० अंसारी चुने गये। ज़ाकिर साहब को अंजुमन का सेक्रेट्री और शेख-उल-जामिआ बनाया गया और अंजुमन के खाजिन सेठ जमना लाल बनाए गए। सेठ साहब की जो हैसियत उस वक्त देश और कांग्रेस के अन्दर थी, उसने जामिआ को बहुत ताकत दी। अब यह बताने की जरूरत नहीं कि सेठ साहब को किसने और क्यों जामिआ की खिदमत पर लगाया और यह किसका करम था। फिर सेठ साहब अपने जीवन के अन्त तक जामिआ के सरपरस्त बने रहे। उस वक्त से लेकर आज तक जामिआ ने जो कुछ नीच-ऊँच देखी है इसकी सारी दौड़

70957

ग्रुप में ज़ाकिर साहब और उनके साथी यानी आबिद साहब और मुजीब साहब ही आगे-आगे रहे हैं। आज भी जामिआ का चिराग़ इन्हीं सबके दम से रोशन है।

दस्तूर की इस तब्दीली से जामिआ के दृष्टिकोण में कोई तब्दीली नहीं आई। इस वक्त भी मौलाना मोहम्मद अली के लफ़्ज़ों में ख़ुदा परस्ती, धर्म परायणता और राष्ट्र प्रेम ही जामिआ के आदर्श थे। यहां गान्धी जी का नेता रसिकलाल तालीम हासिल करने के लिए आ चुका था, जामिआ में काम करने वालों में देवदास गान्धी और जी० राम चन्द्रन जैसे लोग रह चुके थे। जामिआ अपने आदर्श और आचार-व्यवहार से हिन्दुस्तानी सभ्यता का एक सच्चा, पक्का और अच्छा नमूना बनने की कोशिश में लगी हुई थी। ज़ाकिर साहब और उनके साथी तालीम के मैदान में नित नए तजुर्बे कर रहे थे। काम में फैलाव के साथ-साथ गहराई भी आती जा रही थी। क़रौलबाग़ में काम बढ़ाने की गुंजाइश कम थी। वहां का माहौल भी अच्छा न था। हालांकि ये माली दुश्वारियां थी, फिर भी १९३५ में ओखले के क़रीब जामिआनगर की बस्ती बसाने का काम अल्लाह का नाम लेकर शुरू कर दिया गया। गान्धी जी खुश हुए और मुबारक बाद दी। अभी इस तामीरी काम की शुरूआत ही हुई थी कि १० मई १९३३ को डा० अंसारी परलोक सिधार गए। जामिआ को यह धक्का बर्दाश्त करना मुश्किल हो गया। तब अलीगढ़ के अब्दुल मजीद ख्वाजा साहब को अमीर-जामिआ बनाया गया। यह वही ख्वाजा साहब थे जो मौलाना मोहम्मद अली के बाद कुछ दिन शेख़-उल-जामिआ रह चुके थे और गान्धी जी के एक अच्छे और पुराने साथी थे। हालात से निबटने के लिए दस साल बाद फिर जामिआ के विधान में कुछ तब्दीली की गई, जिससे आजीवन सदस्य कुछ जुड़ गए और जामिआ फिर अपने मक्सद की धुन में आगे बढ़ने लगी। ज़ाकिर साहब समय-समय पर जामिआ के मक्सद को दुहराते रहे और अपने कामों को उस की रोशनी में जांचते रहे। १९४१ में नए तालीमी साल की मुबारक बाद देते हुए उन्होंने अपने छोटे-बड़े सभी साथियों को अपने अन्दर जामिआ की रूह फूंकने के उद्देश्य से बताया—"इस साल हमारे करने के यह चार काम हैं। हम में से हर शख़्स को यह चार चीजें ज्यादा से ज्यादा हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए—स्वास्थ्य, शक्ति, सौंदर्य और पवित्रता।" यही वह नजर थी जिसने कठिन से कठिन समय पर भी जामिआ का आदर्श कभी उससे ओझल होने न दिया; यहां तक कि १९४६ आ

पहुँचा। जामिआ ने बड़े हौसले से अपनी पचास साला जुबली मनाई, मगर किस वक्त ? जबकि सारे देश में तना-तनी थी। भाई-भाई को खाए जाता था। फिर भी जमिआ को मुबारकबाद देने और उसके कामों की सराहने के लिए एक ही वक्त में वे सब जामिआ में जमा हो गए थे जिन्हें सियासत ने एक दूसरे से बहुत दूर खड़ा कर रक्खा था। जो एक-दूसरे की हर मामले में काट करते थे, जामिआ की तारीफ में एक-दूसरे से सहमत थे। जाकिर साहब ने इस आड़े वक्त में देश को जामिआ के आदर्शों से परिचित कराना मुनासिब समझा। ताकि शायद छोटा दिल और बड़ा दिमाग रखने वाले उनकी आवाज सुनकर अपनी करतूतों पर शर्माएं और जामिआ की मिसाल को अपना लें। उन्होंने उस मौके पर "जामिआ क्या है ?" नाम से एक किताब छापी—उसमें जामिआ मिल्लिया का सबसे बड़ा मकसद यह है कि हिन्दुस्तानी मुसलमानों की आने वाली जिन्दगी का एक ऐसा नक्शा तैयार करें जिसका केन्द्र इस्लाम धर्म हो और उसमें हिन्दुस्तान की कौम, सभ्यता का वह रंग भरे जो आम इन्सानी सभ्यता के रंग में खप जाए। उसकी बुनियाद इस सभ्यता पर है कि मजहब की सच्ची तालीम हिन्दुस्तानी मुसलमानों को वतन की मुहब्बत और कौमी एकता का सबक देगी और हिन्दुस्तान की तरक्की और आजाद हिन्दुस्तान दूसरे मुल्कों के साथ मिलकर दुनियां की जिन्दगी में सहयोग देगा और शक्ति और सभ्यता की सेवा करेगा।

इस तरह किसी समय भी जामिआ ने अपनी नीति नहीं बदली और वह अपना फर्ज पूरा करने में बराबर लगी रही। उसके तालीमी काम बढ़ते और फैलते चले गये और उनमें निखार आता गया। प्राइमरी स्कूल ने एक आदर्श स्कूल का नमूना बन कर दिखाया। वहाँ आम दिलचस्पियों की दर्जे के काम का एक जरूरी हिस्सा मान लिया गया। प्रोजेक्ट मेथड ऐसा अपनाया गया कि वह बिल्कुल अपनी चीज बन गया। बच्चों का बैंक, बच्चों की दूकान, बच्चों का खोंमचा, मुर्गी खाना, 'चिड़ियागर', 'दीवारी अखबार' जैसी तालीमी गतिविधियां शुरू की गई। खुली हवा का स्कूल बनाया जाने लगा जबकि शहर से दूर किसी साफ सुथरी जगह पर एकाध हफता गुजारा जाता और पढ़ाई, खेल, काम, हंसी-मजाक, रहना-सहना, खाना-पीना सभी कुछ वहीं होता। ड्रामा, तकरीर पढ़ने और सामूहिक जीवन के शिष्ट आचार-व्यवहार जैसी गतिविधियों को तालीम का एक अंग मान लिया गया। इन सब कामों की तरफ ध्यान देने का मतलब यही था कि बच्चों का मन जागे और तन में जान आए, उनमें सोचने-समझने और खुद आगे बढ़ने का हौसला

पैदा हो; वे एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर काम करना सीखें। उनके अन्दर भेद-भाव न पैदा हो। वह बड़े होकर सच्ची हिन्दुस्तानी सभ्यता का नमूना बनें। सेकंडरी स्कूल में साहित्यिक रुचि उभारने और लड़के के गुण और स्वभाव को पहचान कर काम कराने की फिकर हुई; शिष्ट जीवन के आचार-व्यवहार सिखाने के उपाय किए गये और प्रोजेक्ट मेथड के अलावा और भी नये तरीकों पर प्रयोग हुए। छोटे बच्चे हों या बड़े, वर्जिश, तैराकी, घूमना-फिरना, पर से लेकर पत्थर तक सब ही कुछ जमा करना और ऐसी ही सारी बातें उनकी रोजाना की जिन्दगी में आ गईं। कालिज के अन्दर उस्तादों ने न सिर्फ नौजवान में तालीम का चाव पैदा करने की कोशिश की ऊँचे स्तर की किताबें लिख-लिख कर भी अपनी जिम्मेदारी निभाई, विद्यार्थियों के अन्दर खोज और तहकीक के शौक को उभारने और लिखने और बोलने में महारत पैदा करने के साथ चरित्र का निर्माण करने को भी तालीम का उद्देश्य ठहराया। उस वक्त तादाद कम थी, डिगरी को सरकारी मान्यता भी नहीं मिली थी; लेकिन लोगों के दिलों में कदर की कमी नहीं थी। अब तो न सिर्फ तादाद बढ़ी है बल्कि इतिहास और संस्कृत में एम० ए० तक तालीम का बाकायदा इन्तजाम भी है।

जामिआ में, यूँ तो मामूली तरीके से वालिगों की तालीम का काम १९२६ में ही एक रात के स्कूल के रूप में शुरू हो गया था, लेकिन १९३८ में इसी उद्देश्य से एक अलग संस्था इदारा तालीम-व-तरक्की की स्थापना हुई। इस इदारे ने अपने बानी शफीकुर्रहमान किदवई साहब के नेतृत्व में देश के सामने नमूने का काम कर दिखाया। प्रौढ़ शिक्षा को छिछले और छोटे कुंड से निकालकर उसे "समाज शिक्षा" के ऊँचे स्थान तक पहुंचाने में इस इदारे का बहुत कुछ हाथ रहा है। कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए उनकी रुचि और जरूरत के अनुसार छोटी-छोटी किताबें तैयार करने में न सिर्फ इसने पहल की, सात-आठ साल के अन्दर बहुत से विषयों पर २०० से ज्यादा किताबचे छापकर बाँट भी डाले। इस इदारे ने तरह-तरह से जामिआ के आस-पास के गांवों में सुधार का काम भी किया। यह वही जमाना है जब कि गांधी जी ने बुनियादी कौमी तालीम का विचार देश के सामने रखा था और तालीम के कुछ माहिरों की एक कमेटी को आठ साल तक की प्रारम्भिक तालीम की स्कीम बनाने का काम भी सौंप चुके थे। इस कमेटी की सिफारिशों को मान भी लिया गया था। यह स्कीम तो बन गई, लेकिन इस स्कीम के मुताबिक तालीम देने वाले उस्ताद कहाँ थे? इस

जरूरत को पूरा को करने के लिए १९३८ में ही जामिआ के अन्दर उस्तादों का मदर्सा कायम हुआ। इस मदर्से को गान्धी जी की बुनियादी तालीम के मुताबिक पढ़ाने वाले उस्ताद तैयार करने वाला सबसे पहला मदर्सा कहलाने का गौरव प्राप्त है। इस मदर्से की माली मदद भी गान्धी जी का कायम किया हुआ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ बहुत दिनों तक करता रहा। अब इस संस्था में न सिर्फ पांचवें दर्जे तक पढ़ाने वाले उस्तादों के लिए दो साल की ट्रेनिंग का इन्तजाम है, सीनियर बेसिक स्कूल और हायर सेकंडरी स्कूल में पढ़ाने वाले उस्तादों की भी ट्रेनिंग होती है। यहां पर हर तरीके से गान्धी जी के आदर्शों के अनुसार शिक्षा देने की कोशिश की जाती है और साधारण जीवन की भावना पैदा करने का ध्यान रहता है। इस मदर्से में पढ़ने वालों की तादाद ही नहीं बढ़ रही है, काम भी बढ़ रहा है। बुनियादी तालीम के बारे में किताबें यहाँ के लोग लिख रहे हैं और बुनियादी तालीम के बारे में रिसर्च का काम यहां किया जा रहा है। अब तो एम० एड० की तालीम का इंतजाम हुए भी दो साल हो गए।

उर्दू में बच्चों के साहित्य की तरफ सबसे पहले जामिआ ने ही कदम बढ़ाया। तालीमी और साहित्यिक किताबें छापने का बीड़ा भी इसी ने उठाया। पाठ्य पुस्तकों का उसने एक स्टैंडर्ड बनाया। अब तो कारोबारी हैसियत से मक्तबा जामिआ एक लिमिटेड कम्पनी हो गया है लेकिन जामिआ इस काम को शुरू से ही करती रही है। आज उर्दू की खिदमत करने वालों में मक्तबा का काम बहुत शानदार हैसियत रखता है। गान्धी जी और पंडित नेहरू की आत्मकथाओं को उर्दू भाषा में छापने का गौरव इसी को हासिल है। १९५० में जामिआ ने आर्टस इंस्टीच्यूट खोला। यह भी देश भर में अपने ढंग की अकेली संस्था है, जहाँ आर्ट के शिक्षक तैयार किये जाते हैं इसके चार साल बाद एक नर्सरी स्कूल भी यहाँ खुल गया। इन इदारों के अलावा अब तो हुकूमत की तरफ से एक रूरल इंस्टीच्यूट भी जामिआ में कायम कर दिया गया है।

आजादी के वक्त जामिआ को भी उन सब हालात का सामना करना पड़ा जिनसे मुल्क बेजार था। मुसलमानों ने उसे ताने दिये और हिन्दुओं ने उसे बुरा कहा। लेकिन जामिआ वाले अपने रास्ते पर बराबर डटे रहे। सारे देश में नफरत की आग भड़क चुकी थी। देहली में यह चिनगारी और तेजी से लपकी। वह जामिआ तक भी पहुँची। करौलबाग़ में जामिआ की लाइब्रेरी तबाह हो गई। सारा सामान लुट गया। जामिआनगर में जान

पर आ बनी । ऐसी खराब हालत में भी गान्धीजी ने जामिआ को याद रखा । उन्होंने ढाढ़स बंधाई और हिफाज़त का सामान भी किया। जामिआ के लोग अपनी जगह जमे रहे । जब हालत सुधरी तो फिर जामिआ ने अपना काम शुरू कर दिया । आजादी के बाद विद्यार्थियों का पहला ग्रुप जो उस्तादों के मदर्से में सरकारी तौर पर तालीम पाने के लिए भेजा गया वह सरहद से आए हुए तबाह हाल उस्तादों का था । ये लोग डरते आए । शक और सन्देह लेकर आए, लेकिन जब अपना काम पूरा करके यहाँ से लौटे तो उनकी आंखों में मुहब्बत के आंसू थे । इस तरह नामालूम खुदा ने जामिआ की मांग की या गान्धी जी के दिल को जामिआ की तरफ से कुछ सुख पहुंचाने का मौका निकाला । अब तो इस मदर्से में उन उस्तादों के बच्चे तालीम पाने के लिए आने लगे हैं ।

राष्ट्रीय सरकार कायम होने के साथ-साथ जामिआ के दुख का जमाना खत्म हो गया । केन्द्रीय सरकार ने सारे खर्च की जिम्मेदारी खुद ले ली । देश की जरूरत को देखते हुए ज़ाकिर साहब को अलीगढ़ यूनीवर्सिटी भेज दिया गया । मगर दिल से दूर फिर भी न रहे । जामिआ ने उन्हें अपना नायब अमीरे-जामिआ बना लिया । अब तो अब्दुल मजीद ख्वाजा साहब के इन्तकाल के बाद इसके अमीरे जामिआ हैं । फिर मुजीब साहब शेख-उल-जामिआ हुए और नए वलवले के साथ आजाद हिन्दुस्तान में जामिआ अपना फर्ज़ पूरा करने के लिए कमर कस कर तैयार हो गई । जून १९६२ में यूनिवर्सटी ग्रान्ट्स कमीशन ने जामिआ को उच्च शिक्षा की राष्ट्रीय संस्था के रूप में मान्यता देकर सिर्फ उसकी पिछली सेवाओं की सराहना तो की है, तरक्की की राहें भी उसके लिए खोल दी हैं । अब उसकी डिग्रियों को मान्यता भी मिलने लगी है और उच्च शिक्षा का काम करने का पूरा मौका भी मिला है ।

गान्धी जी ने बार-बार इस बात को दुहराया है ।

[1] **अक्षर ज्ञान** से तालीम का मक्सद पूरा नहीं होता, इससे तालीम की शुरूआत भी नहीं होती । वह सिर्फ एक साधन है, जिससे मर्दों और औरतों को तालीम दी जा सकती है । अक्षर ज्ञान अपनी जगह खुद शिक्षा नहीं है । उन्होंने हमेशा इस बात पर भी जोर दिया कि [2] सच्ची तालीम के लिए जीवन की पवित्रता अनिवार्य है । आपकी तालीम

---

1. **Tandulkar : 'Mahatma" Volume IV, Page 175.**
2. **Mahatma Gandhi : Towards new education, Page 31**

[3] बिल्कुल बेकार है अगर वह सत्य और पवित्रता की ठोस बुनियादों पर कायम नहीं है। [4] सच्ची तालीम वही है जो बच्चों की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों को उभारती है। [5] ज्ञान का उद्देश्य चरित्र का निर्माण होना चाहिए। गान्धी जी के इन शब्दों की झंकार ज़ाकिर साहब के गिनाए हुए चारों काम यानी, स्वास्थ्य, शक्ति, सौन्दर्य और पवित्रता में सुनी जा सकती है।

जामिआ के जन्म और जीवन के इस परिचय से बिल्कुल साफ पता चलता है कि गांधीजी को जामिआ कितनी प्यारी थी और उन्हें इसके कामों से कैसा लगाव था। उन्होंने हर कठिनाई के समय रास्ता भी दिखाया और हाथ भी पकड़ा। जामिआ को चलाने वाले गान्धी जी के दोस्त गान्धीवादी लोग ही रहे हैं और गान्धी जी को हमेशा उन लोगों की सूझ-बूझ पर पूरा विश्वास रहा। इसलिए जामिआ में जो भी तालीमी काम होते रहे हैं और उसने जो भी नीति अपनाई है, उसमें गान्धी जी के तालीमी उसूल विद्यमान रहे हैं। जामिआ की तालीम और जिन्दगी दोनों में हाथ के काम की अहमियत रही है। यहां उर्दू को तालीम और काम का माध्यम माना गया और इससे दिल मिलाने का काम लिया गया। आज भी यहाँ उर्दू ही शिक्षा का माध्यम है। कहीं अनिवार्य है कहीं ऐच्छिक, मगर हर सूरत में वह शौक से सीखी जाती है। जामिआ ने अपनी जिन्दगी में तहज़ीब और शिष्टाचार को बरता है और सादगी को अपनाया है। यहाँ पूरे व्यक्तित्व को उभारने और संवारने की तरफ ध्यान रहा है और खुदा का खौफ दिल में पैदा करने की कोशिश की गई है। यही सब नियम गान्धी जी को भी प्रिय थे। इसीलिए जामिआ ने उन्हें हमेशा अपना हमदर्द, मददगार और बुजुर्ग समझ कर उनकी तरफ देखा। यही वजह है कि शिक्षा के बारे में गान्धी जी के दृष्टिकोण की बहुत-सी झलक अपने आप जामिआ के जीवन में दिखाई देने लगी। जामिआ की सभी संस्थाओं में सहवास जीवन पर जोर दिया जाता है और लड़कियाँ-लड़के दोनों साथ-साथ पढ़ते हैं। यहाँ उस्तादों और तालिब इल्मों दोनों में हर मज़हब और हर विचारधारा के लोग मौजूद हैं और हर उस शख्स के लिए जामिआ का दामन फैला रहता है जो राष्ट्रीय एकता और आपस के प्रेम को अपने दिल में जगह देता है।

---

3. Narsimacher, K. T. "A day book of thoughts from Mahatma Gandhi, Page 31
4. **Tandulkar** : "Mahatma", Vol IV, Page 187.
5. Mahatma Gandhi : Towards new Education, Page 30.

परिश्रमी लोग अवसर घनी छांव में ऊँघ जाते हैं, लेकिन जामिआ ी तरफ से यह इत्मीनान किया जा सकता है कि वह अपनी मंजिल की रफ़ बढ़ती ही रहेगी। पिछले कन्वोकेशन के मौके पर ही ज़ाकिर साहब भाषण देते हुए विद्यार्थियों को जताया कि आप सभ्यता की, सहनशीलता, ाई चारे की, जान और ज्ञान से अनुराग की छांव में पले हैं। इन गुणों वरदानों को दूसरों तक पहुँचाइए और अपने आपको हिन्दुस्तानी नागरिक सुन्दर नमूना बनाइए। इसी तरह जनवरी १९६५ में प्रकाशित होने ली किताब "जामिआ की कहानी" की भूमिका में मुजीब साहब ने यह द दिहानी कराई है मुनासिब है कि इस नये दौर में जब यह भिलाषा जोर पकड़ रही है कि जामिआ भी दूसरे यूनिवर्सिटियों की तरह जाए, पिछले दौर की तंगी और फाकामस्ती के मजे भी याद रखें र जामिआ की अपनी विशेषता मी कायम रखें। अमीरे-जामिआ और ख-उल-जामिआ के यह ताजा-ताजा बयानात इस बात का विश्वास दिलाते कि जामिआ भविष्य में भी गांधी जी के बताए हुए रास्ते पर चलती हेगी।

यदि मैं तानाशाह होता तो

- आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बन्द कर देता।
- सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने को मजबूर कर देता।
- जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता।
- मैं पाठ्य पुस्तकों के तैयार किये जाने का इन्तजार न करता।

—महात्मा गान्धी

संग्रहालय द्वारा राष्ट्रीय भावात्मक एकता का समाधान

(श्री रमेशचन्द्र शर्मा, सहायक संग्रहाध्यक्ष, राज्य संग्रहालय, लखनऊ)

राष्ट्रीय भावात्मक एकता की समस्या का पिछले कुछ वर्षों से विभिन्न दृष्टिकोणों से समाधान करने का प्रयास किया गया है। यह कितना महत्वपूर्ण विषय है, इसका अनुमान केवल इतना कहने मात्र से ही लगाया जा सकता है कि इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के लिए वस्त्र आवश्यक है, भोजन अत्यावश्यक है, पानी अनिवार्य है और वायु उसके जीवन का आधार–यह स्वयंसिद्ध तथ्य है। इसको सिद्ध करने के लिए जैसे किसी वाद-विवाद, विचार गोष्ठी अथवा जनमत संग्रह की अपेक्षा नहीं, उसी प्रकार यह भी निर्विवाद रूप से मान्य है कि एक राष्ट्र का आधार है उसकी भावात्मक एकता जिसके अभाव से किसी भी राष्ट्र की राष्ट्र-सत्ता संकट में पड़ सकती है और दूसरी ओर जिसकी निरन्तर वृद्धि से कोई भी राष्ट्र संसार में सदा अजेय और उन्नत मस्तक रहेगा। यों कहा जाय कि भावात्मक एकता किसी राष्ट्र की आत्मा है तो अधिक समीचीन होगा। गीता के शब्दों में "आत्मा का निरन्तर विकास करने से कल्याण होगा और ह्रास करने से होगी अवनति; इसलिए एक ओर जहाँ आत्मा बन्धु है, वहाँ विपरीत दशा में शत्रु भी।" आत्मैव आत्मतोबन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः।"

राष्ट्रीय संकट के समय तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। इधर भाई-भाई कहकर गले लिपटने वाले हमारे कुछ पड़ोसी जबसे मित्रता का अनुचित लाभ उठाकर विश्वासघात करने लगे हैं, तबसे राष्ट्रीय भावात्मक एकता का पल्लवन एक विचारणीय प्रश्न हो गया है ताकि हमारे छोटे-मोटे आन्तरिक पारिवारिक मतभेदों से राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा न हो सके।

आइए, हम आपको बताएं कि इस गम्भीर तथा महत्वपूर्ण समस्या का समाधान हमारे संग्रहालय की वीथिकाएं किस प्रकार करेंगी। वे सभी तत्व जिनसे राष्ट्रीय भावात्मक एकता अक्षुण्ण रह सकती है, संग्रहालय के माध्यम से अभिव्यक्त किए जा सकते हैं। मुख्यतः दो प्रधान तत्व हैं। प्रथम भौगोलिक ऐक्य और द्वितीय सांस्कृतिक साम्य।

(१) भौगोलिक ऐक्य : भारत के मानचित्र पर यदि हम दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि आन्तरिक विषमताओं के होते हुए भी भारतीय राष्ट्र

क भौगोलिक इकाई है। विन्ध्य पर्वतमाला और उसके घने जंगल उत्तर र दक्षिण को ऊपर से अलग करते से अवश्य दिखाई देते हैं किन्तु इससे रत की भौगोलिक इकाई विच्छिन्न नहीं होती। आज तो आवागमन के र्ग इतने द्रुतगामी तथा सर्वत्रगम्य हैं कि प्रकृति की यह विषमतापूर्ण दुरू- बाधा नहीं, सैलानियों (यात्रियों) के लिए मनोरंजन तथा नेत्र लावण्य की त्री प्रतीत होती हैं। किन्तु आज से हजारों वर्ष पूर्व भी साहसी वीर इन ंचाइयों पर विजय पाकर उत्तर-दक्षिण को परस्पर निकट लाते रहे हैं। स्त्य सम्भवत: सबसे प्रथम महापुरुष थे जिनके अदम्य साहस, तेज और ार्थ के समक्ष विन्ध्य की ऊंचाई को झुकना पड़ा और खुल गए उत्तर- ण ऐक्य के द्वार। श्री राम ने बड़ी प्रसन्नता से बनवास स्वीकार कर र-दक्षिण ऐक्य का सम्वर्द्धन किया। अत: हमें इन छोटी विषमताओं को ले की तरह आज भी एक ही शरीर की विभिन्न धमनियों के समान मानना । यह सन्देश हम संग्रहालय के दर्शकों को भारत के मानचित्र द्वारा र्शित कर सकते हैं। अब हमें उसकी राष्ट्रीय इकाई का दिग्दर्शन करते हुए तथ्यों पर विचार करना है जिनके फलस्वरूप यह राष्ट्र स्वयं एक उप- हाद्वीप की संज्ञा ले सकता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के शब्दों में, "किसी महाद्वीप के शायद ही किसी भाग को प्रकृति ने इस प्रकार से देश के रूप स्पष्ट रूप से अलग और लक्षित बनाया होगा जैसे कि भारतवर्ष को। त्तर में पर्वतों द्वारा सुरक्षित और दक्षिण में समुद्र से घिरा हुआ होने के रण भारतवर्ष निस्संदेह भौगोलिक इकाई है और यह स्पष्ट परिचिह्नित ीमाएं उसे सारे संसार से अलग करती हैं।" (हिन्दू सभ्यता पृ० ४४)

उत्तर में लगभग डेढ़ हजार मील लम्बी और औसतन ढाई सौ मील ड़ी पर्वतराज हिमालय की शृंखला है और दक्षिण में है विशाल महासागर ससे भारत संसार के अन्य देशों से अलग रहे। उत्तर-दक्षिण की इन्हीं दो ीमाओं के बीच के भूभाग को भारतीय प्रदेश माना जाता रहा है। वायु- राण में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भासतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥'

देशवासियों की इस प्राचीन मान्यता को हम संग्रहालय के माध्यम जनता तक पहुंचा कर राष्ट्रीय एकता का शंखनाद फूंक सकते हैं और यह ा सकते हैं कि हिमालय से कन्याकुमारी तक प्रकृति ने हमें एक सूत्र में ंधा है और बीच में आयी हुई विषमताएँ तो खिलवाड़ मात्र हैं।

सांस्कृतिक साम्य : हमारी सांस्कृतिक विचारधारा ने आन्तरिक विषमताओं को कभी बाधा नहीं माना और समूचे राष्ट्र में एक ही भारतीय संस्कृति का उद्घोष हुआ । यह बात दूसरी है कि भारत एक विशाल देश है और इसके इतने बड़े भूभाग पर भाषा, बोलचाल और कुछ रीति-रिवाजों में अन्तर होना स्वाभाविक है । किन्तु इस प्रकार की विभिन्नता से हमारी मौलिक एकता को कोई ठेस नहीं पहुंचती । जिन मूलभूत तत्वों के आधार पर इस विषमता में भी एकता बनी रही है वे निम्नलिखित हैं :

संस्कृत : भारत में अनेक भाषायें हैं, किन्तु सभी भारतीय भाषाओं का मूल स्रोत एक ही भाषा प्रतीत होती है जिसे हम संस्कृत बोलते हैं । भाषा सम्बन्धी विवाद होने पर भी संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसका उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सभी भारतवासी आदर करते हैं । प्रायः सभी भारतीय भाषाओं ने अपने शब्दकोष संस्कृत की निधि से समृद्ध किए हैं । गुप्तकाल में तो संस्कृत का राजभाषा के रूप में समस्त देश में व्यवहार होता था । हमें एक सूत्र में बांधने वाली संस्कृत भाषा का राष्ट्रीय भावात्मक ऐक्य में महत्वपूर्ण योगदान है ।

धर्म : सम्प्रदाय तो बहुत बने किन्तु भारत में एक ही धर्म का मुख्य रूप से प्रसार हुआ जो आर्यों की पद्धति पर आधारित था । आगे चलकर यही हिन्दू धर्म के रूप में सामने आया और इसी में समय-समय पर अनेक सुधार होते रहे जिनके फलस्वरूप विभिन्न धर्म व सम्प्रदायों ने जन्म लिया । जैन और बौद्ध धर्म इसी आर्य धर्म की शाखा प्रशाखायें हैं जिन्होंने देश-काल के अनुरूप आवश्यक परिवर्तनों की मांग की । भक्ति की बाढ़ में समस्त देश डूब सा गया और भक्तिरस से प्राकृतिक विषमताएँ प्लावित हो गयीं । उत्तर भारत में अवतरित श्रीकृष्ण की भक्ति का दक्षिण में जन्म हुआ और शनैः शनैः व दक्षिण से उत्तर में फैली । भागवत्कार ने लिखा है :

उत्पन्ना द्रविड़े साहं वृद्धि कर्णाटके गता
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी । (अ० १।४८.५०)

उत्तर-दक्षिण के भेदभाव को समाप्त करने में भक्ति सम्प्रदाय की बहुत बड़ी देन है जिसने सैकड़ों वर्षों तक हमें एकता-सूत्र में बांधे रखा । दसवीं शताब्दी से जब मुसलमान भारत में आए तो वे धीरे-धीरे समस्त देश में फैल गए और उन्होंने भौगोलिक अन्तरायों पर कोई ध्यान नहीं दिया ।

सहिष्णुता : भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है उसका हिष्णु स्वभाव। विदेशियों की अनेक संस्कृतियों की सरिताएं भारतीय स्कृति के महार्णव में समाहित हो गयीं। समय समय पर होने वाले आन्दोलन भारतीय संस्कृति का ही स्वरूप दीखने लगे। जैन और हिन्दू धर्म में तो न्योन्याश्रित सम्बन्ध हैं ही, बुद्ध जी को भी अवतार मानकर बौद्ध धर्म को आत्मसात कर लिया गया। विदेशी लोग चाहे कितनी ही परिपक्व विचारधारा लेकर आये, किन्तु या तो वे भारतीय संस्कृति के एक अंग जैसे बन गये अथवा उसमें पूर्ण रूप से घुल-मिल गए। इसके प्रमाण हमें द्वितीय शती ई० पू० में हेल्पोडोरस तथा बाद के कुषाण वंशी राजाओं से मिलते हैं। इस सहिष्णु भाव का संदेश संग्रहालय की वीथिकाओं के माध्यम से जन-सामान्य तक पहुंच सकता है।

मान्यतायें : हमारी मान्यताएं सदा से समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधती रही हैं। स्नान जो कि भारतवर्ष में प्रातःकालीन क्रियाओं का अभिन्न अंग है, राष्ट्रीय एकता का संदेश देता है। जलपात्र में हम गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी जैसी नदियों के समाहित होने की प्रार्थना करते हैं—

गंगे यमुनेचैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधम् कुरु।

इस श्लोक से भारतवर्ष की सभी प्रमुख नदियों का आह्वान हो गया। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने इस राष्ट्रीय ऐक्य को और अधिक बल प्रदान किया। उन्होंने देश की चार सीमाओं पर चार प्रधान पीठों की स्थापना की जो हैं पूर्व में पुरी, दक्षिण में शृंगेरी, पश्चिम में द्वारिका और उत्तर में बद्रीनाथ। वे स्वयं दक्षिण भारतीय थे किन्तु उन्होंने समस्त भारत में घूमकर, शास्त्रार्थ कर, भारतीय संस्कृति का प्रचार किया और एकसूत्र में बांधा। जगत्गुरु शंकराचार्य की यह महत्वपूर्ण सेवा हम आकर्षक ढंग से प्रदर्शित कर सकते हैं।

अकबर ने भी सूफी मत को आश्रय देकर एकता की स्थापना करने की चेष्टा की और दीन इलाही नामक उदार और समन्वयवादी मत का प्रचार किया। उसका यह कार्य भी राष्ट्रीय ऐक्य में बड़े महत्व का है।

देव मूर्तियां : इसी प्रकार हमारी देव प्रतिमाओं में राष्ट्रीय ऐक्य का प्रतीकात्मक रूप छिपा है। सम्प्रदायवादियों ने अपने सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक निष्ठा दिखाकर दूसरे सम्प्रदायों के प्रति उपेक्षा दिखाई; इससे कभी

कभी संघर्ष हुए। किन्तु हमारे मनीषीयों ने हमें फिर एकता का सन्देश दिया और कलाकारों ने उस सन्देश को मूर्तियों के माध्यम से कला में उतारा। भ्रम का निवारण हुआ और वास्तविकता को समझने में देर नहीं लगी। यहाँ मैं कुछ ऐसी मूर्तियों के उदाहरण दूंगा जिनमें यह समन्वयवादी दृष्टिकोण छिपा है।

हरिहर : भगवान् विष्णु और शिव दोनों ही एक मूर्ति में प्रकट किए गए हैं। आधा भाग विष्णु का है और आधा है शिव का।। यह वैष्णव और शैव दोनों सम्प्रदायों की एकता की ओर संकेत करती है।

अर्द्धनारीश्वर : इसी प्रकार इस मूर्ति में आधा भाग शिव का और आधा पार्वती का भाग दिखाया गया है। इससे शैव व शाक्त के दो सिद्धान्तों का योग ध्वनित होता है।

हरिहर पितामह : हरिहर की मूर्ति की भांति इसमें ब्रह्मा भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार की एकता को युग-दृष्टा साहित्यकारों ने सर्वदा इंगित किया है। हूणों के आक्रमण के समय देश में एकता की आवश्यकता थी, ताकि हम संगठित होकर विदेशी आक्रान्ताओं को खदेड़ सकें। कालिदास ने उस अवसर पर सन्देश दिया–

'एकैव मूर्ति त्रिविधाभिदेसा'

यह एक मूर्ति ही तीन रूप अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु व शिव के रूप में विभक्त है। शक्ति का स्रोत एक ही है। भिन्न कार्य करने के कारण हमें वह शक्ति विभक्त सी दीखती है। इस सन्देश ने पारस्परिक मनोमालिन्य को दूर किया। सभी एकता के झंडे के नीचे आए और खदेड़ दिया बर्बर विदेशियों को सीमा के उस पार।

संग्रहालय सांस्कृतिक जीवन का प्रतिनिधि होता है और उसकी वीथिकाओं के माध्यम से हम अपने अतीत के स्वर्णिम पृष्ठ जनता के समक्ष खोल सकते हैं। साधन अनेक हैं और उन्हें अपने उद्देश्य के अनुरूप हम प्रदर्शित कर सकते हैं। इस मनोरंजक शैली द्वारा हम राष्ट्रीय ऐक्य जैसी गम्भीर और महत्वपूर्ण समस्या का समाधान सहज ही कर सकते हैं। इस प्रकार संग्रहालय एक बड़े राष्ट्रीय हित का सम्पादन करने में समर्थ हो सकेगा।

शिक्षा द्वारा वृत्तियों का उन्नयन

(श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह, जबलपुर)

मनुष्य में तीन प्रकार की वृत्तियाँ प्रधान बतलाई गई हैं : ज्ञानार्जनी, कार्यकारिणी और चित्तरंजनी। भागवत् में आत्मा की तीन शक्तियाँ बतलाई गई हैं : ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति और इच्छा शक्ति। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा इन शक्तियों को परिष्कृत करके उन्हें अधिक उपयोगी बनावे। इन तीनों शक्तियों में संतुलन रखने से ही मनुष्य का जीवन सुसंस्कृत और समग्र या सर्वांगीण बनता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व के तीन अंग मुख्य हैं : बुद्धि, मन और शरीर। आत्मा इन तीनों में व्याप्त होकर भी तीनों से परे है। ज्ञानार्जन से मनुष्य की बुद्धि प्रखर होती है। इच्छा शक्ति को ठीक रास्ते पर लगाने से मनुष्य की भावनाएँ उन्नत होती हैं। क्रिया शक्ति के विकास से शरीर स्वच्छ तथा फुर्तीला रहता है। इन तीनों शक्तियों के विकास से मनुष्य का जीवन समृद्ध, सम्पन्न और संस्कृत बनता है।

प्राचीन शास्त्रों में ज्ञानार्जन के लिये दो प्रमुख साधन बतलाये गये हैं : तप और स्वाध्याय। स्वाध्याय के द्वारा जो ज्ञान अर्जित होता है वह तप के द्वारा क्रियात्मक बनता है। तप के भी तीन प्रकार बतलाये गये हैं : कायिक, वाचिक और मानसिक। कोमलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, शारीरिक तप के अन्तर्गत हैं। सत्य, प्रिय और हित वचन, तथा स्वाध्याय आदि वाचिक तप में आते हैं। प्रसन्नता, सौम्यता, आत्म निग्रह, मौन और भाव-शुद्धि मानसिक तप के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार स्वाध्याय की अपेक्षा तप ही मुख्य हो जाता है और स्वाध्याय उसके अन्तर्गत आ जाता है। सूक्ष्मता से विचार करने पर मालूम होता है कि तीनों प्रकार के तत्व आपस में सम्बन्धित और एक दूसरे पर आश्रित तथा आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए ब्रह्मचर्य और अहिंसा केवल शारीरिक ही नहीं, किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक भी हैं। उनमें नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति, बौद्धिक और मानसिक विकास तथा शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ती है।

इनमें ज्ञानार्जनी और कार्यकारिणी वृत्तियों के पूरे विकास की योजना है। किन्तु चित्तरंजनी वृत्तियों के विकास का पता नहीं लगता। तो भी ध्यान

से देखने पर पता लगता है कि उनकी उपेक्षा नहीं की गई। मनः प्रसादम् शब्द में चित्तरंजन का सूत्र छिपा हुआ है। तप शब्द से एक कष्टदायक पद्धति का आभास मिलता है। किन्तु यदि उसके साथ मन की प्रसन्नता जुड़ जाती है तो तप सरल और सरस हो उठता है। असल में हमें अपने काम ही में आनन्द आना चाहिये। अपने कार्य को सुख का साधन मानने वाले के लिये अलग मनोरंजन के साधनों की अपेक्षा नहीं रहती। किन्तु जो उस स्थिति पर नहीं पहुँचे, उनके लिये अलग से मनोरंजन की व्यवस्था आवश्यक है।

जब बौद्धिक कार्यों से चित्त थक जाता है, तब शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है। जब श्रम से शरीर क्लान्त हो जाता है, तब विश्राम या मनोरंजन आवश्यक हो जाता है। इसलिये तप और स्वाध्याय; विश्राम और मनोरंजन के क्रम से संतुलन स्थापित होता है। कभी कभी कार्य परिवर्तन ही विश्राम का साधन बन जाता है। इससे भी यदि आराम न मिला जो मनोरंजन के साधन जोड़ दिये जाते हैं।

कुछ लोगों का मत है कि इन सबको उपयोगिता की कसौटी पर कसना चाहिये। ज्ञान केवल ज्ञानार्जन के लिये नहीं, किन्तु जीवन में उपयोगी हो। श्रम को भी समाज के लिये उपयोगी होना चाहिए और मनोरंजन में भी कुछ उपयोगिता रहनी चाहिए। यह उपयोगितावादी दृष्टिकोण किसी हद तक ठीक है, किन्तु प्रत्येक कार्य में वह लागू नहीं किया जा सकता। ज्ञानार्जन का मुख्य उद्देश्य आत्म-तृप्ति या आनन्द की उपलब्धि है। किन्तु हमें उससे संतुष्ट न होकर ज्ञान के कुछ अंश को समाजोपयोगी भी बनाना चाहिये। व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ हो सकता है, किन्तु यदि वह उपयोगी भी बनाया जा सके तो और भी अच्छा है। पानी पीटने से भी व्यायाम हो जाता है, किन्तु यदि वही पानी खेतों में डाला जाय तो अधिक उपयोगी होगा। शुद्ध मनोरंजन के साधनों को उपयोगी बनाने की बात सोचना मनोरंजन ही को समाप्त कर देना होगा।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहा करते थे कि वीणा की यही उपयोगिता है कि वह हमें आनन्द पहुँचावे। वीणा से कुदाली का काम लेना मूर्खता होगी। यह अवश्य हो सकता है कि कुदाली चलाने के साथ संगीत का भी आनंद लिया जावे। हमारे श्रमिक अपने श्रम को हलका बनाने के लिये गीत गाते जाते हैं। गांधीजी के लिये चरखा चलाना उपयोगी श्रम का साधन ही नहीं, किन्तु मनोरंजन का भी साधन था। विनोबाजी के लिये पद-यात्रा केवल श्रम की साधन नहीं है, किन्तु वह चिन्तन की भी साधिका है। निश्चित स्थान पर

वा देने के कारण उसमें उपयोगिता भी सम्मिलित हो जाती है। इस र चिंतन, कर्म और मनोरंजन तीनों का एकीकरण भी हो सकता है। आज कि व्यस्त युग में आवश्यक भी है।

शिक्षा के क्षेत्र में खेलों की बड़ी उपयोगिता है। उनमें शरीर श्रम के मनोरंजन का सम्मेलन होता है। इतना ही नहीं, किन्तु उनमें मानसिक ता भी आती है तथा नियमों का पालन करते हुए जीतने की इच्छा से गुणों का भी विकास होता है। उनकी यही उपयोगिता है। इन खेलों ी घर के भीतर खेले जाने वाले खेलों की अपेक्षा बाहर खेले जाने वाले अधिक उपयोगी होते हैं। बाहर की स्वच्छ वायु श्रम को हलका करने मनोरंजन को तीव्र बनाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। तैराकी कला में श्रम और मनोरंजन के साथ विश्राम का भी अधिक योग है। समय काटने लिये घर के भीतर जो खेल खेले जाते हैं उनमें समय का अपव्यय और स्य की अधिक वृद्धि होती है। कुछ खेल ऐसे भी हैं जिनसे कि बुद्धि की ता बढ़ती है। वे अधिक उपादेय हैं।

खेलों में जो नैतिक शिक्षा मिलती है वह सबसे अधिक उपयोगी है। न में हार जीत को एक समान समझना, जीतने के लिये अनियमित उपायों काम में न लाना तथा विपक्षी के साथ शत्रुता का भाव न रखना आदि ों की वृद्धि होती है। यदि खेल के मैदान के समान सारे जीवन को भी युद्धस्थल के बदले क्रीड़ास्थल बनाकर इसी प्रकार की भावनाओं और कता से काम लें, तो हमारा जीवन आनन्दमय और दूसरों के साथ सद्भाव- हो सकता है। खेलों में हम धन की बाजी लगाकर उसे अधिक आकर्षक र मनोरंजक अवश्य बना देते हैं किन्तु साथ ही उसे अनैतिक भी बनाने ते हैं। आर्थिक लोभी का तत्व दाखिल होते हुए ही हमारा ध्यान साधनों शुद्धता पर नहीं रहता। हम येन-केन-प्रकारेण विजय प्राप्त कर धन-संग्रह ना चाहते हैं। शुद्ध मनोरंजनों के साधनों को हमने धन कमाने का साधन कर खेलों के साथ धन को भी दूषित कर दिया है।

स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा

(डा० हरि भगवान, सहायक निदेशक, मानक-भवन, नई दिल्ली)

हाल में ही एक अमरीकी पुस्तक* देखने का अवसर मिला। इसमें —

१. विज्ञान को सरल भाषा में समझाने के लिये ब नाई गई १२६३ फ़िल्मों, स्लाइडों, चार्टों आदि की सूची है। इस सूची में अधिकांश फिल्म हैं।

९. उन १९८ संस्थाओं के पते हैं जो मुफ्त में स्कूल-कालेजों के शिक्षकों को उपर्युक्त शिक्षण-सामग्री का प्रयोग करने देती हैं।

३. विशेषज्ञों द्वारा लिखे गए कुछ वैज्ञानिक विषयों पर रूप-रेखायें हैं जिनके द्वारा शिक्षकों को समझाया गया है कि उपर्युक्त शिक्षण-सामग्री का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।

४. वैज्ञानिक शिक्षण-सामग्री का 'विषय' और 'प्राप्य स्थान' के अनुसार अकारादि क्रम से अनुक्रमणिकाएँ हैं।

इस पुस्तक की भूमिका में कहा गया है कि जिस प्रकार बढ़ई अपने औज़ारों के विना कुछ काम नहीं कर सकता, उसी प्रकार डाक्टर स्टेयास्कोप बिना बीमार हृदय की परीक्षा नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्कूल-कालेज के शिक्षक उचित सहायता के बिना विज्ञान की ठीक प्रकार से शिक्षा भी नहीं दे सकते।

इस पुस्तक को देखने पर आँखें खुलीं कि विज्ञान की अच्छी शिक्षा के लिये देश में कितना कार्य आवश्यक है। हमारे यहाँ न तो अभी समुचित पुस्तकें ही हैं और न साधारण उपयोग प्रदर्शन के लिये वैज्ञानिक सामग्री। सरल भाषा की फ़िल्मों का तो कहना ही क्या ?

इस विश्लेषण से एकदम यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि जब भारत में कुछ है ही नहीं तो फिर हम अमरीका की जोड़ के वैज्ञानिक

---

* Educators Guide to Free Science Materials (Fifth Edition) August 1964.
Published by Educators Progress Service, Randolph Wisconsin. pp 340. Price 7·25

ाने की सोचें ही क्यों ? पर हमें यह न भूलना चाहिए कि कभी अमरीका भी वैसी ही परिस्थितियाँ थीं जैसी आज यहाँ हैं, और आज की विकसित रिस्थिति पिछड़ी परिस्थितियों से अथक संघर्ष के पश्चात् ही आई है । अतः वश्यक यह है कि हम भी डट कर प्रयत्न करें ।

क्या ? यह एक दूसरा प्रश्न है । मेरा सुझाव है कि कम-से-कम शब्दों र्णित और सरल भाषा में लिखे साहित्य के सृजन की ओर हमारा सबसे धिक ध्यान होना चाहिए । किसी भी पाश्चात्य वैज्ञानिक को देखने पर पता लेगा कि हर प्रकार के वैज्ञानिक शिक्षण के लिए इस भाषा-संतुलन की ओर से अधिक बल है । हिन्दी में लिखे साहित्य के लिये तो यह बात और भी वश्यक है क्योंकि अब तक साधारणतया हिन्दी के विद्यार्थियों को लम्बे लेख लिखना सिखाया जाता रहा है । पर आज के वैज्ञानिक युग के लिए वश्यक है कि वैज्ञानिक साहित्य के लिए न्यूनतम शब्दों में अधिकतम विचार संचार हो । यदि हम यह अभ्यास आरम्भ करके सरल भाषा में वैज्ञानिक ाहित्य के सृजन की ओर उन्मुख हो सकें तो कदाचित् हम स्कूलों में विज्ञान ी अच्छी शिक्षा के लिए ठोस नींव रख सकेंगे ।

* * *

अंग्रेजी सीखने में श्रम का भारी अपव्यय

देश में एक और विचित्र-सा भ्रम फैल गया है कि तमिलनों और बंगालियों के लिये हिन्दी सीखने के बजाय अंग्रेजी सीखना अधिक सरल है । मैं यह बात अब तक नहीं पचा सका हूँ ।

मैंने भारत की बहुत सी भाषाएँ सीखी हैं । अंग्रेजी भी जानता हूँ । परन्तु केवल अंग्रेजी सीखने में कितना श्रम करना पड़ता है, उतने श्रम में भारत की सब भाषाएँ सीखी जा सकती हैं, ऐसा मेरा अनुभव है ।

वेल्लूर जेल में मैंने दक्षिण की चारों भाषाएँ—तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम—एक साथ सीखनी शुरू कीं । किसी ने मुझसे पूछा—"चारों भाषाएँ एक साथ क्यों सीख रहे हैं ?" मैंने उत्तर दिया—"क्योंकि कोई पाँचवीं भाषा नहीं है । यदि कोई और भाषा होती, तो उसे भी साथ ही सीखता ।" —विनोबा जी

शैक्षणिक मूल्याङ्कन

(प्राध्यापक शम्सुद्दीन, रायपुर, म० प्र०)

शालाओं और विद्यालयों की स्थापना के पीछे निश्चित उद्देश्य और आदर्श होते हैं। पाठ्यक्रम, अध्यापन प्रणाली व शाला की परिस्थितियों द्वारा ही शिक्षक इनकी प्राप्ति करता है। स्वाभाविक रूप से कुछ समय पश्चात् हमें इस बात का अनुयोग लगाना पड़ता है कि छात्र ने कहाँ तक उन्नति की तथा शाला ने अपने उद्देश्य और आदर्शों की पूर्ति में कितनी प्रगति कर ली है। दूसरे शब्दों में हमें बच्चों के किए गए कार्य का मूल्य निर्धारित करना पड़ता है। यहीं से शैक्षणिक मूल्यांकन प्रारम्भ होता है।

मूल्यांकन के ध्येय

मूल्यांकन के विभिन्न ध्येय होते हैं। सबसे प्रथम तो यह बच्चों की योग्यताओं का परिमाण निश्चित करने में मदद करता है। देखने में आया है कि सब बच्चों को समान अवसर तथा समान परिस्थितियाँ प्रदान करने पर भी उनमें व्यक्तिगत अन्तर पाया जाता है। इसी से मूल्यांकन का महत्व व उसकी आवश्यकता का अनुभव होता है। छात्रों की योग्यता के मूल्यांकन द्वारा शिक्षक शाला की प्रगति का भी प्रमाण निश्चित कर सकते हैं तथा उसके अनुसार अध्यापन प्रणाली, पाठ्यक्रम इत्यादि में परिवर्तन और सुधार किये जा सकते हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं को स्थान देने तथा अध्यापन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि हम बच्चों के दोषों को खोज निकालें ताकि उन्हें दूर करने के उपाय काम में लाये जा सकें। छात्रों की वास्तविक योग्यता के स्तर का मूल्यांकन करने के पश्चात् उनके भावी हित व योग्यताओं का निश्चय किया जा सकता है। इस प्रकार मूल्यांकन छात्रों के वर्गीकरण व उन्हें आगे मार्गदर्शन में सुविधा प्रदान करता है। मूल्यांकन भावी योग्यता के स्तर का निर्णय करता है, तो शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों के लिये प्रेरणा का भी कार्य करता है।

मूल्यांकन किस चीज का किया जाता है ? हमें छात्रों में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को उचित स्थान देते हुए उनकी प्रगति और मार्गदर्शन का ध्यान

रखना है। हमें उनकी कौटुम्बिक परिस्थितियों, शारीरिक स्वास्थ्य, व्यक्तिगत विशेषताओं, हितों, योग्यताओं, बुद्धि तथा कार्यों इत्यादि का मूल्यांकन करना चाहिए। इससे बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ठीक ठीक और निश्चित प्रमाण तभी स्थिर किया जा सकता है जब उसकी उपर्युक्त विशेषताओं का उचित मूल्यांकन हो।

विभिन्न प्रकार के टेस्ट तथा परीक्षाओं के रूप में मूल्यांकन के कई प्रकार होते हैं। उदाहरणार्थ परीक्षायें निबंधात्मक, बौद्धिक व पदार्थ-विषयक होती हैं, छात्रों द्वारा किये गए कार्य तथा उनकी योग्यताओं की जाँच की जाती है, तथा शिक्षकों द्वारा छात्रों का सूक्ष्म निरीक्षण तथा मौखिक परीक्षण भी होता है। ये सब मूल्यांकन के भीतर आते हैं। ऊपर बनाये गये मूल्यांकन के विभिन्न प्रकारों में गुण और दोष दोनों पाये जाते हैं।

निबंधात्मक परीक्षायें

इस प्रकार की परीक्षायें आधुनिक समय में सामान्य रूप से पाई जाती हैं। इनमें बच्चों को अपने विचारों और आदर्शों को स्वतन्त्र रूप से प्रकट करने के लिये काफी मौका रहता है तथा उनके एकत्रित ज्ञान का उचित माप होता है। साथ ही इन परीक्षाओं में बच्चों की कुछ खास विशेषतायें जैसे मौलिकता, व्यक्तित्व, कल्पना शक्ति इत्यादि की भी पूरी पूरी परख हो सकती है।

इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि निबंधात्मक परीक्षाओं में समय की निश्चित अवधि होने के कारण छात्र जल्दी में प्रश्नों के उत्तर लिखते हैं। अतः वे उन्हें उतना अच्छा परीक्षा-कक्ष में नहीं लिख सकते जितना कि घर पर बैठकर आराम से लिख सकते हैं। साथ ही ये परीक्षायें पाठ्यक्रम के किसी निश्चित हिस्से पर ही होती हैं। अतः छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्णय नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्तिगत प्रधानता अधिक होने के कारण मूल्यांकन के गलत हो जाने की सम्भावना है। इसी प्रकार निबन्धात्मक परीक्षाओं में भाषा, लिखावट, इत्यादि भी मूल्यांकन को प्रभावित करते हैं। अतः संभव है कि इनमें छात्रों के वास्तविक गुणों या प्रतिभा का उचित निर्णय न हो सके। यथार्थ में इस प्रकार की परीक्षायें अपना सम्पूर्ण ध्यान छात्रों की बौद्धिक ज्ञान प्राप्ति पर ही केन्द्रित करती हैं तथा उनके हित व योग्यता के महत्वपूर्ण पक्ष की अवहेलना करती हैं।

पदार्थ विषयक जाँच

पदार्थ विषयक जाँच (Objective test) पदार्थ विषयक जाँच मूल्यांकन का एक दूसर प्रकार है। यह व्यक्तिगत प्रधानता को कम महत्व देते हुए अधिक अच्छा और ठीक-ठीक मूल्यांकन करता है। साथ ही यह अधिक विश्वसनीय भी है। यहाँ धोखेबाजी के लिये भी गुंजाइश नहीं है। निबंधात्मक परीक्षाओं के वर्गीकरण के विरुद्ध इसमें सही और गलत का सच्चा निर्णय होता है। पदार्थ विषयक जाँच अधिक अच्छी और उत्तम मानी गई है क्योंकि इसमें मूल्यांकन के लिये आवश्यक सही वस्तु का निर्णय किया जाता है।

इस प्रणाली का दूसरा पक्ष भी है। इसमें बच्चों को अपने विचार और भावों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता कम है। व्यक्तिगत प्रभाव की इससे अवहेलना होती है। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों प्रकार की मूल्यांकन प्रणालियों की बारीकी से व्याख्या करने के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि दोनों का उचित समन्वय ही छात्रों के वास्तविक और उचित मूल्यांकन का हल प्रस्तुत कर सकता है।

हानियों की विवेचना

किसी भी प्रकार की परीक्षायें बच्चों की वास्तविक उन्नति के मार्ग में बड़ी बाधायें हैं। आधुनिक समय में इन पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। परीक्षायें शिक्षा के साधन होने के बजाय साध्य हो रही हैं। छात्रों व शिक्षकों का पूरा ध्यान इन्हीं पर केन्द्रित रहता है। नतीजा यह होता है कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम ही उनकी आवश्यकताओं के अनुसार तोड़-मरोड़ लिया जाता है। आज के युग की माँग है अधिक व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण बढ़ाना तथा प्रजातांत्रिक आदर्शों की नींव डालना। किन्तु आधुनिक परीक्षाओं द्वारा इस उद्देश्य की क्षति हो रही है।

आधुनिक परीक्षायें प्रतिस्पर्धा की हनिकारक प्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं। कभी-कभी छात्र अपने परीक्षाफल का गलत अन्दाज लगा लेते हैं तो बाद में उन्हें बड़ी निराशा और दुख का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार परीक्षायें न केवल छात्रों के शैक्षणिक जीवन को प्रभावित करती हैं वरन् उनके भावी जीवन पर भी अमिट प्रभाव डाल देती हैं। वे छात्रों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर ऐसा आघात करती हैं कि वे कभी-कभी भावी सामाजिक जीवन में पूर्णतः असफल सिद्ध होते हैं।

ार के सुझाव

जब तक शिक्षा के क्षेत्र से हम परीक्षाओं को नहीं हटा सकते, यह , वश्यक है कि उनमें सुधारों के विभिन्न उपायों को ढूंढ़ निकाला जाय। र दर्शाई गई निबंधात्मक व पदार्थ विषयक परीक्षाओं के गुण-दोषों पर चार करते हुए सबसे उत्तम मार्ग तो यह है कि दोनों प्रणालियों का समुचित ग किया जाय। हमें मूल्यांकन की प्रणालियों में सुधार करना चाहिए ताकि अच्छी और विश्वस्त हो सकें। हमें छात्रों के प्राप्त ज्ञान की अपेक्षा उनकी यता की परख अधिक करनी चाहिए।

प्रश्न पत्र निकालते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि उनकी षा उचित व सरल हो ताकि बच्चों के सामने सब कुछ स्पष्ट हो जावे; ं तक कि कमजोर से कमजोर बच्चा भी उस भाषा को समझ जावे। प्रश्न ों में दिए गए निर्देश स्पष्ट, संक्षिप्त और विषय से प्रत्यक्ष संबंधित हों। मय उन्हें इतना दिया जाय कि वे अपनी साधारण गति से अपने सर्वोत्तम न का प्रकटीकरण कर सकें।

परीक्षा लेते समय व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखा जाय। न कठिन और सरल दोनों प्रकार के हों ताकि बुद्धिमान और मंद बुद्धि नों प्रकार के छात्रों के लिये उनमें गुंजाइश हो। प्रश्नों की संख्या अधिक हो न्तु वे सोच समझकर और इस प्रकार बनाये जायँ कि उनके उत्तर क्षिप्त हों।

मुलेटिव रिकार्ड

जांच परीक्षाओं के सिवाय शिक्षकों के मत, क्यूमुलेटिव रिकार्ड्स तथा क्षा में किये गये कार्य के आधार पर भी छात्रों की प्रगति का निर्णय किया ना चाहिए। परीक्षा के समय छात्रों की परिस्थितियों तथा मनोविज्ञान की चित व्याख्या होनी चाहिए। परीक्षाएँ सुधारात्मक व सृजनात्मक हों—नाशात्मक नहीं—तभी शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य व आदर्शों की प्राप्ति हो ती है।

आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों ने कई नई प्रकार की परीक्षाएँ जैसे द्धिक परीक्षा, कार्य-परीक्षा, योग्यता व प्रवृत्तियों की परीक्षा इत्यादि काली हैं। आधुनिक शैक्षणिक प्रगति के क्षेत्र में इनका अपना स्थान व त्व है। बच्चों की बौद्धिक कुशाग्रता को जांचने के लिये समय-समय पर द्धिक परीक्षाएँ होनी चाहिए। कार्य परीक्षाएँ बच्चों के द्वारा प्राप्त की गई

कार्य कुशलता का पता लगाने में सहायक होती हैं। ये परीक्षायें विषयों में न होकर छात्रों द्वारा किये जाने वाले कार्यों में होना चाहिए। योग्यता व प्रवृत्तियों की परीक्षा पद्धति अभी इतनी उन्नत नहीं हुई है। साथ ही बहुत छोटे बच्चों की योग्यतायें व प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से प्रकट न होने के कारण ये परीक्षायें असफल सिद्ध हुई हैं। किन्तु इन सबके बावजूद भी ये परीक्षाएँ बच्चों की विशेष योग्यताओं जैसे व्यवहारिकता, कलात्मकता इत्यादि की परख के लिए सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

इन सबके सिवाय छात्रों की दिन-प्रतिदिन बदलती हुई आदतों, प्रवृत्तियों व हितों को पहचानने के लिये शिक्षकों का निरीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्हें चाहिए कि वे सावधानी व बारीकी से छात्रों का अध्ययन कर उनका लेखा रखें ताकि अन्त में उनके सम्बन्ध में ठीक-ठीक और योग्य निर्णय दिया जा सके। बच्चों की योग्यता का वर्गीकरण साधारणतः बहुत अच्छा, अच्छा, साधारण, खराब, बहुत खराब इत्यादि श्रेणियों में किया जाता है; किन्तु इन्हें अधिक व्यापक व विस्तृत होना चाहिए ताकि परीक्षण अधिक स्पष्ट व सरल हो सके।

उपर्युक्त परीक्षाओं के सिवाय मूल्यांकन के अन्य साधन भी हैं जैसे छात्रों की मौलिक व क्रियात्मक कलाओं का निरीक्षण, प्रदर्शनी, खेल कूद, वाद-विवाद व अन्य कार्य-कलाप। यथार्थ में छात्रों की योग्यताओं व लक्षणों के उचित व वास्तविक मूल्यांकन की सबसे अधिक जिम्मेदारी शिक्षकों पर है। उन्हें छात्रों का बारीकी से निरीक्षण कर उनकी दिन प्रतिदिन की क्रियाओं का लेखा रखना चाहिए। उन्हें बच्चों की कमजोरियों को ढूंढ़ निकालना चाहिए तथा उनमें सुधार करना चाहिए। वास्तव में इस दिशा में सभी कार्यों का ध्येय बच्चों की भावी प्रगति होनी चाहिए।

* * *

क्षिक समाचार समुच्चय

तों से—मार्च से जून तक :

रूस में छात्रों को विदेशी भाषाओं में दक्षता प्राप्त कराने के लिए के शिक्षा मन्त्रालय ने कुछ माध्यमिक स्कूलों में अंग्रेजी, फ्रांसीसी और भाषाओं के माध्यम से गणित और भौतिक विज्ञान पढ़वाने का निश्चय है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के एशियाई जनगण-संस्थान ोर से होने वाली एक विद्वद्गोष्ठी में भारतीय भाषाओं के विद्वान वारा-व, वार्खुदारोव, लिपेरोविंस्की और चेर्निशोव आदि ने भाग लिया। रूस रतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिन्दी के ध्वनि-विन्यास और शब्दों, पर गये शोधकार्य पर विचार विमर्श किया गया। समस्त शोधकार्य के ोजन के भावी कार्यक्रम की रूप-रेखा भी बनायी गयी।

अमरीका के नेशनल कौन्सिल आफ सेकेण्डरी स्कूल प्रिंसिपल्स द्वारा शित एक पत्रिका में, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में १९७५ तक उत्पन्न होने म्भीर संकट की चेतावनी दी गई है। यह संकट ऐसे अयोग्य और प्रकृति के अध्यापकों की संख्या-वृद्धि से उत्पन्न होगा, जो छात्रों को िक समस्याओं से अवगत न करा कर, उनमें आलोचना और चिन्तन क्ति नहीं उत्पन्न करते। नेशनल असोसियेशन आफ सेक्रेट्रीज आफ स्टेट असोसिएशन की विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि अमरीकी अध्यापकों में जनीति के प्रति रुचि बढ़ रही है। विभिन्न ४१ राज्यों की विधान में १८१अध्यापक सदस्य हैं।

हालैंड के इनशेडेनगर में एक नये प्रकार के सावासीय प्राविधिक विद्यालय की स्थापना की गयी है जिसमें प्रत्येक कोर्स थोड़े दिनों का । प्रविधि के छात्रों को सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने में कुशल बनाने ए सामाजिक विज्ञानों की शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी है।

आचार्य दीनानाथ 'शरण' भारतीय सहायता मिशन के अन्तर्गत भारत-र के विदेश मंत्रालल द्वारा नेपाल में हिंदी प्राध्यापक नियुक्त हुए हैं। र्य 'शरण' की समालोचना, उपन्यास, कहानी, कविता और निबंध आदि त्य की लगभग सभी विधाओं पर बारह पुस्तकें प्रकाशित हैं। आप , भागलपुर, पटना और मगध के विश्वविद्यालयों में प्राध्यापन कर चुके र मंजे वक्ता भी हैं।

नेपाली देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। अतएव नेपाल में प्राध्यापन के लिए आपकी नियुक्ति का विशेष महत्व है।

स्वदेश से—मार्च :

३ : राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव की बहस में राज्यसभा ने हिन्दी भाषा का समर्थन किया। अधिकांश सदस्यों ने त्रिभाषा सूत्र को लागू करने की व्यवस्था अपने हाथों में लेने के लिए केन्द्रीय सरकार से आग्रह किया।

५ : भूपाल में केन्द्रीय उद्योग मंत्री नित्यानन्द कानूनगो ने बताया कि हिन्दी को सन् १९११ में गांधी जी ने राष्ट्रभाषा का पद दिया था और १९३५ में मैं जब दक्षिण भारत गया तो एक सभा में श्रोताओं ने मुझसे हिंदी में बोलने को कहा।

६ : शिक्षा मन्त्री छागला ने राज्य सभा में बताया कि सभी राज्यों से अपने शिल्पिक कालेजों में प्रवेश के लिए उसी राज्य का निवासी होने की शर्त को हटा लेने का अनुरोध किया गया है।

८, ९ : प्रयाग के विशेष हिन्दी साहित्य सम्मेलन में श्री अनन्तशयनम् आयंगर, श्री गाडगिल और अन्य वरिष्ठजनों ने जो हिन्दीतर प्रान्तों के निवासी हैं, हिन्दी का समर्थन किया और योजक भाषा के रूप में इसके अध्ययन पर जोर दिया।

११ : उत्तर प्रदेश के शिक्षा मन्त्री श्री कैलाशप्रकाश ने अध्यापकों से माध्यमिक परीक्षाओं का बहिष्कार न करने का अनुरोध किया। उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा कि परीक्षायें स्थगित नहीं हो सकती, उन्हें चलाने के लिए अन्य राजकर्मचारियों की सहायता ली जायगी। परीक्षा आरम्भ होने पर अधिकांश अध्यापकों के असहयोग के कारण राज्य को ४०,००० कर्मचारियों की सेवाओं का उपयोग करना पड़ा। परीक्षा-भवनों पर पुलिस और होमगार्डों के पहरे लगाये गये। माध्यमिक अध्यापकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन के लिए प्राथमिक और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों ने भी परीक्षाओं के बहिष्कृत करने का निर्णय लिया। माध्यमिक अध्यापकों की मुख्य मांग थी कि उन्हें ५० रु० प्रति मास मंहगाई भत्ता दिया जाय।

२० : मैसूर के शिक्षा मन्त्री श्री कण्ठी ने राज्य विधान सभा में णा की कि अंग्रेजी को अनन्त काल तक नहीं जारी रक्खा जायगा। हिंदी ृभाषा है और राज्य के ८० प्रतिशत छात्र हिन्दी सीख रहे हैं। मैसूर य में भाषा विवाद की कोई समस्या नहीं है।

२२ : प्रधान मन्त्री शास्त्री ने भाषा के प्रश्न पर संविधान में संशोधन प्रयत्न को निराशापूर्ण कहा।

२४ : दिल्ली में भारतीय पत्रकार परिषद् की ओर से आयोजित एक ार-गोष्ठी में मुरारजी देसाई ने हिन्दी को एकमात्र सम्पर्क भाषा बताया। के मत में अंग्रेजी की शिक्षा बच्चों के मानसिक विकास में बाधक है।

ल :

४ : मद्रास में शिक्षा मन्त्री छागला ने कहा कि अहिन्दी राज्यों पर दी लादी नहीं जायगी। हिन्दी तो सारे देश की भाषा है और सबके प्रयत्नों ही उसका विकास सम्भव है।

६ : मन्त्रि-परिषद ने सरकारी नौकरियों में कोटा-पद्धति अपनाने को चत नहीं ठहराया है।

११ : मसूरी में श्री छागला ने माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा को ादक बनाने के लिये विज्ञान और प्रविधि की शिक्षा को आवश्यक बताया। द पोश बनाने वाली शिक्षा का अन्त करने की मांग करते हुए उन्होंने के जिले में एक ऐसे आदर्श स्कूल को चलाने पर जोर दिया जो सबके मने आदर्श रूप प्रस्तुत करे। उन्होंने अध्यापकों की आर्थिक दशा का ार आवश्यक बताया।

१६ : मद्रास में श्री कामराज ने कहा कि हिन्दी बहुसंख्यक जनों की ा होने के कारण ही सम्पर्क भाषा बनने योग्य है। उसका स्थान विदेशी षा कभी नहीं ले सकती। बम्बई विश्वविद्यालय ने आधारभूत चिकित्सा, ानों की शिक्षा और शोध के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ायता से एक संस्थान खोलने का निश्चय किया है। इस पर ५५ लाख ये व्यय किये जायंगे।

१८ : शिक्षा-मंत्रालय एक ऐसे प्रस्ताव पर विचार कर रहा है जिसमें ा की सभी शाखाओं में समायोजन करने पर जोर दिया गया है। इस ना के अन्तर्गत उच्च शिक्षा को राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप ढालने, ्यों में शैक्षिक योजनाओं के लिए अनुदान देने, अंशकालिक और [illegible]की

पाठ्यक्रमों को पत्र-व्यवहार द्वारा चलाने, पत्र व्यवहार द्वारा माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने, सांध्यकालीन कालेज स्थापित करने और अध्यापकों को राजनीति से अलग रखने के प्रयत्न किये जायंगे।

२१ : उत्तर प्रदेश के शिक्षा केन्द्रों का दौरा करने के वाद शिक्षा आयोग की एक समिति ने जिसके अध्यक्ष डा० कोठारी हैं, वताया कि विश्वविद्यालयों को राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के दबावों से मुक्त करना आवश्यक है।

२२ : लोकसभा में शिक्षा मंत्रालय की मांगों पर बहस करते हुए आचार्य कृपलानी ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली की कटु आलोचना की। उन्होंने वर्तमान अभिजातवर्गीय और जागीरदारी काल की शिक्षा के स्थान पर प्रजातांत्रिक शिक्षा-प्रणाली अपनाने पर जोर दिया। पब्लिक स्कूलों को वन्द करने की मांग उन्होंने की। अन्य सदस्यों ने क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने, संस्कृत का प्रचार करने और अध्यापकों का वेतन बढ़ाने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

२३ : लोकसभा में श्री छागला ने भारत की एकता, तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा की उत्तमता और विश्वविद्यालय के शिक्षा-स्तर की उच्चता के नाते देश में अंग्रेजी बनाये रखने की वकालत की। माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा की सुविधायें बढ़ाने पर उन्होंने जोर दिया। उन्होंने बताया कि यूनेस्को की सहायता से एक केन्द्रीय विज्ञान वर्कशाप खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है। नेशनल बुक ट्रस्ट भारतीय भाषाओं में विज्ञान की पुस्तकें छापने में संलग्न है। विज्ञान के प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति देने की योजना भी है। पत्र-व्यवहार द्वारा माध्यमिक शिक्षा का प्रचार करने की पाइलट प्रोजेक्ट इस वर्ष चालू की जायगी।

२४ : प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण की जांच के लिएं नियुक्त एक समिति ने यह सुझाव दिया है कि हर राज्य में अध्यापक प्रशिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन करने के लिए एक शिक्षा-परिषद संगठित की जाय। प्राथमिक अध्यापकों का प्रशिक्षण निःशुल्क हो और प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाय। प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले स्नातकों और निरीक्षण करने वालों को बी० एड० डिग्री दी जाय।

२६ : दिल्ली में प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से आयोजित सभा में उर्दू की शिक्षा देने की समुचित व्यवस्था करने की मांग सरकार से की गई।

२८ : दिल्ली विश्वविद्यालय की जाँच के लिये नियुक्त एक समिति ने ह सुझाव दिया है कि दिल्ली स्थित सभी तकनीकी और पेशेवरी की शिक्षा ने वाले कालेजों का प्रशासन केवल एक विश्वविद्यालय को सौंपा जाय। स प्रकार की शिक्षा देने के लिये सांध्यकालीन कक्षाएँ लगायी जायँ और श्वविद्यालय अनुदान आयोग से इस काम के लिये आर्थिक सहायता ी जाय !

ई :

२ : राजस्थान के राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द ने विश्वविद्यालयों में क्षा का माध्यम हिन्दी ही रखने पर जोर दिया। यह बात उन्होंने जयपुर हुए अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के दसवें अधिवेशन में कही।

५ : दिल्ली में भारतीय भाषा परिषद के द्विदिवसीय सम्मेलन में इस त की माँग की गयी कि केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षा का माध्यम क्षेत्रीय षा हो। इस सर्वदलीय सम्मेलन ने १६ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की ो इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणित करने का प्रयत्न करेगी। श्री मुरारजी-ाई, श्री अणे, श्री मेहताब, सेठ गोविन्ददास और श्री लोहिया इसके दस्य हैं।

१२ : अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति नवाब अलीयावर जंग श्वविद्यालय में उत्पन्न फसाद को आयोजित बताया। उन्होंने इस संस्था में ढ़ती हुई फासिस्ट प्रवृत्ति के खतरे का संकेत किया। वहाँ अध्ययन के र के गिरने और संकुचित विचारों के पनपने पर उन्होंने खेद भी कट किया।

१४ : प्रधान मन्त्री शास्त्री ने मास्को विश्वविद्यालय और लुलुम्बा ी विश्वविद्यालय का निरीक्षण किया।

१६ : केन्द्र सरकार ने अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संविधान में परिवर्तन लिए अगले सत्र की लोक सभा में एक बिल रखने का निश्चय किया।

१८ : नैनीताल में प्राथमिक शिक्षा पर आयोजित पाँचवी राष्ट्रीय चार गोष्ठी में कहा गया कि केन्द्र और राज्य सरकारें अपनी आय का कम कम २५ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करें और इस राशि का ५० प्रतिशत या योजना में निर्धारित राशि का ३० प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर लगाया य। पंजाब सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने अध्यापकों के वेतनक्रम में ार करने का सुझाव दिया है। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने हर विश्व-

विद्यालय में एक ऐसा सूचना केन्द्र खोलने का आदेश दिया है जहाँ से विद्यार्थी देश-विदेश में सुलभ अध्ययन की सुविधाओं की जानकारी प्राप्त कर सकें।

१९ : राजस्थान सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने राज्य में एक संस्कृत विश्वविद्यालय खोलने की संस्तुति दी है।

२१ : स्टेट्समैन के एक विशेष संवाददाता का कहना है कि देश में चीनी भाषा के अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है परन्तु उसकी उपेक्षा की जा रही है। इस समय कलकत्ता, विश्वभारती, वाराणसी, गोरखपुर और काशी संस्कृत विश्वविद्यालयों में चीनी भाषा के अध्ययन की व्यवस्था है।

२८ : एक अमरीकी विशेषज्ञ डा० पॉल लियोनार्ड ने कहा कि भारत की सबसे बड़ी समस्या है विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या और अध्यापकों की कमी। उन्होंने भारत की शिक्षा में अपव्यय और प्रगति के अवरोध की समस्या को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया।

जून :

१ : नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन ऐण्ड ट्रेनिंग ने अध्यापकों की माँग की समस्या हल करने के लिए अध्यापकी प्रशिक्षण-काल को एक वर्ष तक रखने की संस्तुति दी है। गणित और विज्ञान के स्नातकों को एक वर्ष का प्रशिक्षण देने पर जोर दिया गया है।

२ : कांग्रेस की कार्य-समिति ने देश के भाषा विवाद को हल करने के लिए एक प्रस्ताव पास किया है जिसके मुख्य सूत्र विशेषांक में प्रकाशित हैं।

३ : श्रीनगर में होने वाले शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन में योजना आयोग द्वारा प्रेषित एक टिप्पणी में बताया गया है कि उच्च शिक्षा की उत्तमता बनाये रखने के लिये अनियन्त्रित प्रवेश पर रोक लगाना आवश्यक है। अखिल भारतीय शिक्षा-सेवा को आई० ए० एस० और आई० पी० एस० की भाँति ही संगठित किया जाय। इस सेवा की दो मुख्य शाखाओं, सामान्य शिक्षा और प्राविधिक शिक्षा के अतिरिक्त स्त्री शिक्षा की भी एक शाखा होगी। इस सेवा के अन्तर्गत केन्द्र में ज्वाइण्ट एवं एजुकेशनल एडवाइजर और डिप्टी एजुकेशनल एडवाइजर के पद तथा राज्यों में निर्देशक, उपशिक्षा निर्देशक, सहायक शिक्षा निर्देशक, जिला विद्यालय निरीक्षकों के पद आयेंगे। आगे चल कर प्रधानाचार्यों के पद भी इनके अन्तर्गत लिये जा सकते हैं। इन सबके वेतन क्रम निर्धारित कर दिये गये।

४ : श्रीनगर में होने वाले विभिन्न राज्यों के शिक्षा सचिवों और ालकों के सम्मेलन में केन्द्रीय शिक्षा सचिव श्रीकृपाल ने शैक्षिक प्रशासन में ार करने पर जोर दिया। सम्मेलन में शिक्षा प्रसार पर रोक लगाने का ोध और अखिल भारतीय शिक्षा सेवा चलाने का समर्थन किया गया। रतीय शिक्षा-आयोग की ओर से यह सुझाव आया कि हर राज्य में स्टेट सिल आँफ एजुकेशन और स्वतन्त्र बोर्ड का गठन किया जाय।

८ : योजना आयोग के सदस्य डा० राव ने संवाददाताओं से कहा कि ढ़ साक्षरता के विकास के लिये ७० करोड़ रुपये खर्च किये जायँगे।

९ : जम्मू-कश्मीर प्रचार समिति के वार्षिकोत्सव में अध्यक्ष पद से षण देते हुए केन्द्रीय शिक्षा उपमन्त्री श्री भक्तदर्शन ने हिन्दी को एकमात्र र्क भाषा बताया। मद्रास में मुख्य मन्त्री भक्तवत्सलम ने राज्य के लोगों हिन्दी सीखने का आग्रह किया, क्योंकि वही भविष्य में राज्य भाषा होगी। ज्य में शिक्षा का माध्यम तमिल होगी, हिन्दी नहीं।

१२ : श्रीनगर में चार दिनों से हो रहे स्टेट इन्स्टीट्यूट आफ एजुकेशन संचालकों के सम्मेलन में प्राथमिक क्षिशा की उत्तमता बढ़ाने के लिये ध्यापक प्रशिक्षण, सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई और दस्तकारी की शिक्षा को धिक महत्वपूर्ण बताया गया।

१३ : महाराष्ट्र के शिक्षा मन्त्री श्री चौधरी ने ग्रीष्म कालीन विज्ञान स्थाओं का उद्घाटन करते हुए कहा कि इनसे अध्यापकों को विज्ञान की क्षण विधियों का नया ज्ञान प्राप्त होगा। इन संस्थाओं को अमरीकी शेषज्ञ चलायेंगे।

१४ : केन्द्रीय सरकार के एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि देश में प्रौढ़ क्षरता की स्थिति खेदजनक है। बिहार, कश्मीर, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश र हिमाचल प्रदेश में ८० प्रतिशत से कम साक्षरता है। स्त्रियों में साक्षरता र भी कम है। निरक्षता निवारण के लिए हर राज्य के लिए निश्चित राशि अलग कर दी गयी है और यूनेस्को से १६ पाइलट प्रोजेक्ट चलाने र श्रवणनेत्रोपकरणों के संग्रह करने के लिए वित्तीय सहायता माँगी गयी ।—कश्मीर के राज्यपाल श्री कर्ण सिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द पर एक वर्क-प का उद्घाटन किया। इस प्रवृत्ति के विकास के लिए देश के २०० लों में कार्यक्रम चल रहा है।—राजस्थान सरकार ने संस्कृत के विद्वानों और धकर्ताओं को १०० रु० प्रतिमास आर्थिक सहायता देने और मौलिक कार्य ने वालों को ३०० रु० तक पुरस्कार देने की घोषणा की।

१५ : सरकार की ओर से छात्रों की अनुशासनहीनता का अध्ययन करने के पश्चात् कहा गया है कि हड़तालों के लिये महाविद्यालय अधिक उत्तरदायी हैं। हड़तालों के मुख्य कारण हैं : सुविधाओं की कमी, फीस की कमी की माँग, राजनैतिक प्रभाव, अध्यापकों के प्रति अन्याय का विरोध और छात्रसंघ के मामले। एक अध्ययन दल ने कृषि शिक्षा का मुख्य दोष यह बताया कि यह अति बौद्धिक है और प्रतिभाशाली विद्यार्थी इसे नहीं प्राप्त करते। कृषि के अध्यापकों के प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम में संशोधन, व्यावहारिक शिक्षण, विशेषज्ञों और अनुभव प्राप्त बड़े किसानों के सहयोग को आवश्यक बताया गया।

१७ : उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री कैलाश प्रकाश ने संवाददाताओं को बताया कि चतुर्थ योजना में नये विश्वविद्यालय खोलने की व्यवस्था नहीं है। —मैसूर में योजना आयोग के सदस्य डा० राव ने बताया कि चतुर्थ योजना में पुस्तकालयों के विकास के लिए २० करोड़ रुपया व्यय किया जायगा।

१८ : श्री छागला ने नवाब अली यावर जंग को अलीगढ़ विश्वविद्यालय का कार्यभार पुन: संभालने पर बधाई दी। उन्होंने इस विश्वविद्यालय के मौलिक रूप को बना रहने देने परन्तु उसे राष्ट्रीय विचारों के अनुरूप ढालने की बात भी कही।

२० : पंजाब विश्वविद्यालय ने अगले सत्र से एम० ए० परीक्षा के लिये अंग्रेजी, पंजाबी, इतिहास और अर्थशास्त्र की सान्ध्य कक्षाएँ लगाने का निश्चय किया।

२१ : शिक्षा मन्त्रालय ने कृषि की शिक्षा के लिये एक त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम चलाने का निश्चय किया जिसके लिए नये ढंग के जूनियर स्कूल खोले जायँगे। —श्री छागला ने नैनीताल स्थित बिड़ला मन्दिर की प्रशंसा इसलिये की कि यह एकमात्र ऐसा पब्लिक स्कूल है जहाँ शिक्षा का माध्यम हिन्दी है।

२३ : कलकत्ते में हुए अ० भा० शिक्षा सम्मेलन ने राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से एक समान शिक्षा की व्यवस्था करने, केन्द्रीय बजट का २ प्रतिशत और राज्य के बजट का २० प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने, अध्यापकों का न्यूनतम वेतन १७५ रु० रखने और उन्हें तेहरा लाभ देने की माँग सरकार से की है। एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्राविधिक संस्थानों में शैक्षिक अपव्यय अत्यधिक होता है क्योंकि कुशल अध्यापकों और छात्रावासों की कमी है।

२४ : बंगलौर के चेलाराम ट्रस्ट ने जवाहरलाल नेहरू बुक बैंक खोलने निश्चय किया है जिसकी शाखाएँ प्रमुख संस्थानों में होंगी। वहाँ से विधिक विषयों पर पुस्तकें छात्रों को मिल सकेंगी। नेशनल कौंसिल आफ केशन रिसर्च ऐण्ड ट्रेनिंग के एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि प० बंगाल के थमिक स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा का स्तर गिर गया है।

२८ : गृह मन्त्रालय ने मन्त्रिपरिषद से एक टिप्पणी द्वारा अनुरोध ा है कि १९६६ से क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। राजस्थान की प्राथमिक शिक्षा समिति ने यह सिफारिश की है कि प्राथमिक ों को पंचायतों के संरक्षण में चलाने के प्रयोगों को आवश्यक परिवर्तन े के पश्चात जारी रक्खा जाय। —**'संजय'**

हमारी प्रमुख पत्रिकाएँ

सरस्वती

जनवरी सन् १९०० से निरंतर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की अग्रणी हित्यिक पत्रिका हिन्दी साहित्य की उन्नति की मानदंड है। आधुनिक काल श्रेष्ठ कवि, लेखक, समालोचक, कहानीकार और साहित्यिक इस गौरव लिनी पत्रिका की ही देन हैं। इस समय इसका सम्पादन हिन्दी के यशस्वी हित्यसेवी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा हो रहा है। वार्षिक मूल्य ७·५०; एक प्रति का ६५ पैसे।

बालसखा

१९१६ से अनवरत प्रकाशित होते रहनेवाला बच्चों का साहित्यिक ा यह **बालसखा** मासिक है। इसमें बालोपयोगी कविता, कहानी, यात्रा-ांत, साहसिक कथायें, खेलकूद, पहेलियाँ, चुटकुले, वैज्ञानिक बातें, महापुरुषों जीवन-चरित्र आदि सचित्र मनोरंजक सामग्री रहती है। इसका सम्पादन ० लल्लीप्रसाद पांडेय और पं० सोहनलाल द्विवेदी द्वारा होता है। वार्षिक य रु० ५·५०; एक प्रति का ५० पैसे।

विज्ञान-जगत्

दिसम्बर १९६१ से निरंतर प्रकाशित होनेवाला, सर्वसाधारण तथा ों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक। बहुरंगा आकर्षक आवरण-ठ, सुन्दर सचित्र पाठ्य सामग्री। वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय ार। छपाई और सजावट पर भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठता प्रमाणपत्र त। इसका सम्पादन श्री आर० डी० विद्यार्थी द्वारा होता है। वार्षिक य रु० ९; एक प्रति का ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
तथा ब्रांच और एजेंसियों से प्राप्य।

शिक्षा मंत्री सम्मेलन के प्रस्ताव

भारतीय राज्यों के शिक्षा मंत्रियों का वार्षिक सम्मेलन इस बार कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में ६ जून को समाप्त हुआ। सम्मेलन के प्रस्ताव शिक्षण सेवा में लगे भाई बहिनों के लिए, होनहारों के पालकों के लिए भी, बड़े महत्व के हैं। अतएव प्रकाशित हैं। इन पर सम्पादकीय विचार प्रकट किये जा ही रहे हैं, पाठकों की आलोचना भी वांछनीय है।

१. राज्यों या केंद्र के अन्तर्गत जो भी शिक्षा की निपुणता बढ़ाने के प्रयास हों, इन पर जो व्यय भी आवश्यक हो, उसमें किसी बहाने कटौती न की जाय।

२. राष्ट्रीय विकास की योजनाएँ राज्यों और केन्द्रीय शासन के संयुक्त प्रयास से ही सफल हो सकती हैं। अतएव सम्मेलन का अनुरोध है कि शिक्षा मंत्रालय के सेवा क्षेत्र का विकास हो, जिससे कुछ महत्वपूर्ण योजनाएं उसके अधिकार के अन्तर्गत आ जायं। यह भी निश्चय होता है कि राज्य सरकारें इस प्रकार शिक्षा मंत्रालय के अधिकार-विकास का समर्थन करें।

३. सम्मेलन का मत है कि शैक्षिक स्तरोन्नति के लिए शिक्षक वर्ग की वेतन वृद्धि नितांत आवश्यक है।

४. शिक्षा मन्त्री एक मत हैं कि कक्षा के बाहर वाले शैक्षिक कार्यक्रमों का सोद्देश्य विकास आवश्यक है जिससे विद्यार्थियों के अवकाश के सदुपयोग द्वारा उनकी रचनात्मक शक्तियों का विकास सम्भव हो।

५. निश्चित होता है कि शिक्षक सक्रिय राजनीति से अलग रहें और शिक्षण सेवा को अपना पूरा समय दें। इस उद्देश्य के सिद्धि के लिए सरकारी सेवा और गैर सरकारी अनुदान के नियमों में आवश्यक संशोधन विचारणीय है।

६. सम्मेलन का सुझाव है कि प्रत्येक विद्यालय से उसका शिक्षण-पालक संघ संवद्ध हो और विद्यार्थियों का अनुशासित विकास इस संघ का प्रमुख दायित्व हो।

७. सम्मेलन का निर्णय है कि राज्यों के विधान परिषदों में शिक्षकों के द्वारा निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधित्व की व्याख्या समाप्त कर दी जाय।

८. शिक्षण संस्थाओं की आंतरिक स्वतन्त्रता की रक्षा अवश्य की य, परन्तु इस स्वतन्त्रता की आड़ में शिक्षकों या विद्यार्थियों के मध्य ाज विरोधी तत्व सुरक्षित न रह पायें। वे दंड भागी अवश्य हों।

९. सम्मेलन का निर्णय है कि विश्वविद्यालयों या महाविश्वविद्यालयों रती की आयु बढ़ा दी जाय जिससे उनके यथेष्ट वय प्राप्त विद्यार्थी काने वालों से अपनी रक्षा कर सकें।

१०. सम्मेलन का मत है कि विद्यार्थी राजनीति का अध्ययन अवश्य , परन्तु राजनीति में सक्रिय भाग लेना उनके लिए वर्जित है क्योंकि यह के अनुशासित विकास का बाधक है।

११. सप्रू समिति के प्रतिवेदन, माडल यूनीवर्सिटी बिल और ाण सेवा के मसविदे पर राज्यों के शिक्षा मन्त्री शीघ्रातिशीघ्र अपने ार प्रकट करने का निश्चय करते हैं। भारतीय शिक्षण सेवा की योजना ान्त रूप में तो उन्होंने मान ही ली है। इसके ब्योरे पर ही उन्हें अपने ार प्रकट करने हैं।

१२. सम्मेलन का सुझाव है कि एक राज्य से दूसरे राज्य में ार्थियों के स्थानांतरण की सुविधा के लिए कक्षाओं का समानीकरण श्यक है। इंटरमीजिएट कक्षा के पहले वर्ष में भरती उन्हीं विद्यार्थियों हो जो हाई स्कूल की सार्वजनिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों।

१३. सम्मेलन का निर्णय है कि अंग्रेजी और विज्ञान जैसे विषयों के ाकों के अभाव की पूर्ति के लिए विशेष प्रयत्न किये जाँय।

१४. नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग द्वारा र्श पाठ्य पुस्तकें तैयार हो रही हैं। सम्मेलन का सुझाव है कि तैयार पर ये पुस्तकें राज्यों को भेजी जांय जहाँ क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवादित र वे चालू कर दी जाँय।

१५. यह भी सामान्यतया माना जाता है कि व्यक्ति विशेष के नाम कोई विश्वविद्यालय मान्य न हो। विश्ववंद्य मानव ही निधन पश्चात् प्रकार मान्य हों।

* * *

पत्राचार

शिक्षक संरक्षक सम्पर्क की समस्या

"भारतीय शिक्षा" के फरवरी अंक में उपर्युक्त समस्या पर आपकी योजना पढ़ कर प्रसन्नता हुई। सचमुच, यदि शिक्षक-संरक्षक सम्पर्क की योजना लागू हो तो बिना आर्थिक सहायता के ही तत्काल स्तरोन्नयन हो सकता है। संरक्षकों के लिये विद्यालय पहुंचना कठिन है और यदि संरक्षकों में महिला कोई हुई तो उसके लिए और भी मुश्किल है। मगर शिक्षकों का संरक्षकों के पास पहुंचना आसान है। बड़े से बड़े विद्यालय में भी एक शिक्षक को ज्यादा-से-ज्यादा तीस-चालिस छात्रों के घर जाना पड़ेगा। यह काम कोई भी शिक्षक सहज ही कर सकता है। आखिर, ट्यूशन पढ़ाने वाले शिक्षक तो हर दिन पांच-छः छात्रों के घरों तक जाते ही हैं। इस तरह शिक्षकों के लिए संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित करना मुश्किल बात नहीं है। घरों पर जाकर संरक्षकों से मिल कर शिक्षक गण छात्रों की पढ़ाई-लिखाई, अनुशासन आदि पर विचार-विमर्श कर सकते हैं और उचित परामर्श से छात्रों का हित और शिक्षा का भी स्तरोन्नयन कर सकते हैं। शिक्षण सत्र के आरंभ में ही विद्यार्थियों को मुहल्ले के हिसाब से बांट देना, इस दृष्टि से सुविधाजनक होगा। बिहार के कुछ कालेजों में इस तरह की पद्धति थी। जब मैं देवघर कालेज में था, तब कुछ मुहल्ले के छात्रों की देख-रेख मेरे जिम्मे थी। शिक्षकों को चाहिए कि संरक्षकों से मिलने के पूर्व विद्यार्थियों के संबंध में पूरी बातें जान लें और आवश्यक सुझाव दें। जितने छात्र शिक्षक की देख-रेख में हों उनकी पढ़ाई-लिखाई, रुचि-अरुचि, खेल-कूद और अनुशासन आदि सभी बातों के संबंध में एक 'रिपोर्ट बुक' रहनी चाहिए। शिक्षकों के सुझाव संरक्षकों की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्थितियों के अनुरूप होने चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी योजना से छात्र-वर्ग और शिक्षा का कल्याण होगा।

रही संरक्षकों के घर शिक्षकों के जाने पर मान-अपमान की बात। कुछ लोगों का विचार है कि संरक्षकों के घर पर शिक्षकों के जाने से शिक्षकों की मानहानि होगी। कुछ दूर तक बात ठीक भी है। अभी हमारे देश में शिक्षा, साहित्य और अपनी संस्कृति के अनादर और उपेक्षा की

वना है । रुपये–पैसों में जो बड़ा है लोग उसी का आदर करते हैं या एम० ० ए० और मिनिस्टरों की पूछ है । शिक्षक और साहित्यकार को लोग स समझते हैं, हालांकि शिक्षा और साहित्य का दर्जा सबसे ऊंचा और कर है । ऐसी स्थिति में, मुझे कोई आश्चर्य न होगा यदि संरक्षक घर पर ने से शिक्षक की मानहानि हो । किन्तु इससे निराश या हताश होकर ना ठीक नहीं । ऐसा वातावरण बनाने की जरूरत है कि लोग शिक्षकों का त्व समझने लगें । न समझने का नतीजा है कि हर जगह छात्रों में नुशासनहीनता और शिक्षा में अधोगति दिखाई दे रही है । अत: आवश्यकता कि लोग शिक्षा की महत्ता समझें, शिक्षकों का सम्मान करना सीखें । ना के स्तरोन्नयन की सारी सफलता की कुंजी यही है । इस भावना को र यदि शिक्षक-संरक्षक सम्पर्क की सम्यक् योजना चले तो फिर निस्सन्देह क्षा का भविष्य उज्ज्वल है ।

—(आचार्य) **दीनानाथ 'शरण'**
(नेपाल)

नई धारा

नये युग का नया प्रतीक, नया मूल्यांकन ; नई शैली, नया संकेत
(साहित्य एवं संस्कृति की श्रेष्ठ मासिक पत्रिका)
सम्पादक मंडल :
श्री रामवृक्ष बेनीपुरी : राजा राधिका रमण प्र० सिंह
सम्पादक : **श्री उदयराज सिंह**
सह-सम्पादक : **श्री सुरेश कुमार**
वार्षिक मूल्य : आठ रुपये; एक प्रति : पचहत्तर पैसे
प्राप्ति स्थान
अशोक प्रेस, पटना– ६

परिचायिकी

शिक्षा संगठन

लेखक, के० सी० मलैया; प्रकाशक, राजपाल एन्ड सन्स, कश्मीरीगेट देहली-६ मूल्य, ६.००; पृष्ठ १९५

अभी कुछ वर्ष पूर्व तक बी० एड० और एम० एड० की कक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में केवल 'विद्यालय संगठन' का विषय पढ़ाया जाता था। इसका उद्देश्य भावी अध्यापकों को विद्यालय के भीतर की कार्य-प्रणाली से अवगत कराना था। इधर अमरीकी भाव से पाठ्यक्रम में विद्यालय-संगठन के स्थान पर 'शिक्षा संगठन और प्रशासन' का विषय आसीन हो गया है। हिन्दी में विद्यालय-संगठन पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं परन्तु शिक्षा-संगठन और प्रशासन जैसे विषय पर हिन्दी में पुस्तकें नहीं हैं। श्री मलैया द्वारा रचित यह पुस्तक इस कमी को पूरा करती है। शिक्षा-विषय के विद्यार्थियों को इससे लाभ होगा, इसमें संदेह नहीं।

इस परिचयात्मक ग्रन्थ को लिखने में श्री मलैया ने ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि अपनायी है। भारत में केन्द्रीय राज्य-स्तर और स्वायत्त शासन के स्तर पर शिक्षा-संगठन का इतिहास प्रस्तुत करके लेखक ने पाठकों को यह अवसर दिया है कि वे इंगलैंड और अमरीका की शिक्षा-व्यवस्था और संगठन से भारत के शिक्षा संगठन से तुलना करें। इससे पाठकों का ज्ञान तो बढ़ेगा ही, साथ ही उनका दृष्टिकोण भी उदार बनेगा। ऐतिहासिक विवेचन में कोई नवीनता या मौलिकता नहीं है, क्योंकि वह ज्ञात तथ्यों का संकलन-मात्र है। पर्यवेक्षण और संगठन की विधियों की रूप-रेखा अमरीकी पुस्तकों के आधार पर प्रस्तुत की गई है। लेखक का अपना दृष्टिकोण कहीं भी नहीं दिखायी देता। एक कमी और खटकने वाली है। प्राथमिक, माध्यमिक औ उच्चशिक्षा के व्यापक क्षेत्रों में केन्द्र, राज्य और स्वायत्तशासन के स्तरों पर अनेक संस्थाएँ शिक्षा-संगठन का कार्य कर रही हैं, जैसे यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन, या नेशनल काउंसिल आफ़ एजुकेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग तथा शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत काम करने वाले अनेक विभाग तथा समितियां। इन सभी तथ्यों का संकलन और विवेचन तथा इन पर आलोचनात्मक टिप्पणी देना आवश्यक था। साथ में लेखक, यदि भारत के शिक्षा संगठन में व्याप

ता प्रकार की प्रवृत्तियों, कठिनाइयों, और समस्याओं पर प्रकाश डालता, यह पुस्तक मौलिक रूप धारण कर लेती। फिर भी यह माना पड़ेगा शिक्षा संगठन के क्षेत्र में चलने वाली पाश्चात्य प्रवृत्तियों का परिचय तो ठक को मिल जाता है और वह भी हिन्दी के माध्यम से। इसलिए श्री या का परिश्रम बेकार नहीं गया।

पुस्तक का गेट-अप और छपाई सन्तोषजनक है और मूल्य भी अधिक ीं है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्राध्यापक इससे लाभ उठा सकेंगे।

क्षात्मक अनुसंधान की प्रस्तावना

क, राबर्ट एम० डब्लू ट्रैवर्स, चेयरमैन शिक्षात्मक मनोविज्ञान विभाग, ह विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका;

वादक, श्यामाचरन एम० ए०; प्रकाशक, किताब महल; ५६-ए तो रोड इलाहाबाद; मूल्य, १२·०० रु०; पृ० सं० ४१६

भारत में शिक्षात्मक अनुसंधान की कमी है यद्यपि अनुसंधान और कार्य के लिए यहाँ विशाल क्षेत्र वर्तमान है। कारण यह है कि यहाँ के ानों में अनुसंधान के प्रति अभिरुचि नहीं है; जिन्हें है, उन्हें न तो साधन लब्ध हैं और न उन्हें अनुसंधान की आधुनिकतम विविधियों का ज्ञान है। कुछ थोड़ा-बहुत शोधकार्य होता है, वह अंग्रेजी के माध्यम से। हिन्दी माध्यम शोध में वर्जित है। कारण, हिन्दी में अनुसंधान और ध कार्य के लिए सशक्त गद्यशैली नहीं है। इस कमी को पूरा करने के ए अनुवादक ने परिश्रम पूर्वक श्री ट्रैवर्स की पुस्तक–An Introduction to ducational Research—का अनुवाद तैयार करके हिन्दी की अमूल्य ा की है।

यह पुस्तक एम० एड० कक्षाओं में निर्धारित एक प्रश्न-पत्र 'अनुसंधान विधियों' के अन्तर्गत पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत हो सकती है। से हिन्दी के माध्यम से एम० एड० जैसी उच्चकक्षा की पढ़ाई हो कती है। हिन्दी के माध्यम से ही अनुसंधान-कार्य करने का रास्ता यह तक खोल सकती है क्योंकि इसकी सहायता से अनुसंधान कर्त्ता को हिन्दी उन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान हो जायगा जिनसे हिन्दी की अभिव्यक्ति क्ति बढ़ती है और गद्य इस योग्य बनता है कि उसमें शोधग्रन्थ लिखा जा के। सबसे बड़ी बात तो यह है हिन्दी जानने वाले असंख्य जनों को नुसंधान-कार्य की उन विधियों का ज्ञान हो सकेगा जिससे वे अंग्रेजी

माध्यम की कृपा से वंचित रहते हैं। इसलिए इस पुस्तक की बिक्री को प्रोत्साहन देकर यह दिखाना होगा कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में अनुसंधान के प्रति रुचि है। अनुवादक ने हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली की एकरूपता और स्थिरता के लिए शिक्षा मंत्रालय की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करके अपनी उदारता का परिचय दिया है। उसका यह दावा कि पुस्तक अनुवाद न प्रतीत होकर मौलिक ग्रन्थ का आनन्द देता है, बहुत कुछ सही है।

अनुसंधान-कला पर लिखा गया यह परिचयात्मक ग्रन्थ अनुसंधान कार्य का सम्यक् ज्ञान और प्रत्यक्ष अनुभव रखने वाले श्री ट्रैवर्स की देन है। उन्होंने उन मौलिक सिद्धान्तों और विधियों की विद्वत्तापूर्ण तथा निष्पक्ष चर्चा की है, जो अनुसंधान के लिए अत्यावश्यक है। अनुसंधान कर्त्ता की प्रकृति और उसकी योग्यताओं का विवेचन उपयोगी है। अनुसंधान की प्रक्रिया, उसके मूल तत्व और साधन-विधियों का सर्वांगीण विवरण विधिवत् प्रस्तुत किया गया है। मापन, प्रेक्षण, सर्वेक्षण और प्रयोग जैसे साधनों का, शिक्षात्मक अनुसंधान में, उपयोग सर्वथा नवीन है और बहुत कम लोग इस विषय में जानकारी रखते हैं। अतः इन प्रकरणों पर बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करके लेखक ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। अन्तिम अध्याय विशेषरूप से पठनीय है क्योंकि अनुसंधान कार्य को सफल बनाने के लिए अनुसंधान-कर्त्ता का परिश्रम और प्रतिभा पर्याप्त नहीं हैं; उसे समाज तथा शिक्षाविदों का संरक्षण भी मिलना चाहिए।

कुल मिलाकर पुस्तक हिन्दी के तकनीकी साहित्य के अभाव की पूर्ति में सहायक सिद्ध होगी। गेट-अप, छपाई और मूल्य सभी सन्तोषजनक है।

शिक्षा में सरल सांख्यिकी

लेखक, कामताप्रसाद पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, बी० आर० कालेज आफ एजुकेशन, आगरा; प्रकाशक, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा; मूल्य ३.००; पृष्ठ संख्या १६०

शिक्षा के क्षेत्र में शोध-कार्य करने के लिए किसी न किसी रूप में सांख्यिकी का प्रयोग अनिवार्य सा हो जाता है। यही कारण है कि अध्यापक-प्रशिक्षण के स्तर पर और एम० एड० आदि उच्च कक्षाओं में सांख्यिकी का ज्ञान और अभ्यास कराया जाता है। विश्वविद्यालयों में और प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सांख्यिकी शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से दी जाती है क्योंकि

ी में 'गैरेट' और 'गिलफर्ड' जैसे सांख्यिकी के विशेषज्ञों की लिखी
यों का अभाव है। अतः हिन्दी में लिखी पांडेय जी की पुस्तक का
ात करना चाहिए। सांख्यिकी का प्रारम्भिक ज्ञान, जो बी० टी०,
एड० और एल० टी० की कक्षाओं में कराया जाता है, इस पुस्तक की
ता से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इन कक्षाओं के विद्यार्थियों
िए पुस्तक उपयोगी है। अच्छा हो, यदि इन कक्षाओं के पाठ्यक्रम के
यह पुस्तक बोर्ड अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत की जाय। हाँ,
एड० की कक्षा के लिए यह पूरी तरह काम न दे सकेगी। पुस्तक का
प सुन्दर है और मूल्य कम। हर विद्यार्थी इसे सरलता से खरीद सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक की कई विशेषताएँ है। सांख्यिकी पर लिखी
हिन्दी की अन्य पुस्तकों को केवल परीक्षोपयोगी बनाने के लिए केन्द्रवर्ती
ं, प्रामाणिक विचलन और सह-संबंध आदि निकालने की विधियाँ बता
ई हैं और तालिकाओं की सहायता से उनकी व्याख्या कर दी गई है।
नकी उपयोगिता और शोध कार्य से इनके संबन्ध पर कोई प्रकाश नहीं
गया है। इससे विषय अस्पष्ट रह जाता है। पांडेय जी ने सांख्यिकी के
सिद्धांतों की उपयोगिता पर समुचित प्रकाश डालने के उपरान्त, उनके
ा को समझाया है। इससे दुरूह विषय रुचिकर वन गया है। उदाहरणों
प्रचुरता से व्याख्या स्पष्ट हो जाती है। अभ्यास के लिए प्रश्नावली हर
ाय बाद जोड़ दी गयी है। परिशिष्ट में दी हुई स्वतः ज्ञान परीक्षा और
ूलों की तालिका उपयोगी है।

हिन्दी में लिखी गई शिक्षा तथा मनोविज्ञान विषयक पुस्तकों के
कों ने प्रायः अपने ढंग से अपनी रुचि और विद्वत्ता के अनुसार पारिभाषिक
ावली का प्रयोग किया है। फलतः अंग्रेजी के एक शब्द के लिए हिन्दी में
भिन्न शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। इससे विद्यार्थी भ्रम में पड़ जाते हैं।
श्यकता इस बात की है कि पारिभाषिक शब्दावली प्रामाणिक और
र हो। पांडेय जी ने ऐसे अनेक शब्दों का व्यवहार किया है, जो अपरिचित
े हैं; परन्तु इसमें उनका दोष नहीं है। प्रामाणिक शब्दावली का स्थिर
ा केवल शिक्षा-विशारदों के सम्मिलित प्रयत्नों से ही संभव है।

—रा० खे० चौधरी

संपादकीय

शिक्षा मन्त्री सम्मेलन के महत्वपूर्ण प्रस्ताव

भारतीय शिक्षा के प्रकाशन काल का पहला शिक्षा मंत्री सम्मेलन इस वर्ष श्रीनगर के नैसर्गिक वातावरण में ६ जून को समाप्त हुआ। प्रस्तावों की सूची इस अंक में प्रकाशित है। भारतीय शिक्षक संघ की मुख-पत्रिका होने के कारण सम्मेलन के प्रस्तावों पर भारतीय शिक्षकों की ओर से विचार प्रकाशन **भारतीय शिक्षा** का कर्तव्य है।

१. सम्मेलन का यह प्रस्ताव बहुत ही स्तुत्य है कि शैक्षिक नैपुण्य पर व्यय की कटौती न की जाय। देश में शिक्षा पर व्यय की मात्रा बहुत कम है, परंतु खेद की बात है कि इस व्यय का यथेष्ट अंश उद्देश्य की सिद्धि में विफल रहता है। वेतन पर व्यय किया जाता है, परंतु शिक्षक से यथेष्ट मात्रा में शैक्षिक सेवा नहीं ली जाती, वह कूटनीतिक चक्र या मिस्लों में उलझा रखा जाता है और शिक्षा भी वह देता है तो अविश्वास और रटाई पर आधारित परीक्षाओं के लिए ही जो शिक्षक-शिष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों का शोषण करती रहती हैं। शैक्षिक भवन और सामान का उपयोग बहुत कम होता है। औसतन यह उपयोग वर्ष में एक हजार घंटों के आगे नहीं जाता, जबकि २५०० घंटों तक उसका उपयोग व्यावहारिक है।

२. दूसरे प्रस्ताव में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय का सेवा-क्षेत्र बढ़ाने की सिफारिश है। सिद्धांत की बात है कि समाज सेवा प्रमुख रूप में शिक्षण सेवा से मूर्त होती है और इस सेवा को प्रेरणा स्थानीय उमंग, उत्साह और लगन से मिलती है। इस प्रेरणा से हीं शिक्षण सेवा को बल मिलता है और आवश्यक नियंत्रण भी। परन्तु देश में चालू कर व्यवस्था द्वारा करदाता की कमाई की मलाई केंद्र को पहुंचती है। दूध राज्य के कोश तक पहुंच जाता है और स्थानीय संस्थाओं के हिस्से में छांछ ही रह जाती है। जब तक इस व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन न हो, तब तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय का सेवा-क्षेत्र बढ़ाने से ही शिक्षा की हित-रक्षा संभव होगी।

परन्तु दो सावधानियां बहुत जरूरी हैं

केंद्रीय शासन के कोश से शिक्षा पर व्यय अवश्य बढ़ाया जाय। परन्तु प्रत्येक शिक्षण संस्था, अनुसंधान शाला या जनशिक्षण की व्यवस्था के

गैर सरकारी नागरिकों की ऐसी समिति की संबद्धता आवश्यक है जिसके त्य परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में उक्त शिक्षण सेवा के नैपुण्य से लाभान्वित जिसकी शिथिलता से उनकी हानि होती हो। ये समितियां जागरूक रहें इनकी सिफारिशों तथा आलोचनाओं को सरकारी रिपोर्टों पर वरीयता ाय, तो आज के अपव्यय से शिक्षा की वहुत-कुछ रक्षा संभव होगी।

३. इस प्रस्ताव पर विपरीत मत नहीं हो सकते कि शैक्षिक य के बढ़ाने के लिए शिक्षक वर्ग की वेतन-वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है। तु प्रारम्भिक शिक्षा का जो कुछ कागजी स्तर हमने बना रखा है, इस के अनुकूल शिक्षकों का जितना प्रशिक्षण हमने मान्य किया है और म्भिक शिक्षा की व्यापकता का जितना भारी भार हमने उठा रखा है, ी पूर्ति के लिए प्रारम्भिक शिक्षक को समुचित वेतन देने पर करदाता को भार उठाना पड़ेगा वह उसकी सामर्थ्य के बाहर है। यदि प्रारम्भिक ालय के प्रशिक्षित शिक्षक का औसत १०० रुपये प्रतिमास के आगे न हो उत्तर प्रदेश जैसे राज्य पर प्रारम्भिक शिक्षकों के वेतन मद्धे ही ४८ ड़ रुपये का वार्षिक व्यय बैठता है। शैक्षिक नीति-निर्माताओं को गंभीर मुक्त चिंतन का अवकाश मिल सके, तभी समस्या का सही हल संभव ा। अभी तो सर्वोच्च स्तर के शिक्षकों ही की मांगें पूरी करने का प्रयत्न ा जा रहा है। यों सर्वोच्च और प्रारम्भिक शिक्षक के मध्य वेतन का ुपात बढ़ रहा है जो समाजवाद के सिद्धांत के विरुद्ध है।

४. विषयेतर शैक्षिक कार्यक्रम पर जोर देने का प्रस्ताव बहुत य है। परन्तु इसके लिए जलवायु तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल हमें ाई के घंटों और छुट्टियों के दिनों का बौद्धिक सुधार करना होगा; परीक्षा रवैया भी एक दम बदलना होगा। इस समय तो कैफियत यह है कि ागत शिक्षण का हर्ज कर के ही विषयेतर शिक्षण के कार्यक्रम चालू किए े हैं। सन् १९४१ में पढ़ाई के घंटों और छुट्टियों के दिनों के संबंध में ीय जवाहरलाल जी नेहरू तथा अन्य तत्कालीन नेताओं के आशीर्वाद के एजुकेशन का हालीडेज एण्ड टाइमिंग्ज नाम से एक विशेषांक प्रकाशित ा था। देश सन् १९४७ से स्वतन्त्र है और तब के नेताओं के हाथ में अब ट्रीय शासन की बागडोर है। परन्तु दुर्व्यवस्था में अभी तक कोई आंशिक ार नहीं हो पाया है। आशा है कि अब प्रस्ताव की भूमिका सुधारने की र राज्यों के शिक्षा मंत्री अग्रसर होंगे।

५. शिक्षक तथा विद्यार्थीवर्ग को सक्रिय राजनीति तथा सांप्रदायिक प्रदर्शनों से अलग रखना बहुत जरूरी है। वे शिक्षण सेवा को अपना पूरा समय दे सकें, इसके लिए जरूरी है कि वे प्राइवेट ट्यूशन के लोभ से मुक्त रहें। विद्यार्थियों के श्रम और मनोरंजन का सदुपयोग तभी संभव है जब उनके शिक्षक उनके साथ शरीक हों और उनका मार्गदर्शन करते रहें। इस प्रकार शिक्षकों को शैक्षिक सेवा के लिए मुक्त करने पर उन्हें समुचित वेतन मिलना चाहिए और उनके सेवा नियमों में परिवर्तन के अतिरिक्त राजनैतिक दलों का उनके प्रति रवैया भी बदलना चाहिए। राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर शिक्षक तो दण्डित हों ही, दलीय प्रतिद्वन्द्वी भी दण्डित हों जो शिक्षकों को राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए विवश करते हैं। इस ओर मार्गदर्शन का विशेष दायित्व उस राजनैतिक दल पर है जिसके हाथ शासन की बागडोर है।

६. प्रत्येक शिक्षालय के साथ पालक-शिक्षक संघ की व्यवस्था का पक्ष **भारतीय शिक्षा** के नीति-निरूपण में सम्मिलित है। शिक्षक-वर्ग वेतन-वृद्धि के लिए ही नहीं, शिक्षण सेवा की स्तरोन्नति के लिए भी संगठित हों, वे विद्यार्थियों के पालकों को भी अपने विद्यालय की संगठित सेवा के लिए राजी कर सकें—इसके लिए यथेष्ट प्रचार की जरूरत है जो **भारतीय शिक्षा** की नीति का अंग है। पत्रिका के संचालक इस सेवा की ओर उन्मुख हैं, तो उन्हें शैक्षिक नीति-निर्माताओं से भी समुचित मात्रा में सहारा मिलना चाहिए।

७. विधान परिषदों में शिक्षकों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है। प्रस्ताव है कि यह व्यवस्था समाप्त कर दी जाय। इस सम्बन्ध में **भारतीय शिक्षा** की नीति का स्पष्टीकरण हो चुका है। परन्तु शिक्षक समुदाय के मध्य एक वर्ग है जो इस व्यवस्था से लाभान्वित है, जिस कारण समाप्ति के पक्ष में नहीं है। **भारतीय शिक्षा** के पृष्ठ विपरीत मत के प्रकाशन के लिए खुले हैं। व्यवस्था समाप्ति के पक्ष-विपक्ष में जो भी मत हो; समाप्ति होने पर शिक्षक-वर्ग के एक सूत्र में संगठित होने का पक्ष प्रबल हो जाता है। बहुसंख्यक प्रारंभिक शिक्षक समुदाय शिक्षकीय निर्वाचन क्षेत्रों से अभी तक बाहर ही है, जिस कारण माध्यमिक और सर्वोच्च शिक्षक अपने इन बहुसंख्यक बन्धुओं से अलग रहते हैं। निर्वाचन क्षेत्र और प्रतिनिधित्व के समाप्त होने पर शिक्षक समुदाय को एक-सूत्री संगठन का सहारा ही रह जाता है। विश्वास दिलाना है कि यदि इस एक-सूत्री संगठन को उचित

76257

तृत्व मिल जाय, तो शिक्षक-वर्ग की सेवा से राष्ट्रीय शक्ति-संचय का पक्ष बल प्राप्त करेगा ।

८. शैक्षिक संस्थाओं की आंतरिक स्वतन्त्रता की रक्षा के हम र्थक हैं । इसका अर्थ यह होता है कि राजनीति के बवंडरों से और कारी कर्मचारी दल के हस्तक्षेपों से इन संस्थाओं की रक्षा हो । परन्तु यन्त्रण-विहीन होना किसी भी संस्था के हित में नहीं । प्रस्ताव में समाज रोधी तत्वों को दंडित करने की बात कही गयी है । क्या ही अच्छा हो, द शिक्षक-पालक संस्थायें ही शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए आचार-हिताएँ बनायें और इन संस्थाओं द्वारा ही शिक्षकों अथवा विद्यार्थियों के य समाज विरोधी तत्व दंडित और बहिष्कृत होते रहें । पुलिस और दालत के हस्तक्षेप बिना ही यदि समाज विरोधी तत्व निष्कासित और डित हो सकें तो प्रतिक्रियाओं का वातावरण नहीं बन पायेगा जो आजकल प्रकार के हस्तक्षेपों से उभरता है ।

११. भारतीय शिक्षण सेवा के पुनर्निर्माण की बात आकर्षक है । न्तु भाषा विवाद के उठ खड़े होने के कारण इस नयी सेवा के लिए कूल वातावरण नहीं दिख रहा है । राष्ट्रभाषा के पक्ष में राष्ट्रीय नीति हो और उसे अहिंदी राज्यों से मान्यता मिल जाय, तभी यह नयी तीय सेवा राष्ट्र की भावात्मक एकता के विकास में योग दे सकेगी । रतीय सेवाओं का अधिकारी वर्ग आंशिक रूप में जितना इस समय विदेशी जी के पक्ष में है, उसके देखते हुए तो शंका होती है कि भारतीय शिक्षण ा का पुनर्निर्माण होने पर हिन्दी राज्यों में भी हिन्दी के पक्ष पर कुठारा-त होगा । हिन्दी भाषी राज्यों के शिक्षा मन्त्रियों को भारतीय शिक्षण ा के इस पक्ष पर गम्भीर चिंतन करना चाहिए ।

१२. सम्मेलन ने एक राज्य से दूसरे राज्य में विद्यार्थियों की ती की सुविधा पर विचार किया है । यह जरूरी है कि कक्षाओं का मानीकरण हो । परन्तु माध्यम का अड़ंगा अधिक भारी है । कांग्रेस की र्यकारिणी समिति ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है और जिसका कार्यान्वयन सकीय स्तर पर होना है, उससे तो कक्षाओं का समानीकरण होने पर न्दी भाषी राज्यों के मध्य ही विद्यार्थी-विनिमय संभव होगा । कैसी विडंबना बात है कि नवीन व्यवस्था से उन्ही विद्यार्थियों को कष्ट पहुँचने की भावना रहेगी जिनके पालक भारतीय सेवाओं में लगे होने के कारण एक ज्य से दूसरे राज्य को स्थानांतरित होते रहते हैं ।

१४. यह बहुत अच्छी बात है कि शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा पाठ्यपुस्तकें तैयार की जा रही हैं। परिषद का नाम अंग्रेजी है। अतएव अनुमान यही है कि पाठ्यपुस्तकें अंग्रेजी में होंगी और इनके अनुवादों द्वारा ही विद्यार्थियों की पढ़ाई होगी। ये पाठ्यपुस्तकें कितनी अच्छी होंगी, इस पर तो हम अपना मत इनके प्रकाशन पर ही दे सकेंगे, परन्तु नीति की चर्चा में अभी भी कोई हर्ज नहीं।

हमने ब्रिटिश संविधान का अनुकरण किया है। हमारी शिक्षा प्रणाली भी ब्रिटिश प्रणाली पर बहुत कुछ आधारित है। इस प्रणाली में शिक्षक को पाठ्यक्रम बता दिया जाता है। इस पाठ्यक्रम में वह आवश्यक परिवर्तन का अधिकारी माना जाता है। उस पर पाठ्यपुस्तक का कोई प्रतिबन्ध नहीं। प्रकाशकों से उसे जो भी पुस्तकें प्राप्त हों उनके मध्य वह अपने विद्यार्थियों के लिए चुनाव कर ले।

रूस में एक ही दल का अधिनायकी शासन है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अभाव है। वहाँ विद्यार्थियों से फीस नहीं ली जाती और उनके लिए पाठ्यपुस्तकें शासन की ओर निर्मित होती हैं।

हम विद्यार्थियों से फीस लेते हैं, शिक्षण संस्थाओं की आंतरिक स्वतन्त्रता की रक्षा के हम समर्थक हैं। परन्तु विद्यार्थियों और उनके शिक्षकों को हम वही पाठ्य पुस्तकें देंगे, जो सरकारी दफ्तरों से तैयार होंगी।

विदेशी बाबर ने यहाँ आने पर नये दृश्य देखे और नये भोजन चखे। भोजनों में उसे खिचड़ी बहुत रुची। संसदीय गणतांत्रिक के साथ पंचवर्षीय योजनाओं की खिचड़ी का मजा तो हम ले ही रहें हैं; शिक्षा के क्षेत्र में इस नयी खिचड़ी का मजा भी हमें मिलना चाहिए।

शैक्षिक क्षेत्र में समाजवाद की प्रगति : १४ अगस्त १९४७ तक देश के सरकारी विद्यालय विदेशी रहे और उनके शिक्षक राष्ट्रीय आंदोलन के दमन में विदेशी सरकार से सहयोग कहते रहे। गैर सरकारी विद्यालयों ही में राष्ट्रीय भावनाओं को थोड़ी-बहुत शरण मिलती रही। उनके शिक्षक राष्ट्रीय उमंग में मत्त होनहारों की रक्षा करते रहे। १५ अगस्त १९४७ के प्रातःकाल से सरकारी विद्यालय राष्ट्रीय हैं, इनके शिक्षक और संचाल के शैक्षिक क्षेत्र में राष्ट्र के सच्चे सेवक हैं। परन्तु गैर सरकारी विद्यालय राष्ट्र विरोधी नहीं, तो अराष्ट्रीय हैं ही। इनमें कूटनीति और सांप्रदायिकता के कुचक्र चालू हैं। इनके शिक्षकों को न सरकारी शिक्षकों के समकक्ष सम्मान प्राप्त है और

उनके जैसे वेतन ही। फलतः गैर सरकारी विद्यालयों का शैक्षिक स्तर निरंतर गिरता जा रहा है।

एक ओर इन विद्यालयों का शैक्षिक स्तर गिर रहा है और दूसरी ओर इनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों के पालकों पर पढ़ाई का व्यय-भार बढ़ रहा है। सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों को मंहगाई शुल्क नहीं देना पड़ता, यद्यपि इनके शिक्षकों को नियमानुकूल मंहगाई मिलती है। गैरसरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों को मंहगाई शुल्क के साथ विकास शुल्क भी देना पड़ेगा। उत्तर प्रदेश में गैरसरकारी शिक्षण संस्थाएँ संख्या में राष्ट्रीय संस्थाओं की दस गुनी हैं। इनके विद्यार्थी दस गुने से भी अधिक होंगे। अधिक शुल्क देकर निम्न स्तर की पढ़ाई ही इनके भाग्य में है। राष्ट्र की समाजवादी नीति को यह स्थिति सहनीय न होनी चाहिए।

स्थिति सहनीय न हो, परन्तु सरकारी विवशता का भी हमें खयाल रखना है। मंहगाई और विकास शुल्क काटकर गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं और उनके शिक्षकों की मांगों की पूर्ति सरकारी कोश की सामर्थ्य के बाहर है। तो व्यावहारिक सुझाव यही हो सकता है कि सरकारी विद्यालयों में भी मंहगाई और विकास के शुल्क चालू कर दिये जायँ। यों गैरसरकारी और सरकारी संस्थाओं के बीच शुल्क का समानीकरण तो संभव हो ही जायगा।

* * *

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

सरकारी भाषा के प्रश्न पर विचार करते समय यह ख्याल रखना चाहिए कि हिन्दीभाषा-भाषियों का भारत में सबसे बड़ा समूह है। यदि भारतीय लोग राजनीति, व्यापार या कला में एक रहना चाहते हैं, तो हिन्दी ही वह भाषा है, जो समस्त भारतीयों का ध्यान आकर्षित कर सकती है। चाहे वे अपने प्रदेश में कोई भी भाषा बोलते हों। निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करना, भारत के सभी भागों के लिए शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होकर ही रहेगी।

(भारतीय शिक्षा-पद्धति पर भाषण)

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

-विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
-क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
-भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
-प्रधान का पत्र
-अभिभावकों का समस्या-समाधान
-शिक्षक प्रशस्ति
-कक्षागत समस्या
-पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
-शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा

विशेषांक योजना

-स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
-विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)
-विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
-विदेशों में शिक्षक संघ
-विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
-प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था
(मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
-विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
-विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
-नारी शिक्षा
-हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
-शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल न्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, रतीय शिक्षक संघ, झा–शेषाद्रि–खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर द्वारा प्रकाशित ।

रजिस्टर्ड नं० एल ११९

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लिखे या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने पर लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। लेख भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ-३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र-पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

अगस्त, १९६५

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation of Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा करता आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो चार वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आपकी सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक ही सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हममें से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूसरा (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का छठा अंक है। पहला अंक पिछले गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हुआ था। चौथा विशेषांक था—अहिंदी राज्यों में हिंदी प्रगति। यों तो सभी अंक पठनीय, मननीय और संग्रहणीय हैं। परंतु विशेषांक में पाठकों को वह निधि मिलती है जो सामयिक साहित्य में कहीं और उपलब्ध नहीं। जिस भावना और उद्देश्य से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्वयं और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदान दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार के अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

637-6
10-12-65

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक मुख-पत्रिका

वर्ष ● अगस्त, १९६५ ● षष्टम अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–अध्यक्ष–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत–डा० गोपाल शर्मा
३–असम–परेशचन्द्र देव शर्मा
४–आंध्र–डा० भीमसेन निर्मल
५–उड़ीसा–राधाकान्त मिश्र
६–कश्मीर–पृथ्वीनाथ राज़दान
७–केरल–ए० चन्द्रहासन
८–गुजरात–जेठालाल जोशी
९–पंजाब–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–बंगाल–मोहितकुमार बनर्जी
११–बिहार–श्यामजी सिंह
१२–मद्रास–डा० शं० ना० गणेशन
१३–मध्यप्रदेश–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–महाराष्ट्र–प्र० रा० भूपटकर
१५–मैसूर–ना० नागप्पा
१६–राजस्थान–शंकरसहाय सक्सेना
१७–सम्पादक : सचिव–कालिदास कपूर

तीय शिक्षक संघ
बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

१—अंग्रेजी पुस्तकें और भारतीय विद्वान—प्राध्यापक रामखेलावन चौधरी

२—शिक्षक बन्धुओं से—श्री श्यामसुन्दर सिंह ... ...

३—अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण-सेवा में शीर्षस्थ राष्ट्रों की अनुकरणीय स्पर्द्धा
—श्री कालिदास कपूर ...

४—राज्य संग्रहालय का शैक्षिक योगदान—श्री शहीर मुस्तफा नकवी

५—भारतीय शिक्षा की समस्यायें और उनका निवारण
—श्री विमल कुमार ...

६—शिक्षकीय युग-धर्म—श्री कालिदास कपूर ... ...

७—स्कूलों में देशी भाषाओं का शिक्षण—श्री के० रंगराजन ...

८—नौनिहालों की संगठन सेवा विषयक शिक्षक-संरक्षिका वार्तालाप
—श्री कालिदास कपूर ...

९—विकासशील देशों में पुनराध्ययन क्रियाओं का आयोजन
—श्री जान हावर्ड ...

१०—आत्म निर्देश की शिक्षा—श्री उगराव सिंह ... ...

११—पड़ोसी रीजनल कालेज आफ एजूकेशन
—प्राध्यापक श्री रामखेलावन चौधरी ...

१२—श्री गुरवेनमः—श्री कालिदास कपूर ... ...

१३—मेरा विद्यार्थी जीवन—श्री चन्द्रमोहन नाथ चक ...

१४—भारतीय शिक्षक संघ के विशेष सम्मेलन की कार्यवाही ...

१५—पत्राचार—आचार्य गोवर्द्धन प्रसाद त्रिवेदी ... ...

१६—शैक्षिक समाचार-समुच्चय :—आचार्य रामखेलावन चौधरी

१७—परिचायिकी ... ...

१८—संपादकीय ... ...

ग्रेजी पुस्तकें और भारतीय विद्वान

ाध्यापक रामखेलावन चौधरी, जियालाल इंस्टीच्यूट आफ केशन, अजमेर)

आपने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा कि अंग्रेजी की पुस्तकों का सबसे वाजार भारत है । यह समाचार एक छोटे से कालम में छपा था और ने ही लोगों की दृष्टि इस महत्वपूर्ण समाचार पर न पड़ी होगी । अन्य में भी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी जाती होगी; पर भारत अंग्रेजी के बिना जिन्दा रह सकता । अंग्रेजी का मोह उसके लिए जीवन-मरण का प्रश्न है । तभी अंग्रेजी पुस्तकों की बिक्री सबसे ज्यादा भारत में होती है ।

मैं अन्य तकनीकी विषयों के बारे में नहीं जानता, पर शिक्षा विषयक कों के बारे में थोड़ी जानकारी अवश्य है । शिक्षा पर अमरीका में लिखी कों का नम्बर ज्यादा है । ट्रेनिंग कालेजों, विश्वविद्यालयों, विद्यालयों सार्वजनिक पुस्तकालयों में अंग्रेजी में लिखी शिक्षा विषयक पुस्तकें खूब ी जा रही हैं । व्यापार में अमरीकी लोग अंग्रेजों से अधिक चतुर हैं । सरकार शिक्षा के लिए निर्धारित धन का अच्छा खासा अंश पुस्तकालयों नुदान के रूप में दे रही है; पर उससे खरीदी जा रही हैं अमरीकी ें । करोड़ों का धन वाहर जा रहा है । इसी प्रकार सामुदायिक विकास के पुस्तकालयों में और एजुकेशनल एक्स्टेंशन सर्विस के माध्यम से लाखों कों की खरीद जारी है । इन सबमें अंग्रेजी की शिक्षा-विषयक पुस्तकें आती अमरीकी लेखकों का व्यापार खूब चमका है ।

बहुत कम लोग जानते हैं कि अधिकांश अमरीकी पुस्तकों में बढ़िया न, आकर्षक छपाई और सुन्दर जिल्दबन्दी के अलावा कुछ नहीं होता । मोटी किताबें पढ़ जाइये, उनमें सार कम ही होगा । एक ही विषय पर लिखे चास ग्रन्थ वाग्जाल के नमूने मात्र हैं । उनमें एक दो बातों की ही ावृत्ति होती है, आंकड़े भरे होते हैं, तस्वीरें होती हैं और एक ही तथ्य -फिरा कर प्रस्तुत किया जाता है । विद्यार्थी भ्रम में पड़ जाते हैं । यदि कोई जानकारी प्राप्त करना चाहे कि अमरीका के चुने हुए शिक्षा शास्त्री ा हैं, जिनकी पुस्तकें पढ़ना उचित है, तो यह जानना कठिन होगा । अम-ी विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले सभी अध्यापक विशेषज्ञ नहीं हैं और न

शिक्षा के क्षेत्र में कोई मौलिक कार्य करने का दावा कर सकते हैं (जैसे ड्यूवी क़िल्यैट्रिक या हेलेन पारखर्स्ट के बारे में कहा जा सकता है); परन्तु धड़ाधड़ पुस्तकें लिख रहे हैं और लाखों रुपया भारत से रायल्टी के रूप में पा रहे हैं। उनकी पुस्तकें उच्चकोटि की नहीं होतीं। हमारे देश में शिक्षा का स्तर गिरने का कारण अमरीकी प्रभाव भी है। अमरीका में धन खर्च करके कोई भी साधारण आदमी डाक्टर (पी० एच-डी०) बन सकता है।

यदि अंग्रेजी से हमें प्रेम है, तो ज्ञान के क्षेत्र में हमें अंग्रेजों की नकल करना चाहिए। उनके यहाँ के विश्वविद्यालय बाजार नहीं हैं, जहाँ से डिग्री खरीदी जा सकती हो। वहाँ के लेखक चुने हुए हैं। ब्रिटिश पुस्तकें कठिनाई से उपलब्ध होती हैं और जो भी हैं उनमें सार होता है। आकार में छोटी और मूल्य में कम होती हैं; इसके विपरीत दिखावटी अमरीकी पुस्तकें बड़ी मंहगी होती हैं। २५ रु० से ३० रु० तक एक साधारण लेखक की पुस्तक होगी। पील, बर्ट, जेफरीज, रसेल जैसे अंग्रेज लेखकों की उत्तम पुस्तकें अपेक्षाकृत सस्ती हैं। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को मोह दूर करके स्वयं पुस्तकें लिखना चाहिए और पाठ्यक्रम में भारतीय लेखकों की पुस्तकें निर्धारित करनी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में 'स्वदेशी' का आन्दोलन चलाना उचित है। हमें देश का धन केवल उन पुस्तकों पर खर्च करना है जो सारगर्भित हों।

जब तक हिन्दी में लिखी पुस्तकों को महत्व न दिया जायगा; विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में उन्हें उचित स्थान न दिया जायगा, हिन्दी के लेखकों को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। आज स्थिति यह है कि अंग्रेजी में लिखा अत्यन्त निम्नकोटि का लेख अमरीका की अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित हो जायगा; परन्तु हिन्दी में लिखा तथ्यपूर्ण लेख प्रकाशित ही न हो सकेगा। यदि प्रकाशित भी हो जाय तो अंग्रेजीदाँ प्रोफेसर उसकी उपेक्षा करते हैं। यह मनोवृत्ति बहुत बुरी है। भारतीयों की यह ऐतिहासिक आदत है कि वे अपने घर के रत्न की परख न करके उसे घूरे पर फेंक देंगे और विदेशों से काँच बटोरते फिरेंगे। अपने देश के विद्वान का अनादर करेंगे और विदेशी मूर्ख के पैर धोकर पियेंगे। हममें जौहरी बनने का माद्दा नहीं रहा। हमने गांधी, सुभाष, रवीन्द्र, रमन और भाभा को तब पहचाना जब विदेशों में उनकी पूजा हुई। हम कवि सम्मेलनों और मुशायरों के उन मूर्ख श्रोताओं के समान हैं, जो दूसरों की कहकही पर ताली पीटते हैं। हम अपने लेखकों की कद्र नहीं करते, तो लेखक न लिखेंगे। हिन्दी में पुस्तकों का अभाव अंग्रेजी पुस्तकों से प्रेम के कारण है। यद्यपि यह उचित नहीं है पर लेखक की दुर्बलता ही है कि

प्रशंसा चाहता है; अपनी प्रतिभा की स्वीकृति चाहता है। जब हिन्दी में ने में उसे मान नहीं मिलता, तो वह अंग्रेजी में लिखता है या नहीं ता। हमारे विश्वविद्यालयों के भारतीय विद्वान लिखने की सामर्थ्य रखते भी हिन्दी में नहीं लिखते और अंग्रेजी में भी नहीं लिखते क्योंकि अंग्रेजी लिखी उनकी रचना भारत में ही अंग्रेजों की कृतियों के मुकावले लोकप्रिय हो पाती।

अभी पिछले वर्ष जामियामिल्लिया के संचालक डा० सलामतुल्ला रे संस्थान में परीक्षक होकर आये। हम उनके साथ रात का भोजन ने वैठे। अजमेर के राजकीय ट्रेनिंग कालेज के आचार्य श्री राधाकृष्ण कौल थे। बात पुस्तकों की छिड़ी। हमने यह प्रश्न उठाया कि हिन्दी में प्रश्न- क्यों नहीं दिये जाते जबकि अधिकांश अध्यापक-छात्र (बी० एड० कक्षा अंग्रेजी में प्रश्न का अर्थ ही नहीं समझते। उन सबका तर्क था कि अंग्रेजी स्तकें हैं, हिन्दी में पुस्तकें नहीं हैं। अंग्रेजी में प्रश्न पत्र होने से विद्यार्थी जी पुस्तकें पढ़ने को वाध्य होंगे। डा० सलामतुल्ला ने कहा कि हिन्दी में बनाना कठिन है और यदि बना भी तो उसका अर्थ समझने में विद्यार्थी करेंगे। यदि किसी प्रकार हिन्दी में प्रश्न-पत्र बन भी गया तो उसका रेशन कठिन होगा और प्रश्न-पत्रों के खुल जाने का भय होगा यदि हिन्दी ाता से संशोधन कराया गया। इन सबके मौखिक समाधान दिये गये मैंने डाक्टर साहब को बाद में एक व्यक्तिगत पत्र लिखा जिसमें भी सब ान बताये गये, जैसे अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में प्रश्न रक्खे जांय, तो न होगा। धीरे-धीरे हिन्दी में प्रश्न-पत्र बनाने से ही प्रश्नों की भाषा आदि। पत्र में मैंने उनसे अनुरोध करते हुए लिखा कि हिन्दी में पुस्तकें नी और चीनी नहीं लिखेंगे। हिन्दी की उत्तम पुस्तकें भारतीय अध्यापक लिख सकेंगे। आप क्यों नहीं लिखते, उर्दू में ही लिखें, हिन्दी में उनका ा हो जायगा। मैं जानता हूं डा० साहब अंग्रेजी में लिखते हैं। उनकी दो पुस्तकें देखी हैं और पत्रिकाओं में लेख भी देखे हैं। इसलिए उन्हें पत्र ा था, पर जवाब में उन्होंने हिन्दी या उर्दू लिखने में असमर्थता जाहिर । यही नहीं, बातचीत के दौरान में उन्होंने बताया था कि जामियामिल्लिया निंग विभाग में उन्होंने उर्दू के माध्यम को बदल कर अंग्रेजी कर दिया। के माध्यम से शिक्षा देने का प्रयोग डा० ज़ाकिर हुसेन साहव ने जामिया- ल्लया की स्थापना करके किया था। पता नहीं, उपराष्ट्रपति बन जाने के इस बात पर उन्होंने आपत्ति क्यों नहीं की। उनको जामियामिल्लिया राष्ट्रीय संस्था के मामले में पूरी दिलचस्पी लेते रहना चाहिए थी।

बात यह है कि आज भारतीय विद्वानों को अंग्रेजी में लिखने का शौक इसलिए समाया है कि वे भारतीय भाषा में साहित्य लिखने में अपनी हेठी समझते हैं। कारण पहले बता चुका हूं। दुर्भाग्यवश यह दुखद विश्वास सबके मन में घर कर रहा है कि अंग्रेजी में न बोलने, न पढ़ाने और न लिखने से हम पिछड़ जायेंगे। हमारा सम्मान विद्वानों की दृष्टि में कम हो जायगा। तभी तो जामियामिल्लिया से उर्दू हटा दी गयी। यही बात दूसरी संस्थाओं के विषय में भी है। मैंने श्री पन्नालाल श्रीमाली को (जो भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री कालूलाल श्रीमाली के भाई हैं और उदयपुर के गोबिन्दराम सेक्सरिया ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सिपल हैं) हिन्दी में शिक्षा पर पुस्तकों की रचन के बारे में गत वर्ष लिखा था। वही तर्क थे, जो डा० सलामतुल्ला को लि गये थे। उन्होंने केवल पत्र लिख कर विचारों से सहमति प्रकट की। बाद जब वे परीक्षक बन कर अजमेर आये और साथ में सरदार शहर गांधी विद्या लय के प्रिन्सिपल तथा राजस्थान विश्वविद्यालय की शिक्षा फैक्लटी में डी डा० सिंहल भी आये तो हिन्दी में शैक्षिक पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन की ओ उनका ध्यान मैंने आकर्षित किया। मैंने यह प्रस्ताव किया कि राजस्थान के लेखकों का संगठन बनाया जाय और उसकी ओर से शिक्षा विषयक पुस्तक लिखवाई जांय जो प्रामाणिक तौर पर लिखी जांय और जो उत्तमता अंग्रेजी पुस्तकों से कम न हों। हमें सरकार का मुंह न तक कर स्वयं कु काम कर दिखाना चाहिए। यह विचार सबको पसन्द आया; पर उसके बा पत्र-व्यवहार में उनकी ओर से इस बारे में इशारा तक नहीं किया गया डा० सलामतुल्ला और श्रीमाली जी से कहा गया था कि आप लोगों क प्रशासनिक कार्यों से छुट्टी नहीं मिलती, स्वयं हिन्दी में लिखने का समय न मिलता, तो आप अन्य लेखकों को लिखने के लिए प्रेरित करें। उनकी लिख पुस्तकों का मूल्यांकन करके पाठ्यक्रम में उन्हें स्थान दें, पर इस प्रस्ताव प भी सोचने का इन महारथियों को समय नहीं।

इस वर्ष अक्टूबर में मैं उदयपुर गया और श्रीमाली जी से मिला समय कम था। चलते-चलते मुलाकात हो गयी। वह एक विवाह में शामि होने को थे। उनसे क्षणिक मुलाकात करके मैं अपने एक विद्यार्थी के सा लौटा। रास्ते में वह मुझे डा० लक्ष्मीलाल के० ओड़ के पास ले गया। व संस्कृत के विद्वान हैं और विद्याभवन ट्रेनिंग कालेज में अध्यापक हैं। यह दे कर आश्चर्य हुआ कि वह लगातार अंग्रेजी में ही बोलते रहे। हिन्दी में लिख का विरोध उन्होंने प्रकट किया। उनकी एक-दो पुस्तकें हिन्दी में हैं पर

लिए हीनता की प्रतीक बन गयी हैं; क्योंकि उनके आधार पर उन्हें म्मान नहीं मिला। उनकी प्रतिष्ठा अंग्रेजी में कुछ लेख लिख कर ही इंगलैंड की किसी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। उन्हीं लेखों के आधार वहाँ जाने का अवसर मिला और वह डाक्टर बन गये। वह अब के घोर समर्थक हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वह उदयपुर विश्व-य के शिक्षा-विभाग में पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी बनाये रखने पर जोर । मैंने उनकी बातें बड़े दुःख के साथ सुनीं और संस्कृत के विद्वान होते के अंग्रेजी प्रेम पर क्षोभ भी प्रकट किया। हमारे विद्वानों की इस जन्य प्रकृति से हमारी राष्ट्रीयता कलंकित होती है।

* * *

नयी तालीम

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज-शिक्षकों के लिए
सर्व-सेवा संघ की शैक्षिक मासिकी
प्रधान सम्पादक : श्री धीरेन्द्र मजूमदार

क्षण, विकास और नव समाज-निर्माण की समस्याओं और भावनाओं का विवेचन।

मिक शिक्षण के अतिरिक्त पंचवर्षीय योजना, देश विदेश की मुख घटनाओं और सामाजिक प्रश्नों पर स्वतन्त्र चिन्तन।

ल-शिक्षण, शिक्षा-दर्शन, शिक्षाशास्त्री-परिचय, शान्ति के पथ र, सम्पादक के नाम चिट्ठी, शिक्षा-आयोग; सृष्टि और दृष्टि, समाचार-समीक्षा, शान्ति समाचार, पालकों से, सामयिक चर्चा, ग्राम निर्माण की भूमिका में, आदि स्थायी स्तम्भ।

वार्षिक चन्दा : ६ रुपये; किसी मास से ग्राहक बना जा सकता है

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

शिक्षक-बन्धुओं से

(श्री श्यामसुन्दर "श्याम", साहित्याचार्य, मीरपुरखास, अलीगढ़)

इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा ही राष्ट्र की निर्मात्री एवं धात्री है इसमें भी सन्देह नहीं कि शिक्षक ही राष्ट्र के भावी कर्णधारों का ब्रह्मा है ज्ञान के आलोक से उनकी आत्मा के चैतन्य को प्रबुद्ध करके उन्हें इस बनाता है कि वे राष्ट्र के वैविध्यपूर्ण जीवन की बागडोर संभाल सकें। बहुत ऊँची बातें करते हैं, ऊँचे आदर्शों के स्वप्न देखते हैं; किन्तु उन मूल पर विचार नहीं करते जिनकी उपेक्षा राष्ट्र के उत्थान में, शिक्षा की में अन्तराय बनकर हमारी गति मन्द कर देती है, रोक देती है। मैं क्षेत्रों की बात नहीं कहता जहाँ मनुष्य मानवता का मन्दिर है, शिक्षक अपना स्वरूप समझने का अवसर मिलता है और वह जीवन की सर्वा क्लेशप्रद आर्थिक चिन्ता से मुक्ति पाकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता राष्ट्र के भावी कर्णधारों के सृजन में अपना योग-दान देता है। मैं तो क्षेत्रों की बात कहता हूँ जो नाममात्र के लिए विकसित हैं, जहाँ साक्षरता को ही शिक्षा का वास्तविक रूप समझा जाता है, जहाँ का शि अपने स्वरूप को समझने का या तो प्रयत्न ही नहीं करता या उसे जीवन आलोक से वंचित रहने के लिए विवश किया जाता है, जहाँ उसे सरस्वती शत्रुओं के हाथों बिक कर अपने गौरव और स्वाभिमान का बलि करना पड़ता है।

आइये उन क्षेत्रों में जहाँ के शिक्षक की आत्मा निर्जीव-सी ह सिसक रही है, जहाँ जाकर वीणापाणि भी रोने लगती है, सिर धुनने ल है। यहाँ भी शिक्षक रहते हैं, जिन्हें वस्तुतः शिक्षक कहते हुए सन्देह लगता है। इनमें स्वाभिमान और आत्मगौरव सर्वथा लुप्त हो चुका चैतन्य सुप्त हो चुका है। ये वाणी रहते हुए भी मूक हैं, मानों इनकी जि को लकवा मार गया हो। ये अपनी समस्याओं को, मनोव्यथाओं को, व नहीं कर सकते। यदि व्यक्त भी कर सकें तो उन्हें सुनने वालों के कान हैं। इन्होंने आत्मा की आवाज को ठुकरा दिया है। वस्तुतः ये आत्मह जैसे जघन्य पाप के अपराधी हैं। भावी पीढ़ी को देने के लिए इ पास कोई सन्देश नहीं है। ये मशीनवत् कार्य करते हैं। नृशं

ें दबोच रक्खा है । शिक्षक के नाम को कलंकित करने वाले ये जीव, स्थानों का तो पता नहीं, उत्तर प्रदेश के कतिपय भू-भागों को अलंकृत रहे हैं । इनमें प्रगतिशील विचारधारा नहीं, शिक्षकत्व की गन्ध नहीं । शारीरिक, मानसिक और वाचिक स्वतन्त्रता छीन ली गई है ।

जहाँ ये जीव रहते हैं वे उत्तरप्रदेश की कतिपय व्यक्तिगत शिक्षा- एँ हैं जो इस युग में भी भ्रष्टाचार-निरोध-समितियों की आँखों में धूल रही हैं । अन्य व्यवसायों से निराश होकर कुछ महाशयों ने शिक्षा- एँ खोल कर उनमें दूकानदारी करना अपना व्यवसाय बना लिया है । सौभाग्य से इन्हें शिक्षक भी वे ही मिल जाते हैं—''येषां क्वापि स्ति ।'' कोई प्रगतिशील विचारधारा वाला शिक्षक यहाँ पहुँच पने दुर्भाग्य को कोसता हुआ या तो अपनी मुक्ति का उपाय सोचता है ती में घुल-घुल कर अपने चेतन की हिलोरें कुचलकर जीवन को नारकीय ता है ।

शिक्षक की इस दु:स्थिति के विधाता इन शिक्षा-केन्द्रों के मैनेजर ये वे विषैले जीव हैं जिनके स्मरण-मात्र से ही शिक्षक को बुखार-सा गता है । इन्होंने जोंक के समान शिक्षक शोषण किया है । शोषण के विभिन्न ढंग हैं । ये शिक्षकों के साक्षात्कार में ही उनसे सौदा कर लिया । पूरा वेतन देना ये अपना अपमान समझते हैं, महँगाई-भत्ता और वृद्धि की तो चर्चा ही क्या । एक ओर शिक्षक संघ शासन-तंत्र से द्धि के लिए संघर्ष कर रहा है, दूसरी ओर इन व्यक्तिगत शिक्षा- ों की यह दशा है । ऐसी संस्थाओं के शिक्षक पर उस वृद्धि का क्या पड़ेगा जहाँ उसे पूरा वेतन भी उपलब्ध नहीं !

मैंने विषय को बहुत स्पष्ट कर दिया है, फिर भी वह संकेत मात्र । यह एक समस्या है जिसका समाधान बड़ी ही सावधानी से हो सकता रकार इसका समाधान इसलिए नहीं कर सकती कि उसके लिए इसका माण नहीं मिल पाता । जब रजिस्टर में पूरे वेतन पर ही शिक्षक के र हो जाते हैं तो फिर शिकायत का अवसर ही कहाँ ? वास्तविकता न पूछे ? जहाँ कागजी कार्यवाही ही मुख्य है वहाँ अतिरिक्त चर्चाएँ रोदन मात्र हैं । यह केवल मैनेजर और शिक्षक के बीच का निजी है । कार्य सर्वथा अनुचित होते हुए भी शिक्षकों को विवश होकर पड़ता है । ऐसी संस्थाओं में शिक्षक पर सभी सम्भव अत्याचार कर जाते हैं ।

शिक्षक की इस स्थिति से छात्रवर्ग भी अपरिचित नहीं रहने पाता उसके हृदय से शनैः-शनैः अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-भाव समाप्त होने लगता जिसके परिणामस्वरूप छात्रों में उच्छृंखलता और अनुशासन-हीनता को प्रोत्साह मिलता है। इस स्थिति का उत्तरदायी मैं केवल शिक्षक को ही मानता हूँ, मैंनेजरों के हाथों बिक कर मूक-भाव धारण कर लेता है और अपने को सर्वथ हीन समझता हुआ उनकी कृपादृष्टि का अभिलाषी बना रहता है। चूंकि उन्हीं कलंकित शिक्षकों का एक सामान्य घटक हूँ, इसलिए अपने बन्धुओं ही कहने का अधिकार रखता हूँ।

क्या आत्मा को बेचना पाप नहीं है? क्या अपनी इस दयनी शोचनीय गर्हणीय स्थिति के उत्तरदायी हम स्वयं नहीं हैं? क्या हम आत विश्वास के बल पर अपनी स्थिति को बदल नहीं सकते? क्या हम इस चेतन हीन जीवन में रहते हुए अपने बच्चों का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं? क्या स्थिति को भी बदलने के लिए क्रान्ति करनी पड़ेगी?

ये सरस्वती के पावन मन्दिर हैं। इनकी पावनता की सुरक्षा स्वयं करनी होगी—सम्भव है, इसके लिए कुछ बलिदान भी करना पड़े किन्तु यह निश्चित है कि जब तक इन शिक्षा-मन्दिरों की इस गन्दगी परिष्करण नहीं होगा तब तक शिक्षकों में सच्ची चेतना नहीं आ सकें उनमें आत्मगौरव का भाव उदित न होगा, वे दिन-रात आर्थिक चिन्तन पड़कर अपने कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर सकेंगे, राष्ट्र की सच्ची सेवा न कर सकेंगे। इसलिए बन्धुगण! अपने को पहचानों। यही युग का, रा का, सन्देश है।

स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन

यदि भाषा एकना हइले भारतवर्षे एकता ना होय, तबे, ताहार उपाय की? समस्त भारतवर्षे एक भाषा व्यवहार कराई उपाय। एखन जतो गुलि भाषा भारते प्रचलित आछे, ताहार मध्ये हिन्दीभाषाई सर्वत्र प्रचलित? एई हिन्दी भाषा के यदि भारतवर्षे एकमात्र भाषा करा जाय, तबे अनायासे शीघ्र सम्पन्न हइते पारे; किन्तु राजार सहाय्य न जाइले कखनोई सम्पन्न हइबे ना। एखन इंगरेज जाति आमोदेर राजा। ताहार जे ए प्रस्तावे सम्मत हइबेन, ताहा विश्वास करा जाय ना। (सुलभ समाचार, १८७५ ई०)

तर्राष्ट्रीय शिक्षण-सेवा में शीर्षस्थ राष्ट्रों की करणीय स्पर्द्धा

हवाई द्वीप में प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक संगम

विशाल प्रशांत महासागर में नयी और पुरानी दुनिया के मध्य हवाई समूह धीरे-धीरे प्राच्य-पाश्चात्य संस्कृतियों का संगम बनता जा रहा है। ीप समूह को संयुक्त राज्य के एक राज्य की मान्यता प्राप्त है। अतएव वही विचार स्वातन्त्र्य है, विचारों का वही स्वच्छंद विनिमय वहाँ है जो आंग्ल-अमरीकी जाति की विश्व को अमूल्य देन है।

विचार विनिमय को निश्चित दिशा देने और ज्ञान के साथ भाई-चारे कास के लिए हवाई की राजधानी होनोलुलू में प्राच्य-पाश्चात्य केंद्र की एक शिक्षण संस्था सन् १९६१ से चालू है। इस केंद्र के विधाता हैं राज्य के वर्तमान राष्ट्रपति लिंडन बी० जानसन। संस्था का त्रिसूत्री म अमरीकी पत्रिका **स्पैन** में इस प्रकार दिया हुआ है :

१. सर्वोच्च चिन्तन संस्था : इस केंद्र में विभिन्न विषयों के प्रमुख विशेषज्ञ सरे से मिलते हैं। ये पढ़ाने का काम नहीं करते। चिंतन, लेखन या ही में संलग्न रहते हैं। ये ज्ञान के उन्हीं क्षेत्रों की सेवा करते हैं जिनके न से अन्तर्राष्ट्रीय विकास सांस्कृतिक और वैज्ञानिक तथा प्राविधिक में संभव हो। इस वर्ष ३३ शीर्षस्थ विद्वान वहाँ रहते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ादों और सम्मेलनों में भाग लेते रहते हैं। इनके नीचे १८ विशेषज्ञों त्रवृत्तियाँ मिल रही हैं। केन्द्र से मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं और द भी। शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य और नागरीय बाढ़ के प्रभाव विषयों पर तीस भाषाओं में शोध-संग्रह निर्मित हो रहे हैं।

२. विद्यार्थी विनिमय संस्था : यह केंद्र विश्वविद्यालय के स्नातकों के है। साधारणतया इक्कीस महीने के अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियाँ दी ी हैं। केंद्र में रहते हुए विद्यार्थियों को हवाई विश्वविद्यालय में अध्ययन ुविधा दी जाती है। उक्त विश्वविद्यालय ऐसे क्षेत्रों में विद्यार्थियों को न ज्ञान प्रदान कर सकता है जैसे सागरीय जीव विज्ञान, भू-भौतिकी, क्षेत्रीय सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षा और सुदूरपूर्वीय अध्ययन। विद्यार्थियों ीन महीने के क्षेत्रीय अध्ययन की सुविधा भी मिलती है। दर्शन का

अमरीकी विद्यार्थी किसी बौद्ध मठ में रहता है। एशियाई विद्यार्थी कैलिफोर्निया की लवणीय अनुसंधान शाला में पहुँच कर ऐसी धरती का उद्धा करना सीखता है जो अत्यधिक लवण से त्रस्त हो। अमरीकी नृत्य क विद्यार्थिनी जापानी नृत्य सीखने तोकियो पहुँचती है। एशियाई विद्यार्थिय को संयुक्त राज्य की विधान सभाओं के दर्शन तो मिलते ही हैं।

३. प्राविधिक विनिमय संस्था : इस संस्था द्वारा एशियाई औ प्रशांत सागरीय देशों की प्रमुख व्यावहारिक आवश्यकताएं पूरी होती हैं इस संस्था में प्रशांत सागरीय चिकित्सक पहुँचकर उष्ण देशों में चिकित्स संबंधी अपने अनुभव सुनाते हैं और छः महीने तक चिकित्सा की नवीनत प्रविधियाँ सीखकर बेहतर सेवा के लिए स्वदेश पहुँचते हैं। इस संस्था पुलिस अधिकारी, स्वास्थ्य सेवी, प्रशासक और कृषि तथा व्यवसाय विशेषज्ञ भी पहुँचते हैं। उष्ण देशीय पशुपालन से लेकर पाश्चात्य और प्राच रंगशालाओं की सज्जा-विधि भी इस संस्था द्वारा सिखाई जाती है। होनोलु के अस्पताल, बैंक और निजी संस्थाएं—सभी सहर्ष शिक्षार्थियों से सहयो करती हैं। उन्हें छात्र-वृत्तियों के अतिरिक्त सांस्कृतिक विनिमय की सुविध भी दी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति से दूसरे को कुछ-न-कुछ सांस्कृतिक नि मिलती ही है। अमरीकी बुद्ध और कुनबूजे से कुछ सीखते हैं, तो एशिया और प्रशांत सागरीय विद्यार्थी राष्ट्रपति जेफरसन, कवि ह्विटमैन और पादर साक जैसे अमरीकी दार्शनिकों से भी नया ज्ञान प्राप्त करते हैं।

एशियाई विद्यार्थी भी एक-दूसरे से मिलकर समझते हैं और सीख हैं। अतएव इस केंद्र में यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि इतिहास क भूमिका में मानवमात्र के एक-दूसरे को समझने की प्रवृत्ति ही अन्तर्राष्ट्री शांति के विकास में सहायक होगी।

इस केंद्र से स्नेहलता दास नाम की एक भारतीय विद्यार्थिनी अमरीक अभिनय कला सीखकर निकली है। केंद्र में सीखने के पश्चात् इस लड़की न्यूयार्क के रंगशालाओं में पहुंचकर अभिनय कला का व्यावहारिक ज्ञान भ प्राप्त किया है।

कुमारी दास इस प्राच्य-पाश्चात्य केंद्र की स्नातिका होकर अपने क गौरवान्वित मानती है। केंद्र के कुछ विद्यार्थी शिक्षण सेवा के लिए एशिया देशों का अध्ययन कर रहे हैं; कई विद्यार्थियों की ऐसे ही अध्ययन द्वार अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की सेवा की भी तमन्ना है।

★ ★ ★

रूस का एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय

प्रभावयुक्त प्रचार कला सीखनी हो तो रूस और चीन जैसे साम्यवादी ों से सीखिये । रूस से **सोवियत् यूनियन** नामक एक मासिक पत्रिका के अतिरिक्त सोलह भाषाओं में प्रकाशित होती है । हमारे सामने पत्रिका ंग्रेजी संस्करण है ।

रूस की वास्तविक स्वतन्त्रता सन् १९१७ से है जब वहाँ साम्यवादी हुई। हम सन् १९४७ से स्वतन्त्र हैं । अपने देश में साम्यवादी शासन त करने के साथ रूसियों ने साम्यवाद का प्रचार प्रारम्भ किया । प्रचार भाव शक्ति-संचय के आधार पर ही होता है, तो वे शक्ति-संचय भी लगे । यह शक्ति-संचय इन्होंने अपने ही बूते पर किया, क्योंकि संसार ये बहिष्कृत रहे । दूसरे महासमर में इनकी अग्नि-परीक्षा हुई । इसमें त्तीर्ण ही नहीं हुए, पुरानी दुनिया में इनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रह परन्तु आणविक शक्ति में संयुक्तराज्य से पिछड़े हुए थे । तो अपनी के परिणामस्वरूप विलासी नहीं हुए, तपस्या करते रहे । अब आणविक में, वैज्ञानिक अन्वेषण में, अमरीकियों के आगे नहीं, तो बराबर हैं ही ।

इस शक्ति-संचय के समकक्ष इनका प्रचार भी चलता रहा और इनकी बड़ी विजय तब हुई जब चीन जैसे विशाल देश पर साम्यवाद छा गया। इन्हें इतने से ही संतोष नहीं । जिस अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति के परिणाम- भारत स्वतन्त्र हुआ, उसके सक्रिय रहने पर अफ्रीका का अधिकांश हो गया है । मेक्सिको से चिली और अर्जेंटाइना तक फैले लैटिन ी राज्य बहुत पिछड़े हुए हैं । इनमें निम्न संख्यक गोरों या संकरगोरों दिवासियों पर प्रभुत्व है । सो अब साम्यवादी प्रचार अफ्रीका, एशिया टिन अमरीका के पिछड़े, भूखे और अशिक्षित जनों में चालू है । इस का शैक्षिक पक्ष भी है । यहाँ इसी पक्ष का संक्षिप्त विवरण है ।

जुलाई १९६० से अफ्रीका का कांगो नाम का केन्द्रीय प्रदेश स्वतन्त्र है, गृह-कलह से अभी तक क्लांत है । इसके प्रथम नेता थे पेट्रिस लूलुँबा ी सहानुभूति साम्यवाद के साथ थी । उनकी हत्या होने पर उनके म से रूस की राजधानी मास्को में पेट्रिस लूलुँबा विश्वविद्यालय की ना सन् १९६० ही में हो गई । विश्वविद्यालय की पढ़ाई में चार-पाँच ी लगते ही हैं । सो उक्त विश्वविद्यालय से प्रथम स्नातक इस वर्ष ने हैं ।

विश्वविद्यालय का दूसरा नाम है मैत्री विश्वविद्यालय (फ्रैंडशि यूनीवर्सिटी) । इस विशाल शिक्षण संस्था में डिग्री प्राप्त करने के लिए ८ विदेशों से ३००० के ऊपर विद्यार्थी हैं, १०० से अधिक वे विद्यार्थी हैं ज अपने देश की सर्वोच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर वहाँ विशेष अध्ययन लिए पहुंचे हुए हैं । ५०० विद्यार्थी तो सोवियत् राज्य ही के हैं । विद्यार्थिय को रूस यात्रा का व्यय मिलता है, उन्हें अनुदान मिलते हैं; निःशुल्क शिक्षा चिकित्सा और छात्रावास उन्हें उपलब्ध है । छुट्टियों में उनके स्वस्थ मनो रंजन और पर्यटन का व्यय-भार भी रूसी शासन के जिम्मे है ।

इस वर्ष उक्त विश्वविद्यालय से २२८ स्नातक निकले हैं जिनमें १८ अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीका के ४६ देशों से आये थे ।

विश्वविद्यालय में सात विभाग हैं : १. इंजीनियरिंग, २. गणित औ विज्ञान, ३. चिकित्सा, ४. कृषि, ५. अर्थशास्त्र और विधि, ६. कला ७. प्रवेशिका । प्रवेशिका में विद्यार्थियों को रूसी भाषा और माध्यमिक स्त की विषय-शिक्षा दी जाती है ।

विश्वविद्यालय में ११२ प्रयोगशालाएँ और ५५ प्रवचन-कक्ष हैं पुस्तकालय में ग्रंथों की संख्या ३,००,००० के ऊपर है । प्राध्यापकों की संख्य ३५० से ऊपर है और इनमें हैं रूस के सर्वोच्च विद्वान । विद्यार्थियों क अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के विद्वानों से प्रवचन भी सुनने को मिलते हैं । भारत उल्लेखनीय नाम हैं प्रोफेसर महालनवीस और किलपदि ।

विश्वविद्यालय का प्रयत्न रहता है कि विद्यार्थी उन्हीं विषयों विशेषज्ञ बनें जिनकी उन्हें अपने देश के विकास में जरूरत पड़ेगी । उदाहरण तया नाइजेरिया के एक विद्यार्थी ने अपने देश की योरबा भाषा पर वैज्ञानि अध्ययन किया है । अलजीरिया के एक विद्यार्थी ने जस्ते और सीसे भूगर्भीय निधि पर सर्वेक्षण किया है । हिन्देशिया के एक विद्यार्थी ने कृषि औ मकई पर गहरी खोज की है । इंजीनियरिंग विभाग के भारतीय विद्या बलदेव कृष्णन् ने कई दिनों तक मास्को के क्रास्नी प्रोलेटारी कारखाने में का करके अपने ज्ञान को व्यवहृत होते देखा-समझा है ।

ये विद्यार्थी प्रति वर्ष रूस से निकल कर अपने-अपने देशों के विका में योग देंगे । इनकी सेवा से उस देश के जन लाभान्वित होंगे, तो इन माध्यम से वहाँ साम्यवाद की बेल भी पुष्पित-पल्लवित होगी ।

यदि रूस ने लेनिन को अपना मसीहा माना, तो यहाँ हम गांधी

वही मान दिये हुए हैं। उनके मानसपुत्र विनोबाजी का सर्वोदय प्रचार विचारधारा की सुगंध लिये साम्यवाद का भारतीय संस्करण ही तो है। न्त्र हुए हमें सत्रह वर्ष से अधिक हो चुके हैं। हम पर वे संकट नहीं आये रूसी क्रांतिकारियों को भुगतने पड़े। परन्तु जो हमारी निधि हो सकती जिस निधि का वितरण हम खुले हांथों सारे संसार में कर सकते थे, की हम रक्षा ही नहीं कर पाये हैं, विकास की बात तो बहुत दूर रह ी है।

—कालिदास कपूर

* * *

हमारी प्रमुख पत्रिकाएँ

सरस्वती

जनवरी सन् १९०० से निरंतर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की अग्रणी हित्यिक पत्रिका हिन्दी साहित्य की उन्नति की मानदंड है। आधुनिक काल ष्ठ कवि, लेखक, समालोचक, कहानीकार और साहित्यिक इस गौरव नी पत्रिका की ही देन हैं। इस समय इसका सम्पादन हिन्दी के यशस्वी त्यसेवी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा हो रहा है। वार्षिक मूल्य ७·५०; एक प्रति का ६५ पैसे।

बालसखा

१९१६ से अनवरत प्रकाशित होते रहनेवाला बच्चों का साहित्यिक यह **बालसखा** मासिक है। इसमें बालोपयोगी कविता, कहानी, यात्रा-, साहसिक कथायें, खेलकूद, पहेलियाँ, चुटकुले, वैज्ञानिक बातें, महापुरुषों वन-चरित्र आदि सचित्र मनोरंजक सामग्री रहती है। इसका सम्पादन लल्लीप्रसाद पांडेय और पं० सोहनलाल द्विवेदी द्वारा होता है। वार्षिक रु० ५·५०; एक प्रति का ५० पैसे।

विज्ञान-जगत्

दिसम्बर १९६१ से निरंतर प्रकाशित होनेवाला, सर्वसाधारण तथा ों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक। बहुरंगा आकर्षक आवरण- सुन्दर सचित्र पाठ्य सामग्री। वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय र। छपाई और सजावट पर भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठता प्रमाणपत्र । इसका सम्पादन श्री आर० डी० विद्यार्थी द्वारा होता है। वार्षिक रु० ९; एक प्रति का ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
तथा ब्रांच और एजेंसियों से प्राप्य।

राज्य संग्रहालय का शैक्षिक योगदान

(श्री शहीर मुस्तफा नकवी, सहायक संग्रहाध्यक्ष, राज्य संग्रहालय लखनऊ)

"शिक्षा" शब्द सामान्यतया 'अध्ययन' शब्द के पर्यायवाची के रूप प्रयोग किया जाता है। पुस्तकों की सहायता से पाठशाला के सीमित क्षे में जो ज्ञान भंडार छात्र की इच्छा अथवा अनिच्छा से उस पर लाद दिय जाता है वही शिक्षा समझा जाता है। किन्तु वास्तव में यह तो केवल शिक्ष के महान प्रकाश पुंज की लघु किरण की एक दीप शिखा मात्र है जिसे शिक्ष शास्त्रियों ने 'अध्ययन' का नाम दिया है। शिक्षा शब्द अत्यन्त व्यापक रू में प्रयुक्त होना चाहिए। यह तो वह 'बहुमुखी प्रक्रिया' है जिसे जान एडम ने शिक्षक और शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध में निहित माना है, जबकि पेस्तालोजी उसे 'प्रगतिशील और सर्वांगपूर्ण विकास' का नाम देता है। भारतीय शिक्षा शास्त्री डा० सुबोध अदावल ने शिक्षा का अर्थ भारतीय पृष्ठभूमि की दृष्टि से बताने की चेष्टा की है। उनके अनुसार 'शिक्षा व द्विमुखी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विचारों तथा व्यवहारों में परिवर्तन तथ परिवर्धन लाता है उसके अपने तथा समाज के उन्नयन के लिए'। किन्तु व्यक्ति और समाज के कल्याण के हेतु विचारों तथा व्यवहारों का यह परिवर्तन और संशोधन केवल पुस्तकीय ज्ञान द्वारा सम्भव नहीं है। इसके लि आवश्यकता है अन्य साधनों की जो पाठशाला की चारदीवारी के बाह व्यापक रूप में व्यक्ति को इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायता दे सकें। इन्ह साधनों में संग्रहालय भी एक है।

थोड़े समय पूर्व तक संग्रहालयों की स्थिति किसी गोदाम के सम थी जहाँ भांति भांति के उपकरणों को एकत्रित कर दिया जाता था। जनत के समक्ष इनका उद्देश्य केवल कौतूहल और जिज्ञासा की शांति के अतिरि और कुछ न था। किन्तु काल परिवर्तन के साथ ही विचारों में भी परिवर्त आया। लोगों ने इस आवश्यकता का अनुभव किया कि संग्रहालयों के संग्र कोषों द्वारा ज्ञान वृद्धि भी की जा सकती है। इन प्रगतिवादी विचारों द्वा संग्रहालय को श्रव्य एवं दृश्य साधन के रूप में शिक्षा का एक साधक अं मान लिया गया। किसी व्यक्ति को निरीक्षण द्वारा व्यक्तिगत अनुभव प्रा

जो ज्ञान प्राप्त होता है उसका महत्व उस ज्ञान से कहीं अधिक होता उसे पुस्तकों द्वारा सैद्धांतिक रूप से प्राप्त होता है। यदि किसी बालक ह पढ़ा दिया जाय कि गैंडा अमुक प्रकार का होता है और उसकी खाल मजबूत होती है अथवा अशोक के स्तम्भों पर चमकदार पालिश हुआ थी; तो शायद वह उसे इतनी अच्छी प्रकार से नहीं समझ सकेगा ा कि गैंडे की मोटी खाल को अथवा अशोक स्तम्भ को स्वयं अपनी ं से देखकर जान पावेगा। संग्रहालयों में विभिन्न विषयों से संबंधित रणों को देख देख कर उन विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर ा है। यूरोप और अमेरिका के संग्रहालयों ने इसी लक्ष्य को दृष्टिगत अपनी सज्जा को शैक्षिक स्वरूप दे डाला है। संग्रहालय भ्रमण, व्याख्यान वीथिका वार्ता के रूप में संग्रहालयों ने शिक्षा कार्य में सराहनीय योगदान है। भारत भी जागृति की इस लहर से प्रभावित होने से कैसे वंचित ाता। हमारे देश के संग्रहालयों ने भी शिक्षा कार्य में सहायता की है। कार्य में योगदान करने वाले संग्रहालयों में राज्य संग्रहालय, लखनऊ पना एक स्थान रखता है।

उत्तर प्रदेश के केन्द्र में स्थित होने तथा नगर की ऐतिहासिक महत्ता रण न केवल उत्तर प्रदेश वरन् सम्पूर्ण भारत तथा विदेशों से भी लोग संग्रहालय का निरीक्षण करते हैं और संग्रहालय द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं से लाभ उठाते हैं।

प्रत्येक वीथिका की सुसज्जा इस ढंग से की गई है कि उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त हो। विषयों को ध्यान में रखकर ही वीथिकाओं का रण भी किया गया है। उपकरणों की स्थिति इस प्रकार से है कि के क्रम की उत्तरोत्तर बदलती हुई दशा का भलीभांति ज्ञान हो

प्राणिशास्त्र तथा अन्य विषयों के गूढ़ रहस्यों को अत्यन्त सरल और जित भाषा में बड़े बड़े पटों और चित्रों की सहायता से अत्यन्त रोचक समझाने का प्रयत्न किया गया है। इन पटों को पढ़कर एक ऐसा जो किसी विषय से अनभिज्ञ है उसका सामान्य ज्ञान प्राप्त कर है।

प्रत्येक उपकरण पर उसके सम्बन्ध में सूचनार्थ अलग अलग पट्टिकायें ी गई हैं जिनमें उस उपकरण से सम्बन्धित ज्ञान को संक्षिप्त रूप में किया गया है। इनसे व्यक्ति वस्तुओं का परिचय स्वयं उन्हें देखकर

बिना किसी गाइड के भली-भांति प्राप्त कर सकता है। जहाँ पारिभाषि शब्दावलि अत्यन्त आवश्यक थी, वहां उसकी उपेक्षा न करके इस बात क विशेष ध्यान रखा गया है कि उन्हें ज्यों का त्यों रख दिया जाय। अन्यथ अन्य शब्दों के प्रयोग से उनके अध्ययन में भ्रम अथवा मतभेद होने क सम्भावना थी।

किन्तु केवल इन पट्टिकाओं से ही शैक्षिक योगदान न करके इस बा का भी प्रबन्ध है कि व्यक्तियों को उपकरणों के विषय में अधिक से अधि ज्ञान प्राप्त हो। इसके लिए प्रदर्शक व्याख्याताओं का आयोजन है निश्चित समय पर वीथिकाओं में जाकर व्याख्यानों द्वारा वस्तुओं के विष में दर्शकों की ज्ञान वृद्धि करते हैं।

इसके अतिरिक्त संग्रहालय की श्रोत्रशाला में विभिन्न विषयों सम्बन्धित व्याख्यानों तथा छाया चित्रों का भी समय समय पर आयोज किया जाता है जिसे सुनकर और देखकर व्यक्ति उन विषयों के सम्बन्ध विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विद्यार्थियों के लिए तो विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती है। संग्रहालय में आये हुए विद्यार्थी प्राणिशास्त्र, कला, इतिहास, पुरातत्व तथा अ सम्बन्धित विषयों का ज्ञान सुचारु ढंग से प्राप्त कर सकते हैं। विभि कक्षाओं और आयुक्रम को विशेष रूप से ध्यान में रखकर व्याख्यानों द्वा प्रदर्शन और वार्तालाप का प्रबन्ध किया जाता है। उच्चस्तरीय विद्यार्थि तथा शोधकर्ताओं को रक्षित संकलन में जाकर सुचारु ढंग से उपकरणों निरीक्षण और अध्ययन की सुविधा प्राप्त है। इसके अतिरिक्त विद्या विभिन्न विषयों का अध्ययन संग्रहालय के पुस्तकालय में जाकर कर सक हैं। परिचय पुस्तिकाओं द्वारा वीथिका में सुसज्जित उपकरणों के विषय आवश्यक सूचना प्रदान की गई है।

इस प्रकार शैक्षिक क्षेत्र में राज्य संग्रहालय द्वारा थोड़ी सहाय करने की चेष्टा की गई है। भविष्य में संग्रहालय की इस प्रकार की ग विधियों को उत्तरोत्तर विकसित करने की योजना है। अतएव अत्य आवश्यक है कि जनता और विद्यार्थीगण भी अपने सहयोग द्वारा संग्रहाल की इन शैक्षिक कार्यविधियों द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रय करें जिससे शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

रतीय शिक्षा की समस्याएँ और उनका निराकरण

ी विमल कुमार, गांधीनगर, मेरठ)

वैसे तो आज समूचे देश की शिक्षा-पद्धति ही इतनी दूषित है कि ार्थियों (छात्र-छात्राओं) को स्वतन्त्र विचारों का अवसर प्राप्त नहीं और अपनी इच्छानुसार अपने भावी जीवन का कार्यक्रम और उद्देश्य ही र्धारित नहीं कर पाते। फिर इस आउट आफ़ डेट शिक्षा में भी उत्तर श और उड़ीसा राज्य पिछड़े हुए माने जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इन ज्यों का पिछड़ापन यह बतलाता है कि प्रयत्न चाहे कितने ही अच्छे क्यों रहे हों, जनता में चाहे कितनी ही अधिक जागृति क्यों न आ गई हो, अन्य राज्यों की अपेक्षा यहाँ साक्षरता बहुत कम है तथा अशिक्षितों एवं -शिक्षितों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। उत्तर प्रदेश के प्रकाशकीय ड़े बतलाते हैं कि प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा देने के लिए अब तक ४० र विद्यालय खुल चुके हैं तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक दस आठ बालकों और चार बालिकाओं की निःशुल्क पढ़ाई का प्रबंध हो गा पर उनके सामने भी एक समस्या है··· ··योग्य और दीक्षा-प्राप्त) अध्यापकों की कमी जिस कारण खुले हुए विद्यालय भी सुचारु रूप से नहीं कर पा रहे हैं।

सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि बेरोज़गारी से भरपूर इस देश ध्यापकों की कमी बतलाना हास्यास्पद है। वास्तव में विद्यालयों का ही इस प्रकार का है कि अच्छे व्यक्ति तो इच्छा होने पर भी इस ाग में आने से संकोच करते हैं और जो आते भी हैं वे नियमों की लता, कठोरता, अस्थिरता और कागजी कार्यवाही की अधिकता के कारण ना काम सुचारु रूप से नहीं कर पाते। इस प्रकार देश में शिक्षा-दीक्षा का क्रम एक दमघोट वातावरण में हो रहा है। शिक्षा की उन्नति के लिये को एक नए वातावरण की आवश्यकता है। इस नए वातावरण को ाने के लिए विद्यालयों का गठन ही बदलना होगा। भारत में विद्यालयों वर्गीकरण दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है :—

१—प्रबन्ध की दृष्टि से।
२—पाठ्यक्रम की दृष्टि से।

प्रबन्ध की दृष्टि से विभक्त विद्यालयों के भी दो उपवर्ग किये जा सकते हैं।

१—वे विद्यालय जिनका प्रबन्ध राज्य-प्रशासन के आधीन है—राजकीय विद्यालय।

२—वे विद्यालय जिनका प्रबन्ध कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के हाथ में रहता है—सहायता प्राप्त प्राइवेट विद्यालय।

इसी प्रकार पाठ्यक्रम के आधार पर विद्यालयों के दो उपवर्ग किये जा सकते हैं।

१—वर्तमान परम्परागत पाठ्यक्रम जो विज्ञान, वाणिज्य, तथा मानवीय विज्ञान (Humanities) से ओत प्रोत हैं (dominated) हैं।

२—नवीन पाठ्यक्रम, जिसमें इन्जीनियरिंग व टैक्नोलोजी आते हैं।

राजकीय विद्यालय :

सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि राजकीय अध्यापक तो निर्धारित अर्हताएं (minimum qualifications) पूरी करने पर लोक सेवा आयोगों द्वारा चुने जाते हैं। इन शिक्षकों को वे समस्त सुविधाएं प्राप्त होती हैं जो राज्य प्रशासन अपने कर्मचारियों को समय-समय पर देता रहता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर इनके स्थानान्तरण भी होते रहते हैं। पर संवैधानिक बाधाओं के कारण अध्यापकीय निर्वाचन-क्षेत्रों (Teachers' Constituencies) के द्वार इनके लिए बन्द हैं और विभागीय बाधाओं के कारण ये शिक्षक पुस्तकें भी नहीं लिख पाते। शिक्षा के क्षेत्र में यह वर्ग विद्वद्वर्ग कहलाता है। अतः इस वर्ग पर ऐसी वैधानिक या वैभागिक कठिनाइयों का परिणाम ही यह हो रहा है कि न तो अच्छी पुस्तकें ही मिल पाती हैं और न शिक्षा-प्रशासन में ही कुछ सुधार हो पाता है।

सहायता प्राप्त प्राइवेट विद्यालय

राजकीय सहायता प्राप्त प्राइवेट विद्यालयों के अध्यापकों की नियुक्ति वार्षिक उन्नति, सेवा-समाप्ति (termniation) और रिटायरमेंट सब कुछ प्रबन्ध मन्डल की खुशी पर निर्भर रहता है। यह प्रबन्ध मण्डल ऐसे अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित या ऐसे व्यक्तियों द्वारा आच्छादित (dominated) होता है जो न तो शिक्षक होते हैं और न उनकी समस्याओं को पूरी तरह समझ ही पाते हैं। इनका वेतन राजकीय शिक्षकों से कम होता है और जो कुछ होता भी है वह समय के चार-पाँच महीनों के बाद कुछ किश्तों में मिलता

। इनमें बहुत से ऐसे भी हैं जिनमें अधिक वेतन पर हस्ताक्षर करने पर ससे कम वेतन मिलता है । राजकीय शिक्षकों को दी गई अन्य सब सुविधाएं ो इन शिक्षकों को प्राप्त नहीं हैं । अतः इन विद्यालयों में या तो केवल वे क्ति ही आते हैं जिनका उस क्षेत्र से कुछ लगाव होता है और शिक्षण-कार्य के लिए गौण कार्य (Side work) होता है या केवल वे व्यक्ति जो निराश र निराश्रित होते हैं । सुयोग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए शिक्षण यह द्वार एक प्रकार से बन्द ही है । धन बचाने के लिए एक शिक्षक से तीन शिक्षकों का काम लिया जाता है । अपनी जीविका बचाने के लिए यापक भी उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखते । इस प्रकार कार्य की धिकता के कारण उनकी कार्य-दक्षता धीरे-धीरे कम होती जाती है और वे ी हो जाते हैं । शिक्षकीय निर्वाचन-क्षेत्र इनके लिए खुले रहते हैं और तर्क लिखना भी इनके लिये निषिद्ध नहीं हैं । अनुपात में ऐसे विद्यालयों के धिक होने के कारण ऐसे शिक्षकों की संख्या अधिक है । अतः जन साधारण विचार कि "जिसको कहीं नौकरी नहीं मिलती, टीचर बन जाता है," "टीचर-चीटर" एक लोकोक्ति बन गया है । अतः शिक्षकों का सम्मान ाज में दिन-प्रति-दिन घटता जा रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में इसका प्रभाव त्र दिखलाई पड़ रहा है ।

यक्रम की दृष्टि से :

इस दृष्टि से भी विद्यालयों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता एक तो वे विद्यालय जिनमें पुराना परम्परागत पाठ्यक्रम चलता है । वे विद्यालय जिनमें औद्योगिक, प्रशासनिक, इन्जीनियरिंग व टैक्निकल ा दी जाती है । पहले में आर्टस, साइन्स, कामर्स आदि फैकल्टियों के य आते हैं । इनके अध्ययन से शिक्षार्थियों के विचार संकीर्ण होते हैं । ों विषयों के शिक्षार्थी अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारित नहीं कर पाते किसी भी प्रकार से कुछ कक्षाएँ व परीक्षाएँ "पास" करके किसी भी र की नौकरी पाना ही उनका उद्देश्य होता है । आज की भारतीय शिक्षा ों विषयों से आच्छादित है । भारत में शिक्षा की जो आलोचना होती है इसी शिक्षा की होती है । शिक्षार्थी एक या दो वर्ष का कोर्स १०-१५ ों में ही तैयार कर लेते हैं । शेष पूरा एक या दो वर्षों का समय उनकी ृंखलता का होता है । यहीं पर शिक्षार्थी (empty mind is the devil's rkshop) की उक्ति चरितार्थ करते हैं । परीक्षा के समय अगर उनकी ारी नहीं हो पाती तो वे पास होने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग

करते हैं; यहाँ तक कि रोकने पर कभी-कभी तो वे कक्ष-निरीक्षकों पर घातक हमले करने में भी नहीं झिझकते । अतः अनुशासनहीनता की बीमारी इतनी बढ़ती जा रही है कि इसके लिए पाठ्यक्रम तथा शिक्षा से अलग प्रशासक-स्तरीय इलाज की जरूरत पड़ गई है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह शिक्षा आज के प्रशासन का ही दर्पण है । पर प्रशासन की कमी कोई नहीं देख पाता । आलोच्य होते हैं शिक्षक एवं शिक्षार्थी, जिनको जनता का समर्थन प्राप्त होता नहीं, पर प्रशासन का कोप-भाजन बनना पड़ता है । और तो और, शिक्षक और शिक्षार्थी भी इस बात को नहीं समझते और एक-दूसरे पर कर्तव्यहीनता या उपदेश बहुलता के आरोप-प्रत्यारोप लगाते हैं ।

टेक्निकल शिआ :

इस शिक्षा में इंजीनियरिंग, औद्योगिक, प्रशासकीय, तथा प्राविधिक प्रशिक्षण दिया जाता है । हमारे देश में यह शिक्षा किशोरावस्था में है । देश में न तो सन्तोषजनक मात्रा में इस प्रकार के स्कूल और कालिज ही हैं और न यूनीवर्सिटी ही । माध्यमिक और प्रारम्भिक स्तर पर तो यह शिक्षा है ही नहीं, केवल मुट्ठी भर पोलिटैक्निक और आई० टी० आई० देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं ।

यहाँ के शिक्षार्थियों का जीवन साधारण शिक्षार्थियों से कुछ भिन्न ही होता है । इनके विचारों में कुछ दृढ़ता और विश्वास की झलक भी मिलती है । इनमें कुछ विचारशीलता तथा गम्भीरता भी पाई जाती है, इनका एक निश्चित, निर्धारित व्यावहारिक उद्देश्य भी होता है तथा सामान्य जीवन में यहाँ के विद्यार्थी सरलता से धंधे में लग जाते हैं ।

शिक्षकों की कमी :

इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं—सैद्धान्तिक तथा प्राविधिक-में शिक्षकों की कमी एक बड़ी समस्या है । प्रशिक्षित स्नातकों से एक ही काम लिया जा सकता है चाहे वह अध्यापन कार्य हो चाहे टेक्निकल, प्रशासनिक या अन्य । विदेशी पर्यवेक्षकों का कथन है कि भारत में सब प्रकार के प्रशिक्षण के लिए पाँच वर्ष तक प्रति वर्ष पाँच लाख शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक है । पर गत वर्षों में इस सम्बन्ध में जो प्रगति हुई है वह प्रयत्न और आवश्यकताओं को देखते हुए बहुत कम है ।

आज भारत की उद्योग-प्रधान नीति के कारण नये-नये उद्योगों को प्रोत्साहन मिल रहा है । अपने देश में ही लोहा, सीमेन्ट, खाद, ट्रैक्टर,

ड़ियाँ, वायुयान, जलयान उन्नति के लिए इंजीनियर व टैक्नीशियन ये जा रहे हैं, ऋण भी लिया जा रहा है; पर सब कुछ बनाने में सम्पूर्ण र भी आज देश गरीब होता जा रहा है क्योंकि हमारे यहाँ प्रशिक्षित कों की कमी खटकने वाली है।

ा व्यवस्था पर केंद्रीय शासन :

शिक्षा की उन्नति के लिए शिक्षा व्यवस्था पर केंद्रीय शासन का त्रण आवश्यक है। जिस प्रकार केन्द्रीय नियन्त्रण में अनेकों उद्योगों को ाहन मिला है, उसी प्रकार शिक्षा व्यवस्था पर केन्द्र के अधिकार प्रदान से देश में शिक्षा का विकास हो सकेगा। यह विकसित शिक्षा हमको शियन और इन्जीनियर भी दे सकेगी तथा प्रशासन को भी दृढ़ता प्रदान सकेगी। देश के भावी इंजीनियरों, प्रशासकों, डाक्टरों, उद्योग-पतियों पीढ़ी ने आज प्राइमरी कक्षाओं में प्रवेश ले लिया है। अतः उनके जीवन ण और देश की ओद्योगिक उन्नति के लिये तुरन्त ही सुधार की आवश्य- है और इसके लिए मन्त्रि-परिषदों के स्तर तक के सारे शिक्षा कारी किसी दल विशेष से सम्बन्धित नहीं होने चाहिए, अन्यथा शिक्षा र न होकर भार ही हो जायगी।

अन्नमलाई विश्वविद्यालय के लिये ब्रिटिश वैज्ञानिक

ब्रिटेन की रायल नैवल साइण्टिफिक सर्विस के वैज्ञानिक धिकारी डाक्टर हर्बर्ट जार्ज स्टबिंग्स, अगस्त २० को विमान द्वारा द्रास के लिए रवाना हो गये। आप समुद्री जीव विज्ञान के क्षेत्र में क सुविख्यात विशेषज्ञाता हैं और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ारा संचालित उच्च अध्ययन केन्द्रों के लिए एक तकनीकी सहायता ोजना के अन्तर्गत आपने भारत-यात्रा की है।

भारत में डाक्टर स्टबिंग्स का कार्यकाल चार माह का होगा जिसके दौरान वे पोर्टो नोवो में अन्नमलाई विश्वविद्यालय के समुद्री जीव विज्ञान स्टेशन में अनुसंधान कार्य को बढ़ावा देंगे।

इसके अलावा वहाँ के कर्मचारिवर्ग और विद्यार्थियों के समक्ष आपकी वार्ताओं-व्याख्यानों का भी आयोजन होगा।

पूर्व शिक्षालय-केन्द्र

(आचार्य श्री प्रकाश, बाल निकुंज, कानपुर)

अपने देश में पूर्व शिक्षालय केन्द्रों की योजना नई सी ही है। पाँ वर्ष की आयु तक बालक का विकास परिवार में ही हो, यह विधान भारती मनीषियों ने बनाया था। मां की गोद, पिता का निर्देशन, परिवार के अन् सदस्यों का लाड़—यह धारणा थी कि परिवार का सामूहिक स्नेहमयी वाता वरण बालक के समुचित विकास के लिए न केवल समर्थ है, पर उपयुक्त भ है। संयुक्त परिवार उस समाज का प्रतिनिधित्व करता था जिसको उसकी क्रीड़ा का प्रांगण बनना था। परिवार के अन्य लघु सदस्य उसे बाल-समाज प्रदान करते थे—समवयस्कों में ही व्यक्ति का विकास होता है—परिवार के अन्य बच्चों के साथ ही लड़-भिड़ कर, खेलकूद कर, हंस-रोकर, वह जीवन के मार्ग में आगे बढ़ता था। परिवार का बाल समाज उसमें सहयोगिता की भावना उत्पन्न करता था। परिवार का बाल समाज उसके संवेगात्मक अभावों को दूर करता था, उसे शारीरिक, सामाजिक, मानसिक विकास का अवसर देता था। परिवार के वयस्क सदस्य उसका मार्ग-निर्देशन करते थे दादी की गोद में बैठकर उसने न जाने कितनी कहानियाँ सुनी थीं। लाल परी से लेकर उड़न-खटोले की कहानियों ने उसमें कल्पना-शक्ति भरी थी लव-कुश, भरत और प्रह्लाद की कहानियों ने उसमें आत्म-विश्वास औ वीरता की भावना का संचार किया था। राम और कृष्ण की लीलाओं उसको आस्तिकता की भेंट दी थी। श्रवणकुमार की कथा ने मातृ-पितृ भक्ति और एकलव्य की कहानी ने गुरु-भक्ति का पाठ पढ़ाया था। नानी और दादी द्वारा पोपले मुंह से सुनाई गई कथायें उसे अनुरंजित करती थीं, एक अमिट छाप लगाती थीं।

बाबा की लाठी पकड़ कर नन्हा बालक बाह्य संसार की सैर करता था। जलेबी की दूकान से लेकर पोस्टकार्ड मिलने वाले डाकखाने तक से वह परिचित था। पार्क हो, अस्पताल हो, रेलवे स्टेशन हो, वह बाबा का साथ देता था—बाबा, नाना, मामा या चाचा का यह दुलार—कभी कभी उसकी भर्त्सना अवश्य की जाती थी कि जब देखो तब बाहर चलने को तत्पर हैं—

र यह सुविधा उसे बाह्य संसार से परिचित कराती थी, सामान्य ज्ञान समें भरती थी।

घर में वह मां की मदद करने को तत्पर रहता था। माँ रसोई में ई, बालक भी रसोई में घुसा। माँ रोटी बेलती थी तो बालक भी लोई नाने का प्रयास करता था। दाल बीनने से लेकर, साग साफ करने तक की ह अपनी सेवायें अर्पित करता था और तब माँ नाराज होकर उसे रसोई बाहर निकाल देती थी—हत्प्रभ बालक निराश न होता था और खिलौनों बर्तनों को लेकर अपनी रसोई पृथक बनाने की चेष्टा करता था। रसोई विभिन्न क्रीड़ाओं को वह अपने मिट्टी के बर्तनों के साथ उसी प्रकार करता जैसे कि उसने अपनी माँ को करते देखा है। जीवन की आवश्यक व्यव-रिक क्रियाओं की शिक्षा उसे घर में ही मिलने लगती थी।

एक कोने में निर्मित घरौंदा उसकी क्रियाओं का केन्द्र था। गुड्डे-ड़ियाँ उसकी परिवार थीं। गुड़ियों के साथियों की दावत करने और उनके ए व्यंजन बनाने से लेकर गुड़िया के ब्याह तक रचने की क्रिया उसके द्वारा लब्ध सामाजिक ज्ञान की परिचायक थीं।

भारतीय परिपाटी की अपनी एक विशेषता थी—मुरदनी को छोड़कर अन्य अवसरों पर माता-पिता उसे सदा अपने साथ रखते थे। अधिकांश र्य-क्रम परिवार के कार्य-क्रम होते थे। केवल व्यावसायिक निमंत्रणों को ड़कर अन्य निमंत्रणों में वह भी सम्मिलित रहता था। बाह्य वयस्क ाज के साथ वह किस प्रकार व्यवहार करे, इसको सीखने का उसे अवसर ता था।

पांच वर्ष की आयु में विद्यारम्भ संस्कार का नियम था। बालक ालय में प्रवेश करता था और उसकी औपचारिक शिक्षा प्रारम्भ होती । भारतीय शिक्षा-विदों ने पूर्व शिक्षालय केन्द्रों की कल्पना भी न की थी। क्त परिवार पूर्व शिक्षालय केन्द्र का कार्य कर सकते थे, ऐसी भावना में थी।

पर अब अपने समाज का ढांचा बदल गया है, संयुक्त परिवार की वना मिट रही है। विभिन्न परिस्थितियों ने परिवार को संकुचित रूप ा है। अब तो पति और पत्नी परिवार का निर्माण करते हैं। बालक उस परिवार में जन्म लेता है, वह परिवार में न तो समवयी समाज ता है और न वयस्कों का समाज ही। समवयी समाज का तो प्रश्न ही ीं उठता। वयस्कों में केवल दो ही व्यक्ति हैं—पिता का व्यवसाय अधिकांश

समय उन्हें बाहर ही रखता है। जब वे घर में ही आते हैं—विभिन्न तनाव लिये हुए आते हैं। कुछ मिनट तक स्नेह प्रदर्शन वे अवश्य करते हैं, पर शारीरिक व मानसिक थकान उन्हें अधिक ध्यान देने से रोक देती है। माँ यदि जीविका उपार्जन करने नहीं भी जाती—समय की माँग है कि वह भी जीविका-उपार्जन करे—तब भी दिन भर में वह परेशान हो जाती है—घर के अन्य कार्य तो करने ही पड़ते हैं उसे। और सबसे बड़ी कठिनाई है जीवन के मूल्यों के परिवर्तन की। पति-पत्नी की इकाई में ही बालक का अस्तित्व छिपा रहता था। अब उसका अस्तित्व पृथक है माता-पिता से। माता-पिता के अपने कार्यक्रम हो जाते हैं–उन कार्यक्रमों में बालक उनका साथ नहीं दे सकता।

आज का परिवार वह वातावरण देने में असमर्थ हैं जिसमें कि बालक का सर्वांगीण विकास हो सके। माता-पिता की अनुभवहीनता, उनके पास समय और शक्ति की कमी, बालक का पृथक अस्तित्व, बाल-मनोविज्ञान की नवीन मान्यतायें, शिक्षा के क्षेत्र में नवीन अनुसन्धान समाज को बाध्य करते हैं कि वह बालक को ऐसे केन्द्र प्रदान करे जो कि ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर सकें जिसमें कि बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास हो सके, जो कि उसकी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और जो उसे आदर्श मानव का रूप बनाने में समर्थ कर सके। हमें ऐसे केन्द्र निर्माण करने हैं जो कि बालक को उसका घर दे सकें, जो कि बालक को बालक का समाज दे सकें और साथ में वयस्कों का निर्देशन भी। हमें ऐसे केन्द्र बनाने हैं जहाँ कि बालक के दृष्टिकोण से उसकी उपयोगिता के लिए आवश्यक उपकरण का संकलन हो, जहाँ कि बालक अपनी रचनात्मक क्रियाओं और क्रीड़ाओं में स्वतन्त्रता का अनुभव करे और जहाँ ऐसा कार्यक्रम अपनाया जाय जो कि उसके सर्वांगीण विकास में सहायक हो। हमें तो ऐसे केन्द्र स्थापित करने हैं जो कि बालक को पहिचानने का प्रयास करें। बालक असीम शक्ति का पुंज है और बालक पूर्ण मानव बनने का लक्ष्य लेकर अवतरित हुआ है, इस साधारण तथ्य को जो समझें और महत्व दें। हमें तो ऐसे केन्द्र चाहिए जिनमें बालक भगवान के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय और इन मन्दिरों में पुजारी वे हों जिनमें बालक के व्यक्तित्व के लिए श्रद्धा हो, बालक की असामान्य शक्ति के प्रति आस्था हो और "बालक कल का निर्माता है" इस भावना के लिए भक्ति हो। यह समय की माँग है कि देश के कोने कोने में पूर्व-शिक्षालय-केन्द्र स्थापित हों जो कि देश के २ से ५ वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए व्यवस्था कर सकें। देश को अच्छे पूर्व शिक्षालय केन्द्रों की आवश्यकता है।

उच्चकोटि के सफल केन्द्रों की निम्न विशेषतायें होंगी—

१) बाहर व अन्दर की क्रीड़ा के लिए पर्याप्त स्थान।
२) आवश्यक और उपयुक्त भवन।
३) सुरक्षाप्रद व स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियाँ।
४) स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान।
५) सर्वांगीण विकास के दृष्टिकोण से कार्यक्रम की रचना।
६) उस कार्यक्रम के लिए आवश्यक साधनों का संकलन।
७) प्रशिक्षित, सहयोग की भावना से प्रेरित, स्नेहमयी स्फूर्तिमयी अध्यापिकायें।
८) अभिभावकों से सुदृढ़ सम्बन्ध।

इन केन्द्रों की सफलता जनता और शासन, अध्यापक और अभि-ावक के सहयोग पर निर्भर है। इन केन्द्रों की सफलता के लिए आवश्यक कि इसके संचालक इनके महत्व को समझें।

स्पष्ट है कि इन केन्द्रों की स्थापना के लिए एक ओर जहाँ हमें भूमि आवश्यकता होगी, भवन-निर्माण व उपकरणों के लिए धन की आवश्य-ा होगी, इनके संचालन के लिए प्रशिक्षित अध्यापक व अध्यापिकायें भी चाहिए होंगी। यह आवश्यक है कि पूर्व शिक्षालय केन्द्रों के खोलने के थ ही हम प्रशिक्षण केन्द्र भी खोलें। भवन, भूमि या उपकरण संस्था के वश्यक अंग तो हैं पर वे जीवन नहीं संचार कर सकते। केन्द्रों को जीवन उनके प्रशिक्षित निर्देशक ही देंगे। हमे प्रसन्नता है कि प्रशिक्षण का आन्दो- जन्म ले चुका है। कई स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्र खुल गये हैं और कार्य रहे हैं। यह आवश्यक है कि इनका कार्य सुसंगठित हो और इन्हें जनता ासन का प्रश्रय मिले।

टना में आयोजित रीजनल चाइल्ड वेलफेयर कान्फ्रेंस में दिया गया भाषण]

शिक्षकीय युग-धर्म

गुरुभाई हरिभाऊ जी उपाध्याय की गणना देश के तपस्वी उद्धारकों में है। पत्रकार की हैसियत से आपने लंबा जन-शिक्षण किया है और कररहे हैं, एक महाविद्यालय के संस्थापक हैं और राजस्थान राज्य के निर्माण के समय से राजस्थानी मंत्रिमंडल की सदस्यता से हाल ही मुक्त हुए हैं। आपकी पुस्तक **युग-धर्म*** मेरे सामने है। किसी समय इसे विदेशी सरकार ने जब्त कर लिया था। देश के स्वतन्त्र होने पर उक्त पुस्तक का परिवर्धित संस्करण सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित होकर हम सबके लिए उपलब्ध है।

यह पुस्तक उस श्रेणी की ही है जिसे इटली के उद्धारक मैज़िनी ने लंबी परतंत्रता से मुक्त इटालवी जनता को स्फूर्त करने के लिए **ड्यूटीज् आफ़ मैंन** के शीर्षक से प्रकाशित किया था। जो शाश्वत महत्व उस पुस्तक का का है, वही इस **युग-धर्म** का भी है।

हरिभाऊ जी राष्ट्रपिता के भक्त ही नहीं, अनुयायी भी रहे; जिस कारण सत्य, सहिष्णुता और अहिंसा के आधार पर जिस जन-सेवा के लिए हरिभाऊ जी देश के नर-नारी नागरिकों को स्फूर्त करने का प्रयत्न करते हैं उसका लंबा और सफल प्रयोग वह स्वयं कर चुके हैं।

शिक्षक भी भारत का एक नागरिक है, शिक्षक वर्ग की सेवा इस पत्रिका का उद्देश्य है और **युग-धर्म** का समीक्षक स्वयं लंबी अवधि तक मुर्दरिसी कर चुका है। अतएव **युग-धर्म** को भली-भांति पचाने का प्रयत्न करके वह अपनी बिरादरी के युग-धर्म का विश्लेषण प्रस्तुत करने का साहस करता है।

शिक्षण वह सेवा है जिनमें नारी का योगदान नर के योगदान से अधिक स्वाभाविक है, संभव है और आवश्यक भी है। वह राष्ट्रीय संस्कृति की प्रथम संरक्षिका है। वही सृष्टि की स्रष्टा है और पोषिका है, जिस कारण स्वभाववश ही वह सहिष्णु है और अहिंसक भी। कहते हैं कि सत्य-वचन उसके स्वभाव के विपरीत है। यह बात तब की है जब नारी पर नर का कड़ा नियंत्रण रहता था। अब नारी का पद नर के समान होता जा रहा

---

*युग-धर्म—१५० पृष्ठ; सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सरकस, नई दिल्ली; एक रुपया पचहत्तर पैसे।

और वह निर्भय हो रही है, तो वह सत्य की भी संरक्षिका है । नर कितना ी सत्यवादी हो, उसे अपने सेक्सी अनुभव और विचार तो छिपाये रखने ही ड़ते हैं । नारी में यह कमजोरी नहीं । नर की अपेक्षा वह सत्य की अधिक क्षा कर सकती है ।

उन्नत विदेशों में अधिकांश शिक्षण नारी के हाथ में है । यहाँ अभी ह बात नहीं है । परन्तु नारी-शिक्षा बढ़ रही है और वह समय दूर नहीं, ब बालिकाओं की ही नहीं, बालकों की शिक्षा भी नारी वर्ग के हाथ येगी । आनी चाहिए ।

इस समय शिक्षक के सामने एक ओर भाषा विवाद का वातावरण ; दूसरी ओर देश की प्रतिरक्षा की, एकता की, मांग है । विवाद के तप्त ने पर प्रतिरक्षा और एकता भी खतरे में आ जाते हैं । अतएव हम शिक्षकों विवाद की शांति में योग देना है, इस प्रकार कि एक भाषा के माध्यम से ता का लक्ष्य आँख से ओझल न होने पावे ।

इस समय नरों की नजर में केंद्रीय नौकरियाँ हैं, जिनकी प्रतियोगी ीक्षाएं अंग्रेजी के माध्यम से अभी तक होती हैं । माध्यम के लिए अंग्रेजी साथ हिंदी का विकल्प व्यावहारिक था । परंतु अहिंदी भाषियों को वह ूर नहीं । कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने हल निकाला है कि ये हों मान्य भाषाओं के माध्यम से ली जाँय और योग्यता को ही वरीयता े, नौकरियों का अनुपात जन संख्या पर आधारित न हो । परीक्षा की ू प्रणाली के अनुसार चौदह माध्यमों में परीक्षा ली जाती असम्भव मानी गी । परिणामस्वरूप अंग्रेजी ही लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं की यम रहेगी—ऐसी संभावना है । केंद्रीय नौकरियों के लिए अधिकांश दौड़ ं ही की रहती है । अधिकांश लड़कियाँ अब भी शिक्षित होकर ब्याही जाती गृह स्वामिनियाँ बनती हैं और मातृत्व धर्म का निर्वाह करती हैं ।

अतएव हिंदी के हिमायती उसके हक की सिद्धि के लिए भारतीय ो की सेवा में पहुँचते हैं ।

अधिकांश लड़कियों को नौकरी करनी नहीं, शिक्षित होकर उन्हें ी बनना है, भारतीय संस्कृति की रक्षा उन्हें करनी है । उनके लिए ाषीय फार्मूला इस प्रकार बनता है कि वे मातृ भाषा के साहित्य का यन करें, हिंदी सीखें और संस्कृत । अंग्रेजी उनके लिए अनिवार्य न रहे ।

संस्कृत के विरुद्ध गैर-हिंदू नागरिकों को आपत्ति हो सकती है । ्तु संस्कृत का अधिकांश साहित्य उस समय का है जब इस्लाम या ईसाई

धर्म का अस्तित्व न था। वह ईसाई तथा मुस्लिम नारियों के लिए उतना ही पठनीय है जितना हिंदू नारियों के लिए।

देश में हिन्दी तथा संस्कृत के अध्ययन की प्रगति पर जो कुछ सर्वेक्षण हुआ है उससे यह पता चला है कि स्वतन्त्र भारत में नारी शिक्षा ने विशेष उन्नति की है और नारी वर्ग ने नर वर्ग की अपेक्षा हिंदी तथा संस्कृत को अधिक अपनाया है।

यह प्रगति भारत की शुभ भावी की सूचक है। आज की शिक्षित लड़कियाँ विवाहित होकर माता होंगी, तो उनके बच्चों को हिन्दी और संस्कृत अपनी माता के दूध के साथ मिलेगी। देश में चौदह नहीं, एक सौ चालीस भाषाएँ तक गिनाई जा सकती हैं। ये भाषाएँ और इनकी भिन्न-भिन्न लिपियाँ उस लंबी अतीत की विरासत हैं जब देश के भीतर यातायात की सुविधाएँ न थीं। अब हैं और बढ़ रही हैं। साथ ही हिन्दी को भारतीय नारी का सहारा है जो माता होगी और शिक्षिक भी, तो धैर्य और लगन की अपेक्षा है। हिन्दी की वास्तविक राष्ट्रीयता निश्चित है, यद्यपि अभी यथेष्ट दूर है।

हरिभाऊ जी ने युग धर्म को सत्य, अहिंसा और सहिष्णुता पर आधारित किया है। आपके दृष्टिकोण को राष्ट्रपिता के प्रति सक्रिय भक्ति का आधार मिला है। परन्तु गौर करके देखें तो यह युग विज्ञान तथा प्रविधि का है। गाँधी जी इस युग की उपज थे, उसके नैतिक प्रवक्ता थे। इस युग में सत्य, अहिंसा तथा सहिष्णुता की त्रिकोण नींव पर ही सच्ची जन सेवा संभव है। सो इस प्रकार :

१. रेडियो से सत्य के साथ असत्य प्रसारित होता रहता है और उस पर कोई नियंत्रण संभव नहीं। अतएव असत्य की पोल खुलती रहती है। अब गुप्त कूटनीति तो प्राय: असंभव ही हो गई है।

२. आणविक विस्फोट होने पर हिंसा की पराकाष्ठा संभव हो गई है, तो अब अहिंसा का विकल्प ही राष्ट्रों के सामने है।

३. सत्य का एक ही पहलू नहीं; उसके कई पहलू हैं और हिंसा का सहारा हमें अब प्राप्य नहीं; तो सहिष्णु होना हमारे लिए अनिवार्य है।

ये तीनों तथ्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रत्यक्ष हो गये हैं, तो आंतरिक क्षेत्र में भी इन्हें व्यवहृत होना है; विशेष रूप से हमारे जैसे विशाल देश में जिसमें जातियों, भाषाओं, मतों और राजनैतिक दलों का मेला लगा रहता है।

शिक्षिका-शिक्षक को ये तीनों तथ्य विद्यालय के भीतर और बाहर पने शिष्यों के चरित्र निर्माण में घटित करने हैं।

इस दृष्टि से शिक्षण-सेवा इतनी भारी हो जाती है कि शिक्षक को पने विद्यालय की सेवा के बाद प्राइवेट ट्यूशन की फुर्सत न मिलनी चाहिए। से जो भी अवकाश मिले उसके सदुपयोग के लिए उसके सामने नीचे लिखे विकल्प हैं :

१. वह अपनी शिक्षण योग्यता बढ़ाये। वह जूनियर हाई स्कूल रीक्षा में उत्तीर्ण होकर शिक्षण सेवा में लगता है, तो धीरे-धीरे किसी विषय डाक्टरेट तक उसकी पहुँच है। डाक्टरेट न करे या डाक्टरेट के पश्चात् ही क्षण सेवा में लगे तो जो ज्ञान उसने अर्जित किया है, उसे वह हिन्दी या त्रीय भाषा के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न करे।

२. वह अपने अवकाश का सदुपयोग किसी ऐसे स्वस्थ व्यसन में रे जिससे उसके शिष्यों को प्रेरणा मिल सके। खेती, बागवानी, पशुपालन, ीत, नृत्य, खेल, जैसे बहुत से व्यसन हैं जिनसे समाज की सेवा होती है, नस वृत्तियाँ संयमित रहती हैं, होनहार स्फूर्त होते रहते हैं। शिक्षक-क्षिका के लिए ऐसे ही व्यसन मान्य हैं। संकेत कर दिया जाय कि सक्रिय जनीति या सांप्रदायिक प्रदर्शनों में भाग लेना शिष्यों के लिए वर्जित है तो के शिक्षकों के लिए अक्षम्य है।

इस युग में जनसाधारण का चरित्र-निर्माण विशेष रूप से तीन वर्गों नर-नारियों में केंद्रित रहता है :

१. स्थानीय, प्रांतीय या भारतीय मंडलों के निर्वाचित सदस्य।
२. धार्मिक संप्रदायों के आचार्य।
३. प्रारंभिक विद्यालयों से सर्वोच्च विद्यालयों तक के शिक्षिका-क्षक।

हमें प्रथम दो वर्गों की बात कहनी नहीं; अपनी ही बात कहनी है। ता-पिता के चरित्र का अनुकरण तो उनके लड़के-लड़कियाँ ही करते । परन्तु हम पर सैकड़ों-हजारों होनहारों की दृष्टि रहती है। यदि हम -भ्रष्ट होते हैं, तो अपनेहोनहारों के मध्य अपना मान खोते हैं, पालकों की ष्टि में गिरते हैं और अपने शिष्यों के चरित्र-निर्माण में विफल होते हैं।

शिक्षण सेवा के साथ हमें गार्हस्थ्य धर्म का निर्वाह करना है जिसके ाए हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है। यह युग विज्ञान

और प्रविधि का है। इसमें संगठन सरल है और आवश्यक भी अतएव प्रत्येक शिक्षक-शिक्षिका का अपने विद्यालय की सही सेवा के लिए संगठित होकर पालकों से संगठित सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। स्थानीय, प्रांतीय और अखिल भारतीय स्तर तक सभी शिक्षक एक सूत्र में नीचे लिखे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए संगठित हों :

१. शिष्यों को सही शिक्षा मिले।

२. शिक्षकों के लिए आचार संहिता बने और उन्हीं का संघ उस संहिता के सहारे उन पर अनुशासन करता रहे।

३. विद्यार्थियों के पालक और देश के शासक शिक्षक की सेवा का मूल्य समझते रहें और शिक्षक के प्रति अपने कर्तव्य से विचलित न होने पावें।

विद्यालय के भीतर और बाहर शिक्षिकाओं और शिक्षकों के लिए एक ही सेवा है—होनहारों को राष्ट्र की सच्ची नागरिकता के लिए तैयार करना। परन्तु सेवा का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है कि शिक्षिकाओं द्वारा भारतीय संस्कृति, एकता, मानवता का विकास हो और शिक्षक विज्ञान तथा प्रविधि के माध्यम से राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि में योग दें। दोनों एक-दूसरे के पूरक हों।

शिक्षकीय युग-धर्म के उपर्युक्त विश्लेषण पर पाठक की प्रतिक्रिया वांछनीय है।

—**कालिदास कपूर**

* * *

सूखी काया

सूखी काया का श्रृंगार, प्रकृति करती है बारम्बार।
पीपल के पेड़ को
फरवरी में देखा तो ठूंठ लगा।
जड़ पता नहीं, पर, तना, तना में डाल,
डाल डाल पर डाल, खड़ा जैसे;
हो नर-कंकाल! ढाँचा ही ढाँचा लगा,
जान कुछ भी नहीं! पर, पता क्या?
तैयारी हो रही थी—
अन्दर ही अन्दर, प्रकृति की गोद में।
सूखी काया को श्रृंगार कर,
सरस करने की!

कूलों में देशी भाषाओं का शिक्षण

श्री वे० रंगराजन, बोर्ड हाई स्कूल, पापनाशम् (तंजवूर)]

स्कृतिक एकता की पृष्ठभूमि

भारत एक विशाल देश है । यहां कई मज़हब के लोग रहते हैं । कई ाएं बोली जाती हैं । लोगों के रहन-सहन वेष-भूषा, खान-पान, रीति-ाज आदि में बहुत बड़ा फरक है । ऐसा होने पर भी बहुत पुराने जमाने ाम जनता में एक मत से माना गया है कि भारत एक देश है ।

पुराने जमाने से आज तक काशी के निवासी रामेश्वरम की तीर्थ ा किया करते हैं और वहां के समुद्र में गोता लगाकर काशी से लाया त्र गंगा-जल भगवान रामलिंगेश्वर जी पर चढ़ाया करते हैं । उसी तरह श्वरम के निवासी काशी की तीर्थ यात्रा बड़ी भक्ति-भावना से किया ते हैं और गंगा में स्नान करके रामेश्वरम का पवित्र पानी विश्वनाथ जी चढ़ाया करते हैं । इसके बीच कितनी ही सदियाँ बीत चुकी हैं, कितने त हो चुके हैं, कितनी ही शासन प्रणालियां रह चुकी हैं, विदेशी आक्रमणों ारण कितने ही परिवर्तन हो चुके हैं, लेकिन इस धार्मिक आस्था में आज कोई भी परिवर्तन नहीं हो पाया । यह आस्था तब तक ज्यों का त्यों रहेगी, जब तक सूर्य के उदय-अस्त का सिलसिला बना रहेगा ।

जो रामेश्वरम से काशी की या काशी से रामेश्वरम की तीर्थ यात्रा हैं, वे वहां तक पहुंच कर सीधे अपने निवास स्थान नहीं लौटते । रास्ते ई तीर्थ स्थानों का भ्रमण करते हैं । वहां के लोगों के रहन-सहन, खान-, वेष-भूषा, रीति-रिवाज आदि से काफी परिचित हो जाते हैं । प्रचलित ाओं के, रोजमर्रे काम में आने वाले काफी शब्द सीख कर अपने निवास न लौटते हैं । अपने पड़ोसियों को अपने अनुभव समझाते हुए यह भी य सुनाते हैं एक फलाने-फलाने पदार्थों के नाम फलानी-फलानी भाषाओं लाने-फलाने हैं । उन लोगों में भारत की किसी भाषा के प्रति द्वेष या लेश-मात्र भी पाया नहीं जाता । उनकी दृष्टि में सभी भाषाएं समान सभी भाषा-भाषी भाई-बन्धु हैं । उनके मन में समानता का साम्राज्य यों से कायम है ।

लेकिन जब वे ही भारतीय भाषाएं शासन के कार्यों में प्रयुक्त होती हैं तब कई प्रकार की विकट समस्याएं उठ खड़ी हो जाती हैं जिनको हल करने में बड़े-बड़े राज-मंत्री भी विफल हो जाते हैं।

आज हम भारत वासियों के सामने राष्ट्रभाषा की समस्या हिमालय सा विकट रूप धारण कर चुकी है। हिन्दी भाषा-भाषियों का कथन है कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है तो अहिन्दी भाषा-भाषियों की राय है कि अंग्रेजी में ही भारत की राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता है। दोनों पक्ष वाले अपने-अपने पक्ष की पुष्टि के लिए कई कारण बताते हैं। जिनमें कुछ न्याय संगत है और कुछ नहीं। दोनों पक्षवालों के वाद सुन कर आम जनता के मन में कई तरह की शंकाएं उठती हैं जिनके परिणाम बहुत बुरे होते हैं। इससे बचने के लिए हमें जनता में पाई जाने वाली धार्मिक भावना शिक्षण-क्षेत्र में प्रवेश कर देनी चाहिए।

क्षेत्रीय भाषा राज्य की राजभाषा हो

हमारा सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि भारत की चौदहों प्रमुख भाषाओं में संस्कृत को छोड़ कर (क्योंकि संस्कृत किसी राज्य की भाषा नहीं है) बाकी तेरहों भाषाओं को उन-उन राज्यों में पूर्ण-रूप से राजभाषा बना दें। जहां-जहां कठिनाइयां पेश आती हैं, वहाँ-वहाँ अंग्रेजी का इस्तेमाल करें, ऐसा करने से सभी पहलुओं पर प्रांतीय भावनाओं की उन्नति होगी; यहां तक कि राज्यों में अदालत की भाषा प्रांतीय भाषा ही होगी।

इससे हर प्रांत के लोगों के मन से यह भय दूर हो जायगा कि हमारे राज्य की जनता पर व अन्य भाषा की हुकूमत चलेगी। उनको यह विश्वास हो जायगा कि हम अपनी मातृभाषा के द्वारा जीविका के सभी काम-काज चला सकते हैं।

इसके बाद राज्यों के बीच लिखा-पढ़ी करने के लिए हिन्दी का उपयोग धीरे-धीरे और सावधानी से करें जिससे किसी भी भाषा-भाषी को केंद्र-सरकार की नौकरी पाने में लवलेश भी बाधा पेश न आवे।

उस समय भी अहिन्दी भाषा-भाषी यह दावा पेश कर सकते हैं कि हिन्दी को इतना ऊंचा स्थान नहीं देना चाहिए। उसको हल करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि भारत के हर बच्चे के मन में भारत की भाषाओं के प्रति प्रीति पैदा कर दी जाय। यह यों हो सकता है।

सभी क्षेत्रीय भाषाओं की सामान्य जानकारी

भारतवर्ष में मां-बाप अपने बच्चों को छः साल की उमर में ही पाठशाला भेज देते हैं। पहली कक्षा में बच्चे अपनी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा के स्वर, व्यंजन तथा बारह-खड़ी सुगमता से सीख लेते हैं। मेरा पक्का ख्याल है कि भारत के सभी बच्चे होशियार वा होनहार हैं। अगर उन्हें पढ़ने के अच्छे मौके दिए जायँ तो वे आसानी से भिन्न-भिन्न लिपियों वाली कई भाषाएं सीख लेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चों को दरिद्रता के पंजे से छुड़ा कर उनके स्वभाव के अनुकूल वातावरण में छोड़ दें तो वे आसानी से कई भाषाएं और कई जरूरी विषय सीख सकते हैं।

पहली कक्षा पास कर के जब बच्चे दूसरी कक्षा में प्रवेश करते हैं तब वे अपनी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा के सभी अक्षर भली भांति जानते हैं। अतः दूसरी कक्षा की पाठ्य पुस्तक के अंतिम पृष्ठ में कम से कम तीन भारतीय भाषाओं के स्वर बच्चों को पढ़ने के लिए मिलना चाहिए। उन अक्षरों के उच्चारण मातृभाषा या प्रांतीय भाषा के कोष्ठ में दिए जायं। यह प्रबंध दूसरी और तीसरी कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में अनिवार्य होना चाहिए। वर्ग में अध्यापक प्रति पक्ष एक या दो बार बच्चों का ध्यान अक्षरों की ओर आकृष्ट करते रहें तो बच्चों में अपने आप उन अक्षरों को लिखने और सही उच्चारण करने की क्षमता आ जायगी। यहां यह याद रखना है कि जो अक्षर मातृभाषा या प्रांतीय भाषा में नहीं है पर अन्य चुनी हुई भारतीय भाषाओं में है उनको पाठ्य पुस्तकों में नहीं छापना चाहिए। इससे यह लाभ होता है कि अध्यापक जो केवल मातृभाषा या प्रांतीय भाषा ही जानते हैं वे कोष्ठ में दिए अक्षरों के उच्चारण कर के खुद नयी भाषाएं सीख सकते हैं और बच्चों को भी सिखा सकते हैं।

चौथी और पांचवीं कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में व्यंजन तथा छठवीं वा सातवीं कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बारह खड़ी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा में सोच्चारण छापना चाहिए। यहां भी उन अक्षरों को नहीं छापना चाहिए जिनके उच्चारण मातृभाषा या प्रांतीय भाषा के अक्षर द्वारा नहीं हो सकते।

आठवीं कक्षा से देशी भाषा पंडितों की जरूरत है। यहां विद्यार्थियों को वे सभी अक्षर सिखा देना चाहिए जो मातृभाषा या प्रांतीय भाषा में नहीं है। नौवीं कक्षा में विद्यार्थियों का ध्यान छोटे-छोटे वाक्यों की रचना की तरफ आकृष्ट कर देना चाहिए। दसवीं और ग्यारहवीं कक्षाओं में विद्यार्थियों

को छोटे-छोटे पाठ सिखाना चाहिए। हर भारतीय भाषा में पाठ्य-पुस्तक की पृष्ठ संख्या बीस से ज्यादा न होनी चाहिए। ऐसा करने से विद्यार्थी अपनी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा में अच्छा ज्ञान तथा कम-से-कम तीन भारतीय भाषाओं में लिखने पढ़ने का सामान्य ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेंगे तब उनके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या पैदा नहीं होगी।

व्यावहारिक सुझाव

तो हम भारत की चौदहों देशी भाषाओं किन-किन को इस काम के लिए अपनाएँ ? यह सवाल जरूर उठ सकता है। हम भारत की देशी भाषाओं को दो मुख्य भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) द्रविड़ भाषाएं और (२) आर्य भाषाएं। मान लीजिए कि तमिल नाड का एक विद्यार्थी है। उसको अपनी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा तमिल के साथ और एक द्रविड़ भाषा तथा भिन्न-भिन्न लिपियों वाली दो आर्य भाषा भाषाएं सीख लेनी चाहिए। उसी तरह उत्तर प्रदेश के एक विद्यार्थी को अपनी मातृभाषा या प्रांतीय भाषा हिन्दी के साथ और एक भिन्न लिपिवाली आर्य भाषा तथा दो द्रविड़ भाषाएं सीख लेनी चाहिए। इस तरह भारत के हर विद्यार्थी को कम-से-कम चार लिपियों वाली भाषाएं सीखनी चाहिए।

जहां दो या अधिक भाषाओं की लिपि एक ही होती है (संस्कृत और हिन्दी की एक ही देवनागरी लिपि है) वहां के विद्यार्थी चार अलग-अलग लिपिवाली भाषाओं के साथ एक ही लिपिवाली भाषाएं भी सीख सकते हैं। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।

बचपन से बालकों को भारतीय भाषाओं को सिखाते समय पाठ्य-पुस्तकों में मातृभाषा या प्रांतीय भाषा, राष्ट्र भाषा तथा देशी भाषाएं सीखने की आवश्यकता पर छोटे-छोटे लेख, कक्षाओं के स्तर के अनुसार मातृभाषा या प्रांतीय भाषा में होना अनिवार्य है। यह चले तो भारत के भावी संतान के मन में भाषाओं के प्रति प्रेम का साम्राज्य कायम हो जायगा।

सवाल उठ सकता है कि इतनी भाषाएं सिखाने के लिए भाषा-पंडित कहां से ढूंढ़ें और पीरियड का इंतजाम कैसे करें।

मातृभाषा या प्रांतीय भाषा-पंडित तो सभी राज्यों में हैं। देशी भाषा सिखाने के लिए भी हर राज्य में देशी भाषी पंडित हैं। उनमें कई दो-तीन भारतीय भाषाएं जानने वाले जरूर हैं। उनकी सहायता से भारतीय भाषाएं सिखाने का काम सफलता पूर्वक निभा सकते हैं। इसके लिए अलग पीरियड

का इंतजाम नहीं चाहिए। देशी भाषाएं सिखाने के लिए आजकल राज्यों में पीरियड का जो इंतजाम है वही काफी है। उन्ही पीरियडों में तीन-भारतीय भाषाएं अवश्य सिखा सकते हैं।

वह कैसे ? दूसरी कक्षा से सातवीं कक्षा तक विद्यार्थी, मातृभाषा सिखाने वाले अध्यापकों की मदद से भारतीय भाषाओं के स्वर, व्यंजन तथा बारह खड़ी के बहुतेरे अक्षर सीख लेते है। सिर्फ आठवीं कक्षा से ही देशी-भाषा पंडितों की आवश्यकता पड़ती है। वे अपने ही पीरियडों में तीन भारतीय भाषाएं सुगमता से सिखा सकते हैं। स्कूली साल के पहले तीन महीनों में एक भारतीथ भाषा, मध्य के तीन महीनों में एक भाषा तथा अंतिम तीन महीनों में एक भाषा, कुल तीन भाषाएं सिखा सकते हैं। लेकिन एक बात यह याद रखनी है। देशी भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकें आसान हों। पाठ छोटे-छोटे हों। हर पाठ्य-पुस्तक की पृष्ठ-संख्या बीस से अधिक न हो।

अहिंसक नव रचना का मासिक

जीवन-साहित्य

हिन्दी के विशिष्ट मासिक पत्रों में से है। इसकी रचनाएँ विचार-प्रेरक होती हैं। इसके लेखों को घर का प्रत्येक सदस्य पढ़ कर लाभ उठा सकता है।

पत्र के वार्षिक विशेषांक के लिए पाठक लालायित रहते हैं। गत अगस्त मास में प्रकाशित १५० पृष्ठों की सामग्री तथा आकर्षक आवरण युक्त नेहरू स्मृति अंक की सभी ने प्रशंसा की है।

संपादक :
हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन
वार्षिक शुल्क—४-०० नेहरू स्मृति अंक—२-२५
व्यवस्थापक :
जीवन - साहित्य
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

नौनिहालों की संगठित सेवा विषयक शिक्षक-संरक्षिका वार्तालाप

माता : भाई जी, हमारी पिछली बातचीत में आपने मेरे बच्चों की नैतिक उन्नति के लिए यह सुझाव दिया था कि वे नियमपूर्वक और सच्चे हृदय से डायरी लिखा करें, मैं उन पर गुस्सा न करूं और व्यावहारिक ढंग पर उन्हें सहकारिता का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ कर दूं।

शिक्षक : बहिन जी, आप मेरी बात याद रख सकीं, यही बहुत है। आप किसी अंश तक प्रयोग भी कर सकीं ?

माता : वह भी किया। मंझला लड़का नियमपूर्वक डायरी लिखा करता है।

शिक्षक : कुछ लाभ भी आपको दिखा ? अन्य बच्चों से आप क्यों असफल रहीं ?

माता : अवश्य, पढ़ने-लिखने में उसका मन अब अधिक लगता है। काम से इंकार नहीं करता, डायरी में लिख देता है। उसके पिता डायरी पढ़कर उसे शाबाशी देते हैं तो उसके चेहरे पर रौनक आ जाती है।

शिक्षक : बहुत खुशी हुई। परन्तु अन्य बच्चों का क्या हाल है ?

माता : छोटा तो इधर बीमार रहा, जिस कारण पढ़ाई में पिछड़ गया है और उसका डायरी लिखना भी छूट गया है। बड़ा विश्वविद्यालय में है। वह प्रायः दो महीने तक बन्द रहकर अब खुला है। बेकारी की हालत में उसका पढ़ना-लिखना तो छूट ही गया है, वह अपने छोटे भाई-बहनों से लड़ता भी रहता है। इसकी ओर से बहुत चिंतित हूं। क्या करूं ?

शिक्षक : देश के सर्वोच्च विद्यालयों में हड़ताल के रोग से मैं भी चिंतित हूं। कारखानों की हड़ताल से कुछ पूँजीपतियों की ही हानि होती है, परन्तु विद्यालयों में देश के भावी नागरिक बनते हैं। इनकी हड़तालें देश की घातक होती हैं और सबसे बड़ी हानि उन होनहारों की होती है जो हड़ताल में सम्मिलित होते हैं।

माता : अपराधी विद्यार्थी को दण्ड क्यों नहीं दिया जाता ?

शिक्षक : कई दोषों के मिलने पर यह रोग होता है। दोष सभी विद्यार्थियों पर मढ़ा जाता है; परन्तु सही यह है कि थोड़े-से, घर के खुश ौर विश्वविद्यालय के लिए बेकार, विद्यार्थी नेतागीरी के चक्कर में किसी बहाने से एक तमाशा खड़ा कर देते हैं।

माता : उन्हें बहाना किस प्रकार मिलता है ?

शिक्षक : यह उन्हें मिलता है दलबन्द नेताओं से।

माता : सबसे भारी मुसीबत तो इनके माता-पिता पर आती है जो पने पेट काटकर बच्चों को पढ़ाते हैं।

शिक्षक : और इस मुसीबत से बचत नहीं जब तक इन बच्चों के ाप जैसे संरक्षक संगठित नहीं होते।

माता : हम संगठित नहीं तो क्या हर्ज; देश का शासन संगठित है ी, वह इस रोग की उचित चिकित्सा क्यों नहीं करता ? हम फीस देते हैं, ैक्स देते हैं। हमारी सुनवाई क्यों नहीं होती ?

शिक्षक : आपको मालूम होना चाहिए कि हमारे देश का शासन णतांत्रिक है। गणतान्त्रिक शासन में व्यक्ति की नहीं, संगठित संस्था की ही नवाई होती है। यह गणतान्त्रिक शासन का स्वभाव है। किसी व्यक्ति पर ांछन लगाना भूल है।

माता : तो फिर क्या किया जाय ?

शिक्षक : आप संगठित हों। विद्यार्थियों के संरक्षक शिक्षा के लिए ीस देते हैं, उनके मतदान से शासन बनता है जो सामाजिक जीवन के सुरक्षित कास के लिए आपके प्रति उत्तरदायी है। विद्यार्थी अपने धर्म से विचलित हों, आप अपने का पालन करें। संगठित रूप में जो भी आपकी उचित ांग होगी उसकी पूर्ति करना शासन का, विश्वविद्यालय के प्रबन्धकों का, र्त्तव्य होगा।

माता : उचित से आपका क्या मतलब ?

शिक्षक : उचित से मतलब यह कि आपकी माँग पूर्ति वहीं तक भव होगीं जहाँ तक अन्य पक्षों के अधिकार की रक्षा होती रहेगी।

माता : आपने सूत्र-रूप में उत्तर दे दिया। सो मेरी समझ में नहीं ाया।

शिक्षक : आपको अपने बच्चों के शिक्षकों के भरण-पोषण का, उनकी सुख-सुविधा का ख्याल रखना होगा। यदि शिक्षकों को समुचित वेतन नहीं मिलता, यदि कमी की पूर्ति के लिये वे परीक्षा-शुल्क या ट्यूशन की फिक्र में रहते हैं, यदि उन्हें अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिये स्वाध्याय या अनुसंधान का समय नहीं मिल पाता, तो आपकी माँगों की पूर्ति नहीं हो सकेगी।

माता : यह तो आप ठीक ही कहते हैं।

शिक्षक : संरक्षकों के संगठित होने पर फीस, टैक्स और छुट्टी की वर्तमान सीमाओं के भीतर भी, विद्यार्थियों की शिक्षा में हमारे शिक्षालय यथेष्ट उन्नति कर सकते हैं।

माता : हमारी संस्था को क्या करना होगा!

शिक्षक : करने को बहुत कुछ है। परन्तु संकेत ही करना है।

माता : संकेत ही सही।

शिक्षक : पहले संगठन की बात आती है। सभी माता-पिता संरक्षक संस्था की सदस्यता के अधिकारी होंगे, परन्तु नेतृत्व उन्हें ही मिलना चहिए जिन्हें कुछ फुरसत हो, जो शिक्षा की समस्याओं को थोड़ा-बहुत समझते हों।

माता : तो आप चाहते हैं कि आप जैसे अवकाश प्राप्त शिक्षक संस्था के नेता बनें।

शिक्षक : मेरे जैसे बेकारों को इंकार न करना चाहिए, परन्तु आप जैसी शिक्षिता माताओं को इस सेवा में विशेष योग देना होगा।

माता : दोनों हों, करें क्या ?

शिक्षक : हमारी सेवा के दो अंग होंगे। एक ओर हम विद्यालयों की गतिविधि पर निगरानी रखें और दूसरी ओर अपने होनहारों को, शिक्षकों के सहयोग से, किसी-न-किसी स्वस्थ धन्धे में, पढ़ने-लिखने में, खेल में, सैर में, लगाये रखें, शैतान को उनके दिमाग में घुसने का मौका न दें।

माता : दोनों सेवाएँ महत्व की हैं। निगरानी किस बात की हो ?

शिक्षक : देश के स्वतन्त्र होने के समय से दलबन्द राजनीति की काली छाया सारे देश पर छा गई है। हमारी संस्था किसी दल से संबंधित न होगी और उसका उद्योग होगा कि विद्यालय के शिक्षक और उनके विद्यार्थी दलबन्दी से मुक्त रहें। शिक्षक और विद्यार्थी नेताओं के भाषण सुनें, उनके विचारों पर मनन करें, परन्तु उनके चुनावों में सक्रिय भाग न लें, उनके प्रदर्शनों में सम्मिलित न हों।

माता : इसमें भारी कठिनाई का सामना करना होगा।

शिक्षक : इस समय तो कठिनाई भारी दिखती ही है। परन्तु यकीन मानिए अधिकांश शिक्षक और विद्यार्थी दलबन्दी से अलग रहना चाहते हैं। हमारी संस्था का सहारा मिलने पर वे धूर्तों को निष्क्रिय करने में सफल होंगे।

माता : होनहारों को शैतान से बचाने की बात तो रह ही गई। यह कैसे हो ?

शिक्षक : रचनात्मक सेवा का निषेधात्मक सेवा की अपेक्षा अधिक महत्व है। हमारे विद्यालयों में पढ़ाई के दिनों से अधिक छुट्टियाँ होती हैं और छुट्टियों का जितना दुरुपयोग यहाँ होता है, उतना संसार के किसी सभ्य देश में नहीं होता। शिक्षकों के वेतन अवश्य बढ़ें, परन्तु साथ ही वे अपने विद्यार्थियों की सेवा को भी अधिक समय दें। अधिकांश माता-पिता यथेष्ट शिक्षित नहीं, संतति के प्रति अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में जागरूक नहीं, तो शिक्षक वर्ग पर संरक्षक-शिक्षण का दायित्व भार भीं आता है।

माता : तो आप बच्चों को ही नहीं, उनके माता-पिता को भी पढ़ाएंगे ?

शिक्षक : अवश्य, पढ़ाते नहीं, पढ़ाना चाहिए।

माता : आप मेरी जिज्ञासा बढ़ाते ही जा रहे हैं।

शिक्षक : आज के वार्तालाप की सीमा आ गई। जिज्ञासा का समाधान फिर कभी।

माता : धन्यवाद, भाई जी।

—**कालिदास कपूर**

◆

विकासशील देशों में पुनराध्ययन क्रियाओं का आयोजन

(श्री जान हावर्ड)

यदि स्कूली बच्चों को छुट्टियों में काम करने के लिए कहा जाये तो उनमें से अधिकतर अवश्य ही मुंह बनायेंगे। किन्तु ज़रा उन परिश्रमी लोगों, उनके अध्यापकों, को देखिये जो ऐसा अवसर आने पर खुशी से उछल पड़ते हैं, विशेषतया यदि इस प्रकार के काम का मतलब नये देशों की यात्रा, नये मित्र बनाने और नयी समस्याओं का सामना करने से हो।

इस सुखद स्थिति में इस समय १५० ब्रिटिश अध्यापक हैं जो अपनी गर्मियों की छुट्टियों का कुछ भाग विकासशील देशों की यात्रा में लगा रहे हैं जहाँ वे स्थानीय अध्यापकों के लिए पुनराध्ययन शिक्षाक्रमों का आयोजन करेंगे।

१९६१ में प्रारम्भ की गयी इस योजना में भाग लेने के लिये ब्रिटेन के सभी भागों में चुने गये इन अध्यापकों की यह संख्या सबसे अधिक है। प्रथम दो वर्षों तक तो ये पुनराध्ययन शिक्षाक्रम केवल नाइजीरिया ही में आयोजित किये गये थे।

अब इन गर्मियों में इस शिक्षाक्रम में नाइजीरिया, तंज़ानिया, केन्या, यूगाण्डा, ज़ैम्बिया, वेस्ट इण्डीज़, वेस्ट कैमरून और स्वाज़ीलैण्ड भाग ले रहे हैं।

उक्त सभी देशों से कुल मिलाकर २,००० अध्यापक इन शिक्षाक्रमों में भाग लेंगे जो ब्रिटेन में विशेषरूप से चुने गए पुरुषों और महिलाओं द्वारा इनके लाभार्थ चालू किए गए हैं।

उनकी पसन्द के विषय

प्रत्येक शिक्षाक्रम अतिथेय देश के शिक्षा प्राधिकारों द्वारा प्रस्तावित विषयों पर आयोजित किये जाते हैं। इस प्रकार स्थानीय अध्यापकों, विशेषतया वे जो प्राथमिक स्कूलों में काम करते हैं, उनको अपनी अध्यापन विधियों में सुधार करने का अवसर मिलेगा।

प्राथमिक स्कूल अध्यापकों के साथ ही स्कूलों के सहायक निरीक्षक भी इन शिक्षाक्रमों में भाग ले रहे हैं। इस प्रकार उन्हें अध्यापन की उन नयी विधियों का ज्ञान प्राप्त होगा जिन्हें अब तक बड़ी सफलता मिली है।

जिन विषयों में ये शिक्षाक्रम आयोजित किये जाते हैं उनमें गणित, विज्ञान और भूगोल शामिल हैं। उत्तरी और पश्चिमी नाइजीरिया ने कला और दस्तकारी तथा ज़ैम्बिया ने सामाजिक अध्ययन में अध्यापन शिक्षाक्रम आयोजित करने का अनुरोध किया है।

छः देशों ने अपने अनुरोधों में अंग्रेज़ी भाषा को भी शामिल किया है। वे अपने स्कूलों में अंग्रेज़ी अध्यापन की कोटि में सुधार करना तथा उसे अधिकाधिक बच्चों की पहुंच के योग्य बनाना चाहते हैं।

छुट्टियों के ये पुनराध्ययन शिक्षाक्रम ३,४ सप्ताहों के होते हैं। प्रथम सप्ताह के दौरान ब्रिटेन के अध्यापक स्कूलों का दौरा करेंगे जहाँ उनके अध्यापक-विद्यार्थी काम करते हैं, और इस प्रकार उनकी पृष्ठभूमि तथा समस्याओं को समझेंगे।

इसके बाद फिर तीन सप्ताहों का वास्तविक कठिन परिश्रम प्रारम्भ होता है। ये शिक्षक और उनके शिक्षार्थी प्रायः किसी अध्यापक प्रशिक्षण कालेज में साथ ही साथ रहते हैं। अध्यापन के बाद फिर इन पर बहस होती होती है। किन्तु इसे सभी पसन्द करते हैं।

इस वर्ष ब्रिटेन में कोई ६२५ अध्यापकों ने उक्त योजना में भाग लेने के लिए आवेदन पत्र दिये थे, जिनमें से ८२ पहले भी इन शिक्षाक्रमों में भाग ले चुके थे।

ब्रिटिश सरकार इन अध्यापकों के परिवहन का खर्च उठाती है और उन्हें थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक भी देती है। फिर अतिथेय देश उनके रहने-खाने का प्रबन्ध करते हैं और अपने देश की सीमा में यात्रा-खर्च वहन करते हैं।

काम करते हुए इन छुट्टियों से दो लाभ होते हैं। समुद्रपारीय अध्यापकों को दी गयी सहायता के अतिरिक्त, ब्रिटेन से इस कार्य केलिए जाने वाले लोग अधिक अनुभवी होकर लौटते हैं।

आत्म निर्देश की शिक्षा

(श्री उमरावसिंह चौधरी एम० ए०, बी० एससी० एम० एड०)

मनुष्य में कुछ जन्मजात अथवा मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) पाई जाती हैं और कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ (General Tendencies)। मेक्डुगल के अनुसार मूल-प्रवृत्तियों की संख्या चौदह निर्धारित की गई हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण आचरण-चक्र इन चौदह मूल-प्रवृत्तियों का किसी-न-किसी रूप में स्पर्श करते हुए चलता रहता है। सामान्य प्रवृत्तियाँ भी मानव जीवन में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। एक प्रकार से वे मानव के सामाजिक होने का ठोस परिणाम है। जेम्स एस रॉस ने तो उन्हें सामूहिक चेतना का अपरिहार्य त्रिकोण कहा है। ये सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं—१. अनुकरण (Imitation) २. निर्देश (Suggestion) और ३. सहानुभूति (Sympathy)। वास्तव में ये तीनों प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। सामान्यत: जन साधारण भी 'अनुकरण' और 'सहानुभूति' नामक प्रवृत्तियों से भली भाँति परिचित हैं और उन्हें व्यवहार में भी लाते हैं। किन्तु, 'निर्देश' अथवा सजेशन नामक प्रवृत्ति से उनका इतना घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहता। वैसे तो 'निर्देश' की क्रिया के सभी शिकार होते हैं; किन्तु जब तक हम निर्देश के विषय में कुछ जान नहीं लेते तब तक हमें न तो उसके अस्तित्व का सम्यक बोध होता है और न उसकी महत्ता ही समझ पाते हैं।

आगडेन 'निर्देश' को 'सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति' (Gregarious Instinct) का ज्ञानात्मक अंग मानते हैं। मेक्डुगल के मतानुसार, बिना तर्क अथवा आपत्ति उठाये दूसरे के विचारों से सहमत हो जाना निर्देशित होना है। इस प्रकार तर्क विहीनता या "Not to reason why" निर्देश की प्रमुख विशेषता ठहरती है। अत:, अपढ़, अल्पज्ञ, अपरिपक्व और अंध भक्त सहज ही निर्देशित किये जा सकते हैं। निर्देश के चार प्रकार हैं :—

१. आत्म निर्देश (Auto suggestion)
२. आप्त निर्देश (Prestige suggestion)
३. समूह निर्देश (Mass suggestion)
४. विपरीत निर्देश (Contra suggestion)

आज की परिस्थिति में जबकि व्यक्ति में निराशा घर कर रही है, आत्म विश्वास घटता जा रहा है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण ऋणात्मक अथवा अभावात्मक होता जा रहा है। उसके लिये जीवन एक भार बन जाता है। वह जीवन को नगण्य और अर्थहीन समझने लगा है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षा द्वारा हम व्यक्ति में आशा, आत्म-विश्वास और जीवन के प्रति उचित एवं संतुलित दृष्टिकोण जागृत करने का प्रयास करें। यह कार्य विद्यालयीन शिक्षा और सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षक छात्र-छात्राओं में 'आत्म-निर्देश' का समुचित विकास कर सम्पन्न कर सकते हैं।

हमारे जीवन में 'आत्म निर्देश' निरन्तर कार्य करता रहता है। हम अनजाने ही स्वनिर्देशित होते रहते हैं। हमें इस बात का भाव नहीं रहता कि हमारे ये निर्देश रचनात्मक हैं या विकासात्मक, भावात्मक हैं अथवा अभावात्मक। किन्तु, यदि हम अपनी आत्मनिर्देश की शक्ति का उचित एवं रचनात्मक उपयोग करना सीख लें तो निश्चित ही असफलता को सफलता में, रुग्णता को स्वस्थता में और पीड़ा को प्रसन्नता में परिणत कर सकेंगे। क्योंकि—

> "You have all heard of auto suggestion ?
> If you haven't you ought to know.
> You can cure any ill.
> By the aid if your will.
> And the slightest complaint has to go."

हमारे जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब हम छोटे से छोटा और अपनी पहुँच के भीतर का कार्य तक नहीं कर पाते हैं। हम सोचने लगते हैं—"यह काम मैं नहीं कर सकता, यह मेरी सामर्थ्य से परे है"। अपनी असफलता का औचित्य प्रतिपादित करने के लिए हम कहने लगते हैं—व्यक्ति परिस्थितियों का दास है, जैसी परिस्थितियाँ आती हैं वैसा व्यक्ति को कार्य करना पड़ता है। यह हमारे अवचेतन मन का बरगलाव मात्र है, वास्तविकता नहीं। यथार्थ यह है कि परिस्थितियों का जन्मदाता मानव स्वयं है। परिस्थिति नहीं, कार्य के प्रति हमारी अनुरक्ति (Attitude) हीं किसी कार्य को सफल अथवा सम्पन्न कराती है।

अपने कार्यों अथवा जीवन संघर्षों में सफल होने के लिये ऋणात्मक चिन्तन (Negative thinking) त्याग देना चाहिये। स्वयं को दीन हीन

और दयनीय समझने की अपेक्षा जीवन के प्रति भावात्मक (Positive) और रचनात्मक नीति अपनानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास जागृत करना चाहिये कि उसमें रचनात्मक गुण विद्यमान है, वह अच्छे कार्य करने के लिए जन्मा है। जीवन से हताश या हारे हुए व्यक्तियों को प्रातःकाल चाय लेते समय, शेविंग करते हुए अथवा घूमने जाते समय, प्रत्येक स्थिति में जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण रखने वाले विचार, कवितायें और उक्तियों पर मनन करते रहना चाहिए। इस दिशा में गीता के सूत्र, अँग्रेज कवि लांगफेलो की प्रसिद्ध कविता 'जीवन का गीत' (Psalm of life) जैसी सामग्री उपयोगी हो सकती है।

प्रजातंत्र राष्ट्र में प्रचार, प्रॉपेगंडा और वाक्स्वातंत्र्य का बोल बाला होने के कारण प्रत्येक नागरिक में आत्मनिर्णय और आत्मनिर्देश की शक्ति का होना परमावश्यक है। इसके अभाव और अनुपस्थिति में भाषण-शूर, नारे-बाज और प्रॉपेगंडिस्ट नागरिकों को हिप्नोटाइज कर अपने प्रवाह में बहा लेने में सफल हो जाते हैं। अतएव विद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों में निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ होकर वैज्ञानिक ढंग से विचार करने की क्षमता का विकास करने की पहल की जानी चाहिये। नागरिकों को स्वतंत्र-निरीक्षण करना, साक्ष की तौलना और किसी के कथन को सतर्कतापूर्वक ग्रहण करना आना चाहिये। इन गुणों का आत्म-शिक्षण और आत्म-निर्देशन से निकट का सम्बन्ध है। अस्तु, अध्यापनकाल में छात्र-छात्राओं में आत्मनिर्देश की शक्ति का समुचित विकास करने हेतु ध्यान रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में "समाज-शिक्षण" में कार्यरत शिक्षकों और अन्य कार्यकर्ताओं को भी ग्रामीण जनता में आत्मनिर्देश की शक्ति का विकास करने की ओर प्रयत्नशील रहना चाहिए।

इतना ही नहीं, घनात्मक निर्देश और भाव मानव को दीर्घायु बनाने में भी सहायक होते हैं। तनावों से बचकर हमें आशावादी बनना चाहिए। यह सोचना निरर्थक और विनाशात्मक है कि हमी दुनिया के सबसे ठीक व्यक्ति हैं। वास्तव में, मुसीबतों और कठिनाइयों का स्वागत करते हुए उन्हें सफलता की सीढ़ियाँ मानकर उन पर निरन्तर चढ़ते रहना चाहिये। विश्व के लगभग सभी दीर्घायु व्यक्ति हँसोड़ रहे हैं। इसलिए खिन्न, उदास और निराश बैठे रहने की अपेक्षा मुस्कुराते हुए कर्मरत रहना श्रेयस्कर है। दूसरी आवश्यकता है सामाजिक बनने की। घर की चहारदीवारी से निकल कर समाज के अन्य सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। क्योंकि, सामाजिकता

हमें सम्वल, साहस और विश्वास प्रदान करती है। हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सोचने लगते हैं कि हम अकेले नहीं हैं। हमारी सहायता करने वाले और भी साथी हैं।

वर्षों की ऋणात्मक विचार-वृत्ति, समस्याओं का ज्ञान होने पर भी उनका हल खोज निकालने में बाधा पहुँचाती है। अतएव, सर्वप्रथम इस ऋणात्मक विचार-वृत्ति को तिलांजलि दी जानी चाहिए। तदुपरान्त, जिस प्रकार की हम जीवन पद्धति अपनाना चाहते हैं उसका समूचा चित्र तैयार कर लेना चाहिये। हम क्या बनाना चाहते हैं? हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है?—यह निर्धारित कर लेना आवश्यक है। इतना कर लेने के पश्चात् तदनुरूप हमें अपने आत्मनिर्देश की भाषा नियोजित कर लेनी चाहिए। यह निर्धारित कर लिया तो फिर हम अपनी जीवन-शक्ति और क्षमताओं को उस दिशा में दृढ़ता और निरन्तरता पूर्वक लगा सकते हैं।

इस प्रकार, अपने नवनिर्धारित कार्यक्रम के अनुरूप, त्रुटियाँ न करते हुए, यदि हम अग्रसर होते गये तो निःसन्देह रूप से, दस बारह वर्ष में, हम जो बनना चाहते हैं वह बन सकेंगे। जैसे-जैसे समय बीतता जावेगा हमारे जीवन की पुस्तक के नित-नवीन पृष्ठ हमारे लिये खुलते जावेंगे।

ज्योति-निर्झर झरो

अवतरो बन अमिय, विप्प के द्वार, सजो जीवन किरण बन्दनवार;
झुकें ज्योतिर्पद तिमिर के ज्वार, चरण चेतक बनें, नव-बल भरो!
ज्योति-निर्झर झरो!
वर्तिका की उम्र आगे बढ़े, सुख-शिखर पर सतत् नवयुग चढ़े;
मिले नव-आलोक नव-पथ गढ़े, प्राण को अध्वर्यु शाश्वत करो!
ज्योति-निर्झर झरो!
फलें नव-अभिव्यंजना-आयाम, मिलें जग को ज्योति बोध ललाम;
लेखनी चलती रहे अविराम, शप्त-उर को वरद बन कर वरो!
ज्योति-निर्झर झरो!

—सुरेश दुबे 'सरस'

पड़ोसी रीजनल कालेज आफ एजुकेशन

(प्राध्यापक रामखेलावन चौधरी, जियालाल इंस्टीच्यूट आफ एजुकेशन, अजमेर)

एक दिन पड़ोसी रीजनल कालेज जाने का अवसर मिला। वहाँ दो तीन प्राध्यापक मेरे परिचित हैं। इसलिए वहाँ के भवनों, साधनों और क्रियाकलापों को देखने की सुविधा मिल गयी।

यह कालेज भारत के चार रीजनल कालेजों में एक है। अत्यन्त रमणीक स्थान पर बनाया गया है। पुष्कर रोड पर, ठीक पुष्कर तीर्थ के प्रवेश द्वार पर, इस कालेज के लिए एक विस्तृत भूभाग का चुनाव किया गया है। पीछे की ओर पर्वत श्रेणियाँ हैं और आगे लहराता हुआ आना सागर। पहाड़ी जमीन को समतल बनाया गया है। अजमेर में पानी की कमी है और कालेज को बहुत पानी चाहिए क्योंकि यह साइन्स कालेज है। अध्यापकों, विद्यार्थियों और कर्मचारियों को स्थायी रूप से वहाँ रहना पड़ता है। प्रयोग शालाओं में पानी खपता है और सबसे अधिक पानी की आवश्यकता है खेती के लिए जिसकी पढ़ाई भी इस कालेज में होती है। इसलिए यहाँ पाताल तोड़ कुएँ बनाये जा रहे हैं। अब तक कई विशालकाय भवन बन चुके हैं। प्रिन्सिपल, रीडरों, प्राध्यापकों, सहायक अध्यापकों और दफ्तर के कर्मचारियों के लिए अलग-अलग श्रेणी के आवास-गृह बनाये गये हैं। मुख्य कालेज का भवन कई विभागों में बंटा है। अनेक यंत्र-शालाएँ हैं जैसे लोहे, काष्ठ, मिट्टी, बिजली आदि की जो आधुनिकतम यंत्रों से सजायी जा रही हैं। अध्यापकों के बैठने के लिए अलग-अलग कमरे हैं। अध्यापकों की सम्मिलित बैठक का कमरा फर्नीचर और प्रकाश की दृष्टि से देखने योग्य है। महिलाओं का छात्रावास अभी आधा बना है। पुरुष छात्रों के लिए दो बड़े छात्रावास बनकर तैयार हो चुके हैं। कालेज के शिक्षण भवन के करीब ही बहुउद्देशीय विद्यालय है, जिसे इस कालेज में प्रशिक्षण पाने वाले अध्यापकों को शिक्षण का अभ्यास कराने के लिए बनाया गया है। इन दोनों भवनों के आगे ही सड़क पर बिजली के सैकड़ों मर्करी लैम्प लगाये गये हैं। मेरे मित्रों ने बताया कि जब यह बल्ब रात में जलते हैं, तो यहाँ की शोभा महाकाव्यों

में वर्णित इंद्रपुरी की शोभा से कम नहीं होती हैं। उनका कहना है कि जो वेतन पा रहे हैं, उसकी प्राप्ति से कहीं अधिक सन्तोष उन्हें यहाँ के सुखद वातावरण से मिलता है। उनसे मालुम हुआ कि कुल दो वर्षों में लगभग एक करोड़ रुपया इस कालेज के निर्माण पर खर्च हो चुका है। निकट भविष्य में करोड़ों रुपया इस पर खर्च किया जायगा। इसी प्रकार वे तीन क्षेत्रीय कालेज भारत में स्थापित किये जा चुके हैं और शायद आगे चल कर अधिक संख्या में स्थापित किये जाँयँ।

हमारे देश में एक खूबी यह है कि हम नयी जीवन पद्धतियों पर सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं कर सकते। अपने देश काल के अनुसार हम आज भी शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था नहीं कर सकते, यद्यपि आजादी पाये हमें १८ वर्ष हो चुके हैं। इधर नये शिक्षा मन्त्री छागला साहब ने एक कमीशन बैठाया है जो भारत के लिए कोई आदर्श शिक्षा प्रणाली निश्चित करेगा। यह कमीशन क्या कर सकेगा, यह तो भविष्य ही जानेगा परन्तु इसके कार्यों पर करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जायगा और बहता चला आ रहा है। तथ्य-संग्रह करने के लिए जिस ढंग से काम हो रहा है, इसका विवरण अलग देना उचित है। हम मौलिक रूप से चिन्तन करने में असमर्थ और भौतिक प्रयोगों में असफल रहे हैं। यही कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र में कई योजनाएँ लागू हुईं, करोड़ों रुपया खर्च करने के बाद उन्हें वापस ले लिया गया और फिर हम असफलता के लिए अपने को दोषी न मान कर इसी अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के गुण गाने लगे। बुनियादी शिक्षा प्रणाली, जो शिक्षा पर सर्वथा मौलिक प्रयोग हो सकता था, हमारे देश में बुरी तरह विफल हुई है और करोड़ों रुपया बेकार गया है।

हमें विदेशी जूठन खाने में बड़ा मजा आता है। अनुकरण करना इसीलिए हमने सीखा है, पर दुःख तो इस बात का है कि हमें अनुकरण करना भी नहीं आता। अनुकरण करने का ढंग हमें जापानियों और चीनियों से सीखना चाहिये। वे लोग पाश्चात्य विचारधारा का अनुकरण करके अग्रणी बन सके हैं। पर हम ? हम तो पिछड़े अफ्रीकी और एशियाई देशों की श्रेणी में हैं। वास्तव में अनुकरण करने के लिए भी प्रतिभा चाहिए। इस देश में जिस बात का अनुकरण किया गया, उसकी उत्तमता जाती रही। उदाहरण के लिए प्रजातन्त्र को ही लीजिए। अंग्रेजी पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी की हम भद्दी नकल कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में अलग विचार किया जाना चाहिए। भद्दी नकल का करना हमारी शिक्षा पद्धति से ही प्रकट है। इसी के अन्तर्गत

रीजनल कालेज का उदाहरण दिया जा सकता है। इस कालेज (अजमेर) का शिलान्यास भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा० कालूलाल श्रीमाली ने किया। इसका संचालन केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत काम करने वाली संस्था नेशनल कौन्सिल आॅफ एजुकेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग द्वारा होता है। अमरीका में इस प्रकार के कालेज बने हैं और उन्हीं के अनुकरण पर इस प्रकार के कालेज भारत में बन रहे हैं।

रीजनल कालेज अध्यापक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में नया प्रयोग है। हमारे देश में अध्यापक-प्रशिक्षण की व्यवस्था अंग्रेजी प्रणाली के आधार पर की गयी थी। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण आवश्यक नहीं बताया गया था। सो, हमारे यहां भी इस श्रेणी के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण आवश्यक नहीं समझा जाता। माध्यमिक और प्राथमिक स्तर पर अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था है। प्रशिक्षण का काल कम-से-कम एक वर्ष (लगभग १० मास) का होता है, दो-एक प्रशिक्षण कोर्स दो वर्षों के भी हैं। इस काल में प्रशिक्षार्थी को शिक्षा के सिद्धान्त संक्षेप में पढ़ा दिये जाते हैं और कुछ दिनों शिक्षण-कला का अभ्यास कराया जाता है। वर्षोपरान्त परीक्षा लेकर प्रशिक्षार्थी को प्रमाणपत्र दिये जाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था को आजकल अपर्याप्त समझा जाता है। इस सम्बन्ध में दो-तीन तर्क दिये जाते हैं :—

(१) एक या दो वर्ष का प्रशिक्षण काल अत्यन्त अल्प है। इतने समय में शिक्षण कला का न तो समुचित अभ्यास कराया जा सकता है और न सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्रदान किया जा सकता है।

(२) एक या दो वर्ष का प्रशिक्षण कोर्स शुद्ध रूप से शिक्षा विषयक होता है अर्थात् प्रशिक्षार्थी को केवल शिक्षा विषय ही पढ़ाया जाता है। मूल पाठ्य विषय, जैसे भाषा, समाजशास्त्र, तथा अन्य विषय जो पाठशालाओं में पढ़ाये जाते हैं, प्रशिक्षण के दौरान में त्यक्त रहते हैं। इस प्रकार शिक्षण-कला और पाठ्य-विषय का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

(३) परम्परागत या पुरानी प्रशिक्षण पद्धतियों में अध्यापन के पेशे का पूरा अनुभव प्रशिक्षार्थी को नहीं कराया जाता। ट्रेनिंग कालेजों के प्रशिक्षार्थी चालीस या साठ पाठ तक अपने आस-पास के विद्यालयों में अपने निरीक्षक प्राध्यापक के संरक्षण में दे आते हैं। विद्यालयों में वे लगभग दो मास तक प्रति दिन केवल एक घंटा ही ठहरते हैं। इससे उन्हें विद्यालय के जीवन का कोई अनुभव नहीं हो पाता। वहाँ के अध्यापकों और विद्यार्थियों

से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता। अध्यापन सम्बन्धी समस्याओं, सहगामी क्रियाकलापों, तथा अन्य बातों की जानकारी उन्हें नहीं हो पाती। इस प्रकार उनका प्रशिक्षण अधूरा होता है। इससे अध्यापन पेशे में प्रवेश करने पर उन्हें नये सिरे से बहुत सी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं।

(४) एक या दो वर्षीय प्रशिक्षण व्यवस्था में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि सभी दिशाओं से परेशान, असफल और परित्यक्त जन केवल अवसरवादिता की दृष्टि से, क्योंकि प्रशिक्षण पाने में केवल एक वर्ष लगता है, इस कोर्स को चुन लेते हैं। उनका मन कहीं और होता है। जैसे-तैसे प्रशिक्षण पा लेने के बाद भी कोई अवसर पाकर अन्य पेशे में प्रवेश करते हैं।

इन कमियों को दूर करने के लिए नये प्रकार के क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान खोले गये हैं। इनमें चार वर्षों तक प्रशिक्षार्थी वहाँ रह कर अध्यापन कला का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करेंगे। साथ में उन्हें मूल पाठन विषय भी पढ़ाये जायेंगे। अजमेर रीजनल कालेज में अभी विज्ञान, वाणिज्य और कृषि विषयों के विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं। कला विषयों के विद्यार्थी अभी नहीं प्रशिक्षण पाते। क्षेत्रीय कालेज में प्रशिक्षण काल की दीर्घता से विशेष लाभ यह होगा कि इसमें वही लोग प्रवेश लेंगे जो अध्यापन में विशेष रुचि रखते हैं। यह एक नयी कल्पना है।

हमारे देश में इस नयी प्रकार की प्रशिक्षण प्रणाली से क्या लाभ होगा, यह देखना है। हमने वहाँ के परिचित प्राध्यापक से बात-चीत की। इन लोगों ने स्पष्ट बताया कि इस प्रकार के कालेज में ऊपर से जितनी चमक-दमक है, उतना लाभ नहीं है। इसके कार्यक्रम में हम लोगों को कोई विश्वास नहीं है। पहले हाई स्कूल पास करने के बाद एक व्यक्ति इंटर तथा बी० ए० करता था और एक साल का प्रशिक्षण लेकर अध्यापक बनता था। अब व्यावसायिक और ज्ञानात्मक (Professional & General) शिक्षा एक साथ चलेगी। इस देश में अध्यापन का पेशा सम्मान नहीं पा सकता। इसमें प्रशासनिक नौकरी के मुकाबले में न तो आय है, न प्रतिष्ठा और न सत्ता। इस नये प्रशिक्षण से क्या परिवर्तन होगा ? मेरे परिचित प्राध्यापकों ने बताया कि यहाँ की वेतन दरें तो आकर्षण की केन्द्र हैं। यहां के छात्राध्यापकों को ७५ रु० प्रति मास छात्रवृत्ति मिलता है, इसलिए विद्यार्थी आ जाते हैं। यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन के अध्यक्ष डा० दौलतसिंह कोठारी यहाँ आ चुके थे। उन्होंने स्पष्ट मत व्यक्त करते हुए कहा था कि जो छात्र प्रशिक्षण काल में ७५ रु० प्रति मास पाते हैं और साथ ही इतने राजसी

ठाठ-बाट से रहते हैं, वे अध्यापन के जीवन में कैसे संतुष्ट रहेंगे। अध्यापक बनने पर उन्हें १५० रु० प्रतिमास की नौकरी मिलेगी। इतनी आय से वे एक साधारण मजदूर की तरह ही रह सकेंगे।

चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कृषि, तकनीकी, तथा अध्यापन के प्रशिक्षण कोर्सों को खर्चीला बनाना, उनमें रहते हुए प्रशिक्षार्थियों को कष्ट सहन की अपेक्षा, राजसी ठाठ की सुविधायें देना, हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का बहुत बड़ा दोष है। ऐसे प्रशिक्षण से जिन दोषों को दूर करने की चेष्टा की गई है, वे तो दूर नहीं हुए, केवल सरकार पर एक भारी खर्च का बोझ आ पड़ा है। जब इन कालेजों को अध्यापन में अभिरुचि रखने वाले छात्र नहीं मिलते, जब उन्हें कठोर और कष्टदायक वातावरण में रख कर सेवा कार्य के लिए तैयार नहीं किया जाता और जब उनमें केवल उदरपोषण की वृत्ति ही पैदा हो जाती है, तो इतना रुपया पानी की तरह बहाने की जरूरत क्या है। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री का ध्यान इन सब बातों की ओर जाना चाहिए।

यही नहीं, ता० १५ फरवरी को केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री छागला का अजमेर में आगमन हुआ। उन्होंने कई शिक्षा संस्थाओं का निरीक्षण किया और वे रीजनल कालेज में भी गये। मुझे भी वहाँ जाने का अवसर मिला। उनके स्वागत सत्कार का विशेष प्रबन्ध किया गया था। समारोह में कालेज के प्रिंसिपल ने श्री छागला की प्रशंसा करते हुए उन्हें एक महान राजनीतिज्ञ और शिक्षा विशारद कहा और प्रत्युत्तर में श्री छागला ने प्रिन्सिपल की प्रशंसा करते हुए उनके प्रशासकीय कार्यों को सर्वश्रेष्ठ ठहराया। छागला साहब ने बड़े-बड़े भवनों को देख कर समझ लिया कि ऐसे रीजनल कालेज के अध्यापक प्रशिक्षण के क्षेत्र में जो कुछ काम करेंगे, सर्वश्रेष्ठ होगा। समारोह प्रत्यक्ष रूप में बहुत सफल रहा। परन्तु संदेह है कि शिक्षा मन्त्री महोदय को कालेज की वास्तविक सेवा के मूल्यांकन का समय भी मिल सका।

इस देश में नितांत आवश्यक है कि मन्त्रीगण आकस्मिक दौरों द्वारा गंभीर निरीक्षण करें। तभी उन्हें तथ्य का पता लगेगा, समारोह के बवंडर में नहीं। वे करदाता के ट्रस्टी हैं। अपने दायित्व का सफल निर्वाह वे इसी प्रकार कर सकते हैं।

श्री गुरवेनमः

(पिछले शिक्षक दिवस पर लखनऊ से प्रसारित)

हिन्दू समाज में गुरुपूर्णिमा का दिन गुरुपर्व माना जाता है। उस दिन वयस्क नर-नारी अपने गुरु की पूजा करते हैं। भारत में अन्य धर्मों के मानने वाले भी हैं। देश के राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् हम सबके पूज्य हैं और विश्ववंद्य शिक्षक रह चुके हैं। अतएव उनका जन्मोत्सव शिक्षक दिवस के रूप में माना जाता है। इस अवसर पर आवश्यक है कि गुरुओं के प्रति आप अपने कर्त्तव्य का मनन करें।

भारतीय परम्परा में शिक्षक को गुरु-पद प्राप्त था। गुरु के अत्यन्त श्रद्धास्पद होने का प्रमाण हमें धर्मग्रंथों में मिलता है—

> **अखंड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरं।**
> **तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥**
> **अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन शलाकया।**
> **नेत्रं उन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥**

गुरु हमें सर्वव्यापी भगवान के दर्शन कराते हैं; अपने ज्ञान की सलाई से हमारे अज्ञान का अंधकार दूर करते हैं। इसीलिए गुरु सदा से वंद्य रहे हैं।

भारत के स्वर्णिम अतीत में जब भारतीय शिक्षक देश के भीतर और बाहर मानवता के प्रचारक थे और भारत जगद्गुरु माना जाता था, तब भी शिक्षक को गुरुपद प्राप्त था और शक्तिशाली राजा भी गुरु के सामने नत-मस्तक होते थे, उनका परामर्श सादर सुनते थे। गुरु श्रद्धा के पात्र थे, तो वे भी अपने शिष्यों को पुत्रवत् मानते थे। इसी श्रद्धा और स्नेह के संगम पर उस दर्शन साहित्य का निर्माण संभव हुआ जिसे आज विश्व साहित्य में बहुत ऊँचा पद प्राप्त है।

गुरु-शिष्य परम्परा मुगल शासनकाल में भी चालू रही। मुगल साम्राज्य निर्माता अकबर अपने गुरु शेख सलीम चिश्ती की ज़ियारत करने पैदल पहुंचता था। उसका परपोता दारा अपने गुरु बाबा लाल का अनन्य भक्त था और दक्षिण में उसका समकालीन शिवाजी उसी प्रकार अपने गुरु समर्थ रामदास की अभ्यर्थना करता था। तुलसीदास की अमर रचना रामचरित मानस से आप सब परिचित ही हैं। उसे इन्होंने गुरुवन्दना में इस प्रकार प्रारम्भ किया है :

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुँज, जासु बचन रवि कर निकर॥
बंदउ गुरपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू॥

तुलसीदास जी के राम भी अपने गुरु विश्वामित्र का असीम आदर करते हैं :

उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि काम।
गुरु ते पहिलेहिं जगतपति, जागे राम सुजान॥
सकल सौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये॥
समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

आपने देखा कि राम और लक्ष्मण राजकुमार होते हुए भी अपने गुरु से पहले ही सोकर उठते हैं, नित्य कर्म से निपटने के पश्चात् गुरु की वंदना करते हैं और उनकी अनुमति से ही बाहर निकलते हैं।

तब गुरु से हमें ज्ञान-दान मिलता था। आज के गुरु ज्ञान के साथ विज्ञान-दान भी करते हैं। तब गुरु और शिष्य एक परिवार के समान रहते थे और विद्यालय गुरुकुल कहलाता था। तब छपाई न थी। इसलिए ग्रंथों की संख्या सीमित थी और वे असीम आदर के पात्र थे। अब अधिकांश विद्यालयों में विद्यार्थी पढ़ने जाते हैं और अपने घर रहते हैं। परन्तु गुरु, विद्यालय और ग्रंथ के आदर में कमी न होनी चाहिए। विद्यालय को मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर की मान्यता दीजिए। गुरु को इस पूजाघर का इष्ट देवता मानिए और अपनी पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन, संग्रह और संरक्षण की आदत डालिए जिनके माध्यम से गुरु आपको ज्ञान या विज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हैं।

यह ठीक है कि विद्यालय में आपकी पढ़ाई के लिए आपके माता-पिता फीस देते हैं और आज के शिक्षक वैतनिक हैं। तो भी आपके माता-पिता चाहते हैं कि आप अपने शिक्षकों पर अपनी श्रद्धा बढ़ायें और उनके अनुशासन का पालन करें; क्योंकि वे जानते हैं कि श्रद्धा और अनुशासन के ही वातावरण में आप अपने शिक्षकों से सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

अपने शिक्षकों से आध्यात्मिक ज्ञान आपको न मिल पाये, तो भी वह शिक्षा मिलती ही है जिसकी सहायता से वयस्क होकर आप रोजी कमाते हैं। अतएव इसी नाते आप अपने शिक्षकों का आदर करना सीखिए।

—कालिदास कपूर

मेरा विद्यार्थी जीवन

(श्री चन्द्रमोहननाथ चक, सदस्य, लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद)

सन् १९१३ में जब मैं ४ वर्ष का था, मेरा विद्यारम्भ हुआ। मेर पहला स्कूल लखनऊ का लोरेटो कन्वेंट था।

स्कूल में बोलचाल की भाषा अंग्रेजी थी, जिसे सीखने में मुझे साल-डेढ़ साल लगे। फिर स्कूल की पढ़ाई में मेरा मन लगने लगा। स्कूल की किताबें बहुत सुन्दर थीं, पाठ और कविताएं बहुत आकर्षक। उनमें चित्र अक्सर पुराने विख्यात चित्रकारों के होते थे जिनको बार-बार देखने को जी चाहता था। पुस्तकालय भी बहुत अच्छा था, और ६-७ वर्ष की उम्र से मुझे उम्दा से उम्दा कहानी की किताबें मिलने लगीं। ९ वर्ष की अवस्था में जब मैंने स्कूल छोड़ा तब मैंने देश-विदेश का काफी बाल-साहित्य पढ़ डाला था।

इस बीच मेरे नाना जी इंजीनियरी से अवकाश प्राप्त करके एक-आध साल लखनऊ में रहे। यह सिकन्दरबाग और बनारसीबाग मुझे ले जाते, फूलों के नए-नए सुन्दर-सुन्दर नाम बताते, डायनथस, नसटरशियम, क्रिसैन्थमम इत्यादि। उठते-बैठते पहेलियाँ बुझाते, जबानी सवाल कराते। उन्हें गणित का बहुत शौक था। उन्होंने एक जंत्री भी बनाई, थी यानी परपेच्युल कैलेण्डर। इससे किसी भी साल की किसी भी तारीख को क्या दिन था, या होगा—यह कुछ ही सेकेंडों में निकाल लिया जाता था। कुछ दिनों के लिये जब वह फिर काम पर इन्दौर गए, और मैं उनके पास छुट्टियों में गया तो उन्होंने मुझे भी जंत्री के नियम बताए और याद करा दिए। मैंने उन्हें एक उंगली से टाइप किया। नाना जी के हस्ताक्षर सहित वे अब भी मेरे पास रखे हुए हैं।

नौ वर्ष की उम्र में जब मैंने कान्वेंट छोड़ा तो नाना जी बनारस आ गए थे। मेरे फूफा पं० इकबालनारायण गुर्टु भी देश और शिक्षा की सेवा में वहीं निवास करते थे। उनकी राय से मैं बनारस भेजा गया और थीयोसौफ़िकल नेशनल स्कूल में छठी कक्षा में भरती हुआ। स्कूल का बड़ा नाम था। उसे मिसेज़ एनी बेसंट ने स्थापित किया था और उसके संचालन में शिक्षाशास्त्र के सभी आदर्शों और विचारों को मूर्त करने का प्रयत्न किया जाता था–आत्मसम्मान, देश-प्रेम, सेवा-भाव, चरित्र में सरलता, पढ़ाई की

ओर उदार दृष्टिकोण। अपूर्व अध्यापकवर्ग था। प्रिंसिपल थे महाराष्ट्र के विख्यात जस्टिस काशीनाथ तेलंग के सुपुत्र प्रोफेसर पंढरीनाथ तेलंग। काशी-विश्वविद्यालय के प्रमुख सम्मानित प्रोफेसर होते हुए स्कूल में संस्कृत और इतिहास पढ़ाते थे। विद्वान होने के अलावा क्रिकेट के प्रमुख भारतीय खिलाड़ी रह चुके थे और सन् १९१० के करीब एक टीम को कप्तान की हैसियत से विलायत भी ले जाने वाले थे। त्याग की मूर्ति थे, एक अनोखा प्रभावशाली व्यक्तित्व रखते थे। उनके शिष्य करीब-करीब उनको पूजते थे और उनमें से कई प्रभावित होकर देश के बड़े-बड़े कामों में लग गये। अन्य अध्यापक भी चुने हुए थे, दामोदर बाबू, कानिटकर साहब, आदि जिनको उनके शिष्य आज भी याद करते हैं। लड़के भी दूर-दूर से आते थे और नए-नए नाम और बहुत-सी भाषाएं सुनाई देती थीं। स्कूल में रोज स्तुति होती थी, संस्कृत में हिन्दुओं की, अरबी में मुसलमानों की और जिस किसी और धर्म का लड़का होता, उसकी भी।

खेल-कूद, स्काउटिंग, पर्यटन, अभिनय, फोटोग्राफी—सभी कुछ बहुत जोर-शोर से चालू थे। लड़कों के विकास का कोई भी साधन बाकी नहीं छोड़ा गया था। स्कूल के पुराने छात्र अब भी अपने हृदय में स्कूल के लिए बहुत ऊंचा स्थान रखते हैं।

गणित का प्रेम मुझे नाना जी ने दिया। गणित उनके हाथों में जीती-जागती पहेलियों का समूह था।

प्रतिभाशाली अध्यापकों की सहायता से बिना किसी विशेष परिश्रम के स्कूल की अन्तिम परीक्षा में मुझे अच्छी सफलता मिली। कुछ न कुछ जो स्कूल का ध्येय था कि छात्र को अध्ययन के विषयों की आत्मा से परिचय हो, वह पूरा हुआ था। इसी वजह से आगे की परीक्षाओं में भी मुझे अच्छी सफलता मिलती रही।

इंटरमीडिएट साइंस की पढ़ाई मैंने वहीं काशी विश्वविद्यालय में पूरी की और वहां के स्वतंत्रता के वातावरण का पूरा आनन्द उठाया। मालवीय जी के हिन्दी में अनुपम भाषण सुने और वहाँ के नए उमंगों से भरे हुए बी० ए० और एम० ए० के इतिहास और राजनीतिशास्त्र के छात्रों-अच्युतराव पटवर्धन कन्हैयालाल मिश्र, गोविन्द मालवीय-के भी। अभिनय में भाग लिया और बहुत-सी टेनिस खेली, कविता पढ़ी और पिछले कुछ महीनों की पढाई की ताक़त पर परीक्षा पास की।

इस बीच नाना जी का स्वर्गवास हो चुका था। मैं लखनऊ पिता जी के पास वापस आया। बी० एस-सी० और एम० एस-सी० की पढ़ाई मैंने वहीं की—एम० एस-सी० गणित लेकर। पिता जी ने मेरी पढ़ाई में बड़ी दिलचस्पी ली और किताबों की बड़ी दुनिया से मेरा परिचय कराया। विश्वविद्यालय में कक्षायें छोटी थीं और काम की निगरानी भी काफी। गणित के प्रोफेसर स्ट्रैंग की पढ़ाई रसमय थी। वे परिश्रम और व्यवस्थित ढंग से पढ़ाते थे। अपने छात्रों से स्नेह रखते थे। यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर के भी बड़े अफसर थे और उसको चरित्रनिर्माण का अच्छा साधन मानते थे। बी० एस-सी० में प्रोफेसर वली मोहम्मद नई व्यावहारिक बातें बताते रहते थे। वह लखनऊ यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी के अध्यक्ष थे और उन्होंने खुली आलमारियों में किताबें रखवाने की निहायत अच्छी व्यवस्था की थी जिससे लाइब्रेरी का आकर्षण कई गुना बढ़ गया था। वहाँ मुझे काफी पढ़ने का मौका मिला। शाम को टेनिस खेलता था जिससे मस्तिष्क को भी कुछ आराम मिल जाता था।

लखनऊ में गणित की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मैं साल-डेढ़ साल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डा० मेघनाद साहा के नीचे भौतिकी में रिसर्च-स्कालर की हैसियत से रहा। डा० साहा का बहुत बड़ा नाम था। तारे किस चीज़ के बने हैं—इस पर उनके शोध संसार में विख्यात थे। वे सरल स्वभाव के तथा गूढ़ विद्वान थे जिनके शिष्य भौतिकी के अच्छे विद्वान साबित हुए। बहुत परिश्रम और लगाव से पढ़ाते थे और विचारों को स्पष्ट करने पर विशेष ध्यान देते थे। उनसे अच्छा भौतिकी पढ़ाने वाला कहीं मैंने कभी नहीं पाया। मैं म्योर हॉस्टल में रहता था जिसके डा० अमरनाथ झा वार्डन थे। शिष्यों की बहुत खातिर करते थे, चाय पिलाते, बातचीत करते, अंग्रेजी का दिलचस्प सेमिनार लेते और जनम भर उनसे मित्र का-सा व्यवहार करते। टेनिस का भी ज़ोर यूनिवर्सिटी में बहुत था। भारत के प्रमुख खिलाड़ी विविअन बॉब और दीपनारायण कपूर का खेल देखने को मिलता था जिससे अपना खेल भी सुधरता था।

उन दिनों प्रत्येक प्रान्तीय विश्वविद्यालय के एक छात्र को विलायत जाने की स्कालरशिप मिला करती थी। सन् १९३१ में वह स्कालरशिप मुझे मिली।

कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के क्राइस्ट्स कालेज में मेरा नाम गणित पढ़ने के लिये लिखा गया। इस कालेज में मिल्टन और डारविन ने भी पढ़ा था।

मेरे विचार में शायद किसी भी मुल्क में किसी एक यूनिवर्सिटी ने भौतिकी या गणित में इतना नाम न पाया होगा जितना कैम्ब्रिज ने। मेरे ज़माने में भी वहां विद्वान भरे पड़े थे। जे० जे० टाम्सन, रेदरफ़र्ड, एडिंगेटन, चैडविक, डिरैक, हार्डी, लिट्लवुड, कहाँ तक नाम गिनाये जायें। मुझे याद है, शायद १९३२ की बात है कि लेक्चर देते हुए प्रोफ़ेसर डिरैक ने बताया कि पिछले हफ्ते वहां की कैवेंडिश लेबोरेटरी में पाजिटिव एलेक्ट्रोन खोज निकाला गया है। दोनों प्रकार के एलेक्ट्रोनों के मुठभेड़ का समीकरण बनाकर उन्होंने लिख दिया। मुझे याद है कि एक दिन प्रोफ़ेसर हार्डी ने अपने लेक्चर में एक साध्य बताया, मगर कहा कि यह साध्य सर्वश्रेष्ठ साध्य नहीं है। कोई विद्यार्थी सर्वश्रेष्ठ साध्य निकाले। तीसरे दिन तक उन्होंने खुद ही निकाल कर सर्वश्रेष्ठ साध्य बता दिया। एक दिन आइंसटाइन भी कोई लम्बी यात्रा करते हुए केम्ब्रिज आये और उन्होंने लेक्चर दिया। आधा जर्मन और आधा अंग्रेजी में। कम ही समझ में आया मगर आभास हुआ कि शायद जैसे कवि की आँखें और मन बीसों चीजों पर जल्दी-जल्दी घूमता रहता और अपनी पसन्द की चीजें चून लेता।

कैम्ब्रिज में उस समय हिन्दुस्तान से भी आये हुए, भौतिकी आदि के, कुछ छात्र थे जिन्होंने काफी नाम पाया। भाभा, चन्द्रशेखर, कोठारी आदि। युवा नार्लीकर के पिता भी वहाँ के अच्छे छात्रों में थे।

कैम्ब्रिज का लम्बा बयान करना सम्भव नहीं है। मगर इतना तो कह दूं कि इंग्लिस्तान ने अपने दो विश्वविद्यालयों पर, जिनमें से कैम्ब्रिज एक है सभी कुछ न्योछावर कर दिया है। अध्यापकों और लड़कों का रहन-सहन, इमारतों और प्राकृतिक वातावरण का सौन्दर्य, अध्यापकों और छात्रों का सम्मान, पाठ्यक्रम का सुन्दर रूप, परीक्षाओं की सुव्यवस्था, देश भर के सबसे चमकते हुए मस्तिष्क वाले मनुष्यों को वहाँ के अध्यापक के रूप में आकर्षित करना और उनको हर प्रकार की सुविधा देना, उनको रोज़मर्रा का बहुत कम काम देना, छात्रों को बहुत-सी स्वतन्त्रता, एक हलके-से मगर बहुत अच्छे मज़बूत ढांचे के अन्दर, उनके लिए बहुत-से खेल-कूद, कला, मनोरंजन इत्यादि सभी कुछ मोहइया कर दिया है। इसका फल भी देश को बहुत अच्छा मिला। सैकड़ों वर्षों से इंग्लिस्तान के बहुत से क्षेत्रों के नेता इन्हीं दो विश्वविद्यालयों के प्रकाश और छाया में विकसित हुए।

कैम्ब्रिज में छुट्टियाँ लम्बी होती थीं। हर साल छः महीने से ज्यादा की छुट्टी, तीन बार में मिलती थी। छुट्टियों में अक्सर विदेशों में भ्रमण,

विदेशी भाषायें सीखना, टूर्नामेण्ट खेलना, पढ़ाई पूरी करना, जैसी जिस छात्र की सुविधा और रुचि हुई वैसे ही बिताई जाती थी। मुझे भी यूरप देखने, फ्रेंच और जर्मन भाषाएं सीखने, इमारतें, तस्वीरें, अभिनय देखने, संगीत सुनने, टेनिस खेलने आदि का काफ़ी अवसर मिला।

हफ्ते में १२ से १५ घंटे लेक्चर सुनने का रिवाज था। लेक्चरों में जाना या न जाना बहुत कुछ अपने हाथ में था, मगर हफ्ते में एक दो बार निश्चित काम हर लड़के को करना और दिखलाना होता ही था। सुपरवाइज़र उस पर अपने विचार प्रकट करते थे। इस ट्यूटोरियल में मेरे सुपरवाइज़र हफ्ते में एक पूरा घण्टा मुझ अकेले को देते थे। हफ्ते में तीन लेक्चर से ज्यादा-कम ही लेक्चरर लेते थे। और कुछ बड़े प्रोफेसर तो अपने शोध के अलावा किसी विषय पर लेक्चर नहीं देते थे। विषय पर उपलब्ध पुस्तकों के मुकाबले लेक्चर अधिक सुन्दर, नियोजित और आधुनिक होते थे। लेक्चर तैयार करने में विख्यात से विख्यात प्रोफ़ेसर पूरी मेहनत करते थे और एक किताब सी बना लेते थे। मैथमेटिकल ट्राइपॉस के लेक्चरों का स्तर वैसा था जैसा कि किसी चार साला एम० एस-सी० का हो और एडवांस्ड लेक्चर शोध की सीमाओं तक पहुंच जाते थे। मैथमेटिक्स में भौतिकी का अच्छा समावेश था। ३४ लेक्चरर केवल वैकल्पिक विषयों पर लेक्चरर देते थे जिनको पढ़े बिना भी छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर रैंगलर कहलाता।

मैथेमेटिकल ट्राइपॉस सफलता से पूरा करके मैंने एक साल टीचर्स ट्रेनिंग भी की क्योंकि उस ज़माने में विश्वविद्यालय में ज्यादा जगहें उपलब्ध नहीं थीं। कुछ महीने मैं वहाँ शोध के लिए भी रहा। उस समय के अन्त में यानी १९३५ में मैं १५ रोज जर्मनी में लाइपशिश के नगर में प्रोफेसर हाइज़नबर्ग के साथ भी रहा जिन्होंने नई क्वॉन्टम मिकेनिक्स को ईजाद करके आधुनिक विज्ञान का आमूल परिवर्तन किया था। उनकी उम्र उस समय करीब ३२ वर्ष की थी। कई वर्ष पहले नोबेल प्राइज़ पा चुके थे और शायद आइंसटाइन को छोड़कर इस शताब्दी में किसी ने भौतिकी में इतना बड़ा नाम नहीं पाया। उन्हीं दिनों खबर आई कि लखनऊ विश्वविद्यालय में कई वर्ष के बाद गणित पढ़ाने का स्थान जो खाली हुआ था वह मुझे मिल गया। मैंने प्रोफेसर हाइज़नबर्ग से राय पूछी कि कुछ दिन उनके पास रहकर क्या मैं शोध करने की कोशिश करूं या घर जाकर काम शुरू करूं। क्या घर लौटकर काम हो सकेगा? जब उन्होंने सुना कि सबसे करीब वैज्ञानिक डा० मेघनाद साहा लखनऊ से १२५ मील दूर इलाहाबाद में रहते हैं तो

उन्होंने कहा कि नहीं काम नहीं हो सकेगा और उन्होंने बताया कि जब लाइपशिश में हिटलर के पहिले बहुत से गणितज्ञ रहते थे तब जब कभी उनको कोई नया विचार आता था उस पर वह उन साथियों से बात करते थे और थोड़ी ही देर में उनसे जान जाते थे कि विचार काम का है या बेकार। चूंकि अब जर्मनी छोड़कर लोग चले गये थे, उनका काम रुकने लगा था। जर्मनी में उस समय नौकरियों की वैसी ही दिक्कत थी जैसी हिन्दुस्तान में और नौजवान वैज्ञानिक जिनका नाम चमकने लगा था सौ-सवा सौ रुपये की नौकरी पर पड़े हुए थे। राय यही बैठी कि घर वापस पहुंच कर पढ़ाना शुरू करूँ। यों मेरा विद्यार्थी जीवन समाप्त हुआ और लखनऊ विश्वविद्यालय में मैंने गणित पढ़ाना शुरू किया।

—इलाहाबाद की आकाशवाणी से साभार

* * *

नई धारा
नये युग का नया प्रतीक, नया मूल्यांकन ; नई शैली, नया संकेत
(साहित्य एवं संस्कृति की श्रेष्ठ मासिक पत्रिका)
सम्पादक मंडल :
श्री रामवृक्ष बेनीपुरी : राजा राधिका रमण प्र० सिंह
सम्पादक : श्री उदयराज सिंह
सह-सम्पादक : श्री सुरेश कुमार
वार्षिक मूल्य : आठ रुपये; एक प्रति : पचहत्तर पैसे
प्राप्ति स्थान
अशोक प्रेस, पटना- ६

76257

भारतीय शिक्षक संघ के विशेष सम्मेलन की कार्यवाही

दूसरी जून से छठी जून तक श्रीनगर में भारतीय शिक्षक संघ के तत्वाविधान में राज्यों के शिक्षक संघों का एक विशेष सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन को शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय वेतन क्रम निश्चित करने थे। भारतीय शिक्षा आयोग के सामने रखने के लिए शिक्षक वर्ग के विचारों का मसविदा बनाना था और चौथी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा की व्यवस्था के संबंध में शिक्षक वर्ग के विचार तैयार करने थे। अध्यक्ष दीवानचन्द जी शर्मा की अनुपस्थित में श्री बी० आर० देसाई ने सम्मेलन का संचालन किया। सम्मेलन की कार्यवाही का सारांश इस प्रकार है।

१. शिक्षकों की वेतन वृद्धि :

सम्मेलन के मत से राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होना चाहिए और राज्य शासन अपने अनुमानित व्यय का २० प्रतिशत शिक्षा के मध्य रखें। शैक्षिक व्यय का ७० प्रतिशत शिक्षकों के वेतन पर व्यय हो।

शिक्षकों के वेतनक्रम का समानीकरण हो, बड़े नगरों में वेतन के साथ भत्ते भी हों, मंहगाई में ४७० के ऊपर १० नंबर बढ़ने पर १० प्रति मास शिक्षक के वेतन पर जोड़ दिया जाय।

शिक्षक वर्ग की आवश्यकताओं को समझते हुए सम्मेलन ने निश्चय किया कि किसी शिक्षक को प्रति मास १७५ रुपये से कम न मिले।

वेतनक्रम के लिए सम्मेलन के प्रतिवेदन इस प्रकार हैं :

प्रशिक्षित नानग्रेजुएट शिक्षक	१७५—३००
प्रशिक्षित ग्रेजुएट शिक्षक	२५०—५००
प्रशिक्षित पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षक	३००—६००
प्रशिक्षित एम० ए० और बी० ए० आनर्स	३५०—७००
प्रशिक्षित एम० ए० शिक्षक द्वितीय और बी० ए० प्रथम	४००—८००

१. अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रारंभिक वेतन ही मिलता रहे जब तक वे प्रशिक्षित न हों।

२. अतिरिक्त योग्यता प्राप्त शिक्षकों को अतिरिक्त तरक्कियां मिलती रहें।

३. वेतनक्रम की बाढ़ २० वर्ष के आगे न बढ़े।

४. १५ प्रतिशत तरक्कियाँ विशेष योग्यता प्राप्त और लम्बी सेवा किये शिक्षकों के लिए सुरक्षित कर दी जाँय।

५. अतिरिक्त वेतनक्रमों की व्यवस्था के लिए राज्य स्वतन्त्र रहें।

विद्यालय के अध्यक्ष

१ से ४ तक	२५०—५००
५ से ७ या ८ तक	३००—६००
५ से ८ या ८ से १० तक	५००—१०००
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय ११ और १२	६००—१२००

विश्वविद्यालय और महाविश्वविद्यालय के शिक्षक :

लेक्चरर, प्रोफेसर	५००—१०००
डिमांस्ट्रेटर, ट्यूटर	३००—६००
विश्वविद्यालयी लेक्चरर	५००—११००
,, अध्यापक	८००—१५००
,, प्रोफेसर	१३००—१८००

संबद्ध महाविश्वविद्यालयों के प्रिंसिपल और वाइस पिंसिपल :

वाइस प्रिंसिपल	५००—११००
प्रिंसिपल	८००—१५००

१. वाइस प्रिंसिपल और प्रिंसिपल का मौलिक वेतन क्रम नियत करने में छात्र संख्या का खयाल रखा जाय।

२. जूनियर और सीनियर लेक्चरों के मौलिक वेतनक्रमों में भेद का भी खयाल रखा जाय।

२. सब स्तरों पर बुढ़ापे और अवकाश की सुविधाएँ :

शिक्षकों को छुट्टी इत्यादि के विषय में वही सुविधधाएं मिलें जो सरकारी नौकरों को मिलती हैं। उन्हें रेल में किराये की रियायत भी मिले। अवकाश मिलने पर उन्हें तीन सुविधाएँ उपलब्ध हों :

१. २००० रुपये का बीमा। ५० प्र० श० प्रिमियम सरकार अदा करे।

२. प्राविडंट फंड १० प्र० श० शिक्षक से और इतना ही प्रबन्धक से।

३. सरकारी कोश से वेतन की ३/८ पेंशन।

३. सेवा के नियम

१. अवकाश की अवस्था ६५ वर्ष नियुक्त हो।

२. शिक्षक-प्रबंधक विवाद न्यायालय के सामने निर्णय के लिए पहुँचे। न्यायालय के तीन सदस्य हों। एक शिक्षकों का प्रतिनिधि, एक प्रबंधक वर्ग का प्रतिनिधि और कम से कम मजिस्ट्रेट के पद का एक न्यायाधीश। इस न्यायालय के निर्णय से ही शिक्षक अपने पद से अलग किया जा सके।

३. शिक्षक की प्रोवेशन अवधि दो वर्ष के आगे न जाय। यदि वह प्रशिक्षित है, तो इसके आगे वह अपने पद पर पक्के तौर पर नियुक्त मान लिया जाय।

४. शिक्षक के प्राविडंट फंड का स्थानांतरण होता रहे। उसका हिसाब तभी बन्द हो जब वह वैतनिक सेवा से अवकाश ले ले।

सेवा की समाप्ति :

कुछ राज्यों में शिक्षक हर्जाना देकर ही हटा दिये जाते हैं। बहुत से गैर सरकारी विद्यालयों में अध्यक्ष को आंतरिक अनुशासन के अधिकार नहीं मिलते। इन्हीं कारणों से शिक्षा-स्तर गिर रहा है और अनुशासनहीनता बढ़ रही है। जिन राज्यों में कमजोरियाँ हों वे केन्द्र के आदेश से इनका निराकरण करें।

शिष्य-शिक्षक अनुपात :

प्रारंभिक और मिडिल स्कूलों में	१ : २५
हाई और हायर सेकंडरी स्कूलों में	१ : ३०

काम के घंटे :

प्रारंभिक शिक्षक सप्ताह में २४ घंटों से अधिक नहीं
माध्यमिक शिक्षक ,, २० ,, ,,
महाविद्यालय शिक्षक ,, १५ ,, ,,

काम के दिन :

काम के दिन २३० से कम न हों जिनमें कम से कम २०० दिन पढ़ाई हो।

प्राइवेट ट्यूशन

कमज़ोर और तेज विद्यार्थियों को पढ़ने का अतिरिक्त समय शिक्षक दें और संस्था द्वारा उनसे अतिरिक्त फीस ली जाय जो शिक्षकों को मिले। घरों पर शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों का पढ़ाया जाना बंद हो।

४. शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता की पुष्टि के सुझाव

शिक्षा की अवधि

स्नातक परीक्षक तक के लिए १५ वर्ष की अवधि रहे। जिसके चार स्तर हों ७+३+२+३। पहले सात वर्ष प्रारंभिक शिक्षा के हों जिसके पश्चात् सार्वजनिक परीक्षा हो। तीन वर्ष पश्चात् हाई स्कूल परीक्षा हो। इसके ऊपर प्राविधिक और औद्योगिक पाठक्रम हों। यह उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का स्तर हो जिसके अंत में तीसरी सार्वजनिक परीक्षा हो। इसके ऊपर तीन वर्ष का डिग्री कोर्स हो।

पाठ्यक्रम

राष्ट्रीय एकता की सिद्धि के लिए विद्यार्थियों की मात्राएं हों, शिक्षक विनिमय हो, अन्तर्राजीय शिविर लगें और स्काउट रेलियाँ हों। समुचित साहित्य से विद्यार्थी परिचित किए जायँ।

त्रिभाषी फ़ारमूला

सम्मेलन त्रिभाषी फारमूले का स्वागत करता है —१. क्षेत्रीय भाषा २. हिन्दी और ३. अंग्रेजी। एक ही लिपि के पक्ष में भी सम्मेलन का प्रतिवेदन है। भावनात्मक कारणवश देवनागरी लिपि ही उपयुक्त है।

भाषाओं की पढ़ाई के लिए स्तर इस प्रकार हों:—

चौथी कक्षा तक — क्षेत्रीय भाषा
पांचवीं से — हिन्दी
छठी से — अंग्रेजी

नैतिक और धार्मिक शिक्षा

शिक्षालयों में विधिवत् नैतिक शिक्षा के पक्ष में सम्मेलन का अनुरोध है। प्रारम्भिक स्तर पर यह शिक्षा जीवन चरित्रों द्वारा दी जाय और माध्यमिक स्तर पर धर्मों के व्यापक सिद्धांत समझाए जायं। वातावरण परोक्ष रूप में नैतिकता का समर्थक हो।

५. प्रशिक्षण

शिक्षकों का प्रशिक्षण तीन चार वर्ष तक का हो। इस लंबे प्रशिक्षण के लिए विद्यार्थियों को समुचित छात्र वृत्तियां दी जांय।

प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण सेवाकाल में भी होता रहे। प्रति सातवें वर्ष तो यह जरूर ही हो।

६. शिक्षक संघों का सेवा क्षेत्र

विभिन्न स्तरों के शिक्षक संघ शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। ये संघ शिक्षकों की हित रक्षा ही न करें, शैक्षिक कार्यक्रमों का समर्थन भी करें। राज्य सरकारों से इन्हें मान्यता मिले और सरकारी समितियों में इन्हें प्रतिनिधित्व दिया जाय।

सम्मेलन शिक्षक संघों से अनुरोध करता है कि वे गोष्ठियों, शिविरों और शोध-मंडलों की व्यवस्था करें। वे शिक्षा-क्षेत्र में नयी-नयी खोजों का प्रचार भी करते रहें।

* * *

पाठकों से निवेदन है कि उक्त प्रस्तावों पर अपनी प्रतिक्रिया ए० आई० एफ० ई० ए० के कार्यवाहक सचिव श्री ई० डबलू० फ्रैंकलिन को १६ ए/१०, डबलू० ई० ए०, नयी दिल्ली–५, के पते से भेजने की कृपा करें।

पत्राचार

प्राचार्य गोवर्द्धन प्रसाद त्रिवेदी, बापा आश्रम, बोन्दर (मंडला), म० प्र०

भारतीय शिक्षा के फरवरी ६५ के अंक में आपकी "दो योजनाएं" देखने का सौभाग्य मिला। इस स्तुत्य सुझाव के लिए धन्यवाद।

इस युग की विचारशील मनीषा ने इस सत्य को पुनः स्वीकृत किया है कि प्राचीन गुरुकुलों एवं वर्तमान सैनिक स्कूलों की समन्वित पृष्ठभूमि में आश्रम विद्यापीठ अन्य प्रदेशों में पुनः स्थापित हों, ताकि इस अंधेरी सदी में भटक रहा जन जीवन नैतिक जीवन मूल्यों का विकास कर अपने आप को अंधेरे में मुक्त कर सके। यह सब तभी संभव है जब प्राचीन गुरुकुल परम्परा का अभ्युदय हो जहाँ लोकतांत्रिक समाजवाद के लिए निर्मित हो रहे भारत भारत के भावी नागरिक जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों का संकलन कर सकें।

६ फरवरी, ६५ बसंत पंचमी के स्वर्णिम प्रभात में पापक्षारिणी भगवती नर्मदे के उद्गम स्थल में बैठ कर मैंने एवं मित्रों ने **श्री मेवाल आश्रम विद्यापीठ, अमरकंटक,** की प्रेरणापद योजना का संकल्प लिया है।

मध्य प्रदेश के शहडोल ज़िलान्तर्गत तीर्थ स्थल अमरकंटक भारतीय जनभावना का एक प्रमुख केन्द्र है। प्राचीनकाल में मार्कण्डेय ऋषि, कपिल मुनि, भृगु और पिप्लायन जैसे तपोनिष्ठ ऋषियों के पुनीत आश्रम अमरकंटक विकास की नई संभावनाओं का केन्द्र है। मैंने अपनी प्रस्तावित योजना मध्य-प्रदेश शासन के वरिष्ठ मंत्रियों, प्रमुख समाज सेवियों एवं शिक्षा प्रेमियों के पास प्रेषित कर दी है। अनेक के प्रत्युत्तर प्राप्त भी हो चुके हैं। सहयोग का पूरा-पूरा आश्वासन मी मिला है।

मैं आपको इस पत्र द्वारा धन्यवाद प्रेषित करता हूं। आपकी प्रस्तावित दो योजनाओं द्वारा मुझे यह दिशा-दृष्टि मिली है। अस्तु।

इस पत्र द्वारा मैं देश के शिक्षा विशारदों एवं शिक्षा प्रेमियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। साथ ही निवेदन करता हूं कि वे अपना आशीर्वचन, सुझाव एवं मार्गदर्शन देकर अनुग्रहीत करें। जो महानुभाव किसी प्रकार का सक्रिय सहयोग या प्रेषित करना चाहें वे कृपया पत्र द्वारा सम्पर्क करें।

शैक्षिक समाचार-समुच्चय : जुलाई

(आचार्य रामखेलावन चौधरी, अजमेर)

विदेशों से—

नये प्रयोग

फिनलैंड के आर्कटिक सागरीय क्षेत्र के एक भाग में बोथनिया खाड़ी पर एक ऐसा विश्वविद्यालय पाँच वर्षों से चल रहा रहा है जो भारत के लिए अनुकरणीय है। इसमें विशाल भवनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारे नगर में उपलब्ध भवनों का उपयोग करके काम चलाया जाता है। अध्यापन के कमरे और प्रयोगशालायें भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित हैं।

स्वीडेन में एक ऐसे प्रकार का विश्वविद्यालय इस वर्ष प्रारंभ हुआ है, जो सर्वथा नया है। यह 'एअरयूनीवर्सिटी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस विश्वविद्यालय का शिक्षण कार्य आकशवाणी के माध्यम से होता है। हजारों विद्यार्थी रेडियो सेटों के आगे बैठ कर भाषण मालायें सुनते हैं! सत्र के अन्त में डाक द्वारा प्रश्न-पत्र आ जाते हैं और विद्यार्थी उनके उत्तर भेज देते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस आयोग से अनेक संभावनाएँ उत्पन्न हो गयी हैं।

ऐतिहासिक शोध

लेनिनग्राड, रूस के प्रसिद्ध भाषाविद् श्री ओरान्सकी ने दस वर्षों के अध्ययन के पश्चात् सिद्ध किया है कि ताजकिस्तान और उजवेकिस्तान के गिसार और सुरखान दरया घाटियों के निवासी भारतीय बोलियों से मिलती-जुलती बोली बोलते हैं। इससे सिद्ध है कि यहाँ के निवासियों के पूर्वज भारतीय थे।

जापान में हिन्दी

तोकियो विश्वविद्यालय में विदेशी अध्ययन के अध्यक्ष प्रो० के दोई ने काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा में बोलते हुए बताया कि जापान में हिन्दी के प्रसार के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

स्वदेश से—

ग्रीष्म कालीन संस्थान

विज्ञान, गणित और अंग्रेजी विषयों की शिक्षण-क्षमता बढ़ाने के लिए गत वर्ष से माध्यमिक स्कूलों और डिग्री कालेजों के अध्यापकों को नवीनतम शिक्षण विधियों की जानकारी कराने की व्यवस्था की जा रही है। यह कार्य ग्रीष्म कालीन संस्थानों (Summer Institutes) की सहायता से किया जा रहा है। इनकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि इस वर्ष देश के विभिन्न भागों में ९४ संस्थान जुलाई मास में चले जिनसे लगभग दो हज़ार अध्यापकों ने लाभ उठाया। इन संस्थानों को चलाने में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग, और अमरीकी तथा ब्रिटिश कौंसिल के विशेषज्ञों का सहयोग रहा है।

प्रौढ़ शिक्षा

५ जुलाई से प्रौढ़ शिक्षा पर विचार करने के लिए प्रथम बार विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों का सम्मेलन संपन्न हुआ। मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार में स्नातकों के सहयोग को आवश्यक बताया। स्नातकों में प्रौढ़ शिक्षा के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए उन्हें डिग्री देने के पूर्व शिक्षा प्रचार का काम उनसे लिये जाने की माँग की गई। प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार लिए योजना आयोग के सदस्य डा० राव ने इसी सम्मेलन में द्रुतगामी कार्यक्रम (Crash programme) चलाने पर जोर दिया। यहाँ एकादश सूत्री कार्यक्रम प्रौढ़-शिक्षा को सफल बनाने के लिए तैयार किया गया जिसमें नागरिकता का भाव पुष्ट करने पर विशेष बल दिया गया। दिल्ली में सचल जनता कालेज प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रहा है।

प्राथमिक शिक्षा

राजस्थान में नायक-समिति की विज्ञप्ति से मालूम होता है कि उस राज्य में प्राथमिक-शिक्षा की प्रगति अवश्य हुई है परन्तु उत्तमता की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसका कारण स्कूलों में साज-सज्जा की कमी और निरीक्षण का अभाव है। गृह मंत्रालय के एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि उत्तम अवसर न मिलने के कारण अनेक प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी प्राथमिक स्तर से आगे नहीं बढ़ पाते। पढ़ाई छूटने से प्रतिभा का ह्रास होना एक विकट समस्या है। यह समस्या अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक हानिकारक

सिद्ध हो रही है। हाईस्कूल उत्तीर्ण जनों में बेरोजगारी अधिक है और प्राथमिक स्तर से छात्रों के लिए नये मार्ग स्थिर न करने ऐसा से संकट उत्पन्न हुआ है।

माध्यमिक शिक्षा

पंजाब सरकार अपने माध्यमिक स्कूलों में प्रविधि की शिक्षा की व्यवस्था पर केन्द्रीय सरकार के सहयोग से लगभग ३० लाख रुपया व्यय करने का निश्चय कर चुकी है। नयी योजना के अनुसार स्कूलों में रूसी ढंग पर विज्ञान क्लब चलाये जायँगे। विज्ञान के अध्यापकों के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रम, तथा द्विवर्षीय एम० एस-सी० कोर्स चालू किये जायँगे। जयपुर में केन्द्रीय कर्मचारियों की सन्तानों के लिये राजकीय स्कूल इस वर्ष खुल गया है।

उच्च शिक्षा

हंसराज कालेज, दिल्ली में एक शिक्षा-शिविर का उद्घाटन करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में उद्देश्यों की स्पष्टता और निर्देशन को महत्वपूर्ण बताया गया। उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के सम्मेलन ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और काशी विद्यापीठ को अखिल भारतीय शिक्षा-प्रयोग मान कर सरकार से आग्रह किया गया कि इनके लिए अधिक वित्तीय सहायता दी जाय। उत्तर प्रदेश में विज्ञान की स्नातकोत्तर कक्षाएं चलाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से विशेष प्रयत्न करने की माँग भी की गयी। विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ने १२० रु० प्रतिमास की १०० छात्रवृत्तियाँ देने का निश्चय किया है। मेधावी छात्रों को इन छात्रवृत्तियों के साथ-साथ ३०० रु० प्रतिवर्ष पुस्तकों की खरीद के लिये दिये जाँयगे। हैदराबाद में भाषण देते हुए श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी ने उच्चशिक्षा में एक ही भाषा को माध्यम बनाये रखने पर जोर दिया। उन्होंने इस सम्बन्ध में किसी भाषा का नाम नहीं लिया। एक माध्यम से ही शिक्षा में एकरूपता बनी रह सकती है, यह उनका प्रमुख तर्क रहा। जयपुर में योजना आयोग के सदस्य श्री थैकर ने कहा कि इस समय विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा वर्तमान विश्वविद्यालयों में शोध की सुविधाओं में वृद्धि करना ज्यादा अच्छा होगा। नेशनल कौंसिल आफ़ एजुकेशनल रिसर्च ऐंड ट्रेनिंग की ओर से विज्ञान की प्रतिभा खोजने की एक योजना बनायी गयी है। उत्तरी क्षेत्र के शिक्षा-सचिवों और शिक्षा संचालकों के सम्मेलन में इस योजना का पूरा समर्थन किया गया। साथ ही इस योजना को सफल बनाने के लिए एक समिति का निर्माण किया

गया । शिक्षामन्त्री छागला ने कलकत्ते में कहा कि उच्चशिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को निराश नहीं करना चाहिए ।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय

दंगों और साम्प्रदायिक कार्यों के कारण अलीगढ़ विश्वविद्यालय कई मास से बन्द है । स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिए आर्डिनेन्स लागू किया गया है । इस प्रश्न पर मुसलमानों में बड़ा असंतोष है । कट्टर पंथी मुसलमान विरोध कर रहे हैं । छागला ने राष्ट्रीय मुसलमानों से अपील की है कि वे चुप्पी तोड़ें । जामिया मिल्लिया के उपकुलपति ज़ैदी ने छागला जी का जोरदार समर्थन किया है । दूसरी ओर बिहार के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री सैयद महमूद ने अलीगढ़ विश्वविद्यालय पर एकमात्र मुस्लिम नियंत्रण की माँग की है । स्थिति सामान्य होने पर यह विश्वविद्यालय अगस्त में खुल जायगा ।

अध्यापक-वर्ग

राजस्थान विश्वविद्यालय की ओर से किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों में तीव्र असंतोष है । यद्यपि उन्हें यह पेशा पसंद है, वे समाज की उपेक्षा के कारण दुखी रहते हैं । पंजाब में कैरों मंत्रिमण्डल ने अध्यापकों के कार्य का मूल्याँकन करने का जो सूत्र निकाला था, वह अपमानजनक था । वर्तमान मन्त्रिमंडल ने उस सूत्र के स्थान पर नया सूत्र लागू किया है । इस सूत्र के अन्तर्गत अध्यापकों को अंक दिये जाँयगे । उनके व्यक्तित्व, बुद्धि और स्वभाव के लिए ३० अंक, अध्यापन कार्य के लिए १०, शिक्षणविधि के लिए १०, विद्यार्थियों के परीक्षाफल के लिए ३०, पाठ्यातिरिक्त क्रियाओं के लिए १० और व्यावसायिक विकास के लिए १० अंक नियत कर दिये गये हैं । अध्यापकों की निजी पुस्तिका में यह अंक भरे जाँयगे । यदि कोई अध्यापक तीस से कम अंक पायेगा, तो वह दंडित होगा । यह ज्ञात हुआ है कि दिल्ली में प्रशिक्षित अध्यापकों में बेरोज़गारी बढ़ी है । कारण यह है कि दिल्ली में वेतन की दरें ऊँची हैं और पड़ोस के राज्यों से अध्यापक भारी संख्या में यहीं आ जाते हैं । उत्तर प्रदेश में अध्यापकों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये राज्य सरकार ने सभी वर्गों के अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की घोषणा की है । प्रशिक्षित प्राइमरी अध्यापकों को ८० रु० के स्थान पर १०० रु०, अप्रशिक्षित को ६९ रु० के स्थान पर ९० रु० मिलेंगे । महिला अध्यापकों को कम से कम ९० रु० वेतन मिला करेगा । माध्यमिक शिक्षा के अध्यापकों को जो ३५० रु० से कम वेतन पा रहे हैं

२० रु० अधिक मिलेंगे और डिग्री कालेजों में अध्यापकों को जो ३५० रु० से कम पा रहे हैं २० रु० और ३५० रु० से अधिक पाने पाने वालों को ४० रु० अधिक मिलेंगे। ८५१ रु० से ८८९ रु० तक पाने वाले अध्यापकों को ८९० रु० मिलने लगेंगे। डिग्री कालेजों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित वेतन दरें लागू होंगी। इस घोषणा से लगभग १ लाख सत्तर हजार अध्यापक लाभान्वित होंगे। कलकत्ते में श्री छागला ने अध्यापकों की स्थिति सुधारने पर जोर दिया और कहा कि उनके बच्चों को निःशुल्क शिक्षा मिलनी चाहिए। अच्छा हो यदि इसके लिए देश में शिक्षा-कर लगाया जाय। दिल्ली प्रशासन की ओर से शिक्षा आयोग को जो टिप्पणी भेजी गयी है, उसमें भी अध्यापकों के लिए चिकित्सा, उनके बच्चों की निःशुल्क शिक्षा, मकान का किराया और मुफ्त यात्रा की सुविधायें देने की माँग की गई है।

भाषाओं का अध्ययन

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार यह ज्ञात हुआ है कि हिन्दी का प्रचार कम हुआ है। जयपुर के भाषा विभाग ने प्रदेश में अंग्रेजी के अध्ययन को आवश्यक बताया है। संयुक्त समाजवादी दल ने हिन्दी क्षेत्रों में 'अंग्रेजी हटाओ' आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। बिहार के राज्यपाल श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने हिन्दी और संस्कृत को अनिवार्य रूप से पढ़ाने का समर्थन किया है। कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने हिन्दी के प्रचार के लिए उस प्रदेश के हिन्दी अध्यापकों को हिन्दी क्षेत्रों में भेजने, एम० ए० की कक्षाएँ चलाने, और कश्मीरी कवियों की रचनाएँ छपवाने का निश्चय किया है। त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत संस्कृत का चयन उत्तरप्रदेश के अधिकांश विद्यार्थी करते हैं। मदुराई में श्री कामराज ने विद्यार्थियों से भाषा-आन्दोलन से दूर रहने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि त्रिभाषा सूत्र से देश की भाषा समस्या हल हो जायगी।

अनुशासन की समस्या

उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के उपकुलपति सम्मेलन में विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता पर विचार किया गया। इस समस्या को हल करने के लिए, विद्यार्थियों का रहन-सहन सुधारने और उन्हें शिक्षा की सुविधाएँ देने की व्यवस्था को आवश्यक बताया गया।

अन्य समाचार

वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज के लिए निर्धारित परीक्षा में इस वर्ष

६३९५ छात्र बैठे और उस प्रतियोगिता में १९० छात्र लिये गये। कानपुर में श्रममन्त्री संजीवैया ने एक रीजनल लेबर इन्स्टीट्यूट का उद्‌घाटन किया। इसमें श्रम संबंधी बातों का अध्ययन किया जायगा। रक्षामन्त्री श्री चह्वाण ने ग्वालियर में स्त्रियों के एन० सी० सी० कालेज का उद्‌घाटन किया और स्त्रियों की सैनिक शिक्षा को आवश्यक बताया। राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा नियत एक अध्ययन दल ने शिक्षा प्रसार के लिए सांध्य कालेजों के खोलने पर जोर दिया। जयपुर में एक ऐसा कालेज खोला जाय जिसमें, कला, विज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान और शिक्षा आदि विषयों की पढ़ाई प्रारंभ की जाय।

* * *

नवांकुर

(साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्रकाशित साहित्य संकलन)

सम्पादक : सुरेश दुबे 'सरस'

नव साहित्यकारों की सहयोगी संस्था 'नव संगम परिवार', पटना की ओर से 'नवांकुर' नाम से विभिन्न विधाओं के अलग-अलग साहित्यकारों (छः हिन्दी भाषी पुरुष, दो महिलायें तथा एक अहिन्दी भाषी) की रचनायें उनके चित्र और परिचय के साथ प्रकाशित की जाती हैं।

मूर्धन्य गीतकार गोपाल सिंह 'नेपाली' की स्मृति में गीत-खंड, प्रपद्यवाद के संस्थापक ऋषि-व्यक्तित्व नलिन विलोचन शर्मा की स्मृति में नई कवितायें साहित्य-दधीचि आचार्य शिवपूजन सहाय की स्मृति में कहानियाँ, शान्तिदूत नेहरू की स्मृति में 'नेहरू काव्यांजलि' तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पुण्य स्मृति में 'राष्ट्रकवि काव्यांजलि' का प्रकाशन हो चुका है।

संस्था की नियमावली तथा नवांकुर की अगली क्यारियों की जानकारी के लिए लिखें।

सुरेश दुबे 'सरस'; शिक्षा विभाग, बिहार,
नया सचिवालय, पटना-१

परिचायकी

हिन्दी सेवी-संसार—सम्पादक, डॉ० प्रेमनारायण टंडन; प्रकाशक, हिन्दी सेवी-संसार कार्यालय, रानीकटरा, लखनऊ–३; दो खंडों में प्रकाशित :—

(१) हिन्दी साहित्य-कोष : डिमाई आक्टेवो ७७४ पृष्ठ; सजिल्द : बीस रुपए ।

(२) ४१९ हिन्दी संस्थाओं और पुस्तकालयों, ४०१ प्रकाशकों, १८८६ पत्र-पत्रिकाओं एवं १०७७ लेखकों के परिचय : डिमाई आक्टेवो ६५५ पृष्ठ; सजिल्द : बीस रुपए ।

पत्रों-पत्रिकाओं में और व्याख्यान-मंचों से हिन्दी-सेवा और हिन्दी-प्रचार की धूम तो बहुत है, परन्तु यह धूम पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों की बिक्री से सिद्ध होती है। सिद्धि के लिए अपनी जेब से पैसे खर्च करना आवश्यक नहीं। हिन्दी भाषी राज्यों में लगभग १० हजार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तथा महाविद्यालय हैं, जिनके अपने-अपने पुस्तकालय हैं। इनके अतिरिक्त ४०० से अधिक सार्वजनिक हिम्दी संस्थाओं और पुस्तकालयों का परिचय उपर्युक्त संदर्भ ग्रन्थ में दर्ज है। लगभग दो हजार हिन्दी प्रकाशन संस्थाएं और पत्र-पत्रिकाएं हैं जो व्यक्ति की संपत्ति नहीं।

इस संदर्भ ग्रन्थ से इन सब की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। हिन्दी संसार के सामने इसका तीसरा संस्करण है। पहला संस्करश सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत संदर्भ ग्रंथ के प्रथम संस्करण के समय से समीक्षक को संपादक तथा प्रकाशक शिष्यवर प्रेमनारायण टंडन की इस ग्रंथ की सेवा में आर्थिक तथा मानसिक तपस्या की जानकारी है। समीक्षक **भारतीय शिक्षा** के संपादक की हैसियत अपने को भारतीय शिक्षक वर्ग का प्रवक्ता मानता है। **हिन्दी-सेवी-संसार** के संपादक की मानसिक तपस्या में हम उनका हाथ बटा नहीं सकते। परन्तु आर्थिक चिंता से इस तपस्वी को मुक्त करना हमारे लिए नितांत सरल है। हिन्दी क्षेत्र के सभी सार्वजनिक पुस्तकालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों को दो खंडों के इस संदर्भ ग्रंथ की एक-एक प्रति अपने पाठकों के लिए रखनी अत्यावश्यक है।

—का० दा०

चयनिका : संपादक, अरुण द्विवेदी और राजेन्द्र तृसित्; प्रकाशक, प्रकाशन संस्थान, बिल्हौर (कानपुर); प्रवेश खंड की पृष्ठ संख्या १८३ और मूल्य तीन रुपए ।

चयनिका के मुखपृष्ठ पर चिरपरिचित साहित्यिक बंधु पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी का चित्र है । जान प्रड़ता है कि इन्हीं की प्रेरणा से कुछ उत्साही और उदीयमान साहित्यिकों ने कानपुर जिले के बिल्हौर में एक प्रकाशन संस्थान बना कर इस पत्रिका का प्रकाशन किया है । इसे त्रैमासिक होना चाहिए था । परन्तु प्रवेश खंड में यह आश्वासन प्रकाशक नहीं दे सके हैं । यदि कानपुर और पड़ोस के ४-६ जिलों के हिन्दी वाचनालयों की दौड़ प्रकाशक लगा सकें, तो नवजात **चयनिका** के लिए दीर्घ जीवन प्राप्त करना असंभव नहीं ।

श्री मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

(१) कार्बनिक रसायन : लेखक—श्री रामदास तिवारी तथा श्री रामचरण मेहरोत्रा, पृष्ठ संख्या ३९५, मूल्य ४ रुपए ।

इंटरमीडियेट कक्षा के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी प्रस्तुत पुस्तक बहुत ही सरल तथा सुबोध भाषा में लिखी गयी है जिसका पंचम संस्करण हमारे सामने है । छपाई, सफाई तथा गेट-अप आकर्षक है । विषय को भली भांति समझाया गया है । जहां पर यौगिकों का वर्णन किया गया है, वहां उनके सामान्य गुणों का वर्णन सधर्ममाला के गुणों और क्रियाओं का वर्णन करने के बाद किया गया है, सम्भवतः इसलिए कि उस समय तक विद्यार्थी अपने निष्कर्ष स्वयं निकाल लेगा । प्रूफ की अशुद्धियाँ तथा समीकरणों में अंकों की गलतियां कहीं-कहीं पर रह गयीं हैं जो थोड़ी सी सावधानी रखने पर दूर की जा सकती थीं ।

(२) प्रारम्भिक भौतिकी : लेखक—श्री दयाप्रसाद खण्डेलवाल : पृष्ठ संख्या ३५४; मूल्य ३ रुपए ५० पैसे ।

हाई स्कूल कक्षा के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण हमारे सामने है । इसकी भाषा विद्यार्थियों के लिए सरल, सुबोध तथा सुग्राह्य है । चित्र स्पष्ट तथा सुन्दर हैं । पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए कुछ सुझाव हैं । परीक्षा में प्राय: ऐसे प्रश्न किए जाते हैं कि ऐसा क्यों होता है ? इनका उत्तर देना प्रायः छात्रों के लिए कठिन हो जाता

है। विषयानुसार ऐसे प्रश्नों का यदि उपयुक्त स्थानों पर स्पष्टीकरण कर दिया जाय तो अच्छा हो। संख्यात्मक उदाहरण भी यदि कुछ बढ़ा दिए जायं तो अधिक अच्छा हो। पारिभाषिक शब्दावली के स्थान पर यदि कुछ भौतिक राशियों तथा स्थिराओं एवं भौतिक मानों की तालिका दी जाय तो अधिक लाभकारी होगी।

(३) जन्तु विज्ञान : लेखक—श्री आर० डी० विद्यार्थी : पृष्ठ संख्या २२६; त्रयोदश संस्करण (१९६३), मूल्य तीन रुपए।

(४) बनस्पति विज्ञान : लेखक—श्री आर० डी० विद्यार्थी : पृष्ठ संख्या २२८; चतुर्दश संस्करण (१९६४), मूल्य तीन रुपए।

विद्यार्थी जी जीवविज्ञान के क्षेत्र में गिने-माने लेखकों में से हैं। एक समय था जब विद्यार्थी जी की पुस्तकों के सामने दूसरी पाठ्य पुस्तकें पूछी नहीं जाती थीं। हाई स्कूल के छात्रों के लिए लिखी गयी प्रस्तुत दोनों पुस्तकों के जितने संस्करण हो चुके हैं उनसे इनकी उपयोगिता सिद्ध होती है। प्रकाशक ने सुन्दर चित्रों तथा बढ़िया कागज़ लगाकर पुस्तकों को और भी आकर्षक बना दिया है। एक बात का अनुरोध हम लेखक महोदय से करेंगे कि वह अपनी पुस्तकों का पुनरीक्षण आधुनिकतम अन्वेषणों तथा नवीनतम सिद्धांतों के आधार पर कर डालें और पारिभाषिक शब्दों का भी संशोधन जहां-तहां केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर कर दें। कुछ चित्र भी यदि बदल दिए जायं तो पुस्तक की उपादेयता बढ़ जायगी।

(५) प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान : लेखक—आर० डी० विद्यार्थी, प्रकाशक, श्रीराम मेहरा ऐण्ड कम्पनी, आगरा, पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य २ रु०।

(६) प्रैक्टिकल बनस्पति विज्ञान : लेखक—आर० डी० विद्यार्थी, प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एन्ड कम्पनी, आगरा; पृष्ठ संख्या ७०, मूल्य २ रु०।

प्रस्तुत दोनों ही पुस्तकें हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए प्रयोगात्मक निदेशों के रूप में लिखी गयी हैं। पुस्तकों की छपाई तथा सफाई आकर्षक और गेट-अप नयनाभिराम है। विभिन्न विषयों को लेकर जो प्रश्न दिए गए हैं उनके उत्तर यदि समझ कर लिखे जायं तो विद्यार्थियों को जीवविज्ञान सम्बन्धी अनेक आधारभूत सिद्धांतों का ज्ञान हो जायगा। चित्र सुन्दर तथा उपयोगी हैं। विद्यार्थियों के लिए ये दोनों ही पुस्तकें लाभकारी हैं।

—दे० शं० मि०

सम्पादकाय

सगर माथा-विजय के शिक्षकीय पाठ

महाद्वीपों में एशिया सबसे बड़ा है, तो इस महाद्वीप की हिमालय पर्वतश्रेणी पुरानी दुनिया की सभी पार्वतीय श्रेणियों से बड़ी है और इसका सर्वोच्च शिखर संसार के सभी पार्वतीय शिखरों से ऊँचा है। एक अंग्रेज अधिकारी ने इस शिखर की स्थिति और ऊँचाई का पता लगाया था तो उसके नाम से यह शिखर माउण्ट एवरेस्ट कहलाने लगा। यह हिमशिखर नेपाल के अन्तर्गत है और इसका नेपाली नाम है सगरमाथा जिसका हिन्दी रूपान्तर है हिमकिरीट। नेपाल के सर्वोच्च हिमशिखर का नामकरण नेपाली ही होना चाहिए।

इस शिखर तक पहुंचने के कई प्रयत्न हुए। परन्तु वे सफल न हो सके जब तक उपयुक्त परिधान के साथ आक्सिजन का प्रयोग चालू नहीं हो पाया। इस प्राविधिक प्रस्तुति के पश्चात् के इस शिखर तक पहुंचने का प्रथम सौभाग्य शेरपा तेनसिंह की सहायता से विदेशी हिलेरी को सन् १९५३ में प्राप्त हुआ। परन्तु एक ही बार शिखर तक पहुंचना उसने गनीमत माना।

भारतीय तेनसिंह का संसार के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचना हमारे लिए बड़े गौरव की बात थी। परन्तु पर्वतारोही दल के नेता विदेशी थे। अतएव यह आवश्यक माना गया कि भारतीय पर्वतारोहियों का एक दल बने और वह सगर माथा विजय का प्रयत्न करे। यों दार्जिलिंग में एक पर्वतारोही संघ बना और आवश्यक तैयारी होने लगी।

इस तैयारी के परिणामस्वरूप इस वर्ष भारतीय वायुसेना के लेफ्टिनेण्ट कमाण्डर कोहली के नेतृत्व में विशुद्ध भारतीय पर्वतारोही दल, एक बार नहीं, चार बार सगरमाथा के शिखर तक पहुंच गया और भारतीय ध्वज के साथ नेपाली ध्वज उस पर स्थापित हो सका।

इस विजय से भारतीय शिक्षक बंधुओं और उनके शासकीय नेताओं को कुछ पाठ मिलते हैं जो इस प्रकार हैं—

मानसिक, नैतिक और शारीरिक क्षमता में भारतीय होनहार जन्मना किसी जाति के नवयुवकों के पीछे नहीं। अठारह वर्षों से हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। परन्तु हमारी स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि में लम्बी परतन्त्रता

है जिसके अभिशाप स्वरूप हम अभी तक मानसिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर पाये हैं। मानसिक स्वतन्त्रता का तकाजा है कि हमारे विद्यालयों के होनहार शिक्षकों और पालकों के संगठित सहयोग से सहचर्या और सहकारी श्रम, मनोरंजन तथा प्रतिद्वन्द्विता के पाठ आनन्द के वातावरण में प्राप्त करें। शैक्षिक स्तर में हमारे होनहार उन्नत राष्ट्रों के बहुत नीचे हैं। इस निम्न स्तर के प्रमाण हमें राष्ट्रीय और व्यावसायिक काम-काज में निर्बल उत्पादन मात्रा से मिलते हैं। ओलिंपियाड जैसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में हमें अपना पिछड़ापन प्रत्यक्ष होता है। यह सब इसलिए कि राष्ट्रीय स्तर पर लगन और सहकारी श्रम के गुणों में हम स्वतन्त्र नागरिकों के समान नहीं।

ये बातें चरित्र विषयक हैं जिसका निर्माण अनुकरण के आधार पर होता है, व्याख्यानों के बल पर नहीं। अतएव पहला पग है कि हम शिक्षक स्वयं एकसूत्र में शिष्यों की सेवा के लिए संगठित हों, दूसरा है कि हम अपने अपने विद्यालयों के विद्यार्थियों के पालकों को विद्यालय की सेवा के लिए संगठित करें। तब हमारे और अपने अभिभावकों के अनुकरण पर विद्यार्थी भी संगठन के लिए प्रेरित होंगे। संगठन और सहकारी श्रम तथा मनोरंजन के बहुत-से क्षेत्र इनके लिए खुले हैं। कक्षा में पढ़ाई, स्वाध्याय और अनुशासन के लिए संगठित हों; मैदान पर खेलों के लिए और प्रांगण के बाहर समाज सेवा, पर्यटन और अन्य स्वस्थ मनोरंजनों के लिए।

इन मनोरंजनों में पहाड़ी स्थानों पर बसे होनहारों के लिए पहाड़ों पर चढ़ने के अभियान विशेष महत्व के हैं। हमें एक अत्यन्त ही काइयां और सशक्त वैरी से अपने उत्तरी सीमांत की रक्षा करनी है। यह सीमान्त दुर्गम माना जाता रहा, हमारे होनहारों को चाहिए कि वे इसे सुगम बनायें।

हिमालय के दर्रे सोलह-सत्रह हजार फुट की ऊँचाई तक पहुंचते हैं। जिन युवकों के ग्रीष्म में २०-२५ हजार फुट की ऊँचाई तक की चढ़ाई के अभियान होते रहेंगे, वे आवश्यक सैनिक प्रशिक्षण के पश्चात् इन ऊंचे दर्रों की रक्षा करने के लिए भी सक्षम होंगे। ये युवक पहाड़ी मार्गों से परिचित होंगे, तो उनकी रक्षा भी कर सकेंगे।

सगरमाथा-विजय के पश्चात् प्रत्येक बड़े विद्यालय में **पहाड़ी चढ़ाई** संघ बनने चाहिए और इनके सदस्य प्रत्येक ग्रीष्म में भारत के भीतर किसी निकट या दूर के पहाड़ी शिखर पर चढ़ने के अभियान करें।

त्रिभाषाई फार्मूले की सफलता का व्यावहारिक सुझाव

कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने देश के शिक्षालयों में तीन भाषाओं की पढ़ाई के पक्ष में प्रस्ताव तो पारित कर दिया है, परन्तु इस पढ़ाई की सफलता के व्यावहारिक पक्ष पर अभी तक गंभीर विचार नहीं हुआ है।

हमें याद रखना है कि सभी विद्यार्थी मेधावी नहीं होते। हमें अपना शिक्षा-क्रम औसत जहनियत के आधार पर बनाना होता है। इन विद्यार्थियों को भाषाएं ही नहीं सीखनी, उन्हें अपनी एक भाषा के माध्यम से विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिए भी समय निकालना है। इस अध्ययन के साथ उन्हें स्वस्थ मनोरंजनों का समय भी मिलना चाहिए। वस्तुस्थिति की रक्षा करते हुए ही त्रिभाषाई फार्मूले की सफलता सिद्ध हो सकेगी।

शिक्षा-मार्ग की स्थूल रूप में तीन मंजिलें हैं : प्रारम्भिक, माध्यमिक और सर्वोच्च। त्रिभाषाई फार्मूला माध्यमिक स्तर पर ही कार्यान्वित होना चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर विद्यार्थी एक ही भाषा पढ़ेंगे जो उनकी राज्य भाषा होगी। माध्यमिक स्तर पर बालक अपनी भाषा और उसके साहित्य के साथ अंग्रेजी भाषा सीखें और क्षेत्रीय भाषा। बालिकाओं के लिए अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य न रहे, वे अंग्रेजी की जगह संस्कृत ले सकें। परन्तु सर्वोच्च स्तर पर भाषाओं की पढ़ाई अनिवार्य न हो, विषय के रूप में विद्यार्थी किसी भी भाषा और उसके साहित्य का अध्ययन कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा का क्रम पांच-छः वर्ष तक चलता है। इस मंजिल पर भी विद्यार्थियों के लिए भाषाओं के साथ-साथ अन्य विषयों का अध्ययन अनिवार्य है। अतएव हमें उन दो भाषाओं के अध्ययन की सीमा बांधनी है जो विद्यार्थियों की राज्यभाषा नहीं है। इन भाषाओं को उसी रूप में उन्हें सीखना है जिसमें आजकल उस भाषा में विभिन्न गम्भीर विषयों पर पुस्तकें लिखी जाती हैं। उन्हें उन भाषाओं के ललित साहित्य—कहानी, नाटक, काव्य—से परिचित नहीं होना।

भारत को स्वतन्त्र हुए सत्रह वर्ष से अधिक हो गये हैं, परन्तु अंग्रेजी का पाठ्यक्रम अभी तक प्रायः वही है जो हमारी परतन्त्रता के युग में चालू था। तब भारतीय कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए आवश्यक था कि वे अपने अंग्रेज अफसरों से सही अंग्रेजी में बोल सकें, उन्हें सही अंग्रेजी में पत्र लिखें, उनसे साहित्य-चर्चा की क्षमता भी उनमें रहे। अब कोई अंग्रेज हमारा अफसर नहीं, शुद्ध अंग्रेजी बोलना-लिखना अनिवार्य नहीं। हमारा अंग्रेजी ज्ञान

इतना ही होना चाहिए कि हम किसी विषय पर अंग्रेजी में लिखी पुस्तक समझ सकें, उससे प्राप्त विचार हम अपनी भाषा में सही-सही व्यक्त कर सकें।

अतएव पाठ्यक्रम में अंग्रेजी भाषा ही पढ़ाई जाय, उसका साहित्य नहीं। कविता, नाटक, उपन्यास की पढ़ाई अनिवार्य न हो। विद्यार्थी वही अंग्रेजी समझनी सीखें जो आजकल अखबारों और वैज्ञानिक विषयों पर लिखी पुस्तकों में पढ़ने को मिलती है। उनके लिए उस स्तर की अंग्रेजी लिखना सीखना जरूरी न हो, परन्तु उनके लिए यह आवश्यक रहे कि अंग्रेजी में पढ़े विचार वे अपनी भाषा में सही सही व्यक्त कर सकें।

जो बात अंग्रेजी के लिए कही गई है, वही बात हिंदी राज्यों में क्षेत्रीय भाषाओं की पढ़ाई में लागू होनी चाहिए और, सरेदस्त, अहिन्दी राज्यों में हिन्दी की पढ़ाई के लिए भी। 'सरेदस्त' इसलिए कहा गया है कि अभी तो कुछ समय तक अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में रहना ही है। परन्तु उस यथेष्ट दूर समय में भी जब राज्यों के बीच लिखा-पढ़ी की भाषा हिन्दी हो जायेगी, अहिन्दी राज्यों के विद्यार्थियों के लिए तुलसीदास, सूरदास का अध्ययन अनिवार्य न होगा। उन्हें वही हिंदी पढ़नी, लिखनी और बोलनी सीखनी होगी जो सार्वजनिक व्यवहार में चालू होगी।

हमारे शैक्षिक नीति-निर्माता भाषा-शिक्षा के इन मौलिक तथा व्यावहारिक सिद्धान्तों पर विचार करके नीति-निर्णय करें और तदनुसार अपने विश्वविद्यालयों और शिक्षा विभागों को आदेश दें। शिक्षा क्षेत्र को परतंत्रता के अभिशाप से तुरन्त ही मुक्त होना है।

आलोचना की प्रार्थना है। पत्रिका के लिए उसका स्वागत भी है।

पढ़ाने-सीखने की एक नयी विधि

संयुक्त राष्ट्रसंघ से संबद्ध एक संस्था है जिसे संक्षिप्त रूप में यूनेस्को (UNESCO) कहते हैं। इसका काम है शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रचार के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-समृद्धि का विकास करना। इस संस्था के मत से मानव समाज का हित व्यापक शिक्षा में ही है। परन्तु निरक्षरता की समस्या इतनी भीषण है कि किसी क्रांतिकारी विधि के दिखने पर ही कदाचित् इसका हल सम्भव हो। इस समय संसार में निरक्षरों की संख्या ७५ करोड़ है और इस संख्या में प्रतिवर्ष ३०-४० लाख जुड़ते जा रहे

हैं। हल का कार्यक्रम बनाने में यूनेस्को संलग्न है। उसका अनुमान है कि इस पर कई अरब रुपयों का व्यय होगा।

परन्तु हल इतना कठिन नहीं क्योंकि पढ़ाने-सीखने की एक नयी विधि का भारी पैमाने पर विकास हालैंड के एक बिजली वाले कारखाने में किया जा रहा है।

इस विधि में टेप पर बोली उतार ली जाती है और टेलिविज़न का उपयोग भी किया जाता है। चित्रों के साथ बोली सुनकर हजारों की संख्या में एक ही समय अशिक्षित ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे भाषा सीख सकते हैं और वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं।

अतएव भाषा पढ़ाने-सीखने की विधि की एक प्रविधि विकासशील है जिसे भाषा प्रयोगशाला कह सकते हैं। इस प्रयोगशाला का सदस्य होने पर विद्यार्थी को अपने ही घर में रेडियो द्वारा पाठ मिलते हैं, अपनी कही बात वह स्वयं सुन सकता है और दूर बैठे शिक्षक से उसे अपनी बात के संशोधन भी मिलते रहते हैं। यों घर बैठे वह भाषा सीखता रहता है। समझना और बोलना तो सीख ही जाता है। पत्राचार द्वारा वह लिखी-छपी भाषा समझने लगता है और स्वयं भी लेखनी द्वारा अपने विचार व्यक्त करना सीख जाता है।

नई प्रविधि द्वारा भाषा सीखने में समय की कितनी बचत होती है, यह अभी कहना सरल नहीं। परन्तु इसके हिमायतियों का दावा है कि समय की दो-तिहाई बचत तो हो ही जाती है। दो घण्टे प्रतिदिन सीखने के लिए बैठने पर डेढ़ महीने के भीतर नई भाषा में विद्यार्थी के लिए साधारण वार्तालाप तो संभव हो ही जाता है।

बहु-भाषा भाषी भारत में इस नयी प्राविधिक विधि पर सफल प्रयोग द्वारा हिन्दी का प्रचार यथेष्ट सुगम हो जाना चाहिए।

उर्दू साहित्य के प्रचार का पक्ष

भारत में अंग्रेजी का अस्तित्व बनाये रखने के लिए एक अभियान प्रारम्भ हुआ है। अंग्रेजी परस्त भारतीय इण्डियन इंग्लिश पर सेमिनार करेंगे। भारतीयों ने अँग्रेजी साहित्य को पिछले सौ वर्षों के भीतर बहुत कुछ दिया है। परन्तु अंग्रेज साहित्यिकों की नजर में इसे अंग्रेजी साहित्य में कोई मान्यता प्राप्त नहीं। यह साहित्य रोमन लिपि में है और इसका व्याकरण अंग्रेजी है। अभी इस साहित्य के पुजारियों की यथेष्ट संख्या

स्वदेश ही में है। परन्तु निश्चित है कि इन पुजारियों की संख्या घटती जायगी।

ऐतिहासिक काल में भारत पर कई विजातियों के आक्रमण हुए। परन्तु आक्रामक भारतीय संस्कृति में समा गये। फिर पश्चिमी एशिया में एक धर्म का प्रचार हुआ जिसके प्रचारकों ने एक भाषा, एक लिपि, एक पैगम्बर और एक तीर्थ को सर्वोपरि मान्यता दी। इस धर्म के मानने वालों का आक्रमण इस देश पर हुआ और अपने संगठन के बल पर वे विजेता हुए, तो एक ओर भारतीय संस्कृति ने अपने अंग समेट लिए और दूसरी ओर विजेता अपने धर्म, अपनी संस्कृति, के विकास के लिए संघर्ष-शील हुए। परन्तु संघर्ष का स्थायित्व नहीं। यथेष्ट संघर्ष के पश्चात् समन्वय सक्रिय हुआ। इस समन्वय के परिणामस्वरूप वह भाषा देश में जन्मी जिसे उर्दू कहते हैं।

दिल्ली से मेरठ तक यमुना नदी के दोनों ओर बोली जाने वाली हिन्दी नगरों के पास बनी कचहरियों और छावनियों में शिष्टाचार के लिए मँजकर फारसी लिपि में लिखी जाने लगी क्योंकि अरब, अफगान या ईरानी सदैव यहाँ आकर प्रशासन में सर्वोच्च पद प्राप्त करते रहते और ये प्रशासक फारसी लिपि ही से परिचित थे।

इस प्रकार जन्मी उर्दू की लिपि तो विदेशी रही, परन्तु भारत में रहते रहते भाषा की भारतीयता बढ़ती चली गई। जब विदेशी प्रशासकों की भारतीयता विकासशील होकर उदार हुई तो हिन्दी साहित्य विकासशील हुआ और जायसी, नानक, कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास जैसे हिंदी साहित्य के स्रष्टाओं को भारत ने जन्म दिया। परन्तु इनकी भाषा उर्दू से अलग रही।

फिर देश पर अंग्रेजों का एक-छत्र शासन हुआ और उनकी मशीनों ने भारत को एक सूत्र में बांधा। तब भारतीयता ने राष्ट्रीय रंग पकड़ा और हिन्दी की 'खड़ी बोली' ने जन्म लिया। इस खड़ी बोली में शिष्ट समाज द्वारा बोली जाने वाली उर्दू का व्याकरण अपनाया गया, यह संस्कृत की देवनागरी लिपि में लिखी जाने लगी और फारस या अरब के शब्दों की जगह इसमें संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द प्रयुक्त होने लगे।

देश को दो भागों में बांटकर अंग्रेजों को यहाँ से विदा होना था। विभाजन के पश्चात् फारसी लिपि में व्यक्त उर्दू साहित्य की मान्यता यहाँ घटती जा रही है। यह अच्छी बात नहीं; तो भी अपनी सरसता, शिष्टता

तथा रवानियत और अपने मधुर हास्य तथा व्यंग्य की निधि लिये यह साहित्य भारतीय संस्कृति का सम्मान्य अंग हो सकता है और उसका व्यापक प्रचार संभव है यदि यह देवनागरी लिपि अपना ले। कैफियत यह है कि जिस पाकिस्तान ने उर्दू को राष्ट्रीयता प्रदान की है उसकी जनभाषा उर्दू से नितांत भिन्न है। सिंध में सिंधी बोली जाती है, पंजाब में पंजाबी, पश्चिमोत्तर सीमांत में पश्तो या बलूची और बंगाल में बंगला। केवल पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के नगरों में पुरानी पीढ़ी के उर्दू-दां दिखते हैं। नई पीढ़ी के हिन्दू-मुसलमान विद्यार्थी हिन्दी पढ़ रहे हैं। इस कारण उर्दू पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं की खपत घटती जा रही है। यदि उर्दू साहित्य के नेता प्रगति के प्रतिकूल फारसी लिपि का पल्ला पकड़े रहते हैं, तो उर्दू साहित्य का अधिकांश समय पाकर विस्मृत हो जायगा और भारतीय संस्कृति उस बहुमूल्य निधि से वंचित हो जायगी जो उर्दू साहित्य से हमें प्राप्य है।

इसके विपरीत यदि उर्दू-दां देवनागरी लिपि अपना लेते हैं और इस साहित्य का अधिकांश देवनागरी लिपि में प्रकाशित हो जाता है तो हिन्दी के साथ इस साहित्य को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त होगी और हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का सच्चा तथा स्थायी समन्वय सिद्ध होगा।

भारतीय शिक्षा की नीति इस समन्वय के पक्ष में सक्रिय है। हम उर्दू-दां लेखकों के फारसी लिपि में प्राप्त लेखों का स्वागत करते हैं और देवनागरी लिपि के माध्यम से उन्हें **भारतीय शिक्षा** में प्रकाशित करके हम गौरवान्वित होते हैं।

आगामी शिक्षक दिवस

हम शिक्षकों के सौभाग्य से भारत का नेतृत्व आज उन महानुभावों को प्राप्त है जो शिक्षक रह चुके हैं। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् और उप-राष्ट्रपति डा० ज़ाकिरहुसैन लंबी अवधि तक शिक्षक रहे, तो प्रधान मन्त्री लालबहादुर शास्त्री भी शिक्षण सेवा कर चुके हैं, कभी वकील, डाक्टर या इंजीनियर नहीं रहे। अतएव राष्ट्रपति राधाकृष्णन् की जन्मतिथि को शिक्षक दिवस के रूप में मनाकर हमें शिक्षक और शिक्षा की ओर भारतीय नागरिक की चेतना जाग्रत और पुष्ट करने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है।

यह दिवस जिस प्रकार मनाया जाता है, उससे प्रदर्शन मात्र होता है जिसका विशेष स्थायित्व नहीं। स्थायित्व के लिए शिक्षक और पालक वर्गों के अलग-अलग परन्तु एक-दूसरे से सक्रिय सहयोग के लिए दृढ़-संकल्प

संघ प्रत्येक छोटे से बड़े विद्यालय तक के लिए बनने आवश्यक हैं। इनका श्रीगणेश अगले शिक्षक दिवस पर हो। विद्यार्थियों के माता-पिता साग्रह और सविनय उस दिन विद्यालय के प्रांगण में निमंत्रित हों। उनके साथ शिक्षकों की गोष्ठी हो। शिक्षालय की समस्यायें पालकों के सामने लायी जायँ। उनकी शंकाएं, उनके सुधार विषयक सुझाव, विद्यालय के प्रवन्धकों के सामने प्रस्तुत हों, जिनकी विद्यालय के प्रांगण में उपस्थिति उस दिन अनिवार्य रहे। यथेष्ट विचार-विमर्श के पश्चात् परन्तु सभा-विसर्जन के पहले दोनों-शिक्षकों और पालकों-के अलग-अलग संघ स्थापित हों जिनके विधान में पारस्परिक सहयोग का अनिवार्य नियम हो और इन दोनों को विद्यालय की प्रबन्ध समिति से हार्दिक आशीर्वाद मिलें।

फरवरी के अंक में शिक्षक-संरक्षक संपर्क की एक योजना प्रकाशित है जिस पर अच्छी प्रतिक्रिया हुई है। यदि यह योजना चालू हो जाती है तो इससे नवजात संरक्षक संघ को बल मिलेगा और समय पाकर आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद शिक्षा का स्तरोन्नयन होगा।

अतएव इस योजना को देश के नेतृत्व से भी प्रोत्साहन मिलना वांछनीय है।

चन्द्रमोहन जी का विद्यार्थी-जीवन

बन्धुवर चन्द्रमोहन नाथ चक की गणना देश के उन सर्वोत्कृष्ट शिक्षकों में है जिन्होंने शिक्षण सेवा ही के लिए अपने विद्यार्थी काल में तैयारी की। आपके स्वर्गीय पिता जगमोहननाथ जी लखनऊ के मान्य वकील तो थे ही, वह लखनऊ विश्वविद्यालय में कानून के बहुत ही प्रिय प्राध्यापक भी थे। चन्द्रमोहन जी को शिक्षण सेवा के लिए सर्वप्रथम प्रेरणा अपने पिता और नाना ही से मिली। तत्पश्चात् काशी, लखनऊ, इलाहाबाद और कैंब्रिज में आप ऐसे शिक्षकों के सम्पर्क में आये जिन्हें अपने शिष्यों की शिक्षण सेवा में सच्चा आनन्द मिलता था। उनके आनन्द से आपको भी शिक्षण सेवा के लिए प्रेरणा मिली और आप शिक्षक हुए। सफल शिक्षण के लिए योग्यता ही यथेष्ट नहीं; शिक्षक को अपनी सेवा में आनन्द की अनुभूति भी होनी चाहिए। उत्तर प्रदेश में चन्द्रमोहन जी की जन्मभूमि है और इस प्रदेश पर भारतीय शिक्षा निदेशक नियुक्त होने लगे, तो चन्द्रमोहन जी को इस पद से शिक्षकों और शिक्षा की सेवा का सबसे अधिक समय (९ वर्ष

४ महीने) मिला; जिस कारण प्रदेश की शैक्षिक गतिविधि पर आपकी सेवा की छाप अमिट है ।

शिक्षक दिवस पर शिक्षक वर्ग को अपने वर्ग के नेताओं की करनी से प्रेरणा मिलना चाहिए और इन नेताओं के विद्यार्थी जीवन से उनके शिष्यों को स्फूर्त होना चाहिए । इसीलिए इस अंक में चन्द्रमोहन जी के विद्यार्थी जीवन की कहानी प्रकाशित है ।

लन्दन की खेल-कूद प्रदर्शिनी में भारतीय वस्तुयें

लन्दन में क्रिस्टल पैलेस स्थित राष्ट्रीय मनोरंजन केन्द्र में अगस्त १० से २१ तक एक अन्तर्राष्ट्रीय खेल-कूद समारोह और प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया । इस प्रदर्शिनी में भारत सरकार का भी एक मण्डप था ।

इस प्रदर्शिनी के आयोजनकर्ताओं के एक प्रवक्ता ने बताया कि भारतीय मण्डप विशालतम मण्डपों में से एक था जिसमें भारत निर्मित विभिन्न खेल-कूद की वस्तुयें, जैसे टेनिस, रैकेट, हाकी स्टिक, फुटबाल तथा खेल-कूद के अन्य उपकरण प्रदर्शित किए गये ।

खेल-कूद समारोह में १० देशों के प्रमुख जिमनास्टों और एथिलीटों ने भाग लिया । यह समारोह १९४८ के ओलिम्पिक के बाद इंग्लैण्ड में खेल-जगत का सबसे बड़ा प्रदर्शन था ।

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

१—विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति
२—क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति
३—भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ
४—प्रधान का पत्र
५—अभिभावकों का समस्या-समाधान
६—शिक्षक प्रशस्ति
७—कक्षागत समस्या
८—पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा
९—शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा

* * *

विशेषांक योजना

—स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि
—विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)
—विदेशों में युवक-संघों की प्रगति
—विदेशों में शिक्षक संघ
—विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था
—प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था (मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)
—विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्थाएँ
—विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था
—नारी क्षिक्षा
—हिन्दी भाषा के व्यापक पचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना
—शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल
इन्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री,
रतीय शिक्षक संघ, झा–शेषाद्रि–खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर
द्वारा प्रकाशित ।

रजिस्टर्ड नं० एल ११९

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लिखे या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने पर लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। लेख भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ-३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र-पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की

मासिक

मुख पत्रिका

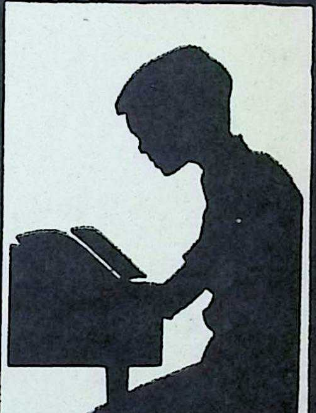

सितम्बर, १९६५

भारतीय विद्यालयों, महाविद्यालयों और पुस्तकालयों के अध्यक्षों के प्रति

सहयोगी बहिनो और भाइयो,

भारतीय शिक्षक संघ (All India Federation of Educational Associations) सन् १९२५ से आपकी सेवा करता आ रहा है। इसके संस्थापक थे स्व० देवी प्रसाद खत्री, जो चार वर्ष पहले यू० पी० सेकंडरी एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना कर चुके थे। समय की मांग ने हमें हिंदी के माध्यम से आपकी सेवा के लिए प्रेरित किया है, तो हम दोनों आपकी अवैतनिक ही सेवा करते हैं, और आपके संघ की सेवा तो लाभमुक्त है ही। हममें से एक (कालिदास कपूर) तो खत्री जी का सहपाठी रहा और दूसरा (ए० पी० खत्री) उनका अनुज है।

यह **भारतीय शिक्षा** का सातवाँ अंक है। पहला अंक पिछले गणतंत्र दिवस पर प्रकाशित हुआ था। चौथा विशेषांक था—अहिंदी राज्यों में हिंदी प्रगति। यों तो सभी अंक पठनीय, मननीय और संग्रहणीय हैं। परंतु विशेषांक में पाठकों को वह निधि मिलती है जो सामयिक साहित्य में कहीं और उपलब्ध नहीं। जिस भावना और उद्देश्य से हम आपकी सेवा में रत हैं, उसका आपसे तकाजा है कि स्वयं और अपनी पहुँच के भीतर पत्रिका के यथाशक्ति प्रचार में योगदान दें, उस निधि से ही जो अध्यक्ष की हैसियत से आपके अधिकार के अंतर्गत है।

आदेश के प्रार्थी हैं। हम दोनों कृतज्ञ होंगे।

विनीत

कालिदास

ए० पी० खत्री

637-7
1-12-65

भारतीय शिक्षा

भारतीय शिक्षक संघ की
मासिक मुख-पत्रिका

प्रथम वर्ष ● सितम्बर, १९६५ ● सप्तम अंक

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

१–अध्यक्ष–दीवानचन्द शर्मा
२–शिक्षामंत्रालय से मनोनीत–डा० गोपाल शर्मा
३–असम–परेशचन्द्र देव शर्मा
४–आंध्र–डा० भीमसेन निर्मल
५–उड़ीसा–राधाकान्त मिश्र
६–कश्मीर–पृथ्वीनाथ राजदान
७–केरल–ए० चन्द्रहासन
८–गुजरात–जेठालाल जोशी
९–पंजाब–डा० इन्द्रनाथ मदान
१०–बंगाल–मोहितकुमार बनर्जी
११–बिहार–श्यामजी सिंह
१२–मद्रास–डा० शं० ना० गणेशन
१३–मध्यप्रदेश–डा० शंभुनाथ उपाध्याय
१४–महाराष्ट्र–प्र० रा० भूपटकर
१५–मैसूर–ना० नागप्पा
१६–राजस्थान–शंकरसहाय सक्सेना
१७–सम्पादक : सचिव–कालिदास कपूर

भारतीय शिक्षक संघ
पोस्ट बाक्स नं० ५२, कानपुर

वार्षिक शुल्क — ७ रु०
यह अंक — ७० पैसे

विषय-सूची

पृष्ठ
१—शिक्षा का वास्तविक और आवश्यक स्वरूप—आचार्य दीनानाथ 'शरण' ३
२—बुनियादी शिक्षा और धर्म—प्राध्यापक शम्सुद्दीन ९
३—प्रशिक्षण में पंच पद—कमल मोहन १४
४—दस तस्वीरें—कालिदास कपूर २१
५—एपालेचियन वालंटियर्स—अमेरिकन रिपोर्टस से साभार ... २८
६—तिब्बती और उनके बच्चे—श्रीमती कुमुद झिगरण ... ३२
७—दक्षिण भारत की हिन्दी समस्या—ए० पी० पी० नम्पूतिरि ३७
८—हमारी सुरभारती—गौरीशंकर गुप्त ४१
९—हिन्दी और हम—गोपीलाल 'अमर' ४५
१०—शैक्षिक मूल्य—डॉ० रामशकल पाण्डेय ४७
११—वयोवृद्ध ब्रिटिश राष्ट्रकवि जॉन मेसफ़ील्ड—जे० एच० बी० पील ५३
१२—बालकों के चरित्र निर्माण की समस्यायें—'संजय' ... ५६
१३—शिक्षक से—डॉ० भागवत प्रसाद मिश्र ६४
१४—शैक्षिक समाचार-समुच्चय—अगस्त—आचार्य रामखेलावन चौधरी ६६
१५—परिचायिकी ७२
१६—संपादकीय ७४

शिक्षा का वास्तविक और आवश्यक स्वरूप

(आचार्य दीनानाथ 'शरण' एम० ए०, नेपाल)

आज हम लोग पहले के किसी भी जमाने से ज्यादा जटिल परिस्थितियों में जी रहे हैं। आज की इन जटिल परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा भी अवश्य ऐसी होनी चाहिए जो हमारे नवयुवक-नवयुवतियों को इस नये युग के उपयुक्त बनाये। शिक्षा का हमेशा यही लक्ष्य रहा है और रहना चाहिए। तो प्रश्न उठता है कि नयी जटिल परिस्थितियों के अनुरूप, वास्तव में, आज हमें किस प्रकार की शिक्षा चाहिए ? आज के जमाने की जटिल परिस्थितियों के पहाड़ों को पार करने के लिए चरित्र के किन गुणों और मस्तिष्क की किन शक्तियों का विकास ज़रूरी है ? भविष्य जब वर्तमान से भिन्न होगा ही तो फिर आज हम क्या सीखें जो कल भी काम दे ?……

संभवत: प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर के लिए गम्भीरतापूर्वक सोचना पड़ेगा और समस्या के वास्तविक समाधान के लिए सबसे पहले ठीक विपरीत दिशा में यह तोलना पड़ेगा कि शिक्षा का तब क्या स्वरूप हम अपनाते यदि परिस्थितियां सदा एक सी रहतीं और **दुनिया अपरिवर्तनशील होती ?**……

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हमारी वर्तमान दुनिया पर कोई अनोखा जादू चल गया हो और सभी परिवर्तन बंदी हो गये हों जैसा कि अंग्रेज़ी के कवि जान कीट्स ने अपनी कविता Ode on a Grecian urn में चित्रित किया है :

> Happy melodist, unwearied
> For ever piping songs for ever new.

जिन्दगी तब ऐसी स्थितियों में अजीब अवसादमयी हो जायेगी, मगर फिर भी कुछ ऐसी बहार-भरी ज्यों कालेज के कुछ वर्ष होते हैं एम० ए० के पहले। जान कीट्स की पंक्तियों में सुख-दुख-भरी उस विचित्र स्थिति को यों कह सकते हैं :

> Bold lover, never, never canst thou kiss,
> Though winning near the goal–yet, do not grieve;
> She cannot fade, though thou hast not thy bliss,
> For ever wilt thou love, and she be fair.

ऐसी जिन्दगी की अच्छाइयों-बुराइयों अथवा ऐसी दुनिया के गुण-दोषों के बारे में मैं यहाँ विस्तार से कुछ कहना नहीं चाहता। मैं केवल यह बताना चाहूँगा कि ऐसी गतिहीन ज़िन्दगी अथवा अपरिवर्तनशील दुनिया में कैसी शिक्षा की ज़रूरत होती? स्पष्ट शब्दों में—हम कैसी शिक्षा अपनाते या अपने नवयुवक-नवयुवतियों को देते यदि दुनिया परिवर्तन-रहित होती, नयी परिस्थितियों का मुकाबला नहीं करना होता, प्रगति से हम तटस्थ होते और किसी तरह के खतरे की हमें शंका नहीं होती।

प्रश्नों के उत्तर सहज हैं। सबसे पहले हम लोग तब निस्सन्देह व्यावसायिक प्रशिक्षण पर ध्यान देते और इस दृढ़ विश्वास के साथ कि जो कुछ सीखे-सिखाएँगे कभी पुराना नहीं पड़ेगा। इसके बाद हम लोग तब वर्तमान समस्याओं के ही अध्ययन और समाधान पर विशेष ध्यान देते क्योंकि परिस्थितियों के बदल जाने का खतरा ही हमें न होता। तदुपराँत, हम नवयुवक-नवयुवतियों के समाजों में परस्पर वर्तमान समायोजन (adjustment) पर अधिक ध्यान देते क्योंकि फिर और किसी प्रकार के भी समायोजन की आवश्यकता पड़ेगी—इससे हम निश्चिन्त होते!

दूसरी तरफ, हम लोग तब विज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान-बर्द्धन से भी लापरवाह होते। इंजन में ठीक स्थान पर तेल देना, स्विच दबाना, फ्यूज़ हुए बल्वों को बदलने की तरकीब जानना और बस इसी तरह की मामूली जानकारी भर काफ़ी होती और, जैसा कि हम मान आये हैं, दुनिया और जिन्दगी की परिस्थितियों के सदा एक समान रहने और नहीं बदलने से विज्ञान के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सिद्धान्तों के अध्ययन-मनन की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती। हम लोग अपनी छात्र-छात्राओं को भाषा और साहित्य के अन्तर्निहित सौन्दर्य और सूक्ष्मताओं पर भी ध्यान देने के लिए नहीं कहते; क्योंकि हमें भाव-विचारों की सीधी-सादी अभिव्यक्ति भर की जरूरत होती और दैनिक बात-व्यवहार की भाषा के लिये व्याकरण तथा रचना की केवल कुछ साधारण बातों की जानकारी काफी होती।

इतिहास का भी अध्ययन तब हम नहीं करते क्योंकि इतिहास परिवर्तनशील स्थितियों का चित्रण है और परिवर्तन से ही हम अपरिचित होते। दर्शन के अध्ययन या किसी प्रकार के तत्व-चिंतन से भी हम बे-फिक्र रहते क्योंकि बदली हुई दुनिया में अपने अस्तित्व की आशंका ही हमें नहीं होती कि हमें कुछ गहरे तौर पर सोचने की जरूरत पड़ती।

सारांश यह कि हमारी शिक्षा का कुछ ऐसा ही स्वरूप होता यदि

जिन्दगी स्थिर होती, परिस्थितियाँ अपरिवर्तनशील होतीं और दुनिया हमेशा बदलती नहीं रहती।

लेकिन वह जादू, मान लीजिये, अब खतम हो चुका है और हम लोग आज कल की वास्तविक धरती पर आ गये हैं। यह तो कठोर सत्य है कि जिन्दगी बदलती है, परिस्थितियाँ बदलती हैं और दुनिया परिवर्तनशील है। तब सोचिये, वैसी शिक्षा के क्या परिणाम होंगे जो अभी-अभी हम अपने नवयुवक-नवयुवतियों के लिए कह आये हैं?

सबसे पहले तो व्यावसायिक प्रशिक्षण अनुपयोगी हो जायेगी और नवयुवक-नवयुवतियों को विफलता होगी, क्योंकि जो प्रशिक्षण वे प्राप्त करेंगे कालान्तर में वह पुराना पड़ जायेगा और नये प्रशिक्षण के वे अयोग्य सिद्ध होंगे क्योंकि मौलिक सिद्धान्तों से तो वे परिचित रहेंगे नहीं। ज्यों ही नयी समस्याएँ और नयी परिस्थितियाँ सामने आयेंगी कि वे उनके उपयुक्त समाधान में अयोग्य और असमर्थ नागरिक होंगे। हरेक नयी परिस्थिति, हरेक घटना और हरेक नया परिवर्तन इन नवयुवक-नवयुवतियों को बिजली के धक्के सा मालूम पड़ेगा। उनकी शिक्षा ही ऐसी होगी कि वे अप्रत्याशित परिवर्तन के अनुरूप ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कुछ नहीं सोच-समझ पायेंगे कि नयी परिस्थिति का मुकाबला कर सकें। ज्यों ही उनकी स्थिर, परिवर्तन-रहित जिन्दगी की दुनिया चूर-चूर होगी, वे ऐसा महसूस करेंगे कि उनकी बुद्धि कितनी छोटी है और वैसी उच्च शिक्षा से वे कितना वंचित है जिसके बिना जीवन और संसार का सफलतापूर्वक सामना करना असंभव है।

सारांश यह कि शिक्षा का जीवन समायोजन (life adjustment) वाला स्वरूप या व्यावसायिक प्रशिक्षण अथवा समसामयिक समस्याओं और आवश्यकताओं से सम्बद्ध शिक्षा का स्वरूप **बदलते हुए जीवन एवं परिवर्तनशील** संसार के लिए, निश्चय ही, सर्वथा अनुपयुक्त है।

यदि हमारे विद्यालय और महाविद्यालय इस बदलते हुए जीवन एवं परिवर्तनशील संसार के लिए उपयुक्त शिक्षा देना चाहते हैं तो उनमें केवल परिवर्तन ही जरूरी नहीं है। जरूरी यह भी है कि वे सही दिशा में बदले। तात्पर्य यह कि हमारे समग्र बौद्धिक जीवन के अनुरूप ही शिक्षा में भी परिवर्तन होने चाहिए। नहीं तो शिक्षा हमारे यथार्थ सांसारिक जीवन के लिये ठीक तैकारी नहीं, पलायन होगी।

शिक्षा में परिवर्तन की सही दिशा पर विचार करना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे विद्यालय और महाविद्यालय पिछले दो दशकों से आखिर

किसी दिशा की ओर गतिशील हैं ? शिक्षा के पाठ्यक्रमों में मौलिक शास्त्रों के अध्ययन पर कितना जोर दिया गया है ? शास्त्रों के अध्ययन में उच्च स्तरीय ग्रंथों को कहाँ तक सम्मिलित किया गया है ? दूरदर्शिताहीन कार्यक्रमों को पाठ्यक्रमों से कितना छांटा जा सका है ? अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर शिक्षा का कितना ह्रास हुआ है ? क्या शैक्षणिक उपलब्धियों का स्तर ऊंचा भी उठा है या पास होना इतना आसान और शिक्षा इतनी सस्ती कर दी गई है कि कल्लू, मल्लू-भल्लू सब शिक्षित कहलाने लगें ?

इन प्रश्नों के उत्तर शैक्षणिक संसार से परिचित व्यक्तियों को निर्भीकता के साथ देना चाहिए। जहाँ तक मेरी जानकारी है, विद्यालय और महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों में मौलिक शास्त्रों के बजाय सस्ते बाजारू नोट्स पर ही जोर दिया गया है। यदि स्पष्टता के लिए मुझे क्षमा करें तो कहूँगा कि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में मौलिक शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की ओर बहुत कम विचारकों का ध्यान गया है। जिस विषय पर जो उच्च स्तरीय ग्रंथ हैं उन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं पाकर निम्न कोटि की पुस्तकों को अक्सर पाठ्यक्रम में हम निर्धारित पाते हैं, जो पाठ्यक्रम बनाने वाली समिति के सदस्यों द्वारा खुद लिखी गयी होती हैं। बिहार के अनेक विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रमों के निरीक्षण के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं।

सन् ४७-४८ के बाद सांस्कृतिक जागरण भी अद्भुत हुआ है। हमारे अपने एक छोटे राज्य (बिहार) में पहले जहाँ दशहरे के अवसर पर पटना-जैसे राजनगर में मुश्किल से दस-बीस देवी-मूर्तियाँ दिखती थीं, अब प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में, गली-गली दिखने लगी हैं। पहले सौ पुरुष देवी-दर्शनार्थ निकलते थे, तो अब लाख निकलते हैं। पहले जहाँ केवल प्रौढ़ औरतें बाहर निकलती थीं, अब युवतियाँ क्या, तरुणियाँ व षोडशियाँ घर से बाहर तितली-सी बन-ठन कर निकलने लगी हैं। यह सब जागरण है। सांस्कृतिक जागरण !! जाने कितनी अब पूजाएं होन लगी हैं, और इन सब अवसरों पर होता क्या है ? स्वच्छंद घूमना-घामना, मिलना-जुलना, खाना-पीना और राग रंग !!! आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों पर भी इस महान सांस्कृतिक जागरण (!) का प्रभाव पड़ा है और हर विद्यालय में आज़ साल में कई बार सांस्कृतिक कार्यक्रम धूम-धाम से किये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर होता वही है—छात्र-छात्राओं का नाचना-गाना, स्वच्छंद घूमना-घामना, मिलना-जुलना और राग-रंग। मेरे विचार से, दूर दर्शिता हीन ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों को हमारे पाठ्यक्रमों से

जितना ही छांटा जाये उतना ही अच्छा है। दरअसल, ये सांस्कृतिक कार्यक्रम सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं हैं, घोर असांस्कृतिक हैं जो नवयुवक नवयुवतियों में अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचार फैला रहे हैं, उनके नैतिक स्तर एवं चरित्र गिराते जा रहे हैं।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर शिक्षा का जितना ह्रास पिछले दस वर्षों में हुआ है, उसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करने वाले शिक्षक प्राधानाध्यापक या प्राचार्य के 'गुड बुक' में आ जाते हैं, प्रशंसा-पात्र बन जाते हैं। ये शिक्षक ठीक से अपना शिक्षण-कार्य नहीं करते, क्लास में पढ़ाते-लिखाते नहीं। दूसरी तरफ, वे छात्र-छात्रायें भी जो सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, परीक्षा में अच्छा नहीं करने पर भी पास कर दिये जाते हैं और उनकी अनुशासनहीनता पर भी उन्हें दंड नहीं दिये जाते। परिणाम यह है कि शिक्षा का तीव्र गति से ह्रास हुआ है और ह्रास होता चला जा रहा है।

स्पष्ट है कि शैक्षणिक उपलब्धियों का स्तर ऊपर उठने की बात तो जाने दीजिये, वह भी स्तर कायम नहीं रहा है जो आज से बीस साल पहले था। तब शिक्षा के द्वार इनों-गिनों के लिए ही खुले थे। अब ये द्वार सबके लिए खुल गये हैं। पहले से संस्कारहीन होने के कारण पिछड़ी जातियों के लिए तो शिक्षा का स्तर उन्नत हुआ है; परन्तु विस्तार के साथ शैक्षणिक उप-लब्धियों का स्तर अवनत होता गया है।

हमारी शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक निर्धारण न होने का ही परिणाम है कि विदेशी भाषाओं के ज्ञाताओं की संख्या अत्यल्प है। एक स्वतन्त्र राष्ट्र को अनेक विदेशी राष्ट्रों से सम्पर्क-स्थापन की आवश्यकता होती है और तदर्थ विदेशी भाषाओं का महत्व निर्विवाद है। शिक्षा का वह वास्तविक स्वरूप जिसकी हमें आज जरूरत है, विदेशी भाषाओं की उपेक्षा करके नहीं चल सकता। ज्ञान-विज्ञान भी आज की दुनिया में इतने महत्वपूर्ण हैं कि उन्नतिशील राष्ट्रों के लिये शिक्षा में उन्हें स्थान देना अत्यंत आवश्यक है। किन्तु परिवर्तनशील संसार को हमेशा ध्यान में रखते हुए मात्र समसामयिक समस्याओं के अनुरूप शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाना गलत होगा। अतएव ज्ञान-विज्ञान, विदेशी भाषा और इन सबसे ऊपर अपने राष्ट्र की सभ्यता-संस्कृति के अनुरूप उच्च स्तर की दार्शनिक शिक्षा को भी पाठ्यक्रमों में स्थान देना पड़ेगा। स्मरणीय है कि राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और उन्नति का मूल राष्ट्रीय भाषा है और राष्ट्रीय भाषा एवं साहित्य को पाठ्यक्रमों में सर्वोपरि

स्थान देना उचित होगा। इंगलैण्ड, रूस, जापान, चीन और उन्नतिशील राष्ट्रों ने अपनी-अपनी राष्ट्र भाषा को सर्वोपरि महत्व दिया है और हमें भी अपनी शिक्षा के पाठ्यक्रमों में अपनी राष्ट्रभाषा को सर्वोपरि स्थान देना चाहिये। किन्तु अंग्रेजी के नाम पर अभी हाल में हमारे देश में जो हंगामे हुए उनसे कौन अपरिचित है। जब तक हम सब में, वास्तव में, राष्ट्रीय एकता की भावना न होगी, राष्ट्रीय शिक्षा का भी स्तर ऊँचा न उठेगा। राष्ट्रध्वज के समान ही राष्ट्रभाषा राष्ट्र की एकता और गौरव की प्रतीक है और राष्ट्रभाषा का सम्मान प्रत्येक नागरिक को करना चाहिए। शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भी राष्ट्रभाषा को सर्वोपरि स्थान देने की आज बहुव बड़ी आवश्यकता आ गयी है। अपनी राष्ट्रभाषा और अपने साहित्य का अच्छा ज्ञान प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का सर्वप्रथम गुण है।

यदि राष्ट्र को उन्नतिशील और शक्ति-सम्पन्न होना है तो निश्चय ही शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन करना होगा, उसे अधुनातन बनाना होगा। इसके लिए यह जरूरी नहीं कि कभी 'मैट्रिक', कभी सेकंडरी कभी 'थ्री इयर डिग्री कोर्स', कभी 'प्रेक्टिकल' और कभी 'प्रि-यूनीवर्सिटी', जैसे रोज ही नये-नये प्रयोग किये जायें। आवश्यक है कि मौलिक शास्त्रों के अध्यापन पर जोर दिया जाये, विद्यालय-महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उच्च स्तर के ग्रंथ निर्धारित किये जायें और छात्र-छात्राओं की बढ़ती हुई संख्या रोकी जाये। एक ही विद्यालय या महाविद्यालय में बहुत ज्यादा छात्र-छात्राओं के जुटने से भी अनुशासनहीनता बढ़ी है और फलस्वरूप शिक्षा का स्तर शीघ्रता से गिरा है। शिक्षा का उद्देश्य, आखिर, नवयुवक-नवयुवतियों को डिग्री से विभूषित करना तो नहीं है, उन्हें सुयोग्य नागरिक ही बनाना है।

◆

हिन्दी वह धागा है, जो विभिन्न मातृ-भाषाओं रूपी फ़ूलों को पिरोकर भारतमाता के लिए सुन्दर हार का सृजन करेगा। प्रशासन के लिए देश में एक भाषा का रखना जरूरी है। पहले फारसी और उसके बाद अंग्रेजी देश की प्रशासकीय भाषा बनी। तब शिक्षा का उतना प्रचार नहीं था। आज तेजी से शिक्षा का प्रसार हो रहा है और अब करोड़ों लोगों पर देश की एकता को कायम रखने के लिए हिन्दी को ही अपनाना होगा।

—**डा० जाकिर हुसेन**

बुनियादी शिक्षा और धर्म

(प्राध्यापक शम्सुद्दीन, रायपुर)

"Educate men without religion and you make them but clever devils."
—**Duke of Wellington.**

बापू की जागरूक आत्मा ने भी उपर्युक्त कथन का अनुभव किया। उसने देखा कि देश की शिक्षाप्रणाली ही कुछ ऐसी दूषित है कि यहाँ धर्म का तो अभाव है ही, परन्तु साथ ही शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत भी ऐसे हैं कि उनसे धार्मिकता को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। उन्होंने देखा कि विदेशी शासकों द्वारा शिक्षा के जिन उद्देश्यों और आदर्शों के बीज भारत में बोये गये और जो अब पल्लवित और पुष्पित हो रहे हैं, वे यहाँ की जनता की रोटी-कपड़े की, शारीरिक क्षुधा तक तृप्त करने में असमर्थ हैं। फिर आत्मा की भूख को शांत करना तो दूर की बात है। अतः गांधी जी ने बुनियादी तालीम की नयी योजना का निर्माण किया। यह शिक्षा के क्षेत्र में एक महान क्रांतिकारी कदम है, किन्तु इसका अस्त्र हिंसा नहीं, वरन सत्य और अहिंसा के द्वारा हृदय-परिवर्तन है। इसका ध्येय न केवल मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक उन्नति कर उनकी रोटी-कपड़े की समस्या का हल करना है, वरन उनको आत्मिक उन्नति कर उन्हें सच्चे अर्थ में इंसान बनाना है।

आर्थिक समस्या

भारत में शिक्षा की समस्या बहुत हद तक यहाँ की आर्थिक समस्या है। अतः इस समस्या को हल करने के लिए महात्मा गांधी ने शिक्षा को 'स्वयं-निर्भर' बनाने का प्रयत्न किया। यही बुनियादी तालीम की मूल साधना है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि इसमें शिक्षा का केन्द्र कोई उद्योग रहता है। इसका चुनाव बालक के आसपास के वातावरण और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा सम्पूर्ण ज्ञान इसी की सहायता से दिया जाता है। यथार्थ में इसका उद्देश्य बालक को शारीरिक, मानसिक व नैतिक क्रियाओं का सामूहिक विकास करना है। भारत में अधिकांश लोग ऐसे हैं, जिनकी दैनिक जीवन की मूल आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती।

उन्हें न दोनों समय पर्याप्त भोजन मिलता है न तन ढांकने के लिए वस्त्र ही। रहने के लिये उन्हें झोपड़ी भी मयस्सर नहीं है। बुनियादी तालीम कृषि, बागवानी, कातना-बुनना, लकड़ी के काम आदि के द्वारा ऐसे उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था करती है, जो उनकी उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति में मदद करते हैं। इस प्रकार यह शिक्षा उन्हें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से परिचित करती हुई, उन्हें 'स्वयं-पूर्ण' बनाने का प्रयत्न करती है। इसमें बालक न केवल बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ बनता है, वरन अपने पवित्र आचरण और उत्तम सामाजिक जीवन के द्वारा देश का एक सफल नागरिक बनता है।

धर्म का सच्चा अर्थ

भारतीय संस्कृति सर्वत्र धर्म से अनुप्राणित है। धर्म अपने संकुचित अर्थ में नहीं, वरन व्यापक व सच्चे अर्थ में। संस्कृत शब्द धर्म 'धृ' धातु से निकला है जिसका कार्य धारण करना या अपनाना होता है। जीवन में जो कुछ भी अच्छा और अपनाने योग्य है, वह सब धर्म है और जो कुछ बुरा और ग्रहण करने योग्य नहीं है, वह सब अधर्म है। यही धर्म का सच्चा अर्थ है। बुनियादी तालीम हमें धर्म के इसी रूप को अपनाने की शिक्षा देती है।

संकुचित अर्थ में किसी सम्प्रदाय विशेष की धार्मिक किताबों की शिक्षा की इसमें व्यवस्था न देख कुछ लोगों ने आक्षेप किया कि बुनियादी तालीम धर्म की अवहेलना करती है। इस सम्बन्ध में डा० ज़ाकिरहुसैन ने उत्तर दिया "भारत में कोई एक राज्य-धर्म नहीं है तथा यहाँ सभी धर्मों के मानने वाले रहते हैं। अतः यहाँ किसी एक धर्म की किताबों की शिक्षा नहीं दी जा सकती। सिवाय इसके बुनियादी तालीम सभी धर्मों का समान रूप से आदर करती है। यह लोगों को ऐसे व्यापक नैतिक आदर्शों की शिक्षा देती है, जो सभी धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ—सत्य बोलना, हिंसा न करना, किसी को कष्ट न पहुंचाना, स्वयं उद्योग करना, देश की मदद करना, नैतिक उन्नति करना इत्यादि बातें सभी धर्मों में सिखाई जाती हैं। यथार्थ में बुनियादी तालीम हाथ, हृदय और मस्तिष्क के सभी गुणों का इस प्रकार समन्वय करती है कि बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास होता है और आगे चलकर वह सच्चा, ईमानदार, पवित्र और धार्मिक व्यक्ति बनता है। इस रूप में बुनियादी तालीम और धर्म में अनन्य घनिष्ट सम्बन्ध है।

राष्ट्रीयता की वृद्धि

बुनियादी तालीम अपने सम्पूर्ण सिद्धान्तों व कार्यप्रणाली में धर्म के व्यापक रूप को प्रोत्सासन देती है। इससे न केवल धार्मिक व नैतिक उन्नति होती है, वरन संस्कृति और सभ्यता का भी पोषण होता है और राष्ट्रीयता की वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ बुनियादी तालीम मातृभाषा के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था करती है। इससे लोगों में देश की संस्कृति व राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना बढ़ती है।

आज हमारा देश पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा हुआ एवं शरीर और मन से विदेशी हो रहा है। केवल उसकी आत्मा स्वदेशी रह गई है। इसका कारण है विदेशी भाषा। लार्ड मेकाले ने भारत की शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी माध्यम का प्रारम्भ इसी ध्येय से किया था कि यहाँ के लोग अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूल जाएं और इसी तरह से उनके गुलाम हो जाय। उर्दू के प्रसिद्ध कवि डा० इकबाल ने कहा था—"अगर किसी कौम को खत्म करना है, तो उसकी जबान बदल दो, वह कौम खुदबखुद खत्म हो जायगी।" महात्मा गांधी ने इस बात को महसूस किया और अंग्रेजी भाषा के स्थान पर मातृभाषा को प्रधानता दी। मातृभाषा के प्रेम द्वारा लोग अपने प्राचीन ग्रन्थों को महत्व देंगे। इस प्रकार लोग न केवल अपनी भूली हुई संस्कृति को पहिचानेंगे, वरन उनमें देशप्रेम के साथ-साथ नैतिकता की भी वृद्धि होगी।

गृह-उद्योगों की स्थापना

बुनियादी तालीम का दूसरा ध्येय छोटे-छोटे गृह-उद्योगों की शिक्षा देकर उन्हें गाँव-गाँव में फैला देना है। आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से भारत भी उद्योगीकरण और पूंजीवाद के दलदल में फंसता जा रहा है। बड़ी-बड़ी मशीनों व कल-कारखानों के कारण एक ओर मिल-मालिकों का रईस वर्ग तैयार हो रहा है और दूसरी ओर असंख्य मजदूर थोड़ी-सी मजदूरी पर उनकी गुलामी कर कीड़े-मकोड़ों जैसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके बच्चों को न शिक्षा की व्यवस्था है और न पर्याप्त भोजन व वस्त्र की। इसी प्रकार गाँवों में कृषक मेहनत करके उपज पैदा करता है, पर उसका अधिकांश हिस्सा गाँव के साहूकार, बनिया आदि का कर्ज चुकाकर खुद भूखों मरता है। शहरों की स्थिति यह है कि लोग पढ़-लिखकर भी बेकार रहते हैं। उनकी शिक्षा उन्हें इस योग्य नहीं बनाती कि शिक्षा समाप्त होते ही वे कोई कार्य में लग जांय और अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें।

बुनियादी तालीम उपर्युक्त सभी समस्याओं का हल करने का प्रयत्न करती है। वह बड़े-बड़े उद्योगों का नाश करके छोटे-छोटे गृह उद्योगों को प्रोत्साहित करती है। इससे यह लाभ होगा कि अभी मिलों में जो असंख्य स्त्री-पुरुष एक साथ काम करते हैं और वातावरण की अस्वस्थता के कारण उनका जो नैतिक पतन होता है, उसका विनाश होगा। विभिन्न उद्योगों की शिक्षा प्राप्त कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधा और प्रवृत्ति के अनुकूल अपने ही घर में कोई न कोई धन्धा करेगा। घर के ही सब सदस्य मिलकर काम करेंगे, इससे वातावरण पवित्र रहेगा और लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा होगा। लोगों में अमीरी-गरीबी और ऊँच-नीच का भेदभाव दूर होगा। कृषि की शिक्षा प्राप्त कर हर एक किसान स्वयं अपनी जमीन जोत सकेगा और शेष खाली समय में बेकार न बैठकर बागवानी, कातना, बुनना आदि उद्योग करेगा, जिससे न केवल उसकी आर्थिक उन्नति होगी, वरन नैतिक सुधार भी होगा। इसी प्रकार शहरों में 'शिक्षित बेकारी' (Educated unemployment) के बढ़ जाने से लोगों के खाली दिमाग शैतान के घर हो रहे हैं। वे मेहनत कर रोजी-रोटी कमाना नहीं चाहते तथा श्रम का महत्व नहीं समझते। इससे भी नैतिकता का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है। बुनियादी तालीम में इसके लिये रोक है। जब लोग काम में लग जायंगे, तो यह पतन आप ही आप रुक जायगा।

शारीरिक भूख

आज भारत में नैतिक अवनति और धर्म के पतन का एक और कारण है और वह यह कि लोग भूख की ज्वाला से पीड़ित तथा वस्त्रों से हीन हैं। ऐसी अवस्था में लोग जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में ही इतने व्यस्त रहते हैं कि आत्मा की उन्नति और धर्म का उत्थान उनके लिए व्यर्थ की बातें हो जाती हैं। पेट की ज्वाला उनसे अधर्म के बड़े से बड़े काम करा डालती है। बुनियादी तालीम इसे रोकने का उपाय है। यह लोगों की पहले शारीरिक क्षुधा शान्त करती है और तब उन्हें मानसिक व नैतिक विकास की ओर उन्मुख करती है।

अन्तिम हल

आज का वैज्ञानिक युग भौतिकवाद को लेकर मानव को दानव बनाने पर तुला है। मनुष्य अपनी शक्ति के घमण्ड में ऐसा अंधा हो रहा है कि उसे ईश्वरीय शक्ति पर भी विश्वास नहीं रहा। आज के मशीन युग में लोग

स्वयं मशीन के कल पुर्जे मात्र रह गये हैं। सांसारिक सुखों की पूर्ति ही उनका एकमात्र ध्येय है। इसके लिए मनुष्य मनुष्य की हत्या करने से भी नहीं चूकता। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ समय बाद नैतिकता और आध्यात्मिकता सरीखी चीज ही नहीं रह जायगी। बुनियादी तालीम इसका हल प्रस्तुत करती है। वह मनुष्य को यह अनुभव कराती है कि उसका जीवन न केवल भौतिक है, वरन् इसके भी ऊपर नैतिक जीवन है, जिसे उन्नत कर वह अपना लोक व परलोक दोनों सुधार सकता है।

हमारी प्रमुख पत्रिकाएँ

सरस्वती

जनवरी सन् १९०० से निरंतर प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की अग्रणी साहित्यिक पत्रिका हिन्दी साहित्य की उन्नति की मानदंड है। आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवि, लेखक, समालोचक, कहानीकार और साहित्यिक इस गौरवशालिनी पत्रिका की ही देन हैं। इस समय इसका सम्पादन हिन्दी के यशस्वी साहित्यसेवी पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा हो रहा है। वार्षिक मूल्य रु० ७·५०; एक प्रति का ६५ पैसे।

बालसखा

१९१६ से अनवरत प्रकाशित होते रहनेवाला बच्चों का साहित्यिक सखा यह **बालसखा** मासिक है। इसमें बालोपयोगी कविता, कहानी, यात्रा वर्णन, साहसिक कथायें, खेलकूद, पहेलियाँ, चुटकुले, वैज्ञानिक बातें, महापुरुषों के जीवन-चरित्र आदि सचित्र मनोरंजक सामग्री रहती है। इसका सम्पादन पं० लल्लीप्रसाद पांडेय और पं० सोहनलाल द्विवेदी द्वारा होता है। वार्षिक मूल्य रु० ५·५०; एक प्रति का ५० पैसे।

विज्ञान-जगत्

दिसम्बर १९६१ से निरंतर प्रकाशित होनेवाला, सर्वसाधारण तथा छात्रों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक। बहुरंगा आकर्षक आवरण-पृष्ठ, सुन्दर सचित्र पाठ्य सामग्री। वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार। छपाई और सजावट पर भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठता प्रमाणपत्र प्राप्त। इसका सम्पादन श्री आर० डी० विद्यार्थी द्वारा होता है। वार्षिक मूल्य रु० ९; एक प्रति का ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
तथा ब्रांच और एजेंसियों से प्राप्य।

प्रशिक्षण में पंच पद

(श्री कमल मोहन, मलाकूँ महाविद्यालय, बलरामपुर)

किसी भी छात्राध्यापक के लिए "पाँच पद", "पंच परमेश्वर" और "पंच देव" से महत्तर हैं—वह पंच परमेश्वर की अवहेलना कर सकता है, पंच देव की भी एक बार अवहेलना कर सकता है, किन्तु पंच पदों के सामने उसे सदैव सिर झुकाना ही पड़ता है : प्रशिक्षण के ये "पाँच बड़े", बड़े पाँच हैं—इनसे छुटकारा नहीं, इनसे निस्तार नहीं ! किसी न किसी रूप में इनके चंगुल में प्रत्येक छात्राध्यापक को फँसना ही होता है—चाहे वे हर्बार्टीय पंच पद हों या ड्यूवीय पंच पद, या मौरिसन द्वारा प्रतिपादित पंच पद ! हर्बार्ट बिचारा मुफ़्त में बदनाम है; उसने तो केवल चार पदों की व्यवस्था की थी—उसके भक्तों ने चार से पाँच कर दिये और उनका नाम रख दिया "हर्बार्टीय पंच पद।" हर्बार्ट के भक्तों के अतिरिक्त अन्य शिक्षा-शास्त्रियों ने भी अपने अपने पाँच पद दिये—आख़िर वे लोग क्यों पीछे रहते। पर हर्बार्टीय पदों के सामने बाक़ी पद फीके हैं। प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापक और छात्राध्यापक—सभी—हर्बार्टीय पदों की कटु आलोचना करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते, फिर भी बिना उनका सहारा लिए उनकी गाड़ी नहीं चलती। कहा जाता है कि हर्बार्टीय पदों को अपनाने से अध्यापक बँध जाता है, फिर भी यह बन्धन इतना प्रिय है कि इससे कोई छुटकारा नहीं पाना चाहता। गोरखपुर विश्व विद्यालय के प्रशिक्षण-विभाग के विद्वान अध्यक्ष ने इस बंधन से छुटकारा दिलाने के लिए छात्राध्यापकों को पाठ-नियोजन में काफी आज़ादी देनी चाही, पर छात्राध्यापक तथा उनके अध्यापकों ने लीक छोड़ना उचित न समझा; गाड़ी लीक पर ही डाले रखने में कल्याण माना; जो मार्ग महाजनों का चला हुआ है, वही श्रेयस्कर समझा। ठीक भी है : नये मार्ग को अपनाने में कठिनाइयाँ आती हैं, नई-नई बाधाओं और परिस्थितियों से सामना पड़ता है, कौन उनका मुक़ाबला करे ! कौन उनसे जूझे !

हर्बार्ट यह मानते थे कि शिक्षण-प्रक्रिया में अध्यापक का स्थान प्रमुख है। उनके अनुसार अध्यापक शिक्षण-प्रक्रिया का सूत्रधार है; वह विचारों का तारतम्य बैठाकर छात्रों को वाञ्छित ज्ञान प्राप्त कराता है। हर्बार्ट का विचार था कि "पुराने" की भित्ति पर ही "नये" का निर्माण होता है; दूसरे शब्दों

में, मस्तिष्क में विद्यमान पृष्ठ-भूमि के आधार पर ही नये विचारों का आत्मीकरण सम्भव है; अतः यह नितान्त आवश्यक है कि सीखने की क्रिया बच्चे के पूर्वानुभव पर आधारित होनी चाहिए।

कक्षा में, हर्बार्ट के अनुसार, अध्यापक को चार पदों को अपनाना चाहिये—

१. **स्पष्टीकरण** (पाठ्य-वस्तु की व्यवस्था तथा विश्लेषण)।

२. **सम्बन्ध** (प्रथम पद में वार्ता द्वारा प्रारम्भ की गई वस्तु का संश्लेषण)।

३. **सिद्धान्त** (साधारण सामान्यीकरण)।

४. **विधि** (छात्रों को स्वतन्त्र विचार का अवसर प्रदान करना)।

हर्बार्ट के शिष्यों और अनुगामियों ने, बाद में, इन चार पदों को आज के विख्यात पंच-पदों में परिवर्तित कर दिया—

१. **प्रस्तावना** (कक्षा की पूर्व-परिचित वस्तु द्वारा पाठ का आरम्भ);

२. **प्रस्तुति** (नये पाठ का प्रस्तुतीकरण);

३. **सम्बन्ध** (उपर्युक्त दोनों पदों में प्रस्तुत वस्तु की तुलना द्वारा इसका विवेचन कि पहले से दूसरे पद में क्या नई वस्तु सीखी गई);

४. **सामान्यीकरण** (तीसरे पद में सीखी गई नई बात के अनुरूप उदाहरण द्वारा सामान्यीकरण, अथवा सिद्धान्त-निरूपण);

५. **प्रयोग** (नए पाठ का छात्रों द्वारा स्वतन्त्र प्रयोग)।

हर्बार्टीय पदों की तुलना सिसरो द्वारा प्रस्तुत पांच पदों से की जा सकती है। हर्बार्टीय पद अध्यापक के पथ-प्रदर्शन के लिए हैं, तो सिसरो के "ओरेटर" के लिए।

सिसरों के पद हैं—

१. श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना;
२. श्रोताओं को विषय-वस्तु से अवगत करना।
३. प्रभाव प्रस्तुत करना।
४. तर्क-वितर्क प्रस्तुत करना।
५. निष्कर्ष प्रस्तुत करना।

यह स्पष्ट है कि हर्बार्टीय पदों में उसी परम्परा का पालन है जिसका सिसरो के पदों में है। शिक्षण में हर्बार्टीय पदों द्वारा अध्यापक बच्चों को सुनिश्चित योजना द्वारा वाञ्छित ज्ञान की ओर ले जाते हैं और सिसरो का "ओरेटर" सुनिश्चित योजना द्वारा श्रोताओं को वाञ्छित निष्कर्ष की ओर ले जाता है।

* * *

हर्बार्टीय पदों में बच्चों की शंका या कठिनाई को प्रमुखता नहीं दी गई है। शंका पर आधारित परम्परा दूसरी ही है। उसमें आगमन प्रणाली पर जोर दिया गया है। आगमन विधि का प्रयोग बेकन के काल से माना गया है।

बेकन ने निरीक्षण, परीक्षण और तथ्यों के एकत्रीकरण पर बल दिया था। किन्तु बेकन ने अन्तर्ज्ञा या सूझ या अन्दाज़ पर कोई ध्यान नहीं दिया था।

बाद में, द कार्ते ने शंका की परम्परा को निभाया और कहा—

१. जिसमें शंका की गुंजाइश हो उसे सच मत मानो।

२. प्रत्येक कथन का विश्लेषण करके उसको सरलतम मौलिक प्रतिज्ञाओं में बाँट दो।

३. इन मौलिक प्रतिज्ञाओं का एक-एक करके विवेचन करो।

४. चरम गणना इतनी पूर्ण बनालो कि कुछ भी छूटने न पाये।

किन्तु बेकन या द कार्ते का भी पर्याप्त प्रभाव कक्षा-विधियों के विकास पर पड़ा है।

अमरीका (संयुक्त राज्य) में हर्बार्टीय पद्धति का विशेष स्वागत नहीं हुआ, क्योंकि अमरीकी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था ऐसे नागरिक तैयार करना जो विघ्न-बाधाओं से न घबराते हुए, उन पर विजय प्राप्त करके, अपना रास्ता बनाते हुए, आगे बढ़ते चले जायें। हर्बार्टीय-पद्धति द्वारा शिक्षा देने से ऐसा संभव नहीं था क्योंकि उसमें बच्चा नगण्य-सा था और सारा महत्व अध्यापक का था। अमरीकियों के अनुसार हर्बार्टीय पद्धति में बच्चे के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास नहीं था। कर्नल पार्कर तथा जॉन ड्यूवी ने हर्बार्टीय पद्धति को अमरीकी शिक्षा के सर्वथा अनुपयुक्त माना और ड्यूवी ने "समस्याविधि" का प्रतिपादन किया।

समस्या-विधि में भी पाँच पद हैं।

(१) किसी समस्या अथवा कठिनाई से टकराव—

(किसी क्रिया में संलग्न बच्चे के सामने कोई रुकावट आना जिससे उसकी क्रिया की प्रगति रुक जाय)।

(२) न्यास (सामग्री) का एकत्रीकरण—

(समस्या का निरूपण और प्रगति चालू करने के लिए खोज-बीन)।

(३) परिकल्पनाओं का निर्माण—

(परिस्थिति के सम्यक निरीक्षण तथा विश्लेषण के उपरान्त प्रारंभिक क्रिया पुनः चालू करने के लिए नाना सुझाव)।

(४) सिद्धान्त का विकास—

(सुझावों पर सोच-विचार तथा उनमें से उस सुझाव को छाँटना जिससे समस्या की पूर्ति सम्भव जान पड़े)।

(५) सिद्धान्त की जाँच—

(छाँटे गए सुझाव या सिद्धान्त की सचाई की जाँच)।

ड्यूवी की इस समस्या-विधि में और 'वैज्ञानिक विधि' में कोई अन्तर नहीं है।

ड्यूवी से बहुत पहले कोपर्निकस ने टौलमी के सिद्धान्त से असन्तुष्ट होकर अपने सिद्धान्त का निरूपण करने में जिस पद्धति का आश्रय लिया था वह भी लगभग ऐसी ही पद्धति थी जिसका निर्देश ड्यूवी ने अपनी समस्या-विधि में किया है—

१. कोपर्निकस टौलमीय सिद्धान्त से असन्तुष्ट हुआ क्योंकि वह कई तथ्यों को उस सिद्धान्त से सुलझा नहीं सका; तब

२. कोपर्निकस ने पूर्व-वर्त्ती खगोल-शास्त्रियों की रचनाओं से तरह-तरह के सुझाव एकत्रित किए; और

३. इस प्रकार प्राप्त ज्ञान के आधार पर नई परिकल्पना का निर्माण किया जो टौलमीय सिद्धान्त से अधिक सुगम थी; फिर

४. निरीक्षण और गणना द्वारा सौर-जगत के ज्ञात तथ्यों पर अपने नये सुगमतर सिद्धान्त को लागू करके उसकी सच्चाई की जाँच की।

* * *

सरसरी तौर पर देखने से हर्बार्टीय और ड्यूवीय पाँच-पदों में पर्याप्त समानता प्रतीत होती है। पर दोनों में मौलिक अन्तर है—

सर्व प्रथम हर्बार्टीय पदों में किसी प्रकार की समस्या, शंका या अवरोध का कहीं ज़िक्र नहीं है, जबकि ड्यूवी का पहला पद ही इस ओर संकेत करता है;

हर्बार्टीय द्वितीय पद में जो तथ्य प्रस्तुत किये जाते हैं वे किसी समस्या के सुलझाव के रूप में नहीं किये जाते, जबकि समस्या-विधि में ऐसा होता है।

सबसे प्रमुख अन्तर पाँचवें पदों में है। हर्बार्टीय पंचम पद में बच्चे जिस नये सिद्धान्त पर 'प्रयोग' करते हैं उसका वास्तव में अध्यापक को पहले से पता होता है, किन्तु समस्या-विधि के पाँचवें पद में बच्चे जिस सिद्धान्त की सच्चाई की जाँच करते हैं उसका स्वयम् अध्यापक को भी पता नहीं होता क्योंकि यह निश्चित रूप नहीं कहा जा सकता कि तीसरे और चौथे पदों में बच्चा किन परिकल्पनाओं पर विचार करेगा और उनमें से किसे प्रायोगिक सिद्धांत का रूप देगा। अतः समस्या-विधि में अध्यापक केवल पथ-प्रदर्शक के रूप में काम कर सकता है जबकि हर्बार्टीय पद्धति में उसकी स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

* * *

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्या-विधि में, वैज्ञानिक-पद्धति के अनुरूप—आगमन, निगमन और सूझ—इन तीनों का उपयोग होता है। समस्या विधि इन तीनों का मिश्रण है। अतः इस विधि द्वारा वे विषय सुगमता से पढ़ाये जा सकते हैं जिनमें आगमन प्रणाली की प्रयास-और-भूल विधि का सुगमता से उपयोग हो सके। ऐसे विषय हैं: प्राकृतिक विज्ञान आदि।

और, हर्बार्टीय पद्धति द्वारा वे विषय सुगमता से पढ़ाये जा सकते हैं

जिनमें आगमन प्रणाली की प्रयास-और-भूल विधि का उपयोग सुगमता से नहीं हो सकता। ऐसे विषय हैं : भाषा, साहित्य, तर्क आदि।

* * *

किल्पैट्रिक ने बाद में समस्या-विधि को प्रोजेक्ट-प्रणाली के रूप में ढाल दिया। किन्तु पुरातन-पंथियों को यह सब पसन्द नहीं आया। उनका कहना था प्रौजेक्ट प्रणाली द्वारा दी गई शिक्षा केवल आकस्मिक होती है। उनके अनुसार कुछ बातें ऐसी हैं जो बच्चों को भली प्रकार आनी ही चाहिए। अतः एक नई पद्धति को जन्म दिया गया—वह थी मौरिसन की यूनिट-प्लान-पद्धति।

मौरिसन ने हर्बार्टीय और ड्यूवी-किल्पैट्रिक की प्रणालियों में समझौता-सा करके अपनी नई पद्धति प्रचारित की जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बच्चे जो कुछ भी पढ़ें, उसके पूर्ण ज्ञाता बनें। मौरिसन का मन्त्र था—

"पूर्व-परीक्षण, शिक्षण, परीक्षण, पाठन-विधि से संशोधन, पुनः शिक्षण और परीक्षण (वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति तक)।"

मौरिसन के अनुसार सम्पूर्ण पाठ्य-पुस्तक को इकाइयों में बाँट कर पढ़ाना चाहिए। इसके लिए मौरिसन ने भी पाँच पदों की व्यवस्था की है—

१. **अन्वेषण**—(प्रश्नों, वार्ता या परीक्षण द्वारा नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए बच्चों के पूर्वार्जित ज्ञान का पता लगाना)।

२. **प्रस्तुति**—(भाषण या प्रदर्शन द्वारा, संक्षेप में, बच्चों को प्रस्तावित इकाई की रूप-रेखा बताना और यह परीक्षा करना कि बच्चों को रूप-रेखा स्पष्ट हुई या नहीं)।

३. **आत्मीकरण**—(इकाई को भली प्रकार समझने के लिए बच्चों द्वारा विस्तृत न्यास अथवा सामग्री का एकत्रीकरण)।

४. **संगठन**—(उपर्युक्त दूसरे और तीसरे पदों में प्राप्त सामग्री का तर्क-सम्मत संगठन)।

५. **विवरण**—(बच्चों द्वारा अपने कार्य का, और प्राप्त निष्कर्षों का, मौखिक अथवा लिखित रूप में विवरण प्रस्तुत करना)।

इन पाँच पदों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन मौरिसनीय पंच-पदों में हर्बार्टीय और ड्यूवीय—दोनों—पंच-पदों के तत्व सम्मिलित हैं और इनके निर्माण में मौरिसन ने सुनहरे मध्यम-मार्ग का अवलम्बन किया है।

* * *

नयी तालीम

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज-शिक्षकों के लिए
सर्व-सेवा संघ की शैक्षिक मासिकी
प्रधान सम्पादक : श्री धीरेन्द्र मजूमदार

- शिक्षण, विकास और नव समाज-निर्माण की समस्याओं और संभावनाओं का विवेचन।
- क्रमिक शिक्षण के अतिरिक्त पंचवर्षीय योजना, देश-विदेश की प्रमुख घटनाओं और सामाजिक प्रश्नों पर स्वतन्त्र चिन्तन।
- बाल-शिक्षण, शिक्षा-दर्शन, शिक्षाशास्त्री-परिचय, शान्ति के पथ पर, सम्पादक के नाम चिट्ठी, शिक्षा-आयोग; सृष्टि और दृष्टि, समाचार-समीक्षा, शान्ति समाचार, पालकों से, सामयिक चर्चा, ग्राम निर्माण की भूमिका में, आदि स्थायी स्तम्भ।

वार्षिक चन्दा : ६ रुपये; किसी मास से ग्राहक बना जा सकता है

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

दस तसवीरें

हिन्दी-साहित्य में ऊंचे स्तर की आत्म-कथाओं और आकर्षक जीवन चरित्रों का अभाव है। हमारे स्वर्णिम अतीत के पूर्वज अपनी करनी लेखबद्ध करने से परहेज करते थे और इतिहास लिखने का चलन भी न था। अंग्रेजों—और विशेष रूप से फ्रांसीसियों—में आत्मकथा और जीवनचरित्र लिखने का चलन रहा है। निकटतम दो शतियों के भीतर सामयिक साहित्य का प्रचार होने पर जीवनचरित्र पर एक प्रकार के निबन्ध लिखे जाने लगे जिनके लिए हिन्दी में अभी तक हमें कोई सर्वमान्य शब्द नहीं मिल सका है। अंग्रेजी में इसे कैरेक्टर स्केच (Character-sketch) या कैरेक्टराइज़ेशन (Characterisation) भी कहते हैं। पेन पोर्ट्रेचर (Pen-portraiture) भी चालू है। इस मेल का निबन्ध जीवनचरित्र नहीं होता जिसमें लेखक से निष्पक्षता की अपेक्षा की जाती है। यह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की चर्चा है उस रूप में जिसमें लेखक ने उसे अपनी कलात्मक दृष्टि से समझा-बूझा है। यह शब्दों में किसी व्यक्ति का चरित्र-चित्र है। चित्र तो श्वेत-श्याम या विभिन्न रंगों के कलात्मक मेल से बनता है। अतएव ऐसे निबन्ध में किसी व्यक्ति का कीर्तन नहीं होता, किसी को निरी गालियां नहीं दी जातीं—गुण-दोष, श्वेत-श्याम, का वह मेल ही जिससे सर्वांग सुन्दर और जीवंत चित्र उभर आये। यह जरूरी नहीं कि पाठक उस चरित्र-चित्रण से सहमत हो, परन्तु यह जरूरी है कि उससे पाठक का मनोरंजन हो, उसमें उसे लेखक की कलात्मक अनुभूति का आनन्द मिले।

इस मेल के निबन्ध लिखने में मैं अपने समवयस्क मित्र बनारसीदासजी चतुर्वेदी ही को पटु समझता था। भारतीय प्रशासक आमतौर पर नीरस समझे जाते हैं। मिस्लों पर अपने नोट लिखते-लिखते वे दस्तावेज़ लेखक ही हो जाते हैं, जन साधारण के, साहित्यिक गोष्ठी के, काम के नहीं रहते।

चि० जगदीश चन्द्र जी माथुर इस चित्रण के अपवाद हैं। मैं इन्हें नाटककार ही मानता था, क्योंकि मैंने इनके दो नाटक पढ़ लिये थे—**कोर्णाक और शारदीय**—जो मुझे कला की दृष्टि से सर्वोपरि लगे हैं। परन्तु मुझे पता न था कि इनमें जीवंत शब्द-चित्रण की भी प्रतिभा है और इस कला में यह चतुर्वेदी जी से बढ़े हुए हैं।

इनकी **दस तसवीरें*** पढ़कर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं।

उपर्युक्त पुस्तक में दस भारतीय महानुभावों के शब्द-चित्र हैं। अपने विद्यार्थीकाल में जगदीशचन्द्र जी की गणना अपनी कक्षा के सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थियों में रही और आई० सी० एस० होकर यह बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे नर-नारियों के सम्पर्क में आये। परन्तु चरित्र-चित्रण के लिए इनके चुनाव में वही व्यक्ति आये जिनसे इनका अन्तस्तल तक प्रभावित हुआ, जिनके चरित्र की थोड़ी-बहुत छाप इन पर भी है।

दस तसवीरों के शब्द चित्रण में आधी—यानी पांच—वे हैं जिनसे मेरा भी सम्पर्क रहा। जगदीश चन्द्र जी के पिता स्वर्गीय लक्ष्मी नारायण जी माथुर मुझसे तीन वर्ष बड़े थे। ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद में मेरे सहपाठी थे और चूंकि अपने कुछ सहपाठियों के वह शिक्षक रह चुके थे जिस कारण वे उन्हें गुरुजी कहते थे, तो वह हम सबके 'गुरूजी' थे। अमरनाथ जी झा मुझसे पाँच वर्ष छोटे थे; परन्तु अपनी योग्यता और शिक्षक समुदाय के प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूति के कारण वह उत्तर प्रदेशीय बोर्ड आफ हाई स्कूल ऐण्ड इण्टरमीजिएट एजूकेशन में सहपाठी देवी प्रसाद खत्री के और मेरे नेता रहे। बोर्ड के बाहर भी आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस के मंच पर, हिन्दी सेवा के क्षेत्र में भी, उनसे मेरा यथेष्ट सम्पर्क रहा। पण्डित श्रीराम वाजपेयी और उनके सेवासमिति ब्वाय स्काउट्स एसोसिएशन का मैं भक्त रहा तथा अनुयायी भी। एक बार लगभग एक महीने तक मैंने उनके दल के साथ कश्मीर की सैर की और बोर्ड के सदस्य होने पर इलाहाबाद में प्रायः मैं उन्हीं के पास ठहरता। अल्टेकर जी इतिहास के विद्वान थे और मैं इतिहास का विद्यार्थी था। यों इन विद्वान से भी मेरा सम्पर्क रहा। सच्चिदानंद जी सिन्हा के सम्पर्क में आने की मेरे लिए कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी। परन्तु एक बार बिहार के शिक्षकों ने मुझे अपने सम्मेलन में बुला लिया जिसके अध्यक्ष सच्चिदानन्द जी सिन्हा थे। यों मैं इन महानुभाव के सत्संग से भी लाभान्वित हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक की यथेष्ट आलोचना और प्रशंसा हो चुकी होगी। मुझे इसका शिक्षक की दृष्टि से मूल्यांकन करना है और जानी-बूझी तसवीरों की याद ताजी करनी है।

---

* **दस तसवीरें**—१६१ पृ० : छः रुपए : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

इन तसवीरों में कोई ऐसी नहीं जिनके चित्र प्रायः नित्य ही दैनिक समाचार पत्रों में छपते रहे हों। यह ठीक है कि सच्चिदानन्द जी सिन्हा का राजनीतक क्षेत्र में मान रहा। परन्तु वह उदारदल के रहे और इस दल में भी आगे बढ़ने की कोई चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। मूलतः उनमें पैसे की रियासत के साथ दिमाग की भी रियासत थी और दोनों का सदुपयोग वह स्वांतः सुखाय ही करते रहे। बाक़ी ९ में सभी सच्चे देशभक्त थे और किसी-न-किसी रूप में जन-शिक्षक भी। तसवीरों में शिक्षकों का प्राधान्य है क्योंकि अमर नाथ झा, पियर्स, अल्टेकर, वाजपेयी और लक्ष्मीनारायण शिक्षक ही थे जो सक्रिय राजनीति से सदैव ही अलग रहे। अतएव यह पुस्तक शिक्षण सेवा में संलग्न बहिनों-भाइयों के लिए विशेष रूप से पठनीय है और मननीय भी। जगदीशचन्द्र जी ने उपर्युक्त तसवीरों के अतिरिक्त चार तसवीरें और दी हैं। एक अभिनेता चुना है, एक प्रशासक, एक बांसुरी वादक और एक सम्पन्न बंगाली जो स्वांतः सुखाय ही वीणावादिनि का पुजारी रहा। सभी ऊंची श्रेणी के भारतीय रहे। यदि शिक्षक रहे, तो भी ऊंचे दरजे के। जगदीशचन्द्र जी के पिता का दरजा प्रकट रूप में इन सबके नीचे रहा।

देश में उपर्युक्त श्रेणी के नर-नारियों की संख्या नगण्य है। कला का इतिहास बताता है कि कलाकार की नजर पहले समाज के शिखरों पर ही गई। पहले राजा-रानी और सामन्त पुजे। अब बुद्धि, अधिकार और धन से सम्पन्न पुजते हैं। कोई आश्चर्य नहीं जो जगदीशचन्द्र जी ने चरित्र-चित्रण के लिए ऊंची श्रेणी ही के भारतीय चुने हैं।

निवेदन हो चुका है कि यह पुस्तक शिक्षक समुदाय के लिए पठनीय ही नहीं, मननीय भी है। जगदीशचन्द्र जी सफल प्रशासक होते हुए भी अन्तस्तल से शिक्षक ही हैं। इनकी इस ख़ूबी का आभास मुझे **कोणार्क** तथा **शारदीया** पढ़कर हुआ और **दस तसवीरें** पर इनका प्राक्कथन पढ़कर मुझे इस आभास का समर्थन मिला है।

देश की विशाल गुदड़ी में लालों की कमी नहीं। इन लालों में शिक्षक हैं, गायक हैं, अभिनेता हैं, कवि हैं, अन्वेषक भी हैं। शिक्षण में लगे भाई-बहन प्रस्तुत पुस्तक से अपने शिष्यों में प्रतिभा की खोज करना सीख सकते हैं; चरित्र-चित्रण की शैली सीखकर अपने शिक्षक भाई-बहनों में छिपे लालों को प्रकाश में ला सकते हैं। यह सेवा अत्यन्त आवश्यक है और **भारतीय** शिक्षा के पृष्ठ ऐसे शब्द-चित्रों के उदीयमान निर्माताओं के लिये खुले हैं।

जगदीशचन्द्र जी ने अपनी तसवीरों में पिता जी को अन्तिम स्थान दिया है और अपने गुरु अमरनाथ जी झा को पहला। मेरा पहला संपर्क लक्ष्मी नारायण जी से हुआ। अतएव पहले यही भाई।

सहपाठी होकर भी माथुर जी हम सबके 'गुरु' रहे पहले सम्पर्क में हमें जितने दुबले दिखे, उतने ही वह मुझे सदैव ही दिखते रहे। कृषकाय मैं भी हूं। परन्तु वह मन्दाग्नि के रोगी रहे और इस बला से वह कभी मुक्त नहीं हो सके। प्रादेशिक इण्टरमीजिएट बोर्ड की इतिहास समिति में लिए जाने पर मेरा इस समिति में उनसे सम्पर्क हुआ और जब कभी मैं खुरजा पहुंचा, तो उनके पास ठहरा। उत्तर प्रदेश के गैर सरकारी माध्यमिक शिक्षकों के सम्मेलन हुआ करते थे। इस बहाने भी उनसे मुलाकात होती रही। इनके प्रति बुलन्द शहर के एक जिलाधीश के दुर्व्यवहार का उल्लेख इनके सुपुत्र ने किया है। यह जिलाधीश भारतीय था। वैतनिक सेवा से मुक्त होकर स्वतन्त्र भारत में समाज सेवी बन बैठा। स्वर्गीय मैकेंजी हम दोनों के गुरु रहे। उन दिनों छुट्टी पर थे। गोरे विदेशी होकर भी मानव थे, गुण ग्राहक थे। भारत लौटने पर जब उन्हें लक्ष्मीनारायण जी की मुसीबत का पता लगा, तो उन्होंने तुरन्त 'गुरुजी' को चिन्तामुक्त करने का मार्ग निकाल लिया। भारतीय अधिकारी ने पाप किया, उसका प्रायश्चित गोरे अधिकारी के हाथ हुआ।

लक्ष्मीनारायण जी कांग्रेसी न होते हुए भी सच्चे देशभक्त थे। उनके लिए गुप्तदान करते रहते थे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की मुझे याद है। उन दिनों उनके और मेरे जैसे प्रधानाध्यापकों पर भारी मुसीबत थी। मैं उत्तर प्रदेश के माध्यमिक शिक्षकों की संस्था यू० पी० सेकण्डरी एजुकेशन एसोसिएशन की मुख-पत्रिका **एजुकेशन** का अवैतनिक संपादक भी था, तो मुझ पर अपने शिक्षक भाई-बहिनों के मार्ग-दर्शन का दायित्व था। अतएव जब सितम्बर १९४२ के **एजुकेशन** में सम्पादकीय वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें यह मत प्रतिपादित किया गया कि शिक्षक को अपने शिष्य दण्डित करने का उस सीमा तक ही अधिकार है जिस तक पिता पुत्र को दण्डित करने का अधिकारी है, तो मुझे दो पत्र मिले—एक उत्तर प्रदेश के शिक्षा संचालक से जिसमें मेरी भर्त्सना की गई और दूसरा लक्ष्मीनारायण जी से जिसमें मुझे बधाई दी गई। इस पत्र को अपनी अमूल्य निधि मानकर मैंने इसे अपने मस्तक से लगाया।

मुझे अपने प्रातः स्मरणीय पिता की सेवा का सौभाग्य नसीब नहीं हुआ, क्योंकि पचास वर्ष की ही अवस्था में गृहभार मुझे सुपुर्द करके वह

स्वर्गीय हुए थे। लक्ष्मीनारायण जी अपेक्षाकृत अधिक भाग्यशाली रहे, क्योंकि उनके जीवनकाल ही में उनके पुण्य जेठे सुपुत्र की उच्चस्तरीय सेवा में फूलने-फलने लगे थे। मातृ सेवा मेरे हिस्से में आयी और जगदीशचन्द्र जी के हिस्से में भी, क्योंकि इनकी माता जी हाल ही स्वर्गीय हुई हैं।

तब शिक्षण संस्थाओं को कहीं-कहीं समर्पण की भावना लिए लक्ष्मीनारायण जी जैसे शिक्षक नसीब हो जाते थे जब भारत परतन्त्र था और सेवा का मार्ग कंटकाकीर्ण था। कितने विषाद की बात है कि अब सेवा-मार्ग प्रशस्त है, फूलों से सजा है; परन्तु अपनाने वालों का अभाव है! गैरसरकारी शिक्षालयों की दशा तो अत्यन्त ही दयनीय है।

वाजपेयी जी को बाल सेवा का लम्बा समय मिल सका, कदाचित् इसीलिए कि शरीर के प्रति अपने धर्म का यथाशक्ति निर्वाह करते रहने पर भी कराल-काल के प्रभाव से वह नहीं बच सका; परन्तु मन से, स्वभाव से, वह प्रसन्न ही रहे, बालोल्लास में सम्मिलित होते रहे। देश का रक्त-रंजित विभाजन होने पर वह बहुत व्यथित हुए। हम लोगों में बहुत-से रक्त-रंजना में मुसलमानों को ही अपराधी मानते रहे; क्योंकि पहल करने वाले वही थे। परन्तु वाजपेयी जी उन थोड़े से हिन्दुओं में थे जिन्हें अपने हिन्दू भाइयों के हिंस्र व्यवहार बहुत खले। स्वतन्त्र भारत की सेवा के लिए उन्हें लगभग एक दशक मिला। परन्तु हमारे नेता उनसे सही बालचर संगठन की सेवा नहीं ले सके। वाजपेयी जी के प्रयोग भारतीय संस्कृति की पक्की नींव पर आधारित थे। उनका बनाया भवन जीर्ण-शीर्ण दिख रहा है। उनकी जगह नये भवन बने हैं, पुराने से कहीं अधिक भव्य और खर्चीले। परन्तु इनमें भारतीय बाल-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा हो गई है कि नहीं, यह अभी तक संदिग्ध ही है।

अमरनाथ जी मुझसे पाँच वर्ष छोटे थे। जगदीशजी के गुरु रहे और मेरे बहुमूल्य साथी। मैं शिक्षक रहा हूं, शिक्षक वर्ग का सेवी हूं और हिन्दी का भी। अमरनाथ जी भारतीय शिक्षकों के सिरमौर थे, शिक्षक वर्ग के सेवी थे और अंग्रेजी के सर्वमान्य आचार्य होते हुए भी वह हिन्दी के प्रेमी थे, जिस कारण हिन्दी संसार में मान्य थे। जिस संकटकाल से भारतीय शिक्षक और हिन्दी पक्ष इस समय गुजर रहा है, उसमें उनकी बड़ी जरूरत थी। परन्तु आज से दश वर्ष पहले ही वह अपनी अन्तिम यात्रा पर चले गये। क्यों?

जिस शिष्य सेवा पर अमरनाथ जी को नाज़ रहा, जो उनके जीवन की ज्योति रही, उस ही पर उन्हें अपने कुलपतित्व काल के नौ वर्ष लगातार

आघात सहने पड़े। सन् १९३८ से १९४७ तक वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उप कुलपति रहे। वह जमाना राष्ट्रीय कांग्रेस का विदेशी सरकार से उग्र संघर्ष का था। इन्हीं नौ वर्षों के भीतर महासमर हुआ, तत्पश्चात् देश रक्त-रंजित होकर विभाजित हुआ और स्वतन्त्र भी। शिष्यों की निष्ठा अपने गुरु के प्रति कम नहीं हुई। परन्तु उत्तेजना से मुक्त रहना उनके लिए असम्भव था, तो इस उत्तेजना से उत्पन्न समस्याएँ और उनके टूटे-फूटे हल उपकुलपति के नाते अमरनाथ जी के सामने आते रहे। जगदीशजी ने एक घटना का उल्लेख किया है। ऐसी कितनी ही घटनाएँ उनके सामने आयीं, जिन्होंने उनके स्वास्थ्य की जड़ें खोखली कर दीं। ९ वर्ष तक उपकुलपति पद की यंत्रणाएँ शान्तिपूर्वक सहन करते हुए जब उन्होंने अपना पदभार किसी समय उस पद के लिए प्रतिद्वन्द्वी डा० ताराचन्द को सुपुर्द किया, तब तक वह बाहर से प्रसन्न दिखते हुए भी भीतर से जीर्ण हो चुके थे।

सन् १९२५ में आचार्य शेषाद्रि तथा सहपाठी देवी प्रसाद खत्री के नेतृत्व में आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसियेशन्स नामक संस्था स्थापित हुई जिसका उद्देश्य है भारतीय शिक्षकों को एक सूत्र में संगठित करके शिष्यों के पालकों के सक्रिय सहयोग से भारतीय होनहारों की शिक्षण सेवा करना। इस उद्देश्य से सहमत होना, ऐसे उद्देश्य से स्थापित संस्था में सक्रिय भाग लेना, अमरनाथ जी के लिए स्वाभाविक था। सो सन् १९४२ में आचार्य शेषाद्रि का निधन होने पर वह इस संस्था के अध्यक्ष हुए और आजीवन इसकी सेवा करते रहे। इसी बीच देवी प्रसाद सन् १९४६ के आरम्भ ही में स्वर्गीय हुए, तो संस्था संचालक का विशेष भार इन पर आ पड़ा। जिस खूबी से इन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह किया उसका पता तो हमें उनके निधन-काल से लगने लगता है। श्री भैरवदत्त सनवाल को अमरनाथ जी के शिष्यत्व का गौरव प्राप्त है। वह कानपुर नगर के प्रबन्धक हुए और अमरनाथ जी से उन्हें फेडरेशन को भवन के लिए भूमि की व्यवस्था करने का संकेत मिला, तो हमें नाममात्र के वार्षिक किराये पर यथेष्ट बड़ी भूमि नगर के केन्द्रीय भाग में मिल गई जिस पर अब फेडरेशन का भवन है।

भवन अवश्य है परन्तु उससे फेडरेशन की, शिक्षक वर्ग की वह सेवा नहीं हो रही, जो होनी चाहिए थी। तभी तो इन 'गुरु प्रवर' की याद आती है।

हिन्दी संकट प्रत्यक्ष है। जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर मान्य होना चाहिए था, तभी से उसके विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया है।

हिन्दी के हिमायती हमें अवश्य दिखते हैं, परन्तु ऐसे हिमायतियों का अभाव है जो अंग्रेजी के भारतीय विद्वानों में भी मान्य हों। हिन्दी के ऐसे आड़े समय अमरनाथ जी जैसे नेता की देश को जरूरत थी।

हिन्दी को वैधानिक मान्यता मिलने पर मेरी समझ में आया कि इस भाषा की वैधानिक मान्यता तभी वास्तविक हो सकेगी जब इस भाषा में साहित्य का सर्वांगीण निर्माण होगा। रार्जषि टण्डन जी की गणना देश के नेताओं में थी और वह हिन्दी प्रचार के अग्रणी थे; जिस कारण संविधान मण्डल में हिन्दी को राष्ट्रीय मान्यता मिल गई। परन्तु निर्माण उनके क्षेत्र के बाहर था और उन्हीं दिनों उनका ही बनाया हिन्दी साहित्य सम्मेलन दलबन्दी में फँसकर निष्क्रिय हो गया था। टण्डन जी का मुझे आदेश हुआ कि मैं डिग्री कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तकों के निर्माण करने का काम हाथ में लूं। सेवा मेरे मन की थी, परन्तु मेरी शक्ति के बाहर थी। यह भी मुसीबत थी कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन उन दिनों न्यायालय का वन्दी था जिसके माध्यम से यह सेवा की जानी चाहिए था।

नगर प्रचारिणी सभा सम्मेलन की पूर्वजा है और उन दिनों अमरनाथ जी इसके अध्यक्ष थे। तो अपनी योजना लेकर मैं पटना पहुंचा। वह अस्वस्थ अवश्य थे। परन्तु मेरी योजना उन्हें रुची और वह नेतृत्व के लिए राजी हो गए।

क्या पता था कि उनकी अन्तिम यात्रा निकट आ गई थी और उनका दूसरा दर्शन मेरे भाग्य में न था। आल इण्डिया फेडरेशन का हिन्दी नामकरण **भारतीय शिक्षक संघ** इस वर्ष के गणतन्त्र दिवस से चालू है जब इसकी मुख-पत्रिका का पहला अंक प्रकाशित हुआ। कितने वर्ष पहले ही से भारतीय शिक्षक संघ द्वारा यह सेवा होने लगती, यदि अमरनाथ जी हमारे मध्य होते।

जगदीश जी की 'दस तसवीरें' मेरी निधि हैं। ये तसवीरें उन पाठकों की भी निधि बनें जिन तक इस समीक्षा की पहुँच हो। एक कामना और। इस निधि को बीज रूप में उर्वरा भूमि मिले और हिन्दी सेवियों को जोड़ के साहित्य-निर्माण की प्रेरणा भी [illegible]

—**कालिदास कपूर**

एपालेचियन वालंटियर्स

हर शनिवार को कालेजों के १०००० छात्र संयुक्त राज्य के कैण्टकी राज्य के गरीब पहाड़ी इलाकों में काम करते हैं। उनका उद्देश्य है स्कूलों का पुनर्निर्माण करना और सोई आशाओं को मूर्त्त रूप देना।

कैण्टकी के २० कालेजों के १००० से अधिक छात्रों ने मिल कर अपना एक उत्साही संगठन बना लिया है जिसका नाम है 'एपालेचियन वालंटियर्स'।

संगठन का सदस्य बनने की केवल एक शर्त है और वह यह कि छात्र हर शनिवार को बहुत सबेरे उठ कर पूर्वी कैण्टकी की अलग-अलग घाटियों में मोटर से जाने को तत्पर हो। कैण्टकी के उस इलाके की भूमि कमजोर है और कोयला खानें हल्की पड़ गई हैं। वहाँ जाकर छात्र सारे दिन एक कमरे वाले स्कूलों का पुनर्निर्माण करने और उनमें नया साज-सामान लगाने के लिए पूरी मेहनत करते हैं और इस प्रकार उस पहाड़ी इलाके के लोगों की स्थिति सुधारने का यत्न करते हैं।

उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता। लेकिन बाराबोरविल (कैण्टकी) निवासी जैक रिवेल ने, जो कि कार्यक्रम के संयोजक हैं, कहा—आप इसके बदले में किसी बच्चे का धन्यवाद पा सकते हैं—और यह देख कर संतोष कर सकते हैं कि वे किस प्रकार स्कूल में नई दिलचस्पी लेते हैं और इन छात्र-स्वयंसेवकों के आने के बाद से वे अपने सम्बन्ध में क्या कुछ करना चाहते हैं।

१९६३ में कालेज में बड़े दिन की छुट्टियाँ होने पर कुछ थोड़े से छात्रों ने मिल कर एक छोटे कार्यक्रम के रूप में 'एपालेचियन वालंटियर्स' की शुरूआत की थी। उनमें से कुछ अपने घरों से दूर थे। उन्होंने वहीं ठहर कर कण्टकी की हार्लेन काउण्टी मैं दो जर्जरित स्कूलों को सुधारने का निश्चय किया। यह योजना जल्दी ही लोकप्रिय हो गई। दक्षिणी पार्वत्य प्रदेशों की परिषद् ने बेरिया (कैण्टकी) में उसे दफ्तर के लिए जगह दी और उचित परामर्श भी दिया। 'एपालेचियन वालंटियर्स' को पता चल गया कि व्यापारी तरह-तरह का सामान मुफ्त दे देंगे। फिर उन्होंने ढांचे खड़े करने का माल और रंग-रोगन आदि ट्रकों में लाद कर पहुंचाया तथा आवश्यक

उपकरण मांग लिये। इस तरह पूर्वी कैण्टकी में एक कमरे वाले ८०० से अधिक स्कूलों का उद्धार-कार्य प्रारम्भ हुआ।

जब दक्षिणी पार्वत्य प्रदेशों की परिषद् के सहयोग से 'क्षेत्रीय पुनर्विकास प्रशासन' से उन्हें अपने कार्यालय और प्रबन्ध-कार्यों के खर्चों के लिए ५०,००० डालर का अनुदान मिला तो संगठन की नींव मजबूत हो गई। उसके बाद से इस कार्यक्रम का विस्तार तेजी से हुआ है। पहाड़ी इलाके के स्कूल भवन अब जर्जरित नहीं रहे हैं और उनपर रंग-रोगन भी हो गया है। इसलिए बच्चों में दिलचस्पी बढ़ गयी है। वे शनिवार को प्रातः तरह-तरह के विषय पढ़ने के लिए उत्सुक रहते हैं।

कालेजों के छात्र कक्षाओं में स्वास्थ्य और स्वच्छता विषयक बातें बतलाते हैं और इन विषयों के लिए अपनी पुस्तकें तथा चार्ट आदि अन्य सामान लेकर आते हैं। वे प्रश्नों के उत्तर देते हैं, जिनसे पहाड़ी प्रदेश के बच्चों को स्वास्थ्य व स्वच्छता के बारे में हाथ साफ रखने से लेकर नदी को गँदला न करने तक तरह-तरह की बातें मालूम होती हैं।

गणित और विज्ञान के कालेज-छात्र अपने विषयों से सम्बद्ध व्यावहारिक बातों का प्रदर्शन करते हैं। इस काम में अक्सर स्थानीय अध्यापक भी उनकी मदद करते हैं। प्रयोगशाला के मामूली से परीक्षणों को भी बड़े ध्यान से देखते हैं।

विदेशों के कालेज-छात्र अपने साथ सिनेमा स्लाइड, चित्र और देशी पोशाकें लेकर आते हैं और बच्चों को संसार के भूगोल तथा विभिन्न देशों की संस्कृतियों का परिचय कराते हैं। कभी-कभी ये चीजें स्थानीय अध्यापक के पास ही छोड़ दी जाती हैं ताकि बाद में छात्र उनसे और लाभ उठा सकें। 'एपालेचियन वालंटियर्स' ने ये चीजें हासिल करने के लिए कई देशों के दूतावासों से लिखा-पढ़ी भी की है।

बहुत से स्कूलों में पुस्तकालय नहीं हैं। इसलिए 'एपालेचियन वालंटियर्स' द्वारा एक कमरे वाले स्कूलों में ४०० पुस्तकालय स्थापित करने के विशाल कार्यक्रम पर अमल किया जा रहा है। अब तक एक दर्जन पुस्तकालय चालू किये जा चुके हैं। छात्र-स्वयंसेवकों द्वारा बनाई हुई मजबूत अलमारियों में बाइबिल की कथाओं से लेकर परी-कथाओं तक की पुस्तकें हैं। बहुत सी पुस्तकें कैण्टकी से बाहर की संस्थाओं और व्यक्तियों ने भेंट दी है।

किन्तु सबसे बड़ी प्रगति छात्र-स्वयंसेवकों के पदचिन्हों पर आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा जाग्रत होने के रूप में है।

श्री रिवेल ने बताया "हमारा पहला काम बस्तियों के लोगों के साथ सम्बन्ध बनाने का था। इसमें कुछ समय लगा, पर अब हम जहाँ कहीं जाते हैं वहीं हमें मित्र मिल जाते हैं। अब इन उपेक्षित पहाड़ी प्रदेशों की नीचे-ऊपर सभी बस्तियों में नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं।"

यह बात उन चिट्ठियों से भी प्रकट होती है जो 'एपालेचियन वालंटियर्स' के बेरिया स्थित कार्यालय में आती हैं। स्कूलों के अधीक्षक जो पहले उत्साही कालेज छात्रों के प्रयत्नों पर कोई ध्यान नहीं देते थे, अब उनसे सहायता देने का अनुरोध करते हैं। एकान्त बस्तियों के स्कूलों के अध्यापक भी अब इन छात्र-स्वयंसेवकों से अपने यहाँ एक-दो चक्कर लगाने का आग्रह करते हैं।

'दक्षिणी पार्वत्य प्रदेशों की परिषद्' के समाज विकास सम्बधी परामर्शदाता मिल्टन ओगले ने प्रारम्भ से ही छात्र-स्वयंसेवकों के सहयोग से काम किया है और वह बेरिया में उनके कार्यालय की देख-रेख भी करते हैं।

उनका कथन है कि छात्र-स्वयंसेवकों का चरम लक्ष्य स्वास्थ्य, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी सुधारों के कार्यक्रमों को चालू करना और फिर स्थानीय नेताओं को उन्हें संभाल लेने के लिए प्रेरित करना है।

'एपालेचियन वालंटियर्स' जैसी योजनाओं का लाभ यह है कि उनकी सफलता स्थानीय नागरिकों के स्वावलम्बी प्रयत्नों पर निर्भर होती है—और उन प्रयत्नों का अभाव नहीं दीखता।

बहुत से स्वयंसेवक स्वयं भी इसे बहुत सीधे-सादे ढंग से प्रकट करते हैं। केण्टकी विश्वविद्यालय के एक बलिष्ठ छात्र ने फर्श के दरारों की मरम्मत करते-करते सिर उठा कर कहा : "जब हर कोई यह महसूस कर ले कि अगले जाड़ों में किसी बच्चे के पैर ठिठुरने से बच जायेंगे तो आप को यथेच्छ सहयोग पाने में कोई दिक्कत नहीं होगी।"

यूनियन कालेज की छात्रा कैथी ब्रिनली स्वयंसेविका के रूप में पहली बार एक दिन सुबह कम्बरलैण्ड नदी की एक सहायक नदी के पास घाटी में गई। उसने जीर्ण-शीर्ण स्कूल की छत को ढकने के लिए टुकड़े काटने में हाथ बटाया ताकि जाड़ों में वहाँ बर्फीली हवा से बचाव हो सके। फिर वह अपने साथ लाई पुस्तक में से कहानियाँ सुनाने आधे दर्जन बच्चों को लेकर बैठ गई। काम से थक कर शाम को विश्वविद्यालय की ओर लौटते हुए वह बोली : 'मैं यह तो नहीं जानती कि यह सब क्या है, पर मैं यहाँ फिर लौट कर आऊँगी; इसका आप भरोसा रखें।'

हर शनिवार को तड़के ही 'अपालेचियन वालंटियर्स' के छात्र अपने कालेज से निकल पड़ते हैं और घाटी के किसी पूर्व-निर्धारित स्थल पर इकट्ठे होते हैं। औजार, लकड़ी, कील-कांटे पुस्तकें और प्रदर्शनात्मक साज-सामान के अलावा वे कभी-कभी सारंगी भी साथ ले जाते हैं। उन्होंने समझ लिया है कि कालेज के लोक-संगीत उत्सव से जल्दी ही बहुत से मित्र बन जाते हैं। वस्तुत: बहुत से प्रचलित लोक-गीत पहाड़ी बस्तियों में कई पीढ़ियों से गाये जाते रहे हैं।

शीघ्र ही ऐसी स्थिति हो जाती है कि बस्ती के लोग और 'एपालेचियन वालंटियर्स' के छात्र मिलकर गाने लगें। फिर वे स्कूल और बस्ती के लिए किसी नई विकास-योजना के बारे में विचार करते हैं जैसे बेसबाल का खेल या बच्चों के पानी पीने के कुएँ की मरम्मत आदि। उसके बाद बस्ती के लोग—और छोटे बच्चे भी—हथौड़े और आरे लेकर पुराने मकान को ठीक-ठाक करने में जुट जाते हैं।

जैक रिवेल को दो साल तक शनिवारों को ऐसी सन्तोषजनक यात्राएँ करने के बाद यह विश्वास हो गया है कि अब इन घाटियों की पुरानी दुरवस्था कभी नहीं रहेगी। —अमेरिकन रिपोर्टर से साभार

* * *

''जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। हिन्दू-मुसलमान दोनों को मिलाकर करीब बाईस करोड़ मनुष्यों की भाषा थोड़े बहुत फेरफार से हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही है; इसलिए उचित और संभव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में उसी प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी, और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो। हिन्दी बोलने वालों की संख्या करोड़ों की रहेगी, किन्तु अंग्रेजी बोलनेवालों की संख्या कुछ लाखों से आगे कभी नहीं बढ़ सकेगी। इसका प्रयत्न भी करना जनता के साथ अन्याय करना होगा।

—महात्मा गांधी

* * *

प्रत्येक भारतीय बालक को पहले तीन वर्ष तक हिन्दी के अतिरिक्त और किसी भाषा की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। बच्चों का नन्हा और कोमल मस्तिष्क विदेशी भाषा की शिक्षा से बोझिल नहीं बनाना चाहिए। हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देना सर्वतोमुखी दृष्टि से राष्ट्र-निर्माण का कार्य है।

—एस० सत्यमूर्ति

तिब्बता औरउनके बच्चे

(श्रीमती कुमुद झिंगरण, कलिंपोंग)

भारत के उत्तर में हिमालय और चीन के पर्वतों के बीच तिब्बत देश है। निवासी तिब्बती कहलाते हैं। पहले यह देश स्वतन्त्र था, किन्तु आजकल चीनियों ने इस पर अधिकार कर रखा है। भूमि का क्षेत्र ४,६३,००० वर्ग-मील है। जनसंख्या २५ लाख मानी जाती है। यह संसार का सबसे ऊँचा पठार है। इसे पृथ्वी की छत भी कहते हैं।

यहाँ का सबसे ऊँचा पर्वत कैलाश है जिसकी चोटियाँ बर्फ से ढकी रहती हैं। इसके निकट ही मानसरोवर झील है जिसे तिब्बती, 'छोपेमो' कहते हैं। वे इसे तीर्थस्थान मानते हैं।

यहाँ की जलवायु शुष्क और ठंडी है। मूल निवासी पेड़ पौधों तथा फूलों के बहुत शौकीन होते हैं। खेती करना, ऊन तैयार करना, जानवरों की खालों से जूते इत्यादि बनाना इनका मुख्य उद्यम है। यहाँ का याक़ जानवर खेती में बहुत सहायक होता है। भेड़ों से ऊन काफी मात्रा में प्राप्त होता है जिससे तिब्बती कालीने बहुत सुन्दर बनाकर बेचते हैं। यहाँ से ऊन बाहर भी भेजा जाता है। थोड़ा-बहुत अनाज भी पैदा होता है। भोजन का अधिकांश मांस ही होता है। ये लोग कच्चा मांस खाते हैं और पकाकर भी। सुबह चाय के साथ थुप्पा लेते हैं। दोपहर का भोजन, दलिया, सब्जी, चावल पका हुआ गोश्त आदि लेते हैं। शाम का भोजन भी इसी प्रकार है। तिब्बती चाय के बहुत शौकीन होते हैं। तिब्बत के मूल निवासी स्त्री पुरुष लम्बे बाल रखते हैं और चोटियाँ बांधते हैं। लामा अथवा पढ़े-लिखे पुरुष चोटी नहीं रखते, वे भारतीयों की ही भांति रहते हैं।

इनके वस्त्र भी विशेष प्रकार के होते हैं। मूल तिब्बती कमीज, चुस्त पैजामा और ढीला कुरता जैसा पहनते हैं। ऊपर से लम्बा सा बख्खू लगाते हैं। किन्तु पढ़े लिखे सभ्य घरानों के लोग पैंट, शर्ट, बुशर्ट, कोट इत्यादि पहनते हैं, बख्खू केवल विशेष अवसर पर ही पहना जाता है। स्त्रियाँ भी मूल निवासियों से पृथक साफ सुथरी कीमती पोशाकें पहनती हैं। विशेष

अवसरों पर आभूषण भी सिर, कान और हाथों में पहनती हैं। ढीला ब्लाउज और चोब्बा-वख्खू ये भी लगाती हैं। लड़कियाँ भी यही ड्रेस पहनती हैं। विवाहित स्त्रियाँ चोब्वा के ऊपर कमर से पैर तक लटकता हुआ धारीदार कपड़ा पहनती हैं। पुरुष फर तथा जरी के काम की बनी टोपी लगाते हैं जिसकी बनावट विशेष ढंग की होती है। लामा लोग गेरुए रंग का वस्त्र पहनते हैं। ये लोग काला और किसी और रंग का वस्त्र नहीं पहनते। गेरुआ और पीले रंग के वस्त्र लामाओं के दो सम्प्रदायों को सूचित करते हैं। सिर मुँडवा कर पांच वर्ष की अवस्था से ही लामा बना दिये जाते हैं। इन्हें विद्यार्थी जीवन ब्रह्मचर्य के साथ व्यतीत करना पड़ता है। पूरी लामा शिक्षा प्राप्त कर लेने पर विवाह करना इनकी इच्छा पर ही निर्भर होता है। यदि विवाह नहीं करते तो सन्यासियों की भांति ही रहते हैं। गेरुआ या पीला वस्त्र पहनते हैं, पूजा-पाठ भी बहुत अधिक करते हैं। धर्म अथवा जादू टोने में भी विश्वास रखते हैं। गुम्ब्रा अथवा तिब्बती मन्दिर में तो हर समय पाठ होता रहता है। तिब्बती भाषा में लिखे कई ग्रंथ हैं। जिसमें वेद, गीता, रामायण, आदि के सारांश भी हैं। भारतीयों की तरह यह लोग भी मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं। जीव, आत्मा और योनियों में भी इनका विश्वास है। कुछ देवी देवताओं के नाम तो फर्क है पर पहनावे में सिर पर मुकुट, वस्त्र इत्यादि भारतीय मूर्तियों की ही भाँति हैं, जिसमें 'तारादेवी' लक्ष्मी की तरह है। यमुना, सरस्वती और गायत्री के अनुरूप देवियों की पूजा करते हैं। गायत्री मंत्र, और ओम शब्द बहुत पवित्र समझते हैं। शंकर जी के भी भक्त हैं जिन्हें वे बुद्ध का अवतार मानते हैं और नित्य हरी धूप जलाकर पूजा करते हैं। दीपक जलाने में भी बहुत श्रद्धा है। त्योहारों पर एक सौ आठ दीप जलाते हैं। वैसे भी पूजा के स्थान में जल के कलस के ऊपर एक दीपक प्रायः हर समय जलता रहता है। बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं, पर हिंसात्मक बुद्धि रखते हैं। भारतीय प्रथा की भांति प्रतिमास पूर्णिमा, अमावस्या मनाते हैं, गुंम्बा जाते हैं, व्रत रखकर, हवन करते हैं; बिस्कुट, टाफी, कुछ मिठाई देवी-देवता का भोग लगाते हैं।

'लोशा' तिब्बतियों का मुख्य त्योहार है। यह त्योहार होली की ही तरह मनाया जाता है। मार्च के पहिले सप्ताह में होता है, लोशा को यह लोग नये वर्ष का आरम्भ भी मनाते हैं। कई दिन पहले से ही स्त्रियाँ अनेक प्रकार के पकवान मैदे से बनाकर रखती हैं, नये कपड़े लोशा के दिन पहने जाते हैं, मिठाई पकवानों का भोग लगता है। एक थाल में घी से तर भुना

हुआ कसार सजाते हैं, उसमें आटे का वृक्ष बनाकर हरे लाल रंग से रंगकर पत्तियाँ फल लगाते हैं। घरों में जौ की बालियाँ रखी जाती है। लोग एक दूसरे के घर मिलने जाते हैं और 'नया वर्ष मुबारक हो' की बधाई अपनी भाषा में 'तासी दिले' कह कर देते हैं।

महमानों का बहुत स्वागत करते हैं, यहाँ तक की यदि कोई इनके यहां पहुंच जा जाये, तो कम से कम तीन प्याले चाय बिस्कुट तो अवश्य ही पीनी पड़ती है। न लेने पर बहुत बुरा मानते हैं। तिब्बती चाय साधारण चाय की तरह नहीं तैयार होती। इसे बनाने का तरीका विचित्र है। तिब्बती चाय थकिया के रूप से बाजारों में बिकती है। उसे लेकर एक लकड़ी के खरल में डालते हैं फिर उसमें गरम पानी छोड़कर घोटते हैं, सत्तू और पकवान मिलाकर अच्छी तरह घोल तैयार हो जाने पर दूध मिलाकर गरम करके केतली में भर देते हैं और बहुत स्वाद से पीते हैं। तिब्बती चाय की थकिया न मिलने पर गरम चाय के पानी को ही खरल में छोड़कर सत्तू मक्खन मिलाकर तैयार कर लेते है। लोशा पर याक की पूंछ को लकड़ी के लम्बे लट्ठे के सिरे में तिब्बती रीत रिवाज के अनुसार बांधते हैं। याक का रुधिर, मांस, गो मांस, एक प्रकार का पेय जिसे 'छंग' कहते हैं बहुत शौक से लेते हैं।

बड़े घराने की समाज में पार्टियों का रिवाज है। रंग-विरंगे और विचित्र कपड़े पहने नर-नारी पार्टी में पहुँचते हैं। चम्मच की जगह दो प्लास्टिक व हाथी दाँत की बनी स्टिक्स् रहती है। उन्हीं से ये दोनों हाथों से बहुत ही स्टाइल से हर वस्तु को उठाकर खाते हैं। पान-सुपारी की जगह इनके यहाँ टाफी का बहुत रिवाज है। लोशा के त्योहार पर, छंग पीकर तरह-तरह के चेहरे लगाकर ड्रामा खेलते हैं। गहरे रंग के कपड़े पहनते हैं।

लड़कियाँ लड़के एक साथ गोल बनाकर सुन्दर ढंग से गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। यह नृत्य जूता पहनकर ही करते हैं, जूतों की टापों से नृत्य की ध्वनि का पता चलता है। तिब्बती नृत्य देखने में भला लगता है। यद्यपि आजकल तिब्बती नृत्य में भी कुछ चीनी प्रभाव आ गया है; फिर भी इनके नृत्य की अपनी विशेषता है। तिब्बत में तिब्बती भाषा में ही शिक्षा दी जाती थी। १२ कक्षा तक पास करने के बाद वे योग्य समझे जाते थे। वहाँ केवल एक ही स्कूल था। उसी में सभी एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। इन्हें

केवल धार्मिक शिक्षा ही दी जाती थी। लिपि देखने में सुन्दर लगती है। उच्चारण में संस्कृत-पाली के शब्दों की भाँति स्वर निकलते हैं। लिखने में हिन्दी, व संस्कृति की भाँति, बांए से दायें ही लिखी जाती है। तिब्बती लिपि बहुत कलात्मक होती है।

तिब्बत एक स्वतन्त्र देश था। इसकी प्रभुता तथा शक्ति किसी से कम नहीं थी, विचार भी स्वतन्त्र था। कहा जाता है ईसा के जन्म से पांच शताब्दी पूर्व वहां भारतीय राजा प्रसेनजित का बेटा न्यत्रीत्सनप वहाँ राज्य करता था। इसी वंश का सातवीं शताब्दी में सांगत्सान गेम्पो तिब्बत का राजा हुआ। उसने चीन पर आक्रमण किया। चीनी सम्राट युद्ध में पराजित हुआ। उसने संधि कर ली और अपनी लड़की ऐनचांग का विवाह तिब्बत के राजा के साथ कर दिया। बस तभी से चीन से संबंध स्थापित हुआ। ऐनचांग बौद्ध धर्म को मानने वाली थी। उसने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए लामा नियुक्त कर दिये। धीरे-धीरे लामा शासक बन गये।

चीन के मंगोल सम्राट काबुली खां ने साम्य लामा को तिब्बत का शासन सौंप दिया। इसके बाद श्रृंखला के तीसरे लामा सोनामग्यात्सो ने बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार किया। मंगोलों ने प्रसन्न होकर उन्हें दलाई लामा (ज्ञान का सागर) उपाधि दी। पांचवां दलाई लामा लोबसेंग्यात्सो भी कुशल शासक सिद्ध हुआ। किन्तु १७०६ के बाद तिब्बत को आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। १९०७ में वह फिर स्वतन्त्र हो गया। यह स्वतन्त्रता बहुत संघर्ष के बाद मिली थी। चीनी और अंग्रेजों ने मिलकर वहाँ मिशन बनाये और व्यापार आरम्भ किये। किन्तु तिब्बत ने चीन की अधीनता का विरोध किया। चीनियों का अत्याचार और अन्याय बढ़ता गया। उन्होंने इनकी धार्मिक भावनाओं को भी ठेस पहुंचाई, किन्तु यह किसी प्रकार राजी न हुए तो १९६२ में अचानक एक रात हमला बोल दिया। पंचम लामा तो चीनियों से सहमत हो गये। पर दलाई लामा भारत चले आये और उनके साथ बहुत से तिब्बती जनता भी आ गयी। भारत सरकार ने उन्हें शरणार्थी अतिथि की भांति स्थान दिया, स्वागत किया और आज भी भारत में वह अपने तिब्बती अनुयायियों सहित सुरक्षित है। तिब्बती बच्चों के लिए कई पहाड़ी स्थानों पर रिफ्यूजी स्कूल खोले गये हैं। भारत सरकार की संरक्षिता में वे इंगलिश माध्यम से सभी विषयों की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

ये स्कूल, मंसूरी, डलहौजी, माउंट आबू, पंचमढ़ी, दार्जिलिंग,

कलियोंग, इत्यादि स्थानों पर खुले हैं। यहाँ पर हर स्कूल में ही इनके रहने, खाने, पहनने और पढ़ाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध है। वहाँ ये बिल्कुल भारतीय बच्चों जैसे दिखते हैं। हर ५० लड़कों पर एक माता-पिता, जिन्हें तिब्बती में पाला, अमाला कहते हैं देखभाल के लिये नियुक्त है। नर्स और डाक्टर भी उन्हें समय पर देखते रहते हैं। कुछ ही दिनों के बाद वे भी हिन्दी-इंगलिश में बातें कर सकेंगे, और भारतीयों बच्चों के घनिष्ठ मित्र एवं सहयोगी बन जायंगे।

दिल्ली में स्कूल में बाल-अध्ययन यूनिट कायम होगी

ब्रिटेन में राजकुमारी अमृत कौर स्मारक निधि कायम की गयी है जिसके लिए धन एकत्र करने हेतु एक फिल्म प्रदर्शन, एक फैशन प्रदर्शन-कार्यक्रम और कदाचित् एक अन्तर्राष्ट्रीय सान्ध्य उत्सव का आयोजन किया जायेगा।

इस निधि के अध्यक्ष हैं, भारतीय हाई कमिश्नर की पत्नी, श्रीमती हंसा मेहता; और सम्बन्धित समिति में अनेक प्रतिष्ठित भारतीय और ब्रिटिश व्यक्ति शामिल हैं जो या तो राजकुमारी अमृत कौर को व्यक्तिगत रूप से जानते रहे हैं, या जो भारतीय जन के स्वास्थ्य और कल्याण वर्द्धन में उनके कार्यों के समर्थक रहे हैं।

भारतीय हाई कमीशन के एक प्रवक्ता ने बताया कि फिलहाल समिति एक वर्ष तक सक्रिय रहेगी। और इस प्रकार जो धनराशि एकत्र होगी उससे नयी दिल्ली के लेडी अरविन कालेज में एक बाल विकास अध्ययन यूनिट तथा नर्सरी स्कूल की स्थापना की जायेगी। स्मरणीय है कि राजकुमारी अमृत कौर अपने जीवनकाल में इस कालेज से निकटस्थ रूप में सम्बन्धित रही थीं।

उक्त प्रवक्ता ने बताया कि नेशनल फिल्म थियेटर में सितम्बर २५ को सत्यजित रे की 'चारुलता' का प्रदर्शन होगा। इस अवसर पर प्रसिद्ध भारतीय नर्तक, रोमगोपाल, अपना संक्षिप्त कार्यक्रम पेश करेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय फैशन प्रदर्शन का आयोजन अक्तूबर ७ को सम्पन्न होगा।

दक्षिण भारत की हिन्दी समस्या

(श्री ए० पी० पी० नम्पूतिरि)

भारत की सुरक्षा को भी खतरे में डालते हुए प्रचण्ड रूप में उठे एक आन्दोलन के तात्कालिक रूप में शामिल होने पर हम भाषा-समस्या पर विचार कर रहे हैं। अल्पकाल की घटनाओं से ही यह व्यक्त हुआ है कि इस सम्बन्ध में लोगों में कैसे प्रबल विकार हैं। थोड़े से विद्रोहकारियों और राज्य-द्रोहियों की मनमानी के रूप में इस आन्दोलन को देखना और इसके दमन करने का विचार करना वस्तुस्थितियों को यथार्थ की पृष्ठभूमि में न देखने का ही परिणाम है। असल में यह समस्या चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों से भी बढ़कर भारत के प्रत्येक देशप्रेमी के विशेष ध्यान का विषय होना चाहिए। ध्यान देना ही पर्याप्त नहीं है, एक शाश्वत परिहार मार्ग ढूंढ़ निकालकर त्वरित रूप में उसे प्रयोग में लाना भी आवश्यक है।

दक्षिण के लोग जब चाहें, तब वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत करने को स्वतन्त्र हैं; पर उत्तर भारत के लोग अभी उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत करेंगे; दक्षिण भारतीयों के लिए अंग्रेजी भी सह-भाषा के रूप में रहेगी—यही इस समय का निर्णय है। क्या यह भारत को हिन्दी प्रदेश और अहिन्दी प्रदेश ऐसे दो टुकड़ों में बांटने का प्रारम्भिक क्रम तो नहीं है? मैं नहीं सोचता कि अहिन्दी प्रदेश, विशेषकर दक्षिण के प्रदेश, कभी स्वेच्छा से हिन्दी को स्वीकृत करने को तैयार होंगे। और परिणाम? सदा के लिए द्वैत भाव। शायद कालान्तर में भारत का दो होना। इस अभिसन्धि को सामने देखते हुए ही हमें भाषा-समस्याओं के बारे में सोचना चाहिए।

विकार का निर्णय

स्वतन्त्रता समर के समय में ही स्वतत्व भारत की सम्पर्क भाषा के बारे में—राष्ट्र भाषा के बारे में—हमने सोचा था और निर्णय भी किया था। गांधी जी ने तब जोरदार ढंग से कहा कि हिन्दुस्तानी ही सामान्य भाषा हो सकती है। यह अंगीकार भी किया गया। अंग्रेजों को शत्रुओं के रूप में देखते हुए हमने अंग्रेजी भाषा को भी शत्रु भाषा के रूप में देखा। वस्तुतः

वह एक वैकारिक समीपन का परिणाम था। अंग्रेजों को हटाना, उनके स्मरण के अवशिष्ट-स्वरूप सभी वस्तुओं को यथासम्भव निष्कासित करना—यही उस समय की मौलिक नीति थी। इसलिए उस परिस्थिति में हिन्दुस्तानी के प्रति झुकाव स्वाभाविक था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अधिक काल के बीतने के पहले—अंग्रेजों के प्रति विद्वेष के पूर्णतः ठंडा होने के पूर्व—१९४९ में संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति भी विकार की ज्वार में ही हुई थी। पन्द्रह वर्षों के बाद की बात होने से वह हृदय पर नहीं चुभा। हृदय पर लगने वाली और कई बातें उस समय थीं। १९६५ के गणतन्त्र दिवस पर ही हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने से संभाव्य हानियों के बारे में लोगों ने सोचा। विकार के एक निर्णय को प्रयोग में लाने लगते ही, और कुछ लोग दूसरे विकार के अधीन हुए।

कौन सी भाषा ?

अनेक भाषा भाषियों के देश को भारत में सभी राज्यों की जनता को परस्पर सम्बद्ध रखने के लिए, और केन्द्र एवं स्टेटों के बीच के पत्र व्यवहार के लिए एक सम्पर्क भाषा अनिवार्य ही है। यदि एक सम्पर्क भाषा होनी चाहिए, तो इस सम्बन्ध में मेरा मत है कि अब तक औद्योगिक भाषा और सम्पर्क भाषा में रहती आयी हुई अंग्रेजी को ही जारी रखना चाहिए।

अंग्रेजी क्यों ?

अंग्रेजी के विदेशी भाषा होने से उसके प्रति जो वैकारिक विरोध-भाव है, वही अंग्रेजी विरोध के पीछे है। १९४९ में कांस्टीच्युएण्ट असेम्बली में पं० जवाहरलाल नेहरू ने यही तर्क प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा था, "एक विदेशी भाषा के माध्यम से कोई राज्य महत्व प्राप्त नहीं कर सकता।" अंग्रेजी की अयोग्यता नहीं, उसका विदेशीपन ही उसके विरोध का कारण है। बहुत वर्षों से सम्पर्क भाषा और औद्योगिक भाषा के रूप में रहती हुई अंग्रेजी को उन स्थानों से निष्कासित करने पर क्या क्या कठिनाइयाँ होंगी ?

सभी राज्यों (स्टेटों) को और सभी भाषाओं को समान पद देना ही भारत जैसे वैविध्यपूर्ण एक राष्ट्र में नीतिपूर्वक है। सभी स्टेटों में सम्पर्कभाषा और औद्योगिक भाषा रहने से अंग्रेजी समान रूप में प्रचलित हुई है। उसके अध्ययन में उत्तर प्रदेश-वासी को और तमिलनाड वासी को समान प्रयत्न करना पड़ता है। अतः भाषा पर अधिकार के कारण एक स्टेट की जनता

पर दूसरे स्टेट की जनता के आधिपत्य की दशा नहीं आयेगी। हिन्दी को सम्पर्क भाषा और औद्योगिक भाषा के रूप में स्वीकृत करने से वह भाषा बोलने वालों के उत्तर प्रदेश, बिहार आदि के लोगों को ऐसी एक सुविधा मिलती है, जो अन्य राज्यों के निवासियों को नहीं मिलती।

जनतन्त्रता के सिद्धान्त के आधार पर भी हिन्दी के आधिपत्य को न्याय्य नहीं मान सकते। १९६१ की जन-गणना के अनुसार भारत की आबादी लगभग ४४ करोड़ है। इसमें बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, देहली और पंजाब में मिलाकर जनसंख्या १९ करोड़ से कुछ अधिक होगी। इनमें भी पंजाब और राजस्थान में पंजाबी और राजस्थानी मातृभाषा वाले काफी संख्या में हैं। तो केवल बारह-तेरह करोड़ लोगों की ही मातृभाषा हिन्दी है। कुल पन्द्रह स्टेटों में पाँच स्टेट और केन्द्र के अधीन कुल दस प्रदेशों में एक प्रदेश हिन्दी प्रदेश है। इस तरह एक अल्पसंख्यक जनता की भाषा है हिन्दी। इस अल्पसंख्यकों की भाषा को, बहुसंख्यक जन स्वीकृत करें—यही आज का वाद है।

अनेक भाषाओं से युक्त किसी राष्ट्र में उस राष्ट्र की किसी भाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत नहीं की जाती—कुछ लोग ऐसा कहकर रूस का उदाहरण देते हैं। ठीक है, एक प्रादेशिक भाषा रूसी को ही वहाँ राष्ट्रभाषा का पद दिया गया है। पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि विप्लवानन्तर रूस में ऐसी किसी भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित करना नहीं पड़ा, जो उस समय तक औद्योगिक भाषा नहीं थी। एक लम्बे अरसे से राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग में रही हुई भाषा को उन्होंने जारी ही रखा। यहाँ की दशा ऐसी नहीं है। बहुत बड़े अरसे तक औद्योगिक भाषा के रूप में रहती हुई एक भाषा को हटाकर, एक अल्पसंख्यकों की भाषा को प्रतिष्ठित करने का ही प्रयत्न यहाँ हो रहा है। सो भी जनतन्त्रता को स्वीकृत करते हुए भारत में।

अंग्रेजी के सम्पर्क भाषा और औद्योगिक भाषा के रूप में जारी रहने के विरुद्ध कुछ लोग और एक तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। वह तर्क यही है कि सामान्य जनता को यह महसूस कराने के लिए कि शासन उनकी अपनी भाषा में हो रहा है, एक भारतीय भाषा की ही आवश्यकता है, पर अंग्रेजी बहुत कम लोगों को ज्ञात है। यह बहुत ही बचकाना तर्क है। हिन्दी के औद्योगिक भाषा होने पर भी भारत के दस स्टेटों के लोग इस कठिनाई से मुक्त नहीं होंगे। प्रादेशिक भाषाओं को स्टेटों में औद्योगिक भाषा के रूप में स्वीकृत

करना ही इसके परिहार का उपाय है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने पर उसके अध्ययन के लिए दक्षिण भारतीयों को विशेष प्रयत्न की जरूरत है, अंग्रेजी सीखने के लिये भी विशेष प्रयत्न जरूरी है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने से भारत के साधारण नागरिक को शासन में हिस्सा मिल जायगा—यह धारणा सिर्फ हिन्दी प्रदेशों को सामने देखते हुए संकुचित चिन्तन का परिणाम है। भारत को एक साथ लें, तो विशेष शिक्षण प्राप्त व्यक्ति ही हिन्दी की भी जानकारी रखेंगे। हिन्दी प्रदेशों में ऐसा नहीं होगा—यह उनको मिलने वाली एक सुविधा है। संक्षेप में राष्ट्रभाषा चाहे अंग्रेजी हो चाहे हिन्दी, बहुसंख्यक लोगों को विशेष अध्ययन से ही उसके प्रयोग के लिए आवश्यक वैदग्ध्य प्राप्त होगा। एक अल्पसंख्यक वर्ग को विशेष प्रयत्न के बिना विदग्ध रहने का और उससे आधिपत्य जमाने का अवसर है—हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने पर।

सत्वर कर्तव्य

आज सभी उत्तरदायी लोगों का सत्वर कर्तव्य स्टेटों में प्रादेशिक भाषाओं को औद्योगिक भाषा के रूप में, और विश्वविद्यालय सहित सभी विद्यालयों में माध्यम के रूप में अंगीकृत करके प्रयोग में लाना, और इस तरह जनता को शासन और शिक्षा के सभी मण्डलों से सम्बद्ध करना है। इसे प्रायोगिक बनाने की धीरता और सद्भावना हो, तो भारत की सम्पर्क भाषा और औद्योगिक भाषा के रूप में अंग्रेजी के जारी रहने पर कोई दोष नहीं होगा। अब तक की स्थिति को जारी रखने से होने वाली सुविधा भी होगी। अनावश्यक उलझनों और खर्चों से बचना भी सम्भव होगा। अपनी भाषा की उन्नति हो, विकास हो—यह अभिलाषा बहुत ही सराहनीय है, पर दूसरों से भी उसे स्वीकृत कराके ही रहें, यह हठ करना अच्छा नहीं है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी आज यही कर रहे हैं। इसकी अनुमति नहीं देनी चाहिए। भारत की सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में अंग्रेजी को जारी रखने का पार्लमिंट को एक कण्ठ से निर्णय करना चाहिए।

—मलयालम पत्रिका **ग्रन्थालोकम्** से साभार
श्री शं० ना० गणेशन द्वारा अनुदित

[यह लेख तमिलनाड में हिन्दी-विरोधी आन्दोलन के उग्र वातावरण में प्रकाशित हुआ था। सन्तोष की बात है कि पिछले कई महीनों से देश के अहिंदी जनमानस में भाषा सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति के पक्ष की पुष्टता बढ़ती दिखने लगी है। —सम्पादक]

हमारी सुरभारती

(श्री गौरीशंकर गुप्त, राष्ट्रकवि परिषद, वाराणसी

आदिकाल में भाषा का अत्यन्त सूक्ष्म रूप था, यों कहें कि संकेत भाषा थी। उसी संकेत का दूसरे के उपयोग के लिए किया जाने वाला प्रयोग भाषा कहलाता है। संकेत मात्र की यह विशेषता होती है कि थोड़े ही दायरे में उसका लाभ उठाया जाता है और संकेत भाषा से विस्तृत क्षेत्र में लाभ होता है। इसलिए उसमें विकास की आवश्यकता होती है। विकास की आवश्यकता इसलिए होती है कि जिसमें अधिक-से-अधिक अपने सामाजिकों की समझ में अपने हृदय की भावना आ जाय। कोई आवश्यक नहीं कि ऐसी भाषा में अलंकृति हो, वैयाकरण दृष्टिकोण अपनाया जाय, केवल अपने हृदय का चित्र दूसरे के हृदय में प्रतिबिंबित हो, एतदर्थ भाषा का उपयोग किया जाता है या किया गया। सुस्पष्ट है कि सर्वप्राचीन काल में संसार भर के मनुष्यों की एक ही भाषा हो, ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं। इसी तरह हमारे मूल पुरुष आर्यों के बारे में भी विचार किया जा सकता है। चूंकि शंकास्पद स्थान यह है कि हम अपने को आर्यवंशज समझते हैं, कुछ परम्परागत संस्कृत भाषा देखने में आती है। संस्कृत शब्द मात्र से बुद्धि हिचकती हुई कहती है कि इस शब्द पर विचार करो। यह संस्कृत शब्द कहाँ से आया? इसके विशिष्ट अर्थ को समझने के लिए हमको व्याकरण की सहायता लेनी पड़ी। व्याकरण से प्रतीत हुआ कि संस्कृत माने संस्कारयुक्त। इसमें 'सम्' उपसर्ग-पूर्वक 'कृ' धातु से संस्कृत शब्द निष्पन्न हुआ। इससे प्रतीत होता है कि हमारे मूल पुरुष आर्यों की जो भाषा थी, उसके ऊपर संस्कार किया गया यह रूप है। धीरे-धीरे उसमें विकास हुआ और विकास होते हुए उसका आज यह रूप आया, जिसको हम साहित्य कहते हैं। भाषा और साहित्य वस्तुतः एक ही रूप के दो अंग हैं। जैसा कि हम ऊपर कुछ संकेत कर चुके हैं, मूल आर्य पुरुषों की जो भाषा थी, उसको वैदिक भाषा कहते हैं; लेकिन हमें मालूम पड़ता है कि वैदिक भाषा के पूर्व भी उनकी कोई भाषा थी, जो इससे भी कुछ सूक्ष्म हो, जिसका रूपान्तर वैदिक भाषा के रूप में आया; क्योंकि उसमें भी वैदिक व्याकरण-बन्धन देखने में आते हैं। अब वह कौन-सी भाषा होगी, यह कल्पना के अंधकार में छिपी है। यथा, वैदिक साहित्य में उपासना एक

अपना अलग स्थान रखती है, जिसमें मंत्रों की आवश्यकता होती है। मंत्रों के अर्थ देखने से मालूम होता है कि उससे अपनी भावना व्यक्त की जाती है। उसी उपासना में जहाँ मन्त्रों से काम लिया जाता है, वहाँ सम्पूर्ण काम मन्त्र-बीज से ही ले लेते हैं। यथा, सभी देवताओं के सारे बीज अलग-अलग हैं, जैसे वाग्बीज, लज्जाबीज इत्यादि। इनका विस्तार तन्त्रों में विशेष रूप से पाया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही अक्षर के उच्चारण करने मात्र से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हों, इसमें क्या तत्व निहित है–यह विचार करने से स्पष्ट मालूम होता है कि केवल संकेत ही है। इसलिए सिद्ध हुआ कि प्राचीन काल में भाषा संकेत रूप में ही थी। उस संकेत का क्रमशः विकास हुआ।

अभी तक यह किसी ने नहीं कहा है कि वैदिक भाषा के पूर्व कोई भाषा थी, लेकिन अनुमान और तर्क के आधार पर भासित होता है कि थी। इसके लिए प्रत्यक्ष उदाहरण है—पैदा हुए बालकों में क्रमशः बोली का विकास। इसी आधार पर मालूम पड़ता है कि संकेत भाषा से प्रारम्भ होकर वैदिक भाषा पर्यन्त एक विकास-खण्ड हुआ। चूँकि वैदिक भाषा में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इत्यादि स्वर, मात्रा, इनके बहुत जबर्दस्त बन्धन, प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ते हैं। इससे मालूम पड़ता है कि बहुत दिनों के बाद संकेत भाषा वैदिक भाषा के रूप में परिणत हुई। उसके अनन्तर जब भौगोलिक पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता गया तो वैदिक भाषा समझने में दुरूह होने लगी; तो, वैदिक भाषा को समझने के लिए ही संस्कृत भाषा का अवतार हुआ होगा; क्योंकि संस्कृत भाषा को दृढ़ करने में व्याकरण की आवश्यकता पड़ी। व्याकरण के ही आधार पर संस्कृत भाषा खड़ी है। यहाँ तक देखने में आता है कि संस्कृत-साहित्य में व्याकरण को सबसे बड़ा शास्त्र कहा जाता है, उसको दर्शन का भी रूप दिया गया और अनेक तरह के वैयाकरण भी आज तक मालूम हुए हैं। पाणिनि के पूर्व बहुत से वैयाकरण थे और पाणिनि के अनन्तर भी। वैदिक भाषा से ही संस्कृत भाषा का उद्‌गम हुआ, इसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यावत् वैदिक कथाएँ पुराणों में पायी जाती हैं। पुराणों में उसका विस्तृत रूप से वर्णन किया गया, लेकिन वैदिक भाषा का रूप कठिन था, इसलिए संस्कृत भाषा द्वारा सरल रूप में उसका वर्णन किया गया। इसी से मालूम पड़ता है कि वैदिक भाषा से ही संस्कृत भाषा सरल रूप में प्रकट हुई। इसी से साहित्यशास्त्र में जितने भी काव्यग्रन्थ मिलते हैं, उनमें एक-एक चरित्र-वर्णन को लेकर ही ग्रन्थ का

निर्माण हुआ, जैसे—कालिदास का 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत', भारवि का 'किरातार्जुनीय' इत्यादि। उर्वशी और पुरुरवा की कथा वेद में, पुराण में, पायी जाती है, उसी तरह काव्यों में भी मिलती है। इनमें केवल फर्क भाषा के ही विकास-क्रम दृष्टिगोचर होते हैं, कथा एक है—क्रमशः उसका विकास हुआ, कथाओं का नहीं, अपितु भाषा का। वैदिक भाषा-काल के अनन्तर एक समय ऐसा मालूम पड़ता है जिसे हम पौराणिक काल कह सकते हैं। उसमें संस्कृत भाषा इतनी कठिन नहीं थी, परन्तु जब इस संस्कृत भाषा ने साहित्य रूप ग्रहण किया, तबसे क्रमशः आज तक धीरे-धीरे वह कठिन होने लगी। इसमें एक ही कारण मालूम पड़ता है कि पहले यह स्वाभाविक रूप में थी और फिर उसका कृत्रिम रूप होने लगा, जो आजकल हम सबके दृष्टिगोचर ही है। जब तक इसका स्वाभाविक रूप था, तब तक यह सर्वत्र ग्राह्य थी और जबसे इसका कृत्रिम रूप होने लगा, तबसे यह केवल पण्डितों की ही भाषा होने लगी।

यह संस्कृत भाषा कहाँ तक विकसित हुई कि कल्पना करते हुए अंतःकरण आश्चर्यचकित हो जाता है। सम्पूर्ण भूगोलशास्त्र, खगोलशास्त्र संस्कृत में पाया जाता है। इसी तरह सम्पूर्ण न्याय-शास्त्र एवं नीति-शास्त्र—इसमें पाया जाता है। यावत् दर्शनशास्त्र इसी संस्कृत भाषा की तिजोरी में सुरक्षित है। आज यह संस्कृत भाषा न होती एवं उसके ज्ञाता न होते तो हम लोगों को बाध्य होकर किंकर्तव्यविमूढ़त्व में विदेशियों एवं चीनियों की बातों पर ही विश्वास करना पड़ता, आज पूर्ण भारतवर्ष के राष्ट्र का, राज्य-विस्तार का सीमांकन सही रूप में न हो पाता। संस्कृत भाषा की ही यह सबसे बड़ी देन है कि विश्व के कोने-कोने में, चाहे वह घनघोर अंधकार में क्यों न हो, आपको संस्कृत भाषा की चिनगारी चमकती दिखलायी पड़ेगी। इससे मालूम होता है कि एक समय अतीत में ऐसा रहा होगा जबकि यह संस्कृत भाषा सम्पूर्ण विश्व को अपने प्रकाश से प्रकाशित करती होगी। इसी संस्कृत भाषा के ही माध्यम से आज हम लोगों को अनेक तरह के लौकिक, अलौकिक, वैज्ञानिक अनुसंधानों का पता लगता है। सबसे विचित्र बात यह है कि इसी संस्कृत भाषा में भविष्य के बारे में भी जितनी बातें बतायी गयी हैं, करीब-करीब उतनी नहीं, तो भी रुपये में पचहत्तर नये पैसे जरूर ही दृष्टिगोचर होती हैं। ऐसी सशक्त भाषा विश्व भर की सम्पूर्ण भाषाओं में कोई भी नहीं पायी जाती। यह संस्कृत भाषा प्रत्यक्ष सचेतन है, इसमें कोई सन्देह नहीं। दुःख है कि कल तक जिसे हमारे पूर्वज

देववाणी कह कर स्वयं इसके पुजारी बने हुए थे, उन्हीं की सन्तान हम इसको मृत कहने लगे। कभी विचार ऐसा होता है—क्या हम इतने निर्लज्ज हो गये? अब दोष किसका देखा जाय? त्रुटि हमारी है। 'दिन भर का भूला शाम को घर आवे तो भूला नहीं कहाता,' इसी कहावत को चरितार्थ करते हुए पुनः हम लोग इसी संस्कृत भाषा की श्रवण, मनन, निदिध्याशनपूर्वक यदि उपासना करें तो निश्चय ही हम लोगों के ऊपर भविष्य में किसी भी प्रकार की आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःख की पुनरावृत्ति नहीं होगी, यह हमारी दुन्दुभिघोषणा है और निर्विवाद सत्य भी है। उदाहरण के लिये देखिए—यदि हम ठीक-ठीक, संस्कृत भाषा के भीतर रहने वाले कौटिल्य, चाणक्य, विष्णु शर्मा इत्यादि राजनीतिज्ञों की स्वानुभूत वाणियों का आश्रय करें, तो विजय-श्री हमारा ही चरण-चुम्बन करेगी, इसमें यत्किंचित्-मात्र भी सन्देह नहीं। यह दृढ़ विश्वास इस लेखक के अन्तःकरण को होता है—इसका केवल एक ही कारण आज इस संस्कृत भाषा की देन है।

* * *

अहिंसक नव रचना का मासिक

जीवन-साहित्य

हिन्दी के विशिष्ट मासिक पत्रों में से है। इसकी रचनाएँ विचार-प्रेरक होती हैं। इसके लेखों को घर का प्रत्येक सदस्य पढ़ कर लाभ उठा सकता है।

पत्र के वार्षिक विशेषांक के लिए पाठक लालायित रहते हैं। गत अगस्त मास में प्रकाशित १५० पृष्ठों की सामग्री तथा आकर्षक आवरण युक्त नेहरू स्मृति अंक की सभी ने प्रशंसा की है।

संपादक :

हरिभाऊ उपाध्याय : यशपाल जैन

वार्षिक शुल्क—४-०० नेहरू स्मृति अंक—२-२५

व्यवस्थापक :

जीवन - साहित्य

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

हिन्दी और हम

(पं० गोपीलाल 'अमर', एम० ए०, सागर)

भारत की भीषणतम समस्याओं में भाषा की समस्या भी एक है। एक विशेषता इस समस्या की और भी है कि यह उतनी ही पुरानी है जितनी भारत की स्वतन्त्रता। पण्डित नेहरू जैसे नेता स्वर्गीय हो गये लेकिन भाषा की समस्या है कि टस से मस होती नहीं दिखती। कितने आश्चर्य की बात है कि इसी समस्या की बदौलत प्रान्तों का पुनर्विभाजन हुआ, बड़े-बड़े आन्दोलन छिड़े, हत्याएं-आत्महत्याएं हुईं, हमारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में फर्क पड़ा और अब देश की अखण्डता तक खतरे में आ पड़ी है।

इसके लिए उत्तरदायी कौन है? हम, केवल हम। यहाँ 'भाषा और 'हम' शब्द विचारणीय हैं। यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं कि आज 'भाषा' का अर्थ राष्ट्रभाषा और राष्ट्रभाषा का अर्थ हिन्दी है। 'हम' का तात्पर्य है हिन्दी भाषी जनता, अहिन्दीभाषी जनता नहीं और शासन भी नहीं।

यह एक कटु सत्य है कि हमने अहिन्दीभाषी जनता पर दृष्टि तब डाली जब उसमें हिन्दी-विरोध का रोग गहरी जड़ें पकड़ चुका था। इस रोग का स्थानीयकरण कुछ रहा हो पर सबसे बड़ा कारण है अदूरदर्शिता और हममें वात्सल्य का अभाव। अहिन्दीभाषियों में हिन्दी-प्रचार के लिए जो थोड़े-बहुत प्रयत्न हम करने लगे हैं वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही करने लगे होते तो इस रोग का जन्म ही न हुआ होता। हमने अहिन्दीभाषियों को हिन्दी सिखाने के लिए कोई स्थायी-सामयिक व्यवस्थाएँ नहीं की, परीक्षालय स्थापित नहीं किये, प्रोत्साहक पुरस्कार नहीं दिये, उनके अनुरूप पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित नहीं की, चालू पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ आमन्त्रित नहीं कीं और इस दिशा में कदम उठाने के लिए शासन को प्रेरित नहीं किया। हमने हिन्दीतर भाषाएँ सीखने की चेष्टा नहीं की। अहिन्दीभाषी तो हिन्दी में बहुत कुछ लिखते हैं पर हमने हिन्दीतर भाषाओं में कुछ भी नहीं लिखा। माँ बच्चे को अपनी भाषा सिखाने के लिए उसी की भाषा में बोलना प्रारम्भ करती है। हमने ऐसा कुछ नहीं किया जिसका कारण है हममें वात्सल्य का अभाव। इस सबके अपवाद हो सकते हैं पर नगण्य।

शासन को उत्तरदायी ठहरा कर भी हम अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते। प्रथम तो, शासन के निर्माता हम ही हैं। हममें से अधिकांश की बोलचाल, खानपान और रहन-सहन आदि में अंग्रेजियत का साम्राज्य है, हिन्दी उसकी दासी से भी बदतर है। हमारे द्वारा निर्वाचित होकर विधान सभाओं और लोकसभा में जाने वाले अधिकांश सदस्य भी हम-जैसे ही होते हैं। वे हिन्दी का न तो प्रश्न उठाते हैं और न ऐसा करने वालों का साथ देते हैं। फलस्वरूप हिन्दी-समर्थकों का बहुमत ही नहीं हो पाता। अब सोचिए कि ऐसा कौन मिनिस्टर होगा जो हिन्दी-हिन्दी चिल्ला कर अपनी मिनिस्टरी से हाथ धोना चाहेगा। बल्कि अहिन्दी-अहिन्दी चिल्लाकर अपनी मिनिस्टरी से हाथ धोने का साहस दिखाने वालों के तरो-ताजे उदाहरण हमारे सामने हैं। दूसरे, शासन तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर ही चुका है, वह तो हम हैं जो उसे बर-करार रखने में असफल हो रहे हैं। हिन्दी सेवी संस्थाओं की आवाज भी बहुत मन्द है, हिन्दी पत्रकार लिखने-लिखाने तक ही सीमित हैं, हिन्दी साहित्यकार तीन-तेरह हैं और हिन्दीभाषी जनता अकेली कर भी क्या सकती है। तीसरे, शासन को आचार्य विनोबा भावे जैसे सन्त पुरुषों की बात भी तो रखनी पड़ती है। या तो हमें चाहिए कि हम या तो उनके त्रिसूत्री सिद्धान्त से सहमत हो जायें, या उससे भी बेहतर कोई सुझाव शासन को दें। चौथे, शासन के सामने और भी अनेक महत्त्वपूर्ण समस्यायें हैं। क्यों न हम शासन को उन्हीं का हल निकालने दें और भाषा की समस्या का हल हम निकाल डालें।

अतः स्पष्ट है कि हिन्दी के प्रति हम स्वयं ही अपना यथोचित कर्त्तव्य नहीं निभा सके हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि हम सुनियोजित और सुदृढ़ प्रयत्न करें और यह समस्या बदस्तूर कायम ही रहे।

शैक्षिक मूल्य

[डॉ रामशकल पाण्डेय, एम० ए०, एम० एड० पी-एच० डी०,
प्राध्यापक, बलवन्त राजपूत कालेज आफ़ एजुकेशन, आगरा]

शिक्षा में मूल्यों की समस्या प्रत्येक पग पर हमें मिलती है। मूल्य शिक्षा के उद्देश्य पर निर्भर होते हैं। ब्रूबेकर का कथन है कि शिक्षा के मूल्यों को बताने मात्र से शिक्षा के उद्देश्यों को निश्चित किया जा सकता है। यदि शिक्षा के उद्देश्य भिन्न हैं तथा उसके पारिभाषिक शब्द अस्पष्ट हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि शिक्षा के मूल्य भी अस्पष्ट हैं। उपयोगिता में विश्वास करने वाले को शिक्षा के लिए उपयोगी विषय की ही आवश्यकता है। मूल्यांकन का कार्य शिक्षा के क्षेत्र में चलता ही रहता है किन्तु किसी निश्चित दर्शन की सहायता से यह कार्य सुगम हो सकता है। वैसे प्रायः अनुभवजन्य तथा शिक्षा द्वारा उत्पन्न रुचि के आधार पर ही यह निश्चित हो पाता है कि किसे किन मूल्यों में आस्था होगी।

क्या मूल्य वैयक्तिक है ?

कतिपय विद्वान मूल्यों को व्यक्तिगत रुचि तथा चुनाव का विषय मानते हैं। वे मूल्यों को आन्तरिक मानते हैं। और पुस्तकों, पाठन् विधि आदि सबको ही व्यक्तिगत रूप में परखते हैं। किन्तु कुछ व्यक्ति मूल्यों को वाह्य तथा अवैयक्तिक मानकर उन पर किसी का भी प्रभाव नहीं मानते। मूल्य इच्छाओं से परे होते हैं। यदि मूल्य व्यक्तिगत इच्छाओं पर आधारित हैं तो किसी भी विषय का पठन-पाठन इसी बात पर निर्भर होगा कि अमुक विषय को छात्र मूल्यवान मानते हैं अथवा नहीं। यदि मूल्य अवैयक्तिक हैं तो उन पर किसी की रुचि तथा पसन्द का प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा मूल्यवान् विषयों को पढ़ना ही पड़ेगा।

मूल्यों के प्रकार :—

मूल्य कई प्रकार के होते हैं। प्रश्न उठता है क्या इच्छित है तथा क्या इच्छा के योग्य है ? इच्छाओं द्वारा शरीर की आवश्यकताओं का प्रकटीकरण होता है। शिक्षा के मूल्य केवल चुनाव ही नहीं वरन् बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव हैं।

यदि किसी बालक की इच्छा है कि वह कला सीखे तो उसे विज्ञान के विषय पढ़ाना उत्तम न होगा। उसकी इच्छाओं को केवल कला ही पूर्ण कर सकेगी। वैसे स्कूल का प्रत्येक कार्य मूल्यवान् है किन्तु छात्र को तो चुनाव करना हीं पड़ता है।

साधारणतः मूल्य दो प्रकार के होते हैं।

(१)—नैमित्तिक तथा (२)—आन्तरिक

नैमित्तिक मूल्य किसी विशेष प्रयोजन हेतु होते हैं। विषयों के चुनाव में कौन से विषय छात्र के भविष्य के लिए सफलता के सूत्र बन जायंगे, इस बात का निर्णय इसी मूल्य के आधार पर करना होगा। कुछ मूल्य आन्तरिक होते हैं और उनका चुनाव किसी मान्यता के आधार पर नहीं होता है। वे मूल्य केवल मूल्य हैं, उनका कोई अपने अतिरिक्त विशेष प्रयोजन नहीं। उदाहरण के लिए मेज को ही ले लीजिए। कक्षा के अन्दर उस मूल्य की अन्य कोई वस्तु नहीं है। मेज का मूल्य तो जैसे उसी में पिरो दिया गया है। मेज अपने मूल्य के कारण ही कक्षा में है, न कि किसी अन्य मूल्य के कारण।

क्या आन्तरिक तथा नैमित्तिक मूल्य किसी एक ही वस्तु एक साथ में भी सम्भव हो सकते हैं? नैमित्तिक मूल्यों को मानने वाले तो इसका उत्तर नकार से ही देंगे। आन्तरिक मूल्य पर विश्वास करने वालों के लिये यह बात सम्भव है। मेज का मूल्य उससे लिखने-पढ़ने का काम लेकर ही देखा जा सकता है। किन्तु यदि हम उस पर बैठ जायँ तो कुछ समय के लिए उसका नैमित्तिक मूल्य हो जायगा। इस प्रकार उनके लिए ही वस्तु में दोनों मूल्य सम्भव हैं।

कुछ मूल्य सौन्दर्यशास्त्र से भी सम्बन्धित होते हैं। वैसे इनका क्षेत्र शिक्षा शास्त्रियों की संकीर्णता के कारण संकुचित ही रह गया है। प्रायः इसी कारण सौन्दर्यशास्त्र में केवल संगीत कला, चित्रकला इत्यादि को ही सम्मिलित किया है; फ़िर भी हम भलीभाँति जानते हैं कि प्रत्येक विषय की अपनी उपयोगिता होती है; उसकी प्रशंसा करने का अपना मापदण्ड होता है। वैसे सौन्दर्यशास्त्र के मूल्य अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं, किन्तु उन्हें जीवन के कार्यों से अलग नहीं होना चहिए। प्रत्येक पाठ में उनका योग आवश्यक है।

मूल्यों की श्रेणियां:—मूल्थों की अपनी श्रेणियाँ तथा स्तर हैं। उन इच्छाओं पर आधारित मूल्य निम्न हैं जो पशुओं तथा मनुष्यों में

समान हैं। बौद्धिक इच्छाएँ उच्च हैं क्योंकि पशुओं में उनका अभाव है तथा केवल मनुष्यों में ही सम्भव है। बौद्धिक इच्छाओं की भी दो श्रेणियाँ हैं—(१) नैमित्तिक और (२) आन्तरिक। जिनका चुनाव व्यक्तिगत निर्णय पर निर्भर है ऐसे नैमित्तिक विषय निम्नकोटि के हैं। इसके विपरीत जो विषय अपने में पूर्ण तथा बिना किसी अन्य की इच्छा पर निर्भर हुए स्थिर रह सकते हैं उनमें आन्तरिक मूल्य हैं तथा इसलिए वे श्रेष्ठ हैं।

यह हम ऊपर देख चुके हैं कि जिन वस्तुओं में उनकी पूर्ण रूपरेखा निहित हो चुकी है और जिन्हें पुद्गल की भी कम आवश्यकता है वे श्रेष्ठ हैं। इसलिए वे विषय जो नैमित्तिक मात्र हैं तथा जो व्यक्तिगत मान्यताओं पर निर्भर हैं और जिनके विषय में पूर्व निश्चय असम्भव है वे निम्नकोटि के हैं।

विषयों के चुनाव से किसी शिक्षा प्रणाली का चुनाव या किसी विशेष पद्धति का चुनाव कठिन, है क्योंकि उनका प्रभाव दूर-दूर तक अपनी छाप छोड़ता है। उदाहरण के लिए हम बेकारी की समस्या को ले सकते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या हम आगे बढ़ने वाले छात्रों के लिए व्यावसायिक शिक्षा के उचित मात्रा में प्रबन्ध को या पिछली बेकारी दूर करने के लिए आगे की शिक्षा को शुल्क-मुक्त तथा संकीर्ण कर देंगे ? इन प्रश्नों में से चुनाव की समस्या इन्हीं मूल्यों की समस्या से प्रभावित होगी। इसके प्रभाव की व्यापकता का अन्दाज़ इसी बात से लग सकता है कि समाज की कोई समस्या चूंकि अपने में ही सीमित नहीं रहती, इसलिए उसके हल का प्रभाव भी सीमित नहीं होगा।

नैमित्तिकता वादी शिक्षा शास्त्री भलीभांति जानता है कि किसी भी मूल्य को पहले से निश्चित नहीं किया जा सकता। वह किसी भी समस्या के प्रस्तुत कारणों का पता लगायेगा तथा हल निकाल लेगा। वह किसी बात के अन्तिम उद्देश्य पर बल न देकर प्रस्तुत समस्या पर ही विचार करना उचित समझेगा। वह अपने में पूर्ण उद्देश्यों की परवाह नहीं कर सकता। आन्तरिक मूल्यों के सम्मुख तो नैमित्तिक मूल्यों की बात ही हेय हो जाती है, फिर भी यह बात नितान्त असत्य होगी कि आन्तरिक मूल्य वाले प्रत्येक विषय समान महत्त्व वाले ही हैं। जैसे विज्ञान के छात्र के लिए विज्ञान तथा कला के छात्र के लिए कला ही मूल्यवान है। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि विज्ञान तथा कला के विषयों की तुलना भी सम्भव नही।

अब प्रश्न इस बात का उठता है कि इन मूल्यों के मानने का आधार क्या है ? जो आन्तरिक मूल्यों में विश्वास करते हैं, उनका कथन है कि मनुष्य तार्किक तथा बुद्धिशील है, इसलिए विषयों का चयन इसी आधार पर होना चाहिए। चूंकि विश्व का आधार बौद्धिक है, इसलिए विषय भी उसी के अनुरूप चुनने होंगे जो विश्व का ज्ञान करा दें। परन्तु जो बाह्य तथा निमित्त वादी हैं वे किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्र की पसन्द का सहारा लेकर विषयों का चुनाव करेंगे। आन्तरिक मूल्य वादी के लिए बालक की जिज्ञासा तथा उसकी आवश्यकताएँ अधिक महत्व की ही बातें नहीं हैं। इसलिए विषयों के अपने महत्व के लिए, अमूर्त सत्यों के लिए, छात्र की रुचि के विरुद्ध किसी उद्देश्य, अनजान मूल्यों के लिए, मेहनत करनी होगी।

शिक्षा के उद्देश्यों का निर्णय—

प्राय: शिक्षा के उद्देश्यों का निर्णय वर्तमान समय की मांगों के आधार पर ही होता है। इस प्रकार हम इच्छित उद्देश्यों का पता तो अवश्य लगा सकते हैं, पर उन उद्देश्यों का पता नहीं लगा सकते जिनकी इच्छा करना चाहिए। यद्यपि दार्शनिक सत्यों के विषयों में एकमत नहीं हैं फिर भी हम बराबर इसी बात पर आ जाते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य दर्शन की सहायता द्वारा ही निश्चित हो सकते हैं। दर्शन की सहायता से उद्देश्य सामान्य तथा निश्चित और अन्तिम तथा समीपवर्ती श्रेणियों में बाटे जा सकते हैं।

सामान्य तथा अन्तिम उद्देश्य—दर्शन के आधार पर ही इनका निश्चय सम्भव है। धार्मिक व्यक्तियों के लिए विश्व का प्रणेता ईश्वर है तथा शिक्षा का उद्देश्य उसका बोध कराना होगा। ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना तथा उसकी प्रतिच्छाया बनकर रहना जीवन का परम लक्ष्य है। इसीसे मिलता-जुलता उद्देश्य आत्म बोध है जिसके द्वारा मनुष्य की शक्तियों का पूर्ण विकास महत्वपूर्ण हो जाता है। यह उद्देश्य अस्पष्ट है, क्योंकि हम जानते हैं कि छोटे से जीवन में प्रत्येक मनुष्य का विकास सम्भव नहीं है। आत्मबोध का अर्थ क्या आत्म प्रकटीकरण है। आत्म का अर्थ क्या है ? इन प्रश्नों के कारण इस प्रकार के उद्देश्यों की अस्पष्टता दूर नहीं होती। फिर यदि हम मनुष्यों की तार्किक तथा बौद्धिक शक्ति में विश्वास कर लें तो शिक्षा का उद्देश्य इन शक्तियों का पूर्ण विकास करना होगा। बुद्धि का पूर्ण विकास भी आत्म-बोध का एक रूप हो सकता है। फिर आत्म-बोध का दूसरा रूप मनुष्य का समाज में रह कर अपनी पूर्णता को प्राप्त करना है। जिस प्रकार का समाज होगा, शिक्षा का उद्देश्य भी ठीक वैसा ही होगा।

76257

कतिपय विद्वान् शिक्षा को समाज द्वारा संचालित न मानकर, उसे स्वतन्त्र रूप देकर। शिक्षा के उद्देश्यों को शिक्षा की प्रक्रिया में ही निहित मानते हैं। बाह्य सामाजिक ज्ञान तो शिक्षा को सामग्री देता है, पर वह उसके लिए मापदण्ड नहीं देता। यदि शिक्षा का उद्देश्य उसकी प्रक्रिया में है तो शिक्षा किसी बाह्य उद्देश्य से प्रभावित न होकर स्वयं उद्देश्य है। जीवन तथा शिक्षा एक हैं। यदि जीवन विकास है तो शिक्षा भी विकास है; इसलिए अन्तिम उद्देश्य शिक्षा का विकास होगा। विकास का कोई अन्त नहीं। इसीलिये शिक्षा भी अनन्त है। यह उद्देश्य भी अस्पष्ट ही है। क्योंकि विकास तथा प्रगति को इसमें समानार्थी समझा जाता है। पर यह बात भ्रामक है क्योंकि बीमारी का विकास होने पर हम उसे रोगी की प्रगति नहीं कह सकते। बीमारी एक इच्छा करने योग्य उद्देश्य नहीं है। ऐसी प्रगति हम नहीं चाहते। परन्तु सबसे बड़ी कमी इस प्रकार की विचारधारा की यह है कि यह वर्तमान विकास को ही अन्तिम उद्देश्य मानकर चलती है। किन्तु भविष्य की ओर न देखना उसकी भूल है। यद्यपि ये प्रगतिवादी इस बात को मानकर भी सन्तोष रखने की बात कहते हैं। तथा उनका विचार है कि हमें प्रगति तथा विकास की ओर ध्यान रखकर आगे की बात सोचनी चाहिए। बुरे काम अन्त की ओर और अच्छे कार्य विकास की ओर ले जाते हैं। इसीलिए उन्हीं का ध्यान उचित है। शिक्षा का उचित उद्देश्य वही है जो जीवन पर्यन्त शिक्षा तथा विकास की ओर हमारा ध्यान रखे।

निश्चित तथा समीवर्ती उद्देश्य : हरबर्ट स्पेन्सर के समय से आजतक बहुत से उद्देश्यों का वर्णन हो चुका है तथा प्रयत्न जारी हैं। नेशनल एजुकेशन एसोशिएशन (संयुक्त राज्य) ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं—(१) स्वास्थ्य, (२) पढ़ना, लिखना तथा गणित, (३) गृह की सफल सदस्यता, (४) व्यवसाय, (५) राजनैतिक ज्ञान, (६) अवकाश के समय का उपयोग तथा (७) नैतिक चरित्र। नैतिक चरित्र को धर्म के बिना सम्भव मानकर ही कदाचित् धर्म की बात यहाँ नहीं कही गई है। वास्तव में उक्त उद्देश्य माध्यमिक उद्देश्य है क्योंकि समीपवर्ती उद्देश्य तो प्रत्येक पग पर निश्चित करने होंगे। इसलिए उनकी व्याख्या असम्भव है। शिक्षा एक अमूर्त्त विषय है इसलिए उसके उद्देश्यों का निश्चय सम्भव नहीं हो सकता। प्रत्येक नवीन चरण के उद्देश्य नवीन होंगे।

कुछ भी हो, आन्तरिक मूल्य वालों के लिये १२ वर्ष की अवस्था तक पाठन सामग्री में प्रत्येक छात्र के लिए कम ही परिवर्त्तन करना होगा, यद्यपि

यह सत्य है कि लिंग भेद, भौगोलिक दशा, सामाजिक स्थिति के कारण परिवर्त्तन आवश्यक हैं। इस अवस्था के पश्चात् ही विशेष योग्यता की बात आती है और उसी समय परिवर्त्तन तथा संशोधन आवश्यक हैं।

यदि राज्य व्यक्तिगत भलाई का ध्यान रख सके तथा एक नियम से निश्चित कर सके तो राज्य को अधिकार है कि पाठन सामग्री के चुनाव में बोले, अन्यथा उसे कोई अधिकार नहीं है।

इस अन्तिम बात के पश्चात् हम इस समस्या को छोड़ देंगे कि विचार वादियों के लिये सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् अन्तिम तथा मुख्य मूल्य हैं; और शिक्षक को इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जिस शिक्षक ने उक्त मूल्यों को प्राप्त कर लिया है वह छात्रों को उन मूल्यों की प्राप्ति करा सकता है, पर वह उन पर अपने विश्वास थोपता नहीं है। वह सत्य बोलकर, दूसरों के कल्याण तथा सौन्दर्योपासना द्वारा उनकी प्राप्ति के साधन बताता है।

कनिंघम का विश्वास है कि बुद्धि को अनुशासित करने के लिये भी विषयों को ध्यान में रखना होगा।

यहां पर शैक्षिक उद्देश्य सम्बन्धी विवरण केवल इसलिये छिप गया है ताकि मूल्यों का तथा उद्देश्यों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाय।

दिनांक ११ सितम्बर संत विनोबा के ७० वर्ष पूरे होने पर

सन्त प्रवर, सत्य, करुणा के निकेतन ! प्रेम-गद् गद् चल रहे हो कल्प-पथ पर,
तुम विषमता के तिमिर को चीरने को ओ भागीरथ ! खींच लाये ज्योति-निर्झर;
भूमि के भिखारी, शत नमन् ! ओ महामानव तपस्वी शतनमन् !
संस्कृति के हो नये अध्याय-लेखक, शूल-पंथों पर हरषते जा रहे हो;
तुम समर-ज्वाला-तपित भूवक्ष पर, शांति के बादल ! बरसते जा रहे हो।
प्रेम के प्यासे पुजारी, शत नमन् ! ओ महामानव तपस्वी, शतनमन् !

(भूमि-क्रान्ति से साभार) —गोपाल भट्ट

वयोवृद्ध ब्रिटिश राष्ट्रकवि जॉन मैसफ़ील्ड

(जे० एच० बी० पील)

जान मेसफ़ील्ड की कविताएँ समस्त अंग्रेज़ी भाषा-भाषी संसार में जानी, पहचानी हैं। इनके उपन्यासों, नाटकों और संस्मरणों का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। तथापि, राजकवि के पद, से जिस पर आप १९३० से आसीन हैं, लोग इतने अधिक परिचित नहीं हैं।

इसकी स्थापना १६६८ में की गयी थी, तथा सबसे पहले इस पद को सुशोभित किया था जॉन ड्राइडन ने, जिन्हें (आधुनिक मुद्रा में) २,००० पौण्डों का वेतन और "कनेरी शराब का एक पीपा" प्रति वर्ष भेंट स्वरूप दिया जाता था। राजकवि का चयन पहले और अब भी, प्रधान मन्त्री की राय पर राजा या रानी द्वारा किया जाता है। प्रधान मन्त्री इस कार्य में साहित्यिक विशेषज्ञों से सलाह करते थे और अब भी करते हैं।

कुछ राजकवि तो अपने समय में महान ख्याति अर्जित कर चुके हैं—जैसे वर्ड्स्वर्थ, टेनिसन, राबर्ट ब्रिजेज़—लेकिन एक या दो ऐसे थे जो साहित्यिक जगत में अधिक नाम नहीं कमा सके और उन्हें शीघ्र ही भुला दिया गया। कुछ लोगों का ख्याल है कि राजकवि बनाने की प्रक्रियन द्वेष उत्पन्न करने वाली है, किन्तु अधिकतर लोग इसे पसन्द करते हैं, इस परम्परा का सम्मान करते हैं। यह पद किसी एक कवि की प्रशंसा नहीं, बल्कि पूरी कविता का सम्मान है।

इंग्लैण्ड का राजकवि किसी प्रकार के कार्यों से बंधा नहीं है, अर्थात् उसके लिए कवितायें लिखना आवश्यक नहीं। सभी राजकवियों ने ऐसी रचनाएँ की हैं जिनमें संकट, दुःख और उल्लास के अवसरों पर राष्ट्र की चित्तवृत्ति की ध्वनि मिलती है। अपने पद के कारण राजकवि, राजसी कुटुम्ब का सदस्य होता है। कुछेक औपचारिक आयोजनों पर उसे निमन्त्रित किया जाता है, तथा इन अवसरों पर वह दरबारी परिधान धारण करता है; किन्तु अब उसे कनेरी शराब मिलनी बन्द हो गयी हैं (१८ वीं शताब्दि में एक राजकवि ने धन से इसका विनिमय कर लिया था) तथा २,००० पौण्डों के वेतन को भी घटाकर नाममात्र को ४० पौण्ड कर दिया गया है।

कवियों से मित्रता

अब वर्तमान राजकवि की क्या स्थिति है ? एक बात तो निश्चित है; जॉन मेसफ़ील्ड का जीवन उनके पूर्ववर्तियों की तुलना में अधिक साहसिक रहा है। हेरफर्डशायर, इंगलैण्ड, स्थित लेडबरी नामक एक छोटे से कस्बे में १८७८ में आपका जन्म हुआ था। व्यापारी जलयान सेवा में एक अफसर बनने के लिए आपको प्रशिक्षित किया गया था। यह उन दिनों की बात है जब पालों वाले जहाज़ स्टीमरों से अधिक थे और जब रेडियो और रेडार का कहीं नाम भी नहीं था। आप मस्तूल के नीचे अनेक बार गहरे जल में सफर कर चुके हैं।

अमरीका और कैनडा में घूमने फिरने के लिये आपने शीघ्र ही जहाज़ की नौकरी छोड़ दी, और इधर-उधर कुछ काम करके अपनी जीविका कमाने लगे। अभी आप युवक ही थे जब लेखक बनने के लिये आप इंगलैण्ड लौट आये।

आपने इन प्रारम्भिक संघर्षों का वर्णन आपने "इन द मिल" और "सो लांग टु लर्न" नामक दो संस्मरणों में किया है। लन्दन में आपने एक अन्य कवि, डब्ल्यू० बी० यीट्स, से आजीवन मैत्री उत्पन्न की। ये दोनों युवक लन्दन विश्वविद्यालय के निकट एक घर में रहते थे।

१९११ में—अब तक विवाह करके आप दो बच्चों के पिता भी बन चुके थे—मेसफ़ील्ड, बकिंघमशायर के निकट ग्रेट हैंपडेन नामक गाँव में रहने के लिए चले गए। यहाँ आपने एक लम्बी वर्णनात्मक कतिता "द एवरलास्टिंग मर्सी" लिखी, जो एक दुःखी और दुःखमय युवक की कहानी है जिसने काफी कष्ट उठाकर मानवजाति का यह अविस्मरणीय पाठ सीखा कि लालच और और हिंसा से कष्टों का जन्म होता है, तथा वास्तविक शान्ति ईश्वर और मानवजाति की सेवा में स्वानुशासन से मिलती है।

"कर्म" का सम्मान

प्रथम विश्व युद्ध के बाद मेसफ़ील्ड अपने मित्र, राबर्ट ब्रिजेज, जो उस समय राजकवि थे, के निकट रहने के लिये ऑक्सफर्ड चले गये। वहाँ आपने पद्यात्मक नाटक खेले जाने के लिये एक थियेटर तैयार कराया और टी० एस० इलियट तथा क्रिस्टोफर फ्राई के लिये पथ प्रशस्त किया। १९३० में आप राबर्ट ब्रिजेज, के स्थान पर राजकवि हुए।

आपकी "कलेक्टेड पोएम्पस", जो कविताओं का एक संग्रह है, २४ बार मुद्रित हो चुकी है। राजनीति में आप कंज़र्वेटिव हैं, धर्म से (उनके ही शब्दों में) आप "एक साधारण ईसाई" हैं। फिर भी पूर्व के आध्यातमवाद का, विशेषतया उसके "कर्म" के सिद्धन्त के कारण, आप बड़ा सम्मान करते हैं।

इस ८७ वर्ष की अवस्था में भी आप साहित्यिक आयोजनों में भाग लेने के लिये आक्सफर्ड से लन्दन जाते रहते हैं। आठ ही महीने हुए जब "मार्निग्स ऐण्ड ऐप्रिल्स" नामक कविता की एक नयी पुस्तक आपने प्रकाशित करायी है। मेसफ़ील्ड की पत्नी का देहान्त कुछ वर्ष पूर्व हो चुका है, तथा इस समय उनके घर की देखभाल उनकी पुत्री जूडिथ करती हैं, जो स्वयं भी एक लेखिका हैं।

धूम्रपान और मदिरापान से दूर रहने वाले मेसफ़ील्ड प्रातःकाल काम करना और दोपहर में आराम करना पसन्द करते हैं। युवा कवियों के प्रति आप बड़े उदार हैं। उनकी सहायता के लिए आप प्रकाशकों और सरकारी अभिकरणों को सहर्ष लिखा करते हैं।

* * *

युग प्रभात

केरल का सचित्र हिन्दी पाक्षिक

जिसमें दक्षिण की चार प्रमुख भाषाओं से अनूदित श्रेष्ठ सुन्दर उपन्यासों, कहानियों, कविताओं और निबन्धों के अलावा अहिन्दी भाषी, हिन्दी-भाषी लेखकों की मौलिक रचनाओं का पिछले कई सालों से प्रकाशन किया जा रहा है, जो इस बात का प्रमाण दे रहा है कि भारतीयों का भाव एक है यद्यपि भाषाएँ अनेक हैं।

मैनेजर :

युग-प्रभात, कालिकट (केरल)

बालकों के चरित्र-निर्माण की समस्याएँ

('संजय')

मनुष्य के जीवन में चरित्र का कितना महत्व है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजी में एक कहावत है जिसके अनुसार यदि धन चला गया तो कुछ नहीं गया समझो, यदि स्वास्थ्य चला गया तो समझो कि कुछ हानि हुई; परन्तु यदि चरित्र नहीं रहा तो समझ लो कि सर्वस्व नष्ट हो गया। चरित्र ही मनुष्य को सभ्य समाज में रहने के योग्य बनाता है। दुश्चरित्र व्यक्ति का सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं होता।

प्रजातन्त्र में चरित्र का महत्व

प्रजातन्त्र देश के लिए चरित्र का महत्व और भी अधिक है। कारण यह है कि प्रजातन्त्र में शासक जनता स्वयं होती है। उसी के चुने हुए प्रतिनिधि शासन का कार्य करते हैं। यदि जनमत जागरूक है तो जनता के प्रतिनिधि उसकी इच्छा के विरुद्ध शासन नहीं कर सकते। ऐसी दशा में जनता जैसी होगी वैसा ही शासन होगा। यदि जनता में चरित्रवान लोग होंगे और वे निष्पक्ष होकर सुयोग्य व्यक्तियों को ही अपना प्रतिनिधि चुनेंगे तो शासन की बागडोर योग्य व्यक्तियों के ही हाथों में रहेगी और देश का शासन अवश्य ही अच्छा होगा। योग्य प्रतिनिधियों के अभाव में ही शासन का कार्य ढीला होता है जिससे देश में कुशासन, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार आदि का बोलबाला होता है। एकतन्त्र या अधिनायकवादी शासन में जनता चाहे जैसी हो, उसमें चरित्रवान लोगों की अधिकता हो या अभाव हो, यदि अधिनायक चरित्रवान और योग्य शासक है तो देश का सुशासित होना अवश्यंभावी है। परन्तु जनतांत्रिक शासन में जनता के चरित्रबल का उसके प्रतिनिधियों पर प्रभाव पड़ता है और प्रतिनिधियों के चरित्रबल पर ही शासन का अच्छा होना निर्भर रहता है।

चरित्र जन्मजात नहीं

चरित्र जन्मजात गुण नहीं है। वह अर्जित होता है। सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज में उसका निर्माण होता है। कोई व्यक्ति जन्म से ही दुश्चरित्र

नहीं होता; वरन् उसका परिवेश, उसकी परिस्थितियाँ, उसके लालन पालन के ढंग आदि का उसके चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि बहुत से विद्वान आनुवंशिकता को अधिक महत्व प्रदान करते हैं और कहते हैं कि बच्चे अधिकांश गुण या अवगुण अपने माता-पिता तथा पूर्वजों से प्राप्त करते हैं; फिर भी प्रयोगों द्वारा अधिकतर देखा गया है कि परिवेश या वातावरण का बच्चे के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः चरित्र निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। यदि बच्चे सभ्य, सुसंस्कृत एवं कर्तव्यनिष्ठ लोगों के संसर्ग में रहते हैं तो स्वभावतः उनमें वे गुण आ जाते हैं जो उनसे बड़े लोगों में होते हैं। ध्यान रहे कि बालक अत्यधिक अनुकरणशील होते हैं। वे अपने से बड़ों का प्रायः अनुकरण करते रहते हैं। अतः बड़ों का जैसा आचरण होगा, उसी प्रकार का वे अनुकरण करेंगे और अपना चरित्र उसी साँचे में ढालेंगे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों के चरित्र निर्माण में उनके माता-पिताओं, अभिभावकों, सम्बन्धियों, हितैषियों आदि का कितना महत्वपूर्ण हाथ रहता है।

चरित्र-निर्माण की वस्तुस्थिति—विद्यालय में

प्राचीनकाल में उपनयन के पश्चात् अर्थात् लगभग ८ वर्ष की उम्र होते ही बालक गुरुकुल में भेज दिया जाता था जहाँ वह प्रायः २५ वर्ष की आयु तक रहता था। इस अवधि में उसकी शिक्षा-दीक्षा और चरित्र-निर्माण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व गुरु के ऊपर रहता था। गुरुकुल का वातावरण प्रायः ऐसा रहता था कि बच्चे जब स्नातक होकर निकलते थे तब वे सुयोग्य नागरिक बन कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

जब गुरुकुल प्रणाली समाप्त हो गई और शिक्षा घरों में या आधुनिक ढंग के स्कूलों में दी जाने लगी तबसे चरित्र निर्माण का वह पुराना ढंग समाप्त हो गया। अब न तो वैसे गुरु ही मिलते हैं और न गुरुकुलों का सा वातावरण आधुनिक विद्यालयों में बन सकता है। अतः यह आशा करना कि केवल स्कूली शिक्षा से बालक का चरित्र-निर्माण होगा, कोरी दुराशा है। आज की परिवर्तित परिस्थिति में चरित्रनिर्माण की समस्यायें अधिक जटिल हो गई हैं। आज चरित्रनिर्माण का कार्य किसी एक अध्यापक या संस्था के ऊपर निर्भर नहीं रहता। आज तो बालक अनेक अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करता है और एक से अधिक संस्थाओं में उसे अनिवार्यतः जाना पड़ता है। कभी वह प्रारम्भिक विद्यालय में पढ़ता है, कभी माध्यमिक में और कभी किसी महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करता है। इसके

अतिरिक्त कभी-कभी अपने माता-पिता अथवा अभिभावक की परिस्थितियों के अनुसार उसे एक विद्यालय से दूसरे में स्थानान्तरित होना पड़ता है। इससे किसी एक विद्यालय का उसके ऊपर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि किसी विद्यालय में बालकों के चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता है तो उस विद्यालय के छात्र अधिकतर चरित्रवान होंगे, ऐसी आशा की जाती है। परन्तु जब बालक एक विद्यालय से दूसरे में स्थानान्तरित होते रहते हैं, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि उस विद्यालय के छात्र जहाँ जहाँ जाएँगे वहाँ वहाँ वे चरित्रवान ही बने रहेंगे। सम्भव है परिवर्तित वातावरण में उनका चरित्र दूषित हो जाय, क्योंकि संगति का प्रभाव बड़ा प्रबल होता है। इसी प्रकार उक्त विद्यालय में बाहर से आने वाले सभी छात्रों का चरित्र बल दृढ़ हो जाएगा और वे चरित्रवान हो जाएँगे, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जो बालक पहले से दूषित वातावरण में रह चुके हैं उनके दुर्गुणों को सुधारना कठिन होता है। अतः आज की स्थिति में चरित्र निर्माण का दायित्व किसी एक संस्था पर नहीं माना जा सकता। बालकों के दुर्बल चरित्र का दोषारोपण एक संस्था दूसरी पर सरलता से कर सकती है। यह कहना बहुत कठिन है कि दुर्गुण कहाँ से आये। अतः किसी संस्था विशेष को उसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

परिवार में

यह तो हुई विद्यालयों की बात। अब आधुनिक परिवारों को देखिए। सभी परिवारों के वातावरण बालकों का चरित्र निर्माण करने के लिए अनुकूल होते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अनेक परिवारों में कौटुम्बिक झगड़ों के कारण बच्चों का विकास वांछनीय ढंग से नहीं हो पाता। कहीं सौतेली माँ है, कहीं माँ-बाप में बराबर संघर्ष होता रहता है। कहीं भाई-बहनों का कलह है; तो कहीं सम्मिलित कुटुम्ब की अनेक बुराइयाँ बच्चों के यथोचित विकास में बाधक होती हैं। और कभी सब कुछ होते हुए भी माता-पिता इतने व्यस्त रहते हैं कि अपने बच्चों की देखभाल नहीं कर पाते और बच्चे नौकरों-दाइयों के सहारे पलते हैं। फलतः उन पर नौकरों-दाइयों के आचरणों का प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार अधिकांश घरों का वातावरण भी चारित्रिक विकास के लिए उपयुक्त नहीं होता।

मध्यमार्गी पारिवारिक नियन्त्रण का संकेत

अब घर के बाहर देखिए तो पता चलेगा कि आजकल सिनेमा, रेडियो,

राजनैतिक आन्दोलन, विद्यार्थियों के आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन आदि का बच्चों के विकास पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ रहा है। आए दिन कोई न कोई आन्दोलन उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है। वे उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। कुछ माता-पिता अपने बच्चों को स्वतन्त्रता देने के नाम पर स्वच्छन्द छोड़ देते हैं। वे स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता को समानार्थी समझते हैं। अतः उनके बच्चों का चरित्र निर्माण मनमाने ढंग से होता है। उन पर घर की अपेक्षा अवांछनीय बाह्य तत्वों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत कुछ माता-पिता अपनी सन्तान पर अत्यधिक नियन्त्रण रखते हैं जिसका परिणाम अन्ततः हानिकारक होता है। अत्यधिक नियन्त्रण से बच्चे दब जाते हैं और उनका सम्यक् विकास नहीं हो पाता। उनमें अनेक प्रकार की मानसिक ग्रंथियाँ बन जाती हैं और कभी-कभी वे भयंकर मानसिक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

गम्भीर और संगठित चिंतन की अपेक्षा

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि आजकल बालकों के चरित्र निर्माण की समस्या पर्याप्त जटिल है और उसका हल निकालने के लिए समाज के कर्णधारों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना पड़ेगा। यह किसी एक व्यक्ति या संस्था का दायित्व नहीं हो सकता इसमें सबका सम्मिलित प्रयास अपेक्षित है। माता-पिता, अभिभावक, सम्बन्धी, हितैषी, अध्यापक, शिक्षाधिकारी सभी का सहयोग होने पर ही छात्रों का चरित्र निर्माण वांछनीय ढंग से हो सकेगा।

परिवार में

परिवार बालक की सबसे पहली पाठशाला है। आरम्भिक संस्कार वहीं पड़ते हैं। अतः माता-पिता को ध्यान रखना चाहिए कि दैनिक कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण कार्य बच्चे का उचित लालन-पालन है। यह कार्य नौकरों-दाइयों के ऊपर न छोड़ना चाहिए। जीवन के बहूमूल्य पाठ वह नौकर-दाइयों से नहीं सीख सकता। माता-पिता को स्वयं उसे उचित साँचे में ढालना चाहिए। जब बच्चा किसी शिशुविहार या प्रारम्भिक पाठशाला में जाने लगता है तब भी उन्हें उसकी ओर से उदासीन न होना चाहिए। यह देखते रहना चाहिए कि विद्यालय में उसका विकास किस प्रकार हो रहा है। उन्हें बच्चे की शिक्षादीक्षा में अध्यापक को सहयोग देना चाहिए जिससे बच्चे की समस्यायें सुलझती जाएँ और किसी प्रकार की ग्रंथि न पड़ने पाए। यदि

माता-पिता किसी कारणवश अपने बच्चों पर यथोचित ध्यान देने का अवकाश नहीं पाते तो उन्हें सुयोग्य अभिभावक नियुक्त करना चाहिए जिससे बच्चों की देखभाल ठीक से हो सके। ध्यान रहे कि बच्चे उपदेश की अपेक्षा उदाहरण से अधिक सीखते हैं। अत: माता-पिता और अभिभावक को बच्चों के सामने ऊँचा आदर्श रखना चाहिए जिससे वे चरित्रवान बन सकें।

विद्यालय में

विद्यालय का बच्चों के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। वहाँ पर छात्र केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने नहीं जाते जीवन के अनेक उपयोगी मूल्य ग्रहण करने जाते हैं। विद्यालय में अध्यापकों के चरित्र का बालकों के चरित्र पर अज्ञात प्रभाव पड़ता है। पाठ्येतर कार्यकलापों के द्वारा उन्हें जीवन के लिए अनेक उपयोगी पाठ पढ़ाये जाते हैं। खेल के मैदान में वे कर्तव्य पालन, अनुशासन, सहयोग, स्वार्थत्याग, आज्ञापालन आदि सीखते हैं। वास्तव में विद्यालय ही छात्रों के चरित्रनिर्माण का प्रमुख स्थान है। लेकिन विद्यालय को जब तक माता-पिता अथवा अभिभावकों का सहयोग नहीं प्राप्त होता तब तक वे अपने कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हो सकते। इस प्रकार का सहयोग अभिभावक-शिक्षक-संघ (Parent Teacher Associations) के द्वारा अधिक प्रभावशाली होता है। जब माता-पिता एवं अभिभावक शिक्षकों के साथ बैठकर बच्चों की समस्याओं पर विचार करते हैं तब वे उनका उचित समाधान निकालने में अधिक सफल होते हैं। माता-पिता का अध्यापकों से जितना ही अधिक सम्पर्क बढ़ेगा उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा उतनी ही कुशलतापूर्वक होगी। अत: देश में न केवल ऐसी संस्थाओं की अधिकाधिक स्थापना होनी चाहिए वरन् माता-पिताओं को उन्हें सक्रिय सहयोग देना चाहिए। उन्हें समय निकाल कर अभिभावक-शिक्षक-संघ की बैठकों में सम्मिलित होना और उसके निश्चयों को निष्ठापूर्वक कार्यान्वित करना चाहिए। तभी छात्रों का समुचित विकास संभव है।*

पाठ्येतर कार्यकलाप

कभी कभी बच्चे अवांछनीय बालकों के संसर्ग से कुमार्ग पर चले जाते हैं। ऐसा प्राय: तभी होता है जब घर और विद्यालय दोनों ही बालक

---

* दे० The Rajasthan Journal of Education, April 1965, में Parent- TeacherCo-operation शीर्षक लेख।

की ओर से उदासीन हो जाते हैं। फलत: बच्चे मनमाना साथ ढूंढ़ लेते हैं। ऐसे बच्चे विद्यालय के पाठ्येतर कार्यकलापों में सम्मिलित नहीं होते। यही कारण है कि वे अपने मनोरंजन के लिए अन्य साधन ढूंढ़ते हैं। सच बात तो यह है कि बहुत कम विद्यालय पाठ्येतर कार्यकलापों को अधिक महत्व देते हैं। वे पाठ्यविषयों के शिक्षण को ही शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मान लेते हैं। वास्तव में कक्षाभवन के भीतर दी जाने वाली शिक्षा से कक्षा के बाहर की शिक्षा का अधिक महत्व है। चरित्र-निर्माण के लिए पुस्तकीय ज्ञान उतना सहायक नहीं होता जितना अनौपचारिक शिक्षा होती है। पाठ्येतर कार्यकलापों के द्वारा बड़ी महत्वपूर्ण शिक्षा दी जा सकती है। शिक्षा के साथ ही उन कार्यकलापों से छात्रों का पर्याप्त मनोरंजन भी होता है। वे अपने अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करना सीखते हैं। निष्क्रिय एवं निरुद्देश्य रहने पर ही छात्रों का मन बुरे विचारों तथा अवांछनीय कार्यों में लगता है। अत: यदि उन्हें अवांछनीय तत्वों से बचाना है तो विद्यालय में पाठ्येतर कार्यकलापों की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए जिससे छात्र लाभान्वित हो सकें।

कभी कभी विद्यालय के बाहर भीं छात्रों की व्यायाम समितियाँ, वाद-विवाद समितियाँ, मनोरंजन के क्लब आदि होते हैं जिनमें उनका समुचित विकास होता रहता है। अध्यापकों को कभी-कभी इन समितियों में सम्मिलित होकर छात्रों का पथ-प्रदर्शन एवं उत्साहवर्धन करना चाहिए।

स्काउटिंग का महत्व

आजकल प्राय: विद्यालयों में सैनिक शिक्षा (एन० सी० सी०) की व्यवस्था रहती है। परन्तु जैसा देखा जा रहा है उससे प्रत्याशित लाभ नहीं हो रहा है। उसी के कारण स्काउटिंग जैसी उपयोगी संस्था का विकास रुक गया है, क्योंकि स्काउटिंग वाला समय सैनिक शिक्षा ले लेती है। सैनिक शिक्षा उस उपयोगी संस्था का स्थानापन्न नहीं हो सकती। स्काउटिंग में समाजसेवा का जो पाठ पढ़ाया जाता है उसका सैनिक शिक्षा में सर्वथा अभाव है। अत: यदि सैनिक शिक्षा के अतिरिक्त कुछ समय निकाल कर स्काउटिंग का कार्यक्रम चलाया जाय तो छात्रों के चरित्र-निर्माण में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

छात्र संघ

आजकल विद्यालयों में एक और संस्था ऐसी चल पड़ी है जिससे लाभ के बदले हानि अधिक होती है। वह है छात्रसंघ (Students Union)।

इन छात्रसंघों का उद्देश्य होना चाहिये छात्रों का सर्वांगीण विकास जिसके लिए उन्हें वादविवाद प्रतियोगिता, मनोरंजन के विविध कार्यक्रम (संगीत, नाटक, कवितापाठ, कवि-सम्मेलन आदि), महान् व्यक्तियों के व्याख्यान आदि का आयोजन करना चाहिए। परन्तु वास्तविकता यह है कि ये छात्र-संघ मजदूर-संघों का अनुकरण करके अध्यापकों तथा विद्यालय के अधिकारियों के सामने अपनी माँगें रखते हैं और उनकी पूर्ति न होने पर हड़ताल की धमकी देते हैं। वास्तव में ये छात्रसंघ बालकों को स्वच्छन्दता तथा अनुशासनहीनता की शिक्षा देते हैं। अतः उनका न रहना ही श्रेयस्कर है। उनके स्थान पर वादविवाद-समिति, मनोरंजन समिति, खेलकूद-समिति आदि की पृथक्-पृथक व्यवस्था होनी चाहिए। कुछ विद्यालयों में छात्र-संघ के स्थान पर संसद (पार्लमेंट) बनती है जिसमें देश की विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के अनुकरण पर पार्टियाँ बनाई जाती हैं और लड़के उनके द्वारा दलबन्दी सीखते हैं। वे केवल परिहास के लिए संसद नहीं बनाते वरन् वास्तविक जीवन में उसको कार्यान्वित करते हुए चुनावों के समय अपनी अपनी राजनैतिक पार्टियों का साथ देते हैं। फलतः उनमें संघर्ष होता है और मनोमालिन्य के अतिरिक्त मारपीट की नौबत भी आ जाती है। यह ठीक है कि युवकों को अपने देश की शासन पद्धति का परिचय प्राप्त करना चाहिए परन्तु यह परिचय परिहासात्मक संसद (Mock Parliament) के द्वारा प्राप्त करना चाहिए न कि वास्तविक संसद बना कर। अतः यदि संसद का उपयोग छात्रों को देश की शासन प्रणाली का ज्ञान कराने के लिए हो रहा है, तब तो उसका उचित संचालन करना चाहिए। अन्यथा ऐसी संस्था के लिए विद्यालय में अनुमति नहीं देनी चाहिए।

सिनेमा और रेडियो का सदुपयोग

सिनेमा और रेडियो के समुचित उपयोग से हानि के बदले लाभ होने की सम्भावना है। यदि विद्यालय चलचित्र निर्माताओं से शिक्षा सम्बन्धी, सुरुचिपूर्ण एवं मनोरंजक चित्रों के निर्माण की मांग करें तो सचमुच ही अच्छे चित्र मिल सकते हैं और विद्यालय में ही ऐसे चित्रों का प्रदर्शन करके युवकों का मनोरंजन किया जा सकता है। इससे वे अवांछनीय चित्रों को देखने के लिए अधिक आतुर न होंगे। साथ ही माता-पिता को अपने बच्चों को केवल सुरुचिपूर्ण चित्रों में ही ले जाना चाहिए। बहुत से माता-पिता इसका ध्यान रखे बिना सभी प्रकार के चित्र अपने बच्चों को दिखाते हैं और उनके कुमार्ग पर जाने के बाद दूसरों को दोष देते हैं। आजकल के चलचित्र

छात्रों के चरित्र को बिगाड़ने का जितना काम कर रहे हैं उतना दूसरा कोई साधन नहीं। आजकल के चित्र मनोरंजन के नाम पर चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि दुर्गुण अधिक सिखाते हैं। इसलिए बालोपयोगी चित्रों का निर्माण देश की एक महान् आवश्यकता है। इसी प्रकार रेडियो का भी सदुपयोग होना चाहिए। उसके बालोपयोगी कार्यक्रम सचमुच बालोपयोगी होने चाहिए। उनमें शिक्षकों, शिक्षाविदों, माता-पिता तथा बालकों का सहयोग अपेक्षित है। उनका समय ऐसा रखना चाहिए जब बच्चे अवकाश पाते हों और सुविधापूर्वक सुन सकते हों। विद्यालयों में होने वाले मनोरंजन के कार्यक्रमों का लेखन (Recording) अधिक उपयोगी होगा।

राष्ट्रीय विकास की कुंजी

हमारे उदीयमान राष्ट्र के उदीयमान कर्णधारों को चरित्र बल की कितनी आवश्यकता है, यह प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति जानता है। आज शासन में अनेक प्रकार की बुराइयाँ आ गई हैं। उन बुराइयों का मूल कारण शासकों की चारित्रिक दुर्बलता है। अतः यदि हम देश का शासन सुधारना चाहते हैं, यदि देश की सर्वतोमुखी उन्नति के अभिलाषी हैं, यदि हम अपने राष्ट्र की सुरक्षा तथा वृद्धि चाहते हैं, तो हमें चरित्रवान नागरिक तैयार करना होगा। अतः युवकों की शिक्षा में चरित्र बल पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। हमारी शिक्षा तभी सफल एवं सार्थक मानी जा सकेगी।

* * *

मार्च आया,
मैं भी गया उधर से गुजर एक प्रात,
गुजरते देखा
नव पल्लव, नव सर्जन, नव रस टपकन।
ऐसा लगा—जैसे—
कोई कुरूप-सी हो गई उर्वशी।
अभा की रात जैसे सज गई
पूनम की रोशनी-सी !
तब, जान में जान पड़ी।
नियम है प्रकृति का, राज्य है प्रकृति का।
वैसे, कहीं होता जो
आदमी का राज्य, यह आदमी जो आज का है;
तो, सूखे का क्या कभी होता भला।

शिक्षक से !

(डॉ० भागवतप्रसाद मिश्र, रीडर, अंग्रेजी विभाग,
रिजनल कालेज आफ एजुकेशन, भोपाल)

कहो उपासक ! आज भारती का कैसे खोलोगे द्वार ?
देख रहे हो उधर क्षितिज पर माता तुमको रही पुकार ।।

बोलो कैसे विद्यालय में तुम कर्त्तव्य निभाओगे ?
अपने शिष्यों को इस युग में कैसा पाठ पढ़ाओगे ?

बन्धु ! देश की सीमा पर प्रतिक्षण जो सैनिक लड़ता है ।
देख मौत को भी जिसका साहस हिमगिरि-सा अड़ता है ।।

जिसने लौह-दैत्य से भी निर्भय लड़ने की ठानी है ।
शिष्य किसी सच्चे गुरु का है, तभी देश का मानी है ।।

आज अठारह वर्ष पूर्व स्वाधीन हमारा देश हुआ ।
इसके नव-निर्माण-काल में क्या कुछ अपना शेष हुआ ।।

बापू-वल्लभ और जवाहर ऐसे रत्नों को खोया ।
किन्तु अमर बलिदानों ने उनके नया बीज फिर भी बोया ।।

उसी बीज की रखवाली का भार तुम्हारे हाथों में ।
भारत की आजादी का संसार तुम्हारे हाथों में ।।

तुम चाहोगे तो स्वदेश में फिर से चन्द्रगुप्त होंगे ।
जिनका साहस-शौर्य देखकर कायर पुनः लुप्त होंगे ।।

फिर अशोक होंगे धरती पर, फिर प्रताप की बारी है ।
पुनः छत्रपति विजयी होगा, फिर टीपू अधिकारी है ।।

युग देखेगा कमी नहीं है लक्ष्मी तथा अहल्या की ।
हजरतमहल, चाँदबीबी की, बा, स्वरूप औ कमला की ।।

पर शिक्षक ! यह तब होगा जब तुम कर्त्तव्य निभाओगे ।
अपने शिष्यों को इस युग में सच्चा पाठ पढ़ाओगे ।।

हमें देखना है तुमने कैसा इतिहास पढ़ाया है ?
द्वेषभाव के प्रकरण को क्या सचमुच दूर भगाया है ?

हम देखेंगे शिष्य तुम्हारे सीखे हैं कैसा भूगोल ?
परिचित हैं वे क्या स्वदेश की सीमाओं से या हैं पोल ?

पढ़ा नागरिकशास्त्र किन्तु क्या वे सच्चे नागरिक बने ?
जो केवल अधिकार न मांगें, कर्त्तव्यों में रहें सने ।।

पढ़ते हैं विज्ञान किन्तु क्या दृष्टिकोण वैज्ञानिक है ?
क्या तटस्थ-ज्ञानी-सम उनका चिंतन भी वैधानिक है ।।
गणित भले ही पढ़ा किन्तु क्या गणना उनकी रही सही ?
शत्रु-शक्ति को कभी तोलने में क्या उनसे है भूल रही ?
यह है लम्बी कथा अतः मैं इसे न अधिक सुनाऊँगा ।
केवल इतना कहकर ही मैं आज मौन हो जाऊँगा ।।
जब तक तुम वशिष्ठ, संदीपन, नरहरि नहीं कहाओगे ।
या समर्थ गुरु रामदास, चाणक्य रूप अपनाओगे ।।
तब तक कैसे देश तुम्हारा करे हृदय से अभिनन्दन ?
तब तक कैसे विश्व पुकारे सस्वर तुमको 'जगवन्दन' ?
बन्धु ! कहीं सम्मान मिले जीवन में मांगे-जाँचे से ?
श्रद्धा-आदर-मान मिले सद्सेवा के ही साधन से !

रूस में नवीन शैक्षिक सत्र का पहला दिवस

इस महीने की पहली तारीख को रूस के सब विद्यालय खुल गये हैं । सन् १९१७ में रूस की शैक्षिक दशा सन् १९४७ में भारत की शैक्षिक दशा से बदतर थी । आज के आँकड़े इस प्रकार हैं ।

१० लाख से अधिक नये ग्रैजुएटों की संख्या है, सब धंधे से लगे हुए ।

लगभग ८०० सर्वोच्च विद्यालयों की पहली कक्षा में ८,३६,००० विद्यार्थी भरती हुए हैं । इनसे अलग संख्या है प्राविधिक विद्यालयों में भरती की ।

४० लाख लड़कों-लड़कियों ने आठ साल की शिक्षा पूरी की है, ९ लाख ने दस साला माध्यमिक शिक्षा की पढ़ाई पूरी की है और साढ़े चार लाख ने संध्याकालीन माध्यमिक स्कूलों की पढ़ाई समाप्त की है ।

लगभग ४ करोड़ ७० लाख विद्यार्थी प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों में भरती हैं और उन्हें २५ लाख शिक्षक पढ़ा रहे हैं ।

पिछले पाँच वर्षों के भीतर ८० लाख विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए नये भवन बने हैं और इस वर्ष खुले विद्यालयों में १५ लाख विद्यार्थी पढ़ रहे हैं ।

इस वर्ष ५ लाख बच्चों के लिए बाल भवन बने हैं और इस वर्ष के अन्त तक इतने भवन बन जायेंगे कि ७७ लाख बच्चे तक उनमें बैठ सकेंगे ।

शैक्षिक समाचार-समुच्चय—अगस्त

(आचार्य रामखेलावन चौधरी, जियालाल इंस्टीच्यूट आफ एजुकेशन, अजमेर)

अन्तर्राष्ट्रीय समाचार—

२५ अगस्त को टोकियो में विश्वविद्यालयों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें भाग लेने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डा० नारबिट सपत्नीक, टोकियो जाते हुए, भारत में आए। यहाँ कई भाषणों में उन्होंने बताया कि भारत के विद्यार्थी जो अमेरिका आते हैं, अध्ययनशील होते हैं। प्रारम्भ में उन्हें अंग्रेजी में कठिनाई होती है परन्तु बाद में वे इस भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। हारवर्ड विश्वविद्यालय में सात वर्षों से गांधी-स्मारक भाषण मालाएँ चल रही हैं जो अब बड़ी लोकप्रिय हो रही हैं।

राष्ट्रमण्डलीय देशों के लगभग २०० छात्र शिमला (भारत) में आयोजित विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए आये।

सिडनी (आस्ट्रेलिया) के निकट एक अत्यन्त रमणीक प्राकृतिक स्थल पर एक नए प्रकार के माध्यमिक स्कूल की स्थापना हुई है जो अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शों के अनुरूप चलेगा। इसमें एक अंतर्राष्ट्रीय छात्रावास बनवाया गया है। स्कूल को चार 'हाउसेज' में बाँटा गया है जिनके नाम चार महापुरुषों, टैगोर, लिंकन, क्यूरी और चर्चिल के नामों के आधार पर रक्खे गए हैं। इस स्कूल में टैगोर के आदर्शों की शिक्षा पर जोर दिया जायगा।

यूनेस्को ने भारत में कृषि की शिक्षा और राष्ट्रीय जीवशास्त्र प्रयोगशाला के लिये लगभग ५० लाख रुपये का अनुदान देने का निश्चय किया है। यूनेस्को के सहयोग से स्थापित एशियन इन्स्टीच्यूट आफ़ एजुकेशनल प्लानिंग ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन नामक संस्था ने भारत में चार महीने का एक पाठ्यक्रम चलाया है। इसमें दस एशियाई देशों से २२ शिक्षाविशारद आये हैं। एक अवसर पर फिलीपाइन्स की कुमारी अम्पारो वुहेन ने कहा कि शिक्षा में वैज्ञानिक और तकनीकी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और आध्यात्मिक तत्वों को कहीं अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

भारत की भाँति वेलजियम में भी भाषा-विवाद चल रहा है। इसके कारण कई बार व्यापक दंगे हो चुके हैं।

राष्ट्रीय समाचार—

माध्यमिक शिक्षा—उत्तर प्रदेश में विज्ञान विषय को पढ़ाने वाले १००० अध्यापकों की कमी है। इसे पूरा करने के लिए एम० एस-सी० कक्षाओं में प्रवेश की सुविधाएँ बढ़ायी गयीं और एक वर्षीय पाठ्यक्रम चलाया गया। आगरा, मुज़फ्फरनगर, कानपुर और गोरखपुर के कालेजों में एम० एस-सी० कक्षाओं में अधिक संख्या में छात्र भरती किये जायँगे। उत्तर प्रदेश सरकार ने विभिन्न विषयों में अध्यापकों की आवश्यकता का अध्ययन करने के लिये एक समिति बनायी है। यह छः सदस्यों की समिति बी० एड०, बी० टी० और एल० टी० परीक्षाओं में समायोजन की सम्भावनाओं पर विचार करेगी और प्रशिक्षण महाविद्यालयों के लिए एक समान प्रतिमान (Norms) स्थिर करेगी। राजस्थान के शिक्षा मन्त्री ने कहा है कि चतुर्थ योजना चालू होने पर राज्य के सारे स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगेगी।

उच्च शिक्षा—राष्ट्रीय योजना आयोग की ओर से प्रो० राव की अध्यक्षता में नियुक्त एक अध्ययन-दल स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के प्रमुख विषयों, जैसे कला, विज्ञान, वाणिज्य और शिक्षा, के अध्यापकों की अध्यक्षता की जाँच कर रहा है। चतुर्थ योजना के अन्तर्गत उच्च शिक्षा पर अनुमानित व्यय में कटौती कर दी गयी है। अब केवल १३४ करोड़ रुपये खर्च किये जायँगे जिनमें से ६७·७२ करोड़ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, १०·५ करोड़ केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय और ५५ करोड़ राज्य सरकारें खर्च कर सकेंगी।

एक अमरीकी शिक्षा-विशेषज्ञ डा० जेरोमी हॉलैड ने कहा है कि भारत जैसे विशाल देश में केवल चुने हुए लोगों को ही विश्वविद्यालय स्तर पर प्रवेश दिया जाय, तो अच्छा हो। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से नियुक्त एक समिति ने विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का अध्ययन करके ३५० पृष्ठों की एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। इसमें बताया गया है कि शिक्षा का देश के विकास·कार्यो से कोई सम्बन्ध नहीं है; अध्यापक और छात्रों का अनुपात उचित न होने से छात्रों की ओर व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता; विश्वविद्यालयों में दर्शन, इतिहास और साहित्य की शिक्षा दी जाती है, परन्तु छात्रों में भारतीयता नहीं उत्पन्न होती। विश्वविद्यालयों

में छात्रों की वढ़ती हुई संख्या को कम करने के लिए सुझाव दिये गये हैं; यथा (१) प्रवेश की निम्नतम सीमा १७+ हो, (२) छात्रों के लिये गणित और भाषा में उच्च प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक हो, (३) छात्रों के संचित विवरण (Cumulative record) पर जोर दिया जाय। विश्वविद्यालय का उपकुलपति उच्चकोटि का विद्वान एवं शोधकर्त्ता हो।

लोकसभा में शिक्षा-मन्त्री श्री छागला ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि विश्वविद्यालयों में उपकुलपतियों की नियुक्ति राजनैतिक आधार पर होती है। उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय पर लागू अध्यादेश के स्थान पर विधिवत् कानून बनाने के लिए एक बिल पारित किया है। कई सदस्यों में उनकी कटु आलोचना की है, परन्तु उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा है कि इस बिल का उद्देश्य केवल प्रशासनिक सुधार करना है; विश्वविद्यालय के इस्लामी आदर्शों में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

बिहार राज्य के शिक्षा मन्त्री सत्येन्द्र नारायण सिंह ने बताया कि राज्य में विश्वविद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए शीघ्र ही एक समिति नियुक्त होगी।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा—कौंसिल आफ़ साइंटिफिक ऐण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि भारत में केवल विज्ञान की कुछ शाखाओं में ही शोध-कार्य हुआ है। विश्वविद्यालयों का योगदान नगण्य है। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की संख्या ३० है और अपार धनराशि खर्च होने पर भी शोध-कार्य कम हुआ है। यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में सम्पर्क रहे, उनके बीच आदान-प्रदान हो, धन का अभाव दूर किया जाय और प्रत्येक विश्वविद्यालय केवल अपने छात्रों को ही न नियुक्त करे।

अध्यापक—पंजाब सरकार ने अध्यापकों के वेतन-क्रम में सुधार किया है जिससे ७२५ पदों को लाभ पहुंचेगा। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों एम० ए० जनों के लिए २००-५०० रु० और तृतीय श्रेणी के लिये १८०-४५० का क्रम स्थिर हुआ है। अध्यापकों की संख्या में सरकार वृद्धि करेगी। शिक्षा स्तर को उठाने के लिये यह कदम उठाया गया है। श्री छागला ने मैसूर में कहा कि अध्यापकों की कमी को दूर करने का एकमात्र उपाय है, पत्र व्यवहार द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। उन्होंने भारत के चार प्रसिद्ध रीजनल कालेजों को एक नवीन प्रयोग बताया। राजस्थान के ६०

प्राथमिक और जूनियर माध्यमिक प्रशिक्षा संस्थाओं से ६००० निकलने वाले नव-प्रशिक्षित अध्यापकों में से लगभग ५००० अध्यापक बेरोजगार रहते हैं। कारण यह है कि ग्राम-पंचायतें सरकारी आदेश के विरुद्ध प्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्त नहीं करतीं। यूनेस्को अध्यापकों की स्थिति में सुधार करने की योजना बना रही है।

छात्रान्दोलन—इस मास छात्रों के आन्दोलन में नया मोड़ आया। इन्दौर में शिक्षा-शुल्क और छात्रावास का किराया घटाने के लिये प्रदर्शन और हड़तालें हुईं। मध्य प्रदेश के मुख्य मन्त्री मिश्र ने छात्रों की इस प्रवृत्ति की निन्दा की और शिक्षा संस्थाओं को बन्द करने की धमकी दी। जलंधर में रोडवेज के कर्मचारियों से छात्रों का संघर्ष हुआ और तीन दिन तक शिक्षा संस्थाएँ बन्द रहीं। हैदराबाद में ओसमानिया विश्वविद्यालय के छात्रों ने परीक्षा शुल्क घटाने और छात्रों को उत्तीर्ण करने के नियमों में परिवर्तन करने के लिये आन्दोलन किया। स्थित पर काबू पाने के लिए पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा। त्रिपुरी और कोयमबटूर में छात्रों ने हिन्दी की शिक्षा के विरुद्ध उग्र आन्दोलन किया और पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा।

भाषा-विवाद—केन्द्रीय सरकार ने अपनी भाषा नीति पर दृढ़ रहने का निश्चय किया है। वर्तमान नीति के अनुसार त्रिभाषा सूत्र, चौदहो भाषाओं में केन्द्रीय परीक्षाएँ लेने, अंग्रेजी के प्रयोग विषय निर्धारित करने आदि पर बल दिया गया है। मद्रास राज्य में तामिल को केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम बनाने का प्रस्ताव भारी बहुमत से अस्वीकृत हो गया है। दिल्ली में होने वाले वरिष्ठ लेखकों के सम्मेलन ने हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रों में अंग्रेजी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाने की माँग की। पंजाब में भाषा विवाद के आधार पर संत फ़तेहसिंह ने पंजाबी सूबे की माँग की और उपवास करने की घोषणा की। अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन में प्रधान मन्त्री शास्त्री ने सभी भारतीयों से संस्कृत सीखने का आग्रह किया। श्री कुंजरू के नेतृत्व में अंजुमन तरक्कीए उर्दू की ओर से एक शिष्टमण्डल प्रधान मन्त्री से मिला और उर्दू को भी राज्यभाषा बनाने की माँग की। अखिल भारतीय राज्यभाषा सम्मेलन ने दिल्ली में हिन्दी को केन्द्रीय परीक्षाओं का माध्यम बनाने की माँग की। श्री क० मा० मुंशी ने संस्कृत के महत्व पर प्रकाश डालते हुए त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को स्थान न देने पर खेद प्रकट किया क्योंकि संस्कृत के अभाव में देश को अत्यधिक हानि होने की संभावना है। बम्बई में श्री छागला ने कहा कि अन्त में सभी स्तरों पर क्षेत्रीय भाषाएँ

शिक्षा का माध्यम होंगी, परन्तु क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद के स्थान पर मौलिक ग्रन्थों का भण्डार होना अत्यन्त आवश्यक है। रमन इंस्टीट्यूट, बंगलौर के संचालक विश्वविख्यात वैज्ञानिक श्री च० वे० रमन ने कहा कि भारत में हर व्यक्ति को केवल दो भाषाएँ सीखिनी चाहिए, एक मातृभाषा और दूसरी अंग्रेज़ी।

केन्द्रीय शिक्षा आयोग—मद्रास में दौरा करते हुए शिक्षा-आयोग के अध्यक्ष श्री कोठारी ने कहा कि शिक्षा-स्तर में गिरावट का मूल कारण, शिक्षा का अनियन्त्रित प्रसार है। आयोग छात्रों की अनुशासनहीनता पर विचार कर रहा है। छात्रों को राजनीति से अलग तो नहीं रक्खा जा सकता; परन्तु वे किस प्रकार भाग लें, यह निश्चय करना होगा। दिल्ली महापालिका की ओर से शिक्षा आयोग को यह सुझाव दिया गया है कि १२ वर्षों का पाठ्यक्रम ही उपयुक्त है—पाँच वर्ष प्रारम्भिक शिक्षा, तीन वर्ष जूनियर तथा २ वर्ष हाई स्कूल की शिक्षा, और २ वर्ष इण्टर की शिक्षा इस क्रम का अंग हो। अध्यापकों को चाहे वे किसी स्तर के हों, लगभग समान वेतन दिया जाय। कलकत्ता में अपने दौरे के बीच श्री कोठारी ने कहा कि शिक्षा आयोग जाँच का काम पूरा कर चुका है और अगले मास से वह अपनी रिपोर्ट लिखना प्रारम्भ करेगा। उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि भविष्य में शिक्षा स्तर ऊँचा होगा। दिल्ली में शिक्षा आयोग को सुझाव देते हुए श्री कामराज ने कहा कि विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा नि.शुल्क होनी चाहिए तभी भारत से निरक्षरता दूर होगी। उन्होंने धनी वर्ग के लिये चलाये गये विशेष स्कूलों (पब्लिक स्कूलों) की भर्त्सना की।

विशेष समाचार—श्री विनोबा ने शिक्षा पर विचार प्रकट करते हुए कहा कि शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण होना घातक होगा। इससे विभिन्न विचारधाराओं और स्वतन्त्र प्रयोगों को धक्का पहुंचेगा। पंजाब सरकार ने परीक्षा-प्रणाली में कुछ सुधार किये हैं। ज्ञान का विस्तार जानने के लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली और निबन्ध परीक्षा दोनों का मिश्रण किया जायगा। सीखे गये सिद्धान्तों को नयी स्थिति में प्रयोग करने की योग्यता की परीक्षा लेने पर विशेष जोर दिया जायगा।

* * *

परिचायिकी

राजस्थान के राजपूत : उत्थान और पतन—

लेखक और प्रकाशक श्री माँगीलाल महेचा, एम० ए०, एल० एल० बी, बड़ले का चौक, जोधपुर; १५० पृष्ठ; चार रुपये

राजस्थान के इतिहास पर ग्रन्थों की प्रचुर संख्या है, परन्तु कुछ इतिहास राजपूताने के राज्यों के संग्रह हैं जैसे गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी कृत दस खण्ड और श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत तीन खण्ड। परन्तु कोई ऐसी छोटी पुस्तक न थी जिसमें राजस्थान के ज्ञात इतिहास का समावेश होता। इस कमी की पूर्ति लेखक महोदय ने उक्त ग्रंथ लिखकर की है। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। परन्तु अधिक उपयोगी हो सकती थी यदि राजस्थान की भौगोलिक पृष्ठभूमि में राजस्थान की गृह-कलह और राजा-प्रजा में जिज्ञासा के अभाव के कारणों की विवेचना भी होती। इतिहास और भूगोल तभी हमारे और राष्ट्र के दैनिक व्यवहारों में उपयोगी हो सकते हैं जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति के संदर्भ में दोनों का अध्ययन हो। यह अध्ययन भूनीति नामक विषय के अन्तर्गत है जिसके लिए अंग्रेजी का पारिभाषिक शब्द जियोपॉलिटिक्स (Geopolitics) है।

राजभाषा शिक्षण—लेखक और प्रकाशक, प्राध्यापक एम० के० रामन एषुतच्छन, हिन्दी प्रशिक्षण कलालय, रामावर्मपुरम्, ट्रिच्चूर (केरल); ३१८ पृष्ठ; चार रुपये पचास पैसे।

हिन्दी भाषियों को सही हिन्दी पढ़ाने पर, हिन्दी व्याकरण पर, पुस्तकें समीक्षक की नजर में आती रहती थीं। अहिन्दी भाषी किस प्रकार हिन्दी सीखें, इस विषय पर प्रस्तुत पुस्तक समीक्षक के लिए पहली है। इस पुस्तक में कुछ अध्याय हैं जो समीक्षक जैसे हिन्दी भाषी के लिए नितान्त अनूठे हैं जैसे हिन्दी शिक्षण की महत्ता और उसके उद्देश्य, अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी शिक्षण की सर्वोत्तम विधि और व्याकरण शिक्षण।

कविता शिक्षण जैसे प्रकरण को पढ़कर ऐसा लगता है कि अहिंदी राज्यों में हिन्दी का ललित साहित्य भी पढ़ाया जाता है। ऐच्छिक पढ़ाई में कोई हर्ज नहीं। परन्तु अनिवार्य शिक्षण आधुनिक हिन्दी गद्य तक सीमित रहना चाहिए। यही राजकाजी व्यवहार की भाषा है, इस ही भाषा में गम्भीर साहित्य की रचना होती है।

जिस प्रकार अहिन्दी भाषी हिन्दी की पढ़ाई पर हिन्दी में लिखते हैं, उसी प्रकार हिन्दी भाषियों को क्षेत्रीय भाषाओं के पण्डित और प्राध्यापक होकर हिन्दी भाषियों के लिए क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन पर पुस्तकें लिखनी चाहिए। लेखक को समीक्षक की हार्दिक बधाई।

शिक्षा भारती (पहला भाग)—

लेखिका, श्रीमती पी० लक्ष्मिकुट्टि अम्मा, एम० ए०, एल० टी०, प्राचार्या हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, ट्रिच्चूर (केरल); प्रकाशक, देवदास प्रकाशन, तिरुअंबाडी रोड, ट्रिच्चूर–२; २५० पृष्ठ; ५ रु० ५० पैं०

शिक्षण सिद्धांत पर अहिन्दी भाषिणी लेखिका की लेखनी से निकली यह पहली पुस्तक है। इस पुस्तक की एक विशेषता इस बात में है कि शिक्षण सिद्धांतों की विवेचना भारतीय संस्कृति के संदर्भ में की गई है। दूसरी विशेषता यह है कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त इसमें विधि के आधारों का भी समावेश है। यों यह पुस्तक हिन्दी भाषी राज्यों के उन प्रशिक्षालयों के बड़े काम की है जहाँ बेसिक स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक तैयार किये जाते हैं। पुस्तक में १६ अध्याय हैं। अन्तिम दो अध्याय—**बुनियादी शिक्षा** और **गुरुकुल शिक्षा** बड़े काम के हैं। इनसे छात्रों को भावी शैक्षिक जीवन में यथेष्ट प्रेरणा मिलती रहेगी।

संयम और संतति : आचार्य विनोबा भावे का तद्विषयक लेख संग्रह, प्रकाशक : सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी; ३१ पृष्ठ; ३५ पैसे।

इस पुस्तक में संतति संयम पर आचार्य विनोबा भावे के विचारों का संकलन है। विनोबा जी संतति संयम के पक्ष में हैं; परन्तु वह अप्राकृतिक प्रयोगों और औषधियों के विरुद्ध हैं। इनसे स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है; नैतिकता पर आँच आती है और व्यभिचार की सम्भावना बढ़ती है। वह संयम के पक्ष में है। सिद्धांततः वह सही हैं। परन्तु तथ्य यह है कि पति-पत्नी के वर्ष में एक बार भी संयोग होने पर गर्भधारण सम्भव है। नारी तो १६ वर्ष की अवस्था से ही गर्भ धारण योग्य हो जाती है। यदि पुरुष के लिए विवाह की अवस्था कम-से-कम २१ वर्ष रखी जाय और नारी के लिए १८ वर्ष, तो यह भी विचार करना होगा कि नर के शरीर को कब तक नारी-संयोग की सबल प्रेरणा मिलती रहती है और नारी की प्रजनन शक्ति की क्या सीमा है। नारी के लिए तो प्रकृति ने ४५–५० वर्ष की सीमा बांध दी

है; परन्तु नर की वीर्य-शक्ति को इस प्रकार प्रकृति ने सीमित नहीं किया है। इतना ही कहा जा सकता है कि आमतौर पर उसकी संयोग-प्रेरणा ४५ वर्ष के आगे प्रबल नहीं रहती, उस पर अधिकार रखना उसके लिए संभव हो जाता है।

तो २१ से ४५ वर्ष की अवस्था तक एक-नारी-व्रती पति को तीन-चार ही संयोग का मौका है; क्योंकि प्रति जोड़ी द्वारा तीन-चार संतति से अधिक को जन्म देने पर भारतीय जनसंख्या-नियन्त्रण का हल नहीं होता। सिद्धान्त की रक्षा होती है और राष्ट्रीय नीति की भी, यदि पति-पत्नी संयोग के सम्बन्ध में स्वस्थ मासिक स्राव के पश्चात् अधिक-से-अधिक एक सप्ताह ही गर्भ धारण के विरुद्ध सुरक्षित समझें और इस प्रकार अपने संयोग सीमित रख सकें।

परन्तु इतना संयम शिक्षित, व्यस्त, सम्पन्न और सत्संग-प्राप्त दंपतियों के लिए ही सम्भव है जिनकी संख्या इस देश में नगण्य है। तो भी राष्ट्रीय नीति की रक्षा होनी चाहिए; क्योंकि जनसंख्या नियमन राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है। चीन की बात कही गयी है। परन्तु अब वहाँ भी परिवार नियोजन चालू है; यद्यपि चीन ने अपनी जनता को बसाने के लिए मंचूरिया, मंगोलिया और तिब्बत जैसे प्रायः निर्जन देशों पर आधिपत्य जमा रखा है और चीनी शासक जनशक्ति का संगठित उपयोग—या दुरुपयोग—करना जानते हैं।

यह ठीक है कि भारत के एक वर्ग पर हमारे प्रचार का असर नहीं के बराबर है। अतएव प्रचार ही यथेष्ट नहीं है; प्रशासनिक नियमन भी आवश्यक है। संक्षेप में इस प्रकार :

१—शरीर और मस्तिष्क से स्वस्थ और अनुकूल अवस्था के नर-नारियों को ही दांपत्य सूत्र में बंधने की अनुमति मिले।

२—तीन संतति तक कर और वेतन के नियम संतति का प्रजनन प्रोत्साहित करें। चौथी संतति पर नियम उदासीन रहें; परन्तु पाँचवीं के लिए दम्पति को वैतनिक और कर सम्बन्धी नियमों से दण्ड की चेतावनी मिल जाय। तब सभी वर्ग के भारतीय नागरिक सन्तति-संयम के पक्ष में सचेत होंगे।

हमें याद रखना है कि विज्ञान के इस युग में जनगणना नहीं, जन-गुण ही राष्ट्र-शक्ति का पोषक है। —का० दा०

सम्पादकीय

भारतीय स्वतन्त्रता की अग्नि-परीक्षा—

इतिहास साक्षी है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति जितनी कठिन है उससे कहीं अधिक कठिन उसकी रक्षा है। परतन्त्र जन की इच्छा शक्ति के संगठित होकर प्रबल होने पर अनुकूल वातावरण में उनका देश स्वतन्त्र हो जाता है। परन्तु स्वतन्त्र होने पर जब वे अपने बनाये शासन के अन्तर्गत सुरक्षा का प्रयास करते हैं, तब उन्हें इच्छा-शक्ति से प्रेरित कर्मशक्ति का निरंतर और जागरूक प्रयोग करते रहना पड़ता है। यदि नये राष्ट्र को कालचक्र-द्रष्टा नेतृत्व मिल जाता है और ऐसा नेतृत्व पाकर राष्ट्र के जन श्रद्धापूर्वक ऐसे नेतृत्व से आवश्यक शिक्षण प्राप्त करते रहते हैं, तो उनकी इच्छा-शक्ति परिष्कृत होती है और युगीन प्रगति के अनुकूल वे कर्मरत होते हैं

हम शिक्षक अपने शिष्यों को शिक्षा देते हैं और परीक्षा लेकर उन्हें दीक्षा देते हैं। इसी प्रकार काल, जिसे हम इतिहास के नाम से समझने का प्रयास करते रहते हैं, हमें शिक्षा देते हुए हमारी परीक्षा लेता रहता है।

कल की बात है। भारतीय स्वतन्त्रता के उषादर्शन होने पर स्वातंत्र्य संघर्ष के दौरान में और अतीत की कुछ भूलों के परिणाम-स्वरूप देश के भीतर एक विष वृक्ष आरोपित होकर विदेशी शासकों द्वारा पोषित होने लगा था। उसके फलने पर भारत को अंग-भंग करके स्वतन्त्र करने का घातक संघर्ष प्रारंभ हुआ। मुसलमान किसी समय विदेशी थे। परन्तु सैकड़ों वर्षों से वे भारत के अभिन्न अंग हैं। किसी समय धर्म-भेद के आधार पर जाति-भेद मान्य था। परन्तु यह युग राष्ट्रों का है, धर्मों का नहीं; और राष्ट्र में नागरिकता जन्म से मान्य होती है, धर्म से नहीं। जो जिस भूमि में जन्मा है वह उसका नागरिक है, उसका धर्म उसकी अपनी निधि है, उससे उसे शांति मिलती है, उसके निर्वाह का उसे अधिकार है।

ऐसी व्यापक मान्यता के युग में कालचक्र की प्रगति के नितांत प्रतिकूल हमारे देश के एक संगठित वर्ग ने धर्म-भेद की दुहाई देकर देश के विभाजन का आत्म-घातक हठ किया—आत्म-घातक इसलिए कि इस विभाजन से भारत भर को तो हानि पहुँचती ही थी, भारतीय मुसलमान भी तीन भागों में बंटते थे : पश्चिमी पाकिस्तान, भारतीय मुसलमान और पूर्वी पाकिस्तान।

गृह-युद्ध से देश की रक्षा करने के लिए हमारे नेताओं ने विवश होकर ही विभाजन मान लिया और कांग्रेस ने लीग को अनुज मानकर आशीर्वाद सहित उसे अलग घर बसाने का मौका दे दिया।

परन्तु अनुज का जन्म विषवृक्ष के दूषित फल से हुआ था। पाकिस्तानी जन भारतीय हैं। वे हमारे भाई हैं। काल-चक्र के विपरीत जन्मे पाकिस्तान को कालचक्र के प्रतिकूल नेतृत्व ही अभी तक मिल पाया है। पाकिस्तान से बचे भारत को पहले विश्ववंद्य राष्ट्रपिता गांधी के आशीर्वाद प्राप्त जवाहरलाल का अटूट नेतृत्व मिला और जब वह स्वर्गीय हुए तो हमें इन सर्वमान्य नेता के पट्टशिष्य लालबहादुर जी शास्त्री का नेतृत्व प्राप्त है। हमारे पहले राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद भारतीय संस्कृति के अनुरूप थे, तो वर्तमान राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् उसी संस्कृति की शिक्षा मानव-मात्र को देते रहे हैं।

ऐसा नेतृत्व पाकर हम आंतरिक क्षेत्र में पथभ्रष्ट नहीं होने पाये हैं और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कालचक्र के अनुकूल ही हमारे राष्ट्र का व्यवहार रहा है।

उचित नेतृत्व के शुभ परिणाम हमारे सामने हैं। पाकिस्तान हिन्दुओं और ईसाइयों को सब प्रकार से तंग करते हुए भारतीय भूमि को 'पाक' बनाता जा रहा है जब कि हमारे राष्ट्र में सभी धर्म आदृत हैं, सभी धर्मावलम्बियों को भारतीय नागरिकता के अधिकार प्राप्त हैं। तो ये सब देश की अग्नि-परीक्षा में मनसा, वाचा, कर्मणा, अपने राष्ट्र के साथ हैं।

पाकिस्तान के इस प्रकार 'पाक' होने पर पाकिस्तानी शासन द्वारा भारत के विरुद्ध विष-वमन करते रहने पर भी पाकिस्तानी शासन कितनी नैतिक और भौतिक शक्ति प्राप्त कर सका है, इसके प्रमाण विष-विकृत शासन को भले ही प्रत्यक्ष न हुए हों, परन्तु मूक पाकिस्तानी जनता को, पाकिस्तान के बाहर समस्त संसार को, तो अब तक प्रत्यक्ष हो ही गये हैं।

चीन हमारा पड़ोसी है। इस विशाल देश के शासन ने पिछले पंद्रह वर्षों के भीतर शक्ति का भारी संचय किया है; परन्तु यह भी सही है कि पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों तक अवनतिशील चीन पर शक्ति-संपन्न राष्ट्रों की नोच-खसोट चलते रहने के परिणाम-स्वरूप नवीन चीन की शक्ति ने प्रतिक्रिया के रूप में संहारात्मक रवैया अपनाया है। भारत के स्वतन्त्र होने पर जब चीन साम्यवादी होकर संगठित हुआ, तो हमारी संवैधानिक नीति के विपरीत साम्यवादी अधिनायकत्व अपनाने पर भी हमारे देश के नेतृत्व ने नवीन चीन

के अस्तित्व का स्वागत किया और उसे सहअस्तित्व का पाठ पढ़ाना चाहा। परन्तु हमारे नेतृत्व को भारी धोखा हुआ। पाकिस्तान की आक्रामक नीति के कारण हमारी पाकिस्तानी सीमाएँ अरक्षित थी हीं, अनादि काल से संरक्षक हमारा हिमालय भी अरक्षित हो गया। भारतीय सुरक्षा के लिए नहीं, अपनी ही सुरक्षा के लिए पाकिस्तान को चीनी अतिक्रमण होने पर भारत का साथ देना चाहिए था। परन्तु जिस साम्यवादी राष्ट्र से प्रतिरक्षा के लिए पाश्चात्य राष्ट्र, विशेष रूप से संयुक्त राज्य, पाकिस्तान को सैनिक सामान विपुल मात्रा में देते रहे थे, वही सामान पाकिस्तान भारत ही से लड़ने के लिए ले रहा था—यह पिछले थोड़े से वर्षों के भीतर अब संसार भर को प्रत्यक्ष हो गया है।

पाकिस्तानी शासक कहते हैं कि भारत और पाकिस्तान के मध्य कश्मीर ही का झगड़ा है। वह पाकिस्कान को मिल जाय, तो पाकिस्तान का भारत से कोई झगड़ा नहीं रह जायगा। उन्हें खुश करने के लिए हमारे नेता यह भी करते, परन्तु भारत ने तो अपने संविधान में विशुद्ध संसदीय गणतंत्रात्मक प्रणाली अपनायी है, जिसमें नेताओं को संगठित जनमत का ही अनुसरण करना पड़ता है। कश्मीर पर एक हिन्दू राजा का राज्य था। उसके अधिकांश जन मुसलमान हैं। परन्तु जब देश के स्वतन्त्र होने पर कश्मीर राज्य के सामने भारत या पाकिस्तान से मिलने के विकल्प आये तो राजा ही नहीं, राज्य की प्रतिनिधि संस्था कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस और उसके तत्कालीन नेता शेख अब्दुल्ला जो प्रधान मन्त्री थे, भारत ही की ओर उन्मुख हुए। पाकिस्तान की ओर से जितनी भी धमकियाँ बढ़ती गईं, उतना कश्मीर के दोनों अंग–राजा और प्रजा–भारत से मिलने के लिए उत्सुक होते गये। जब पाकिस्तान बल-प्रयोग पर आमादा हुआ, तो अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुकूल अपने प्रधान मन्त्री की सहमति से महाराजा ने भारत से मिलने का प्रतिज्ञा पत्र दे दिया। तब भारतीय सेनाओं को पाकिस्तानी आक्रामकों से कश्मीर की रक्षा करनी पड़ी। कश्मीर की पूरी घाटी और राज्य के अधिकांश से आक्रामकों के हटाये जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुरोध मानकर भारत ने युद्ध-विराम मान लिया। एक विराम-रेखा बना दी गई और आशा की गई कि कालांतर में विद्वेष भावना के घटने पर पाकिस्तान कश्मीर को भारत का अंग मान लेगा और भारत-पाक संबंध सुधर जायेंगे।

परन्तु मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। एक ओर कश्मीर के जन भारत के निकट आते चले गये और दूसरी ओर पाकिस्तान का भारत-विरोधी

प्रचार बढ़ता गया। भारत के विरुद्ध सैनिक शक्ति-संग्रह के लिए, साम्यवाद से लड़ने से लिए नहीं, वह भारतीय नीति के विपरीत पहले प्रत्यक्ष रूप में साम्यवाद विरोधी आंग्ल-अमरीकी संगठन में सम्मिलित हुआ। फिर परोक्ष रूप में साम्यवादी चीन से भी मेल बढ़ाने लगा जब सीमा विवाद पर भारत की चीन से अनबन हो गई।

हमारे देश में गणतांत्रिक शासन है; विचार स्वातंत्र्य है। वाद-विवाद का मेला लगा रहता है। पाकिस्तान में सैनिक अधिशासन है; वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अभाव है; राजनैतिक दलों पर भी दमनचक्र है। यह सब देखते हुए पाकिस्तान के सैनिक नेताओं की समझ में आया कि आक्रमण द्वारा भारत को धमकाने और दबाने का मौका आ गया है। पहले इन्होंने पश्चिमी पाकिस्तान की दक्षिणी सीमा पर भारत की सहनशक्ति आंकने का आक्रामक प्रयत्न किया। इसमें इन्हें कोई सफलता नहीं मिली। परन्तु ब्रिटिश शक्ति का नैतिक सहारा अवश्य मिला; तो हमारे नेतृत्व ने सिद्धांत की रक्षा करते हुए उसे मान लिया।

हमारे नेताओं ने आशा की थी कि रण कच्छ के समझौते के पश्चात् पाकिस्तान की नीति सन्मार्ग की ओर उन्मुख होगी। परन्तु कश्मीर के विरुद्ध तभी से पाकिस्तान की तयारी भी होने लगी।

हमें धोखा हुआ, तो पाकिस्तानियों ने हमसे अधिक धोखा खाया। वे समझे हुए थे कि मुसलमान और हिन्दू दो विभिन्न धर्म ही नहीं, दो विरोधी जाति भी हैं; तो कश्मीर के मुसलमान भारतीय शासन के अन्तर्गत त्रस्तर होंगे ही, हमारे घुसपैठियों का सहारा निलने पर वे विद्रोह कर देंगे, हम उन्हें अस्त्र-शस्त्र पहुंचायेंगे और कश्मीर पर पाकिस्तानी झंडा फहराने लगेगा। भारत के छः करोड़ मुसलमान भी संख्या में कम नहीं। वे भी विद्रोह के लिए तैयार बैठे हैं। यों भारतीय शासकों से कश्मीर के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ छीनने का उन्हें मौका मिलेगा।

परन्तु उनके ये सपने चरितार्थ नहीं हो सके। कश्मीर की मुस्लिम जनता ने स्वेच्छापूर्वक और मनसा, वाचा, कर्मणा अपने शासकों को घुसपैठियों के विरुद्ध सहायता दी और उनका षड्यंत्र असफल कर दिया तब भारत से लड़ाई छेड़ दी गई। पाकिस्तानी नेताओं को आशा थी कि देश भर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होंगे और भारत की नैतिक शक्ति निर्बल हो जायगी। परन्तु यहाँ भी उन्होंने धोखा खाया है। देश के सभी मुसलमान नागरिक सब प्रकार से सुरक्षित हैं और ये भी तन, मन, धन से राष्ट्रीय शासन के साथ हैं।

भारत की अनेकता में एकता के दर्शन तो अब सारे संसार के समक्ष प्रत्यक्ष हैं।

इन पंक्तियों के लिखते समय हमारी अग्नि-परीक्षा चालू है। परीक्षा के नाम से प्रश्नपत्र आते हैं। तीन हमारे सामने तीन प्रश्न पत्र हैं : सैनिक, अन्तर्राष्ट्रीय और आंतरिक। सैनिक प्रश्नपत्र के उत्तर में देश के सैनिक नेता और उनके जवान जिस प्रकार अपनी भारतमाता के दूध का ऋण चुका रहे हैं, वह संसार भर के लिए अनुकरणीय है। शौर्य और रणकौशल में तो वे माँ के सच्चे लाल हैं ही, उनके सद्चरित्र भी भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल रहे हैं। यह हम शिक्षकों के लिए बड़े गर्व की बात है। 'सत्यमेव जयते' हमारे राज-चिह्न के नीचे अंकित है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असत्य की धूम है। परन्तु हमारे नेता इस क्षेत्र में भी सत्य का पल्ला दृढ़ता से पकड़े हुए हैं। भारत से कश्मीर की अभिन्नता को कश्मीरी जनमत का सुदृढ़ आधार प्राप्त है, तो कश्मीर की प्रतिरक्षा के दायित्व से भारत कदापि मुक्त नहीं हो सकता। पाकिस्तानी नेता भारत के विरुद्ध कितना भी विष-वमन करते रहें, भारतीय शिव गरलपान करते चले जायँगे। पाकिस्तान का अस्तित्व मिटाने की उन्हें कोई भी आकांक्षा नहीं। नेता सन्मार्ग अपनायें और पाकिस्तानी नागरिक फूलें-फलें। इसमें हमें भारत का भला भी दिखता है।

हमारी नीति के ये तथ्य असत्य के बवंडर में भी सभी राष्ट्रों को अब प्रत्यक्ष हैं। शिक्षक-वर्ग ही विशेष रूप से **भारतीय शिक्षा** की सेवा का अधिकारी है। तो निवेदन है कि आंतरिक प्रश्नपत्र विशेष रूप से शिक्षक वर्ग के सामने है, क्योंकि राष्ट्र की आंतरिक शक्ति के प्रथम निर्माता देश के शिक्षक बहिन-भाई ही हैं। अतएव अग्नि-परीक्षा का ही वह समय है जब हम अपने अल्पकालिक और दीर्घकालिक कर्तव्य समझें और संगठित रूप में अपने पूरे मनोबल से कर्तव्यसंहिता के निर्वाह का दृढ़ निश्चय करें।

शिक्षकीय कर्तव्य संहिता : अल्पकालिक और दीर्घकालिक—

स्वतन्त्र भारत की अब तक तीन अग्नि-परीक्षाएँ हो चुकी हैं। पहली परीक्षा हमें स्वतन्त्र होते ही देनी पड़ी जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। दूसरी परीक्षा तब हुई जब चीन का भारत पर अतिक्रमण हुआ। पहले और दूसरे रण संकटों में वायुसेना के सामरिक प्रयोग के पहले ही रण स्थगित हो गये और संकट टल गये। रण क्षेत्र भारत की घनी बस्तियों से बहुत दूर भी रहे। परन्तु चालू अग्नि-परीक्षा में वायुसेना का सामरिक प्रयोग सक्रिय है और भारतीय जनता को आकाश से मृत्युवर्षा का पहला अनुभव हो रहा है। आशा की जाती है कि रण अधिक बढ़ने के पहले ही संयुक्त राष्ट्र संघ और

महान् राष्ट्रों के सहयोग से पाकिस्तानी नेताओं की बुद्धि ठिकाने आ जायगी और गृहयुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय समर में परिणित नहीं होने पायेगा। परन्तु स्वयं सचेत रहना और अपने शिष्यों को सचेत रखते हुए उन्हें स्वधर्म-पालन में लगाये रखना हमारा प्रथम और पुनीत कर्तव्य है।

थोड़े ही समय के भीतर हमें प्रत्यक्ष हो गया है कि हमें अपने ही बल पर, अपनी ही उत्पादक शक्ति पर, अपने ही देश के भीतर प्राप्त भौतिक और मानसिक साधनों पर, निर्भर होना है। हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा अन्य राष्ट्रों के जन और साधन नहीं करेंगे। राष्ट्र की यह पुनीत सेवा हमें ही, हमारी पढ़ाई भारतीय नर-नारियों को ही, करनी है।

यह युग विज्ञान का है। पाठकों को ज्ञात है कि हमारे ही देश के बने विमानों पर उड़ते हुए हमारे ही युवकों ने वैरी के कहीं अधिक प्रसिद्ध विदेशी विमानों को मार गिराया है। हमारे सैनिकों ने अपने ही देश में बने अस्त्रों की मार से वैरी के विदेशी टैंक नष्ट कर दिए हैं। रण क्षेत्र में शौर्य उतना ही आवश्यक है जितना सुदूर अतीत में था। परन्तु अब शौर्य की पृष्ठ-भूमि में अचूक वैज्ञानिक प्रशिक्षण की प्रेरणा रण के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। अपढ़ सैनिकों को अपने शौर्य के प्रयोग का अवसर पैदल सेना की मुठभेड़ में मिल पाता है; परन्तु इन मुठभेड़ों की संख्या अब बहुत कम हो गई है। सैनिक सेवा की भूमिका में शिक्षा अब परम आवश्यक है।

परन्तु शिक्षा के चालू स्वरूप से हमारे देश के होनहार सैनिक सेवा के लिए प्रशिक्षित नहीं हो सकते। हमें अपने शिष्यों को इस प्रकार शिक्षित करना है कि उन्हें याद जो भी रहे, परन्तु अपने बाहु और मस्तिष्क बल से वे याद से कहीं अधिक कोई ठोस सेवा संपन्न कर सकें। हमारी ही रक्षा के लिए तो रण क्षेत्र में हमारे सैनिक अपने प्राण निछावर कर रहे हैं। तो बिना अपने रणक्षेत्र में हमें बुलाये ही वे ऐसी अनगिनित सेवाएँ हम सबको सुपुर्द किये हुए हैं जिन्हें अपने-अपने धन्धों में अधिक लगन, सूझ और ईमानदारी से लगे रहकर हमें संपन्न करना चाहिए। शिक्षा के विषय का निर्धारण शैक्षिक नीति-निर्माताओं का काम है। परन्तु चालू नीति के अन्तर्गत भी हम अनुकूल शिक्षा अपने विद्यार्थियों को यथेष्ट मात्रा में दे सकते हैं। हमारी बहुत से शिकायतें हैं। बहुत सी मांगें हैं। परन्तु इन्हें हम स्थगित रखें। अपने-अपने कर्तव्यों की ओर अधिक उन्मुख हों।

एक अभियान हमें अभी से प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि इसका अल्पकालिक महत्व है और दीर्घकालिक भी।

शिक्षक वर्ग एक सूत्र में संगठित नहीं है। शिक्षक वर्ग से सक्रिय

113770

सहयोग के लिए विद्यार्थियों के पालक भी संगठित नहीं। संगठन अभियान अभी से चालू होना चाहिए—अल्पकालिक सेवा के लिए और दीर्घकालिक सेवा के लिए भी।

शिक्षक वर्ग की पहुंच देश के कोने-कोने तक है, गांव-गांव तक है। यदि इस वर्ग के साथ पालक भी संगठित होते हैं, तो जनशिक्षण का क्षेत्र व्यापक हो जाता है। देश पर संकट है। अन्न संकट तो था ही, अब रण संकट भी है। तो संकटकाल में जनशिक्षण और भी आवश्यक है। अपने-अपने धंधों को अपनी पूरी बुद्धि और लगन से करना, संकट का धैर्य और सहयोग से सामना करते रहना, सैनिकों के लिए, क्षेत्रीय विशेषज्ञों के आदेशानुसार, विविध सेवा-सामग्रियां तैयार कराते रहना—यह सब अल्पकालिक महत्व की सेवायें हैं जो शिक्षक-पालक संगठनों के माध्यम से हो सकती हैं और होनी चाहिए।

दीर्घकालिक सेवाओं का क्षेत्र अधिक व्यापक और स्थायी होना चाहिए। इन सेवाओं से शिक्षक का मान बढ़ेगा, उसकी शिक्षण सेवा की स्तरोन्नति होगी, शिक्षक के आर्थिक संकटों का भी निराकरण होगा। यह सब आगे फिर कभी जब हमें पाठक से ब्योरेवार बात का मौका मिलेगा।

शैक्षिक नीति-निर्माताओं के प्रति—

भारतीय जलवायु और आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति के अनुकूल शिक्षा के विषय पर, शिक्षण सेवा के समय के संबन्ध में और घातक परीक्षा प्रणाली का व्यावहारिक विकल्प—यह सब हम अपने शैक्षिक नीति-निर्माताओं की सेवा में प्रस्तुत कर चुके हैं। यहां दुहराने का मौका नहीं। परन्तु एक अल्पकालिक निर्णय के लिए हमें आग्रह करना है, क्योंकि इतने ही निर्णय से हमारे जूनियर हाई स्कूलों में खेती और हस्त-कलाओं की व्यावहारिक शिक्षा की स्तनोन्नति संभव होगी जो जूनियर हाई स्कूल की सार्वजनिक परीक्षाओं की व्यवस्था के कारण आजकल उपेक्षित हैं।

जिन-जिन राज्यों में जूनियर हाईस्कूल, अर्थात् मिडिल स्कूल, की सार्वजनिक परीक्षायें चालू हों, वे आगामी वर्ष के लिए स्थगित कर दी जायँ, खेती और हस्तकला की शिक्षा पर विशेष ध्यान का आदेश दिया जाय और शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को उन अल्पकालिक सेवाओं का अवसर दिया जाय जिनका संकेत ऊपर किया गया है।

शिक्षक को विश्वास-दान करने में तो सरकार पर कोई अर्थ-भार बढ़ता नहीं; अतएव इस दान का प्रयोग निम्न स्तर पर उपर्यक्त रूप में करने का सविनय आग्रह हम शैक्षिक नीति-निर्माताओं से करते हैं।

साधारण अंकों के आयोजित स्तंभ

१—विभिन्न राज्यों की शैक्षिक प्रगति

२—क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति

३—भारतीय शिक्षक संघ तथा संबद्ध संस्थाओं की सूचनाएँ

४—प्रधान का पत्र

५—अभिभावकों का समस्या-समाधान

६—शिक्षक प्रशस्ति

७—कक्षागत समस्या

८—पाठ्येतर अथवा सांस्कृतिक चर्चा

९—शिक्षकोपयोगी प्रकाशन-समीक्षा

* * *

विशेषांक योजना

१—स्वतंत्र भारत में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक गति विधि

२—विदेशों में शिक्षक और शिक्षा (संयुक्तराज्य, रूस, जापान, ब्रिटेन फ्रांस, प० जर्मनी)

३—विदेशों में युवक-संघों की प्रगति

४—विदेशों में शिक्षक संघ

५—विदेशों में वयस्कों की शिक्षा-व्यवस्था

६—प्रवासी भारतीयों की शिक्षा-व्यवस्था
(मारिशस, सिंहल, मलाया, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ब्रि० गायना, नटाल)

७—विभिन्न राज्यों में शिक्षा, शिक्षकों और पुस्तकालयों संबंधी कानूनी व्यवस्था

८—विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की मूल्यांकन-व्यवस्था

९—नारी शिक्षा

१०—हिन्दी भाषा के व्यापक प्रचार और साहित्य के सर्वांगीण निर्माण की योजना

११—शिक्षेतर कार्यक्रम

वी० बी० खत्री, मैनेजर निर्बल-के-बल-राम प्रेस, १६/८ ए, सिविल लाइन्स, कानपुर-१, द्वारा मुद्रित व ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, भारतीय शिक्षक संघ, झा–शेषाद्रि–खत्री भवन, पोस्ट बाक्स ५२, कानपुर के द्वारा प्रकाशित ।

रजिस्टर्ड नं० एल ११९

लेखकों के लिए

भारतीय शिक्षा में प्रकाशनार्थ लेख पृष्ठ के एक तरफ लिखे या टंकित होने चाहिए। स्वीकृत लेखों के प्रकाशित होने पर लेखकों को पत्र-पुष्प से पुरस्कृत करने की व्यवस्था है। लेख भेजने का पता है :—

कालिदास कपूर
भारतीय शिक्षा—सम्पादक
कपूर कुटी, हरदोई मार्ग, लखनऊ–३
फोन नं० : २५४७१

बदले की पत्र–पत्रिकाएँ तथा आलोचनार्थ पाठ्य-सामग्री की दो प्रतियाँ भी उपर्युक्त पते से पहुंचनी चाहिए।

ग्राहकों और विज्ञापकों के लिए

कागज और नाप का नमूना प्रस्तुत है। प्रत्येक अंक की औसत पृष्ठ संख्या ८० होगी। वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा ए० पी० खत्री, अवैतनिक संयुक्त मंत्री, आल इण्डिया फेडरेशन आफ एजुकेशनल एसोसिएशंस, निर्बल-के-बल-राम गृह, १६/८ ए, सिविल लाइंस, कानपुर को प्रेषित होना चाहिए। विज्ञापन के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी भी इन्ही अधिकारी से हो।

फोन नं० : ३३६०७ तार का पता : एजुकेशन, कानपुर

प्रत्येक अंक में विज्ञापन की दर इस प्रकार है :—

कवर पृष्ठ	आकस्मिक	वार्षिक आधार
चौथा	२५० रु०	२०० रु०
दूसरा	२०० रु०	१५० रु०
तीसरा	१५० रु०	१०० रु०
अन्य पृष्ठ		
पूरा पृष्ठ	१०० रु०	८० रु०
आधा पृष्ठ	६० रु०	५० रु०
चौथाई पृष्ठ	३५ रु०	३० रु०

विज्ञापन अंग्रेजी में भी प्रकाशित किये जा सकेंगे।

Stock Verification-2024

Compiled
1999-2000